समयसार सिद्धि

भाग-१२

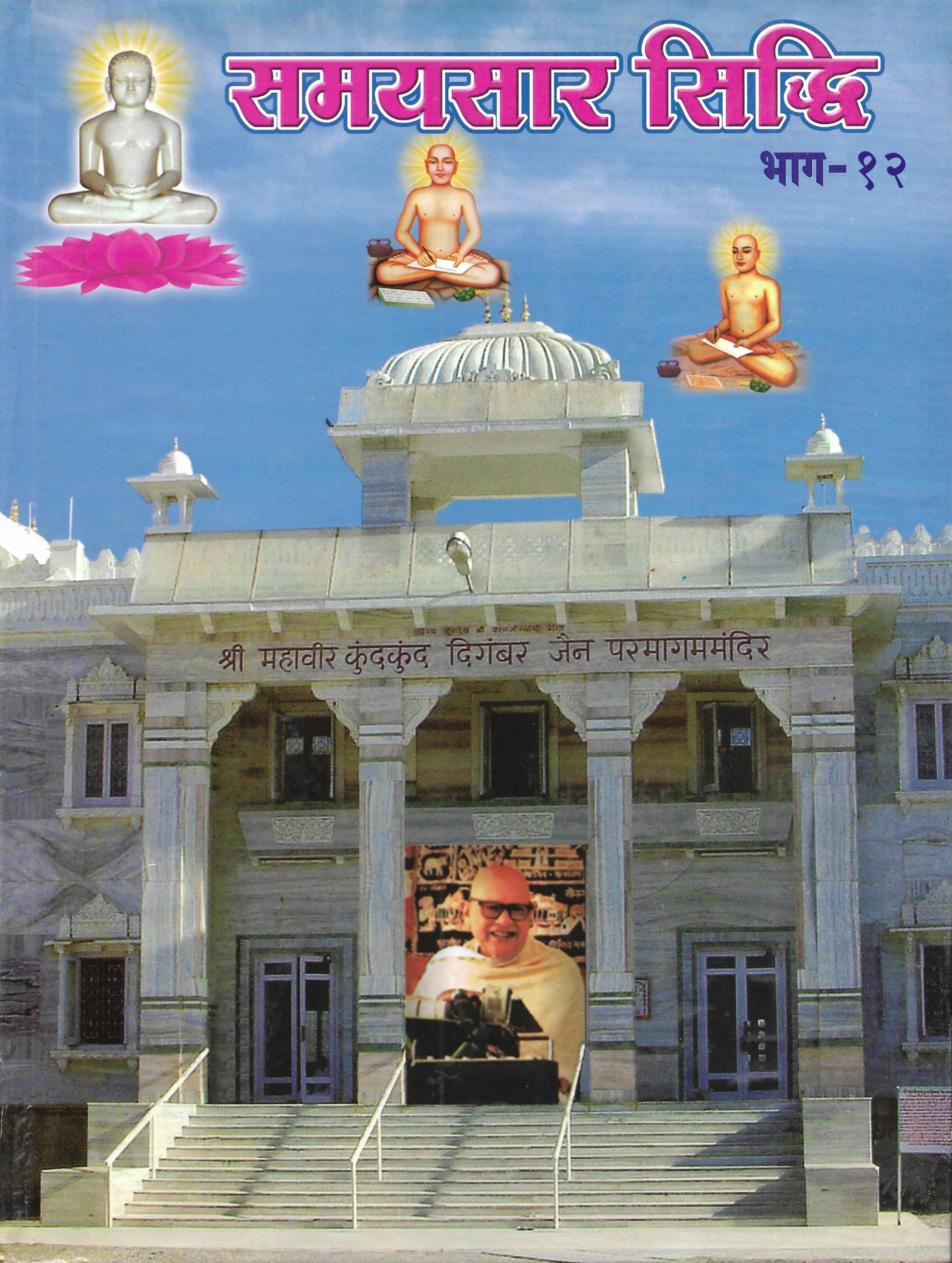

ॐ

परमात्मने नमः

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं.

समयसार सिद्धि

भाग-१२

परम पूज्य श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचित
परमागम श्री समयसार के
श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्य कृत परिशिष्ट में समागत ४७ शक्तियों
पर सन् १९७७ में शिक्षण शिविर के अवसर पर हुए
परम पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
धारावाहिक शब्दशः प्रवचन

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

: सह-प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ

ISBN No. :

न्यौछावर राशि : 20 रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,**
   सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250, फोन : 02846-244334
2. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
3. **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.)
4. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**
   ए-4, बापूनगर, जयपुर, राजस्थान-302015, फोन : (0141) 2707458
5. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
6. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
7. **श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट**
   योगी निकेतन प्लाट, 'स्वरुचि' सवाणी होलनी शेरीमां, निर्मला कोन्वेन्ट रोड
   राजकोट-360007 फोन : (0281) 2477728, मो. 09374100508

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक :

प्रकाशकीय

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

महाविदेहक्षेत्र में विराजमान त्रिलोकनाथ वीतराग-सर्वज्ञ परम देवादिदेव श्री सीमन्धर भगवान की दिव्यदेशना का अपूर्व संचय करके भरतक्षेत्र में लानेवाले, सीमन्धर लघुनन्दन, ज्ञान साम्राज्य के सम्राट, भरतक्षेत्र के कलिकालसर्वज्ञ, शुद्धात्मा में निरन्तर केलि करनेवाले, चलते-फिरते सिद्ध – ऐसे आचार्यश्री कुन्दकुन्ददेव हुए, जो संवत् 49 में सदेह महाविदेहक्षेत्र में गये और आठ दिन वहाँ रहे थे। महाविदेहक्षेत्र में त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव के श्रीमुख से प्रवाहित श्रुतामृतरूपी ज्ञानसरिता का तथा श्रुतकेवलियों के साथ हुई आध्यात्मिक सूक्ष्म चर्चाओं का अमूल्य भण्डार लेकर भरतक्षेत्र में पधारकर पंच परमागम आदि आध्यात्मिक शास्त्रों की रचना की। उनमें से एक श्री समयसारजी, द्वितीय श्रुतस्कन्ध का सर्वोत्कृष्ट अध्यात्म शास्त्र है। जिसमें श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने 415 मार्मिक गाथाओं की रचना की है। यह शास्त्र सूक्ष्म दृष्टिप्रधान ग्रन्थाधिराज है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य के पश्चात् एक हजार वर्ष बाद अध्यात्म के प्रवाह की परिपाटी में इस अध्यात्म के अमूल्य खजाने के गहन रहस्य को स्वानुभवगत करके श्री कुन्दकुन्ददेव के ज्ञानहृदय को खोलनेवाले श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव ने सिद्धपद-साधक मुनिसम्पदा को आत्मसात करके, निजस्वरूप के अलौकिक अनुभव से, सिद्धान्त शिरोमणि शास्त्र समयसार की 415 गाथाओं की टीका करने का सौभाग्य प्राप्त किया है। उन्होंने श्रीसमयसारजी में निहित सूक्ष्म और गम्भीर रहस्य को, अपूर्व शैली से आत्मख्याति नामक टीका बनाकर, स्पष्ट किया है; साथ ही 278 मंगल कलश तथा परिशिष्ट की रचना भी की है।

इस शास्त्र का भावार्थ जयपुर निवासी सूक्ष्म ज्ञानोपयोगी पण्डित श्री जयचन्दजी छाबड़ा ने किया है।

वर्तमान इस काल में मोक्षमार्ग प्राय: लुप्त हो गया था, सर्वत्र मिथ्यात्व का घोर अन्धकार छाया हुआ था, जैनदर्शन के मूलभूत सिद्धान्त का अभ्यास छूट गया था, परमागम विद्यमान होने पर भी उनके गूढ़ रहस्यों को समझानेवाला कोई नहीं था – ऐसे विषम काल में जैनशासन के गगन मण्डल में एक महाप्रतापी वीर पुरुष, अध्यात्ममूर्ति, अध्यात्मदृष्टा, आत्मज्ञ सन्त, अध्यात्म युगपुरुष, निष्कारण करुणाशील, भवोदधि तारणहार, भावी तीर्थाधिनाथ परमपूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

का उदय हुआ। जिन्होंने इन आचार्यों के ज्ञानहृदय में संचित गूढ़ रहस्यों को अपने ज्ञान–वैभव द्वारा रसपान करके आचार्यों की महा सूक्ष्म गाथाओं में विद्यमान अर्थ गाम्भीर्य को स्वयं के ज्ञान प्रवाह द्वारा सरल सुगम भाषा में चरम सीमा तक मूर्तिवन्त किया।

मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान के घोर तिमिर को नष्ट करने के लिए एक तेजस्वी अध्यात्म दीपक का स्वर्णमय उदय हुआ, जिसने अपनी दिव्यामृत चैतन्य रसीली वाणी द्वारा अध्यात्म सिन्धु के अस्खलित सातिशय शुद्ध प्रवाह को आगे बढ़ाया। आपश्री जैनदर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों को अति स्पष्टरूप से, अति दृढ़तापूर्वक भवताप विनाशक और परम शान्ति प्रदायक प्रवचन गंगा द्वारा फैलाते रहे; विरोधियों के विरोध का भी, जंगल में विचरते केशरी सिंह की तरह, अध्यात्म के केशरी सिंह बनकर निडररूप से, तथापि निष्कारण करुणावन्त भाव से झेलते रहे। विरोधियों को भी 'भगवान आत्मा' है – ऐसी दृष्टि से देखकर जगत् के जीवों के समक्ष अध्यात्म के सूक्ष्म न्यायों को प्रकाशित करते रहे।

श्री समयसारजी शास्त्र, पूज्य गुरुदेवश्री के कर–कमल में विक्रम संवत् 1978 के फाल्गुन माह में आया था। इस समयसारजी शास्त्र के हाथ में आते ही कुशल झवेरी की पारखी नजर समयसार के सूक्ष्म भावों पर पड़ी और सहज ही अन्तर की गहराई में से भावनाशील कोमल हृदय बोल उठा – 'अरे! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।' अनादि का अप्रतिबुद्ध जीव प्रतिबुद्ध कैसे हो? – उसका सम्पूर्ण रहस्य और शुद्धात्मा का सम्पूर्ण वैभव इस परमागम में भरा है।

इस शास्त्र का रहस्य वास्तव में तो अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के हाथ में यह शास्त्र आने के पश्चात् ही चरम सीमा से प्रकाशित और प्रदर्शित हुआ है। पैंतालीस वर्ष तक स्वर्णपुरी / सोनगढ़ में अध्यात्म की मूसलधार वर्षा हुई है जो सर्व विदित है। पूज्य गुरुदेवश्री ने विक्रम संवत् 1978 से 1991 – इस तरह तेरह वर्षों तक गूढ़ मन्थन करके जिनवाणी का सम्पूर्ण निचोड़ इस शास्त्र में से ढूँढ़ निकाला और फरमाया है कि —

- समयसार तो द्वितीय श्रुतस्कन्ध का सर्वोत्कृष्ट / सर्वोच्च आगमों का भी आगम है।
- समयसार तो सिद्धान्त शिरोमणि, अद्वितीय अजोड़ चक्षु और अन्धे की आँख है।
- समयसार तो संसार विष–वृक्ष को छेदने का अमोघ शस्त्र है।
- समयसार तो कुन्दकुन्दाचार्य से कोई ऐसा शास्त्र बन गया; जगत् का भाग्य कि ऐसी चीज भरतक्षेत्र में रह गयी। धन्य काल!
- समयसार की प्रत्येक गाथा और आत्मख्याति टीका ने आत्मा को अन्दर से डुला दिया है। समयसार की आत्मख्याति जैसी टीका दिगम्बर में भी दूसरी किसी शास्त्र

में नहीं है। इसके एक-एक पद में इतनी गम्भीरता (कि) खोलते-खोलते पार न आये - ऐसी बात अन्दर है।

- समयसार तो सत्य का उद्घाटक है! भारत का महारत्न है!! समयसार.... जिसके थोड़े शब्दों में भावों की अद्भुत और अगाध गम्भीरता भरी है!
- समयसार तो भरतक्षेत्र का प्रवचन का सर्वोत्कृष्ट बादशाह है, यह सार शास्त्र कहलाता है।
- समयसार तो जगत् का भाग्य.... समयसाररूपी भेंट जगत् को दिया, स्वीकार नाथ! अब स्वीकार! भेंट भी दे वह भी नहीं स्वीकारे?
- समयसार तो वैराग्य प्रेरक परमात्मस्वरूप को बतलानेवाली वीतरागी वीणा है।
- समयसार में तो अमृतचन्द्राचार्य ने अकेला अमृत बहाया है, अमृत बरसाया है।
- समयसार एक बार सुनकर ऐसा नहीं मान लेना कि हमने सुना है, ऐसा नहीं बापू! यह तो प्र... वचनसार है अर्थात् आत्मसार है, बारम्बार सुनना।
- समयसार भरतक्षेत्र की अन्तिम में अन्तिम और उत्कृष्टतम सत् को प्रसिद्ध करनेवाली चीज है। भरतक्षेत्र में साक्षात् केवलज्ञान सूर्य है। समयसार ने केवली का विरह भुलाया है।
- समयसार की मूलभूत एक-एक गाथा में गजब गम्भीरता! पार न पड़े ऐसी चीज है। एक-एक गाथा में हीरा-मोती जड़े हैं।
- समयसार में तो सिद्ध की भनकार सुनायी देती है। यह तो शाश्वत् अस्तित्व की दृष्टि करानेवाला परम हितार्थ शास्त्र है। समयसार तो साक्षात् परमात्मा की दिव्यध्वनि / तीन लोक के नाथ की यह दिव्यध्वनि है।

ऐसे अपूर्व समयसार में से पूज्य गुरुदेवश्री ने अपने निज समयसाररूपी शुद्धात्मा का अनुभव करके फरमाया कि आत्मा आनन्द का पर्वत है; ज्ञायक तो मीठा समुद्र / आनन्द का गंज और सुख का समुद्र है। न्यायों का न्यायाधीश है, धर्म का धोध ऐसा धर्मी है, ध्रुव प्रवाह है, ज्ञान की धारा है, तीन लोक का नाथ चैतन्यवृक्ष-अमृत फल है, वास्तविक वस्तु है। सदा विकल्प से विराम ही ऐसी निर्विकल्प जिसकी महिमा है - ऐसा ध्रुवधाम ध्रुव की धखती धगश है। भगवान आत्मा चिन्तामणि रत्न, कल्पवृक्ष और कामधेनु है, चैतन्य चमत्कारी वस्तु है, अनन्त गुणों का गोदाम, शक्तियों का संग्रहालय और स्वभाव का सागर है।

सनातन दिगम्बर मुनियों ने परमात्मा की वाणी का प्रवाह जीवन्त रखा है। जैनधर्म सम्प्रदाय-बाड़ा-गच्छ नहीं; अपितु वस्तु के स्वरूप को जैनधर्म कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री ने शास्त्र का अर्थ करने की जो पाँच प्रकार की पद्धति — शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ, और भावार्थ है, उसे अपनाकर कहाँ, किस अपेक्षा से कथन किया जाता है - उसका यथार्थ ज्ञान अपने को-मुमुक्षु समुदाय को कराया है। इस प्रवचन गंगा से बहुत से आत्मार्थी अपने निजस्वरूप को प्राप्त करने का पुरुषार्थ करते हैं, बहुत से स्वरूप के निकट आये हैं और इस वाणी के भाव ग्रहण करके बहुत से आत्मार्थी अवश्य आत्मदर्शन को प्राप्त होंगे ही - यह सुनिश्चित है।

पूज्य गुरुदेवश्री समयसार में फरमाते हैं कि समयसार दो जगह है - एक अपना शुद्धात्मा है वह समयसार है और दूसरा उत्कृष्ट निमित्तरूप समयसारजी शास्त्र है। इस शास्त्र में अपना निज समयसाररूपी शुद्धात्मा बतलाया गया है। प्रत्येक गाथा का अर्थ करते हुए पूज्य गुरुदेवश्री ऐसे भावविभोर हो जाते हैं कि उसमें से निकलना उन्हें सुहाता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री फरमाते हैं कि पंचम काल के अन्त तक जो कोई जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करेगा, उसे यह वीतराग की वाणी निमित्त होगी, यह सीधी सीमन्धर भगवान की वाणी है, इसमें एक अक्षर फिरे तो सब फिर जायेगा।

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन, अपने वचनामृत में पूज्य गुरुदेवश्री के सम्बन्ध में फरमाती हैं कि पूज्य गुरुदेवश्री का द्रव्य तो अलौकिक और मंगल है; उनका श्रुतज्ञान और वाणी आश्चर्यकारक है। आपश्री मंगलमूर्ति, भवोदधि तारणहार और महिमावन्त गुणों से भरपूर हैं। उन्होंने चारों ओर से मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उनका अपार उपकार है, वह कैसे भूला जाये ? पूज्य गुरुदेवश्री को तीर्थंकर जैसा उदय वर्तता है। पूज्य गुरुदेवश्री ने अन्तर से मार्ग प्राप्त किया, दूसरों को मार्ग बतलाया; इसलिए उनकी महिमा आज तो गायी जाती है परन्तु हजारों वर्षों तक गायी जाएगी।

पूज्य निहालचन्दजी सोगानी, जिनको पूज्य गुरुदेवश्री का एक ही प्रवचन सुनते हुए भव के अभावरूप सम्यग्दर्शन की प्राप्ति सोनगढ़ / स्वर्णपुरी में हुई - वे फरमाते हैं कि पूज्य गुरुदेव के एक घण्टे के प्रवचन में पूरी-पूरी बात आ जाती है। सभी बात का स्पष्टीकरण पूज्य गुरुदेवश्री ने तैयार करके दिया है; इस कारण कोई बात का विचार नहीं करना पड़ता, वरना तो साधक हो तो भी सब तैयारी करनी पड़ती है।

इस समयसार सिद्धि भाग 12 ग्रन्थ में समयसार शास्त्र के परिशिष्ट अधिकार में वर्णित 47 शक्तियों पर सन् १९७७ के वर्ष में शिक्षण शिविर के अवसर पर हुए पूज्य गुरुदेवश्री के 42 धारावाही प्रवचन शब्दश: प्रकाशित किये गये हैं। पूज्य गुरुदेवश्री ने शक्ति के प्रवचन में फरमाया है कि यह शक्ति के प्रवचन वास्तव में उन्नीसवीं बार शक्ति का वर्णन चलता है और

तत्पश्चात् 1980 में हुए प्रवचनों में फरमाया है कि यह शक्ति बीसवीं बार चलती है। हमें खेद है कि सन् 1980 में प्रदत्त पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन ग्यारहवीं शक्ति तक ही हो पाये हैं। अत: ग्रन्थ की पूर्ति हेतु यह प्रवचन प्रकाशित किये जा रहे हैं।

प्रवचन-प्रकाशन से पूर्व सम्पूर्ण प्रवचनों को सी.डी. से शब्दश: लिख लिया जाता है; तत्पश्चात् आवश्यकतानुसार वाक्य पूर्ति हेतु कोष्ठक भरा जाता है। प्रकाशन से पूर्व फिर से मिलान किया जाता है। गुजराती भाषा में इस कार्य में श्री चेतनभाई मेहता, राजकोट का उल्लेखनीय सहयोग रहा है।

सम्पूर्ण प्रवचनों को हिन्दी भाषा में व्यवस्थितरूप से प्रस्तुत करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राजस्थान) ने किया है। तदर्थ संस्था सभी सहयोगियों का सहृदय आभार व्यक्त करती है।

ग्रन्थ के मूल अंश को बोल्ड टाईप में दिया गया है।

प्रस्तुत प्रवचन — ग्रन्थ के टाईप सेटिंग के लिए श्री विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ तथा ग्रन्थ के सुन्दर मुद्रण कार्य के लिए श्री दिनेश जैन, देशना कम्प्यूटर, जयपुर के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अन्तत: समयसारस्वरूप निज शुद्धात्मा के आश्रयपूर्वक सभी जीव परम शान्ति को प्राप्त हों - इसी भावना के साथ.....

यह प्रवचन ग्रन्थ www.vitragvani.com पर उपलब्ध हैं।

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

एवं

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

श्री सद्‌गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्‌घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने

से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्‍भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‍गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‍भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा

विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते

थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय,

आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	दिनांक	गाथा/श्लोक नं.	पृष्ठ क्रमांक
०१	११-०८-१९७७	शक्ति - १	००१
०२	१२-०८-१९७७	शक्ति - २	०१८
०३	१३-०८-१९७७	शक्ति - १, २	०३६
०४	१४-०८-१९७७	शक्ति - ३	०५३
०५	१५-०८-१९७७	शक्ति - ३ से ५	०७१
०६	१६-०८-१९७७	शक्ति - ५, ६	०८७
०७	१७-०८-१९७७	शक्ति - ६	१०३
०८	१८-०८-१९७७	शक्ति - ६, ७	११९
०९	१९-०८-१९७७	शक्ति - ७	१३५
१०	२०-०८-१९७७	शक्ति - ८, ९	१५२
११	२१-०८-१९७७	शक्ति - ९, १०	१६९
१२	२२-०८-१९७७	शक्ति - १०, ११	१८४
१३	२३-०८-१९७७	शक्ति - ११, १२	२००
१४	२४-०८-१९७७	शक्ति - १२ से १४	२१६
१५	२५-०८-१९७७	शक्ति - १४, १५	२३२
१६	२६-०८-१९७७	शक्ति - १५ से १७	२४७
१७	२७-०८-१९७७	शक्ति - १६ से १८	२६२
१८	२८-०८-१९७७	शक्ति - १८, १९	२७८
१९	२९-०८-१९७७	शक्ति - १९ से २१	२९४
२०	३०-०८-१९७७	शक्ति - २१, २२	३१२
२१	३१-०८-१९७७	शक्ति - २३	३२७

२२	०१-०९-१९७७	शक्ति - २४	३४१
२३	०२-०९-१९७७	शक्ति - २४ से २६	३५७
२४	०३-०९-१९७७	शक्ति - २७, २८	३७३
२५	०४-०९-१९७७	शक्ति - २९	३९०
२६	०५-०९-१९७७	शक्ति - २९, ३०	४०५
२७	०६-०९-१९७७	शक्ति - ३० से ३३	४२२
२८	०७-०९-१९७७	शक्ति - ३३	४३८
२९	०८-०९-१९७७	शक्ति - ३४, ३५	४५५
३०	०९-०९-१९७७	शक्ति - ३५, ३६	४७०
३१	१०-०९-१९७७	शक्ति - ३६	४८६
३२	११-०९-१९७७	शक्ति - ३७	५०२
३३	१२-०९-१९७७	शक्ति - ३८	५१८
३४	१३-०९-१९७७	शक्ति - ३९, ४०	५३४
३५	१४-०९-१९७७	शक्ति - ४०, ४१	५५०
३६	१५-०९-१९७७	शक्ति - ४१	५६६
३७	१६-०९-१९७७	शक्ति - ४२, ४३	५८३
३८	१७-०९-१९७७	शक्ति - ४३	५९८
३९	१८-०९-१९७७	शक्ति - ४४	६१५
४०	१९-०९-१९७७	शक्ति - ४५	६२९
४१	२०-०९-१९७७	शक्ति - ४६	६४५
४२	२१-०९-१९७७	शक्ति - ४७	६६०
परिशिष्ट-1			६७५
परिशिष्ट-2			६७७
परिशिष्ट-3			६७८

श्री परमात्मने नमः

श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री समयसार परमागम पर

अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचन

समयसार सिद्धि

(भाग - १२)

परिशिष्ट अधिकार

आत्मद्रव्यहेतुभूतचैतन्यमात्रभावधारणलक्षणा जीवत्वशक्तिः।

आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्र भाव का धारण जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है, ऐसी जीवत्वशक्ति। (आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्र-भावरूपी भावप्राण का धारण करना जिसका लक्षण है, ऐसी जीवत्व नामक शक्ति ज्ञानमात्र भाव में-आत्मा में उछलती है)।१।

प्रवचन नं. १, शक्ति-१, गुरुवार, श्रावण कृष्ण १२, दिनांक ११-०८-१९७७

समयसार, परिशिष्ट अधिकार है। सूक्ष्म तत्त्व है। अपूर्व बात है कभी सुनी नहीं। रुचि से सुनी नहीं। वैसे तो अनन्त बार सुनी है। समझ में आया? क्या कहते हैं? जो यह आत्मा वस्तु है न? आत्मा वस्तु—पदार्थ—द्रव्य, वह तो शक्तिवान है। उसमें शक्तियाँ—गुण अनन्त हैं।

भगवान आत्मा, यह शक्तिवान—स्वभाववान (है) और उसकी शक्तियाँ—स्वभाव

अनन्त हैं। उसमें से ४७ शक्ति का वर्णन चलेगा। ४७। है तो अनन्त (शक्तियाँ)। सूक्ष्म है, भगवान! आत्मद्रव्य में दृष्टि करना, वह सम्यग्दर्शन है। तो कहते हैं कि आत्मद्रव्य है कैसा?

आत्मद्रव्य में अनन्त शक्तियाँ हैं जीवत्वशक्ति, चितिशक्ति, दशि, ज्ञान, आनन्द, सुख आदि अनन्त शक्तियाँ हैं। संख्या में अनन्त हैं, वस्तु एक है। परन्तु शक्तियाँ अनन्त हैं। समझ में आया?

कितनी शक्ति हैं? भगवान! परन्तु आत्मा की खबर नहीं। आहाहा! आत्मा क्या चीज़ है? यह (शरीर) तो जड़-मिट्टी-धूल, रागादि, पुण्यादि तो परवस्तु है। आहाहा! जिसको सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो तो इस आत्मद्रव्य का विषय—किये बिना, ध्येय बनाये बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। धर्म की पहली सीढ़ी (सम्यग्दर्शन है)। छहढाला में आता है न? 'मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी' सूक्ष्म बात है, भगवान! इसने अनन्त बार मुनिपना लिया, पंच महाव्रत अनन्त बार पाले, २८ मूलगुण अनन्त बार पाले, वह तो सब राग की क्रिया है। यह कोई आत्मा की शक्ति या आत्मा के गुण की क्रिया नहीं। आहाहा!

(यहाँ) कहते हैं कि आत्मद्रव्य जो वस्तु है, वह अनन्त अक्रम गुण से भरी है। क्या कहा? एक साथ अक्रम अनन्त शक्तियाँ अन्दर हैं और उस शक्ति का क्रमवर्ती परिणमन होता है। यहाँ (शुद्ध) परिणमन लेना है, विकार का नहीं लेना। यह भगवान आत्मा एकरूप वस्तु के दरबार में अनन्त शक्तियाँ हैं। संख्या से अनन्त शक्तियाँ (हैं)। कितनी? कि आकाश के प्रदेश हैं न? जीव जो है, जीव, उस जीव की जितनी अनन्त संख्या है, उससे अनन्तगुनी संख्या परमाणु की है। यह एक चीज़ नहीं। यह तो टुकड़ा—एक-एक परमाणु—परम अणु—सूक्ष्म अणु (का स्कन्ध है, उसका) टुकड़ा करते-करते, करते आखिर के टुकड़े को परमाणु कहते हैं। तो इस जगत में जीव की संख्या अनन्त हैं, (और) उससे अनन्तगुना परमाणु है और परमाणु की संख्या से तीन काल के समय अनन्तगुना है, आहाहा! एक 'क...' बोलने में असंख्य समय जाते हैं। 'क' (इतना बोलने में) काल के असंख्य समय (जाते हैं)। उसके खण्ड करते-करते आखिर का समय रहे, ऐसा एक समय (है)। (ऐसा) 'क...' बोलने में असंख्य समय जाता है। तो ये त्रिकाल के जो समय है, वह परमाणु की संख्या से अनन्तगुना है। सूक्ष्म है भगवान! अन्दर तेरी चीज़ महान है कभी (उसकी) खबर नहीं। और इन तीन काल के समय से आकाश नाम का एक पदार्थ

है, यह जगत में—चौदह ब्रह्माण्ड में तो है परन्तु खाली भाग—अलोक है, वहाँ भी आकाश है। उस आकाश का कोई अन्त नहीं। दरबार! अपने दरबार भी भाषा ठीक है। वैद्यराज से। दरबार को वैद्यराज बहुत कहना, वह ठीक नहीं। समझ में आया? वैद्यराज है।

यहाँ कहते हैं कि आकाश नाम का एक अरूपी पदार्थ है। वह जगत—लोक और अलोक, सब में एक पदार्थ व्यापक है और उस आकाश का कहीं अन्त नहीं। चाहे जिस दिशा में ले लो तो अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... है आकाश का कहीं अन्त नहीं। अन्त हो तो पीछे क्या? आहाहा! लॉजिक से—न्याय समझना चाहिए न? समझ में आया? यह आकाश नाम का जो पदार्थ है, वह लोक-जगत, चौदह ब्रह्माण्ड और अलोक खाली (भाग), वह सब में व्यापक है। अनन्त... अनन्त... अनन्त दसों दिशाओं में कहीं अन्त नहीं। (ऐसे) आकाश नाम के पदार्थ में एक परमाणु जो पॉइन्ट है—(वह) जितनी जगह रोके, उतनी (जगह) को प्रदेश कहने में आता है। ऐसे आकाश के प्रदेश अनन्त हैं। किससे अनन्त हैं? कि तीन काल के समय से भी आकाश का प्रदेश अनन्तगुना है। नन्दकुमारजी! यह तो भगवान की वकालत है, आहाहा! उसने आत्मा क्या चीज़ है, ये समझने का कभी प्रयत्न किया ही नहीं। ऐसा किया, ऐसा किया। एक तो संसार में पाप किया। धन्धा-पानी, स्त्री-कुटुम्ब-परिवार, धन्धा अकेला पाप का धन्धा और धर्म के नाम से आया तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा की यह (सब) पुण्य का धन्धा (है)—यह आत्मा का धन्धा नहीं, आहाहा!

(यहाँ) कहते हैं कि आकाश नाम का पदार्थ अमाप... अमाप... है। एक पारसी था न? भाई! जामनगर में पारसी थे। महेरबानजी पारसी, उनका पुत्र था। (संवत्) १९९१ में वहाँ एक बार आया था। नास्तिक जैसा। परन्तु भले नास्तिक हो। कहा, एक बार सुन। यह पदार्थ ऐसे-ऐसे है यह जगह कहाँ तक है? और यह वस्तु संग्रहात्मक छह द्रव्य है। खाली भाग है या नहीं? या भरा हुआ है? भरा हुआ तो असंख्य योजन में है। अनन्त जीव और अनन्त परमाणु का क्षेत्र तो असंख्य योजन में है। परन्तु पीछे क्या है? कहा, आकाश नाम का पदार्थ है, उसका अन्त कहाँ? उसका विचार कर पहले। भले तू नास्तिक हो तो पहले विचार कर। जामनगर में महेरबानजी पारसी थे। बहुत नीतिवाले। उस समय एक हजार वेतन था। यह तो संवत् १९९१ के वर्ष की बात है, हों! राजा ने २०० रुपये बढ़ा

दिये। एक हजार का वेतन था। १९९१ में, ४३ वर्ष हुए, ४०+३। वह पहले भी उन्हें महीने का एक हजार वेतन था। दरबार ने २०० बढ़ा दिये। दरबार को कहा, किसने बढ़ाये? २०० रुपये किसने बढ़ाये? दरबार कहे, हमने बढ़ाये। (पारसी कहे), राज का काम आवे तो हम दूसरे प्रकार से करें इसलिए? कानून में राज का कोई कारण आवे तो राज्य के अनुकूल होवे, वह करे इसलिए २०० रुपये बढ़ाये हैं? निकाल डालो। हम तो जो नियम है, कानून होगा, तद्नुसार काम करेंगे। राज का काम हो या संचालन का काम हो। इस चीज़—आकाश का अन्त कहाँ? दरबार। महेरबानजी पारसी थे। व्याख्यान में आये थे। व्याख्यान में आते थे। हमारा नाम तो बाहर में बहुत बढ़ा था, इसलिए सब आते थे।

उनका एक लड़का था। हम विहार करके वहाँ गये। क्या कहलाता है वह? धुआरण। वहाँ गये तो वहाँ पारसी का लड़का नास्तिक था, कहा, भले नास्तिक हो, सुन, सुन! यह चीज़ है वह कहाँ तक है? यह सब अनन्त... अनन्त... अनन्त में है? यह असंख्य क्षेत्र में है, उसकी तुझे खबर नहीं। फिर खाली... खाली भाग। खाली... खाली। आकाश कोई चीज़ है तो वह चीज़-आकाश का अन्त कहाँ? दरबार! है अन्त? तो अन्त कहाँ? ऐसी चीज़ तर्क से नहीं समझने में आती—स्वभाव की दृष्टि से समझने में आती है। जो क्षेत्र है, वह अन्त बिना का है। और उसके प्रदेश अनन्त हैं और उससे अनन्तगुनी शक्तियाँ एक जीव में अनन्त हैं। आहाहा! अरे! वकील! भगवान तुझे खबर नहीं तेरे अन्दर में अनन्त शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। आहाहा!

परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव दिव्यध्वनि द्वारा जगत को कहते थे। उनको तो (बोलने की) इच्छा है नहीं। वे तो सर्वज्ञ वीतराग हैं। इच्छा बिना ॐध्वनि निकलती थी और वर्तमान महाविदेहक्षेत्र में निकलती है। उस दिव्यध्वनि में ऐसा आया, प्रभु! तू एकबार सुन तो सही। तू एक द्रव्य-वस्तु है परन्तु तेरी ज्ञान, दर्शन, आनन्द, ऐसी अनन्त शक्तियाँ हैं और कितनी अनन्त हैं? कि आकाश का अन्त नहीं, उन प्रदेश से भी अनन्तगुनी शक्तियाँ तेरे में हैं। दर्शन आदि उसके गुण हैं। (ऐसे) अनन्त गुण हैं।

यहाँ कहते हैं कि आत्मद्रव्य जो वस्तु है, उसमें अनन्त गुण अक्रमी है। अक्रम अर्थात् एक साथ अनन्त गुण हैं। जैसे शक्कर में मिठास, सफेदाई एक साथ है, वैसे आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त शक्तियाँ हैं, अनन्त एक साथ हैं। तो उसको अक्रम

कहते हैं। अक्रम अर्थात् एक के पीछे एक, ऐसा नहीं। (परन्तु) एक साथ अनन्त शक्तियाँ हैं, आहाहा! और उसकी पर्याय जो होती है—अवस्था—वह क्रमवर्ती (है)। अनन्त गुण की एक समय में एक-एक गुण की एक-एक पर्याय—दशा—हालत, ऐसी अनन्त गुण की एक समय में क्रम से होनेवाली अनन्ती पर्याय है। ऐसा कठिन है, बापू! ऐई! कान्तिभाई! कहीं सुना भी नहीं हो। जैन में जन्म हुआ हो, जय नारायण...। आहाहा!

परमेश्वर, जिनेश्वर त्रिलोकनाथ ऐसा फरमाते हैं कि प्रभु! एक बार सुन तो सही। तेरे घर में क्या है? समझ में आया? तेरे घर में तो अनन्त शक्तियाँ हैं। एक-एक शक्ति भी अनन्त सामर्थ्यवाली है और एक-एक शक्ति की पर्याय अनन्त हैं। आहाहा! पर्याय समझते हो? अवस्था—हालत—दशा। जैसा सोना है, सुवर्ण है, वह द्रव्य है और उसमें पीलापन, चिकनापन, वजन है, वह उसकी शक्ति-गुण है। उसकी अँगूठी, कड़े, कुण्डल होते हैं, वह उसकी अवस्था है। समझ में आया? वैसे भगवान आत्मा, एक समय में द्रव्य है। यह साँकल है, साँकल होती है न, साँकल? चेन, हजार मकोड़े होते हैं न उसमें? मकोड़े होते हैं न? मकोड़े को क्या कहते हैं? कड़ी। हजार कड़ी-हजार कड़ी के एक समुदाय की साँकल कहते हैं—ऐसे आत्मा, 'असंख्य प्रदेशी वह आत्मा।' एक परमाणु (आकाश की जितनी जगह) रोके उसका नाम प्रदेश (है)। ऐसा असंख्य प्रदेशी भगवान आत्मा है। असंख्य प्रदेश उसका देश है। आहाहा! अरे रे! और उन असंख्य प्रदेश में, एक-एक (प्रदेश में) अनन्त गुण सर्व व्यापक है। समझ में आया?

इन शक्तियों में पहली जीवत्वशक्ति लेंगे। रामजीभाई ने कहा था कि शिविर आयेगा (तो उसमें) शक्तियों का अधिकार लेना। पहले विचार आया था। (लोग) सुने तो सही। अरे! सुन तेरी चीज़ क्या है, भैया? तुझे खबर नहीं और धर्म हो जाए (ऐसा कहाँ से होगा?) प्रभु! जैनधर्म कोई अलौकिक चीज़ है। आहाहा! ये कोई सम्प्रदाय नहीं है। यह तो वस्तु का स्वरूप है।

(यहाँ) कहते हैं, आत्मद्रव्य—जैसे सांकली है न? चेन कहते हैं चेन। वैसे हजार कड़ी हो। ऐसे सांकली समान आत्मा और कड़ी समान उसमें असंख्य प्रदेश हैं और जैसे एक कड़ी में चिकनापन आदि है, वे उसके गुण हैं और उसमें अँगूठी—कड़ी आदि का, जो परिवर्तन होता है, वह पर्याय है। वैसे भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी है। जैन वीतराग

के सिवाय यह असंख्य प्रदेश किसी ने देखा नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर के अलावा असंख्य प्रदेशी, सिवाय कहते हैं न अलावा। यह तो थोड़ी-थोड़ी गुजराती भाषा आ जाती है। सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव ने आत्मा को असंख्य प्रदेशी देखा है। यानि ? अर्थात् यहाँ जो अंश (एक जगह) है, वह यहाँ (दूसरी जगह) नहीं, यहाँ जो (अंश) है, वह यहाँ नहीं। अन्दर में, हों! यह (शरीर) तो जड़ है। परन्तु आत्मा असंख्य प्रदेशी है। जैसे एक हजार कड़ी है, वैसे असंख्य प्रदेश हैं। (असंख्य प्रदेश) वह उसका क्षेत्र है। द्रव्य की / वस्तु की क्षेत्र-भूमि है। आहाहा! उसमें ज्ञान आदि गुण है, वह शक्ति कूटस्थ है। यह शक्ति अनन्त हैं और अनन्त शक्ति की समय-समय में अवस्था पलटती रहती है; कूटस्थ नहीं—पर्याय पलटती है। द्रव्य-गुण कूटस्थ है। द्रव्य और शक्तियाँ कूटस्थ हैं। पर्याय पलटती है। पर्याय पलटती है, उसको क्रमवर्ती कहते हैं। क्रमे-क्रमे वर्तनेवाली दशा को क्रमवर्ती कहते हैं और एक साथ रहनेवाले गुण को अक्रम कहते हैं। ये अक्रमवर्ती और क्रमवर्ती (गुण)-पर्याय के समुदाय को आत्मा कहते हैं। भाई! सूक्ष्म बात है। समझ में आया ?

(यहाँ) कहते हैं कि क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती जो द्रव्य / वस्तु है, इसमें एक साथ रहनेवाली शक्तियाँ और समय-समय में बदलती दशा है। जब आत्मा का भान नहीं था तो अज्ञान था और भान हुआ तो ज्ञानदशा हुई। यह अवस्था पलट गयी। आत्मा का भान नहीं था, तब दुःख दशा थी और आत्मा का भान हुआ तो मैं सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण आनन्द परमात्मस्वरूप हूँ। आहाहा! ऐसी दृष्टि जब हुई तो दुःख की दशा पलटकर आनन्द की दशा हुई। समझ में आया ? तो यह दशा पलटती है, उसको पर्याय कहते हैं। आहाहा!

यहाँ अब यह कहते हैं कि अक्रमवर्ती शक्तियाँ और क्रमवर्ती पर्याय, उसका समुदाय, वह आत्मा है। न्याय समझते हो न? न्याय में 'नी' धातु है। 'नी' अर्थात् ज्ञानस्वरूप जैसी चीज़ हैं, उस ओर (ज्ञान) ले जाना, उसका नाम न्याय। न्याय में 'नी' धातु है। तुम्हारी वकालत के न्याय नहीं, हों! यह तो भगवान के घर के (न्याय है)। जैसी चीज़ है, उस ओर अपनी 'नी' धातु अर्थात् ज्ञान को ले जाना, उसका नाम न्याय (है)। तो यहाँ न्याय से ये बात सिद्ध करते हैं। भगवान! तेरी चीज़ को एक बार सुन तो सही। आहाहा! उस चीज़ को दृष्टि कभी तुझे हुई नहीं। क्योंकि जाने बिना दृष्टि कैसे हो ? जो चीज़ कैसी है, वह ज्ञान में आये बिना दृष्टि कहाँ से हो ? समझ में आया ? तो यह चीज़ में

अक्रमवर्ती और क्रमवर्ती—पर्याय क्रमे-क्रमे होनेवाली और शक्ति एक साथ रहनेवाली—ये दो का समुदाय, यह आत्मा है। समझ में आया ? भाषा तो सादी है, भगवान! भाव तो जो है, वह है। यह तो तीन लोक के नाथ की बात है। पहले उसको ज्ञान में सत्यता का निर्णय तो करना पड़ेगा या नहीं ? आहाहा!

ये कहते हैं। देखो! **आत्मद्रव्य**... यह इतनी व्याख्या की। **आत्मद्रव्य**... द्रव्य क्या ? कि अनन्त गुण और अनन्त पर्याय का पिण्ड, वह द्रव्य। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भगवान! ऐसी बात है।

अरे रे! ऐसा मनुष्यपना और उसमें जैनधर्म में अवतार (मिला)। और यह चीज़ न समझे तो इसके भव (भ्रमण) का अन्त नहीं आयेगा। आहाहा! चौरासी के अवतार करके (मर गया है)। अपनी चीज़ की महत्ता और कीमत का ख्याल नहीं करके, परचीज़ की कीमत और राग की कीमत और एक समय की पर्याय की कीमत करके, मिथ्यादृष्टि चार गति में भटकता है। समझ में आया ? आहाहा! समझ में आता है न, भाई ? हिन्दी में थोड़ा फेरफार आ जाए। तुम्हारी जैसी हिन्दी है, वैसी नहीं है। आहाहा!

आत्मद्रव्य... पहले यह आत्मद्रव्य की व्याख्या की। **आत्मद्रव्य**... शब्द है न ? यह भगवान आत्मा, वह द्रव्य। द्रव्य क्यों कहा ? कि जैसे जल में तरंग उठती है, जल में, वैसे भगवान आत्मा में (पर्याय उठती है)। 'द्रवति-द्रवति इति द्रव्यम्' पर्याय 'द्रवति'—पर्याय अन्दर से निकलती है। कान्तिभाई! अन्दर नज़र करनी पड़े। यह वीतराग का मार्ग अभी सुना नहीं। सम्प्रदाय में पड़े हैं,णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं (किया करे)। आहाहा! बापू! ये वस्तु क्या है ? अरिहन्त कौन हैं ? और उन्होंने तत्त्व कैसा जाना ? और कैसा कहा ? ये सब समझे बिना जैनपना है नहीं। जैन कोई सम्प्रदाय नहीं। जैसी चीज़ अनन्त गुण और पर्याय का पिण्ड है, ऐसी अन्तर में दृष्टि करने से मिथ्यात्व का नाश होता है। मिथ्यात्व का नाश होता है और सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होती है, उसका नाम जैन कहने में आता है। पोपटभाई! समझ में आया ?

आत्मद्रव्य... यह एक शब्द का इतना अर्थ हुआ। क्रम-अक्रम गुण और पर्याय के पिण्ड को आत्मद्रव्य कहते हैं। समझ में आया ?

वस्तु अन्दर भगवान आत्मा है। यह (शरीर) तो मिट्टी-धूल-जड़ है। अन्दर कर्म

भी जड़ है और अन्दर में पुण्य-पाप का भाव होता है, वह कृत्रिम-एक क्षण की अवस्था (होती है), वह भी परमार्थ से तो अचेतन है, यह चेतन की जात नहीं, आहाहा! और चेतन जो है, वह तो पुण्य-पाप के परिणाम से रहित, अनन्त शक्ति का संग्रहालय (है)। संग्रहालय —अनन्त शक्ति का संग्रह+आलय - संग्रह का स्थान है। आलय कहते हैं न? स्थान। आहाहा! भगवान आत्मा तो... अनन्त शक्तियों का संग्रहालय (है)। समझ में आया? एक शक्ति नहीं, अनन्त शक्तियाँ हैं। प्रभु! और एक-एक शक्ति में भी अनन्त ताकत है, आहाहा!

एक-एक शक्ति—गुण में अनन्त गुण का रूप है। थोड़ी सूक्ष्म बात आयी। आहाहा! क्या कहा? कि जैसे आत्मा ज्ञानस्वरूप है ज्ञान, और उसमें एक अस्तित्व नाम का—सत्ता—होनेपना का एक गुण है। अस्तित्व—'है' न? 'है' न? 'है' ऐसी एक शक्ति है और एक ज्ञानशक्ति है। ऐसी अनन्त शक्तियाँ (हैं)। एक ज्ञानशक्ति है, उसमें अस्तित्वगुण है, वह अस्तित्वगुण उसमें (ज्ञान में) नहीं। एक शक्ति में दूसरा गुण नहीं परन्तु एक शक्ति में दूसरी शक्ति का रूप है। अर्थात् भगवान आत्मा ज्ञान है। यहाँ जीवत्वशक्ति कहेंगे। जीवत्वशक्ति में तो अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य यह लेंगे। ऐसी जो आत्मा की जीवत्वशक्ति है, आहाहा! अरे! ऐसी व्याख्या; यह शक्ति में... अस्तित्व नाम का एक दूसरा गुण है। (उसका रूप है)। यह गुण है, तो वह आनन्द प्राण, ज्ञान प्राण में वह गुण नहीं आता, परन्तु गुण का रूप आता है। अर्थात् आत्मा ज्ञान 'है', आनन्द 'है', आनन्द है, ज्ञान है। तो यह 'है' नाम की शक्ति का रूप अन्दर में आया। आहाहा! सत्तागुण भिन्न रहा। वह तो निमित्त है। एक गुण में दूसरा गुण तो निमित्त है, सूक्ष्म बात है, भगवान! यह तो तीन लोक के, नाथ जिनेश्वर का पंथ—मार्ग है, भाई! आहाहा! समझ में आया?

तो कहते हैं, यहाँ एक जीवतरशक्ति कहेंगे जिसमें ज्ञान-दर्शन-आनन्द और वीर्य यह शक्ति से, जीवत्व—जीव जीता है। जीव का टिकना—रहना वह अपनी जीवत्वशक्ति के कारण से है। जीवत्वशक्ति पहले क्यों ली? कि समयसार की दूसरी गाथा में आया, **'जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिदो'** 'जीवों' यहाँ से उठाई है। पहली जीवतरशक्ति वहाँ से ली है। दूसरी गाथा है न? समयसार की दूसरी गाथा। पहली गाथा वह है **'वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते, वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं।१।'** कुन्दकुन्द आचार्य कहते हैं कि, मैं आत्मा की बात कहूँगा— **'सुदकेवलीभणिदं'** श्रुतकेवली

और केवलियों ने कही हुई बात हम तुम को कहेंगे। जिन भगवान को तीन काल का ज्ञान है, उन्होंने आत्मा कैसा कहा? वह तुमको कहेंगे। आहाहा! और ऐसा कहा कि हम भी हमारी पर्याय में पूर्ण सिद्ध भगवान जो अशरीरी हुए, इन अनन्त सिद्धों को हम अपनी पर्याय में स्थापन करते हैं और तुम्हारी—श्रोता की पर्याय में भी अनन्त सिद्धों को स्थापन करके हम समयसार कहेंगे, आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! क्या हो? मार्ग तो अभी गुम हो गया है, और कुछ का कुछ मान लिया है। आहाहा!

भगवान आत्मा जो अन्दर जीवतर शक्ति है। यह कहते हैं न? जीवन माने टिकना। किससे (टिकना)? अपने ज्ञान प्राण, आनन्द प्राण, दर्शन प्राण, वीर्य प्राण—ये अन्दर शक्तियाँ हैं। यह शक्ति के प्राण से जीवन जीता है। यह शरीर से जीता है या राग से जीता है, ऐसा नहीं। धन्नालालजी!

यहाँ कहते हैं कि जीवत्वशक्ति में चार प्राण—भावप्राण हैं। अन्दर में ज्ञान प्राण आया। ज्ञान में, अस्तित्वगुण है। यह गुण आया नहीं। परन्तु ज्ञान 'है' ऐसा आया, ऐसा अस्तित्व का रूप उसमें है। रूप अर्थात् अपनी शक्ति का स्वरूप आया। अस्तित्व नाम का ज्ञान में स्वरूप है। आहाहा! देवीलालजी! एक बार सुने तो सही, प्रभु! अरे! यह बात बापू! कोई साधारण नहीं। ये कहीं सुनने मिलती नहीं। आहाहा!

तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव आत्मा को ऐसा फरमाते हैं और ऐसा है कि, जिसमें अनन्त शक्तियाँ हैं। यह एक शक्ति दूसरी शक्तिरूप होती नहीं। नहीं तो अनन्त संख्या रह सकती नहीं। परन्तु एक शक्ति का रूप प्रत्येक में आता है। जीवतर शक्ति (अर्थात्) जीवन-जीवन। आत्मा का जीवन ज्ञान, दर्शन, आनन्द से है। दरबार! आहाहा! समझ में आया? उसका टिकना (वह) अपने ज्ञान-दर्शन-आनन्द से टिक रहा है। आयुष्य से टिक रहा है, शरीर में रहने की योग्यता से टिक रहा है, ऐसा है नहीं। ये टिक रहा है अपने ज्ञान, दर्शन, आनन्द, सत्ता, वीर्य उससे वह टिक रहा है। जीवत्वशक्ति। जीवन जीव की जीवन शक्ति। जीव की जीवन शक्ति—गुण-स्वभाव है। इस शक्ति में चार प्राण आधार (हैं)। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वीर्य—उसके जीवन के प्राण है। इसमें एक जो ज्ञान प्राण है। लोग कहते हैं न? कि दस प्राण से आत्मा जीता है। पाँच इन्द्रिय, मन-वचन-काया श्वास (आयु), ये तो जड़ के प्राण हैं। यह तो मिट्टी के प्राण हैं, प्रभु! और तेरी अशुद्ध पर्याय में

दस प्राण से जीवन है, वह भी तेरा वास्तविक जीवन नहीं। पाँच इन्द्रिय की योग्यता से, आयुष्य में रहने की योग्यता से, श्वास की योग्यता से जो रहा है, वह अशुद्ध प्राण की पर्याय है—वह तेरी चीज़ नहीं। आहाहा! तेरी चीज़ में वह गुण (भी) नहीं और तेरी चीज़ में उसकी पर्याय भी नहीं। आहाहा! रतनलालजी! यह तो बाल की खाल (उतारने की बात है)। हमारे रतनलालजी कहते थे। बात तो ऐसी है, भाई! आहाहा!

(यहाँ) कहते हैं कि, एक बार सुन तो (सही) प्रभु! तू कैसा है? कहाँ है? किस प्रकार से है? समझ में आया? ऐसा जाने बिना उसमें (स्वरूप में) दृष्टि होगी नहीं और दृष्टि हुए बिना सम्यग्दर्शन-सत्य दर्शन-जैसी सत्य वस्तु है, जैसा सत्य है, वैसा दर्शन कभी होगा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ दूसरा कहना है कि, **आत्मद्रव्य के कारणभूत...** आत्मद्रव्य के कारणभूत। है? **ऐसे चैतन्यमात्र भाव का धारण जिसका...** वह चैतन्यमात्र चेतना... चेतना... जानना-देखना, वह चेतनमात्र, ऐसा जो अपना भाव का धारण है। आहाहा! यह तो भाई! अध्यात्म शब्द है। यह कोई कथा-वार्ता नहीं है। यह तो एक-एक शब्द में कितनी गम्भीरता है (उसकी) खबर नहीं, आहाहा!

कहते हैं कि **आत्मद्रव्य...** वस्तु—भगवान, उसका कारणभूत। आत्मद्रव्य को टिकने का—जीवत्व—जीवन का, **कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्र भाव का धारण...** चैतन्य—जाणन—देखन स्वभाव, ऐसे भाव का (धारण करनेवाला है)। आत्मा भाववान है और चेतनमात्र उसका भाव है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है, बापू! कभी समझी नहीं, सुनी नहीं, आहाहा! अरे रे! जिन्दगी चली जाती है और देह छूटते ही कहाँ भवाब्धि—चौरासी के अवतार में चला जाएगा, भाई! वहाँ तेरी दया करनेवाला कोई नहीं है। वहाँ कोई पांजरापोल (पिंजरापोल=गौशाला) नहीं है कि चले। तेरी चीज़ शरण में है, उसकी तो तुझे खबर नहीं और तुझमें नहीं है, ऐसी चीज़ का तुझे बोध हुआ। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं प्रभु! एक बार सुन तो सही। यहाँ तो भगवान कहकर ही बुलाते हैं। आचार्य महाराज दिगम्बर सन्त, अमृतचन्द्र आचार्य ७२ गाथा में भगवान आत्मा (कहकर बुलाते हैं)। अरे! इसे कैसे बैठे? आहाहा! पामरता में पड़े हुए को प्रभुता कहने पर उसको

प्रभुता कैसे बैठे? आहाहा! यह आगे आयेगा। आत्मा में प्रभुत्व नाम की शक्ति है। सातवीं प्रभुत्व नाम की शक्ति है। यह पहली शक्ति का वर्णन है।

(यहाँ) कहते हैं कि जीवत्वशक्ति से आत्मा जीता है, टिकता है। तो जीवत्वशक्ति का, आत्मद्रव्य का कारण कौन? चैतन्यमात्रभाव (कारण) है। आहाहा! उसका कारण—धारण। चैतन्यमात्र आत्मद्रव्य का कारण—उसका धारण। यह तो वीतरागी बातें हैं, बापू! **जिसका लक्षण है...** क्या कहा? **आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्र भाव का धारण जिसका लक्षण है...** आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अरे! ऐसे तो अनन्त बार ११ अंग और ९ पूर्व के शास्त्र पढ़ लिये, उसमें क्या हुआ? आहाहा!

भगवान आत्मा—आत्मद्रव्य वस्तु, उसका टिकने का कारण, ऐसा चेतनमात्रभाव उसका धारण—आत्मा ने चेतनमात्रभाव को धारण किया है। आहाहा! उसने कभी राग और शरीर को धारण किया ही नहीं। समझ में आया? समझ में आये, उतना समझना, प्रभु! यह तो भगवान जिनेश्वरदेव की बात है, यह बात कहीं नहीं है। जिनेश्वर, त्रिलोकनाथ परमात्मा महाविदेह में तो विराजते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : यह आत्मविज्ञान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मविज्ञान है। विज्ञान का विज्ञान है। लोग विज्ञान कहते हैं न? ऐसे ले गये... वे सब। यह तो विज्ञान का विज्ञान है, प्रभु! तुमने कभी किया नहीं, तेरे ख्याल में कभी आया नहीं। भगवान आत्मा अनन्त शक्ति का पिण्ड है, वह तुझे ख्याल में कभी आया नहीं। तेरी कीमत तुमने की नहीं। समझ में आया?

आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्र भाव... यद्यपि चितिशक्ति बाद में कहेंगे। परन्तु इस जीवनशक्ति का चितिशक्ति लक्षण है। बाद में दूसरी चितिशक्ति कहेंगे। समझ में आया? परमार्थ से तो जीवनशक्ति ज्ञान, दर्शन, आनन्द प्राण है। प्राण अर्थात् उसकी जो शक्ति है, उसके टिकने के प्राण। त्रिकाल भगवान आत्मा ज्ञान से, आनन्द से, दर्शन से, वीर्य से (टिका हुआ है)। वीर्य अर्थात् यह शरीर की रेत नहीं। अन्दर वीर्य अर्थात् शक्ति आत्मबल—जो स्वरूप की रचना करे। ऐसा आत्मा में बल है। ऐसा ज्ञान, दर्शन, आनन्द और बल उसका धारण, आत्मद्रव्य का कारण, (ऐसा) चेतनमात्र भाव

(का) धारण (करना) है। आहाहा! अरे! प्रभु! ऐसी बात सुनने न मिले। वह कहाँ जाएगा? और कहाँ रहेगा? दया करो, व्रत करो, उपवास करो, भक्ति करो, पूजा करो, भाई! यह तो सब राग की क्रिया है। यह धर्म नहीं। भगवान! तुझे खबर नहीं, आहाहा!

यह भगवान आत्मा तो चेतनमात्र का धारण (करना) जिसका स्वरूप—लक्षण का अर्थ (स्वरूप) किया। आत्मपदार्थ, उसका कारण चैतन्यमात्र जिसका धारण, चेतनमात्र जिसका स्वरूप है। (उसने) इसको धारण किया है। साधारण में उपदेश चलता है, उससे अलग चीज़ है। समझ में आया?

मुमुक्षु : जीवत्वशक्ति अलग वस्तु है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जीवतरशक्ति की बात चलती है। आहाहा! हमको समयसार तो ७८ के वर्ष से मिला है। कितने वर्ष हुए? ५५ वर्ष हुए। हमें छोटी उम्र से यह धन्धा था दूसरा कुछ नहीं था। दुकान पर भी (वाँचन करता था) पिताजी की दुकान थी, हम तो वहाँ भी शास्त्र पढ़ते थे।

कहते हैं कि तेरे घर में क्या है, प्रभु? कि तेरे घर में तो जीवत्वशक्ति भरी है। आहाहा! समझ में आया? यह शक्ति कैसी है? कि चैतन्य लक्षण धारण करना जिसका स्वरूप, ऐसी जीवत्वशक्ति है। देखो! आहाहा! यह शक्तिवान जो शक्ति को धरनेवाला, यह एक शक्ति है ऐसी अनन्त शक्ति को धरनेवाला द्रव्य—वस्तु जो है, उस पर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। शक्ति (के भेद) ऊपर लक्ष्य करने से भी (सम्यग्दर्शन) नहीं (होता)। शक्ति तो गुण है। तो गुणी के गुण के भेददृष्टि से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता, आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, भाई!

यह जीवत्वशक्ति कोष्ठक में, **(आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्र-भावरूपी...)** यह भाव है न? वस्तु भाववान है और शक्ति है, वह भाव है। शक्कर है, वह भगवान और मिठास और सफेदाई है, उसका भाव है। वैसे भगवान आत्मा द्रव्य है, वह भाववान और जीवत्वशक्ति—ज्ञान-दर्शन प्राण उसका भाव है। अभी पर्याय की बात नहीं। आहाहा!

आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्रभावरूपी भावप्राण का धारण

करना... भाषा देखो! (चेतनमात्रभाव) भावप्राण है। जड़ पाँच इन्द्रिय, मन-वचन-काया, आयुष्य और श्वास ये दस, जड़ (प्राण है)। वह तो जड़ की दशा है। अपनी पर्याय में पाँच इन्द्रिय क्षयोपशमपने हो, वह भी अशुद्ध निश्चयनय से पर्याय में है। उसके द्रव्य में—गुण में यह है नहीं। आहाहा! वह जीवत्वशक्ति चैतन्यभावप्राण—आनन्द और ज्ञान में धरनेवाला, ऐसा शक्ति का धरनेवाला भगवान, उस पर दृष्टि करने से चेतन भावप्राण की परिणति-क्रमवर्ती दशा होती है। आहाहा! समझ में आया?

फिर से (लेते हैं)। वस्तु जो चेतनशक्तिवान है, उसकी चैतन्यशक्ति है। चेतन, यह द्रव्य है और उसकी शक्ति चैतन्य, चैतन्यशक्ति, वह भाव है और इस भाव को धरनेवाले भगवान ऊपर दृष्टि करने से पर्याय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय होती है। यह क्रमवर्ती होती है, आहाहा! उसकी भी तकरार, क्रमवर्ती की भी तकरार।

आज (अखबार में) आया है भाई! वह सन्मति संदेश आता है न? सन्मति संदेश नहीं। ज्ञानमति आर्यिका है न? उसमें आया है कि 'एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का नहीं करता है?! क्या है? एकान्त है। अरे! भगवन!

मुमुक्षु : यह तो स्पष्ट हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पहले से स्पष्ट करते हैं। 'क्या कर्म बिना आत्मा में विकार होता है? और तुम चार गति में भटकते हो तो क्या कर्म बिना भटकते हो?' अरे! आहाहा! अपनी भ्रान्ति और विकार से चार गति में भटकता है। 'कर्म बेचारे कौन?' वह तो धूल-मिट्टी-जड़-पर है। 'अपने को आप भूल के हैरान हो गया' अपनी चीज़ आनन्दकन्द प्रभु, सच्चिदानन्द, आनन्दस्वरूप है। सत् अर्थात् शाश्वत आनन्दस्वरूप, चिदानन्द ज्ञान—आनन्द (स्वरूप है) ऐसी चीज़ के भान बिना, उसकी कीमत किये बिना मिथ्याभ्रम में 'राग आदि मेरा है'। 'शरीर मेरा है'। 'पर्याय जितना मैं हूँ'—ऐसा मानकर, भ्रान्ति से चार गति में रुलता है। समझ में आया?

कहते हैं कि ज्ञानमात्र भाव आत्मा में **भावप्राण का धारण करना...** आहाहा! ज्ञान-जानना, दर्शन-देखना, आनन्द-सुखरूप दशा-सुखरूप दशा, सुखरूप शक्ति और वीर्य-बलशक्ति, उसका-भावप्राण का धारण करना, (वह) जीवत्वशक्ति का स्वरूप है।

ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसा है। कुछ समझ में नहीं आये, ऐसा नहीं है। ऐसी कोई चीज़ नहीं है। आहाहा! यह तो परमेश्वर (का) वीतराग का मार्ग है, बापू!

यह धूलधाणी है, शरीर और वाणी धूल-धाणी है। आहाहा! यह पैसा, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब सब मसान की चमक है। मसान का भपका। मसान समझते हो? श्मशान में जो हड्डी होती है न? उसमें फासफुस होता है। उससे चमक-चमक होती है। हम छोटे थे तब लड़के श्मशान में जायें तो उसे कहे कि, भूत लगता है। (वह) भूत नहीं, हड्डी में फासफुस होती है (उसकी चमक होती है)।

इसी प्रकार जगत में आत्मा के सिवा जगत की ये सभी (चीज़ें) फासफुस है। समझ में आया? आहाहा! यह पैसे, और बड़े बँगले महल और चालीस लाख का बँगला... है न अपने? पोपटभाई गये लगते हैं। गोवा में एक शान्तिलाल खुशाल है। उनकी बहिन की दो लड़कियाँ अपने यहाँ बालब्रह्मचारी हैं। यहाँ ६४ बालब्रह्मचारी बहिनें हैं न? उनमें दो लड़कियाँ उनकी बहिन की हैं। वह दो वर्ष पहले गुजर गया परन्तु उसके पास दो अरब चालीस करोड़ रुपये। क्या नन्दकुमार? दो अरब चालीस करोड़। दो सौ चालीस करोड़।

मुमुक्षु : बहुत वैभव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल का वैभव। मार डाला डेढ़ वर्ष पहले मुम्बई आया था। 'गोवा' में है, गोवा में चालीस लाख का तो रहने का बँगला है और दस-दस लाख के दूसरे दो बँगले हैं। साठ लाख के बँगले हैं। पूरी दुनिया में पैसेवाले हैं, उनमें वह तीसरे-चौथे नम्बर का पैसेवाला है। उनकी बहिन की लड़कियाँ यहाँ बालब्रह्मचारी है। उनके बहनोई पोपटभाई यहाँ आते हैं। पाँच मिनिट में गुजर गया। उसकी स्त्री को... क्या कहलाता है? हेमरेज हुआ था तो वह गाँव छोड़कर मुम्बई आये हुए थे। दो-चार दिन हुए और एकदम रात्रि में डेढ़ बजे उठे और कहा, मुझे दुखता है, ऐसा कहा। डॉक्टर को बुलाओ। डॉक्टर आये वहाँ... रवाना दूसरे भव में। आहाहा! कहाँ गयी तेरी धूल? चालीस लाख के और साठ लाख के बँगले और दो अरब चालीस करोड़। पोपटभाई! तुमने उन्हें देखा था? देखा था। यहाँ एक बार आये थे। पैसे बहुत थे, तब आये थे। फिर आने का भाव था, परन्तु आ नहीं सके। देह छूट गया। आहाहा! धूल में तेरी चीज़ है क्या? उसकी कीमत करता है,

प्रभु! ये अनन्त लक्ष्मी का पिण्ड प्रभु! अनन्त-अनन्त लक्ष्मी का—शक्ति का पिण्ड प्रभु, उसकी तो प्रतीति नहीं—कीमत नहीं और अज्ञानी को इस धूल की कीमत है। आहाहा! ये पैसेवाले हैं, और ये सेठ हैं। सेठ हैं कि हेठ हैं सब? धूल में भी सेठ नहीं, कौन कहता है सेठ?

यहाँ तो अनन्त आनन्द का नाथ, अनन्त शक्ति का भण्डार, उसकी जिसको प्रतीति और अनुभव हो, वह श्रेष्ठ और वह सेठ है। दरबार यहाँ तो ऐसी बात है, बापू! दुनिया से दूसरी जाति है। बहुत आदमी बाहर से आये हैं, सैकड़ों कोस दूर से आये हैं। थोड़ा सुने तो सही! यहाँ इतनी अनुकूलता—प्रतिकूलता हो। घर जैसी अनुकूलता यहाँ कहाँ से हो? तो भी बाहर से आये हैं न? सुने तो सही कि प्रभु! तेरी चीज़ क्या है? तूने कभी सुना भी नहीं और तेरी चीज़ की कीमत तुझे आयी नहीं। क्योंकि नज़र में वह चीज़ ली नहीं। वर्तमान नज़र में इन्द्रिय का विषय लक्ष्य में लिया। समझ में आया? भगवान आदि परद्रव्य है, उसे लक्ष्य में लिया। वह भी इन्द्रिय का विषय है।

समयसार की ३१ गाथा है, उसमें ऐसा लिया है, **'जो इन्द्रिय जिणित्ता'** थोड़ी सूक्ष्म बात है। जो इन्द्रिय को जीतते हैं, वह अनिन्द्रिय की कीमत करते हैं। अनीन्द्रिय भगवान आत्मा अनन्त शक्ति का पिण्ड प्रभु! (है)। इन्द्रिय के तीन प्रकार हैं। (१) जड़ इन्द्रियाँ। और (२) अन्दर भाव इन्द्रिय जो ज्ञान से पर जानने में आता है, ये भाव इन्द्रियाँ। और (३) ज्ञान में इन्द्रिय में जानने में आते हैं भगवान, स्त्री, कुटुम्ब ये सब इन्द्रिय हैं। तीन (प्रकार की) इन्द्रियाँ हैं। आहाहा! क्योंकि (ये सब) इन्द्रिय का विषय है। भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा भी इन्द्रिय का विषय है। अपना स्वरूप (है), वह अनीन्द्रिय का विषय है। समझ में आया? ३१ गाथा में ऐसा कहा **'जो इन्द्रिय जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणिद आदं'** जिसने द्रव्य इन्द्रिय, भाव इन्द्रिय और इन्द्रिय का विषय, तीन का लक्ष्य छोड़कर, ज्ञानस्वभाव से अधिक-भिन्न भरा है, भगवान आत्मा ज्ञान स्वभाव से पर से अधिक-भिन्न है, उसका अनुभव करे। (उसने) इन्द्रिय को जीत लिया और उसका नाम सम्यग्दृष्टि है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। देखो! है? **भावप्राण का धारण करना जिसका लक्षण है...** जीवत्वशक्ति के भाव तो ज्ञान, दर्शन, आनन्द ये प्राण है। प्राणी आत्मा का यह प्राण है।

आहाहा! भगवान आत्मा प्राणी, उसका आनन्द, ज्ञान, दर्शन आदि प्राण है। (इस) प्राण से उसका जीवन है। आहाहा! ऐसे प्राण से जीता है, प्राण से जी रहा है और जीयेगा, आहाहा! ऐसी बातें हैं! समझ में आया?

जीवत्वशक्ति जो है, वह अनन्त शक्ति में व्यापक है। यह क्या कहा समझे? जितनी अनन्त शक्तियाँ गुण हैं। शक्तियाँ कहो, गुण कहो, स्वभाव कहो, भाव कहो (सब एकार्थ है) तो एक भाव सर्व में व्यापक है। अनन्त में व्यापक है। आहाहा!

दो दिन पहले एक प्रश्न चला था। केशुभाई वढ़वाण के हैं बहुत वाँचन है। उन्हें दूसरे ने कहा, तुम निमित्त से कुछ नहीं होता, ऐसा मानते हो तो वहाँ (सोनगढ़) क्यों जाते हो? तो इन्होंने जवाब दिया कि निमित्त से नहीं होता, ऐसा दृढ़ करने जाते हैं। भाई! केशुभाई वढ़वाण ने हैं, नहीं? लड़के हैं। वजुभाई के समधी हैं।

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा... आहाहा! प्राप्त होता है, वह निमित्त से प्राप्त नहीं होता, ऐसा कहते हैं, आहाहा! भगवान की वाणी से भी प्राप्त नहीं होता। ऐसा परमात्मप्रकाश में है। दिव्यध्वनि से भी प्राप्त नहीं होता। (क्यों) कि दिव्यध्वनि पर है। उसका लक्ष्य छोड़कर अपने में लक्ष्य करता है, तब प्राप्त होता है। रमणीकलाल! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! भाग्यवान को तो सुनने मिले ऐसी चीज़ है। ये पैसेवाले भाग्यवान वह तो सब ठीक है। वे तो सब भांगशाली हैं, आहाहा! भाग्यशाली नहीं—भांगशाली है। यह (सुने, वह) वीतराग की बात—अन्तर के तत्त्व की सूक्ष्मता जिसे सुनने मिले—वह भाग्यशाली जीव है।

यहाँ कहते हैं कि **(चैतन्यमात्रभावरूपी भावप्राण का धारण करना जिसका लक्षण है, ऐसी जीवत्व नामक शक्ति ज्ञानमात्र भाव में...)** यह क्या कहते हैं? पहले से (आचार्य भगवान) ऐसा कहते आये हैं कि आत्मा 'ज्ञानमात्र' है। ऐसा कहते आये हैं। 'ज्ञानमात्र' कहते हैं तो एकान्त हो जाएगा। दूसरी अनन्त शक्तियाँ है न? भाई! सुन तो सही प्रभु! ज्ञानमात्र के साथ में—यह जीव ज्ञानस्वरूप है, ऐसी ज्ञान की पर्याय जब होती है तो उस पर्याय में साथ में अनन्त शक्तियाँ उछलती हैं। अनन्त शक्ति की पर्याय उसमें परिणमती है। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, प्रभु!

(धारण करना जिसका लक्षण है, ऐसी जीवत्व नामक शक्ति ज्ञानमात्र भाव में–आत्मा में उछलती है)। देखो! यह क्या कहा? सूक्ष्म है, जीवत्वशक्ति है (और) ज्ञान, दर्शन, आनन्द, प्राण, बलप्राण, ऐसी अनन्त शक्तियाँ हैं। हमने 'ज्ञानमात्र' आत्मा कहा तो आचार्य कहते हैं कि, उसमें 'ज्ञानमात्र' अकेला नहीं—परन्तु ज्ञानमात्र का जहाँ भान हुआ तो ज्ञान की परिणति के साथ में पर्याय में आनन्द आया। तो (उस) पर्याय में—ज्ञान की पर्याय में अनन्त शक्ति की पर्याय उछलती है। अनन्त शक्ति की पर्याय साथ में उत्पन्न होती है। समझ में आया? समझ में आये उतना समझो प्रभु! यह तो... आहाहा!

'सहेजे समुद्र उल्लस्यो, जेमां रतन तणांणा जाय। भाग्यवान कर वावरे, एनी मोतीए मुठीयुँ भराय' आहाहा! समुद्र उल्लस्यो छे, भगवान! अन्दर तेरा अनन्त गुण का समुद्र उमड़ पड़ा है। इसमें 'ज्ञानमात्र' कहा था तो ज्ञानमात्र में एकान्त हो जाता है, ऐसा तुझे लगे, तो ऐसा है नहीं। आत्मा ज्ञानमात्र है, ऐसी जहाँ दृष्टि—अनुभव हुआ तो ज्ञान की पर्याय के साथ अनन्त गुण की पर्याय साथ में उछलती है। आहाहा!

मुमुक्षु : अनन्त गुण की पर्याय जानने में आती हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : जानने में आती है और परिणमन में आती है। जानने में तो परिणमन है इतना है। अनन्त गुण की पर्याय ज्ञानमात्र की पर्याय के साथ में है। समझ में आया? मलिन (पर्याय की बात) यहाँ नहीं है।

यह तो शक्ति का वर्णन है तो द्रव्यस्वरूप, उसकी शक्तियाँ, निर्मलपने परिणमे, उसे यहाँ पर्याय लेना है। मलिनपने परिणमे, यह बात यहाँ नहीं है। यह क्या कहा? कि शक्ति है, यह शुद्ध है और भगवान भी शुद्धता धरनेवाला शुद्ध है, तो उसकी दृष्टि करने से पर्याय भी शुद्ध होती है। पवित्र सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय को यहाँ क्रमवर्ती पर्याय में लिया है। राग होता है, वह उसको क्रमवर्ती पर्याय में गिनने में नहीं लिया है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २, शक्ति-१, शुक्रवार, श्रावण कृष्ण १३, दिनांक १२-०८-१९७७

यह समयसार चलता है। उसमें शक्ति का अधिकार चलता है। शक्ति का अर्थ क्या? आत्मा जो वस्तु है, आत्म पदार्थ है, उसमें गुण है, गुण। जैसे शक्कर पदार्थ है, उसमें मिठास-सफेदाई शक्ति है। वैसे आत्मद्रव्य है, वह वस्तु है और इसमें यह जीवत्वशक्ति आदि शक्तियाँ ये गुण हैं। प्रश्न तो यह चलता है कि अभी तक ऐसा कहा कि आत्मा ज्ञानमात्र है, ऐसा कहते आये हैं। समझ में आया? वह शरीर नहीं, वाणी नहीं, मन नहीं, पुण्य-पापरूप भी नहीं और एक समय की पर्यायमात्र भी नहीं। सूक्ष्म बात है। समझ में आया? भगवान आत्मा सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव जैसा देखा है और जैसा है, वैसा कहते हैं। तो कहते हैं कि 'ज्ञानमात्र आत्मा'—ऐसा कहते आये हैं तो इसमें एकान्त नहीं हो जाता? क्या कहा? तो दूसरे गुण हैं नहीं, ऐसा हो जाए। तुम तो ज्ञानमात्र भगवान आत्मा की दृष्टि करो तुम्हें आनन्द आयेगा और उसका नाम धर्म है, ऐसा आपने कहा। तो उसमें तो ज्ञानमात्र एक ही गुण आया। एक ही गुण आया (और) अनन्त गुण तो आये नहीं। आहाहा! समझ में आया? उसमें तो एकान्त हो जाता है। (यहाँ) अनेकान्त की चर्चा करते हुए शक्ति का वर्णन करते हैं। बात तो ऐसी है, भगवान! क्या करें? अभी तो फेरफार हो गया तो सत्य बात कहें, उसमें 'चोर कोटवाल को दण्डते हैं' ऐसी बात हो गयी। आहाहा! क्या करें? उसे ये चीज़ हाथ में आयी नहीं।

यहाँ कहते हैं, आया न? **आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्र भाव का धारण जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है, ऐसी जीवत्वशक्ति** आत्मा में है। आत्मा में जीवत्वशक्ति है तो इसके चार बोल मुख्यरूप से लिये। ज्ञानप्राण, दर्शनप्राण, आनन्दप्राण (और) वीर्यप्राण, (सब) त्रिकाली हैं। इस त्रिकाली जीवत्वशक्ति में भावप्राण धारण करने की उसकी शक्ति है। आहाहा! समझ में आया? यह पुण्य-पाप का धारण करना उसकी शक्ति में नहीं है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति आदि शुभभाव हो परन्तु उसे धारण करना, वह शक्ति का स्वभाव नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात भगवान! यह तो परमात्मा जिनेश्वर की वाणी है।

(यहाँ) कहते हैं कि हमने ज्ञानमात्र आत्मा जो कहा—तो द्रव्यस्वभाव में ज्ञानमात्र

के कारण दृष्टि ज्ञान ऊपर गयी। वर्तमान पर्याय जो पर को देखती है, वह तो विपरीत दशा है। यह ज्ञान की पर्याय अपने (स्वयं को) देखने में जाती है। आहाहा! ऐई! धन्नालालजी!

भगवान आत्मा! द्रव्य-वस्तु (और) जीवत्वशक्ति, यह गुण-वस्तु और उस द्रव्य पर दृष्टि जब होती है, द्रव्य पर दृष्टि पड़ती है, तो पर्याय में इस जीवत्वशक्ति का परिणमन आता है। जीवत्वशक्ति जो त्रिकाल है, ज्ञान, दर्शन, आनन्द प्राण को धरनेवाली शक्ति, यह गुण है परन्तु वह द्रव्य त्रिकाली है, उसकी शक्ति (त्रिकाली) है और वह वर्तमान पर्याय त्रिकाली द्रव्य को जब पकड़ती है, तब जीवत्वशक्ति का तीन रूप हो जाते हैं। सूक्ष्म बात है, भगवान! यह जीवत्वशक्ति द्रव्य में भी व्यापक है, गुण में भी व्यापक है और पर्याय में भी व्यापक हो जाती है। आहाहा! धीरे से समझने की चीज़ है, बापू! यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वर का कथन बहुत सूक्ष्म है और अपूर्व बात है। कभी उसने किया ही नहीं।

जो ज्ञान की वर्तमान दशा है, (वह) जिसकी है, उसको देखती नहीं और जो पर्याय जिसकी नहीं, उसको देखती है। वह तो विपरीत दृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? तो कहते हैं कि जब ज्ञान की पर्याय—अवस्था जीवत्वशक्ति को धरनेवाला जीव-आत्मा, उस पर जब दृष्टि पड़ती है, तो जीवत्वशक्ति तीन रूप परिणमन करती है। समझ में आया? (शक्ति) द्रव्य में रहती है, गुण में रहती है और पर्याय में (रहती है)। क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती गुण-पर्याय का पिण्ड, वह आत्मा—ऐसा कहना है। सब बात सूक्ष्म है, भगवान! नन्दकिशोरजी! किसी समय आते हैं न, इसलिए याद नहीं रहता। आहाहा!

कहते हैं, आहाहा! भजन में आता है। नहीं? 'नन्दन' आता है। भूल गये पहले तो धारणा बहुत थी। हम तो दुकान पर (पढ़ते थे) १६-१७-१८ वर्ष की उम्र में। 'नन्दलाल नहि रे आवुं रे घरकाम छे' अन्यमति में ऐसा आता है। यह अपने वहाँ आकड़िया में गाया था। आकड़िया (में) जब प्रतिष्ठा हुई थी न? तब किसान आदि पूरा गाँव पंच कल्याणक प्रतिष्ठा में आया था। वहाँ गाया था। 'नन्दलाल नहिं रे आऊँ रे घरकाय छे।' श्रीकृष्ण को नन्दलाल कहते हैं। श्रीकृष्ण की जो सखी थी, वह ऐसा कहती थी कि 'नन्दलाल नहीं रे तेरे पास नहीं आवुं, घर में काम है' वैसे ये 'नन्दलाल नहीं रे आवुं रे, घर काम छे' पर्याय में ऐसी मान्यता अनादि से है कि घर में (स्व में) नहीं जाकर पर में जाती है। नन्दकिशोरजी!

यह पंचसंग्रह में बहुत लिया है। '(अध्यात्म) पंचसंग्रह' है न? अध्यात्म पंचसंग्रह, दीपचन्दजी का किया हुआ (है)। उसमें 'ज्ञानदर्पण' है। उसमें ये बात बहुत ली है, बहुत ली है। शक्ति का वर्णन जो विशेष हुआ तो एक दीपचन्दजी ने किया है, थोड़ा समयसार नाटक में पीछे आता है। किन्तु उन्होंने 'ज्ञानदर्पण' में अन्तिम में एक सवैया है, उसमें स्पष्ट किया है। 'अध्यात्म पंचसंग्रह' नाम का ग्रन्थ है। पंचसंग्रह है, इसमें पाँच ग्रन्थ हैं। उसमें ऐसा लिया है। शक्ति का वर्णन बहुत किया है, दूसरे किसी ने ऐसा किया नहीं। चिद्विलास में और पंचसंग्रह में जीवत्व नाम की शक्ति का वर्णन भी बहुत किया है। दीपचन्दजी समकिती थे, आत्मज्ञानी थे। वे ऐसा कहते हैं कि 'मैं साधर्मी हूँ' दीपचन्दजी साधर्मीकृत ऐसा मैं कहता हूँ। भगवान! तुम्हारा तो मैं साधर्मी हूँ। ऐसा कहते हैं। तुम्हारा द्रव्यस्वभाव, यह मेरा साधर्मी है। पर्याय में भूल है, उसे एक ओर रखो। तुम्हारा द्रव्य जो है वस्तु भगवान परिपूर्ण आनन्दस्वरूप है, उस अपेक्षा से मैं भी द्रव्य हूँ और तुम भी द्रव्य हो, तो तुम मेरे साधर्मी हो। समझ में आया?

उसमें जीवनशक्ति का वर्णन करते (हैं) इसमें ऐसा लिया कि जीवनशक्ति जो पहली है, वह सारे जगत को स्पर्श करनेवाली है। समझ में आया? यह जीवनशक्ति ज्ञान, दर्शन, आनन्द, बल के प्राण को धरनेवाली—ऐसी शक्ति और शक्तिवान, ऐसा भेद भी छोड़कर, आहाहा! यह जीवनशक्ति और जीवद्रव्य शक्तिवान—ऐसा शक्ति और शक्तिवान की भेददृष्टि भी छोड़कर ज्ञानचन्दजी! यह भगवान पूर्णानन्द जीवत्वशक्ति आदि अनन्त शक्ति का धरनेवाला एकरूप ज्ञायक है। इस ज्ञायक पर दृष्टि देने से—ज्ञानभाव की परिणति जब होती है, ऐसा कहा कि ज्ञानमात्र आत्मा है, तो ज्ञानमात्र की सम्यग्ज्ञान पर्याय आनन्दसहित हुई। तो इस ज्ञान की पर्याय में—उत्पत्ति में अनन्त गुण की पर्याय साथ में उछलती है। अन्दर है देखो।

आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्रभावरूपी भावप्राण का धारण करना जिसका लक्षण है... यह तो अध्यात्मवार्ता है, भगवान! कोई कथा-वार्ता नहीं है। यहाँ तो वीतरागी सन्तों, दिगम्बर मुनियों, वीतरागी मुनियों अतीन्द्रिय आनन्द के झूले में झूलनेवाले, उनको विकल्प आया और यह शास्त्र बन गया। आहाहा! उन्हें कोई दुनिया की पड़ी नहीं थी। परन्तु ऐसा टीका करने का विकल्प बारम्बार आता है।

नियमसार में पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं कि मुझे बारम्बार विकल्प आता है तो टीका हो गयी। मेरे मन में ऐसा आता है कि नियमसार की स्पष्टता हो, ऐसा विकल्प आता है तो यह शास्त्र बन जाता है। समझ में आया? (मुनिराज) इस विकल्प के भी स्वामी नहीं। विकल्प के भी स्वामी नहीं। वह तो जीवत्वशक्ति का धरनेवाला भगवान, आहाहा! उस पर दृष्टि देने से जीवत्वशक्ति का पर्याय में / उत्पाद-व्यय में जीवत्वशक्ति का परिणमन होता है, तो ज्ञान, आनन्द, शान्ति, बल की पर्याय ज्ञानमात्र पर्याय (के) साथ परिणम उछलती है। उछलती का अर्थ उसमें उत्पन्न होती है। यह सूक्ष्म बात है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है।

एक शक्ति द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्यापती है। कैसे? कि जो जीवत्वशक्ति है ज्ञान, दर्शन अतीन्द्रिय आनन्द और वीर्य प्राण जिसका—ऐसी शक्ति का धरनेवाला आत्मा (है)। आहाहा! उस पर दृष्टि पड़ने से ज्ञान की पर्याय में उस अपनी चीज़ को ज्ञेय बनाकर (परिणमन करती है)। आहाहा! पर्याय में—ज्ञान की पर्याय में (ज्ञेय बनाकर) भगवान! मार्ग बहुत सूक्ष्म है। अपनी ज्ञान की पर्याय व्यक्त-प्रगट है।

समयसार की १७-१८ गाथा में भगवान कहते हैं, निश्चय से तो ऐसा स्वभाव है—पर्याय में द्रव्य ही जानने में आता है। पर्याय का स्वभाव स्वपरप्रकाशक है। अज्ञानी की पर्याय में भी स्वपरप्रकाशक स्वभाव है। तो पर्याय में द्रव्य का ही ज्ञेयरूप ज्ञान होता है, आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! मार्ग बहुत अलग भाई!

यह चौरासी के अवतार में से निकलना (आसान नहीं है)। आहाहा! बाहर में तो दुःख, दुःख है। आहाहा! शरीर को देखो तो मिट्टी-धूल है, पैसा देखो तो मिट्टी-धूल है। उसको देखने जाते हैं तो सामान्यरूप से अशुद्धता उत्पन्न होती है और अपने को अपनी पर्याय देखने जाती है तो शुद्धता उत्पन्न होती है। समझ में आया? वर्तमान में तो बहुत गड़बड़ हो गयी है कि ऐसी वस्तु यह क्या कहते हैं? अरे रे! समझ में आया? भाई! मार्ग तो ऐसा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : आपने नया धर्म निकाला है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नया धर्म नहीं, अनादि का (मार्ग) है। बिल्ली का बच्चा..

बिल्ली होती है न? उसका बच्चा होता है न? वह बच्चा आसपास के परिचय में आ जाता है, तो बिल्ली सात दिन में बच्चे का स्थान बदल देती है। दूसरे स्थान में ले जाती है। हेतु तो ये है कि दूसरे के परिचय में अधिक आवे तो गड़बड़ करे, इसलिए सात दिन पश्चात् अन्यत्र ले जाती है। अभी आँख खुली न हो। इस प्रकार सात दिन सात तरफ की दिशा बदलती है और तब उसकी ऐसे आँख खुलती है। आँख खुलती है तब देखे, ओहो! ये जगत है? तो जब तुम देखता नहीं था, तब भी जगत तो था।

छोटी उम्र में यह बिल्ली देखा है। सब देखा है। उमराला-छोटा गाँव—पाँच हजार की बस्ती। वहाँ जन्म हुआ, वहाँ १३ वर्ष रहे और ९ वर्ष पालेज दुकान पर रहे। भरुच और वडोदरा के बीच में है। हमारे हैं न? आया है न, भाई? कहाँ गया मनसुख? बुआ का पुत्र भागीदार था, उनका पुत्र है। वह दुकान चलाता है। कुँवरजीभाई बुआ के पुत्र थे, उनके पुत्र हैं। वे तो गुजर गये, यहाँ तो ८८ वर्ष हुए। ६४ तो दीक्षा लिये हुए। साढ़े तेईस वर्ष तो वहाँ रहे और दुकान पर नौ वर्ष रहे। मैंने पाँच वर्ष दुकान चलायी। पालेज में दुकान चलती है। गृहस्थ हैं, तीन भाई हैं। लाख-लाख की आमदनी है। बड़ा लड़का आया है। वह सब धूल-धाणी—पाप का धन्धा है। आहाहा! दुकान ५ वर्ष चलायी। वह सब धूल-धाणी, सारा पाप का धन्धा है।

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं कि तेरी चीज़ में जीवत्व नाम की शक्ति अर्थात् गुण अर्थात् सत् का सत्त्व, सत् का सत्व सत् द्रव्य का कस है। जीवत्वशक्ति ये कस है। आहाहा! उस पर जब तेरी दृष्टि पड़े। शक्ति और शक्तिवान का भी भेद छोड़कर, शक्तिवान जो आत्मा है—ज्ञायकभाव (उस) पर दृष्टि करने से जीवत्वशक्ति तीन में व्यापक हो जाती है। द्रव्य में जीवत्वशक्ति, गुण में जीवत्वशक्ति और पर्याय में जीवत्वशक्ति प्राप्त होती है। तो उसमें प्राप्त क्या होता है? आनन्द, ज्ञान, शान्ति आदि अनन्त गुण की पर्याय की प्राप्ति (होती) है। (उस) जीवत्वशक्ति की पर्याय के साथ अनन्त गुण की पर्याय उत्पन्न होती है, समझ में आया? भाषा तो सादी है, भगवान! भाषा कठिन नहीं है। भाव तो गहरे हैं।

वीतराग के सिवाय ऐसी चीज़ तो अन्यत्र कहीं है नहीं। जैन परमात्मा (के) सिवा ऐसा मार्ग कहीं है नहीं, आहाहा! वेदान्त आदि ने आत्मा की बात उपनिषद में बहुत की

है, परन्तु ये चीज़ नहीं। समझ में आया? श्वेताम्बर ने बात की है, परन्तु श्वेताम्बर में भी ये चीज़ नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, भगवान! हमने तो करोड़ों श्लोक देखे हैं। श्वेताम्बर में ४५ वर्ष निकाले हैं न! ४३ वर्ष यहाँ हुए। ४५ और ४३, ८८ वर्ष हुए। करोड़ों श्लोक देखे हैं परन्तु ये चीज़ नहीं। ये चीज़ तो दिगम्बर सन्तों के सिवा और कहीं है नहीं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि जीवत्वशक्ति को धरनेवाला भगवान (है)। यहाँ तो आत्मा को भगवान कहते हैं। क्योंकि भग अर्थात् लक्ष्मी, ज्ञान और आनन्द की लक्ष्मी, वान अर्थात् लक्ष्मी का स्वरूप उसका है। समझ में आया? जीवत्वशक्ति भी लक्ष्मी है। यह आत्मा का स्वरूप है। यह जीवत्वशक्ति का धरनेवाला भगवान, उस पर पर्याय की दृष्टि वहाँ जाती है, तो पर्याय में आनन्द की, ज्ञान की, शान्ति की पर्याय उत्पन्न होती है और वह जीवत्वशक्ति द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्याप्त हुई है। आहाहा!

यह जीवत्वशक्ति में ध्रुव उपादान और क्षणिक उपादान दोनों आ जाते हैं। त्रिकाली जीवत्वशक्ति ध्रुव उपादान है और पर्याय में परिणमन हुआ—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रादि पर्याय हुई, (वह) क्षणिक उपादान है और अपने में उस क्षणिक उपादान का परिणमन, निर्मल पर्याय हुई तो उसमें व्यवहार का अभाव है। यह अनेकान्त है। इस शक्ति के परिणमन में व्यवहार का भाव आता ही नहीं। सूक्ष्म (बात) है, भगवान! जो आत्मा की जीवत्वशक्ति है—गुणस्वभाव—उसका द्रव्य पर दृष्टि होने से जब परिणमन होता है, तो पर्याय में निर्मल ज्ञान, निर्मल दर्शन, निर्मल आनन्द, शान्ति, प्रभुता, स्वच्छता ऐसी अनन्त गुण की पर्याय की निर्मलता प्रगट होती है। उसका नाम धर्म और उसका नाम मोक्ष का मार्ग। उस मार्ग में व्यवहार का अभाव है, वह अनेकान्त है। शक्ति के परिणमन में अशुद्धता आती नहीं। क्योंकि शक्ति पवित्र और शुद्ध है तो शक्ति का परिणमन शुद्ध होता है—अशुद्ध नहीं। अशुद्धता तो पर्यायदृष्टि के लक्ष्य से होती है। वह दृष्टि तो छूट गयी। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा समझो, आहाहा! मार्ग ऐसा है।

वस्तु ज्ञायकभाव —ज्ञानमात्रभाव, ऐसा आत्मा को कहा, तो ज्ञानभाव के साथ में अनन्त शक्ति है। एक ज्ञान ही है, ऐसा नहीं। उसका नाम अनेकान्त है और उसकी

जीवत्वशक्ति की ज्ञान परिणति जब होती है, तब निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि अनन्त गुण की निर्मल पर्याय साथ में उत्पन्न होती है। राग का उसमें अभाव है, व्यवहार का उसमें अभाव है, उसका नाम अनेकान्त है। व्यवहार से निश्चय होता है, वह बात तो वस्तु में तीन काल में है नहीं। कठिन बात है, भगवान! माँगीलालजी! आहाहा! क्या कहते हैं?

पहले बोल उतारे थे। पहले जब शक्ति पढ़ी थी, (तब) उसमें यह उतारे थे। २१ बोल उतारे थे। एक-एक शक्ति पर २१ बोल। एक शक्ति पर २१ बोल (उतारे थे)। तुम्हें देखना है? ज्ञानचन्दजी! देखो तो सही। फिर दे देना। ज्ञानचन्दजी! हैं? इस शक्ति पर २१ बोल उतारे हैं। पहली शक्ति है न? अनेकान्त को अब विशेष चर्चते हैं। है? ऊपर से।

(१) क्रमरूप और अक्रमरूप अनन्त धर्मसमूह जो कुछ जितना लक्षित होता है, वह वास्तव में एक आत्मा है। आहाहा! आत्मा में जो अनन्त गुण अक्रम है—एक साथ रहनेवाले हैं और पर्याय क्रम-क्रम से होती है, यह क्रम और अक्रम का समुदाय, यह आत्मा है। इसमें पहला आया है। समझ में आया? यह एक बोल।

(२ बोल—) ज्ञानमात्र एक भाव में अन्तःपातिनी अनन्त शक्तियाँ उछलती हैं। जहाँ आत्मा का ज्ञानमात्र ऐसा अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ-त्रिकाली पर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान जहाँ हुआ तो उसके साथ अनन्त शक्ति की पर्याय भी परिणमन में उछलती है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! है, भाई! ज्ञानचन्दजी! उपदेश में अभी बड़े हैं, इनकी योग्यता है न? है दूसरा बोल? ज्ञानमात्र एक भाव में अन्तःपातिनी, ज्ञानमात्र भले ही हमने कहा। परन्तु जहाँ द्रव्य पर दृष्टि होने से ज्ञानमात्र की पर्याय हुई, तो उसमें अनन्त शक्ति उछलती है। अनन्त शक्ति एक समय में पर्याय में उत्पन्न होती है।

(३ बोल) क्रमवर्ती और अक्रमवर्तीरूप वर्तन जिसका लक्षण है। द्रव्य का लक्षण यह है। अक्रमवर्ती अनन्त गुण और क्रमवर्तीरूप उसकी पर्याय लक्षण है।

(४) एक-एक शक्ति अनन्त (शक्ति में) व्यापक है। एक-एक शक्ति अनन्त (शक्ति में) प्रसरी है। एक शक्ति (का) क्षेत्र भिन्न है और दूसरी शक्ति का क्षेत्र भिन्न है, ऐसा है नहीं। आहाहा! व्यापक है, इतना कहना है। रूप है, (वह) बाद में आयेगा।

(५) एक शक्ति अनन्त में निमित्त है। एक-एक शक्ति दूसरे गुण को निमित्त है। दूसरा गुण कारण है और एक गुण कार्य है, ऐसा भी कहने में आता है। निमित्त से कहने में आता है। समझ में आया? दीपचन्दजी ने यह सब स्पष्टीकरण किया है। (एक) गुण कारण—दूसरा गुण कार्य। और वही गुण कारण—वही गुण कार्य। सूक्ष्म बात, भाई! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म है।

लोगों को बाह्य क्रियाकाण्ड में रोका और मूल चीज़ रह गयी। पंच महाव्रत और मुनिपना अनन्त बार लिया। उसमें आया न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो' ऐसी तो द्रव्यलिंगी की क्रिया तो अनन्त बार की। वह तो पर की क्रिया राग की है—इसमें धर्म-बर्म नहीं। आहाहा! वह तो शुभभाव है। धर्म से विरुद्ध भाव है। और मीठी भाषा में कहें तो शुभभाव अधर्म है।

जब अपने में एक शक्ति का परिणमन अनन्त के साथ में हुआ, तो इसमें अनन्त शक्ति साथ में परिणमती है और एक शक्ति दूसरे में निमित्त कहने में आती है। निमित्त का अर्थ कि, एक स्थिति है, दूसरे गुण में दूसरा गुण (निमित्त है)। एक-एक गुण में दूसरा-दूसरा गुण निमित्त कहने में आता है। उपादान तो अपना गुण है। सूक्ष्म है।

(६) एक शक्ति द्रव्य-गुण-पर्याय में व्यापती है। अभी कहा वह।

(७) एक शक्ति में ध्रुव उपादान और क्षणिक उपादान है। आहाहा! यह तो समुद्र है। आत्मा में जीवत्वशक्ति है। त्रिकाली है, वह ध्रुव उपादान है और उसका शुद्ध-शुद्ध परिणमन होता है। द्रव्य पर दृष्टि होने से सम्यग्दर्शन आदि जो पर्याय उत्पन्न होती है, वह पर्याय क्षणिक उपादान है। राग-विकार क्षणिक उपादान, वह यहाँ नहीं। यहाँ तो शक्ति शुद्ध है, उसका वर्णन है तो उसका परिणमन शुद्ध ही है। आहाहा!

प्रवचनसार में जहाँ ४७ नय चले हैं, वहाँ लिया है। क्योंकि वहाँ ज्ञानप्रधान कथन है। आत्मा में सम्यग्दर्शन, ज्ञान की परिणति हुई, इतनी तो शुद्धता है। और जितना राग रहा और राग का परिणमन है, इतना वहाँ कर्तापना है। करनेयोग्य है, उस अपेक्षा से (कर्तापना) नहीं। परन्तु राग का परिणमन है, तो कर्ता है, ऐसा ४७ नय में लिया है। गम्भीर बातें हैं, बापू!

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा में आनन्दस्वरूप है और जीवत्वशक्ति के आधारभूत द्रव्य (की) जब दृष्टि होती है, तो आनन्द की पर्याय उत्पन्न होती है, उसमें दु:ख की पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐसी बातें (हैं), भाई!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : किस अपेक्षा से? यहाँ दृष्टि का विषय लिया है। शक्ति है, यह तो स्वभाव है। स्वभाव का धरनेवाला स्वभाववान है। इस दृष्टि अपेक्षा से यह है, और जहाँ ज्ञानप्रधान कथन में, दृष्टि के साथ ज्ञान हुआ तो पर्याय में जितना राग है, उसका कर्ता वह पर्याय है, भोक्ता भी पर्याय है। ऐसा लेते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : हमें क्या मानना?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों मानना। आहाहा! क्यों दोनों मानना? कि यहाँ समयसार में शक्ति की प्रधानता से वर्णन है। तो यह द्रव्य के गुण की प्रधानता से वर्णन है; गुण है, उसका परिणमन होता है, वह अशुद्ध होता ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! नन्दकिशोरजी! सूक्ष्म बात है, भाई! परन्तु जब (तक) उसमें परिणति—साधक है, तब तक बाधक राग का परिणमन भी है। मुनि को भी है। यह ज्ञान जानता है क्योंकि ज्ञान (का) स्वपरप्रकाशक स्वभाव है और दृष्टि का स्वभाव तो निर्विकल्पदृष्टि है, तो उसका विषय निर्विकल्प एक ही चीज़ है। क्या कहा? समझ में आया?

सम्यग्दर्शन है, वह निर्विकल्प वस्तु है और उसका विषय भी अभेद और निर्विकल्प है और ज्ञान का स्वभाव स्वपरप्रकाशक है, तो राग (का) जितना परिणमन होता है, वह मेरे से हुआ, मेरे में हुआ, ऐसा ज्ञान जानता है। आहाहा! यह सब सीखने कहाँ जाए? बहुत बात है, बापू! यहाँ तो सैकड़ों बार बातें हो गई हैं। यह समयसार तो १८वीं बार चलता है। १७ बार तो एक-एक अक्षर का (अर्थ हो गया है)। सत्रह समझे? दस और सात। सभा में व्याख्यान हो गया है। दूसरे कोई गद्दी पर बैठे हो तो यह दूसरा शास्त्र पढ़ते थे। छोटी उम्र से अठारह वर्ष की उम्र से। यह १८वीं बार चलता है। शक्ति का (वर्णन) तो १९वीं बार चलता है। आहाहा! यह तो भगवान का (मार्ग है)। आहाहा!

श्रीमद् कहते हैं श्रीमद्,

'जे स्वरूप समज्या विना, पाम्यो दु:ख अनन्त;
समजाव्युं ते पद नमुं, श्री सद्गुरु भगवंत।'
'रे गुणवंता रे ज्ञानी, अमृत वरस्या रे पंचमकाळमां'

आहाहा! **जे स्वरूप समज्या विना**... समझे बिना अनन्त काल गया। जो स्वरूप समझे बिना काल गया अनन्त। वह स्वरूप समझा, आहाहा! **समजाव्युं ते पद नमुं,**... ऐसी चीज़ की अनुभवदृष्टि हुई। **गुणवंता रे ज्ञानी, अमृत वरस्या रे पंचमकाळमां**... नन्दकिशोर! भगवान! यहाँ तो बात ऐसी है। पूरी दुनिया की जानते हैं।

यहाँ तो १८ वर्ष की उम्र से शास्त्र पढ़ते हैं। शास्त्र का बहुत अभ्यास (किया)। ७० वर्ष पहले की बात है। यह तो ८८ हुआ। दुकान पर हम बहुत शास्त्र पढ़ते थे। दूसरा कोई कुछ कहे नहीं। हमको सब भगत कहते थे। यह भगत है। मनसुख! तेरा पिता ऐसा कहता था। हमारे... भाई ऐसा कहते—यह तो भगत है, भगत। भगत शास्त्र लेकर बैठे। दुकान पर-पेढी में। दूसरा कोई गद्दी पर बैठे हो तो हम दूसरा शास्त्र पढ़ते थे। छोटी उम्र से अठारह वर्ष की उम्र से। श्वेताम्बर के सब शास्त्र देखे हैं। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारंग, सुयगडांग, अध्यात्म कल्पद्रुम, ऐसे बहुत पुस्तक पहले से देखे हैं। आहाहा! परन्तु जब ७८ की साल में समयसार हाथ आया और पूर्व का संस्कार था, समझ में आया? ऐसा हो गया और बाहर में ऐसा कहा **भगवन्त! समयसार तो अशरीरी होने की पुस्तक है।** जिसको सिद्ध होना है, (उसके लिये) यह पुस्तक है। बाकी चार गति में भटकना, स्वर्ग आदि भव करना, ऐसा उसमें है नहीं। समझ में आया?

यहाँ ये कहते हैं, आया न? ध्रुव उपादान। (८) एक-एक शक्ति में व्यवहार का अभाव है, यह अनेकान्त है। यह क्या कहते हैं? बहुत गम्भीर है। जीवत्वशक्ति को धरनेवाला द्रव्य—वस्तु—की जब दृष्टि हुई तो जीवत्वशक्ति का परिणमन हुआ, वह निर्मल (परिणमन) हुआ। उसमें व्यवहार का—मलिनता का अभाव है, यह अनेकान्त है। व्यवहार से निश्चय परिणति हुई, ऐसा नहीं। समझ में आया? गाँधी! ऐसा यह व्यापार है। आहाहा! ऐसे 'सोंठ की गाँठ से गाँधी (पंसारी) नहीं हुआ जाता। ऐसा यहाँ नहीं है। अपने ऐसा नहीं कहते? सोंठ होती है न सोंठ? एक हल्दी का गांठीया और सोंठ का गांठीया—

इससे गाँधी (पंसारी) हो जाता है क्या? पंसारी को तो बहुत चीज़ें चाहिए। इसी तरह (शास्त्र के) दो-चार-पच्चीस बोल की धारणा कर ली तो हो गये ज्ञानी, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यहाँ क्या कहा?

व्यवहार का अभाव है। जहाँ जीवत्वशक्ति, आनन्दशक्ति आदि भगवान आत्मा में है। तो इस आनन्दशक्ति का धरनेवाला भगवान उस पर दृष्टि करके द्रव्य स्वीकार किया तो पर्याय में निर्मल परिणति हुई, इसमें व्यवहार परिणति का अभाव है। उसका नाम अनेकान्त है। यह निर्मल परिणति हुई, यह व्यवहार से हुई, ऐसा है नहीं। आहाहा! अभी यह बड़ी गड़बड़ चलती है न? (कहते हैं) व्यवहार कारण है, निश्चय कार्य है। व्यवहार से कार्य होता है। (यह सब मिथ्या मान्यता है)। लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आती है।

मुमुक्षु : दौलतरामजी...

पूज्य गुरुदेवश्री : दौलतरामजी ने यथार्थ कहा है। समझ में आया? पहले के तो पण्डित भी बहुत (विचिक्षण थे)। टोडरमल, बनारसीदास, भागचन्दजी छाजेड़ की तो बात अलौकिक है। २०० वर्ष पहले के पण्डितों की बात अलौकिक थी। आचार्य कहते थे, वही (बात) अनुभव से कहते थे।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हेतु तो कहा न? निमित्त। निमित्त से हुआ नहीं। ऐसा उसका अर्थ है। समझ में आया? क्योंकि निश्चय शुद्ध चैतन्य आत्मा भगवान (का) स्वीकार हुआ तो शुद्ध परिणमन हुआ। उसमें राग का उसी क्षण में अभाव है। समझ में आया? द्रव्यसंग्रह की ४७ गाथा में आया है। ४७ समझे? ४ और ७। **'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।'** नेमिचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ती की गाथा है। द्रव्यसंग्रह। **'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।'** यह ज्ञायकस्वरूप पूर्णानन्द की दृष्टि करने में, ध्यान में दृष्टि होती है। अन्दर ध्यान लगाते हैं, तब वह दृष्टि होती है। ध्यान में द्रव्य का ध्यान जहाँ हुआ, इतनी तो पर्याय निर्मल हुई, इतना तो निश्चलमोक्षमार्ग हुआ। और ध्यान में, **'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा'** ऐसा पाठ

४७ (गाथा) में है। ध्यान में निश्चय और व्यवहारमोक्षमार्ग साथ में है। उसका अर्थ यह हुआ कि जितनी अपने स्वभाव के आश्रय से निर्मलता हुई, वह निश्चय है और राग बाकी रहा, उसको आरोप देकर व्यवहार कहा। आरोप देकर व्यवहार कहा। वह व्यवहार, मोक्षमार्ग है ही नहीं; है तो बन्ध का कारण। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है। क्या हो?

प्रभु? दुःखी है न? तत्त्व की समझ बिना सब दुःखी हैं। पैसेवाले सब बेचारे दुःखी हैं—भिखारी हैं। शास्त्र में 'वरांका' शब्द प्रयोग किया है। वरांका। ऐई! पोपटभाई! यह सब करोड़पति हैं। वरांका। समझे? शास्त्र में वरांका शब्द है, वरांका—भिखारी है। अपनी चीज़ की खबर नहीं है और 'पर लावो... पर लावो... पर लाओ...' (करते हैं)। माँगण—भिखमंगा भिखारी है। मुनि को कहाँ किसी को 'माखण चोपडना' था कि वह खुश हो तो ठीक। समझ में आया?

यह तो यहाँ कहा था न? यहाँ भावनगर के महाराज आये थे। एक वर्ष की करोड़ की आमदनी। व्याख्यान में दो बार आये थे। एक बार तो कहा—राजन्! एक महीने में एक लाख की कमाई माँगता है, वह छोटा भिखारी है। पाँच लाख की कमाई माँगता है, वह बड़ा भिखारी है। करोड़ की कमाई माँगता है, वह भिखारी का भिखारी है। सुनते थे। कृष्णकुमार आये थे। उनके दो पुत्र हैं, वे भी व्याख्यान में आये थे, भावनगर आवे, भावनगर में व्याख्यान हो तब आवे। करोड़ माँगते हैं तो बड़ा भिखारी है। लावो... लावो... लावो... लावो... लावो... (करते हैं) अग्नि का लावा होता है, ऐसे लावो... लावो... लावो... लावो... (होता है)। अन्तर की लक्ष्मी की खबर नहीं कि, मैं आनन्द का नाथ हूँ, आहाहा! मेरी खान में तो अकेला आनन्द और शान्ति पड़ी है। उस खान की ओर तो नजर नहीं और जिसमें ज्ञान, आनन्द है नहीं, ऐसे राग और पुण्य के परिणाम पर नजर है, वह सब भिखारी-रांका है। आहाहा! यहाँ तो यह बात है, भगवान! आहाहा! पण्डितजी! आहाहा!

अनेकान्त स्याद्वाद किया है? यह स्याद्वाद कहा। अपना स्वरूप अपने से प्राप्त होता है और परिणति में भी... यह आयेगा। शक्ति पारिणामिक भाव (स्वरूप) है। क्या कहते हैं? जीवत्वशक्ति जो त्रिकाल है—ज्ञान, दर्शन, आनन्द का प्राण से रही है, वह शक्ति पारिणामिकभाव से है। पारिणामिक का अर्थ? उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक और

पारिणामिक ये पाँच भाव हैं। पर्याय में चार भाव होते हैं। उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक। परन्तु वस्तु जो है, वह तो पारिणामिकभाव—सहजभाव है। क्या कहते हैं? सूक्ष्म है भाई! ये सब बोल निकाले थे। शक्ति में से निकाले थे।

भगवान आत्मा अनन्त आनन्द का खजाना है। ऐसा अनन्त ज्ञान का खजाना है। महानिधान है। ऐसा निधान का धरनेवाला भगवान, उस पर दृष्टि से स्वीकार करने से, आदर करने से, राग को हेय करने से, स्वभाव का आदर करने से, पर्याय में जो निर्मल दशा उत्पन्न होती है, उसमें व्यवहार का तो अभाव है, उसका नाम अनेकान्त है। यह अनेकान्त की चर्चा करते हैं। ऊपर में लिखा है। अभी '**अनेकान्त के सम्बन्ध में विशेष चर्चा करते हैं।**' उसमें है। आहाहा! अरे रे! ऐसी बात सुनने में न आये, वह कब समझे और कब रुचि करे? आहाहा! चीज़ बड़ी दुर्लभ हो गयी। समझ में आया?

यह अनेकान्त और स्याद्वाद है। अपनी निर्मल परिणति अपने से हुई है—व्यवहार से नहीं, उसका नाम स्याद्वाद है। स्याद्वाद ऐसा नहीं है कि, व्यवहार से भी होता है और निश्चय से भी होता है। वह तो एकान्तवाद है, आहाहा! शक्ति पारिणामिकभाव से है।

(९) कर्ता आदि छह कारक अभिन्न हैं और निरपेक्ष हैं। क्या कहते हैं? जो वस्तु है—चैतन्य भगवान, उसमें जो जीवत्व आदि शक्ति है। उस एक-एक शक्ति के परिणमन में—शक्ति है, उसमें षट्कारक का रूप है। षट्कारक भी दूसरी शक्ति है। आत्मा है, उसमें शक्ति है—जीवत्वशक्ति, आनन्दशक्ति या कोई भी शक्ति (लो), तो उस शक्ति में षट्कारक की शक्ति भिन्न है। षट्कारक की शक्ति—गुण भिन्न है। वह षट्कारक(रूप) गुण—शक्ति उसमें नहीं। परन्तु षट्कारक का एक-एक शक्ति में रूप है। अर्थात् ज्ञान में कर्ता का रूप है, कर्ता शक्ति भिन्न है। परन्तु ज्ञान अपने से कर्ता है—तो शक्ति का रूप उसमें है। और कर्म शक्ति भिन्न है। कर्म अर्थात् कार्य—परन्तु उसमें कर्म शक्ति का रूप है। ज्ञान कर्ता होकर अपना परिणमन कर्म करता है, वह उसका रूप है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! समझना पड़ेगा, भाई! अनन्त काल में सत्य समझा नहीं, आहाहा!

इस शक्ति में षट्कारक का रूप तो है, परन्तु परिणति में—पर्याय में षट्कारक का रूप आ गया, ऐसा कहते हैं। जो जीवत्वशक्ति है, उसका धरनेवाला भगवान आत्मा,

उसके साथ अनन्त शक्ति है। जीवनशक्ति का जैसे निर्मल परिणमन हुआ—ऐसी अनन्त शक्ति का पर्याय में निर्मल (परिणमन) हुआ। तो एक शक्ति में षट्कारक शक्ति भिन्न है, फिर भी एक-एक शक्ति में षट्कारक का रूप है और उसके परिणमन में भी षट्कारक की पर्याय हो जाती है, आहाहा! धीरे-धीरे समझना, बापू! यह तो वीतराग मार्ग है। सर्वज्ञ परमेश्वर किसे कहें ? लोग साधारण मानते हैं 'णमो अरिहंताणं', बापू! वह परमेश्वर! यह कौन कहे ?

लोग णमो अरिहंताणं साधारण मानते हैं, बापू! वह परमेश्वर कौन ? आहाहा! जिसकी एक गुण की एक समय की एक पर्याय में सारे द्रव्य जानने में आते हैं, सारे गुण जानने में आते हैं, अनन्ती पर्याय जानने में आती हैं और त्रिकाल के पर चीज़ के भी द्रव्य, गुण, पर्याय जानने में आते हैं, आहाहा! परमेश्वर किसको कहे!! बापू! आहाहा! देवाधिदेव अरिहन्त-ईश्वर—ऐसे 'णमो अरिहंताणं' बोल जाए, बापू! उस अरिहन्त के पद को जानकर नमस्कार करना, वह कोई अलौकिक चीज़ है। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि द्रव्य में अनन्त शक्ति है। एक शक्ति में दूसरी शक्ति नहीं किन्तु एक शक्ति का दूसरी शक्ति में रूप है अर्थात् जैसे जीवत्वशक्ति है तो जीवत्वशक्ति में कर्तापना का रूप है। जीवनशक्ति अपने से कर्ता होकर निर्मल पर्याय का कार्य करती है। ऐई! अरे रे! ऐसा है। कोई ऐसा कहता था कि यह थोड़ा सूक्ष्म पड़ेगा। रामजीभाई ने कहा—अभी यह लो न, ४३वाँ चौमासा चलता है। चालीस और तीन। समझे तो सही। आहाहा! सूक्ष्म है, ऐसा भले माने परन्तु थोड़ा ख्याल में तो आवे कि कुछ बात थी। आहाहा!

(यहाँ) कहते हैं कि द्रव्य में जो जीवत्वशक्ति है, उस द्रव्य का अनुभव करने से, शक्ति में भी षट्कारक का रूप है और परिणमन में भी—षट्कारक की पर्याय का—एक-एक पर्याय में षट्कारक का परिणमन है। ऐसी बात है। क्या कहा ? कि अपने में एक आनन्द है, लो आनन्द तो बाद में आयेगा। तो आनन्द शक्ति-गुण है, उसको धरनेवाला भगवान गुणी है। तो द्रव्य पर दृष्टि होने से पर्याय में द्रव्य को ज्ञेय बनाकर और पर्याय में द्रव्य जानने में आया। द्रव्य जानने में आया, फिर भी उस पर्याय में द्रव्य आया नहीं। क्या कहा ? द्रव्य तो भिन्न रह गया, आहाहा! इस पर्याय में एक-एक गुण की पर्याय का षट्कारक (का) परिणमन है। समझ में आया ?

द्रव्यस्वभाव की दृष्टि करने से एक आनन्द की पर्याय उत्पन्न हुई। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव हुआ। उस अतीन्द्रिय आनन्द की एक समय की पर्याय में षट्कारक का परिणमन है। यह आनन्द की पर्याय कर्ता, आनन्द की पर्याय कर्म—कार्य, आनन्द की पर्याय करण—साधन, आनन्द की पर्याय अपादान (अर्थात्) उससे हुई, और आनन्द की पर्याय सम्प्रदान—पर्याय करके पर्याय ने रखी। आनन्द की पर्याय का अधिकरण आनन्द की पर्याय। (ऐसे) षट्कारक का परिणमन एक पर्याय में है। आहाहा! ऐसा मार्ग कहाँ है? बापू! यह तो समझ में आये ऐसी बात है। भाषा तो सादी है, बापू! मार्ग तो यह है भाई! लोग कुछ भी बोले। समझे? 'निश्चयाभासी हैं, व्यवहार का लोप करते हैं।' अरे प्रभु! सुन तो सही, भाई! आहाहा!

यह तो यहाँ कहते हैं कि निर्मल पर्याय हुई, उसमें व्यवहार का तो अभाव है। (निर्मल पर्याय) व्यवहार से हुई? हुई तो अपने द्रव्य ऊपर लक्ष्य देने से अनन्त गुण की निर्मल पर्याय हुई। निर्मल पर्याय वहाँ से हुई। वहाँ साथ में राग बाकी है तो उसमें राग का अभाव है। **'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा'** ऐसी भगवान नेमिचन्द्रजी सिद्धान्त चक्रवर्ती के द्रव्यसंग्रह की गाथा है। आहाहा! पाठशाला में द्रव्यसंग्रह तो बहुत चलता है, परन्तु अर्थ की खबर नहीं (है)। छहढाला भी बहुत चलती है परन्तु अर्थ क्या है? (उसकी खबर नहीं)। आहाहा! निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग एक समय में साथ में है। उसका अर्थ क्या हुआ? व्यवहार से निश्चय हुआ, ऐसा आया? साथ में है न? आहाहा!

श्रीमद ने ऐसा कहा—**'नय निश्चय एकान्त थी, आमां नथी कहेल, एकांते व्यवहार नहि बन्ने साथ रहेल'** (आत्मसिद्धि गाथा-१३२) यह गुजराती शब्द है। निश्चयनय एकान्त एक ही नहीं। व्यवहारनय भी साथ में है। परन्तु व्यवहार में निश्चय नहीं और निश्चय में व्यवहार नहीं। आहाहा! कान्तिभाई! कब अवकाश लिया और कब सुनने का हो? पूरे दिन बैंक में; घर में स्त्री-पुत्र की बैंक और वह पैसे का बैंक। आहाहा! अरे! ऐसा मनुष्यभव मिला उसमें जैन सम्प्रदाय में जन्म हुआ और जैन क्या कहते हैं, वह समझ में न आये तो प्रभु! सब निरर्थक होगा। समझ में आया? आहाहा! है?

कर्ता आदि छह कारक तो अभिन्न हैं, निरपेक्ष हैं। राग कर्ता और निर्मल परिणति

कार्य, ऐसा स्वरूप में है नहीं। आहाहा! है? एक-एक शक्ति में अनन्त शक्ति का रूप है, ऐसा आ गया है। रूप समझे? ज्ञान है न? अन्दर में ज्ञान है न, ज्ञान, तो (ऐसे) एक अस्तित्वगुण भी है, सत्ता-अस्तित्व। तो अस्तित्वगुण है, वह ज्ञानगुण में नहीं। गुणाश्रय से गुण नहीं। वह आता है न उमास्वामी में? गुणाश्रये गुण नहीं। द्रव्याश्रया गुणा। जो गुण हैं, वे सब द्रव्य के आश्रय से हैं। गुण के आश्रये गुण नहीं। तब कोई कहे, एक शक्ति में दूसरा गुण का रूप है तो ये आश्रय आया कि नहीं? नहीं। गुण तो भिन्न रह गये। परन्तु उसमें ज्ञान 'है'। 'है' ऐसा अपना अस्तित्व अपने गुण में अपने से है। अस्तित्वगुण के कारण से ज्ञान का अस्तित्व है। (ऐसा नहीं है) आहाहा! ऐसा है, भाई! आहाहा!

गणधर-सन्तों ने—शास्त्रों की रचना की है, वह वाणी कितनी गम्भीर होगी! और यह वाणी सुनने को इन्द्र आते हैं। वर्तमान में भगवान के पास इन्द्र आते हैं। शकेन्द्र एक भवतारी है। मोक्ष (जानेवाला है)। वर्तमान में शकेन्द्र सौधर्म देवलोक का इन्द्र है। बत्तीस लाख विमान हैं। एक-एक विमान में असंख्य देव हैं। वह उसका स्वामी है, ऐसा बाहर से कहने में आता है। (उसका) स्वामी नहीं। वह तो समकित के स्वामी हैं। वह समकिती हैं। उसकी स्त्री-पट्टरानी है, वह भी समकिती है। सिद्धान्त में (उन) दोनों को एक भवतारी कहा है। वहाँ से निकलकर मोक्ष जानेवाले हैं। दोनों मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा! बत्तीस लाख विमान और एक-एक विमान में असंख्य देव और करोड़ों अप्सरा (होती हैं)। 'वह मैं नहीं', 'वह मैं नहीं', 'मैं तो आनन्दस्वरूप हूँ' मेरी चीज़ में तो उनका अभाव है। (अन्दर में ऐसी दृष्टि है)। आहाहा!

भरत चक्रवर्ती समकिती आत्मज्ञानी, अनुभवदृष्टि थी। 'राग मेरे में नहीं', 'राग मैं नहीं' (ऐसा अनुभवज्ञान था)। जिसके हीरे के पलंग हैं। पलंग कहलाता है? क्या कहलाता है? पलंग। इन्द्र मित्र तरीके आकर के बैठते थे। भरत चक्रवर्ती—छियानवें हजार स्त्रियाँ, छियानवें करोड़ सैनिक, ४८ हजार नगर, ७२ हजार पाटण, उसका स्वामी। वे ऐसा कहते हैं कि 'ये मैं नहीं', 'ये मैं नहीं'। आहाहा! राग आता है—वह भी मैं नहीं। 'मैं तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप हूँ' आहाहा! इन्द्र जैसा मित्र है। तो (कहते हैं) 'नहीं, यह मेरा मित्र नहीं', आहाहा! समझ में आया? दृष्टि का विषय और दृष्टि कोई अलौकिक चीज़ है। साधारण लोग मान ले कि देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नौ तत्त्व की श्रद्धा समकित है।

परन्तु बापू! ऐसा नहीं है, भाई! आहाहा! सर्वज्ञ परमात्मा—अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु! जिसकी प्रतीति में ज्ञेय होकर, (ज्ञान हुआ)। अज्ञानी को भी पर्याय में द्रव्य का ज्ञान होता ही है। परन्तु उसकी दृष्टि उस पर नहीं। दृष्टि पर्याय और राग पर है। इसलिए द्रव्य, पर्याय में जानने में आता है—वह बात उसको प्रतीति में न आयी। (समयसार) १७-१८ गाथा।

अज्ञानी को भी ज्ञान की पर्याय में सारा ज्ञेय अखण्डानन्द पूर्ण स्वरूप का ही पर्याय में ज्ञान होता है। क्योंकि ज्ञान की पर्याय स्वपरप्रकाशक सामर्थ्यवाली है। तो अज्ञानी की पर्याय में भी स्वपरप्रकाशक सामर्थ्य है तो पर्याय में स्व का प्रकाश तो है। परन्तु दृष्टि उस पर नहीं। दृष्टि पर्याय और राग पर है, तो उसको जानने में नहीं आता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। फिर तो लोग ऐसा ही कहे न? 'सोनगढ़ में एकान्त है।'

अरे रे! देखो न! वह सम्यग्ज्ञान दीपिका की बात नहीं! फलटन में—ललितपुर में बात चलाई थी न! सम्यग्ज्ञान दीपिका—अरे! वह तो क्षुल्लक ब्रह्मचारी की बात है, भगवान! यहाँ की बात नहीं है। उसके आधार से ऐसा कहते हैं कि सब भ्रष्ट हैं। अरे! प्रभु! क्या करते हो भाई! तुझे नुकसान होगा, नाथ! उसके परिणाम में (फल में) दुःख—वेदन होगा, बापू! कठिन पड़ेगा, भाई! (ब्रह्मचारी) क्षुल्लक ने तो ऐसा कहा कि जिसके सिर पर पति है, तो कदाचित् उसे कोई दोष लग जाए तो बाहर में प्रसिद्धि में नहीं आता। इतनी बात। आहाहा! ऐसे जिसके सिर पर आत्मा है, उसमें कोई अशुभ रागादि आ जाए तो बाहर प्रसिद्धि में नहीं आता। आहाहा! इसका मतलब ऐसे भोग का भाव सुखरूप है और वह करनेयोग्य है, ऐसा है उसमें? अरे रे! जहाँ एक दया, दान का विकल्प भी दुःखरूप है, वहाँ भोग का भाव, स्वस्त्री हो या परस्त्री हो, महापाप है, प्रभु! आहाहा! समझ में आया? उसने लांछन लगा दिया, कोई पूछता नहीं कि यह क्या करते हो? और क्या है?

यहाँ कहते हैं कि एक-एक शक्ति में अनन्त शक्ति का रूप है।

*(१०) जन्म क्षण, वही नाश क्षण है। (यह क्या कहते हैं?) आत्मा में जीवत्वशक्ति है, इसका जहाँ स्वीकार किया, तो पर्याय में आनन्द सहित अनन्त पर्याय उत्पन्न हुई। वह पर्याय उत्पन्न होने का जन्म क्षण ही था। यह उत्पत्ति का काल ही था। और उस समय पूर्व

* पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रत्येक शक्ति पर लगाये जानेवाले बोल इसी ग्रन्थ के अन्त में परिशिष्ट में दिये गये हैं।

की पर्याय का नाश का काल है। आहाहा! थोड़ा सूक्ष्म है, भगवान! परन्तु यह तेरी ऋद्धि तो देख! यह बाहर की धूल—धाणी और पैसे—करोड़ों और अरबों... आहाहा! उस धूल में कुछ नहीं है। आहाहा! मिट्टी-धूल है। यह शरीर की सुन्दरता—वह श्मशान की... आहाहा! हड्डी —फोसफरस है। भगवान अन्दर अनन्तरूप का धनी प्रभु आत्मा है! इसका रूप देखना या ये रूप देखना ?! अन्दर तेरा स्वरूप तो ध्रुव-ज्ञायक परमात्मस्वरूपी है। वह रूप देखने के लायक है। यह बाहर का रूप ? यह—धूल-राख-क्षण में नाश हो जाए (ऐसा है)। सुन्दर शरीर हो और एक क्षण में हार्टफेल हो जाता है। यह तो मिट्टी है। आहाहा! बापू! तेरा रूप तो शाश्वत अन्दर है। आहाहा! ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि तेरा शाश्वत्‌रूप है। ऐसे द्रव्य की जब दृष्टि हुई। शक्तिवान और शक्ति का भेद निकालकर, द्रव्य शक्तिवान है, ऐसी दृष्टि हुई तो कहते हैं, उस क्षण में निर्विकल्पदशा उत्पन्न (होने) का यह काल था—जन्म क्षण है और पूर्व की पर्याय का नाश करने का काल था। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ३, शक्ति-१, २, शनिवार, श्रावण कृष्ण १४, दिनांक १३-०८-१९७७

यह समयसार, शक्ति का अधिकार है। थोड़ा सूक्ष्म है, ध्यान रखना। अनन्त काल से आत्मा आनन्दस्वरूप और अनन्त शक्तिस्वरूप भण्डार भरा है। यह सुख का सागर है, आनन्द का समुद्र है, आहाहा! उसमें अनन्त शक्तियाँ हैं। यहाँ अपने तो पहली जीवत्वशक्ति चलती है न? धीरुभाई! ये सूक्ष्म बात है। बहुत सूक्ष्म तत्त्व है।

यह आत्मवस्तु जो है—आत्मा, यह द्रव्य है, वस्तु है, अस्ति पदार्थ है। वह अनादि अनन्त चीज़ शाश्वतधाम है। इस आत्मद्रव्य का कारण चैतन्यमात्रभावरूपी... है? **चैतन्यमात्रभावरूपी भावप्राण का धारण जिसका लक्षण है...** आहाहा! जो जीवत्वशक्ति है, पहले से 'जीवो' उठाया है न? (समयसार में) दूसरी गाथा है (वहाँ ली है) न? **'जीवो चरित्तदसंणणाणट्ठिदो'** वहाँ से जीव की जीवत्वशक्ति ली है। अमृतचन्द्र आचार्य कहते हैं कि भगवान आत्मा... शरीर, वाणी, मन तो पर है—वह तो उसमें है नहीं। पुण्य और पाप का भाव—दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोधभाव, वह तो उसमें है ही नहीं। परन्तु उसमें एक समय की पर्याय जितनी शक्ति नहीं। आहाहा! जो त्रिकाल शक्ति है, (वह) एक समय की पर्याय जितनी नहीं।

मुमुक्षु : कुछ समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में न आये तो यहाँ विशेष कहते हैं। जो आत्मद्रव्य वस्तु है, उसमें यह जीवत्वशक्ति है। ऐसी अनन्त शक्तियाँ हैं। वे शक्तियाँ ध्रुव हैं। वह शक्ति ध्रुव में है। वर्तमान पर्याय प्रगट है, (वह) ध्रुव में नहीं। सूक्ष्म बात है, भगवान! वीतराग का मार्ग सूक्ष्म है। अभी तो झगड़े में चढ़ गई बात। व्यवहार करो, व्यवहार करो, उससे (धर्म) होगा। अरे भगवान! सुन तो सही, प्रभु! व्यवहार-शुभराग दया, दान, व्रत आदि हो, वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। वह कोई आत्मा की शक्ति या, आत्मा की निर्मल पर्याय है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो परमात्मा सर्वज्ञदेव, जिनेश्वरदेव ऐसा कहते हैं कि प्रभु! तुम वस्तु है या नहीं? पदार्थ है या नहीं? आहाहा! तो पदार्थ का कारण जीवत्वशक्ति है, ऐसा कहते हैं।

आहाहा! जीवत्वशक्ति नाम की गुण-शक्ति है, उस कारण से जीव टिक रहा है, आहाहा! जीवत्वशक्ति नाम का उसमें गुण है। पहले यह बोल लिया है। और यह जीवत्वशक्ति चैतन्यमात्र द्रव्य जो वस्तु भगवान, उसका कारणभूत है। आहाहा! द्रव्य के कारणभूत। पुण्य और पाप के भाव, आत्मद्रव्य में कारणभूत—वह चीज़ नहीं, आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म है, भगवान!

आनन्दस्वरूप भगवान तो अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, उसकी यह जीवनशक्ति है। जीवनशक्ति में चार भावप्राण लिये। ज्ञान, आनन्द, दर्शन, बल। मुख्यरूप से चार (लिये)। जीवनशक्ति में अनन्त चतुष्टय शक्तिरूप—चार चतुष्टय शक्ति पड़ी है। आहाहा! यह जीवनशक्ति जीव—आत्मद्रव्य वस्तु जो है, उसका वह कारण है। उसका जीवन टिकना यह जीवत्वशक्ति के कारण है, आहाहा! समझ में आया? मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भगवान! आहाहा!

हम दुकान पर पढ़ते थे संवत् १९६५-६६ के वर्ष एक श्लोक आया था। यह तो ६५-६६ की बात है। बहुत वर्ष हो गये। श्वेताम्बर में चार सज्झायमाला है। एक-एक सज्झायमाला में २५०-२५० सज्झाय है। एक-एक सज्झाय में १०-१५-२० श्लोक हैं। ऐसी चार सज्झायमाला है। हम तो दुकान में थे। निवृत्ति थी न! हमारे पिताजी की घर की दुकान (थी)। उसमें एक ऐसा आया था। 'सहजानन्दी रे आत्मा' तुम सहज आनन्दस्वरूप भगवान है न! आहाहा! तेरा आनन्द कहीं बाहर में है नहीं और तेरा आनन्द कोई अपूर्ण और विकृत नहीं है। आहाहा! 'सहजानन्दी रे आतमा, सुतो कांई निश्चिंत रे' आहाहा! है गुजराती भाषा। अरे! तुम निश्चिन्त क्यों सो रहे हो? राग और पुण्य आदि का परिणाम मेरा, इस भाव में तेरा जीवन कहाँ बिताया? आहाहा! समझ में आया? 'सुतो कांई निश्चिंत'। (अर्थात्) मैं अन्दर कौन हूँ? (उसकी) चिन्ता है नहीं, आहाहा! 'सुतो कांई निश्चिंत, मोह तणा रणिया भमे' अरे प्रभु! 'राग और पुण्य का परिणाम मेरा' यह तो महा मिथ्यात्व का कर्जा सिर पर है। देणा समझते हो न? कर्जा। आहाहा! 'मोह तणा रे रणिया भमे, जाग जाग रे मतिवंत रे' चेतन आनन्द का नाथ अब तेरा जागृत (होने का) काल है। अब जाग रे जाग! यह राग और पुण्य के परिणाम से तेरी चीज़ अन्दर में भिन्न पड़ी है। इस निज

निधान को नजर में ले। तेरी नजर में यह पर चीज़ जानने में-देखने में आती है। परन्तु नजर की पर्याय—नजर निधान में डाल। आहाहा! धीरुभाई! यहाँ तो मुम्बई-मोहमयी से दूसरी बात है। आहाहा! 'मोह तणा रणिया भमे, जाग, जाग रे मतिवन्त रे, ऐ लूटे जगतना जंत रे' ये कुटुम्ब—कबीला (कहता है) मेरा रक्षण करो, मेरे साथ विवाह क्यों किया? ऐसा करके तुझे लूटते हैं। आहाहा! 'लूटे जगतना जंत रे, नाखी वांक अनंत रे' हमसे क्यों शादी की? हमारा पुत्र क्यों हुआ? हम तुम्हारा पुत्र क्यों हुआ? ऐसा करके तेरी चीज़ लूट लेते हैं, आहाहा! समझ में आया? आहाहा! 'कोई विरला उगरंत रे (अर्थात्) कोई विरल (ऐसा) उगरता है।' मैं आनन्दकन्द सच्चिदानन्द प्रभु हूँ' आहाहा! 'मेरी चीज़ तो सुखसागर से भरी है' आहाहा! और 'पुण्य और पाप का भाव—विकल्प से तो मैं खाली हूँ।' मैं तो उनसे शून्य हूँ। प्रवचनसार में सप्तभंगी में आता है न? भाई! कि स्व से अशून्य हूँ—पर से शून्य हूँ। सप्तभंगी आती है, प्रवचनसार (में)। क्या कहा? कि मैं मेरे से अशून्य हूँ। (अर्थात्) मैं मेरे भाव से भरा पड़ा पूर्ण हूँ। (और) राग आदि परभाव से मैं शून्य हूँ। सप्तभंगी चली है। स्व से अस्ति और पर से नास्ति। ऐसा पहले कहकर बाद में ये लिया है कि मैं अशून्य हूँ, अर्थात् शून्य नहीं। मैं तो आनन्द और ज्ञानस्वभाव से परिपूर्ण भरा हुआ मैं परमात्मस्वरूप हूँ और शरीर, वाणी, मन, कुटुम्ब पर, और पुण्य-पाप का भाव जो विकल्प-राग है, उससे मैं शून्य हूँ। आहाहा! बापू! मुझमें यह चीज़ है नहीं, भाई! आहाहा! समझ में आया? यह तो ७० साल पहले की बात है। दुकान पर पढ़ते थे न? (तब की बात है)। आहाहा!

प्रभु! तू कौन है? अभी तो ऐसा कहते हैं कि शुभभाव—दया, दान, व्रत आदि हो, उससे तेरा कल्याण होगा और करते-करते तुझे चैतन्य का अनुभव होगा। बापू! ऐसा है नहीं, भगवान! यह पुण्य और पाप का भाव प्रभु! वह तो दुःखरूप है और तू तो आनन्द स्वरूप—सुखरूप है। आहाहा! इस सुखरूप के सागर पर नजर करने से उसमें एक जीवत्व नाम की शक्ति है। इस शक्ति के कारण जीव टिक रहा है, ऐसा कहते हैं। यह शक्ति और शक्तिवान की दृष्टि होने से, उसकी पर्याय में जीवत्वशक्ति का परिणमन होता है, आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! ऐसी बात कहीं है नहीं। ऐ.. न्यालभाई! ये उपनिषद में कहीं है नहीं, हों! वहाँ कहीं पर्याय, द्रव्य, गुण है नहीं। आहाहा! यह तो अलौकिक बात है, बापू!

कहते हैं कि इस शक्ति—जीवत्वशक्ति का भाव क्या ? कि ज्ञान, दर्शन, आनन्द और बल, यह उसका ध्रुवस्वभाव है, वह जीवनशक्ति का कारण है। और यह जीवत्वशक्ति द्रव्यत्व का कारण है। आहाहा ! समझ में आया ? बापू ! मार्ग सूक्ष्म है, भाई ! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ (ऐसा फरमाते हैं कि) यह सर्वज्ञस्वरूपी ही आत्मा है। क्या कहा वह ? सभी भगवान सर्वज्ञशक्ति से भरपूर है। आहाहा ! देह का लक्ष्य छोड़ दे, वाणी का लक्ष्य छोड़ दे, कर्म का (लक्ष्य) छोड़ दे, पुण्य-पाप का लक्ष्य छोड़ दे, एक समय की प्रगट अवस्था का भी लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा !

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से—और अतीन्द्रिय शान्ति से भरा पड़ा पदार्थ है। आहाहा ! उसकी दृष्टि करने से तुझे सम्यग्दर्शन होगा और उसकी दृष्टि करने से तेरी पर्याय में जीवत्वशक्ति के ज्ञान, दर्शन, आनन्द के प्राण की पर्याय की उत्पत्ति होगी।

यह 'उछलती है' (का) प्रश्न सेठ ने किया था। 'उछलती है' (अर्थात्) क्या ? आत्मा में उछलती हैं, आहाहा ! दरिया में—समुद्र में पानी का ज्वार—बाढ़ जाती है। समुद्र के किनारे बाढ़ आती है। वैसे ऐसे भगवान आत्मा जीवत्वशक्ति का धरनेवाला आत्मा है ऐसी अन्तर में दृष्टि होने से, वर्तमान पर्याय में—प्रगट दशा में आनन्द की बाढ़ आती है। आहाहा ! नन्दकिशोरजी !, आहाहा ! ये पूरी दुनिया से अलग बात है। आहाहा ! समझ में आया ? इसमें जीवत्वशक्ति उछलती है। उछलती का अर्थ ? उत्पादपने परिणमती है। जो ध्रुवपने है, और ध्रुवपने शक्ति जो द्रव्य का कारण है—ऐसी दृष्टि जब हुई तो जीवत्वशक्ति पर्याय में—ज्ञान, दर्शन, आनन्द की पर्याय में उत्पाद होता है। यह 'उछलती है' उसका अर्थ यह है। आहाहा ! ऐसी बातें हैं अब। बण्डीजी !

(आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्रभावरूपी भावप्राण का धारण करना जिसका लक्षण है, ऐसी जीवत्व नामक शक्ति ज्ञानमात्र भाव में-आत्मा में उछलती है)। आहाहा ! और जब यह ज्ञानमात्र वस्तु, ऐसी दृष्टि हुई तो पर्याय में जीवत्वशक्ति है। इस जीवत्वशक्ति की निर्मल पर्याय (उत्पन्न होती है)। उसमें आनन्द की पर्याय प्रगट हुई। शान्ति, स्वच्छता, चारित्र की पर्याय प्रगट हुई और उसमें अकारणकार्यशक्ति की पर्याय प्रगट हुई। वह क्या (कहा) ? भगवान ! यह वीतराग का मार्ग तो सूक्ष्म है, प्रभु ! अभी तो

बाहर में लोप हो गया। है और सत्य बात को गुम कर दिया है। 'यह नहीं, यह नहीं, यह नहीं। ये सब करो, यह करो', (ऐसा कहते हैं)। आहाहा!

भगवान! तेरी चीज़ में जब अनन्त शक्ति पड़ी है, तो उसमें एक अकार्यकारण नाम की भी शक्ति पड़ी है। यह सब विवाद है न अभी?

जैसे जीवत्वशक्ति है (तो) उसके साथ अविनाभाव से एक अकारणकार्य नाम की शक्ति (भी) है। तो कहते हैं कि जब जीवत्वशक्ति को धरनेवाला (द्रव्य), उस पर दृष्टि करने से पर्याय में जैसे जीवत्वशक्ति-ज्ञान, दर्शन (आदि) उछलते हैं, वैसे अकारणकार्य शक्ति की पर्याय में उत्पत्ति (होती है)। उछलती है। अर्थात् अकारणकार्य शक्ति पर्याय में उत्पन्न होती है। यह व्यवहाररत्नत्रय का—राग का यह कार्य नहीं और राग का यह कारण नहीं, आहाहा! समझ में आया? अभी ये विवाद बहुत चलता है न! कि राग-व्यवहार करो, व्यवहार करो, व्रत करो, तप करो, अपवास करो... आहाहा! भगवान! ये हो, राग मन्द हो तो हो परन्तु वह कोई चीज़ नहीं। यह वस्तु का द्रव्य नहीं, वस्तु का गुण नहीं और वस्तु की पर्याय नहीं। समझ में आया? बण्डीजी! ऐसा मार्ग है, प्रभु!

अरे! भरतक्षेत्र में परमात्मा का विरह हुआ और उनकी बात रह गयी। भगवान कुन्दकुन्द आचार्य वहाँ गये और वहाँ से ये सन्देश लाये, प्रभु! तुम जीवत्वशक्ति से भरा पड़ा है न! आहाहा! और यह जीवनशक्ति में—अकार्यकारण नाम की शक्ति दूसरी है-तो जीवत्वशक्ति में अकार्यकारण शक्ति का रूप है। भाषा सादी है, भाव सूक्ष्म है। आहाहा! यह तो भगवान के घर की वकालत है। आहाहा! क्या कहते हैं?

भगवान आत्मा पुण्य-पाप और शरीर से तो शून्य है और अपनी अनन्त शक्ति से अशून्य अर्थात् पूर्ण है; ऐसे पूर्णानन्द के नाथ पर दृष्टि करने से उस द्रव्य की श्रद्धा हुई, गुण की—शक्ति की श्रद्धा हुई और उसकी परिणति निर्मल हुई। उसमें जीवनशक्ति की पर्याय—परिणति भी आयी और उसमें अकारणकार्य शक्ति की परिणति भी आयी जो पर्याय ऐसी है। साथ में अकारणकार्य शक्ति की पर्याय उछलती है। आहाहा! ऐसी बात है। यह अकार्यकारण नाम की शक्ति भी, जब द्रव्य ऊपर रुचि होने से पर्याय में जीवनशक्ति का परिणमन—उत्पाद-व्ययरूप से हुआ, ऐसा अकारणकार्य शक्ति का भी पर्याय में

उत्पाद हुआ कि जो शक्ति ऐसी है कि राग के कारण से निर्मल पर्याय होती है, ऐसा है नहीं। व्यवहाररत्नत्रय से निश्चय पर्याय होती है, ऐसी बात है नहीं। बण्डीजी! ऐसा है, भगवान! आहाहा! तेरी महिमा का पार नहीं, नाथ! तेरे साथ में तो अन्दर आनन्द आदि है न! आहाहा! पर्यायरूप से परिणमन करती (है), उसका अर्थ 'उछलती है' ऐसा कहने में आता है। सर्वज्ञ के सिवा ये चीज़ कहीं है नहीं। द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों में जीवनशक्ति व्यापक है, वह तो कल कहा था। समझ में आया? धीरुभाई! ये सब शब्द नये हैं? तुम्हारी कल्पनी में सब गप्प चलती हो।

ऐसा प्रभु का मार्ग है। नाथ! तुझे खबर नहीं, प्रभु! तेरी शक्ति में प्रभुता पड़ी है। वह प्रभुत्वशक्ति भी; इस जीवनशक्ति के परिणमन में प्रभुत्वशक्ति के परिणमन में ईश्वर शक्ति के उत्पाद में ईश्वरता आती है। आहाहा! समझ में आया? हीरालालजी! ऐसी बात है। ऐसा चैतन्य हीरा है। और हीरे के जैसे पासा होते हैं न? पासा... क्या कहते हैं? हीरा में पासा होता है न? पहेल। वैसे भगवान में अनन्त पासा—अनन्त शक्ति हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि जीवनशक्ति का धरनेवाला भगवान आत्मा! उस आत्मा की नजर जब हुई, तो जीवनशक्ति के परिणमन में साथ ही अकारणकार्य शक्ति का परिणमन भी साथ में उछलता है। किरणभाई! ये सब अलग जाति है। तुम्हारे मुम्बई के सब... यह सब मुम्बई के हैं न? यह भाई मुम्बई के नहीं, यह भाई सागर के हैं। कहो, समझ में आया कुछ? आहाहा! क्या कहते हैं?

चैतन्यमात्रभावरूपी भावप्राण का धारण करना,... उसमें—आत्मा में शक्ति उछलती है। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द से भरा है। इस द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि करने से पर्याय में—अवस्था में—हालते में; जैसे दरिया के—समुद्र के किनारे बाढ़ आती है, वैसे पर्याय में आनन्द की बाढ़ आती है। उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। समझ में आया? अरे! यह शरीर-बरीर तो मिट्टी-धूल है, आहाहा! यह तो उसमें है ही नहीं, तो 'इसकी क्रिया मैं करता हूँ' (यह) मिथ्यात्वभाव है, आहाहा!

यहाँ तो पुण्य और पाप का भाव—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा इस भाव से भी भगवान तो शून्य है, आहाहा! पर्याय में भी शून्य है। आहाहा! पर्याय में जैसे जीवत्वशक्ति

का परिणमन हुआ तो अकार्यकारण नाम की शक्ति भी साथ में है, उसका भी परिणमन है और जीवत्वशक्ति में अकार्यकारण शक्ति का रूप है, तो उसमें उसका भी अकार्यकारण का परिणमन होता है। आहाहा! ऐसी बातें, अब! कभी सुने तो सही—मार्ग तो ऐसा है, भाई! अरे! यह मनुष्यपना मिला, उसमें जैन सम्प्रदाय में जन्म हुआ और यदि उसकी चीज़ न समझे तो जीवन चला जाएगा, आहाहा! ऐसे जीवन की कोई कीमत नहीं। समझ में आया? फिर भले ही करोड़, पाँच करोड़, दस करोड़, धूल करोड़ एकत्रित हो जाये (सब) धूल है। मरकर नरक में कहीं चला जाएगा। आहाहा! ऐई धीरुभाई! यहाँ तो ऐसा है, बापू!

यहाँ यह कहा, उछलती है, आत्मा में (अनन्त शक्ति) उछलती है। रात्रि में सेठ ने प्रश्न किया था। 'उछलती है' (का मतलब) क्या? उछलती अर्थात् गुण की परिणति होती है। जो द्रव्य—वस्तु है, उसमें जो अनन्त शक्तियाँ हैं, उसमें एक शक्तिरूप परिणमन जब होता है, तो अनन्त शक्ति की परिणति एक साथ उत्पन्न होती है, उसका नाम 'उछलती है' ऐसा कहने में आता है। आहाहा! ऐसा मार्ग—लोगों को बेचारे को ऐसा लगे कि, ये सोनगढ़वालों ने तो ऐसा कर दिया। अरे! बापू! ये सोनगढ़ की बात है या स्वरूप की बात है? यह भाई है, वे मक्खनलालजी को मिले थे। नन्दकिशोरजी! मक्खनलालजी के साथ दो घण्टे बैठे और चर्चा हुई। मक्खनलालजी ने यहाँ के विरोध की पुस्तक दी तो इनने नहीं ली। बापू! आहाहा! भगवान! तेरे हित की बात है, नाथ! तुझे अहित लगता है। आहाहा! यह शुभभाव हो परन्तु वह तो पुण्यतत्त्व है। पुण्यतत्त्व बन्ध का कारण है। भगवान आत्मा अबन्धस्वरूप है, आहाहा!

(समयसार की) १५ गाथा में आया न? जो कोई आत्मा को अबद्धस्पृष्ट देखता है, वह जैनशासन देखता है। क्या कहा? १५वीं गाथा—

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं'।।१५।।

उसमें दो बात हैं। जैनशासन की जो वाणी—द्रव्यसूत्र है, उसमें भी यह कहा है। **'अपदेससंतमज्झं'** जितने जैन शास्त्र है, उस शास्त्रों में **'अपदेस'** उनमें उपदेश यह चला है कि उसमें आत्मा अबद्ध है। समझ में आया? आया न? **'अपदेससंतमज्झं'** बाबूभाई!

अपदेससंतमज्झं' कहा न? उसका अर्थ द्रव्यसूत्र है। आहाहा! द्रव्यसूत्र में भी भगवान की वाणी में—द्रव्य शास्त्र में भी आत्मा को अबद्ध और पुण्य-पाप के भाव से रहित, ऐसे आत्मा को देखे तो उसने जैन शासन देखा। पुण्य-पाप को देखे, उसने जैन शासन देखा, ऐसा नहीं कहा है, आहाहा!

मुमुक्षु : अरिहन्त—सिद्ध तो अबद्धस्पृष्ट ही हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा अनादि से अबद्धस्पृष्ट है। अरिहन्त—सिद्ध तो पर्याय में अबद्ध हो गये। आहाहा!

भगवान आत्मा!... यह आत्मद्रव्य जो कहा न? वह अबद्धस्पृष्ट है। राग आदि का सम्बन्धरूपी बन्ध है नहीं। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकमूर्ति प्रभु में राग का सम्बन्ध—बन्ध कहाँ से आया? भगवान तो अबन्धस्वरूप प्रभु है। आहाहा! और जिसने भगवान आत्मा अबद्धस्वरूपी देखा—विशेषपना छोड़कर सामान्यरूप से देखा, विषय-कषाय के पुण्य—पाप के परिणाम छोड़कर निर्विकारीपने देखा, उसने जैन शासन देखा। आहाहा! ऐसी बात है। अब क्या करें? ये लोग तो ऐसा कहते थे कि 'व्यवहार करते-करते होता है।' (परन्तु) व्यवहार, यह जैन शासन है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! धीरुभाई! अगम्यगम्य की ऐसी बातें हैं। आहाहा! अरे बापू! अनन्त काल से परिभ्रमण करता है। उसका नाश करने का उपाय तो कोई अपूर्व होगा न! आहाहा!

(यहाँ) कहते हैं कि 'उछलती है'—एक समय में आनन्द की पर्याय उछलती है और एक समय में अकारणकार्य की शक्ति की परिणति भी उछलती है, कि जो पर्याय है, उसे द्रव्य का कोई कारण नहीं, गुण का कारण नहीं, पर्याय का कोई कारण नहीं। आहाहा! राग आदि, व्यवहार आदि विकल्प-कारण और यह निर्मल पर्याय कार्य—ऐसा है नहीं। और निर्मल पर्याय कारण और राग उसका कार्य—ऐसा है नहीं। यह पर्याय में ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। द्रव्य-गुण में तो है ही नहीं। आहाहा! मार्ग तो ऐसा है, भगवान! अरे! ऐसी वास्तविक तत्त्व की बात सुनने मिले, वह भाग्य है तो मिलती है, ऐसी चीज़ है। जीवत्वशक्ति द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों में व्यापक है। अभी पर्याय किसको कहते हैं? गुण-द्रव्य की उसकी तो खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह एक शक्ति का वर्णन चलता है, ढ़ाई घण्टे हुए। कल और परसों दो दिन से चलती है।

मुमुक्षु : हम शक्ति का वर्णन सुनने नहीं आये। हम तो मोक्षमार्ग की बात सुनने आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : शक्ति और शक्तिवान की प्रतीति करते हैं तो पर्याय में मोक्षमार्ग उत्पन्न होता है। सेठ स्पष्टीकरण कराते हैं। सर्राफ है न, सर्राफ? आहाहा! भगवान!

अबद्धस्पृष्ट—(परन्तु) पर्याय का विशेष भी नहीं। राग का तो भाव नहीं। आहाहा! आया न? अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियतम्, अविशेषम्—(अर्थात्) विशेष जो पर्याय, वह भी नहीं। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! आहाहा! समझ में आया? स्त्री का देह भिन्न है। यह स्त्री का, नपुंसक का देह न देखो! प्रभु! अन्दर भगवान आत्मा विराजता है, वह परमात्मस्वरूप है, उसको देखो! यह तो मिट्टी है, उसको न देखों कि यह पुरुष है, यह स्त्री है और यह तिर्यंच है और यह मनुष्य है। वह आत्मा है ही नहीं। आत्मा तो अन्दर आनन्द का नाथ प्रभु!... आहाहा! जीवत्वशक्ति के साथ अनन्त शक्ति का रूप है, ऐसे आत्मा को जब देखा तो अबद्धस्पृष्ट ही आत्मा देखा। उस अबद्धस्पृष्ट आत्मा को देखा तो—पर्याय में प्रतीति—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र हुआ। उसका नाम मोक्षमार्ग है। आहाहा! सेठ ने ऐसा कहा न? कि 'हम तो मोक्षमार्ग सुनने को आये हैं' तो मोक्षमार्ग यह है। आहाहा!

देखो! मोक्ष—उसे कहने में आता है, वह तो एक दु:ख के अभाव और विकार के अभाव को सूचित करता है। 'मोक्ख'—ऐसा है न? मोक्ख—माने मुकाना (छूटना)। यह तो नास्ति से कथन है परन्तु मोक्ष की पर्याय अस्ति है। वह तो आनन्दरूप और मुक्तरूप पर्याय है। अस्तिरूप है, ऐसा है। दु:ख और विकार की नास्ति है और आनन्द और अपनी शान्ति के अस्तित्व से अस्ति है।

लॉजिक से तो कहते हैं, भाई! परन्तु पकड़ना—समझना तो इसे करना है। आहाहा! यहाँ तो आज अकार्यकारण पर विशेष बात कही। लोगों में बहुत तकरार है न? अरे! भगवान! सुन तो सही प्रभु!

छहढाला में आया था। यह लोक अकृत्रिम है। किसी ने किया नहीं। '**(किनहू न करौ) न धरै को, (षट्द्रव्यमयी न हरै को)**' उसका अर्थ क्या? कि, उसमें जो द्रव्य है, वह भी किसी ने किया हुआ नहीं। उसका गुण है, वह किसी का किया हुआ नहीं,

उसकी पर्याय भी किसी ने की नहीं। आहाहा! उसका ऐसा अर्थ है, हों! सारा लोक का कर्ता कोई नहीं तो लोक का जो एक द्रव्य है, उसका कोई कर्ता नहीं, तो द्रव्य का गुण है, उसका भी कोई कर्ता नहीं। हाँ, गुण का कर्ता द्रव्य कहो, परन्तु दूसरा कोई कर्ता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! और उसकी पर्याय का कर्ता गुण-द्रव्य कहो, वह भी व्यवहार है। निश्चय से पर्याय कर्ता, पर्याय कर्म और पर्याय का कारण पर्याय में अपने कारण से है। पर्याय भी द्रव्य-गुण के कारण से नहीं और पर के कारण से तो नहीं, नहीं और नहीं।

मुमुक्षु : तीन बार नहीं, नहीं क्यों कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : दर्शन, ज्ञान और चारित्र। आहाहा! एक शक्ति हुई। अब दूसरी लेते हैं। वहाँ तक रखें।

अजडत्वात्मिका चितिशक्तिः।

अजड़त्वस्वरूप चितिशक्ति (अजड़त्व अर्थात् चेतनत्व जिसका स्वरूप है ऐसी चितिशक्ति।)।२।

अजड़त्वस्वरूप चितिशक्ति चितिशक्ति का अर्थ ऐसा है कि, जो जीवत्वशक्ति है, उसका चितिशक्ति लक्षण है। परन्तु चितिशक्ति भिन्न बताने का कारण यह अजड़त्व है अर्थात् उसमें राग और पुण्य-पाप जड़ है, (वे) उसमें है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : अजड़त्व कोई गाथा में है। पलट-पलटकर वही बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : खतायेंगे दूसरी। उसमें तो मात्र इतना आया था कि, अस्तिपने परिणमन (है)। अब यहाँ तो कहते हैं कि इसमें चितिशक्ति नाम की एक भिन्न शक्ति है। इस चितिशक्ति का रूप जीवत्वशक्ति में है अथवा जीवत्वशक्ति का लक्षण यह चितिशक्ति है। आहाहा!

यह अजड़त्व चितिशक्ति है। उसमें जड़पना नहीं। स्पष्ट करते हैं। आहाहा! जड़पना का अर्थ? शरीर, वाणी, मन तो जड़ है, कर्म जड़ है, वह तो चितिशक्ति में है ही नहीं। क्योंकि अजड़त्व चितिशक्ति है। जड़ बिना की चितिशक्ति ज्ञानस्वरूप भगवान में हैं चिति में दो लेना है—ज्ञान और दर्शन। समझ में आया? चेतनशक्ति... चेतनशक्ति, यह जीवत्वशक्ति

से भिन्न चेतनशक्ति है। ऐसे एक द्रव्य में संख्या से अनन्त शक्तियाँ हैं, आहाहा!

वह तो कहा था न? आकाश का प्रदेश है उस आकाश के प्रदेश का अन्त नहीं। यह लोक है, वह तो असंख्य योजन में है। जगत संग्रहात्मक है। छह द्रव्य का संग्रहात्मक स्थान तो असंख्य योजन में है। पीछे खाली भाग—अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... नजर को लम्बाओ तो कहाँ आकाश नहीं है? आकाश के पीछे क्या? पीछे क्या? पीछे क्या? पीछे क्या? परन्तु पीछे क्या—(कुछ) है ही नहीं। एक बार कहा था न? महेरबानजी पारसी थे। जामनगर के दीवान। उनका पुत्र मेरे पास आया था। जवान व्यक्ति, नास्तिक और पारसी का लड़का। मैंने कहा, सुनो एक बात! ये आकाश चीज़ है ऐसी ऐसे... ऐसे... चली जाती है, (उसका) कहाँ अन्त आयेगा? इस चीज़ का तो अन्त आयेगा परन्तु पीछे कोई क्षेत्र का अन्त है? तो क्षेत्र का अन्त नहीं तो क्षेत्र को जाननेवाला क्षेत्रज्ञ के भाव का अन्त नहीं है, दीवान थे (संवत्) १९९१ के वर्ष की बात है। संवत् ९१ के मागसर मास। हमारे तो बहुत बीत गई है न! आहाहा! तुम चाहे जो स्थिति एक बार मानो परन्तु ये क्षेत्र जो है ऐसे... ऐसे... ऐसे... ऐसे... वह तो असंख्य (योजन में है)। ऐसे अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... योजन में १४ ब्रह्माण्ड नहीं, पीछे जो खाली जगह है, तो खाली जगह को क्या कहना? उसे आकाश (कहना)। तो आकाश का अन्त कहाँ? कि आकाश समाप्त हो गया? चिमनभाई! आहाहा!

क्षेत्र का अन्त नहीं। यह क्षेत्र 'ज्ञ' भगवान आत्मा—क्षेत्र का जाननेवाला है। उसके भाव का—ज्ञान का भी अन्त नहीं। जैसे इस क्षेत्र का अन्त नहीं, उसके अस्तित्व की यदि तुझे प्रतीति हो तो यह क्षेत्र का जाननेवाला ज्ञान भी अन्दर अपरिमित—अपार पड़ा है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

यहाँ यह कहते हैं, **'अजड़त्व चितिशक्ति'** तो चिति अर्थात् चेतना। यहाँ दर्शन और ज्ञान दोनों साथ में लेना है। बाद में भिन्न करेंगे। चेतनाशक्ति—जानना और देखना, इन दो रूप एक चेतनशक्ति—वह अजड़त्व है। आहाहा! इस जीवत्वशक्ति में भी चेतनशक्ति का रूप है। उसमें भी अजड़त्व है। जीवत्वशक्ति का परिणमन हुआ तो उसमें यह पुण्य-पाप के जड़पना का अभाव है। समझ में आया? आहाहा! हीरालालजी! ऐसी सूक्ष्म बात है।

यह बात सूक्ष्म है। लोग नहीं कहते? कि 'लोढु कापे छीणी'। (ऐसी गुजराती में कहावत है)। यह लोहे की छैनी होती है, वह छैनी—लोहे को काटे। लकड़ी काटे? लकड़ी लोहे को काटे? लोहे की छैनी सूक्ष्म हो, वह लोहे को फड़ाक करके दो भाग कर दे। वैसे यहाँ सूक्ष्म ज्ञान है, वह राग को भिन्न करता है। जिसको प्रज्ञाछैनी कहते हैं। आया है, प्रज्ञाछैनी।

भगवान! एक बार सुन तो सही, आहाहा! ये राग और पुण्य—पाप का—दया, दान का भाव—उसमें तो चैतन्य का अभाव (है)। चैतन्य के भाव से वह शून्य है। तो भगवान आत्मा उस अचेतनभाव से शून्य है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है। लोगों को सूक्ष्म पड़े! और वह स्थूलरूप से पकड़ा दिया कि—यह करो दया, और व्रत, भक्ति, पूजा, दान में दो—५-१० लाख खर्च कर दो, जाओ धर्म होगा। यहाँ कहते हैं कि धूल में भी (धर्म) नहीं होगा। तेरे करोड़ रुपये दे देना! कदाचित् राग मन्द किया हो तो पुण्य है—धर्म नहीं। इस पुण्यभाव का चेतनशक्ति में अभाव है। ज्ञानचन्दजी!

मुमुक्षु : ऐसा कहोगे तो बाबूभाई को दान कौन देगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन देता है, कौन लेता है? आज समाचारपत्र में आया है कि जहाँ... तहाँ काले झण्डे बताये। बाबूभाई चले जाओ... चले जाओ। आज आया है। जैनदर्शन (पत्रिका) में आहाहा! यह चीज़ नहीं। खबर नहीं, उसको सत् का आदर नहीं, वह असत् का आदर करनेवाला तो सत् का अनादर ही करेगा। उसमें कोई नवीन चीज़ नहीं। आहाहा! तेरा मार्ग अलग प्रभु! जहाँ तुम हो वहाँ तो पुण्य-पाप भी नहीं। तुम जहाँ हो तो वहाँ तो अपार अपरिमित शक्ति का भण्डार है न! आहाहा! पोपटभाई! यह तुम्हारे करोड़-दो करोड़ की गिनती कुछ गिनती नहीं होती। आहाहा!

आहाहा! आचार्य महाराज ने गजब का काम किया है। अमृतचन्द्र आचार्य (ने) समयसार में से ४७ शक्तियाँ निकाली। (वैसे तो) अनन्त शक्तियाँ हैं, परन्तु कथन में अनन्त करने जाए तो अनन्त समय जाए।

मुमुक्षु : उसका रहस्य हमारे सामने आपने बताया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी है और समझ में आये ऐसी भाषा सादी (है)। ऐसी

कोई चीज़ नहीं कि बड़ी संस्कृत और व्याकरण (पढ़ना पड़े)। आहाहा! यह तो सादी भाषा है। सत्य सादा है, सत् सरल है। श्रीमद् कहते हैं, सत् सरल है, सत् सर्वत्र है, सत् का प्राप्त करानेवाले गुरु मिलना, वह महा दुर्लभ है, ऐसा कहते हैं। श्रीमद् ने एक पत्र में लिखा है। आहाहा! गुरु मिला कब कहने में आता है? कि जब अपने आत्मा का अनुभव करे, तब गुरु मिला, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

भगवान आत्मा के आनन्द का अनुभव हो, वह धर्म है। आहाहा! **'अनुभव रत्न चिन्तामणी, अनुभव है रसकूप, अनुभव मार्ग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप'**। आनन्द के नाथ का स्वसन्मुख होकर अनु अर्थात् स्वभाव का अनुसरण करके भव अर्थात् होना—आनन्दरूप होना, वह अनुभव मोक्ष का मार्ग है। बाकी व्यवहाररत्नत्रय आदि सब बन्ध का कारण है। समझ में आया?

अजड़त्व। आहाहा! यह चितिशक्ति भी अकारणकार्य से भरी पड़ी है। यह चितिशक्ति साथ में उछलती है। जीवतरशक्ति के साथ में चितिशक्ति की पर्याय उछलती है—उत्पत्ति होती है। यह चितिशक्ति की ज्ञान, दर्शन की एकरूप पर्याय जो उत्पन्न होती है—उसमें कोई राग का कारण नहीं और चितिशक्ति की पर्याय—परिणति है, यह राग का कारण नहीं। राग का कारण नहीं और राग कारण और चितिशक्ति की पर्याय कार्य नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। एक समय की पर्याय। पर्याय की मुद्दत एक समय की है। भगवान आत्मा द्रव्य, गुण त्रिकाल है। द्रव्य और गुण त्रिकाल है और पर्याय की मुद्दत एक समय की है। आहाहा! दूसरे समय में दूसरी, तीसरी समय में तीसरी। पर्याय का समय तो एक समय है।

एक समय की पर्याय में चितिशक्ति जब परिणमती है, त्रिकाली ज्ञायकभाव में चितिशक्ति पड़ी है तो शक्ति और शक्तिवान का भेद भी दृष्टि में न लेने से... आहाहा! यह शक्ति और शक्तिवान का भेद नहीं करके शक्तिवान ज्ञायक पर दृष्टि करने से (पर्याय परिणमति है।) क्योंकि ज्ञायकभाव चितिशक्ति से पूरा भरा है। उस पर्याय में जब चितिशक्ति का—शक्तिवान का जहाँ आदर हुआ और व्यवहार का आदर छोड़ दिया (तो निश्चयधर्म प्रगट हुआ)। आहाहा! अभी तो ऐसा ही कहते हैं, प्ररूपण भी यह करते हैं कि व्यवहार करते-करते निश्चय होगा। अरे! वह श्रद्धा ही मिथ्यात्व है। आहाहा! क्या हो? समझ में आया?

चितिशक्ति की पर्याय उछलती है, उसमें अकारणकार्य की पर्याय भी आती है। यह ज्ञान, दर्शन की पर्याय जो उत्पन्न होती है, उसका कारण द्रव्य-गुण व्यवहार से कहने में आता है और परिणमन हुआ, उसका कारण-कार्य परिणमन में है। आहाहा! यथार्थ में द्रव्य-गुण भी कारण नहीं है। यह अपने कलश टीका में आ गया है कि अपना परिणाम कार्य और द्रव्य-गुण कारण—यह उपचारमात्र से है। गजब बातें हैं, भाई! निर्मल पर्याय का अनुभव हुआ, इस अनुभव में अनुभवरूपी कार्य—कर्म (हुआ); कर्म कहो, कार्य कहो, दशा कहो (सब एकार्थ हैं)। और उसका कारण द्रव्य-गुण है, यह भी उपचार से है—व्यवहार से है। आहाहा! पर का कारण—कार्य तो है ही नहीं। यह बात सबेरे चलती है न? आज तो स्वाध्याय थी न! आठ दिन में एक दिन विश्राम मिलता है। यहाँ तो कायम चलता है।

(संवत्) १९७४ की साल से व्याख्यान चलता है। ५९ वर्ष हुए। हजारों लोग (आते थे)। सम्प्रदाय में भी हमारी बहुत प्रतिष्ठा थी न! पुण्य दिखे, शरीर भी सुन्दर दिखता है। और हमारी दुकान भी वहाँ चलती थी। बाहर में तो हजारों लोग सुनने आते थे। समझ में आया? तो ७१ (की) साल में उस (वक्त) भी हमने कहा था। ७१ के वर्ष, कितने वर्ष हुए? ६२ (वर्ष हुए)। दोपहर को एक घण्टा वांचन देते थे, आठम को प्रौषध करते थे न लोग? एक घण्टा कहे, कानजीस्वामी पढ़ा। सवेरे गुरु पढ़ते थे। दोपहर को एक घण्टे। उसमें कहा 'अपनी पर्याय में जो विकार होता है (वह) कर्म से बिल्कुल नहीं (होता)। गुरु सुनते थे। (गुरु) भद्रिक थे। अपने में जितना विकार होता है—मिथ्यात्व हो या राग-द्वेष हो—उसमें निमित्त कारण कर्म से हुआ, यह बिल्कुल है नहीं। और विकार का नाश करने में कोई पर का कारण नहीं है। अपना स्वभाव का पुरुषार्थ करते (हैं, तो) विकार का नाश हो जाता है। कर्म का नाश हो तो विकार का नाश होता है, ऐसी चीज़ है नहीं। यह तो १९७१ की साल की बात है। कितनों का तो जन्म भी नहीं हुआ होगा। ६२ वर्ष (हुए)। हलचल मच गयी। सम्प्रदाय में खलबली हो गयी। ये कहाँ से लाये? आहाहा! सेठ कहते थे, ये 'बिना डोरा की पतंग' उड़ती है। डोरा समझे? क्योंकि हमारे गुरु ने कहा नहीं और हमने कभी सुना ही नहीं और ये बात कहाँ से निकाली? आहाहा! बापू! मार्ग तो ऐसा है, भाई!

वही बात वर्णीजी के साथ हुई। पंचास्तिकाय की ६२ (वीं) गाथा परमाणु में कर्म

की पर्याय जो होती है, वह भी षट्कारक परिणमन जड़ से होती है। आत्मा में विकार होता है, वह भी अपने षट्कारक से पर्याय में होता है—द्रव्य-गुण से नहीं, पर से नहीं। पर के कारण से इसमें विकार होता नहीं। अभी सब में यह गड़बड़ चलती है।

ज्ञानमति आर्जिका दिल्ली में है न? (वह कहती है) 'विकार कर्म से न हो तो एकान्त हो जाता है। निश्चयनय एकान्त है, व्यवहारनय से मानना पड़ेगा।' परन्तु व्यवहारनय का अर्थ क्या? निमित्त है—इतना व्यवहार है। परन्तु उससे विकार होता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? ऐसी बात है।

शक्ति कही, **'अजड़त्वस्वरूप'** आहाहा! इस जीवत्वशक्ति में से दूसरी शक्ति निकाली कैसे? चितिशक्ति तो वास्तव में जीवत्वशक्ति का ही लक्षण है। लक्षण है परन्तु भिन्न बताने को ये अजड़त्व स्वरूप भिन्न बताने को दूसरी शक्ति कही। समझ में आया? भगवान आत्मा में चितिशक्ति दर्शन—ज्ञान चेतनास्वरूप चेतनाशक्ति है। यह शाश्वत है। द्रव्य जैसे शाश्वत है, वैसे चितिशक्ति शाश्वत है। (इस) शाश्वत शक्ति में अकार्यकारणशक्ति भी साथ में पड़ी है। यह चितिशक्ति की (पर्याय) द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि होने से, ज्ञान-दर्शन की पर्याय जैसे उत्पन्न होती है, उछलती है, उत्पन्न होती है तो उसके साथ अकार्यकारण की पर्याय भी (हुई)। ज्ञान की पर्याय हुई, उसका कोई कारण नहीं और ज्ञान की पर्याय राग का कारण नहीं। आहाहा! ऐसी बातें। एक घण्टे में कितना याद रखना? आहाहा! सब नये प्रकार की बातें हैं। पत्नी (सुनने) न आयी हो और घर जाकर पूछे कि, क्या सुनकर आये? तो कहे ऐसा... ऐसा कुछ कहते थे। ऐ... पोपटभाई! आहाहा! मार्ग तो प्रभु! ऐसा है, भाई! यह तो अपूर्व मार्ग (है)। अनन्त काल से भटकते-भटकते पूर्व में कभी किया नहीं। आहाहा!

चितिशक्ति। चितिशक्ति द्रव्य, गुण, पर्याय में व्यापक होती है। चितिशक्ति गुण है। परन्तु द्रव्य पर दृष्टि होने से, शक्ति और शक्तिवान का भेद छोड़कर, शक्तिवान आत्मा है, ऐसी दृष्टि करने से, यह चितिशक्ति का पर्याय में परिणमन होता है। ज्ञान और दर्शन, देखने-जानने की पर्याय अपने से होती है। उस पर्याय का कारण पर नहीं, भगवान की वाणी सुनी तो पर्याय हुई, ऐसा नहीं। समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म है।

'अजड़त्वशक्ति' उसमें अकार्य कारण का परिणमन (साथ में है)। आहाहा! ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है और दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है तो भगवान की वाणी सुनने से उत्पन्न होती है या नहीं? और यहाँ देखो—पहले ज्ञान नहीं था। ऐसा सुनने में ज्ञान आया—तो अन्दर में ये सुनने के कारण से ज्ञान उत्पन्न होता है या नहीं? यहाँ ना कहते हैं। ऐसा है ही नहीं। पोपटभाई! आहाहा! ये सुनने में आया है तो ज्ञान की पर्याय उत्पन्न (हुई), (ऐसा नहीं)। ये ज्ञान की पर्याय भी अपने से होती है और सुनना तो निमित्त है। निमित्त से होती नहीं। एक बात। और ज्ञान की पर्याय जो अपने से हुई है, वह वास्तविक ज्ञान नहीं। द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि देने से जो ज्ञान पर्याय होती है, वह वास्तविक ज्ञान है। ऐसी बात है। देवीलालजी!

मुमुक्षु : अन्दर बहुत भेद हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर एक ही भेद है। धर्मदास क्षुल्लक ने लिखा है कि आत्मा एक और बाईस परीषह कहाँ से आये? आहाहा! आत्मा एक और दस प्रकार के धर्म कहाँ से आये? वह तो भेद से कथन है। वीतरागस्वभाव यही दस लक्षण पर्व और वीतरागस्वभाव वही धर्म है। बस! उसका दस प्रकार से कथन है। धर्मदास क्षुल्लक ने सम्यग्ज्ञान दीपिका में लिखा है कि आत्मा एक और बारह प्रकार का तप। बाईस प्रकार का परीषह! (ऐसा) कहाँ से आया? ऐसा मार्ग है, भगवान! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का पन्थ—प्रभु का पन्थ यह है। बाकी सब पामर का पन्थ है, आहाहा! कुछ समझ में आया?

इसमें तो अभी पर्याय क्या है, उसकी खबर—ज्ञान नहीं है। वहाँ धर्म कहाँ से आया? धर्म तो पर्याय है। धर्मी और धर्मी का धर्म (स्वभाव), वह ध्रुव है। द्रव्य—उसका ज्ञान—दर्शन, धर्म—स्वभाव। वह शाश्वत है। परन्तु वह परिणति—पर्याय जो हुई, वह तो एक समय की पर्याय है। यह शाश्वत नहीं। शाश्वत के आश्रय से (पर्याय) होती है, वह पर्याय भी शाश्वत है। उस अनित्य से नित्य जानने में आता है। यह क्या कहा? पर्याय अनित्य है। अनित्य से नित्य जानने में आता है। ऐ... धीरुभाई! ये सब बातें तुम्हारे हिसाब-किताब में नहीं मिलेगी।

क्या कहा? अन्त में क्या कहा? नित्य से नित्य जानने में नहीं आता। नित्य तो

कूटस्थ—ध्रुव है। और कार्य होता है पर्याय में। तो पर्याय से नित्य जानने में आता है। अनित्य से नित्य जानने में आता है। आहाहा! नन्दलालजी! ऐसी बातें हैं। आहाहा! अरे! लोग विरोध करे, प्रभु! बापू! सत् का विरोध करना (और) सत् की खबर नहीं। आहाहा!

अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु (विराजता है।) सत् अर्थात् शाश्वत् द्रव्य और गुण। और पर्याय अशाश्वत्—अनित्य है। आहाहा! नित्यानित्यस्वरूप, वह आत्मा है। समझ में आया?

एक बार राजकोट में १९९९ की साल में एक साधु आया था। वेदान्ती साधु था। उसे ऐसा कि जैन में अध्यात्म की बात और आत्मा की बात करनेवाले साधु कौन हैं ये? लाओ सुनने जाऊँ। क्योंकि जैन का नाम बाहर में ऐसा है कि, क्रिया करनी, व्यवहार करना, पुण्य करना और दया करनी, वह जैन। ऐसा अभी बाहर में चला है। जैन में और आत्मा... इसलिए वह सुनने आया। चर्चा में आया था। हमने कहा कि 'आत्मा अनित्य है' (यह सुनते ही) भाग गया। आहाहा! अरे..! सुन तो सही प्रभु! तुझे खबर नहीं। ये 'आत्मा है' ऐसा निर्णय किसने किया? ध्रुव ने किया तो ध्रुव तो कूटस्थ है। कूटस्थ समझे? कूट होता है न? शिखर। पर्याय पलटती है, उसमें कार्य होता है। आत्मा की पर्याय अनित्य है और नित्य ध्रुव द्रव्य से नित्य है। पर्याय से अनित्य है। दो मिलकर आत्मा है। तो अनित्य से नित्य जानने में आता है। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ४, शक्ति-३, रविवार, श्रावण कृष्ण १५, दिनांक १४-०८-१९७७

यह समयसार। परिशिष्ट अधिकार है। शक्ति का अधिकार है। थोड़ा सूक्ष्म लगे परन्तु वस्तु की स्थिति (ऐसी है)। क्या चलता है? कि अभी तक इसे ऐसा कहा गया कि आत्मा ज्ञानमात्र स्वरूप है। उसमें कोई शरीर, वाणी, कर्म और पुण्य-पाप के भाव नहीं हैं। तो शिष्य ने प्रश्न किया कि, (आत्मा) ज्ञानमात्र भाव है, तो एकान्त हो जाता है। ज्ञानमात्र कहा तो अकेला ज्ञानस्वरूप कहने से तो एकान्त हो गया और उसमें अनन्त गुण नहीं आये। और है तो अनन्त गुण। तो प्रभु! आपने ऐसा एकान्त क्यों कहा?

आचार्य कहते हैं कि, एक बार सुन तो सही। ज्ञानमात्र प्रभु का अनुभव करने से उसमें ज्ञान की वर्तमान परिणति उत्पन्न (होती है), उछलती है, उसमें अनन्त गुण की पर्याय साथ में उत्पन्न होती है अर्थात् उछलती है। आहाहा!

यह आत्मा ज्ञानस्वरूप (है, ऐसा) कहते आये हैं। तो शिष्य को यह प्रश्न हुआ कि ज्ञानस्वरूपी एक ही गुण हुआ, वह तो एकान्त हो गया। उसमें अनन्त गुण नहीं आये। भाई! सुन तो सही प्रभु! यह ज्ञानगुण आत्मा का (है)। आत्मा—गुणी का यह गुण (है)। ऐसे गुणी शब्द से भगवान आत्मा—ज्ञायक परमात्मा की जब दृष्टि होती है, (जब) उसके स्वभाव का स्वीकार हुआ, तो पर्याय में उत्पाद—व्ययपने ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, (तो) उसके साथ आनन्द की पर्याय भी उत्पन्न होती है, उसके साथ श्रद्धा की पर्याय उत्पन्न होती है, चारित्र की पर्याय अपनी सर्व ऋद्धि को सेवे, ऐसी चारित्र पर्याय भी साथ में उत्पन्न होती है। 'उछलती है' शब्द है न? आहाहा!

भगवान! समुद्र में से जैसे बाढ़ आती है (तो) किनारे पर पानी उछलता है, वैसे भगवान आत्मा, एक समय में ज्ञानगुण मात्र कहा—तो ज्ञान 'है'—'है'—ऐसा अस्तित्वगुण भी साथ में आया। समझ में आया? ज्ञान 'है', (ऐसा कहने से) तो अस्तित्वगुण भी साथ में 'है', तो है तो दूसरा अस्तित्वगुण भी साथ में आया। अस्तित्व समझते हो? अस्तित्वगुण का रूप भी ज्ञान 'है'—ज्ञान 'है' तो ज्ञान में भी 'है' पना आया। यह अस्तित्वगुण का रूप उसमें है। प्रवीणभाई! जरा सूक्ष्म है थोड़ा, परन्तु अब... आहाहा! ऐसा मार्ग है। प्रभु अन्दर में विराजमान है न, नाथ! आहाहा!

आत्मा अनन्त-अनन्त शक्ति का गुण का संग्रहालय, अनन्त गुण का गोदाम है। गोदाम में से माल निकालते हैं न? वैसे भगवान आत्मा एक समय में अनन्त शक्ति कहो, या गुण कहो या सत् का सत्व कहो या भाववान का भाव कहो (सब एकार्थ हैं)। समझ में आया? आहाहा! (आत्मा) अनन्त गुण का समुदाय—गोदाम है। आहाहा! उसमें विकार का गोदाम नहीं। जो राग और दया, दान, व्रत आदि का व्यवहार है, वह तो कृत्रिम है। पर्याय में पर्यायदृष्टि से उत्पन्न होता है—वस्तु में नहीं। धीरुभाई! सूक्ष्म बातें बहुत। तुम्हारे सेठ मुम्बई से।

पर्याय में पर्याय अंश पर दृष्टि—लक्ष्य जाता है, तो विकृत निमित्त पर लक्ष्य जाता है, तो वहाँ विकार उत्पन्न होता है। समझ में आया? भगवान आत्मा एक सेकेंड के असंख्य भाग में अनन्त गुण-शक्ति, शुद्ध चैतन्य का पिण्ड है। आहाहा! उस द्रव्य पर दृष्टि होने से, निमित्त का लक्ष्य छोड़कर; शुभ रागादि हो, उसका भी लक्ष्य छोड़कर और उस राग के काल में—राग को जानने की पर्याय जो व्यक्त—प्रगट है, उसका भी लक्ष्य छोड़कर। वह तो एक तो क्षणिक पर्याय है; राग विकृत है; निमित्त—पर है, तीनों का लक्ष्य छोड़कर...। आहाहा! भगवान आत्मा अनन्त शक्ति का संग्रहालय है। अनन्त शक्ति का संग्रह-आलय (अर्थात्) संग्रह का स्थान है। आहाहा! और वह अनन्त स्वभाव का सागर प्रभु है। (आत्मा) शक्ति का संग्रहालय, गुण का गोदाम, स्वभाव का सागर (है)। सेठ! हमारे सेठ का गाँव सागर है न?

मुमुक्षु : यह सत्यनारायण प्रभु की कथा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्यनारायण प्रभु की कथा है। बात सच्ची (लोग) सत्यनारायण कहते हैं, वह नहीं। यह तो सत्यनारायण है। आहाहा! नर में से नारायण होने की लायकात उसमें है। परमात्मा होने की लायकात उसमें है, आहाहा!

ऐसी चीज़ अनन्त गुणों का गोदाम, अनन्त शक्ति का संग्रहालय और अनन्त स्वभाव का सागर एकरूप प्रभु... आहाहा! उसका आश्रय करने से जितनी अनन्त शक्तियाँ हैं, सबका पर्याय में उत्पाद (होता है)—उछलता है। चन्दुभाई! अरे! ऐसी बातें हैं। ऐसा धर्म तो भारी भाई! साधारण मनुष्य ने बेचारे ने सुना भी न हो।

यहाँ इस शक्ति के वर्णन में अनेकान्त आया। (आत्मा को) अकेला ज्ञानमात्र जो कहने में आया था तो वह ज्ञान 'है', ज्ञान वस्तुत्व है, ज्ञान प्रमेयत्व है, इस ज्ञान में भी अनन्त गुण का रूप है और अनन्त गुण भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? भाई! यह तो वीतराग मार्ग है, बापू! यह साधारण मनुष्य को पता लग जाये, ऐसी यह चीज़ नहीं। यह तो महान पुरुषार्थ है। स्वरूप की ओर का महा (पुरुषार्थ है)।

पर्याय पर अनादि से लक्ष्य है। साधु हुआ, दिगम्बर मुनि हुआ, पंच महाव्रत का पालन किया, २८ मूलगुण पालन किये, परन्तु दृष्टि की क्रीड़ा पर्याय ऊपर (रही)। एक समय की ज्ञान की पर्याय है, उसमें खेल रहा है। भगवान पर्याय के पीछे पूरा बादशाह— परमात्मा। आहाहा! उसकी दृष्टि का तो अभाव है। उस कारण से पंच महाव्रत आदि शुभ क्रियाकाण्ड करे तो उसे देवादि गति मिले। (परन्तु) भव का अभाव न होता। आहाहा! भव का अभाव तो; भगवान आत्मा ज्ञान स्वरूप है, ऐसा अनन्त शक्तिस्वरूप है। ऐसी अनन्त दृष्टि करने से आनन्द का अनुभव होता है और शान्ति का स्वाद आता है। शान्ति शब्द से चारित्र (कहना) है। आनन्द शब्द से सुख (कहना) है। समझ में आया? और वीर्यगुण से, वीर्य अनन्त गुण की पर्याय की रचना करता है। अन्तर (में) जो वीर्य है (अर्थात्) आत्मबल (है)। इस ज्ञान के परिणमन के साथ वीर्य अनन्त गुण की निर्मल परिणति की रचना करता है। राग की रचना करे, यह वीर्य गुण नहीं, आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पुण्य की रचना करे, वह नपुंसक है, हिजड़ा है। हिजड़े को जैसे वीर्य नहीं (होता है तो) पुत्र नहीं (होता)। भाई! बात तो ऐसी है, भगवान! आहाहा! वैसे शुभभाव में नपुंसकता है। तो उसमें (से) धर्म की पर्याय की प्रजा उत्पन्न हो, (ऐसी ताकत) शुभभाव में नहीं। आहाहा!

शुद्धस्वभाव की पर्याय की उत्पत्ति (होती है), महाराज भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा जिसमें अनन्त गुण (के साथ) वीर्य गुण भी है तो उस गुण के धरनेवाले भगवान का स्वीकार जहाँ हुआ (तो) है तो सही, परन्तु 'है' तो उसका स्वीकार जिसे आता है, उसके लिये 'है'। 'है' तो 'है'। 'है' परन्तु उसके लिये 'है' कहाँ आया? समझ में आया? यह प्रश्न चला था।

मुमुक्षु : दूसरे को भले जैसा हो, वह परन्तु हमको तो स्वीकार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा स्वीकार नहीं, भगवान! भगवान के सामने देखकर स्वीकार होना, वह (स्वीकार) है।

यह दृशिशक्ति में चलेगा। दो शक्ति चली हैं—जीवत्वशक्ति, चितिशक्ति। चितिशक्ति साधारण चली है। परन्तु आज अब दृशिशक्ति थोड़ी लें।

आत्मा में अनादि से एक जीवत्वशक्ति है। यह द्रव्य जो आत्मद्रव्य है, उसका कारणरूप जीवत्वशक्ति। और जीवत्वशक्तिरूप ज्ञान, दर्शन, आनन्द और बलरूप उस शक्ति के भेद हैं। भावप्राण वह शक्ति के भेद हैं। अनादि से भावप्राण से भगवान आत्मा जीता आया है, जी रहा है और जीयेगा। लोग ऐसा कहते हैं, हम कहते हैं, हमारी टीका भी हुई है कि, 'जीओ और जीने दो' (ऐसा जो कहते हैं) यह भगवान की वाणी नहीं। सभी लोग रथयात्रा निकलती है, तब ऐसा बोलते हैं 'महावीर का सन्देश—जीओ और जीने दो' (परन्तु) ऐसा है नहीं। ऐसा जीओ और जीने दो, ये कहाँ है? दस प्राण से जीवें, उसे जीने दो? ये पाँच इन्द्रिय का प्राण, श्वास, आयुष्य, मन, वचन, और काया, (ऐसे) दस (प्राण)। उससे जीओ और जीने दो—यह भगवान की वाणी नहीं है। वह तो अंग्रेजों की वाणी है, ऐसा रामजीभाई कहते हैं। बाईबल की वाणी है। लो! यह बाईबल की अंग्रेजी की वाणी है।

यहाँ तो जीवो—जीवत्वशक्ति—जो ज्ञान, आनन्द, दर्शन, बल से भरी है, उससे जीवन का जीवन जीओ और दूसरे को जीवन जीने दो। आहाहा! और यह पहली शक्ति निकाली तब कहा था, जीवो—(समयसार में) दूसरी गाथा है न— **'जीवो'** शब्द लिया है न? पहली गाथा में तो **'वंदित्तु सव्वसिद्धे'** कहा (और) दूसरी गाथा में **'जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिदो'** इसमें **'जीवो'** में से जीवत्वशक्ति निकाली। पहली जीवत्वशक्ति निकाली। आहाहा! समझ में आया? और इस जीवत्वशक्ति में अनन्त शक्ति का रूप है। गुण के आश्रय—गुण नहीं, गुण के आश्रय से गुण नहीं। परन्तु एक गुण में अनन्त गुण का रूप है। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया?

ऐसी जीवतरशक्ति में क्रम-अक्रम (रूप) प्रवृत्ति जो होती है—क्रम से निर्मल

पर्याय होती है और गुण अक्रम से है। वह सब क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती गुण और पर्याय के समुदाय को आत्मा कहते हैं। समझ में आया? ध्रुव को आत्मा कहते हैं, वह बात अभी नहीं है। सर्वविशुद्ध अधिकार में आता है न, भाई!

नियमसार, शुद्धभाव अधिकार (में)। वहाँ तो आत्मा किसको कहते हैं? कि पर्याय बिना की नित्यानन्द ध्रुव वस्तु—उसको आत्मा कहते हैं। समझ में आया? परन्तु आत्मा... वहाँ नियमसार—३८ गाथा में लिया है। यहाँ तो यह लेना है कि ऐसा जो गुण का धाम प्रभु... ध्रुव शब्द आया न? तेरह 'ध' का बोल है न? ध्रुवधाम। इसमें—अपने हिन्दी में भी आया है। बारह बोल आये हैं।

'ध्रुवधाम के ध्येय के ध्यान की धधकती धुणी... अन्दर है धीरुभाई! तुम्हारा शब्द आयेगा इसमें **'ध्रुवधाम के ध्येय के ध्यान की धधकती धुणी को धैर्य से धखानेवाला..'** हमारे गुजराती में (ऐसा कहते हैं कि) 'धीरज थी धखावनार।' ध्रुवधाम भगवान आत्मा जिसका स्थल ध्रुव है और जिसमें अनन्त अपार शक्ति ध्रुवरूप है। इस ध्रुवधाम के ध्येय के ध्यान की धधकती धुणी—शान्ति और आनन्द से धधकती ऐसे आनन्द... आनन्द... आनन्द... आहाहा! सम्यग्दर्शन में अतीन्द्रिय आनन्द आदि की धधकती धुणी को धैर्य से—धीरज से। धीरुभाई! धखाना यह हमारी गुजराती भाषा है। यह शब्द तो अभी वहाँ हीरालाल के मकान में बनाये। यह हीरालाल के मकान में फाल्गुन मास में बनाया था। 'धखावनार धर्म का धारक...' सब ध.. ध है। वह धर्मी धन्य है। यह अभी हिन्दी में आया है। पहले गुजराती में आया था।

यहाँ कहते हैं, यह जीवत्वशक्ति तो बहुत चली। दो-ढाई घंटे चली। अब चितिशक्ति थोड़ी लें। इस चितिशक्ति (को) भिन्न शक्ति कही (है) परन्तु निश्चय से तो (यह) जीवत्वशक्ति का ही लक्षण है। समझ में आया? भाई! बहुत सूक्ष्म बात है, बापू! यह तो भगवान के दरबार का खजाना खोलने की बात है। आहाहा! जीवत्वशक्ति गुण है, इसमें चितिशक्ति को भिन्न गिना परन्तु जीवत्वशक्ति का चितिशक्ति लक्षण है। चिति में दो साथ में आये—दर्शन और ज्ञान। दर्शन-ज्ञान साथ में आये तो चितिशक्ति का धरनेवाला द्रव्य, उसको दृष्टि में लेने से पर्याय में चितिशक्ति का (अर्थात्) दर्शन-ज्ञान का परिणमन-चेतना

का परिणमन एक साथ होता है, उसके साथ अनन्त गुण की पर्याय उछलती है। समझ में आया? आज तो अब हम तीसरी (शक्ति) लें। दृशिशक्ति लेते हैं। क्योंकि इसका तो पार नहीं है।

शास्त्र में तो एक-एक शक्ति को गृहस्थपने उतारी है, ब्रह्मचर्यपने उतारी है। वानप्रस्थपने उतारी है, साधुपने उतारी है, यतिपने उतारी है, ऋषिपने उतारी है, मुनिपने उतारी है। जैसे यह एक दृशिशक्ति है—जो देखने की शक्ति और देखती है, (वह) आत्मद्रव्य को देखती है, अपने को देखती है, पर्याय को देखती है और सबको देखती है। देखने में भेद नहीं करती। यह परद्रव्य है और यह स्वद्रव्य है, ऐसा भेद नहीं। आया? देखो!

अनाकारोपयोगमयी दृशिशक्तिः, साकारोपयोगमयी ज्ञानशक्तिः।

अनाकार उपयोगमयी दृशिशक्ति। (जिसमें ज्ञेयरूप आकार अर्थात् विशेष नहीं है ऐसे दर्शनोपयोगी-सत्तामात्र पदार्थ में उपयुक्त होनेरूप-दृशिशक्ति अर्थात् दर्शनक्रियारूप शक्ति।)।३।

'अनाकार उपयोगमयी दृशिशक्ति।' जरा सूक्ष्म बात है, भगवान! **अनाकार उपयोगमयी...** यह तो अलौकिक वस्तु (है) बापू! आहाहा! जो दर्शनशक्ति है, उसमें आकार नहीं। आकार नहीं अर्थात् यह चीज़ आत्मा है और यह चीज़ जड़ है, ऐसा भेदरूपी आकार नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं!

भाई! तेरी समृद्धि ऐसी है परन्तु तूने निधान (की ओर) नज़र कभी नहीं की। आहाहा! ये दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति, तप करने से धर्म होगा, (ऐसा मानकर) अनादि काल से तू मर गया। यह चेतन महाराज भगवान का तूने अनादर किया और विकृतभाव (जो) उसमें नहीं, है उसका आदर किया। जो देखनेवाला है—उसको देखने की शक्ति से देखा नहीं। धीरुभाई! दरकार नहीं की, भगवान! यह तो कहते हैं।

कहा था न? प्रश्न हुआ था। त्रिभुवनभाई, वीरजीभाई वारिया थे न? उनका पुत्र त्रिभुवनभाई, उसने प्रश्न किया— 'महाराज! तुम ऐसा कहते हो कि आत्मा कारणपरमात्मा है—कारणस्वरूप परमात्मा है। आप द्रव्य को कारणपरमात्मा कहते हैं और केवलज्ञान की

पर्याय को कार्यपरमात्मा (कहते हैं)। यह उसका प्रश्न नहीं था, उसको तो इतना प्रश्न था—यह भगवान आत्मा—ध्रुव, यह कारणपरमात्मा है—तो कारण है तो कार्य आना चाहिए' ऐसा प्रश्न किया। ज्ञानचन्दजी! (हमने कहा) प्रभु! सुन! कारण है तो सही। परन्तु 'है' ऐसी दृष्टि में प्रतीति नहीं आयी (तो) उसके लिये 'है' (ऐसा) कहाँ से आया? समझ में आया?

मुमुक्षु : दृष्टि में आवे तो कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो है, तो कारणपरमात्मा है, ऐसा प्रतीति में आया। समझ में आया? वस्तु तो भगवान पूर्णानन्द विराजमान है। चेतन भगवान परमात्मा उस कारणपरमात्मा को परमात्मा कहते हैं। और केवलज्ञानी परमात्मा को कार्यपरमात्मा कहते हैं। पर्यायरूप कार्य पूर्ण हुआ, इसलिए कार्यपरमात्मा (कहते हैं)।

कहते हैं कि, कारणपरमात्मा है, कारण है तो कार्य आना चाहिए। तो कारणपरमात्मा तो अनादि से है, तो कार्य क्यों नहीं आया? आहाहा! यह प्रश्न था प्रश्न बराबर है, भगवान! कारणपरमात्मा एक समय में अनन्त-अनन्त शक्ति सम्पन्न प्रभु, एक-एक शक्ति की अनन्त शक्ति, एक-एक शक्ति की अनन्त पर्याय, आहाहा! एक शक्ति की अनन्त शक्ति और एक-एक शक्ति को अनन्त पर्यायरूप अलग है। सामर्थ्य—शक्ति अनन्त है। एक दृशिशक्ति लो, इस दृशिशक्ति में अनन्त सामर्थ्य है और दृशिशक्ति की देखने की पर्याय परिणमित होती है, वह भी अनन्त है। देखने की शक्ति का धरनेवाला ऐसा परमात्मा है। परन्तु 'है' ऐसा ज्ञान में आये बिना 'है' कहाँ से आया? अपने ज्ञान की पर्याय में... भगवान! थोड़ी सूक्ष्म बात आ गई है। अपनी ज्ञान की वर्तमान पर्याय में यह ज्ञेय बना नहीं, तो उसको 'है' कहाँ से आया? धीरुभाई! सूक्ष्म बातें हैं, बापू! ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय सारा द्रव्य जानने में आया, तब उसको वर्तमान श्रद्धा की पर्याय (में) 'है' ऐसा स्वीकार हुआ। इसके बिना ज्ञान की पर्याय में पूर्णानन्द प्रभु ज्ञेयरूप न हुआ। पर्याय में त्रिकाली (द्रव्य) ज्ञेय आता नहीं, परन्तु पर्याय में त्रिकाली ज्ञेय का ज्ञान आता है, आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दर्शन की पर्याय में त्रिकाली वस्तु की श्रद्धा आती है, परन्तु वह त्रिकाली

चीज़ पर्याय में नहीं आती। आहाहा! समझ में आया? तो पर्याय में 'त्रिकाली चिदानन्द भगवान हूँ' ऐसा ज्ञेय बनाकर ज्ञान न हुआ, श्रद्धा का विषय बनाकर श्रद्धा न हुई—तब तक कारणपरमात्मा उसके लिये नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। और जब भगवान आत्मा का स्वीकार हुआ...। हीरालालजी! ऐसी बात है। आहाहा!

पूर्णानन्द प्रभु अनन्त शक्ति का एकरूप पिण्ड, शक्ति और शक्तिवान का भेद भी जिसमें नहीं (है)। सम्यग्दर्शन का विषय अभेद है। यह शक्ति और शक्तिवान आत्मा, ऐसा भेद भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। आहाहा! जब (ऐसा) अभेद (स्वरूप) दृष्टि का विषय हुआ, तब कारणपरमात्मा पूर्णानन्द (स्वरूप) है (ऐसा) उसकी प्रतीति में आया। वस्तु (पर्याय में) आयी नहीं। वस्तु तो वस्तु में रही। पर्याय में इतना सामर्थ्यवाला तत्त्व है, ऐसी उसकी श्रद्धा की पर्याय में उसके सामर्थ्य की श्रद्धा आयी। परन्तु वह चीज़ पर्याय में नहीं आती। चीज़ तो चीज़ में रहती है। आहाहा! धीरुभाई! यह तो अलौकिक बातें हैं। आहाहा!

जब पर्याय में... पर्याय समझते हो न? वर्तमान दशा (को पर्याय कहते हैं)। यह उछलती दशा जो कहते हैं—वह। श्रद्धा की दशा उत्पन्न होती है, ज्ञान की (दशा) उत्पन्न होती है, आनन्द की (दशा) उत्पन्न होती है। ऐसी पर्याय में उस पर्यायवान की प्रतीति और ज्ञान हुआ, तब वह कारणपरमात्मा 'है' ऐसा स्वीकार हुआ। चीज़ को देखे बिना देखना कहाँ से आया?

यह दृशिशक्ति है न? तो कहते हैं कि, दृशिशक्ति धरनेवाले को देखे नहीं तो दृशिशक्ति की प्रतीति कहाँ से आयी? समझ में आया? प्रवीणभाई! ऐसा है।

दृशिशक्ति जो है, यह सबको देखती है तो अदृश्यपना रहा नहीं—देखे बिना रहा नहीं, एक बात।—तो दृशिशक्ति सबको देखती है, तो 'यह नहीं है', ऐसा रहा नहीं। कौन नहीं है? (तो कहते हैं) वस्तु! ये दृशि में देखने की चीज़ नहीं है, ऐसा नहीं रहा। अदृश्य न रहा, अदृश्यपना नहीं रहा। आहाहा! समझ में आया? भाई! मार्ग सूक्ष्म है। ऐसे के ऐसे व्रत लिये, मुनिपना लिया, महाव्रत ले लिया—यह सब सम्यग्दर्शन बिना व्यर्थ है, संसार है। मोक्ष का मार्ग कोई दूसरा है। आहाहा! समझ में आया?

(यहाँ) कहते हैं—**अनाकार...** (अर्थात्) उसमें आकार नहीं। अर्थात् क्या? कि

ये आत्मा है, मैं दर्शन हूँ, दूसरे की यह पर्याय है—ऐसा भेद नहीं। अनाकार उपयोगरूपी दर्शनशक्ति में भेद नहीं कि, यह आत्मा है, यह जड़ है, यह गुण है, पर्याय है, ऐसा भेद नहीं। सामान्य-जो अनाकार (अर्थात्) आकार बिना अर्थात् विशेष भाव बिना। आहाहा! **'अनाकार उपयोगमयी'** जानना-देखना (इसमें) देखने(रूप) उपयोगमयी, आहाहा! दृशिशक्ति है तो कायम। आहाहा!

(जिसमें ज्ञेयरूप आकार अर्थात् विशेष नहीं है...) आहाहा! सूक्ष्म है। दर्शनशक्ति—ज्ञानशक्ति से सूक्ष्म है। क्यों है? कि ये दृशि(शक्ति) है और देखने सूक्ष्म जाती है और भेद होते हैं, तो दृशि(शक्ति) न रही। थोड़ा सूक्ष्म है। दृशिशक्ति (में) यह ज्ञान है और यह आत्मा है, ऐसा जानने में आये तो दृशिशक्ति रहती नहीं है। वह ज्ञान (शक्ति) हो गयी। दृशिशक्ति—यह शक्तिवान और यह शक्ति की पर्याय का परिणमन (ऐसा भेद नहीं देखती)। यह दृशिशक्ति तो गुण है। और (उसे) धरनेवाला गुणी है। और जब गुणी का स्वीकार हुआ तो दृशिशक्ति का परिणमन पर्याय में—देखनेरूपी पर्याय हुई। देखनेरूप ध्रुवपना था, वह पर्यायपने आया। समझ में आया? नन्दकिशोरजी! यह तो ऐसी वकालत है। दिगम्बर जैन में जन्म हुआ (तो) भी खबर नहीं। आहाहा!

दिगम्बर धर्म, यह तो वस्तु का स्वरूप है। दिगम्बर अर्थात् अन्तर में आत्मा अनन्त शक्ति का पिण्ड, विकल्प से रहित नग्न (स्वरूप) है। मुनिपना जब होता है, तब पंच महाव्रत और नग्नपना निमित्तपने (होता) है, उसका नाम दिगम्बर। यह तो वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। यह कोई पक्ष से सम्प्रदाय खड़ा किया है, ऐसा नहीं (है)। समझ में आया? आहाहा! लड़के आये हैं या नहीं? नहीं? लड़के आये हैं? ठीक! आज रविवार है न! आज सब भर गया है। जरा देरी से आये होंगे। पिचहत्तर लड़के हैं।

'अनाकार उपयोगमयी दृशिशक्ति। (जिसमें ज्ञेयरूप आकार अर्थात् विशेष नहीं है...)' ज्ञेयरूपभाव दिखने में आता है परन्तु विशेषता नहीं। समझ में आया? भेद नहीं। द्रव्य है, गुण है, पर्याय है, इसके अलावा अनन्त द्रव्य, गुण, पर्याय है, उसको देखने की पर्याय देखती है। अपने को देखती है, पर को देखती है। परन्तु ये आत्मा और ये पर, ऐसा भेद उसमें नहीं। दृशिशक्ति में ऐसा आकार नहीं। आकार अर्थात् विशेषता नहीं।

आकार अर्थात् विशेषता नहीं। ये विशेषता बिना की उपयोगमयी दृशिशक्ति (है)। आहाहा! अभी तो पकड़ में आना मुश्किल है। धन्नालालजी!

जिसमें ज्ञेयरूप आकार अर्थात् विशेष नहीं है, ऐसे दर्शनोपयोगी–सत्तामात्र... (अर्थात्) अस्तित्वपने (है)। आत्मा में दृशिशक्ति अस्तित्वपने / सत्तापने है—अभावपने नहीं, आहाहा! समझ में आया? **सत्तामात्र पदार्थ में उपयुक्त होनेरूप–दृशिशक्ति अर्थात् दर्शनक्रियारूप शक्ति।** भाषा ली है। देखा? दर्शनक्रियारूप (लिया है)। शक्ति तो त्रिकाल है परन्तु उसका जब परिणमन होता है तो उसकी क्रिया में दर्शन–देखने की परिणति–पर्याय उत्पन्न होती (है)। इसमें अनन्त गुण की पर्याय साथ में उत्पन्न होती है। उसको दृशिशक्ति का परिणमन कहते हैं और वह दृशिशक्ति का परिणमन क्रम से होता है और दृशिशक्ति आदि (शक्तियाँ) अक्रम है। सब गुण अक्रम है और पर्याय क्रमवर्ती है। यहाँ विकार की बात ली ही नहीं। क्योंकि विकार कोई शक्ति का कार्य नहीं। यह तो पर्यायबुद्धि में परलक्ष्य से विकार होता है तो वह स्वरूप में नहीं। विकार का तो यहाँ अभाव ही है।

दृशिशक्ति को देखने से अपने को और पर सबको देखनेरूप जो दृशि (शक्ति) का निर्मल परिणमन होता है तो उसके साथ अनन्त गुण की निर्मल पर्याय की उत्पत्ति होती है। अब एक साथ अनन्त का परिणमन हुआ तो अनेकान्त हुआ। अब दूसरी (बात)। यह दृशिशक्ति के परिणमन में देखने की पर्याय (के) साथ अनन्त गुण की पर्याय का परिणमन होता है, उसमें राग आदि व्यवहार का अभाव है, यह अनेकान्त है। अनेकान्त दो प्रकार का (कहा है)। समझ में आया? यह लोग तो ऐसा कहते हैं न? कि व्यवहार से निश्चय होता है। इसकी यहाँ ना कहते हैं। आहाहा! अरे! समझ में तो ले। ज्ञान में तो ले कि बात क्या है? बाद में अन्तर्मुख प्रयोग करना, वह तो अलौकिक बात है। समझ में आया?

यह दृशिशक्ति जो है, इसके परिणमन के साथ अनन्त गुण की पर्याय (साथ में) हुई। यह सब क्रमवर्ती पर्याय हैं। उसमें क्रमबद्ध आ गया। क्रमबद्ध की ना कहते हैं न? कि क्रमबद्ध नहीं। यहाँ क्रमबद्ध ही है। जिस समय दृशि का परिणमन उत्पन्न होता है, वह निज क्षण है। निज क्षण / जन्म क्षण है। दृशिशक्ति और दृशिशक्ति का धरनेवाला भगवान,

उसकी दृष्टि करने से दृशिशक्ति का परिणमन जो होता है, वह उसकी उत्पत्ति का जन्मक्षण है। उसी काल में उत्पन्न होने का क्षण है। आहाहा! समझ में आया?

प्रवचनसार में १०२ गाथा (में) कहा। प्रवचनसार में ज्ञेय अधिकार लिया (है) ज्ञेय, तो ज्ञेय का स्वभाव ऐसा है और उस ज्ञेय अधिकार में जयसेन आचार्य ने ऐसा लिया है कि ज्ञेय अधिकार कहो कि समकित अधिकार कहो (एक ही बात है)। ऐसा लिया है। पहले ९२ गाथा (पर्यन्त) ज्ञान अधिकार है। बाद में ९३ से २०० (गाथा) तक ज्ञेय अधिकार है। और बाद में चरणानुयोग अधिकार है। ऐसे तीन अधिकार है। तो ज्ञेय का स्वभाव, छह द्रव्य का स्वभाव। ज्ञेय में छह द्रव्य आये न? तो छहों द्रव्यों का स्वभाव (ऐसा है कि) उसकी पर्याय का (वह) जन्म क्षण है। जिस समय उत्पन्न होनी है, उसी समय में उत्पन्न होगी। आहाहा! दूसरे समय में जो उत्पन्न होनी है, वही होगी। तीसरे समय में जो उत्पन्न होनी है, वही होगी। ऐसी जो क्रमवर्ती पर्याय है, और अक्रमवर्ती गुण है, उस पर्याय और गुण के समुदाय को आत्मा कहते हैं। बण्डीजी! ऐसी बातें हैं।

भाई! तुम सैकड़ों कोस (दूर से)आये, आहाहा! और यहाँ तो आपके घर अनुकूलता होती है, इतनी अनुकूलता तो यहाँ है नहीं। फिर भी भटकते-भटकते कष्ट लेकर सैकड़ों कोस से आये हैं, तो इसमें नवीन चीज़ क्या है? भगवान का पंथ क्या है? उसका ख्याल तो आना चाहिए न? आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हमारे सेठ कहते हैं। बात सच्ची है, भाई! आहाहा!

अब हमें तो इतना लेना है कि, कल दृशिशक्ति का लिया था न? हमारे चन्दुभाई है न? एक शक्ति (के) ऊपर इतने (२१) बोल उतारे (हैं)। पढ़कर फिर दे देना। उतारे हैं, यह बराबर है। कल ज्ञानचन्दजी को दिये थे न?

क्या है पहला बोल? अनेकान्त के सम्बन्ध में विशेष चर्चा करते हैं। (१) क्रम और अक्रमरूप अनन्त धर्मसमूह का जो कुछ जितना लक्षित होता है, वह सब वास्तव में एक आत्मा है। एक बोल।

(२) ज्ञानमात्र एक भाव की अन्तःपातिनी अनन्त शक्तियाँ उछलती हैं। भगवान

ने (आत्मा को) ज्ञानमात्र कहा तो द्रव्य के आश्रय से ज्ञान की पर्याय जब आनन्द के साथ उत्पन्न होती है, तो उस पर्याय में अनन्त पर्याय उछलती-उत्पन्न होती हैं। दो बात हुई।

(३) क्रमवर्तीरूप और अक्रमवर्तीरूप वर्तन जिसका लक्षण है। यह आत्मा का लक्षण ऐसा है। क्रम-क्रम से पर्याय क्रमबद्ध होनी और अक्रम एक साथ व्यापक गुण तिरछा रहना। तिरछा समझे? अनन्त गुण एक साथ ऐसे तिरछे एक साथ में है। एक साथ अर्थात् ऐसे नहीं है कि एक बोरी है, उसमें दूसरी बोरी, (है उसके ऊपर) तीसरी बोरी, ऐसे नहीं। जैसे चावल एक है, चावल की सफेदाई, मिठास स्वभाव सब एक साथ है। ऐसे आत्मा में अनन्त गुण एक साथ हैं। एक गुण उसके बाद यह, पश्चात् यह ऐसे नहीं। आहाहा! अनन्त गुण एक साथ है, उसको अक्रम कहते हैं। समझ में आया? है न?

(४) एक-एक शक्ति अनन्त में व्यापक है। एक शक्ति-दृशिशक्ति है, वह अनन्त गुण में व्यापक / प्रसरती है। आहाहा!

(५) एक-एक शक्ति अनन्त में निमित्त है। पढ़ा था। भाई ने दिया था। उतार लिया ज्ञानचन्दजी? उतार लिया है। वस्तुस्थिति ऐसी है। आहाहा!

(६) एक शक्ति द्रव्य-गुण-पर्याय में व्यापती है। क्या कहा? भगवान आत्मा जो द्रव्य-शक्ति है, दृशिशक्ति है जो देखने की शक्ति है, वह द्रव्य में है, गुण में है और पर्याय में है। तीनों में व्यापती है। आहाहा!

(७) एक शक्ति में ध्रुव उपादान (और) क्षणिक उपादान है। यह दृशिशक्ति जो है—देखने की शक्ति, भगवान को देखे, अपने को देखे, पर्याय को देखे—भेद बिना, अनाकार / विशेष उपयोग बिना (देखे)। ऐसा दृशिशक्ति में त्रिकाली है, वह ध्रुव उपादान है और वर्तमान क्रमसर जो पर्याय उत्पन्न होती है, यह क्षणिक उपादान है। चन्दुभाई! समझ में आया?

(८) एक-एक शक्ति में व्यवहार का अभाव है। यह अनेकान्त (है)। आहाहा! दृशिशक्ति अपने स्वभाव से परिणमन करती है, तो वह निर्मलपने परिणमन है। उसमें राग का अभाव है, व्यवहार का अभाव है, यह अनेकान्त और स्याद्वाद है। व्यवहार से भी दृशिशक्ति प्रगट होती है और निश्चय से भी प्रगट होती है, ऐसा है नहीं। आहाहा! अभी

तो यह बड़ी गड़बड़ है न ? यहाँ का विरोध करते हैं न ! करते तो हैं खुद का विरोध। हम क्या है ? कैसे हैं ? यह उसने देखा है कि, हमारा विरोध करे ? समझ में आया ? आहाहा ! तत्त्व की खबर नहीं है तो अपना विरोध करते हैं। आहाहा ! यहाँ कहते हैं—एक-एक शक्ति में व्यवहार का अभाव है, यह स्याद्वाद है। यही अनेकान्त और स्याद्वाद है। अनेकान्त का (अर्थ) ऐसा नहीं कि, व्यवहार से भी निर्मल पर्याय होती है और द्रव्य-गुण से भी निर्मल पर्याय होती है। समझ में आया ? कितना झेलना ? एक घंटे में सब बातें नई लगे।

यह तो वीतरागमार्ग—चैतन्य रत्न-हीरा (है)। आहाहा ! साधारण हीरा एक करोड़ या एक अरब का हो तो उसकी कीमत करनेवाला जौहरी भी होशियार होना चाहिए। यह तो चैतन्य हीरा (है)। यह हीरा है, उसके अस्तित्व की श्रद्धा करनेवाला तो आत्मा है। हीरा को खबर नहीं है—मैं हीरा हूँ। आहाहा ! ऐसा चेतन हीरा भगवान द्रव्य-गुण-पर्याय में व्यापता है। ये बात अन्यत्र कहीं है नहीं। दूसरे कोई स्थान में, कोई धर्म में कोई ठिकाने (है नहीं)। ऐसा कहे कि 'आत्मा एक है—(उसका) अनुभव करो। परन्तु अनुभव करो, वह क्या चीज़ है ? अनुभव तो पर्याय हुई। समझ में आया ? अनुभव में आनन्द आता है। परन्तु आनन्द आता है, वह तो पर्याय हुई। पर्याय के नाम का तो ठिकाना नहीं और अनुभव करो—अनुभव (करो)। क्या अनुभव करे ? समझ में आया ? अमुक वेदान्ती ऐसा कहते हैं, अमुक ऐसा कहते हैं। क्या कहते हैं ?

यह वस्तु है—द्रव्य है। उसमें शक्ति है, गुण में—शक्ति-शक्ति में है, और शक्ति का पर्याय में परिणमन हुआ तो तीनों में शक्ति व्यापक है। समझ में आया ? ये शक्ति का वेदन हुआ। (यह) पर्याय में वेदन होता है। कल थोड़ी बात कही थी कि अनित्य से नित्य जानने में आता है। नित्य से नित्य जानने में नहीं आता। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ प्रश्न बहुत चल गया। क्या कहलाता है ? परमहंस। मोतीलालजी न ? मोतीलालजी। तुम्हारे राजकोट के। वे व्याख्यान में आते थे। (संवत्) १९९५ में। बाद में साधु हो गये। वैष्णव थे, परमहंस हो गये। फिर यहाँ आये। बहुत चर्चा हुई। (उससे) कहा कि तुम पर्याय (को) मानते नहीं। हम तो कहते हैं कि अनुभव करना (वह पर्याय है)। भूल है, भूल है तो उपदेश करते हैं कि भूल (को) टालो। तो ये भूल क्या चीज़ है ? भूल

कोई द्रव्य है, गुण है, कि पर्याय (है) ? मालूम है कुछ ? क्योंकि भूल है, वह नाश होती है और उसके स्थान में अभूल (अर्थात्) निर्मल परिणति होती है। तो वह तो पर्याय है। पर्याय की तो तुम्हें खबर नहीं और हमको अनुभव (है) अनुभव है, तो तुम कहाँ से अनुभव लाये ? समझ में आया ? और बाद में कबूल किया कि, हाँ... (बात बराबर है)।

वेदान्त ऐसा तो कहता है न कि आत्यन्तिक दु:ख से मुक्त होओ और आनन्द का अनुभव होओ। तो यह क्या आया ? पर्याय में दु:ख था, अवस्था में दु:ख था। द्रव्य-गुण में नहीं। अवस्था में दु:ख था, इस दु:ख का अभाव हुआ और आनन्द की नई अवस्था उत्पन्न हुई। यह तो पर्याय हुई और पर्याय की तो खबर नहीं और हमें अनुभव, (ऐसा कहते हैं)। कहाँ से आया तुझे अनुभव ? समझ में आया ? यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर के सिवाय यह मार्ग कहीं है नहीं। समझ में आया ?

(९) (यहाँ कहते हैं, शक्ति) द्रव्य, गुण, पर्याय में व्यापक है। आया न ?

(१०) शक्ति पारिणामिकभाव से है। क्या कहते हैं ? दृशिशक्ति, आत्मा दृशिवान (है)। आत्मा भाववान और दृशिशक्ति भाव (है)। यह शक्ति है, वह पारिणामिकभाव से है, पारिणामिकभाव से है अर्थात् उसकी पर्याय में जो भाव होता है, वह दूसरी चीज़ (है)। यह तो सहज स्वभाव है। उत्पन्न हुआ नहीं, अभाव हुआ नहीं, नया भाव उत्पन्न हुआ नहीं। ऐसी पारिणामिकस्वभाव शक्ति है। यह ३२० (गाथा) में बहुत चल गया है। वाँचन हो गया है न ? वह छपायेंगे। पुस्तक छापेंगे। चिमनभाई के पुत्र ने अभी बीस हजार रुपये दिये न ? ३२० गाथा का व्याख्यान छापने के बीस हजार दिये। मधुभाई, हांगकांग में है। अभी आये थे न ?

३२० गाथा में ऐसा आया था कि क्रमसर जो पर्याय है,.. समझ में आया ? वह नई-नई उत्पन्न होती है। नई-नई उत्पन्न होती है, तो (वह) पर्याय हुई। ज्ञानगुण उत्पन्न होता है ? दर्शनशक्ति उत्पन्न होती है ? दृशिशक्ति तो त्रिकाल है। समझ में आया ? यह लॉजिक तो बहुत सूक्ष्म है, भगवान ! जैनदर्शन कोई अलौकिक चीज़ है। आहाहा ! उसका पता लग जाए तो जन्म-मरण का अन्त आ जाए। इसके बिना जन्म-मरण (का अन्त नहीं आयेगा)।

क्रियाकाण्ड करके मर जाए। व्रत, तप, भक्ति और अपवास वह सब बन्ध का कारण है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि, (शक्ति) पारिणामिकभाव है। उसमें आया था, भाई! चन्दुभाई! ३२० गाथा में (आया है कि) मोक्ष किस भाव से होता है? वहाँ आया है कि (पाँच भाव में) चार भाव तो पर्याय के हैं, एक भाव गुण का है। त्रिकाली द्रव्य और गुण पारिणामिकभाव है और पर्याय में चार भाव है। एक रागादि उदयभाव, उसका ठरना उपशमभाव, कुछ-कुछ उदय और कुछ-कुछ (उपशम) ये क्षयोपशमभाव और क्षायिकभाव—ये चार भाव पर्याय में हैं। गुण और द्रव्य पारिणामिकभाव है। अब इस चार भाव में मोक्ष किस भाव से होता है? तो वहाँ कहा कि, उदयभाव से मोक्ष नहीं होता। उदयभाव तो बन्ध का कारण है। वहाँ संस्कृत टीका में पाठ लिया है **'बन्ध कारणा उदयभावा:'** अब तीन भाव रहे—उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक ये मोक्ष का कारण है। वह पर्याय मोक्ष का कारण है। मोक्ष का मार्ग है न? मार्ग है, वह पर्याय है और मोक्ष भी पर्याय है। आहाहा! यह मोक्ष का मार्ग जो है, यह उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक तीन भाव से है। समझ में आया?

चौथे गुणस्थान में क्षायिक समकित होता है। वह भी क्षायिकभाव है, पर्याय है। समझ में आया? श्रेणिक राजा बौद्ध थे। उसमें उन्हें मुनिपना का योग हुआ, तब समकित हुआ—आत्मज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन (हुआ)। बाद में समवसरण में गये और उसमें क्षायिक समकित हुआ। वह तो अपने से हुआ है, हों! वह कोई भगवान से हुआ नहीं। क्षायिक समकित!! ओहोहो! हजारों देश और हजारों राजा जिन्हें चँवर ढाले और जिनके इन्द्र जैसे मित्र (हैं)। समझ में आया? वे ऐसा देखते हैं कि—'मैं तो पूर्णानन्दस्वरूप शुद्ध (हूँ)', ऐसी क्षायिक समकित दशा हुई कि, जो दशा फिर पलटे नहीं। पलटे नहीं अर्थात् अभाव नहीं हो। पर्याय है तो पलटे सही परन्तु उसका अभाव हो जाए और मिथ्यात्व हो जाए, ऐसा है नहीं। आहाहा!

वे क्षायिक समकिती (थे)। परन्तु नरक का आयुष्य बँध गया था। जो नरक में गये, वहाँ भी है तो क्षायिक समकित। श्रेणिक राजा! आहाहा! समझ में आया? वहाँ भी समय-समय में तीर्थंकरगोत्र बँधते हैं। नरक में भी! इतना तो वहाँ शील है। शीलपाहुड़ में

आया है। अष्टपाहुड़ है न? उसमें शीलपाहुड़ में आया है कि नरक में भी शील है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और स्वरूपाचरणरूपी शील तो वहाँ भी है। और यहाँ से निकल कर तीर्थंकर होंगे, ये शील का प्रताप है, ऐसा कहते हैं। शील अर्थात् पंचम गुणस्थान—छठे गुणस्थान में शील है। वह तो विशेष है (परन्तु) यह तो चौथे गुणस्थान में शील है। स्वरूप आचरण की दृष्टि हुई, स्वरूप की प्रतीति हुई, स्वरूप का अनुभव हुआ, और जितना अनन्तानुबन्धी गया, इतनी स्वरूप में लीनता भी हुई। आहाहा! नारकी में भी शील है। शील अर्थात् यह ब्रह्मचर्य, दशा नहीं। समझ में आया? और नवमीं ग्रैवेयक में (गया) 'मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रैवेयक उपजायो' तो उसके पास शील नहीं था। आहाहा! पंच महाव्रत और राग, वह तो अशील भाव है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि, (११) कर्ता आदि छह कारक अभिन्न हैं। क्या कहा? दृशिशक्ति जो है, यह गुण है और दृशिवान जो आत्मा है, उस पर जब दृष्टि हुई तो अनुभव में दृशिशक्ति की पर्याय में षट्कारक का परिणमन अपने से होता है। देखने की पर्याय का कर्ता देखने की पर्याय, देखने की पर्याय कर्म, देखने की पर्याय करण, देखने की पर्याय सम्प्रदान, पर्याय करके पर्याय रखी, पर्याय में से पर्याय हुई, पर्याय के आधार से पर्याय हुई, आहाहा! ऐसी बात है। अन्धी दुनिया फुदक्का मारकर अन्दर पड़ी है और संसार में भटकती है। आहाहा! कहते हैं कि एक-एक शक्ति में षट्कारक अभिन्न है। उसमें पर की अपेक्षा नहीं। आहाहा!

(१२) एक-एक शक्ति में अनन्त शक्ति का रूप है। ज्ञान 'है' तो अस्तिगुण है, यह गुण तो भिन्न है। परन्तु ज्ञान 'है', ऐसा अस्तित्व भी ज्ञान में है। इसे अस्तित्वगुण का रूप कहने में आता है। गुण के आश्रय से गुण नहीं। एक शक्ति के आश्रय से दूसरी शक्ति नहीं। द्रव्य के आश्रय से शक्ति है। अस्तित्वगुण के आश्रय से ज्ञान है, ऐसा नहीं। ज्ञान अपने से है, ऐसा अस्तित्वगुण का रूप अपने से अपने में है। अरे...! ऐसी बातें अब। मार्ग ऐसा है, भगवान! आहाहा!

जन्म-मरण के चौरासी के अवतार, स्वर्ग का भव कर-करके मर गया। स्वर्ग में भी पराधीनता और दुःख है। ये राजा—सेठ लोग तो सब दुःखी हैं। परन्तु इन्द्र, देव भी जो समकित बिना के हैं, वे सब दुःखी हैं। आहाहा! राग के भाव में लीन है। चाहे तो अशुभ

हो या शुभ हो। वे सब दु:ख में ही लीन हैं। आहाहा! आनन्द का नाथ भगवान... यह अब सुखशक्ति में आयेगा।

यहाँ तो कहते हैं, एक-एक शक्ति में अनन्त शक्ति का रूप है।

(१३) जन्मक्षण है वही नाश क्षण है। क्या कहते हैं? दृशिशक्ति को धारण करनेवाला आत्मा, (उस) द्रव्य पर जब दृष्टि हुई तो दृशिशक्ति की पर्याय में देखने की पर्याय उत्पन्न हुई, यह उसकी उत्पत्ति का जन्मक्षण है और उसी क्षण में पूर्व की पर्याय का नाश का क्षण है। समय तो एक ही है। आहाहा!

(सब) अपने-अपने से होता है। यह दूसरी बात है। यह दृशिशक्ति जो है, उसका धरनेवाला भगवान आत्मा है। पुण्य-पाप और विकल्प से लक्ष्य छोड़कर, चैतन्य पर दृष्टि पड़ती है तो उस क्षण में दृशिशक्ति की उत्पत्ति हुई। यह उत्पाद के कारण से उत्पत्ति हुई—यह ध्रुव के कारण से नहीं और पूर्व की पर्याय के नाश के कारण से नहीं। इसमें अभ्यास करना पड़ेगा। वह भटकने का किया है। नौकरी में पैसा मिले पाँच-पचास हजार-लाख तो ओहो! हो जाए। वह तो धूल-धाणी है। कहो, पोपटभाई! यह बड़े गृहस्थ को बारह महीने में दो-पाँच-दस लाख की कमाई हो, उसमें धूल में क्या? वह कमाई है या नुकसान है? यहाँ तो कहते हैं कि, अपने-अपने अवसर से होती है। बाद में तो साधारण भाषा है।

यहाँ अपनी दृशिशक्ति। **अनाकार उपयोगमयी दृशिशक्ति।** ज्ञानमय आत्मा कहा तो ज्ञानमयी में ज्ञान की पर्याय जो आनन्द के साथ हुई, तो दृशिशक्ति की पर्याय साथ में उत्पन्न हो गयी, आहाहा! समझ में आया? दुनिया के अभ्यास के लिये एल.एल.बी. और बी.ए. के डिग्री के लिये १०-१०, १५-१५ वर्ष अभ्यास किया। ऐ वकील! यह डॉक्टर, एम.ए. का अभ्यास करे, उसको एल.एल.बी. का, पाँच-पाँच, दस-दस, पन्द्रह वर्ष करे, अकेला पाप का अभ्यास। इस अभ्यास के लिये फुरसत नहीं मिलती। आहाहा!

मुमुक्षु : यह अभ्यास करने से क्या मिलेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें आनन्द मिलेगा। उसमें दु:ख का निमित्त मिलेगा। दु:ख मिलेगा, ऐसा नहीं कहा।

मुमुक्षु : रोटी मिलेगी ऐसा नहीं कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : रोटी दु:ख की है? रोटी जड़ है। कहाँ आयी रोटियाँ? वह तो अपने आता है न? खानेवाले का दाने-दाने पर नाम है। आता है? उसका क्या अर्थ? जो रजकण जिसके पास आनेवाला है, वह आयेगा ही और नहीं आनेवाला, नहीं आयेगा। प्रयत्न करता है, इसलिए आयेगा और नहीं करे तो नहीं आयेगा, ऐसा है ही नहीं। ऐसा कहते हैं? अपने काठियावाड में ऐसी कहावत है कि 'खानेवाले का दाने-दाने पर नाम है।' तुम्हारे हिन्दी में क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : दाने-दाने पर लिखा है खानेवाले का नाम।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम लिखा है वहाँ? जो रजकण और जो परमाणु दाल, चावल, पैसा आदि जिसके पास आनेवाला है, वह आयेगा, आयेगा और आयेगा ही। उसके प्रयत्न से नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो दृशिशक्ति की बात चलती है न? आहाहा! अनाकार उपयोगमयी परिणमन जो हुआ तो साथ में आनन्द का अनुभव है। अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय के साथ अनाकार उपयोग की परिणति होती है। यह क्रमवर्ती पर्याय और अक्रमगुण के समुदाय को आत्मा कहते हैं। दृष्टि में (ऐसा) आत्मा लेना, ये इसका सार है। सारे कथन का सार—ज्ञायकभाव पर दृष्टि करना, यह उसका सार है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ५, शक्ति-३ से ५, सोमवार, (द्वितीय) श्रावण शुक्ल १, दिनांक १५-०८-१९७७

समयसार। शक्ति का अधिकार (चलता है)। थोड़ा सूक्ष्म है, भगवान! शान्ति से सुनना। यह तो आत्मा की अन्तर की बात है। भाई! आत्मा का (हित) करने की बात है। दुनिया समझे या न समझे, दुनिया मान दे, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं।

दृशिशक्ति। **अनाकार उपयोगमयी दृशिशक्ति।** कल चली तो है। थोड़ा फिर से लेते हैं। क्या कहते हैं? भगवान आत्मा में एक दृशिशक्ति—दर्शनशक्ति है। यहाँ श्रद्धाशक्ति की बात नहीं (है)। यह दृशिशक्ति यह ज्ञान—दर्शन। दृशिशक्ति का पर्याय में उपयोग—देखना। यह दृशिशक्ति है। दृशिशक्ति को धरनेवाला द्रव्य जो है, उस दृशिशक्ति से अपने द्रव्य को, गुण को देखना, पर्याय में देखना। पर्याय में अनन्त गुण और अपनी दृशिशक्ति और द्रव्य, ये पर्याय में / उपयोग में देखने में आता है। परन्तु इस उपयोग में द्रव्य-गुण-पर्याय आते नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। भगवान!

आत्मा में दृशि नाम की शक्ति है। उस शक्ति को देखना, इसमें आनन्द है। आहाहा! समझ में आया? यह दृशिशक्ति गुणरूप है और इस दृशिशक्ति को देखते हैं, तब वह दृशिशक्ति द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्याप्य हो जाती है। सूक्ष्म है, भगवान! आहा! इस दृशिशक्ति की पर्याय में दृशि गुण और द्रव्य, और दृशिशक्ति की पर्याय में अनन्त पर्याय को देखना, गुण को देखना, द्रव्य को देखना, अनन्त द्रव्य, गुण पर्याय को देखना, निराकारपने देखना। आहाहा! समझ में आया? पर को देखने से उसमें—दर्शन उपयोग में साकार (पना) हो जाना है, ऐसा नहीं है। देखने की पर्याय की ताकत ही इतनी है। आहाहा! समझ में आया? यह तो अपने घर की बात है, भाई! यशपालजी! ऐसी बात है।

पुण्य-पाप का विकार भी दृशिशक्ति में अभेद से देखने में आता है—भेद से नहीं। ऐसी दृशिशक्ति की पर्याय में इतनी ताकत है। आहाहा! दृशिशक्ति और उसके साथ अनन्त गुण और एकरूप द्रव्य, (यह) सब दृशिशक्ति में देखने में आता है। फिर भी इस देखने की पर्याय में यह द्रव्य, गुण, पर्याय आते नहीं। सूक्ष्म बात है। यह तो पहले से कहा था। ऐसी बात! यह मनुष्यपना कब मिले? आहाहा! और यह अन्तर से कब देखे?

इस दृशिशक्ति को देखने से द्रव्य देखने में आता है और पर्याय भी देखने में आती है, अनन्त द्रव्य, गुण, पर्याय भी भेद से नहीं परन्तु अभेद से देखने में आते हैं। आहाहा! अर्थात् **'अनाकार उपयोगमयी'** ऐसा कहा न ? उसमें आकार अर्थात् विशेष—ये द्रव्य है, गुण है और पर्याय है, ऐसा विशेष नहीं। आहाहा! समझ में आया ? वस्तु ऐसी ही है, भाई! बहुत सूक्ष्म, भाई! ज्ञानचन्दजी! आहाहा!

दृशिशक्ति को देखनेवाला द्रव्य को देखता है, अनन्त गुण को देखता है, तो इसमें आनन्द को भी देखता है। आहाहा! यह तो अपने (को) देखने की बात है। भाई! समझ में आया ? पर को देखना होता है, परन्तु विशेषरूप देखना नहीं होता। सामान्यरूप निराकार उपयोग में स्व (और) पर का निराकारपने, दृशि की पर्याय में अनाकार उपयोगमय दशा हो जाती है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! अन्तर की चीज़ को पहुँचना, बापू! यह बड़ी बात है। यह कोई साधारण बात नहीं (है)। कुछ जानपना कर लिया। ग्यारह अंग का जानपना कर लिया (इसलिए) देखने में आता है, ऐसी ये चीज़ नहीं है। आहाहा! समझ में आया ?

कहते हैं, **'अनाकार उपयोगमयी'** आहाहा! उपयोग तो त्रिकाल है। परन्तु जब अनाकार उपयोग का पर्याय से देखना हुआ। पर्याय से देखने में आता है न ? या द्रव्य-गुण से देखने में आता है ? द्रव्य-गुण तो ध्रुव है। आहाहा! यह अनाकार उपयोगमयी पर्याय में अनन्त द्रव्य, गुण और सर्व द्रव्य-गुण की दृश्य पर्याय में अदृश्य अर्थात् दृश्य नहीं, उसमें ऐसी सब शक्ति हैं। उसको भी दृशिशक्ति अनाकार उपयोगमयी में देखती है। उसके साथ अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद भी साथ में आता है। उसका रूप आता है, उसका लक्षण नहीं आता। क्या कहा ? दर्शन उपयोग में अनन्त गुण का रूप है, वह ख्याल में आ जाता है। परन्तु उस गुण का लक्षण है, वह दृशिशक्ति के उपयोग में आता नहीं। उसका लक्षण नहीं आता। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा अनाकार उपयोगमयी (दृशिशक्ति है)।

(जिसमें ज्ञेयरूप आकार अर्थात् विशेष नहीं है...) सब जानने में आता है परन्तु आकार /विशेष नहीं है। यह निर्विकल्प / निराकार (दृशिशक्ति) जो है, यह सविकल्प ज्ञान को देखती है, तो अनाकार (उपयोग) सविकल्प हो जाता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ज्ञानस्वरूप है, वह तो सविकल्प है, स्व-पर को जानने की शक्ति रखता है।

ज्ञान का और अनन्त गुण को और द्रव्य को इस दृशि उपयोग में देखने में आता है, इसलिए उस दृशिशक्ति का उपयोग साकार हो जाए, ऐसा है नहीं। अरे.. अरे! ऐसी बातें हैं। धन्नालालजी! समझ में आया?

(दर्शनोपयोगी-सत्तामात्र पदार्थ में...) दर्शन उपयोगमयी सत्ता (अर्थात्) मौजूदगीपना—ऐसे पदार्थ में—**(उपयुक्त होनेरूप-दृशिशक्ति अर्थात् दर्शनक्रियारूप शक्ति।)** आहाहा! (यहाँ) क्रिया को दर्शनक्रियाशक्ति कहा, उसका परिणमन होता है, वह क्रिया, परन्तु दृशिशक्ति को ही क्रियारूप कहा। समझ में आया? भाई! यह तो अपने गुण के खजाने की बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : ख्याल पर्याय में आता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ख्याल पर्याय में आता है परन्तु पर्याय में ख्याल आने पर भी पर्याय निराकार है, साकार नहीं / विशेष नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : शक्ति को क्रियारूप क्यों कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण है न, उसे क्रियारूप कहा क्योंकि परिणमन में उसकी परिणति होती है न? इसलिए उसे क्रियारूप कहा। (शक्ति) है तो ध्रुव। परन्तु उसका परिणमन होता है, यह भी दृशिशक्ति की एक क्रिया है, स्वरूप ऐसा है, आहाहा! बहुत भारी बात। यह कोई धारणा में लेकर दूसरे को कहना है और दूसरे को विस्मयता प्राप्त कराते हैं, आहाहा! यहाँ ये बात नहीं है, प्रभु! स्वयं को अन्दर में विस्मित प्राप्त कराने की बात है। आहाहा!

ऐसी अद्भुत आश्रयभूत शक्ति, अकेले पर को देखती है, यह दृशिशक्ति का रूप ही नहीं। दृशिशक्ति स्व सहित पर को पूर्ण सत्ता का निराकारपने पर्याय में भास होता है, उसका नाम दृशिशक्ति का पर्याय / परिणमन कहने में आता है। आहाहा! ऐसी बात है। बहुत सूक्ष्म बात है। अरे रे! आहाहा! अनन्त काल से वह भटकता है। कुछ-कुछ अटकने के स्थान में रहकर पड़ा है। यह तीसरी शक्ति हुई। अब चौथी (शक्ति)।

साकारोपयोगमयी ज्ञानशक्तिः।

साकार उपयोगमयी ज्ञानशक्ति। (जो ज्ञेय पदार्थों के विशेषरूप आकारों में उपयुक्त होती है, ऐसी ज्ञानोपयोगमयी ज्ञानशक्ति।)।४।

साकार उपयोगमयी ज्ञानशक्ति। देखो! ओहोहो! अध्यात्म पंचसंग्रह है न? अध्यात्म पंच संग्रह, उसमें ऐसा लिया है कि ओहोहो! एक समय की पर्याय में दृशिशक्ति का उपयोग कोई भी भेद किये बिना पूर्ण देखे और इस दृशिशक्ति के परिणमन (के) साथ में ज्ञानशक्ति का जो परिणमन है, वह परिणमन एक-एक द्रव्य भिन्न, गुण भिन्न, पर्याय भिन्न, एक पर्याय में अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद भिन्न, ऐसा एक समय की ज्ञान की पर्याय सारा भिन्न को देखे और उसी समय दृशि का उपयोग भिन्न किये बिना अभेदता को देखे। ऐसी कोई दोनों की अद्‌भुतता है। उसमें ऐसा लिया है। अद्‌भुत रस में (ऐसा) लिया है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं, बापू! पुण्य-पाप की क्रिया तो कहीं रह गयी। यह दया, दान, व्रत, भक्ति और पूजा, उपदेश देना और उपदेश सुनना, उसमें लाभ है, वह तो कहीं रह गया। बापू! वह तो विकल्प है, राग है, भाई! आहाहा!

यहाँ तो जो साकार उपयोगमयी ज्ञान है। जिस समय दृशिशक्ति है, उसी समय साथ में ज्ञानशक्ति है। ज्ञानशक्ति में अनन्त शक्ति का रूप है। अनन्त शक्ति का लक्षण नहीं। समझ में आया? आहाहा! परन्तु साकार उपयोग का ज्ञानशक्ति में रूप है। यह साकार उपयोग जब अपने को जानता है, तो अनन्त गुण, द्रव्य—त्रिकाली वस्तु को (जानता है)। भले श्रुतज्ञान का उपयोग हो, तो भी पर्याय का (अर्थात्) श्रुतज्ञान की पर्याय का धर्म अर्थात् सामर्थ्य इतना है कि अपना त्रिकाली द्रव्य, त्रिकाली गुण अपनी अनन्त पर्याय और अनन्त परद्रव्य, गुण, पर्याय सबको ज्ञान की पर्याय एक समय में जानती है, ऐसी उसकी ताकत है। समझ में आया? ऐसी बात है, बापू! आहाहा!

साकार उपयोगमयी ज्ञानशक्ति। ऐसा तो बहुत बार कहा है कि जो वर्तमान ज्ञान की पर्याय है... समयसार १७-१८ गाथा। ज्ञान की पर्याय में स्वज्ञेय-पूर्ण आनन्द का नाथ (ही) पर्याय में ज्ञेयरूप जानने में आता है। क्या कहा? कि ज्ञान की एक समय की पर्याय में... यह तो बहुत बार कहा था। १७-१८ गाथा। यह जरा दृशिशक्ति का सूक्ष्म था।

ज्ञानशक्ति में, जैसे दृशिशक्ति की पर्याय में द्रव्य, गुण और सबका देखना होता है, परन्तु दृशिशक्ति में साकारपना नहीं आता है। वैसे ज्ञान तो ऐसी चीज़ है कि पूर्ण स्वद्रव्य, त्रिकाली गुण, अपनी पर्याय और इसके अतिरिक्त अनन्त पर्याय, अनन्त सब द्रव्य, गुण, पर्याय एक समय में साकार अर्थात् विशेषरूप से परिणमन करना, यह साकार उपयोगमयी शक्ति का कार्य है। आहाहा! फिर से। मार्ग, बापू! सूक्ष्म भाई! समझ में आया? अभी तो बहुत गड़बड़ हो गयी है। क्या हो? ज्ञानचन्दजी गड़बड़ होती है, ऐसी बात नहीं करते, अस्ति से कहते हैं, ऐसा है—ऐसा है... समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो दोनों बात चलती हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में अनन्त गुण सम्पन्न द्रव्य जो है, उसको ज्ञान की शक्ति का परिणमन, शक्ति तो ध्रुवरूप है। परन्तु ध्रुवरूप का लक्ष्य करने से द्रव्य, गुण में तो ज्ञानशक्ति व्यापक है परन्तु उसका लक्ष्य करने से पर्याय में भी ज्ञानशक्ति व्यापक हो गई, आहाहा! एक बात।

अभव्य को ज्ञान परिणति नहीं है। ज्ञान के क्षयोपशम का अंश है। समझ में आया? परन्तु मिथ्यादृष्टि है, आहाहा! इसलिए ज्ञान की परिणति नहीं है। ज्ञान की परिणति तो सम्यग्दृष्टि को ही होती है। आहाहा! समझ में आता है? ज्ञान की पर्याय में... आहाहा! अज्ञानी की ज्ञान की पर्याय में भी सारा ज्ञेय-द्रव्य जानने में आता है, ऐसा पाठ है। क्योंकि ज्ञान की पर्याय का...। गुण है, वह तो ध्रुव है। ध्रुव जानने की शक्ति रखता है। परन्तु उसमें जानने का कार्य नहीं। जानने का कार्य जो होता है, वह पर्याय में होता है। आहाहा! समझ में आया? उस पर्याय का जानने का कार्य—अज्ञानी को भी (ज्ञान की) पर्याय में स्वद्रव्य ही जानने में आता है, ऐसा आचार्य (भगवान) कहते हैं। परन्तु अज्ञानी की दृष्टि पर्याय, पर, राग और पर के ऊपर है। वर्तमान क्षयोपशमज्ञान जो हुआ, उस पर उसकी दृष्टि है। उस कारण से पर्याय में ज्ञेय-ज्ञायक पूर्ण जानने में आने पर भी उसको ख्याल में नहीं आता है। समझ में आया? आहाहा!

'साकार उपयोगमयी' उपयोगमयी हों! ऐसी भाषा ली है, उपयोगस्वरूप ऐसा भेद भी नहीं। साकार उपयोगमयी अभेद लेना है, आहाहा! भगवान आत्मा वस्तु है, उसमें

एक साकार उपयोगमयी शक्ति अभेद है। शक्ति और शक्तिवान कोई भिन्न-भिन्न नहीं है। उसके प्रदेश भिन्न नहीं। शक्ति और द्रव्य—जो शक्तिवान, दोनों के प्रदेश भिन्न नहीं। आहाहा! उसकी ज्ञान की पर्याय में उसका जो उपयोग होता है, यह ज्ञान की पर्याय स्वद्रव्य को पूर्ण जानती है। फिर भी इस पर्याय में वह द्रव्य आता नहीं। परन्तु जानने की ताकत आ गयी। उसे पर्याय के प्रदेश भी द्रव्य-गुण से भिन्न हैं। समझ में आया?

शक्ति का अधिकार बहुत सूक्ष्म है, भाई! आहाहा! यह तो अपने हित के लिये बात है। समझ में आया?

अपना हित तो तब होगा—जब ज्ञान की पर्याय ज्ञान को और द्रव्य को सन्मुख होकर जाने और उसका स्वभाव भी ऐसा है, अज्ञानी को भी उस ज्ञान की पर्याय में द्रव्य ही जानने में आता है। परन्तु लक्ष्य वहाँ नहीं। समझ में आया? लक्ष्य पर्याय ऊपर और राग ऊपर है, इसलिए पर्याय में सारा द्रव्य जानने में आता होने पर भी उसके ज्ञान में आया नहीं। आहाहा! ज्ञान जब अपने को जानता है, तब तो पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान की पर्याय साकार उपयोगमयी (है)। साकार अर्थात् विशेषरूप से सब द्रव्य-गुण को भेद से, दूसरे द्रव्य-गुण को भी भेद से, अपनी एक-एक पर्याय भी भेद से, साकार अर्थात् विशेषरूप से जाने, ऐसा जानने का ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है, आहाहा!

यह ज्ञान की पर्याय जब अपने को जानती है, तो इस पर्याय में द्रव्य, गुण का सामर्थ्य कितना है—इतना पर्याय में (प्रतीति) में आया। पर्याय में द्रव्य (और) गुण आया नहीं। परन्तु द्रव्य-गुण की कितनी ताकत है, वह सब ज्ञान की पर्याय में आ गया। ऐसी पर्याय में तो अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। उसका नाम सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की पर्याय में अपने को देखा-जाना, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! क्या हो ज्ञेय? आहाहा! समझ में आया?

साकार उपयोगमयी ज्ञानशक्ति। (जो ज्ञेय पदार्थों के विशेषरूप...) विशेषरूप —भेद से स्व-पर ज्ञेय दोनों। **(आकारों में उपयुक्त होती है, ऐसी ज्ञानोपयोगमयी ज्ञानशक्ति।)।** आहाहा! ज्ञानशक्ति भी क्रमरूप परिणमती है, वह पर्याय (हुई)। अक्रमरूप

रहते हैं, वे गुण, और गुण और पर्याय का समुदाय, अक्रम और क्रम का समुदाय, वह आत्मा (है)। समझ में आया? यह ज्ञानशक्ति है, वह पारिणामिकभाव है, सहज स्वभावभाव है, सहज है। आहाहा! परन्तु यह पारिणामिकभाव है, उसकी सत्ता का पर्याय में स्वीकार हुआ तो पारिणामिकभाव है, ऐसा भान हुआ। है तो सही, परन्तु 'है' उसका परिणमन में भास आया तो यह है, उसका ख्याल आया; नहीं तो नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं, बापू! यहाँ तो ऐसी बातें हैं। बाल की खाल (उतारने जैसा है) बात तो सत्य है। आहाहा! भाई! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। उसका स्वरूप ही ऐसा है, भाई!

ज्ञान की पर्याय द्रव्य-गुण को जाने, फिर भी वह पर्याय द्रव्य-गुणरूप होती नहीं, ऐसी जिसमें ताकत है, आहाहा! उस ताकत को देखे-जाने और द्रव्य-गुण को जाने, उसको अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव हुए बिना रहे नहीं। यह अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना, उसका नाम धर्म और सम्यग्दर्शन है। यशपालजी! मार्ग ऐसा है। भाई! लोग 'एकान्त... एकान्त है... सोनगढ़ का एकान्त है...' ऐसा (कहते हैं)। अरे प्रभु! तू क्या कहता है? एक बार आठ-दस दिन सुन तो सही नाथ! आहाहा! भाग्य बिना सुनने में आता नहीं, आहाहा!

यह ज्ञानशक्ति अनन्त गुण में निमित्त है और ज्ञानशक्ति अनन्त गुण में व्यापक है और ज्ञानशक्ति ध्रुव उपादानसहित है। त्रिकाली शक्ति ध्रुव है और परिणमन में उसका ख्याल आया, यह क्षणिक उपादान है। क्षणिक उपादान में ख्याल आता है। कल कहा था न? अनित्य से नित्य का ज्ञान होता है। आहाहा! पर्याय नित्य है? अनित्य है। समझ में आया? यह तो भगवान की—केवलज्ञान की कोर्ट है, प्रभु! यह तो केवलज्ञान की कॉलेज है, तो कॉलेज में तो समझना थोड़ा सूक्ष्म पड़ेगा न? थोड़ा समझ में आया हो तो उसकी समझ में आता है। ऐसी बात है, भाई! आहाहा!

ज्ञानशक्ति अपने द्रव्य को जानती है तो पर्याय में... आहाहा! व्यवहार का अभाव होता है। जिसको लोग व्यवहाररत्नत्रय कहे, उसका (अभाव होता है)। ज्ञानशक्ति का भान हुआ और ज्ञान ने अपने द्रव्य को देखा, गुण को जाना और अपनी पर्याय को जाना, उस समय में आनन्द की पर्याय उत्पन्न हुई, उसमें राग का अभाव है। उसमें व्यवहाररत्नत्रय

का अभाव है, यही अनेकान्त और स्याद्वाद है, आहाहा! व्यवहार से भी धर्म होता है और निश्चय से भी धर्म होता है, तो यह अनेकान्त है, अभी सब ऐसा कहते हैं। बहुत जोर है। आहाहा! समझ में आया? भाई! क्या करे, बापू!

यहाँ तो शक्ति का वर्णन है। शक्ति उसका गुण है और गुण को धरनेवाला गुणी है। उस गुणी पर दृष्टि हो तो शक्ति विकाररूप परिणमे, ऐसा है ही नहीं। व्यवहाररत्नत्रयरूप परिणमे, ऐसा शक्ति का कार्य ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? ये व्यवहार का विकल्प है। यह ज्ञानशक्ति धरनेवाले भगवान जाननेवाले को पर्याय जानती है-जाननेवाले की पर्याय जाननेवाले को जानती है, आहाहा! तब आनन्द की पर्याय में व्यवहाररत्नत्रय के राग का अभाव है, उसका नाम अनेकान्त कहने में आता है। ऐसा मार्ग है, भाई! वह भी दिगम्बर सन्तों ने जो स्पष्टता की, ऐसी बात कहीं है नहीं, समझ में आया? आहाहा!

इसमें आत्मा ख्याल करे तो समझ में आता है, ऐसी चीज़ है। और आचार्य कहते हैं तो समझने को कहते हैं कि नहीं समझ में आये, उसके लिये कहते हैं? तुम जान सकते हो, भगवान! ध्यान रखो! आहाहा! पानी की तृषा लगी हो तो, घर में घोड़ी हो, बैल हो दो-दो हजार का। उसको कहते हैं? कि पानी लाओ। उसको ख्याल है कि, उसे पानी लाने की खबर नहीं पड़ेगी। और आठ साल की लड़की हो, उसको कहते हैं कि बेटा! पानी लाओ। वह जानता है कि, मैं कहता हूँ (तो) वह समझेगी। आहाहा! वैसे आचार्य कहते हैं कि मैं जो कहता हूँ, वह समझेगा और उसको कहते हैं। हम शरीर को और राग को नहीं कहते हैं, जाननेवाला भगवान है, उसको हम कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

साकार उपयोगमयी... (ज्ञानशक्ति)। ओहोहो! इसमें कितना भर दिया है, ज्ञान की पर्याय जब ज्ञाता को जानती है, तब ज्ञान की पर्याय में कर्ता-कर्म षट्कारक का परिणमन अपने से होता है और ज्ञान की शक्ति में भी कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण ये षट्कारक का ज्ञानशक्ति में रूप है। समझ में आया? षट्कारक शक्ति है, वह ज्ञानशक्ति में नहीं परन्तु ज्ञान स्वतन्त्र कर्ता होकर (परिणमे, ऐसी) शक्ति उसमें है और कर्म अर्थात् ज्ञान की परिणति करता है, यह इसका स्वतन्त्र कर्म है। ये कर्ता

और कर्मशक्ति होने की शक्ति अपने में है। कर्ता और क्रियाशक्ति है, उसके कारण से नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया ?

ज्ञान गुण है, ऐसी स्वसन्मुख की पर्याय जब होती है, तब द्रव्य और गुण है, ऐसा ख्याल आया। है तो है ही। भाई! सूक्ष्म बात है। है तो है ही, (लेकिन) ख्याल में आया तब 'है'। समझ में आया ? यह ज्ञानशक्ति, आहाहा! स्व-परप्रकाशक प्रधान शक्ति है। आहाहा! अनन्त गुण में ये असाधारण शक्ति (है) कि जिस शक्ति के कारण... चिति और दृशि दोनों साथ लेना है, यह उपयोगमयी शक्ति, यह जीव है। और इस शक्ति की अपेक्षा से दूसरी शक्ति है, वह अचेतन है। क्योंकि श्रद्धा, चारित्र, आनन्द की शक्ति स्वयं है, वे स्वयं हैं— ऐसा वह नहीं जानती। वह शक्ति अपने को जानती नहीं। समझ में आया ? मार्ग ऐसा है, भाई! समझ में आये ऐसी बात है। भाषा तो सादी है, भगवान! अरे! अनन्त काल में कभी स्वसन्मुख हुआ नहीं और पर्याय का यथार्थ ज्ञान किया नहीं, आहाहा! समझ में आया ?

ज्ञान उपयोगमयी, उपयोग तो त्रिकाल है। परन्तु यह ज्ञान उपयोगमयी शक्ति है, उसको जब पर्याय में जाना, तो उस पर्याय में ज्ञानगुण, द्रव्य-गुण अनन्त गुण का साकार पर्यायरूप से / विशेषरूप से पर्याय में जानने का उपयोग हो गया। आहाहा! उसी समय उसको अनन्त आनन्द आता है। आहाहा! सुखसागर अमृत का सागर जहाँ (उछलता है)। ज्ञानशक्ति की पर्याय में जब पर्याय उछलती है, तो उसमें आनन्द आदि अनन्त शक्ति की पर्याय साथ में उछलती है। आहाहा! समझ में आया ? मार्ग तो ऐसा है, भाई! अभी तो मार्ग में फेरफार हो गया। ज्ञानचन्दजी ऐसा नहीं कहे। मीठे-मधुर व्यक्ति हैं न! ऐसा सुना है, हों! अस्ति से बात करते हैं कि ऐसा है। बात सच्ची। यहाँ तो अस्ति है और व्यवहार से नास्ति है, आहाहा! शक्ति चलती है न! तो अनेकान्त चर्चते हैं न! ऊपर क्या कहा ? अनेकान्त को अभी विशेष चर्चते हैं। तो उसका अर्थ यह है।

अपनी ज्ञानशक्ति द्वारा—पर्याय द्वारा, यह शक्ति है—द्रव्य है, ऐसा ज्ञान की पर्याय में उसे ज्ञेय बनाया, तब 'है' ऐसा ज्ञान हुआ। 'है' ऐसा ज्ञान होने से अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद भी उसी समय पर्याय में साथ में उछलता है, आहाहा! समझ में आया ? पोपटभाई! यह तुम्हारे पैसे-फैसे में सुनने मिले ऐसा है नहीं। इसलिए यह कहे न, हम यहाँ किसलिए

आते हैं। यहाँ पैसे-फैसे की कोई कीमत नहीं। यहाँ तो अकेले क्षयोपशम ज्ञान पर को जाने, उसकी भी कीमत नहीं। आहाहा! समझ में आया? हमारे रतनलालजी तो कहते हैं बाल की छाल खोलते हैं। यह तो छाल की छाल खोलते हैं। आहाहा! साकार उपयोग, आहा! ज्ञान की पर्याय अपने को जानती है, उस समय ज्ञान की पर्याय की उत्पत्ति हुई, यह उसका जन्मक्षण है। यह पर्याय में उत्पन्न होने का काल ही था। समझ में आया? और यह (पर्याय का) उत्पाद जो हुआ, ज्ञान के जानने से जो पर्याय में उत्पाद हुई, वह पूर्व की पर्याय के व्यय की भी अपेक्षा नहीं रखती है और उत्पन्न हुई पर्याय, वह ध्रुव की अपेक्षा नहीं रखती है। ध्रुव को जाने सही, परन्तु उसको ध्रुव की अपेक्षा नहीं। समझ में आया? ज्ञान की पर्याय, वह कारण और ज्ञान की पर्याय वह कार्य। आहाहा! ऐसा मार्ग है प्रभु का।

ज्ञानशक्ति। (जो ज्ञेय पदार्थों के विशेषरूप आकारों में उपयुक्त होती है, ऐसी ज्ञानोपयोगमयी ज्ञानशक्ति।)। यह चार (शक्ति) हुई। एक-एक में सब डालने जायें तो समय (कम पड़े)। थोड़ा-थोड़ा लिया। अब आयी आनन्द (शक्ति)।

अनाकुलत्वलक्षणा सुखशक्तिः।५।

अनाकुलता जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है, ऐसी सुखशक्ति।५।

अनाकुलता जिसका लक्षण है, ऐसी सुखशक्ति। आहाहा! क्या कहते हैं? आत्मा में एक अनाकुल आनन्द शक्ति पड़ी है। आहाहा! सत् चिदानन्द प्रभु। सत् अर्थात् शाश्वत् चित् और आनन्द शक्ति उसमें पड़ी है। अतीन्द्रिय आनन्द (शक्ति) त्रिकाल पड़ी है। द्रव्य जैसे त्रिकाल है, वैसे अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द की शक्ति ध्रुव—त्रिकाल है। आहाहा! परन्तु त्रिकाल आनन्द और त्रिकाल द्रव्य है, ऐसी आनन्द की पर्याय प्रगट होती है, तो इसमें 'यह आनन्द पूर्ण है', ऐसा ज्ञान आता है। समझ में आया? आहाहा!

सम्यग्दर्शन होता है, तब श्रद्धा तो श्रद्धा है। (ऐसा) क्यों आया? सुख है न! इसमें ४७ शक्ति में समकित और चारित्रशक्ति भिन्न नहीं ली है। क्या कहते हैं, वह समझो। ४७ शक्ति में समकितशक्ति और चारित्रशक्ति भिन्न ली ही नहीं। वह सुख शक्ति में समा दी है। समकित और चारित्र में सुख है तो दोनों उसमें समा दिया। आहाहा!

फिर से, यह ४७ शक्ति के जो नाम हैं, उसमें समकितशक्ति और चारित्रशक्ति आयी नहीं। ४७ में उनके नाम नहीं। उसमें समा दिया। क्योंकि दर्शनशक्ति जो त्रिकाली है, सम्यग्दर्शनशक्ति सम्यग्दर्शन पर्याय भिन्न (है)। त्रिकाली जो सम्यग्दर्शनशक्ति है, उस शक्ति की पर्याय स्व को और शक्ति को पर्याय में प्रतीति करती है। प्रतीति करती है, वह पर्याय है। किसको प्रतीति करती है ? शक्ति और शक्तिवान को। उसमें द्रव्य, गुण आते नहीं, परन्तु प्रतीति में द्रव्य, गुण का सामर्थ्य कितना है, वह सब प्रतीति में आ गया है। और समकित के साथ आनन्द है। इस कारण से सुख में समकितशक्ति और चारित्रशक्ति मिला दी है। आहाहा! समझ में आया ? नहीं तो सम्यग्दर्शन-चारित्र तो मुख्य चीज़ है। और ४७ में नाम तो आये नहीं। तो सुख में वह आ गया। क्योंकि सम्यग्दर्शनशक्ति है, वह त्रिकाली को पर्याय में प्रतीति करती है पर्याय में, हों! तो पर्याय में जब त्रिकाली को प्रतीत करती है तो साथ में आनन्द आता है, तो आनन्द आता है, वह सुखशक्ति का परिणमन है। श्रद्धाशक्ति का परिणमन सम्यक् पर्याय (है)। परन्तु आनन्दशक्ति का परिणमन—साथ में आनन्द आया, वह आनन्दशक्ति का परिणमन है। आहाहा!

यह कुछ समझना नहीं और करो व्रत, करो प्रतिमा, ले लो महाव्रत। कान्तिभाई! वह सरल पड़े। पूरे दिन बैंक में रहना और घर में स्त्री को (प्रसन्न रखना)। ऐसा कब समझने मिले ? आहाहा! भाई!

मुमुक्षु : चारित्र को चारित्र बनायेगा, तब आनन्द आयेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र जब होता है, तब चारित्र के साथ आनन्द आता है। इसलिए यह सुख में दोनों शक्ति समा दी हैं। चारित्र कोई ऐसा (दुःखदायी) नहीं। छहढाला में आता है न ? 'आतमहित (हेतु विराग ज्ञान, ते लखै आपकूं कष्टदान)' (दूसरी ढाल-गाथा ६) अन्दर में राग का अभाव और वीतरागता का (सद्भाव) (उसे) दुःखदायी मानता है। छहढाला में आता है।

यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! एक बार सुन तो सही! तीन लोक का नाथ, चिदानन्द भगवान, अनन्त गुण का सागर, अनन्त शक्ति का भण्डार, जिसकी एक-एक शक्ति में अनन्त शक्ति का रूप, एक-एक शक्ति में अनन्त-अनन्त शक्ति व्यापक हैं। ऐसे भगवान

को जब शक्ति देखती है, दृष्टि करती है और उसमें रमण करती है, तो आनन्द आता है। इसलिए आनन्दशक्ति में दोनों शक्ति समा दी हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन हो और आनन्द नहीं आये, ऐसी चीज़ है नहीं। ऐसा कहते हैं। हमें समकित तो है परन्तु आनन्द नहीं आया। वह बात ही झूठी है। आहाहा! समझ में आया? बहुत से कहते हैं न, हम समकिती हैं।

मुमुक्षु : जैन में जन्मे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : जैन में जन्मे.. वे कहते थे। एक इन्द्रलालजी थे, जयपुर। दिगम्बर जैन में जन्मे, वह समकिती तो है ही। अब उसको चारित्र अंगीकार करना। हमारे (सम्प्रदाय के) गुरु भाई भी ऐसा कहते थे। संवत् १९८० के वर्ष। ५६ वर्ष हुए। हम तो पढ़ते थे न! हजारों लोग आते थे न! हम बात करते थे, तो उनको रुचती नहीं। हम सम्प्रदाय में आ गये, इसलिए सम्प्रदाय की दृष्टि यहाँ है नहीं। तत्त्व क्या है? वह हमारी दृष्टि है। चातुर्मास के बाद उन्होंने सबको कहा, 'देखो भैया! हम लोगों को सम्यग्दर्शन तो गणधर जैसा मिला है।' जैसे वे इन्द्रलालजी कहते थे, वैसे हमारे गुरु भाई कहते थे। अपने को सम्यग्दर्शन तो गणधर जैसा मिला है। अब हम लोगों को अहिंसा आदि व्रत का चारित्र लेना, वह विशेष है, अरे! भगवान बापू! आहाहा! ऐसी चीज़ नहीं है। बापू! समकित ऐसी चीज़ नहीं (है)। आहाहा!

समकित की पर्याय पूर्णानन्द के नाथ को प्रतीत में लेती है, फिर भी पूर्णानन्द प्रभु श्रद्धा की पर्याय में आता नहीं। उसका सामर्थ्य कितना है—वह पर्याय में—श्रद्धा में आता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! क्लास में (आये हुए) लोग एकबार सुने तो सही, क्या चीज़ है? समझ में आया? ...व्याख्यान सुने... हम तो विशेष निषेध करते हैं। स्त्रियों को क्लास में बिल्कुल बैठना नहीं। हमारा पहले से नियम है। समझ में आया? आत्मधर्म में भी पहले दिया था। यह क्लास आदमियों (पुरुषों) का है, स्त्रियों का नहीं। यहाँ दूसरी गपशप नहीं, यहाँ तो सीधी बात है। कहाँ गये? सेठ आये नहीं? शोभालाल। समझ में आया? आहाहा! शोभालाल तो यह आत्मा है। सम्यग्दर्शन से पूरे पूर्ण आत्मा को प्रतीत करे, यह उसकी शोभा है। समझ में आया?

अकेले सम्यग्दर्शन से कोई मुक्ति नहीं होती। समझ में आया? यद्यपि उसको

मोक्षमार्ग कहा है। छहढाला में आया है न? तीनों शिवमगचारी (हैं)। चौथे, पाँचवें और छठे (गुणस्थान में) सम्यग्दृष्टि है, वह तीनों शिवमगचारी है। फिर भी शिवमगचारी में छठे (गुणस्थान में) चारित्र है, वहाँ पूर्ण है। वैसे तो चारित्र की पूर्णता चौदहवें (गुणस्थान में) आखिर में होती है। परन्तु स्वरूप की दृष्टि / अनुभव हुआ और आनन्द का वेदन हुआ, उसके साथ चारित्र की रमणता हुई, तो छठे-सातवें (गुणस्थान में) चारित्र गिनने में आता है। मोक्षमार्ग तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों होकर होता है। अकेले सम्यग्दर्शन-ज्ञान से मुक्ति होती है, ऐसा नहीं। चारित्र तो साथ में होता ही है। न ले सके वह दूसरी बात है। आहाहा! श्रेणिक महाराजा जैसे क्षायिक समकिती चारित्र न ले सके। परन्तु प्रतीत में तो ऐसा था कि स्वरूप की रमणता-चारित्र होगा, तब मुक्ति होगी। समझ में आया? है? श्रेणिक राजा।

अरे! ऋषभदेव भगवान (का दृष्टान्त) लो, चौरासी लाख पूर्व (की आयु), तिरासी (८३) लाख पूर्व गृहस्थाश्रम में रहे। चारित्र नहीं था। तीर्थंकर-क्षायिक समकित, तीन ज्ञान लेकर आये (थे)। तो भी चारित्र बिना तिरासी लाख पूर्व (गृहस्थाश्रम में) रहे। चारित्र नहीं था। एक पूर्व में ७० लाख करोड़ और ५६ हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। ऐसा-ऐसा तिरासी लाख पूर्व (तक) चारित्र नहीं था। शास्त्र में इतना लिया है कि आठ वर्ष की उम्र में बारह व्रत लेते हैं। ऐसा एक जगह आता है शास्त्र में आता है। पंचम गुणस्थान, ऐसा कहते हैं। क्या कहलाता है? पंचम गुणस्थान। आठ वर्ष के हों तब। क्या कहलाता है? पुराण में, किसी एक पुराण में आता है। यह आता है। नाम भूल जाते हैं। यह आता है। उत्तरपुराण। उत्तरपुराण में आता है कि, जितने तीर्थंकर हो, सब समकित लेकर तो आते हैं, परन्तु आठ वर्ष की उम्र में वे बारह व्रत धारण करते हैं, ऐसा आता है। उत्तरपुराण में आता है। फिर भी करोड़ों वर्ष—अरबों वर्ष वहाँ रहे (लेकिन) चारित्र नहीं था। वहाँ (चारित्र का) अंश है। चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण चारित्र था। परन्तु जो चारित्र छठे-सातवें (गुणस्थान का) चाहिए, वह नहीं था। उसमें तो महान-महान पुरुषार्थ (होता है)। सम्यग्दर्शन से भी चारित्र का तो महान पुरुषार्थ है। नग्न हो जाना और पंच महाव्रत धारण कर लेना, वह कोई चारित्र नहीं (है)।

स्वरूप आनन्द के नाथ (की) रमणता में रममाण हो जाना, आहाहा! आनन्द के

नाथ में / आनन्द में मशगूल—तन्मय हो जाना, उसका नाम चारित्र है। पंच महाव्रत आदि तो अचारित्र है। आहाहा! यहाँ तो अभी पंच महाव्रत का भी ठिकाना नहीं है और मानते हैं कि चारित्र है। जब नववीं ग्रैवेयक गये थे—'मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रैवेयक उपजायो, पण आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो'—ग्यारह अंग पढ़े थे, पंच महाव्रत धारण किये थे, अट्ठाईस मूलगुण चुस्त पालते थे, प्राण जाए तो भी उसके लिये आहार / भोजन बनाया, उसे तो लेते नहीं थे। ऐसे क्रियाकाण्ड के शुक्ललेश्या के भाव थे। परन्तु आतमज्ञान बिन लेश सुख न पाया; तो ये सब दुःख था। पाँच महाव्रत का परिणाम, यह राग है, दुःख है और आस्रव है। वह चारित्र नहीं।

मुमुक्षु : चारित्र के साथ तो (पंच महाव्रत) होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हों तो भले हों, वह तो व्यवहार आता है परन्तु है दुःख, है जग पन्थ, इतना संसार है। आहाहा! उसमें आया है भाई! पंचसंग्रह में आया है कि ज्ञानी को भी जितना राग आता है, (वह) सब संसार है। समयसार नाटक में मोक्ष अधिकार में आता है। ४०वाँ श्लोक है।

यहाँ तो ये कहते हैं कि, सम्यग्दर्शन की खबर नहीं कि सम्यग्दर्शन कैसे उत्पन्न होता है? और हो तो कैसी दशा हो? उसकी खबर नहीं है। और व्रत इत्यादि अपनी कल्पना से लेकर नववीं ग्रैवेयक गया। तो यहाँ तो ऐसे व्रत भी नहीं और माने कि हमें चारित्र है, पंचम गुणस्थान है, छठा गुणस्थान है। मानो बापू! आहाहा!

स्वरूप की दृष्टि हुई और स्वरूप का ज्ञान हुआ, स्वरूप में लीनता-लीनता—रम जाना, इस आनन्द में अन्दर घुस जाना, आनन्द की उग्र पर्याय होना—उसका नाम चारित्र है। समझ में आया? तो ऐसे चारित्र बिना मुक्ति कभी नहीं होती। अकेले सम्यग्दर्शन-ज्ञान से मुक्ति नहीं होती। भले ही शिवमगचारी, ऐसा कहने में आता है। परन्तु आत्मा में चारित्र की रमणता (होना)। आहाहा! कोई नग्नपना ले लिया और पंच महाव्रत ले लिया, इसलिए चारित्र हो गया, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अन्तर में आत्मा का दर्शनपूर्वक, आनन्दपूर्वक, ज्ञानपूर्वक स्वसंवेदन होकर, आनन्द का रमण (होना, वह चारित्र है)। जिसके सुख के स्वाद के आगे इन्द्र के, करोड़ों इन्द्राणी के सुख भी ज़हर जैसे लगते हैं।—

यह तो सम्यग्दृष्टि को भी ऐसा है। समझ में आया? आता है न? 'चक्रवर्ती की सम्पदा, इन्द्र सरीखा भोग, कागवीट सम मानते सम्यग्दृष्टि लोक' आहाहा! इन्दौर में काँच का मन्दिर है, उसमें लिखा है। बताया था, देखो! क्या लिखा है?

सम्यग्दृष्टि अपने आनन्द के स्वाद में आया आहाहा! यह 'चक्रवर्ती की सम्पदा, इन्द्र सरीखा भोग कागवीट'। मनुष्य की विष्टा तो खाद में भी काम आती है। परन्तु काग की विष्टा खाद में भी काम आती नहीं। वह सूखी विष्टा नुकसान करती है। आहाहा! कितने कहते हैं कि पुण्य को विष्टा क्यों कहते हो? परन्तु भगवान ने तो जहर कहा है। विष्टा तो अभी सादी भाषा है-तो यहाँ तो विष्टा कहा। पुण्य के फल को कागवीट सम मानते हैं। जिसके फल को कागविष्टा सम माने, उसके कारण को विष्टा ही मानते हैं, ज़हर ही मानते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि ज्ञान उपयोग प्रधान चीज़ है। क्योंकि ज्ञान अपने को जाने, ज्ञान दूसरे गुण को जाने, ज्ञान द्रव्य को जाने, ज्ञान पर को जाने, ज्ञान जड़ आदि के अस्तित्व को ज्ञान जाने। जड़ के अस्तित्व की जड़ को खबर नहीं। दूसरी बात—ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा... ज्ञान, जब ज्ञान को जानता है... आहाहा! ज्ञान-ज्ञान को जब जानता है, तब तो अतीन्द्रिय आनन्द आता है। समझ में आया? यह आनन्द की भूमिका में चारित्र में राग आदि आता है, (वह) चारित्र नहीं, परन्तु यह दुःखरूप है। व्यवहार हेयबुद्धि से आता है। समकिती को भी व्यवहार आता तो है परन्तु हेयबुद्धि से आता है, ऐसी बात है और जिसे हेयबुद्धि नहीं, (वह) आत्मा (को) हेय मानता है और जिसने आत्मा उपादेय माना है, वह राग को हेय माने बिना रहे नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है, बापू!

अनाकुलता जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है, ऐसी सुखशक्ति। आहाहा! सुख में आकुलता जरा भी नहीं है। राग और पुण्य के परिणाम में तो आकुलता है। वह सुख शक्ति का परिणमन नहीं। वह तो दुःखरूप दशा है। आहाहा! दुनिया सुख के लिये दौड़ती है न! सुख की अभिलाषा है। सुख की अभिलाषा है, परन्तु सुख है कहाँ? (श्रोता - पैसे में)— धूल भी पैसे में कोई सुख नहीं। सुख तो अपनी पर्याय में ज्ञान का क्षयोपशम है, उसमें भी नहीं। ज्ञान का क्षयोपशम हुआ, परलक्ष्यी ज्ञान (में) ग्यारह अंग-नौ पूर्व पढ़े, तो

भी ज्ञान की पर्याय में सुख नहीं है, आहाहा! सुख तो अन्दर भगवान आत्मा में है कि जिसके साथ सम्यग्दर्शन और चारित्र भी साथ में है। आहाहा! समझ में आया? एक शक्ति में दोनों शक्तियाँ समा दी हैं। बहुत प्रश्न होते थे कि, इसमें समकितदर्शन (और) चारित्र क्यों नहीं आया? परन्तु इस प्रकार से आये।

सिद्ध में आठ गुण आते हैं न, सिद्ध के, उसमें चारित्र नहीं आया—सुख आता है, समझ में आया? सिद्ध में चारित्र नहीं है, ऐसा नहीं। चारित्र तो है। तो (चारित्र) क्या? स्वरूप की पूर्ण रमणता, वह चारित्र (है)। इसे—आठ गुण सुख गुण में सुख गुण समा दिया है। ऐसा यहाँ लेना। आहाहा! आठ नाम क्या है? उसमें दर्शन और चारित्र नहीं आया। सम्यग्दर्शन (और) चारित्र (को) सुख में समा दिया है। समझ में आया? वैसे यहाँ भी सुख में दो गुण समा दिये हैं, वैसे ले लेना। यह तो सिद्धान्त का आधार दिया। ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य (ये) चार लिय न? और चार अघाति के। ज्ञान, दर्शन, सुख वीर्य—चार घाति के अगुरुलघु, अव्याबाध, सूक्ष्मत्व (अवगाहनत्व) इत्यादि—ये चार अघाति के। आहाहा!

ऐसे यहाँ सुखशक्ति की जहाँ सँभाल हुई, वहाँ प्रतीति और चारित्र की (पर्याय) साथ में हुई, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और सुख की परिणति / आनन्दमयी हुई, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का फल जो आनन्द है, वह साथ में है। आहाहा! चारित्र उसको नहीं कहते हैं कि पंच महाव्रत के परिणाम और नग्न हो जाये, ग्यारह प्रतिमाधारी हो जाए, सात प्रतिमा, आठ प्रतिमा, दस प्रतिमा आती है न? हमारे रामजीभाई तो कहते हैं ग्यारह क्या, पन्द्रह प्रतिमा हो तो पन्द्रह ले लेवे। आहाहा! वह प्रतिमा नहीं, भाई! तुझे खबर नहीं है, आहाहा! स्वरूप तो आनन्दमय, सम्यग्दर्शन और चारित्रमय आत्मा है। इसकी प्रतीति, ज्ञान, रमणता और सुख एक साथ में होता है। उसको यहाँ सुख शक्ति का परिणमन कहने में आता है।

दूसरी रीति से कहें तो यह सुखशक्ति द्रव्य-गुण-पर्याय में व्यापती है, तब सुखगुण की प्रतीति आयी। पर्याय में सुख आया नहीं और सुख की प्रतीति आती है, ऐसा है नहीं। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ६, शक्ति-५ से ६, मंगलवार, (द्वितीय) श्रावण शुक्ल २, दिनांक १६-०८-१९७७

यह आत्मा वस्तु, वह तो शक्तिवान है, स्वभाववान है। उसका स्वभाव और शक्ति को-गुण को यहाँ शक्ति कहते हैं। द्रव्य भी त्रिकाल शाश्वत है और गुण भी तिरछा (रहते हैं)। एक समय में अनन्त गुण भी एक समय में तिरछा—एक साथ में अक्रम (रूप से) वर्तते हैं। क्या कहा? आपने असंख्य प्रदेश-भूमिका-प्रदेश का देश-क्षेत्र उसमें अनन्त गुण ज्ञान, दर्शन, आनन्द।—यह अपने पाँचवीं शक्ति चलती है? ऐसा तिरछा अनन्त गुण एक समय में ऐसे व्यापक है। तिरछा समझते हो? तिरछे का क्या कहते हैं? आड़ा—कहते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा के देश में—देश अर्थात् असंख्य प्रदेश के क्षेत्र में असंख्य शक्तियाँ रहती हैं। यह अनन्त शक्ति एक समय में (एक) साथ में है और पीछे पर्याय जो होती हे, वह क्रमसर होती है। वह भी आयतसमुदाय है। जिस समय में अनन्त गुण की जो अनन्त पर्याय हुई, (वह) उसी समय में होनेवाली हुई। दूसरे समय में वही होनेवाली हुई, ऐसे क्रमसर—आयत लम्बाई में अनन्त पर्याय उत्पन्न होती हैं, उसको आयतसमुदाय कहते हैं। एक आत्मा उसके असंख्य प्रदेश में एक-एक प्रदेश में अनन्त गुण, सारे असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण व्यापक है। एक प्रदेश में पूर्ण गुण (व्यापक) नहीं। असंख्य प्रदेश में पूर्ण गुण व्यापक हुआ है—रहा है। आहाहा! ऐसे स्वदेश की सेवा किये बिना स्वतन्त्रता प्रगट नहीं होगी। आहाहा! समझ में आया? कल था न? क्या कहलाता है? १५ अगस्त। न? स्वराज-स्वतन्त्र, धूल में भी स्वतन्त्र नहीं है।

आत्मराजा—ऐसा (समयसार की) १७-१८ गाथा में आया है। आत्मराजा (कहा है)। आहाहा! जैसे बाहर में राजा है, वह छत्र-चँवर आदि से जानने में आता है कि यह राजा है और उसके शरीर की ऋद्धि-समृद्धि ऐसी दिखने में आती है कि यह राजा है। समझ में आया? ऐसे आत्मराजा। ऐसा समयसार १७-१८ गाथा में पाठ है। आहाहा! भगवान आत्मा! राजा अर्थात् 'रज्जते—शोभते इति राजा'। अपनी शक्ति और सुख आदि गुण से शोभते हैं, इसलिए उसको राजा कहने में आता है। वह विकार के परिणाम से और

संयोग से शोभता है, वह आत्मा नहीं। क्या कहा? यह संयोग जो चक्रवर्ती का राज हो या इन्द्र पद हो, उससे आत्मा शोभे, वह राजा—आत्मा नहीं; और पुण्य-पाप के भाव से आत्मा शोभे, वह आत्मा नहीं। आहाहा! समझ में आया? आत्मा तो अपनी अनन्त शक्ति से अन्दर शोभायमान है। आहाहा! उसका शणगार सुख है।

अपना सुखस्वभाव है वह अपने चलता है न? पाँचवीं शक्ति। आहाहा! अपने स्वभाव में जैसे ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि शक्ति है, वैसे सुख शक्ति-आनन्द शक्ति है। इस आनन्द शक्ति की अनन्त शक्ति है और इस आनन्द शक्ति में अनन्त गुण का रूप है। तो क्या कहते हैं? आहाहा! जब यह ज्ञान शक्ति का भण्डार भगवान आत्मा, उस पर दृष्टि का स्वीकार हुआ अर्थात् सम्यग्दर्शन होने से, अर्थात् सम्यक्-सत्य पूर्ण आनन्दस्वरूप को देखना—दर्शन होना—प्रतीत होना, उसमें अनन्त गुण के सुख का स्वाद आता है, ऐसा कहते हैं। क्या कहा वह?

यह सुखस्वरूप शक्ति है। सुख पर दृष्टि (पड़ने से) तो सुख के धरनेवाले भगवान आत्मा। आहाहा! पर दृष्टि करने से (सुख प्रगट होता है)। आहाहा! समझ में आया?

आज तो थोड़ी बात ऐसी बात चली थी कि मुनिराज जो आत्मज्ञानी, आत्मध्यानी हैं। आहाहा! आनन्द का अनुभव करनेवाले हैं। उन्हें जब देह की स्थिति पूरी होने का ख्याल आ जाए कि, अब देह नहीं रहेगी, समझ में आया? (तो ऐसी भावना भाते हैं) **चलो सखी वहाँ जाइए, जहाँ अपना न कोई, कलेवर भखे जनावरा, मुआ न रोए कोई** यह तुम्हारे आते है। **माटी भखे जनावरा**—तुम्हारी हिन्दी में कुछ होगा। हम तो बहुत बार कहते हैं, **चलो सखी वहाँ जाइए** मुनिराज अपनी शुद्ध परिणति को (ऐसा) कहते हैं। आहाहा! **चलो सीख वहाँ जाइए, जहाँ अपना न कोई** मुझे कोई पहचाने नहीं। अपना कोई हो नहीं है, ऐसे जंगल में-गुफा में चले जाएँ। जहाँ आनन्द सागर भगवान है, उसकी लीनता में हम चले जावें। आहाहा! **कलेवर भखे जनावरा** तुम्हारे हिन्दी में आता है। **'माटी भखे जनावरा।'**—ऐसा तुम्हारे आता है। हमारे (गुजराती में) **कलेवर** कहते हैं। कलेवर (अर्थात्) यह शरीर—मृतक कलेवर। **कलेवर भखे जनावरा**—सियाल भखे। और **मुआ न रोये कोई** देह छूटे तो कोई रोनेवाला नहीं। रोनार समझे? रोनेवाला। आहाहा!

क्योंकि आनन्द का सागर मेरा आत्मा में—आनन्द में लीन होने को—मैं गिरि गुफा में (अर्थात्) अन्दर में चला जाता हूँ। आहाहा! समझ में आया?

भगवान निश्चय से तो गिरि गुफा उसको कहते हैं, समयसार की ४९वीं गाथा में है। समझे? ४९ गाथा समयसार। कि भगवान आत्मा जहाँ अनन्त गुण है—वहाँ जाना उसको, वह गिरि गुफा में जाना है। आहाहा! बाहर की गिरि गुफा तो व्यवहार का—निमित्त का कथन है। आहाहा! समझ में आया? जहाँ अपना भगवान आत्मा है... आहाहा! प्रवचनसार शास्त्र चरणानुयोग (अधिकार में) एक बात चली है। जब वह अपने आनन्द में लीन होने को दीक्षित होते हैं, तो स्त्री को कहते हैं कि 'हे स्त्री! तू शरीर को रमानेवाली स्त्री है, मुझे नहीं। आहाहा! मेरी तो अनादि-अनन्त अनुभूति अन्दर पड़ी है, वह मेरी स्त्री है। मैं तो उसमें रमने को जाता हूँ।' समझ में आया? 'हे स्त्री! आज्ञा दे। मैं तो मेरे आनन्दस्वरूप में जाता हूँ।' आनन्दस्वरूप ऐसी मेरी अनुभूति। आहाहा! अनादि की अनुभूति है। पर्याय नहीं; त्रिकाल। (समयसार की) ७३ गाथा में लिया है। ७३ गाथा है न? वहाँ यह बात ली है।

आत्मा की पर्याय में राग आदि तो नहीं परन्तु रागरहित परिणति (जो) पर्याय में षट्कारक की होती है, वह भी मेरी अनुभूति में नहीं। मैं हूँ, वह तो राग से भिन्न हूँ, पर से तो भिन्न हूँ परन्तु मेरी परिणति में निर्मल शुद्ध षट्कारक की परिणति, पर्याय में षट्कारकरूपी दशा होती है (उससे मैं भिन्न हूँ)। पर्याय की कर्ता पर्याय, पर्याय का कर्म पर्याय, पर्याय का साधन पर्याय, पर्याय का सम्प्रदान पर्याय, अपनी पर्याय रखी, पर्याय से पर्याय हुई, पर्याय का आधार पर्याय, आहाहा! ऐसे षट्कारक की निर्मल परिणति जो है, उससे भी मेरी अनुभूति तो भिन्न है। आहाहा! अनुभूति अर्थात् त्रिकाल स्वभाव। यह अनुभूति अर्थात् पर्याय नहीं। ७३ गाथा में है। समझ में आया? आहाहा! मैं जहाँ हूँ, वहाँ मेरी अनुभूति मेरे में है। 'हे स्त्री! मुझे छोड़ दे! नहीं छोड़ेगी तो भी चले जाते हैं। आज्ञा दे तो चले जाना, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

माता को कहते हैं, 'जनेता! तू शरीर की जनक—जनेता है। मेरी जनेता तू नहीं। मैं तो आत्मा हूँ। आहाहा! माता! एक बार माता आज्ञा दे! मैं मेरी आनन्दरूपी माता है, वहाँ

मैं जाना चाहता हूँ। मेरे अन्दर शुद्ध आनन्द की दशा—माता है, उसके पास मैं जाना चाहता हूँ। वही मेरी माता है। उसमें से आनन्द की दशा उत्पन्न होती है।' समझ में आया ? माता! जनेता कहते हैं न ? 'तू शरीर की जनेता हो, मेरे आत्मा की नहीं। माता! एकबार रोना हो तो रो ले। मैं युवा अवस्था में हजारों रानियाँ छोड़कर चला जाता हूँ। माता! मेरा आनन्दस्वभाव का स्वाद लेने मैं जंगल में चला जाता हूँ। माता! एक बार रोना हो तो रो ले, माँ! मैं कोलकरार करता हूँ, माता! फिर दूसरी माता नहीं करूँगा। आहाहा! पोपटभाई! मैं दूसरी माता नहीं करूँगा।' आहाहा!

उस समय ५० वर्ष पहले हम तो कहते थे, ६० वर्ष पहले कहते थे। उत्तराध्ययन सूत्र का एक श्लोक है। कण्ठस्थ था। श्वेताम्बर के छह हजार श्लोक कण्ठस्थ थे। छह हजार श्लोक। उसमें यह एक श्लोक था।

'अजैव धम्मम् पडिवज्जयामो, जहिं पुवणान पुनमभवामो;...' **'अजैव धम्मम् पडिवज्जयामो'** 'हे माता! जनेता! मेरे आनन्दस्वरूप को अंगीकार करने को मैं जंगल में जाता हूँ।' **'अजैव धम्मम्'** आज ही, **'धम्मम् पडिवज्जयामो, जहिं पुवणान पुनमभवामो'** 'माता! मैं अन्दर में धर्म अंगीकार करने जाता हूँ' और मैं कहता हूँ, **'जहिं पुवणान पुनमभवामो'** 'माता! दूसरा भव मैं नहीं करूँगा। मैं तो आनन्द के नाथ में रमणता करने को चला जाता हूँ।' आहाहा! अन्दर सुख का भण्डार भगवान है, आहाहा! मैं वहाँ जाता हूँ, **'अणागयेण एव य स्थितिंचि'** 'माता! इस जगत में नहीं प्राप्त हुई ऐसी कौन सी चीज़ रह गयी है ? सब मिला (है)। स्वर्ग मिला, माता, कुटुम्ब, राज मिला, सब मिला।' प्रभु! कोई **'अणागयेण'**—भूतकाल में नहीं प्राप्त हुई कोई चीज़ रही नहीं। सब चीज़ें प्राप्त हुई हैं। एक आत्मा मैंने प्राप्त नहीं किया। आहाहा! **'अणागयेण एव'** उस समय यह श्लोक गाते थे, तब सभा डोल उठती थी। ६० साल पहले की (बात है)। श्वेताम्बर में होता है न ?

'जहिं पुवणान पुनमभवामो; अणागयेण...' 'हे माता! जगत का कोई भी संयोग-चीज़ मिले बिना नहीं रही। सब संयोग अनन्त बार मिले **'श्रद्धाखमम्एव'** 'हे माता! एकबार श्रद्धा नक्की कर और हमें क्षमा करके आज्ञा दे दे' **'श्रद्धाखमम्एव विण**

ए तुणागम' 'माता! जनेता! हमारे प्रति-शरीर प्रति राग छोड़कर हमको आज्ञा दे दे', आहाहा! ऐई! धन्नालालजी! आहाहा!

यहाँ कहते हैं सुखशक्ति जो आत्मा में है, इस सुखशक्ति में ज्ञान का सुख, दर्शन का सुख, चारित्र का सुख, सुख का सुख, वीर्य का सुख, अस्तित्व का सुख, वस्तुत्व का सुख, कर्ता शक्ति का सुख, कर्मशक्ति का सुख, (ऐसी) अनन्त शक्ति का सुख मेरी सुख शक्ति में आता है, समझ में आया? जैसे यहाँ कहते हैं न? हमारी स्त्री सुख का कारण है, लड़का सुख का कारण है, पैसा सुख का कारण है, धूल में भी (सुख का कारण) नहीं है। आहाहा! अज्ञान में हैरान हो गया।

यहाँ तो कहते हैं, सुखशक्ति जो आत्मा में है, उस सुखशक्ति में ज्ञान का सुख है, दर्शन का सुख है, चारित्र का सुख, सुख का सुख, वीर्य का सुख, अस्तित्व का सुख, वस्तुत्व का सुख, कर्ताशक्ति का सुख, कर्मशक्ति का सख—ऐसे अनन्त गुण का सुख मेरे सुख में आता है। समझ में आया? यहाँ जैसे कहते हैं कि स्त्री मेरे सुख का कारण है, पुत्र सुख का कारण है, पैसा सुख का कारण है। धूल भी नहीं। सुन न! अज्ञान में हैरान हो गया है। यहाँ तो कहते हैं कि मेरे सुख में मेरे ज्ञान का सुख है, दर्शन का सुख है—ऐसे अनन्त गुण का सुख मेरे सुख में है। धन्नालालजी! यह तुम्हारा पैसा-बैसा और सेठिया-बेठिया तो कहीं रह गये। सर्राफ है सर्राफ। आहाहा! सर्राफ का धन्धा तो अन्दर में है। यह शक्ति थी न? अपने पाँचवीं शक्ति चलती है न?

अनाकुलता जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है, ऐसी सुखशक्ति। ये शब्द बहुत थोड़े हैं, परन्तु भाव बहुत भरा है। आहाहा! भगवन्त! तेरे आत्मा में अनाकुल जिसका स्वरूप (है) ऐसी सुखशक्ति से तू भरा पड़ा है, प्रभु! आहाहा! हिरन की नाभि में कस्तूरी है परन्तु हिरन को कस्तूरी की कीमत नहीं। वैसे अपनी शक्ति में आनन्द है, उसकी खबर नहीं। और पर में आनन्द ढूँढ़ने जाता है, आहाहा! समझ में आया? यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है, भाई! प्रभु ऐसा वीतराग मार्ग बताते हैं। आहाहा! मैं मेरे मार्ग में जाता हूँ, आहाहा!

गजसुकुमार नहीं? श्रीकृष्ण के भाई। आहाहा! जब श्रीकृष्ण नेमिनाथ भगवान के दर्शन करने जाते थे, हाथी पर बैठकर जाते हैं। गजसुकुमार, श्रीकृष्ण का छोटा भाई गोद

में बैठे हैं। हाथी पर बैठकर जा रहे थे। नेमिनाथ भगवान पधारे थे तो हाथी पर बैठकर दर्शन करने जा रहे थे। तो हाथी पर (बैठकर जा रहे थे)। वहाँ एक सोनी की कन्या थी। वह कन्या सोने की गेंद से खेल रही थी। बहुत सुन्दर थी। श्रीकृष्ण को ऐसी इच्छा हुई कि उस सोनी की कन्या को अन्त:पुर में ले जाओ। इसके साथ गजसुकुमार की शादी करेंगे। आहाहा! ध्यान रखो! क्या कहते हैं? उस (कन्या को) अन्त:पुर में ले गये। गजसुकुमार, भगवान के पास गये और भगवान की वाणी सुनी, और वाणी सुनकर ही अन्दर में से वीर्य उल्लसित हुआ (और कहा) 'नाथ! मैं मुनिपना अंगीकार करना चाहता हूँ, मैं मेरी माता के पास आज्ञा लेने जाता हूँ।' देवकी माता (थी)। उससे कहते हैं—'माता! मैं मेरे आनन्द के नाथ के पास जाता हूँ।' मेरा आनन्दस्वरूप, सुखस्वरूप की सँभाल और उसकी रक्षा करने को जा रहा हूँ। मेरे परिणाम में-पर्याय में जो दु:ख है, उस दु:ख का मेरे आनन्द सुख की परिणति में दु:ख का अभाव है।' आहाहा! नन्दकिशोरजी! आहाहा!

क्या कहा? मेरे आत्मा में आनन्द नाथ का सुख है, वह द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्याप्त है। जब द्रव्य पर दृष्टि पड़ती है तो वह सुखगुण द्रव्य में, गुण में और पर्याय में तीनों में व्याप्त होता है। और सुख की व्याप्ति जब पर्याय में हुई तो उस समय व्यवहारमोक्षमार्ग जिसको कहे, (ऐसा) राग-विकल्प, उसका उसमें अभाव है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा! अभी तो बहुत गड़बड़ हो गयी है। हमारे ज्ञानचन्दजी, गड़बड़ हो गयी है—ऐसा नहीं कहते, अस्ति से बात करते हैं—ऐसा सुना है। आहाहा! बात तो ऐसी है।

(समयसार में) पहला श्लोक कहा न? नम: समयसाराय। पहला श्लोक है न?

नम: समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे।।१।।

यह समयसार का पहला कलश (है)। आत्मख्याति-प्रसिद्धि का पहला कलश (है)। **'नम: समयसाराय'**—मैं आनन्द और ज्ञान के स्वरूप से भरा प्रभु (हूँ)। मेरा आनन्द राग और पर की ओर झुकता है, वह झुकना छोड़कर मेरा समयसार आनन्द का सागर है, उस ओर मेरा विनय झुकता है, आहाहा! **'नम: समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते'**—मेरा आनन्द का नाथ मेरी अनुभूति से प्रगट होता है। कोई विकार या दया—

दान के व्यवहार से प्रगट नहीं होता है, ऐसा कहते हैं। **'स्वानुभूत्या चकासते'**—अपने आनन्द की परिणति के कारण से वह प्रगट होता है। आहाहा!

'चित्स्वभावाय भावाय'—मैं आत्मा भावाय अर्थात् पदार्थ हूँ और मेरा ज्ञान आदि गुण, वह चिद् स्वभाव नाम का गुण है। और स्वानुभूति से मेरी पर्याय में आत्मा प्रसिद्ध होता है। आहाहा! पहले श्लोक में आता है? **'सर्वभावान्तरच्छिदे'**—यह चौथा पद है। मैं तीन काल, तीन लोक के पदार्थ को अपनी ज्ञानशक्ति में जो सर्वज्ञशक्ति गर्भित पड़ी है, आहाहा! ज्ञानशक्ति आ गयी न? ज्ञानशक्ति है, उसमें सर्वज्ञशक्ति गर्भित है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें हैं, भाई! मार्ग तो सूक्ष्म है।

चिद्विलास में भाई ने ऐसा लिया है कि आत्मा में एक सूक्ष्म नाम का गुण है। ज्ञान सूक्ष्म, दर्शन सूक्ष्म, आनन्द सूक्ष्म, स्वच्छत्व सूक्ष्म, कर्ता सूक्ष्म, सर्व गुण सूक्ष्म है। समझ में आया? पुण्य और पाप के विकल्प में यह सूक्ष्म गुण आता नहीं, आहाहा! मैं सूक्ष्म गुण से भरा (हूँ)। ज्ञान सूक्ष्म, दर्शन सूक्ष्म, अनन्त आनन्द सूक्ष्मरूप से है। यह लोग कहते हैं कि सूक्ष्म पड़ता है। बारीक पड़ता है। भगवान! तू सूक्ष्म ही है। आहाहा!

ऐसा आत्मा **'सर्वभावान्तरच्छिदे'**—एक समय में तीन काल, तीन लोक को जाने। **'सर्वभावान्तरच्छिदे'**—(अर्थात्) जाने। यह तो अस्ति से बात की है, वहाँ अजीव की नास्ति की बात नहीं की है। पुण्य-पाप का भाव उसमें नहीं है, ऐसा भी नहीं लिया है। **'चित्स्वभावाय भावाय'**—आत्मा **'भावाय'**-पदार्थ है। **'चित्स्वभावाय'**—ज्ञान-आनन्द गुण है और अनुभूति से प्रगट होता है। अस्ति से द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों लिये और पूर्ण पर्याय में सर्वज्ञ लिये। बस! चारों अस्ति से लिये; वहाँ अजीव नहीं है, पुण्य नहीं है, पाप नहीं है, व्यवहार नहीं है, यह बात ली ही नहीं है। पहला श्लोक है। लोग चिल्लाते हैं न कि, व्यवहार का निषेध करते हैं। भाई! हम निषेध नहीं करते हैं, परन्तु वस्तु का स्वरूप ऐसा है। भगवान! तुझे खबर नहीं है, नाथ! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, आत्मा में अनाकुलता लक्षण स्वरूप ऐसी सुख शक्ति है, सुख स्वभाव है, आहाहा! वीणा होती है न? वीणा। (उसके) तार में ऐसे झनझनाहट होती है न, वैसे सुखशक्ति से भरे हुए भगवान में एकाग्र होता है तो पर्याय में सुख की झनझनाहट

आती है। वहाँ सुख की वीणा बजती है। यशपालजी! यहाँ तो भगवान ऐसी बात है, प्रभु! तुम सब तो भगवान हो न, प्रभु! आहाहा! तेरी शक्ति का माहात्म्य तुझे नहीं और तेरे में नहीं, (ऐसे) पुण्य-पाप (और) पुण्य-पाप का फल का तुझे माहात्म्य आया और तेरी चीज़ का माहात्म्य तुझे छूट गया। आहाहा!

तेरे स्वरूप में तो प्रभु सुखशक्ति पड़ी है न! सुख का स्वभाव सामर्थ्य भरा है न! आहाहा! इस सुखशक्ति में अनन्त शक्ति है। दूसरा सुख है, ज्ञान का सुख, दर्शन का सुख, वह दूसरी बात (है)। परन्तु यह सुखशक्ति ही अनन्त सामर्थ्यवाली है। यहाँ तो ऐसी बातें हैं, भगवान! आहाहा!

अरे रे! अनादि से निजपद को सँभाले बिना परपद में गोता खाते हैं। आहाहा! पुण्य-पाप और पुण्य-पाप का फल, वह निजपद नहीं, प्रभु! निजपद में तो आनन्द पड़ा है न, प्रभु! आहाहा! उस निधान को एक बार नजर में तो ले। 'मारी नज़र के आळसे रे, में निरख्या न नयणे हरि'—अन्यमत में आता है। अन्यमत में ऐसा आता है—'मारी नज़र ने आळसे रे,...' दरबार! आता है न तुम्हारे यहाँ? 'में निरख्या न नयणे हरि' आहाहा! हरि माने आत्मा, हों!

पंचाध्यायी में लिया है, भाई! यह आत्मा हरि (है)। क्यों हरि (कहा)? 'हरते इति हरि।' पुण्य-पाप और मिथ्यात्व का भाव हरता है—नाश करता है, इसलिए हरि कहने में आता है। पंचाध्यायी में पाठ है—'हरते इति हरि' क्या हरता है? भगवान आनन्दस्वरूप की दृष्टि करने से और उसमें लीन होने से—मिथ्यात्व और राग-द्वेष का नाश करता है, इसलिए भगवान आत्मा को हरि कहने में आता है, आहाहा! समझ में आया?

'मारी नज़र से आळसे रे, में निरख्या न नयणे हरि' मेरी नज़र की आलस से मैं राग, पुण्य, परवस्तु, पुण्य का फल, इन सबको देखने में मेरी नज़र गयी। परन्तु मेरी नज़र की आलस से 'नयणे न निरख्या हरि'—मेरे ज्ञान की पर्याय की नज़र में मेरे हरि को मैंने देखा नहीं। कर्म के कारण से अटका है, ऐसी बात यहाँ है नहीं। समझ में आया?

(यहाँ) कहते हैं, आहाहा! **अनाकुलता जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है, ऐसी सुखशक्ति।** ओहोहो! यह गजसुकुमार ने (दिव्यध्वनि) सनी और प्रभु के पास आये...

'प्रभ! मैं द्वारिका की श्मशानभूमि में चला जाता हूँ।' आहाहा! राजकुमार गजसुकुमार। गज अर्थात् हाथी के तलवे जैसा कोमल होता है। हाथी का तलवा सुन्दर एकदम लाल होता है; वैसे एकदम लाल सुन्दर शरीर था। 'हम मुनिपना अंगीकार करना चाहते हैं।' सुकुमार, माता के पास आज्ञा लेकर भगवान के पास जाते हैं (और) मुनिपना लेते हैं। आहाहा! मेरे आनन्द का खजाना मैंने देखा है। अब उस खजाने को खोलने को मैं श्मशान में जाता हूँ। जगत के प्राणी मुर्दे को अर्थी में बाँधकर ले जाते हैं। मैं चलकर श्मशान में जाता हूँ।

इसकी कीमत क्या कहें? एक-एक गुण की क्या कीमत और अनन्त गुण की क्या कीमत!! आहाहा! अनन्त गुण को धरनेवाला द्रव्यस्वभाव परमात्मा! (यह) आत्मा परमात्मा ही है। उसकी क्या कीमत हो? वह अमूल्य चीज़ है। जिसका मूल्य नहीं। आहाहा!

ऐसा भगवान आत्मा सुखसागर में वीर्यशक्ति भी पड़ी है। क्या कहते हैं? सुख में शक्ति नहीं पड़ी है, उसका वीर्य का रूप (है)। वीर्यशक्ति नहीं। क्या कहा? सुखशक्ति में बल की शक्ति का रूप है। उसमें बल है। अपने रूप परिणमन करता, (ऐसा) सुख का बल है। वीर्यगुण भिन्न है। वीर्यगुण वहाँ नहीं जाता। वीर्य का लक्षण सुख में नहीं जाता, परन्तु वीर्य की जो शक्ति है, वह शक्ति उसमें है। सुख गुण में वीर्यशक्ति अपने से है, वीर्यशक्ति के कारण से नहीं। आहाहा! ऐसी बातें (हैं)! आहाहा! ऐसा शक्तिवन्त मैं परमात्मा अनाकुल आनन्द का सागर हूँ और उस पर मेरी नज़र आती है तो अनाकुल आनन्द द्रव्य में—गुण में तो था। द्रव्य अर्थात् वस्तु और गुण अर्थात् शक्ति। उसमें तो अनाकुलता शक्ति थी, परन्तु उसका स्वीकार करने जहाँ अन्दर में जाता हूँ, वहाँ पर्याय में आनन्द आता है। द्रव्य-गुण में है, वह पर्याय में आनन्द की परिणति आती है। समझ में आया?

इस आनन्द की परिणति जब हुई तो दया, दान का विकल्प जो व्यवहार है, वह दुःख है। उस दुःख का उसमें अभाव है। यह अनेकान्त है। उस राग की क्रिया से आनन्द की पर्याय प्रगट होती है या मोक्षमार्ग प्रगट होता है, ऐसा नहीं। आनन्द की पर्याय कहो या मोक्षमार्ग कहो, एक ही बात है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा!

वचनातीत, विकल्पातीत, शरीरातीत, भेद से अतीत—ऐसा तेरा अभेद स्वरूप अन्दर पड़ा है, नाथ! ऐसी अनाकुल शक्ति—उसका स्वरूप। आहाहा! यह पाँचवीं शक्ति हुई, कल चली थी। कल चली थी। आज थोड़ी दूसरी रीति से चली, आहाहा!

गजसुकुमार श्मशान में जाते हैं। सोनी की लड़की थी न, उसे अन्तःपुर में ले गये। उसके पिताजी को ख्याल आया कि उसे (कन्या को) अन्तःपुर में ले गये और (गजसुकुमार) तो साधु हो गये, (अब) कन्या को कौन लेगा? और उसके पिताजी वहाँ (श्मशान में) गये। अपने स्वाध्यायमन्दिर में फोटो है। (गजसुकुमार) आनन्द के धाम में मस्त हैं। श्मशान में राख होती है न? उस राख की सिर के ऊपर पाल बाँधकर अग्नि जलायी। परन्तु (गजसुकुमार) अन्दर ध्यान की अग्नि में जलहल ज्योति में पड़े हैं तो उन्हें अग्नि की खबर नहीं पड़ती। ऐसी सुखशक्ति की सँभाल करनेवाले की... ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यहाँ पाँच पाण्डव भगवान के दर्शन करने को निकले थे। मुनि थे और महान आनन्द को भोगनेवाले थे, आहाहा! जब पालीताणा आये तो खबर पड़ी कि प्रभु तो मोक्ष पधारे हैं। नेमिनाथ भगवान मोक्ष पधारे हैं। अरे! हम दर्शन करने को जाते हैं (और भगवान का) विरह पड़ गया। अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन में पाँच पाण्डव हैं। इनमें तीन जो थे—धर्मराजा, भीम और अर्जुन, वे तो केवलज्ञान पाकर मुक्त हो गये। सहदेव और नकुल—दो भाई थे, उनको जरा विकल्प आया। तीनों बड़े भाई थे न? सहोदर थे न? सहोदर माने एक उदर में साथ में जन्मे हुए। आहाहा! अरे! धर्मराजा को क्या होता होगा?

दुर्योधन के भानजे ने आकर लोहे के गहने पहनाये। आहाहा! पैरों में लोहे के कड़े, हाथ में लोहे की धगधगाती हुई अग्नि और सिर पर लोहे की अग्नि का मुकुट पहनाया था। सहदेव-नकुल को ऐसा विकल्प आया—'भाई! को क्या (होता होगा)?' देखो! एक विकल्प आया तो दो भव हो गये। और (दूसरे तीन) विकल्प बिना ध्यान में रहे तो केवलज्ञान हो गया। एक विकल्प आया तो सर्वार्थसिद्धि का ३३ सागर का आयुष्य बँध गया। इतना केवलज्ञान दूर हो गया। साधर्मी का—मुनि के लिये विकल्प आया, वह संसार है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? इतना विकल्प आया। शुभ विकल्प। वह तो मुनि के

लिये (विकल्प आया)। एक तो सहोदर है और साधर्मी है। सहोदर है—एक उदर में उत्पन्न हुए और साधर्मी हैं और बड़े भाई हैं... दूर हो गया, ऐसा एक विकल्प आया तो—केवलज्ञान। (लोग) कहते हैं—शुभभाव से लाभ होता है। क्या लाभ होता है ? सुन तो सही ! वह तो दुःख है। पर्याय में जब आनन्द की परिणति हुई तो उसमें दुःख का तो अभाव है, उसमें राग का तो अभाव है, विकल्प का तो अभाव है। विकल्प आया और सर्वार्थसिद्धि में चले गये। केवलज्ञान ३३ सागर दूर हो गया। साधर्मी का, सहोदर का, सन्त का एक विकल्प आया तो उस शुभभाव से ३३ सागर संसार बढ़ा। अरे ! लोग क्या मानते हैं ? क्या करें ? शुभभाव से अपने को धर्म होता है, अरे... प्रभु ! सुन तो सही नाथ ! तेरी समृद्धि में शुभभाव का तो अभाव है न, नाथ ! तेरी सम्पदा आनन्द से भरी है। उसमें दुःख का तो अभाव है। आहाहा ! और वह राग उत्पन्न हुआ तो दो भाव हो गये। एक सर्वार्थसिद्धि और मनुष्य होंगे, उसमें भी आठ वर्ष तक तो उनको केवलज्ञान नहीं होगा। आहाहा ! समझ में आया ?

अपने आनन्दस्वरूप की परिणति से वह विकल्प विरुद्ध है। आहाहा ! उस विकल्प का तो स्वरूप में अभाव है। परन्तु वह विकल्प आया तो उसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहने में आया। परन्तु व्यवहारमोक्षमार्ग से तो संसार बन्ध हुआ, आहाहा ! पोपटभाई ! ऐसी बातें हैं, भाई ! आहाहा ! इतना विकल्प आया, वहाँ ३३ सागर संसार (हुआ) ! यह राग संसार है। इसका फल संसार है। आहाहा ! अरे रे ! उसे कुछ खबर नहीं है। मेरा स्वरूप तो अतीन्द्रिय आनन्द है और उसका स्वीकार करने से पर्याय में आनन्द आता है, अनन्त गुण का आनन्द आता है। समझ में आया ? ऐसा मैं हूँ—(ऐसी प्रतीति हुई) तो द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों में आनन्द व्याप्त हो गया। आहाहा !

अनादि से द्रव्य और गुण में आनन्द था। समझ में आया ? अनादि से है। आनन्द की सत्ता और सत्तावान तो अनादि से है। परन्तु जब उस ओर दृष्टि गयी और स्वीकार हुआ, अपने ज्ञान की पर्याय में उसको ज्ञेय बनाकर जहाँ ज्ञान हुआ तो पर्याय में भी आनन्द आ गया। द्रव्य, गुण में—शक्ति में था, वह व्यक्त में आ गया। आहाहा ! समझ में आया ? अरे ! अरे ! ऐसी बातें अब !

दुनिया में स्त्री, पुत्र और कुटुम्ब को... आहाहा! सुख के निमित्त (मानते हैं)। वह सब तो दुःख के निमित्त हैं। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा, वह दुःख नहीं परन्तु दुःख का निमित्त (है)। निमित्त दुःख को करता नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह बात सुनने मिलना भी मुश्किल है। अरे... प्रभु! तेरी चीज़ तो ऐसी है न? 'एकान्त, एकान्त है। कानजीस्वामी एकान्त कहते हैं' अरे प्रभु! सुन तो सही, नाथ! तेरे हित की बात है, भाई! तेरा हित हो, ऐसी बात है। सम्यक् एकान्त की बात है। अनेकान्त की बात—राग उसमें नहीं है—यह अनेकान्त। ...स्वभाव, वह सम्यक् एकान्त है और राग का अभाव, वह अनेकान्त है। समझ में आया? राग से भी लाभ होगा और स्वभाव से भी लाभ होगा, ऐसी बात है नहीं। आहाहा! यह पाँचवीं शक्ति हुई। यह तो गम्भीर है। चाहे इतना निकल सकता है। समुद्र भरा है। प्रभु सुख का सागर-समुद्र (है)। आहाहा!

अरे प्रभु! क्षेत्र भले ही शरीरप्रमाण हो और प्रदेश असंख्य हो परन्तु गुण तो अनन्त है। समझ में आया? पानी का लोटा होता है न, लोटा? उसमें पानी भरा हो, उस लोटे के आकार के प्रमाण पानी है परन्तु पानी का आकार लोटे के कारण से नहीं। पानी का आकार पानी के कारण और लोटे का आकार लोटे के कारण (है)। तुम्हारे काशीघाट का यह लोटा है, देखो! उस जड़ का आकार जड़ में है और शरीरप्रमाण से आत्मा है तो शरीर के आकार के कारण से उस प्रमाण आत्मा का आकार है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा! पोपटभाई! यह मकान-बकान और घर तो कहीं दूर रह गये। आहाहा! झांझरीजी! ... कहे, अंतरीक्ष में मारामारी हो गयी थी। अरे प्रभु! क्या हुआ यह? अंतरीक्ष है न? धन्यकुमार है न? धन्यकुमार ब्रह्मचारी है। दस भाई हैं, नौ विवाहित हैं। यह ब्रह्मचारी है। मारामारी हो गयी। अर र र! अरे! भगवान! ऐसा हो!

भाई! श्वेताम्बर में अंतरीक्ष होता ही नहीं। श्वेताम्बर में भगवान ५०० धनुष ऊँचे हैं, ऐसी बात है ही नहीं। भगवान केवली नीचे बैठते हैं—ऐसा पाठ है। पृथ्वी शिला पाट पर। यह अन्तरीक्ष है, वह दिगम्बर का ही क्षेत्र है। परन्तु अब क्या करें? अरे... प्रभु! मुनि को कल्पना आयी कि, 'मुनि को क्या है?' ऐसा भाव (भी) दुःखरूप (है)।

स्वरूपनिर्वर्तनसामर्थ्यरूपा वीर्यशक्तिः।६।

स्वरूप की (–आत्मस्वरूप की) रचना की सामर्थ्यरूप वीर्यशक्ति।३।

स्वरूप की (–आत्मस्वरूप की) रचना की सामर्थ्यरूप वीर्यशक्ति। देखो, अब उसमें क्या भरा है। अन्दर वीर्य नाम का गुण है, हों! यह वीर्य-रेत, जिससे पुत्र होता है, वह तो जड़-मिट्टी-धूल (है)। यह तो आत्मा में वीर्य नाम की एक शक्ति—बल (ऐसा) गुण है। आत्मा में बल नाम की एक शक्ति है। वह बलिया बलवान शक्तिवान से बलवान है। समझ में आया? इसमें वीर्यशक्ति है—बलशक्ति है, बल, तो इस बलशक्ति में अनन्त गुण की शक्ति आती है। अनन्त गुण में भी वीर्यशक्ति है। वह वीर्यशक्ति नहीं परन्तु उस वीर्य का रूप प्रत्येक गुण में है।

यहाँ कहते हैं, बहुत बात है। वीर्य—स्वरूप की रचना करे, यह सामर्थ्य (है)। बल का सामर्थ्य तो यह है कि, अपने आनन्द, शक्ति और वीतरागस्वरूप की रचना करे, वह वीर्य है। आत्मा है। आहाहा! (अपनी) पर्याय में स्वरूप का सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक्वीर्य, अनन्त आनन्द—ऐसे अपने स्वरूप की पर्याय में रचना करे, वह वीर्य है। आत्मवीर्य है। समझ में आया? शक्ति में जो बल है, (वह) आत्मा के वीर्य के कारण से शक्ति में बल है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा! स्वरूप की रचना का सामर्थ्य, इस बल का सामर्थ्य तो यह है कि अपने आनन्द, शान्ति और वीतरागस्वरूप की रचना करे, वह वीर्य है।

पंचम काल के मुनि १००० वर्ष पहले हुए। दिगम्बर सन्त। जगत में शान्ति प्राप्त कराये, (उसे) सन्त कहते हैं। अपने स्वरूप की दृष्टि कराये, उसे सन्त और शान्ति कहते हैं। समझ में आया?

(यहाँ) कहते हैं कि, वीर्य का स्वभाव क्या? आत्मस्वरूप की रचना। आहाहा! आत्मा का स्वरूप क्या? ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुण उसका स्वरूप है और स्वरूपवान आत्मा है, आहाहा! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक्वीर्य, अनन्त आनन्द—ऐसे अपने स्वरूप की पर्याय में रचना करे, वह वीर्य है। वीर्यशक्ति स्वरूप की

रचना करे। विकार की रचना करे या पर की रचना करे, वह तो प्रश्न है ही नहीं। आत्मवीर्य पर का कुछ करे? समझ में आया? शक्ति में जो बल है, (वह) आत्मा के वीर्य के कारण से शक्ति में बल है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा! जड़ की—परमाणु की शक्ति परमाणु में है। आहाहा!

नेमिनाथ भगवान। वीरों की, शूरवीरों की सभा भरी थी। उसमें चर्चा चली—कोई कहे कि पाण्डवों में बहुत बल है। कोई कहे उसमें इतना बल है। एक व्यक्ति ने कहा कि देखो! नेमिनाथ भगवान बैठे हैं। गृहस्थाश्रम में तीन ज्ञान के धनी (हैं)। उनके शरीर का बल है, हों! ऐसा बल और किसी का नहीं है। सभा में ऐसी चर्चा चली। जाँचों। नेमिनाथ भगवान ने पैर नीचे रखा। कहा—'पैर को ऊपर करो।' मर गये ऐसा करके लेकिन पैर ऊपर नहीं कर सके। देह की शक्ति कितनी! आत्मा के कारण नहीं, हों! समझ में आया?

उन परमाणु में भी वीर्य नाम की शक्ति है। आहाहा! पंचाध्यायी में है, पंचाध्यायी है न? जड़ में भी वीर्यशक्ति है। आहाहा! आत्मा में वीर्य है, वह वीर्य नहीं, हों! शक्तिरूप वीर्य। परमाणु में भी वीर्यशक्ति है। अनन्त परमाणु का दल है, जड़ है। शक्तिरूप वीर्य (है)। आहाहा! भगवान ने पैर को नीचे रखा। श्रीकृष्ण आकर विचार करे। दूसरे तो मर जाए, तो भी ऊँचा नहीं हुआ। ऐसी शक्ति तो भगवान के शरीर के परमाणु में थी। समझ में आया?

यह शक्ति तो आत्मा की बात है। आत्मा का वीर्य शरीर के वीर्य में काम करता है, ऐसा है नहीं। और आत्मवीर्य पुण्य-पाप की रचना करे, वह वीर्य नहीं। आहाहा! पुण्य-पाप की जो रचना होती है, वह वीर्य नहीं—वह आत्मा का वीर्य नहीं। थोड़ी कठिन भाषा है। वह नपुंसक का वीर्य है, हिजड़ा का वीर्य है। हिजड़ा होता है न? उसको वीर्य नहीं होता। उसको पुत्र-पुत्री नहीं होते। वैसे पुण्य-पाप को रचनेवाला नपुंसक है; उसमें से धर्म की प्रजा उत्पन्न नहीं होती। ऐ, पोपटभाई! ऐसी भिन्न-भिन्न बातें हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि से बहुभाग ऐसा ही है। नपुंसक, समयसार में आया है। ४०वीं गाथा में है, पुण्य-पाप अधिकार में क्लीव शब्द संस्कृत में है। क्लीव (अर्थात्) नपुंसक। राग को अपना मानता है, राग की रचना करता है, (वह) नपुंसक, हिजड़ा,

पावैया है। तुझे पुरुष की खबर नहीं (कि) आत्मपुरुष क्या है ? आहाहा! कठिन बात है।

यहाँ कहते हैं कि पुण्य और पुण्य के परिणाम से—व्यवहार से निश्चय होता है। नपुंसकता से (आत्म) वीर्य होता है, (ऐसी बात है)। आहाहा! भगवान! तुझे खबर नहीं। हों! (तुझे) खबर नहीं (और कभी) सुना नहीं। सन्तों के पास, सर्वज्ञ ने क्या वस्तु कही है ? यह सुना नहीं। यह तो गुरुगम और सन्तों के पास सुने बिना यह बात समझ में नहीं आये, ऐसी चीज़ है, भगवान! समझ में आया ? आहाहा!

(यहाँ) कहते हैं कि राग आदि जो व्यवहाररत्नत्रय कहा जाता है, (वह) राग कथनमात्र मोक्षमार्ग कहने में आया है। (परन्तु) वह मोक्षमार्ग नहीं है। वह तो दुःखमार्ग है, बन्धमार्ग है। (राग) आता है। मुनि को भी, समकिती को भी विकल्प आता है परन्तु वह हेयबुद्धि से (आता है)। (वह) बन्धमार्ग है। आहाहा! समझ में आया ? क्योंकि वीर्य नाम की शक्ति है, यह शक्ति अनादि से द्रव्य-गुण में तो व्याप्त है ही। परन्तु इस वीर्य को धरनेवाले भगवान आत्मा के ऊपर दृष्टि और रुचि होती है, तो वीर्य की परिणति स्वयप की रचना करती है। आहाहा! सेठ! हीरालालजी! ऐसी बात है। अरे! एक घण्टा भी प्रवचन कहाँ है ? बापू! कोई करोड़ों रुपया (दे और) व्याख्यान मिले, ऐसी यह चीज़ है नहीं। आहाहा! बापू! यह तो वीतराग परमात्मा के घर की बात है। आहाहा! (भरतक्षेत्र में) परमात्मा का विरह है। भगवान तो वहाँ (महाविदेह में) विराजते हैं। समझ में आया ? परमात्मा की बात तो यह है। भगवान का सन्देश तो यह है। आहाहा!

प्रभु! तुम वीर्यशक्ति को धरनेवाले हो न! आहाहा! इस वीर्यशक्ति में तो अनन्त गुण की शक्ति आती है। प्रत्येक गुण में शक्ति है—यह वीर्यशक्ति (उसमें) निमित्त है। अन्दर (स्वयं की) उपादानशक्ति है। ज्ञान में भी शक्ति है, वह उपादान है। वीर्यशक्ति तो निमित्त है, आहाहा! समझ में आया ? एक-एक गुण में शक्ति है, वह अपने से है, हों! उसमें वीर्यगुण तो निमित्त है। उपादान तो ज्ञानगुण में ताकत की शक्ति अपने से—उपादान से होती है। आहाहा! ऐसी बातें अब! यह तो परमात्मा का मार्ग है, भाई! आहाहा!

लड़के की माता उसको गाना गाकर सुलाती है। गाली देकर सुलाती है ? गाली देगी तो नहीं सोता (है)। ध्यान रखो। बालक को 'मारा रोया' ऐसा कहोगे तो नहीं सोयेगा।

परन्तु 'मारो दिकरो डाह्यो अने पाटले बेसी नाह्यो, ऐसी हमारी गुजराती भाषा है। मामाने घेर गयो अने गुंजामा खारेक अने टोपरा लाव्या, ऐसा बोले तो वह सो जाता है। उसकी माता उसके अव्यक्तरूप से गुण गाकर सुलाती है। (यहाँ) परमात्मा उसके गुण गाकर जगाते हैं। जाग रे जाग, नाथ! समझ में आया?

संवत् १९६४ के वर्ष की बात है। पालेज में हमारी दुकान थी। हम माल लेने गये थे। उस वक्त तो १८ वर्ष की उम्र थी। मुम्बई, वड़ोदरा माल लेने तो हम जाते थे। पिताजी की घर की दुकान थी। एक बार माल लेने गये रात को निवृत्ति थी तो। हम नाटक देखने गये। अनसुया का नाटक था। भरूच के पास नर्मदा है न? नर्मदा और अनसुया दो बहनें थीं। हम तो नाटक देखने गये। नाटक में वहाँ पुस्तक भी लिया। तुम क्या बोलते हो? यह समझे बिना हम ऐसे ही नहीं चलता। १२ आने की टिकट और १२ आने की किताब ली। १९६४ की बात है।

अनसुया थी, वह शादी किये बिना स्वर्ग में जा रही थी। स्वर्ग में कहा कि 'नहीं; अपुत्र गति नास्ति'। पुत्र न हो, उसे (स्वर्ग) गति नहीं मिलेगी। तो अब 'क्या करना?' तो कहा 'जाओ नीचे', वैरागी नाटक था। नीचे जाओ। नीचे (एक) ब्राह्मण था। उससे शादी की और उसे बालक हुआ। उसको (बालक को) झुलाती थी। उस समय नाटक में (ऐसा आता था)। 'उदासीनोसि, शुद्धोसि, बेटा! तुम तो शुद्ध हो। तू निर्विकल्प आत्मा है।' ६४ के वर्ष। कितने वर्ष हुए? ७० (वर्ष हुए)। आहाहा! समझ में आया? उस समय तो नाटक ऐसा था। अभी तो... फिल्म-फिल्म करके एक स्त्री ऐसे हाथ डाले ... अर र! यह अनीति और दिखाव। उस समय नाटक ऐसा आता था, भाई! 'उदासीनोसि, बेटा! तू उदास है। शुद्धोसि, निर्विकल्पोसि (है)।' आहाहा! ऐसे तीन (शब्द) याद रह गये हैं। बाकी तो बहुत था लेकिन बहुत वर्ष हो गये न? (इसलिए याद नहीं है)।

अपने बन्ध अधिकार में आता है। बन्ध अधिकार में अन्त में आता है, सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में अन्त में आता है और परमात्मप्रकाश में तीनों में यह आता है। 'उदासिनो, निर्विकल्पो, लोकालोक त्रिकाल में जीव हैं, वे सब पूर्णानन्द से आनन्द से भरपूर भगवान हैं। सर्व जीव सर्व काल में भगवानस्वरूप है, ऐसी भावना कर। ऐसे लिखा है। विशेष आयेगा.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ७, शक्ति-६, बुधवार, (द्वितीय) श्रावण शुक्ल ३, दिनांक १७-०८-१९७७

यह समयसार, शक्ति का अधिकार है। जिसे आत्मज्ञान करना हो, उसे आत्मा क्या वस्तु है और उसमें शक्तियाँ कितनी और कैसी हैं, यह जानना पड़ेगा। यहाँ आत्मा तो एक भिन्न वस्तु है। प्रत्येक आत्मा भिन्न है परन्तु एक स्वरूप में अनन्त शक्ति है और एक-एक शक्ति में भी अनन्त शक्ति है और एक-एक शक्ति, प्रत्येक शक्ति, वह शक्तिवान जो आत्मा है, जो चैतन्यप्रकाश का पूर है। वह तो चैतन्यप्रकाश का नूर—तेज है, उस चैतन्यप्रकाश को कभी निहारा नहीं, देखा नहीं। चैतन्यप्रकाश का पूर प्रभु, उसे—अपने को भूलकर अन्धकार को देखा। अन्धकार अर्थात् पुण्य-पाप के भाव, वह अन्धकार है और पुण्य-पाप का फल बन्धन, जड़कर्म, वह भी अन्धेरा है और उसका फल यह बाहर की लक्ष्मी आदि मिले, वह सब अन्धेरा है। उसमें प्रकाश का अभाव है। आहाहा! प्रकाश—पूर्ण प्रकाश चैतन्यपुंज, चैतन्यप्रकाश को उसने कभी देखा नहीं। वह चैतन्यप्रकाश का पुंज प्रभु, वह द्रव्य है। उस द्रव्य पर कभी दृष्टि नहीं दी और पर्याय में राग, द्वेष, पुण्य, पाप, शरीर, कर्म को देखा। अन्धकार को देखा परन्तु उजाले को देखा नहीं। ज्ञानचन्दजी! आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है।

यहाँ तो वीर्यशक्ति चलती है। आत्मा में एक वीर्य नाम की शक्ति है। वीर्य अर्थात् बल। आत्मा में वीर्य अर्थात् बल नाम की शक्ति है। वह बलशक्ति, ज्ञानशक्ति में भी बलशक्ति पड़ी है। यह वीर्यशक्ति उसमें—ज्ञानशक्ति में नहीं परन्तु ज्ञानशक्ति में भी वीर्यशक्ति अर्थात् बलशक्ति अन्दर है। आहाहा! ज्ञानस्वरूपी प्रकाश प्रभु, चैतन्यप्रकाश का पुंज प्रभु, उसमें बल नाम की शक्ति है। यह बल नाम की शक्ति है, वह तो भिन्न है परन्तु ज्ञानप्रकाश में भी बल—स्वयं से जानने की ताकत उसमें है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! क्या कहा?

वस्तु अन्दर है, वह चैतन्यप्रकाश का पूर, नूर है। चैतन्य के तेजस्वरूप भगवान है। चैतन्यप्रकाश के नूर का लक्ष्य नहीं करके, अनादि से राग और द्वेष, पुण्य और पाप, दया और दान, सम्यग्दर्शन बिना, स्वरूप के प्रकाश के अनुभव बिना यह सब दया, दान, व्रत, तप सब अन्धकार है। सूक्ष्म बात है। समझ में आया? अन्धकार को ज्ञान की पर्याय में

देखा परन्तु जिसकी पर्याय है, ऐसे चैतन्यप्रकाश पर उसकी नजर नहीं गयी। आहाहा! भाषा सादी है परन्तु भाव जरा सूक्ष्म है। समझ में आया?

ज्ञान में बल नाम का स्वभाव—रूप है। वीर्यशक्ति है, वह भिन्न है परन्तु ज्ञानशक्ति में शक्तिरूप बल है, वह बल भी द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों में व्यापक हो जाता है। ऐसा तो अनादि से द्रव्य और गुण में ज्ञान और आनन्द का शक्तिरूप भाव है परन्तु उस शक्ति का जब अन्दर में स्वीकार हो, (तब पर्याय में भी व्यापक हो जाती है)। यह वस्तु और उसमें शक्ति अनन्त है। उसमें ज्ञान और आनन्दशक्ति है। ऐसी शक्ति का जब स्वसन्मुख होकर और पर से विमुख होकर स्वीकार होता है, तब उसकी पर्याय में भी ज्ञान और आनन्द की पर्याय व्याप्त होती है। क्या कहा, समझ में आया? सूक्ष्म बात है, प्रभु!

चैतन्यप्रकाशस्वरूप का जब पर्याय ने स्वीकार किया, जिसकी पर्याय है, उसकी पर्याय ने स्वीकार किया। पूर्णानन्द का नाथ चैतन्यप्रकाश मैं हूँ। उसमें सर्वज्ञशक्ति पड़ी है। चैतन्यप्रकाश में सर्वज्ञशक्ति—सर्व को जानने की ताकत रखती है, ऐसी सर्वज्ञशक्ति के प्रकाश का पुंज प्रभु है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानशक्ति आ गयी है। ज्ञानशक्ति में सर्वज्ञशक्ति गर्भित अन्दर पड़ी है। पेट में गर्भ हो तो प्रसव होता है, उसी प्रकार ज्ञान में सर्वज्ञशक्ति गर्भरूप से पड़ी है, उसका आश्रय करता है तो पर्याय में सर्वज्ञ का जन्म होता है। आहाहा! ऐसी बात है।

दर्शनशक्ति जो अन्दर है, यह अपने आ गयी है। थोड़ा-थोड़ा कहते हैं, पूरा तो कहीं कह सकते नहीं। हमारी इतनी शक्ति भी नहीं। आहाहा! जितना दिगम्बर सन्त कहे, उनकी क्षयोपशम शक्ति भी अलौकिक है। आहाहा! कहते हैं, एक बार सुन तो सही, प्रभु! तेरी दृशिशक्ति—दर्शनशक्ति जो है, उस शक्ति मे सर्वदर्शीशक्ति गर्भ में अन्दर पड़ी है। आहाहा! उस सर्वदर्शिशक्ति पर जब नजर जाती है अर्थात् शक्ति और शक्तिवान का भेद भी छोड़कर... आहाहा! यह सर्वदर्शिशक्तिवान भगवान आत्मा है, ऐसा पर्याय में जब स्वीकार होता है, तब सर्वदर्शीशक्ति का दृशिशक्ति का परिणमन होता है। भले अभी सर्वदर्शीपना आया नहीं परन्तु सर्वदर्शीपना है, ऐसा ज्ञान हो गया। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

अनन्त काल से जिसके प्रकाश का नूर प्रभु है, उसे कभी नजर में लिया नहीं और प्रकाश की वर्तमान पर्याय है, उसमें अन्धकार देखा। राग, पुण्य, दया, दान, व्रत और भक्ति सब अन्धकार है। बालचन्दजी! सर्राफ है, यह दोनों सर्राफ है। बाहर के सेठिया हैं। बाहर के न? आहाहा! भगवान आत्मा... यहाँ कहते हैं कि दृशिशक्ति मे सर्वदर्शीशक्ति (गर्भ में पड़ी है)। उसमें भी बल का रूप पड़ा है। वीर्यशक्ति भिन्न है परन्तु उस सर्वदर्शिशक्ति में भी बल है। वह स्वयं से प्रगट होता है। समझ में आया? यहाँ तो अपने वीर्यशक्ति चलती है। क्या कहा?

स्वरूप की (–आत्मस्वरूप की) रचना की सामर्थ्यरूप वीर्यशक्ति। आहाहा! सन्तों ने तो गजब काम किया है। अमृतचन्द्राचार्य महाराज दिगम्बर सन्त वीतरागी पर्याय के झूले में झूलनेवाले। अतीन्द्रिय आनन्द के झूले में झूलनेवाले... आहाहा! विकल्प आया और शास्त्र रच गया। कहते हैं, एक बार प्रभु! तेरी बात सुन तो सही। प्रभुता बाद में आयेगी, आज वीर्य (शक्ति) चलती है। वीर्य के पश्चात् प्रभुता (शक्ति) आयेगी। यह वीर्य आत्मस्वरूप की रचना करे। आहाहा! आत्मा में जो वीर्यशक्ति है, वह पूरे आत्मा में व्यापक है। चैतन्यप्रकाश का पुंज है। ज्ञान पूरे असंख्य प्रदेश में व्यापक है। वैसे वीर्यशक्ति भी असंख्य प्रदेश में व्यापक है। आहाहा! अपने देश में वीर्यशक्ति व्यापक है। अपना देश—असंख्य प्रदेश, वह अपना देश—स्वदेश है। राग और पुण्य-पाप, वह सब पर देश है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं, क्षेत्र हैं, क्षेत्र हैं। उस क्षेत्र का स्वभाव, जैसे नरक के क्षेत्र का स्वभाव दुःखरूप है, स्वर्ग के क्षेत्र का स्वभाव लौकिक सुखरूप है। भगवान आत्मा का क्षेत्र स्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द का क्षेत्र स्वभाव है। उस क्षेत्र में से तो अतीन्द्रिय आनन्द का पाक होता है। कुलथी होती है न? कुलथी। कुलथी समझते हो? लाल होती है। वह साधारण जमीन में कुलथी होती है। उच्च जमीन में चावल होते हैं। साधारण जमीन में चावल नहीं होते, चावल ऊँची जमीन में होते हैं। उसी प्रकार इस भगवान का क्षेत्र असंख्य प्रदेश है, उसमें आनन्द का क्षेत्र है। उसमें से आनन्द और आनन्द के वीर्य की उत्पत्ति होती है। परन्तु कब? उसका स्वीकार करे तब। कि यह है।

उसकी ज्ञान की पर्याय वर्तमान प्रगटरूप से है। उसमें पूर्ण ज्ञान, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सुखरूप पूरी वस्तु व्यापक है। उसमें जब पर्याय पूरे द्रव्य में व्यापती है, तब पर्याय में आनन्द और ज्ञान की पर्याय के क्षेत्र में पाक पकता है। आहाहा! समझ में आया? असंख्य प्रदेश में विकार उत्पन्न हो, ऐसे वे प्रदेश नही हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा के असंख्य प्रदेश समझे? जैसे स्वर्ण की चैन होती है न, चैन? चैन कहते हैं न? चैन में एक हजार मकोड़ा—कड़ियाँ होती हैं, कड़ियाँ। कड़ियाँ होती हैं न? एक हजार या पाँच सौ। उन सब कड़ी का पिण्ड, वह चैन है। वह कड़ी है, वह प्रदेश है; साँकल है, वह द्रव्य है और कड़ी कहते हैं जितने सोने का पीलापन, चिकनापन वजन, वह उसकी शक्ति-गुण हैं। समझ में आया? यह तो दृष्टान्त हुआ।

इसी प्रकार भगवान आत्मा, जैसे हजार कड़ी की साँकल है, वैसे असंख्य प्रदेशी आत्मा है। इतना उसके क्षेत्र का विस्तार है। एक पॉइन्ट परमाणु रखे, यह अँगुली कहीं एक चीज़ नहीं है। टुकड़े-टुकड़े करते-करते अन्तिम परमाणु—परम अणु, सूक्ष्म अणु रहे, उसे परमाणु कहते है। वह परमाणु जितनी जगह रोके, उसका नाम प्रदेश है। उसी प्रकार आत्मा असंख्य परमाणु रोके, ऐसा असंख्य प्रदेशी है। एक परमाणु के गज से मापने से आत्मा असंख्य प्रदेशी है। उन असंख्य प्रदेश में अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान और अनन्त वीर्य व्यापकपना अन्दर पड़ा है। आहाहा! समझ में आया?

वीर्यशक्ति है तो द्रव्य और गुण में, पर्याय में अनादि से प्रगट नहीं है। क्योंकि अनादि से पुण्य-पाप के भाव की रचना करता है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, आदि के भाव की रचना करे, वह वीर्य आत्मा का नहीं। आहाहा! समझ में आया? आत्मा का वीर्य तो उसे कहते हैं कि जो पूरा स्वरूप जो अनन्त गुण आदि है, उनकी पर्याय में रचना करे, उत्पन्न करे, प्रगट करे, उसका नाम वीर्य है। आहाहा!

एक प्रश्न किया था, नहीं? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा और काम, क्रोध, मान, लोभ, राग, इस शरीर की सम्हाल करना, इस परिवार की सम्हाल करना, यह सब विकार है। समझ में आया? इस विकार की रचना हो, वह वीर्यगुण की नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। यह विकार अन्ध है, उसे ज्ञान देखता है परन्तु ज्ञान, ज्ञान को देखता नहीं। वीर्य जो स्वरूप

की रचना करे, उस वीर्य का धारक आत्मा, उसे देखता नहीं और यह पुण्य-पाप की रचना हुई, उसे देखता है। वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। चाहे तो पंच महाव्रत धारण किये हो, बारह व्रत धारण किये हों। समझ में आया? यह सब राग और दु:ख अचेतन है। अचेतन है? सेठ! अचेतन है।

भगवान! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है न? वह राग अचेतन है। क्योंकि वह राग अपने को नहीं जानता, वह राग चैतन्य को नहीं जानता, वह राग चैतन्य द्वारा जानने में आता है, इसलिए वह राग अचेतन है। आहाहा! सेठ! यह सर्राफा बाजार चलता है। इतना तो इसके ख्याल में आना चाहिए न कि जो ज्ञान का प्रकाश पर्याय में है, वह पर्याय किसकी है? पूर्ण ज्ञानस्वरूप है, उसकी पर्याय है। उसके पीछे कोई पूर्ण है या नहीं? पहले अनुमान से ख्याल में आना चाहिए न? जिस पर्याय में, अंश में, एक समय की अवधि में ज्ञान की पर्याय जो ज्ञात होती है, वह तो बदलती चीज़ है, उत्पाद-व्ययवाली चीज़ है, वह चीज़ किसकी? ध्रुव की है। वह ध्रुव कौन है सामने? जो नहीं बदलती, ऐसी चीज़ क्या है अन्दर? आहाहा! प्रभु का मार्ग ऐसा है। आहाहा! और दिगम्बर सन्तों ने इतना स्पष्ट कर डाला है! ओहोहो! सूरज की भाँति प्रकाश कर दिया है, परन्तु देखे उसे न?

यहाँ कहते हैं कि वीर्य किसे कहते हैं? अपने स्वरूप की रचना करे। स्वरूप की अर्थात् अपना स्व जो ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता आदि ऐसी जो शक्तियाँ हैं, उसे पर्याय में वीर्यशक्ति (रचती है)। आनन्द और पूर्ण अनन्त गुण की शुद्ध पर्याय की रचना करे, उसे वीर्य कहते हैं। अशुद्ध की रचना करे, वह वीर्य नपुंसक / हिजड़ा है। बालचन्दजी! यहाँ तो यह बात है। आहाहा! यह बात हो गयी है। पुण्य-पाप अधिकार में है। ३९ से ४३ गाथा में है। नपुंसक—क्लीब है। आहाहा!

राग और पुण्य के परिणाम को अपना माने, वह नपुंसक, मिथ्यादृष्टि नपुंसक है। आहाहा! जैसे नपुंसक को वीर्य नहीं होता तो प्रजा नहीं होती, उसी प्रकार पुण्य परिणाम और पाप परिणाम नपुंसक है, उसमें से धर्मप्रजा उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! ज्ञानचन्दजी! बात तो ऐसी है, भगवान! क्या कहें? इसे सुनने को मिलती नहीं। यह कब विचार करे और कब रुचि करे? यह ऐसी चीज़ है, भाई! आहाहा! अरे! चौरासी के अवतार में दु:खी है।

पंच महाव्रत पालता है, वह दुःखी है। क्योंकि व्रत का विकल्प है, वह राग है, आस्रव है, दुःख है। आहाहा! भगवान के स्वभाव में द्रव्य-गुण-पर्याय में वह नहीं है। इसकी पर्याय तो निर्मल (पर्याय) हो, उसे पर्याय कहते हैं। आहाहा!

आत्मद्रव्य जो है, अनन्तशक्ति... अनन्तशक्ति ज्ञान, दर्शन आदि अनन्त शक्ति का असंख्य प्रदेश में पुंज जो ज्ञान का पुंज, प्रकाश का पुंज है, उस पर दृष्टि करने से वीर्य शक्ति भी साथ में आयी। वह वीर्यशक्ति अनन्त गुण की निर्मल अवस्था की रचना करे, उसका नाम वीर्य कहते हैं। समझ में आये ऐसा है, भाई! सादी भाषा है, इतनी कड़क भाषा नहीं है। आहाहा! अरे! भगवान! तू भगवान है न! यह स्त्री और पुरुष के शरीर, वह तो मिट्टी हड्डियों के हैं। वे तो हड्डियाँ हैं, वे कहाँ आत्मा हैं? अन्दर पुण्य-पाप के भाव भी आत्मा कहाँ है? वह तो अचेतन तत्त्व—जड़ तत्त्व है। आहाहा!

जो प्रकाश का पुंज प्रभु है और वीर्य द्वारा उस प्रकाश के पुंज की पर्याय में रचना हो, द्रव्य-गुण में तो है ही। शुद्धता, परिपूर्णता, आनन्द, वीर्य, ज्ञान, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, ईश्वरता ऐसी अनन्त शक्तियाँ द्रव्य-गुण में तो है ही, परन्तु उसकी पर्याय में जब प्रगटे, तब उसे वीर्य की रचना कहा जाता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! अरे! भगवान होने पर भी पामर होकर भटकता है। आहाहा! तीन लोक का नाथ चैतन्यस्वरूप, जिसके गर्भ में सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त आनन्द जिसके गर्भ में पड़े हैं, उसका प्रसव न करके पुण्य और पाप का प्रसव करे, उसे यहाँ प्रभु वीर्य नहीं कहते। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा सुना है, किसी स्त्री के गर्भ में से सर्प निकलता है। कोई ऐसे सर्प अन्दर हो जाते हैं। सर्प का जन्म होता है। सुना है, बहुत सुना है। यहाँ तो ८८ वर्ष हुए तो बहुत बात सुनी है। यहाँ तो निवृत्ति है। पाँच वर्ष दुकान चलायी। बाकी पूरी जिन्दगी निवृत्ति है। बहुत सुना है। स्त्री के गर्भ में किसी समय ऐसा हो जाता है कि सर्प हो जाता है, सर्प निकले। आहाहा! पेट में गर्भ रहे तो शास्त्र तो ऐसा कहते हैं कि किसी को बारह वर्ष तक गर्भ रहे, ऐसा शास्त्र में पाठ है। हमारी काठियावाड़ी भाषा में उसे 'छोड' कहते हैं। तुम्हारी भाषा में कुछ होगा। हमारे 'छोड' कहते हैं, 'छोड'। यह स्थिति भगवान ने गिनी है। बारह वर्ष तक

गर्भ में रहे। बहुत केस हुए हैं। तीन-चार वर्ष में वहाँ पोरबन्दर में हुआ। भगवान तो बारह वर्ष कहते हैं और वही बालक मरकर वहाँ से मरकर फिर जन्में और बारह वर्ष रहे, ऐसे २४ वर्ष रहे। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने गर्भ में रहने की चौबीस वर्ष की कायस्थिति गिनी है। आहाहा! ऐसा अनन्त बार चौबीस वर्ष की कायस्थिति में गर्भ में हुई है, एक बार नहीं अनन्त बार ऐसा हुआ है। समझ में आया? अनादिकाल का आत्मा है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि चौबीस वर्ष के बाद भी उसे प्रसव होता है। यह तो आत्मा में अनन्त ज्ञान और दर्शन गर्भ में पड़े हैं। उसे अनन्त काल में अपनी पर्याय जब उस पर जाए, तब आनन्द का प्रसव होता है। वह चौबीस वर्ष की कायस्थिति, यह अनादि-सान्त काय स्थिति। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर (की) अलौकिक बातें हैं। भगवान! लोगों को सत्य सुनने को मिलता नहीं, बेचारे क्या करें? आहाहा! क्या करें?

जिसमें ज्ञान का अंश नहीं, प्रकाश का जिसमें प्रकाश नहीं, उस चीज़ को अपनी मानना, वह मिथ्यात्व—अन्धकार है। राग, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम भी अपने हैं, ऐसा मानना, वह अन्धकार को अपना प्रकाश मानने जैसा है। आहाहा! देवीलालजी! वस्तु ऐसी है, भगवान! आहाहा! बाहर की धूल में क्या है? करोड़ोंपति और अरबोंपति हों कहीं मरकर चले जाये। आहाहा! यह तो अनन्त लक्ष्मी का भण्डार! जिसके गर्भ में अर्थात् असंख्य प्रदेश में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता, अनन्त कर्ता—अपनी परिणति को करे, ऐसा अनन्त कर्म—पर्याय में आनन्द का कार्य करे, ऐसी अनन्त कर्मरूपी शक्ति अन्दर पड़ी है। आहाहा!

कर्म के तीन प्रकार। एक जड़कर्म, वह परमाणु की पर्याय; एक भावकर्म—पुण्य-पाप के परिणाम—कर्म; तीसरा—निर्मल परिणति उत्पन्न हो, वह भी कर्म। चौथा कर्म शक्तिरूप से है, वह कर्म। डालचन्दजी को प्रेम है न! ऐसा मार्ग, बापू! आहाहा! क्या कहा यह? फिर से कहते हैं, कर्म अर्थात् कार्य। एक तो जड़ की कर्म की पर्याय होती है, उसे कर्म कहते हैं। वह कर्म का कार्य—जड़ का कार्य है। एक तो आत्मा में पुण्य और पाप के भाव हों, वे अचेतन कार्य, जड़ कार्य। वह जड़कर्म। वे जड़ रूपी कर्म और यह जड़ अरूपी कर्म। भाई! आहाहा! और तीसरा कार्य—कर्म। आत्मा जो शुद्ध चैतन्यघन भगवान है,

उसमें वीर्य पड़ा है और उसमें कर्मशक्ति पड़ी है। कर्मशक्ति अर्थात् कार्य होने की शक्ति। जब आत्मा में आनन्दस्वरूप के प्रकाश का पुंज प्रभु, उस प्रकाश की सत्ता का स्वीकार किया, तब पर्याय में जो निर्मल परिणति उत्पन्न होती है, वह कर्म है। तीन। और शक्तिरूप कर्म है, वह गुण, वह ध्रुव है। कर्म के चार प्रकार। आहाहा! नन्दकिशोरजी! वकालात में ऐसी बात कभी सुनी नहीं। अभी तो धर्म के बहाने यह व्रत करो और अपवास करो और प्रतिमा ले लो (चलता है)। धूल भी नहीं, सुन न! अरे! भगवान! तेरी चीज क्या है, वह अनुभव में आयी नहीं, इसके बिना स्थिरता कहाँ से आयेगी?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने किया और कौन छोड़े? किया है क्या?

यहाँ तो कार्य अर्थात् कर्म; कर्म अर्थात् कार्य। उसके चार प्रकार वर्णन किये हैं। एक जड़ का कार्य, कर्म की पर्याय, वह जड़ का रूपी कार्य। विकार का कार्य वह अरूपी विकार का कार्य। कार्य कहो या कर्म कहो। निर्मल परिणति का कार्य, वह निर्मल वीतरागी कार्य और एक गुणरूपी कर्म, वह शक्ति है, उसे भी कर्म कहते हैं। आहा! ऐसी बात है। ख्याल में आता है? भाई! ख्याल में आ सके ऐसी चीज़ है। तीन लोक का नाथ अन्दर पड़ा है, आहाहा! जिसके गर्भ में केवलज्ञान, केवलदर्शन, आनन्द प्रगट होता है।

अभी एक लेख आया है, 'श्रमण' एक पुस्तक है न? अर र! ऐसे लेख लिखते हैं कि सर्वज्ञ तो वर्तमान एक समय की दशा ही देखते हैं, भूत-भविष्य की नहीं। अरर र! गजब करते हैं। क्या करता है तू? 'श्रमण' नामक एक मासिक आता है। काशी से आता है। ... आता है। वे साधु आये थे, दो स्थानकवासी साधु आये थे। वे वहाँ कर्ता-हर्ता है। हम दिल्ली गये थे। उसमें एक लेख आया है। सर्वज्ञ जो है, श्रीमद् भी कहते हैं वर्तमान वर्तती पर्याय है, उसे जानते हैं। परन्तु वह तो वर्तती है, उसे जानते हैं—ऐसा कहा किन्तु भूत-भविष्य को नहीं जानते—ऐसा वहाँ कहा ही नहीं। वर्ततीरूप से एक समय है। भूत-भविष्य की वर्तमान वर्तती नहीं परन्तु इस समय बरतेगी और वर्त गयी, उसे भगवान एक समय में प्रत्यक्ष जानते हैं। आहाहा! अरे! सर्वज्ञ को भी दूसरे प्रकार से मानने लगे, अब उसे आत्मा की प्रतीति कब हो? आहाहा!

आत्मा में एक सर्वज्ञशक्ति पड़ी है और उसके साथ उस शक्ति में बल भी है। वीर्यशक्ति भिन्न है और बल भी है। ऐसा आत्मा अपनी पर्याय में वर्तमान ज्ञान की दशा द्रव्य को ज्ञेय बनाकर द्रव्य का ज्ञान करती है। अपनी वर्तमान ज्ञान की दशा में द्रव्य को ज्ञेय बनाकर पर्याय में द्रव्य का ज्ञान करती है तो उस पर्याय में द्रव्य नहीं आता। परन्तु द्रव्य का सामर्थ्य—शक्ति है, वह पर्याय में ज्ञान में आ जाती है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें। द्रव्य तो द्रव्य ही है। द्रव्य का ज्ञान पूर्ण आया। जैसा पूर्ण स्वरूप है, वैसी पर्याय में पूर्ण प्रतीति आयी, पूर्ण ज्ञान आया। वह चीज़ (पर्याय में) आयी नहीं, चीज़ तो चीज़ में रही। अभी इसे सर्वज्ञशक्ति है, उसकी भी प्रतीति नहीं। आहाहा! और कहता है कि सर्वज्ञ अर्थात् एक वर्तमान देखे।

वह एक भाई कहता था, एक था न? महेन्द्र न? पण्डित महेन्द्र। वह अपने यहाँ संवत् २००३ के वर्ष में आये थे। ३३ पण्डित आये न? ३० वर्ष पहले। वहाँ तुम्हारे साथ था, बहुत चर्चा की। ललितपुर। एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे, वह सर्वज्ञ नहीं। आहाहा! वर्तमान में सबसे ऊँची शक्ति का विकास हुआ, वह सर्वज्ञ। अरे! भगवान! यह जैन में जन्मे, दिगम्बर। आहाहा! अरे! भगवान! बापू!

चैतन्य के प्रकाश का पूर पूर्ण है। शरीर भिन्न है, राग भिन्न है और इतने आकार प्रमाण चैतन्यप्रकाश का पुंज, वह परिपूर्ण पुंज ज्ञान है। वह परिपूर्ण वस्तु है, स्व-परप्रकाशक शक्ति अन्दर उपयोग में पड़ी है। आहाहा! निश्चय उपयोग, हों! पर्याय उपयोग वह दूसरी बात। उपयोग के दो प्रकार। एक अन्दर ध्रुवरूप उपयोग, एक परिणतिरूप उपयोग। अरे! ऐसी बात है।

यहाँ कहते हैं, कि स्वरूप की रचना। आहाहा! गजब शब्द उठाया है। अमृतचन्द्राचार्य ने तो कुछ काम कर दिया! स्वरूप, अपना ज्ञान, आनन्द, शान्ति आदि अनन्त शक्ति का जो स्वरूप, स्व-रूप। भाषा सादी है न? भाई! आहाहा! आत्मा उनकी भाषा स्वरूप है न? देखो! स्वरूप अर्थात् आत्मा के स्वरूप की रचना। आहाहा! भगवान आत्मा में तो बेहद अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता, ऐसी अनन्त शक्तियों का संग्रहालय, अनन्त शक्तियों का गोदाम, गुण का गोदाम आत्मा है। आहाहा!

उसमें दृष्टि करने से वीर्यशक्ति के कारण अनन्त गुण की निर्मल पर्याय की रचना होती है, उसे आत्मस्वरूप की रचना कहा जाता है। ऐसी बात है, भाई! प्रभु का मार्ग ऐसा है परन्तु लोगों को अभ्यास नहीं और लीनता दूसरी बाहर की वस्तु की, यह करो, यह करो, व्रत करो, अपवास करो, तपस्या करो और मर जाओ, जाओ! आहाहा! यह तो सब विकल्प की क्रिया—क्लेश की क्रिया है, दुःख की क्रिया है। आहाहा!

कहा न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायो' छहढाला। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' इसका अर्थ क्या हुआ? पंच महाव्रत और बारह व्रत के शुभभाव सब दुःखरूप है। आहाहा! उस दुःख की रचना करे, वह वीर्य नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वह आत्मबल नहीं। आहाहा! आत्मवीर्य तो वह है कि अपना त्रिकाली अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उस पर लक्ष्य जाता है तो वीर्य में वर्तमान परिणति में अनन्त गुण की शुद्ध पर्याय प्रगट हो, रचे, उसे वीर्य कहा जाता है। भाई डालचन्दजी! ऐसी बात है, भगवान! आहाहा!

स्वरूप की रचना करे, वह वीर्य अर्थात् उस समय में वीर्य अपने अनन्त गुण की परिणति में रचना की। द्रव्य-गुण की कहीं रचना नहीं करनी है, वे तो हैं ही। द्रव्य-गुण तो ध्रुव है, उनकी रचना क्या करना? रचना तो न हो, उसकी करनी होती है, तो पर्याय में जो आनन्द आदि नहीं है, (उसे प्रगट करना, वह वीर्य है)। आहाहा! ऐसा उपदेश किस प्रकार का? कोई जाने कि यह इस जैनधर्म का ऐसा उपदेश होगा? एक व्यक्ति ने नहीं कहा था। एक बाबा वहाँ मिला था। संवत् १९९९ के वर्ष में। जैन के साधु ऐसी आत्मा की बात करे, वह कहाँ से? क्योंकि जैन की छाप ऐसी है कि वह तो क्रिया करे। दया, व्रत, तप करे, वह जैन। राजकोट की बात है। राजकोट आया था।

आज भी एक आया है। कोई अहमदाबाद का वेदान्ती है। यहाँ का सुना सही न कि यहाँ अध्यात्म की आत्मा की बात है। दो पुस्तकें आयी हैं। उनकी ओर से भेजे हैं। कोई आशाराम बाबा है। दो पुस्तकें भेजी हैं। यहाँ की आत्मा की प्रसिद्धि है न! और जैनधर्म में किसकी प्रसिद्धि है? कि क्रिया, व्रत करना और सूर्यास्त पूर्व भोजन करना, कन्दमूल नहीं खाना और अमुक करना तथा दया पालना, यह सब जैनधर्म। ऐसी छाप है। बाहर में राग

की रचना को लोगों ने जैनधर्म मान लिया है। अर्थात् आत्मा की बात सुनने से अन्यमति को भी ऐसा हो जाता है कि जैन में ऐसा कहाँ से आया? आज दो पुस्तकें आयीं हैं। अहमदाबाद में कोई आश्रम है। सेवाश्रम। यहाँ भेजी है। देखा, परन्तु कुछ ठिकाना नहीं। ईश्वरभक्ति करो और आत्मकल्याण करो। परन्तु कौन ईश्वर? ऐसी दो पुस्तकें आयी हैं। और एक यह श्रमण, ऐसी तीन पुस्तकें आयी हैं। काशी का श्रमण (पत्रिका) है। यह सर्वज्ञ का लेख किया है। सर्वज्ञ एक समय की पर्याय जाने। वापस श्रीमद् का दृष्टान्त दिया है, भाई! वह तो वर्तती, वर्तते को जाने, ऐसा श्रीमद् ने कहा है। एक समय वर्तती जाने। पूर्व की, भविष्य की वर्तमान में वर्तती है, ऐसा नहीं। तब वह कहता है कि वर्तती एक समय की ही जाने, भूत-भविष्य की नहीं जानते। क्या करते हैं यह? बड़े पण्डित नाम धराते हैं।

श्रीमद् में ऐसा है कि सर्वज्ञ भी अनन्त द्रव्य की वर्तमान वर्तती एक समय की अवस्था को वर्तती को जानते हैं। भूत-भविष्य की वर्तती नहीं। जानते नहीं, ऐसा नहीं। समझ में आया? क्या करते हैं यह जैन के नाम से? जैन के नाम से ऐसे विपरीत (चलाते हैं)। परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ... आहाहा! उन्होंने कहा हुआ मार्ग कोई अलौकिक है, भाई! जिसकी एक समय की पर्याय में सर्वज्ञशक्ति है, साथ में बल भी अन्दर है। वीर्यशक्ति भिन्न है और सर्वज्ञशक्ति में बल है। अपने बल से जब सर्वज्ञपना प्रगट होता है, शक्ति में है, गर्भ में है तो प्रसव होता है। प्रसव अर्थात् उत्पत्ति। प्राप्त की प्राप्ति है या अप्राप्त की प्राप्ति है? है, उसमें से आता है। आहाहा! सागर भरा है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा!

अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त स्वच्छता—ऐसी अनन्त शक्तियों का सागर है, प्रभु! शरीरप्रमाण भले क्षेत्र छोटा हो परन्तु उसके भाव में तो समुद्र भरा है। कहो, सेठ! यह तुम्हारा सागर याद आया। आहाहा!

यहाँ क्या कहा? स्वरूप की रचना करे। अब एक दूसरी बात। वीर्य का कार्य यह है कि अनन्त गुण की परिणति निर्मल प्रगट करे, तब उसमें व्यवहार का तो अभाव आया। व्यवहार की रचना करे, ऐसा नहीं आया। व्यवहार है, उसे जानता है। वीर्य ने जहाँ शुद्ध परिणति प्रगट की तो ज्ञान की शुद्ध पर्याय प्रगट की, श्रद्धा की प्रगट की, दर्शन की पर्याय प्रगट की। राग है, उसे जाने परन्तु राग को जानता है, ऐसा कहना भी व्यवहार है। उस समय में ज्ञान की स्व और पर प्रकाशक पर्याय; राग है तो जानती है—ऐसा भी नहीं है।

अपनी पर्याय ही इतनी ताकतवाली है कि स्व और पर को (जानती हुई) स्वयं से प्रगट होती है। आहाहा! समझ मे आया? इस राग का तो उसमें अभाव है। लोग ऐसा कहते हैं न कि व्यवहार करते-करते निश्चय होगा। शुभयोग करो तो शुद्ध होगा। एकदम मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। उसे आत्मा की श्रद्धा नहीं, आत्मा के गुण की श्रद्धा नहीं, उसकी परिणति कैसी होती है, उसकी श्रद्धा की खबर नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! वीतरागमार्ग... आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ की भरत में अनुपस्थिति हुई। भगवान तो विराजते हैं। महाविदेह में तो परमात्मा साक्षात् विराजते हैं। करोड़पूर्व का आयुष्य है। एक पूर्व में सत्तर लाख करोड़ छप्पन हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। ऐसे करोड़ पूर्व का भगवान का आयुष्य है। उनके मुख में से निकली हुई वाणी यह कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ से यहाँ लाये। समझ में आया? दिगम्बर सन्त... आहाहा! नग्नमुनि, मोरपिछी—कमण्डल। भगवान के पास गये थे, आठ दिन रहे। वहाँ से सुनकर आने के बाद (शास्त्र बनाये)। केवली, श्रुतकेवलियों ने कहा, वह मैं कहूँगा ऐसा कहा। समयसार की पहली गाथा।

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचल-मणोवमं गदिं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुड-मिणमो सुदकेवली-भणिदं।।१।।

कितने ही ऐसा कहते हैं कि श्रुतकेवली ने कहा हुआ। ऐसा नहीं। अमृतचन्द्राचार्य ने दो अर्थ किये। श्रुतकेवली और केवली, ऐसे दो अर्थ किये हैं। केवली ने कहा हुआ हम कहेंगे—ऐसा कहते हैं और नियमसार में तो दो शब्द स्पष्ट एकदम भिन्न है। नियमसार की एक गाथा में है। समझ में आया? इसमें श्रुतकेवली है। नियमसार है? (पहली गाथा)।

'णमिऊण जिणं वीरं' कुन्दकुन्दाचार्य भगवान कहते हैं।

णमिऊण जिणं वीरं अणंतवरणाणदंसणसहावे।
वोच्छामि णियमसारं केवलिसुदकेवलीभणिदं।।१।।

केवली और श्रुतकेवलियों ने कही हुई बात मैं कहूँगा। समयसार की गाथा में भी ऐसा है, परन्तु अर्थ करनेवाले कितने ही झूठा अर्थ करते हैं। यह तो श्रुतकेवली ने कहा हुआ है, ऐसा शब्द है परन्तु अमृतचन्द्राचार्य ने श्रुतकेवली में से दो अर्थ निकाले हैं। एक श्रुतकेवली और एक केवली। इसका स्पष्टीकरण यहाँ स्पष्ट है। **'केवलिसुदकेवलीभणिदं'**

आहाहा! समझ में आया? मैं नियमसार कहूँगा। परन्तु यह नियमसार कैसा है? कि केवली परमात्मा ने साक्षात् कहा और श्रुतकेवली के निकट हमने चर्चा की, उनका कहा हुआ मैं कहूँगा। दो बातें हुई। वहाँ महाविदेह में श्रुतकेवली के निकट सुना और केवली के निकट सुना। समझ में आया? बात तो बहुत गम्भीर है, भगवान!

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्यदेव की गाथा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किसकी गाथा है? इसके लिये तो निकाला, भगवान! **'केवलिसुदकेवलीभणिदं'** सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ मैं कहूँगा। आहाहा! यह तो मुनि स्वयं कहें, तो भी वह सत्य है। परन्तु आधार देकर कहते हैं, भगवान... कोई कहता है कि महाविदेह में गये थे या नहीं? विद्यानन्दजी को शंका पड़ी, महाविदेह में गये हैं ऐसा कोई शास्त्र में नहीं है। अरे! पाठ में लेख मिलता है। पंचास्तिकाय की टीका में लेख है और दर्शनसार में लेख है। दर्शनसार देवसेनाचार्य का लिखा हुआ है। उसमें (कहा है कि) अरे! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह में न गये होते तो हम मुनि ऐसा धर्म कैसे पाते? ऐसा पाठ है। अपने समयसार में डाला है, शुरुआत में लिखा है। आहाहा! अभी भी शंका करते हैं। अभी आया था, दिखाया था। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे, यह कौन कहते हैं? कौन माने? अरे! भगवान! क्या कहते हैं? प्रभु!

मुमुक्षु : यहाँ का विरोध करने के लिये कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, बस। यहाँ कहते हैं, उसका विरोध करना है। सेठ बराबर कहते हैं। यह नाम क्या आये? **'केवलिसुदकेवलीभणिदं'** कुन्दकुन्दाचार्य यहाँ थे, तब केवली तो नहीं थे, परन्तु केवली ने कहा हुआ कहूँगा, ऐसा कहते हैं। और श्रुतकेवली ने कहा हुआ कहूँगा। समझ में आया? बहुत अधिकार है। पंचास्तिकाय में जयसेनाचार्य की टीका है। महाविदेह में गये थे। पश्चात् आकर शिवकुमार के लिये बनाया। और दर्शनपाहुड़ में है। समझे? पाठ है। इसमें नहीं। इसमें है? समयसार में है। इसमें है? यह रहा, है, है। यह रहा, देखो!

जइ पउमणंदिणाहो सीमंधरसामिदिव्वणाणेण।
ण विवोहइतो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति।।

दर्शनसार देवसेनाचार्य दिगम्बर मुनि थे, वे कहते हैं। अहो! **(महाविदेहक्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकरदेव) श्री सीमन्धरस्वामी से प्राप्त दिव्य ज्ञान द्वारा श्री पद्मनन्दिनाथ ने (अर्थात् श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने) बोध नहीं दिया होता तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे प्राप्त करते?** आहाहा! देखो! मुनि कहते हैं। साक्षात् भगवान के पास गये और यह लाये। यह नहीं लाये होते तो हम सच्चा धर्म कैसे प्राप्त करते? समझ में आया? उसमें कोई दूसरे मुनि का अनादर होता है?

यहाँ तो कहते हैं कि अपनी जो वीर्य—बलशक्ति है, वह अपने स्वरूप की रचना करती है। श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, वीतरागता को (रचता है)। उस समय क्रमवर्ती पर्याय है, वह निर्मल है। क्रमवर्ती पर्याय निर्मल है। अक्रमवर्ती है, वे गुण हैं। वह क्रमवर्ती पर्याय और अक्रमवर्ती गुण का समुदाय, वह आत्मा है। उसमें राग की पर्याय का समुदाय आत्मा है, ऐसा कहा ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह पहले आ गया है, पहले कहा था।

क्रमरूप और अक्रमरूप अनन्त धर्मसमूह जो कुछ जितना लक्षित होता है, वह वास्तव में समस्त एक आत्मा है। क्रम-क्रम से जो निर्मल पर्याय प्रगट होती है, (उसकी बात है)। राग की बात यहाँ है ही नहीं। क्योंकि राग का समुदाय वह आत्मा, ऐसा है ही नहीं। आहाहा! राग को तो विकार, अचेतन, जड़-अजीव में डाल दिया है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो भगवान आत्मा में अनन्त गुण जो निर्मल शुद्ध है, द्रव्य शुद्ध है और अनन्त शक्ति संख्या से है, वह शुद्ध है। और उसकी परिणति जो होती है, वह भी शुद्ध है। वह परिणति पर्याय होती है, वह क्रमसर-क्रमबद्ध होती है। इसलिए क्रमवर्ती कहा। क्रमवर्ती—क्रम से वर्तनेवाली। और गुण एक साथ रहनेवाले हैं, इसलिए अक्रमवर्ती—अक्रम से रहनेवाले हैं, ऐसा कहा। उस निर्मल पर्याय का क्रम और अक्रम गुण का समुदाय वह आत्मा है। उसमें कोई राग या व्यवहार आया नहीं। आहाहा! समझ में आया? बण्डीजी! ऐसी बात है, भाई! आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य पुकार करते हैं। आहाहा! टीका अमृतचन्द्राचार्य की है। कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा में भाव थे, उनका स्पष्टीकरण किया है। जैसे कि गाय और भैंस के स्तन में दूध है दूध, स्तन में दूध है, उसे बाई निचोड़कर निकालती है। समझ

में आया? इसी प्रकार पाठ में भाव भरे हैं उन्हें अमृतचन्द्राचार्य टीका करके स्पष्टीकरण करते हैं। नन्दकिशोरजी!

जब गाय, भैंस को दूहते हैं तो ऐसे... ऐसे... नहीं दुहते। हमने तो प्रत्यक्ष देखा है न! हमारी बहिन थी, उनके पास भैंस थी। यह तो छोटी उम्र की बात है। संवत् १९५९ के वर्ष। वह बहिन दुहती थी तो ऐसे नहीं। ऐसे दोहे तो गड्डा पड़ जाये और स्तन में भी... क्या कहलाता है? गड्डा पड़ जाये। यह खड्डा और यह... ऐसे करके निकाले। कोई भी बात हमने निर्णय किया हो वह (देखकर निर्णय किया है), ऐसे का ऐसा नहीं चलता। यह खड्डा होता है न? यह... दोनों का जोर आवे। उसी प्रकार शास्त्र के पाठ में भाव भरे हैं, आँचल में भाव भरे हैं, उन्हें अमृतचन्द्राचार्य टीका करके बाहर निकालते हैं। आहाहा!

यह वीर्य... आहाहा! इस वीर्यगुण में एक अकारणकार्य नाम की शक्ति है। क्या कहा? जैसे आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि शक्तियाँ हैं, वैसे एक अकारणकार्य नाम की शक्ति है। उसका कार्य क्या? कि वीर्य जो है, वह अपनी रचना करता है, उस कार्य की रचना में राग कारण है और स्वरूप की रचना कार्य हो, ऐसा नहीं है। अकार्यकारणशक्ति अब बाद में (इसमें) आयेगी। जो वीर्य स्वरूप की रचना करता है, उसके कार्य में राग जो व्यवहाररत्नत्रय का राग है, वह कारण है और स्वरूप की रचना कार्य है, ऐसा है नहीं। एक बात। दूसरी बात—स्वरूप की रचना करता है, वह कारण है और राग उसका कार्य है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी स्थिति है परन्तु अभी गड़बड़ कर डाली है। व्यवहार से निश्चय होता है, व्यवहार से (होता है)... अरे! प्रभु! सुन तो सही, नाथ! तेरी पामरता तू प्रसिद्ध करता है। राग तो पामर है, उससे प्रभुता प्रगट होती है? आहाहा! वीर्य आत्मस्वरूप की रचना (करे)। आहाहा! गजब बात की है न! नन्दकिशोरजी! है न? पुस्तक है?

मुमुक्षु : यह बात तो बहुत बार चली साहेब!

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके लिये तो कहते हैं। पहले के सर्राफ थे। सुना है? सर्राफ। यह दोनों सेठिया सर्राफ हैं। सच्चा रुपया आवे तो ले ले। खोटा रुपया आवे तो वापस न दे। लकड़ी का हो (उंबरो उसमें दबा दे)। ऐसा था। खोटा रुपया साहूकार की दुकान में आवे तो वापस न दे, तथा पैसे की गिनती में नहीं गिने। सौ रुपये में एक आया हो तो ९९

गिने और वह रुपया वापस न दे। लकड़ी को होवे न नीचे, क्या कहलाता है ? उंबरो, उंबरा में जड़ दे। उससे ना नहीं किया जाये। नहीं चलेगा। साहूकार की दुकान में खोटा रुपया आया, नहीं चलने देगा। उसी प्रकार यह तो भगवान की दुकान है। यहाँ झूठ चलने नहीं देंगे। जड़ दे वहाँ का वहाँ। झूठा है। व्यवहार से निश्चय हो, यह तेरा खोटा रुपया है। ज्ञानचन्दजी ! आहाहा ! पहले ऐसा था। अब तो खोटा होवे तो वापस ले जाये। हम साहूकार हैं, हमारे पास खोटा रुपया आया है, वह चलने नहीं देंगे। बैंक में भी उसे गिने नहीं।

यहाँ परमात्मा, सन्त ऐसा कहते हैं, परमात्मा की बात ही सन्त आढ़तिया होकर कहते हैं। समझ में आया ? भगवान ! तुझमें एक वीर्य नाम का गुण है न, प्रभु ! तो उस वीर्य का रूप तो अनन्त गुण में है न ! वह वीर्य जैसे अनन्त गुण की परिणति प्रगट करता है, उसमें रागादि की रचना वह प्रगट नहीं करता। रागादि का तो उसमें अभाव है। आहाहा !वह राग का कार्य भी नहीं है। स्वरूप की रचना जो निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान की हुई, वह राग का कार्य नहीं तथा राग उस स्वरूप की रचना करने का कारण भी नहीं है। आहाहा ! अरे ! शान्ति से सुने तो खबर पड़े कि यह क्या है ? सुनने को मिले नहीं... भगवान त्रिलोकनाथ की वाणी सन्तों ने अन्तर में उतारी, आहाहा ! और इस जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं, प्रभु !

वीर्य की पर्याय में शुद्ध चैतन्य की जितनी शक्तियाँ हैं, सब गुणरूप है, वे जब दृष्टि में अन्दर स्वीकार हुआ तो पर्याय में अनन्त गुण की निर्मल पर्याय का कार्य होता है। निर्मल पर्याय कहो या मोक्ष का मार्ग कहो। आहाहा ! मोक्ष के मार्ग की पर्याय की रचना वीर्य करता है और उस काल में व्यवहार—राग है, उसका अभाव है। वह राग का कार्य नहीं, मोक्षमार्ग की रचना, वह राग का कार्य नहीं, तथा मोक्षमार्ग की रचना कारण और राग कार्य है, ऐसा भी नहीं। विशेष कहेंगे.... एक घण्टे चला।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. ८, शक्ति-६, ७, गुरुवार, (द्वितीय) श्रावण शुक्ल ४, दिनांक १८-०८-१९७७

समयसार, शक्ति का अधिकार चलता है। वीर्यशक्ति का अधिकार चला। वीर्यशक्ति का बहुत वर्णन, बहुत वर्णन है। चिद्विलास में बहुत (वर्णन है)। द्रव्यवीर्य, क्षेत्रवीर्य, कालवीर्य, भाववीर्य, द्रव्यवीर्य, गुणवीर्य, पर्यायवीर्य—ऐसा बहुत विस्तार किया है। यह तो भण्डार है। चिद्विलास है न ? उसमें वीर्यशक्ति है। चल तो गयी, कल एक घण्टे चली। पार नहीं इतनी शक्ति है।

वीर्यशक्ति है, वह द्रव्य में वीर्यपना है। द्रव्य, द्रव्य से शक्तिवान है, गुण गुण से शक्तिवान है, पर्याय पर्याय से शक्तिवान है। और द्रव्य का जो क्षेत्र है, जीव के असंख्य प्रदेश हैं, वह क्षेत्र वीर्य है। क्षेत्र क्षेत्र से—अपने से रहा है। आहाहा! जैसे नरक और स्वर्ग का क्षेत्र। नरक के दुःख का क्षेत्र है, यह संयोग से कथन है। स्वर्ग में सुख का (क्षेत्र है)। यह लौकिक सुख है तो दुःख, उसका क्षेत्र है, वह संयोग से कथन है। भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी है। उसका प्रदेश—क्षेत्र है। वह प्रदेश—क्षेत्र उसका वीर्य है। असंख्य प्रदेश में वीर्यशक्ति है, उसके कारण से असंख्य प्रदेश में बसने से आनन्द आता है। समझ में आया ?

जैसे मकान में वास्तु लेते हैं न ? वास्तु। वास्तु कहते हैं ? दो-पाँच लाख का मकान बनावे, बाद में वास्तु ले। निवास कहते हैं ? प्रवेश, वास्तु लेते हैं। उसी प्रकार भगवान आत्मा असंख्य प्रदेश में निवास करता है, वह उसका वास्तु है। समझ में आया ? आहाहा! और असंख्य प्रदेश में अनन्त वीर्यक्षेत्र है। नरक का, स्वर्ग का क्षेत्र वीर्य। दुःख का क्षेत्र, यह संयोग से कथन है। यह तो अन्तर में असंख्यप्रदेशी वीर्य, वह सुख का स्वरूप है। असंख्य प्रदेश में वीर्य से आनन्द का पाक होता है। समझ में आया ? अपने असंख्य प्रदेश में वीर्यशक्ति से, जो असंख्य प्रदेश अपने से अपनी ताकत से रहे हैं, उसमें जिसका निवास है... आहाहा! अपने स्वदेश में जिसका निवास है, उसे अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होता है, ऐसा कहते हैं। राग और पुण्य-पाप में जिसका निवास है, उसे दुःख का वेदन है। समझ में आया ? प्रभु का मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई !

प्रभु स्वयं सूक्ष्म है न! नामकर्म के अभाव से सूक्ष्मगुण नहीं आता? वह सूक्ष्मगुण है तो प्रत्येक गुण सूक्ष्म है। ज्ञानसूक्ष्म, दर्शनसूक्ष्म, आनन्दसूक्ष्म, वीर्यसूक्ष्म। आहाहा! ऐसे वीर्य है, वह द्रव्य का वीर्य—द्रव्य वस्तु जो है, उसकी शक्ति। क्षेत्र का वीर्य—असंख्य प्रदेश का वीर्य। काल का वीर्य—एक समय की पर्याय का वीर्य और क्षेत्र में रहे हुए जो अनन्त भाव हैं, वह भाववीर्य। ऐसा मार्ग है। अरे! सुनने को मिलती नहीं, उसे देश के घर की, अरे! इसे घर में कैसे बसना, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा!

चिद्विलास में वीर्य का बहुत विस्तार लिया है, बहुत लिया है। द्रव्यवीर्य, कालवीर्य, क्षेत्रवीर्य, भाववीर्य, गुणवीर्य, द्रव्यवीर्य, पर्यायवीर्य—ऐसा बहुत लिया है। अपार वस्तु है। दीपचन्दजी साधर्मी हुए हैं, उन्होंने अनुभवप्रकाश लिखा है, चिद्विलास लिखा है। उसमें शक्ति का वर्णन जो उन्होंने किया है, वैसा दूसरे में कहीं विशेष नहीं है। समयसार नाटक में साधारण नाम है परन्तु उन्होंने जो विस्तार किया है, वह उनकी शक्ति बहुत! दीपचन्दजी गृहस्थ साधर्मी थे। गृहस्थ थे। गृहस्थ वास्तव में तो उसे कहते हैं, यह बात आयी थी, गृह अर्थात् अपने घर में स्थ (रहे), उसे गृहस्थ कहते हैं। वेणीप्रसादजी! उसे गृहस्थ कहते हैं। तुम्हारे पैसेवाले को गृहस्थ कहे, वह गृहस्थ नहीं। आहाहा! गृहस्थ—गृह अर्थात् अपने घर में स्थ—रहनेवाला। वीर्य भी अपने गृह में रहनेवाला वीर्य है। पुण्य-पाप में वीर्य नहीं जाता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह वीर्य जो है, वह अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में अपने क्षेत्र में काम करता है। यद्यपि विषय जरा सूक्ष्म है। निर्मल पर्याय है, वह निश्चय से तो निर्मल पर्याय जो मोक्षमार्ग की पर्याय है, जो द्रव्य के अवलम्बन से (उत्पन्न होती है)। 'भूतार्थ परिग्रहेण' सवेरे आया था न? सूक्ष्म है, भगवान! मार्ग ऐसा है। आहा! अभी तो सब लोप हो गया है। जो सत्यार्थ भगवान को पकड़कर अनुभव हुआ, उस अनुभव की जो पर्याय है और द्रव्य-गुण है, पर्याय का क्षेत्र और द्रव्य-गुण का क्षेत्र दोनों भिन्न हैं। अरे! समझ में आया? भेदज्ञान की बात बहुत सूक्ष्म, भाई! आहा...!

पर्याय का क्षेत्र... यह संवर अधिकार में आया है। विकार का क्षेत्र। विकार वस्तु भिन्न है, उसका क्षेत्र भी भिन्न है। आहाहा! यह वह बात भगवान की! सर्वज्ञ परमेश्वर के

सन्त दिगम्बर मुनि आढ़तिया होकर सर्वज्ञ का माल देते हैं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, अपनी वस्तु जो सत्यार्थ भूतार्थ ज्ञायकस्वभाव है, उसके आश्रय से उसमें स्थित रहने से जो आनन्द के अनुभव की, अनन्त गुण की पर्याय एक समय में उछलती है। यह आया न? एक समय में अनन्त गुण की पर्याय उछलती है अर्थात् उत्पन्न होती है। वह पर्याय उत्पन्न होती है, उसका क्षेत्र और द्रव्य-गुण का क्षेत्र दोनों भिन्न गिनने में आये हैं। आहाहा! और पर्याय का क्षेत्र पर्याय है। पर्याय की शक्ति पर्याय है, पर्याय पर्याय के कारण से है, द्रव्य-गुण से भी नहीं। आहाहा! यह भेदज्ञान सूक्ष्म है, बापू! सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त यह बात किसी ने देखी नहीं, देखी नहीं और कल्पित बातें की हैं। पण्डितजी! आहाहा!

यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव ने जो आत्मा देखा... एक बार कहा था न? 'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता हो लाल... प्रभु तुम जाणग रीति' केवलज्ञानी को कहते हैं, 'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता हो लाल, निज सत्ता से शुद्ध सबको पेखता हो लाल...' हे नाथ! हे सर्वज्ञदेव! हे परमेश्वर! परमात्मा! आप तीन काल-तीन लोक को देखते हो तो हमारी निज सत्ता शुद्ध पवित्र है, ऐसा आप देखते हो। विकार-फिकार वह निजसत्ता नहीं है। आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भगवान! आहाहा! 'निज सत्ता से शुद्ध सबको पेखते-देखते' हमारी सत्ता निज सत्ता शुद्ध चैतन्यघन है, जो पुण्य-पाप के तत्त्व से भिन्न है, उसे आप देखते हो। जैसे भगवान निज सत्ता शुद्ध देखते हैं, आहाहा! वैसे छद्मस्थ प्राणी भी अपनी पर्याय में जो शुद्ध द्रव्य-गुण देखे, उसे सम्यग्दर्शन होता है। ऐसी बात है, भाई! आहाहा! समझ में आया? एक बात।

दूसरी बात, भव मिले, यह बात यहाँ नहीं, प्रभु! क्योंकि भव वह संसार है और उसका कारण जो रागादि, पुण्य आदि, दया, दान आदि वह संसार है। समझ में आया? संसार से संसार—चार गति मिलती है। आहाहा! यहाँ तो परमात्मा भव के अभाव की बात करते हैं, भाई! वह कभी किया नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान तो ऐसा कहते हैं, पुण्यभाव है, पुण्यभाव, वह वर्तमान दुःखरूप है, वह आत्मस्वरूप नहीं और उस दुःख का फल जो संयोग मिले, वह भी दुःखरूप है, ऐसा

कहते हैं। आहाहा! ७४ गाथा—कर्ता-कर्म अधिकार की ७४ गाथा है। **'दुक्खा दुक्खफल'** ऐसा पाठ है। शुभभाव है, वह दुःखरूप है और उसका फल दुःख है। स्वर्गगति मिले परन्तु वह दुःख है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? थोड़ी सूक्ष्म बात है। जो शुभभाव किये थे, वह दुःखरूप है और पुण्य का बन्धन हुआ और उससे भगवान की वाणी और भगवान मिले, वह दुःख का कारण है। परद्रव्य है न? समझ में आया? परद्रव्य मिले, उसके ऊपर लक्ष्य जायेगा तो राग होगा। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! आहाहा! कर्ता-कर्म अधिकार की ७४ गाथा में है। आहाहा! **'दुक्खा दुक्खफल'** शुभभाव है, वह वर्तमान दुःखरूप है और उससे जो पुण्य बँधेगा और भगवान का तथा वाणी का संयोग मिलेगा परन्तु वह संयोगी वस्तु है, उसके ऊपर लक्ष्य जायेगा तो राग ही होगा, दुःख ही होगा। गजब बात है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, अपना जो क्षेत्र का वीर्य, भाव का वीर्यशक्ति, भाव अर्थात् शक्ति, उसके भाव वीर्य से भाव रहे हैं। पर्याय पर्यायवीर्य से रही है। द्रव्य द्रव्यवीर्य से रहा है। आहाहा! गजब बात है, भाई! भगवान की एक-एक शक्ति का वर्णन अलौकिक है। आहाहा! वीर्यशक्ति तो हो गयी, अब आज प्रभुत्वशक्ति लेनी है। आहाहा! सातवीं शक्ति है?

अखण्डितप्रतापस्वातन्त्र्यशालित्वलक्षणा प्रभुत्वशक्तिः। ७

जिसका प्रताप अखण्डित है अर्थात् किसी से खण्डित की नहीं जा सकती ऐसे स्वातंत्र्य से (-स्वाधीनता से) शोभायमानपना जिसका लक्षण है, ऐसी प्रभुत्वशक्ति।७।

जिसका प्रताप अखण्डित है... पुस्तक नहीं है? नन्दकिशोरजी! यह तो अध्यात्मवाणी है, बापू! प्रभु! यह तो अलौकिक वस्तु है। यह कहीं वार्ता-कथा नहीं है, यह तो भागवत कथा है। नियमसार में लिखा है। नियमसार की अन्तिम गाथा में लिखा है कि यह नियमसार, वह भागवत्शास्त्र है। लोग भागवत् कहते हैं, वह तो सब समझने जैसी बात है। थोड़ी सूक्ष्म बात है, कलश टीका में तो रामायण और भागवत् को राग का कारण कहा है। यह तो भाव, वीतराग की रामायण है। भागवत् कथा—जिसमें वीतरागता उत्पन्न हो वह भागवत् कथा है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **जिसका प्रताप अखण्डित है...** किसका ? द्रव्य का। जो आत्मद्रव्य है, उसमें प्रभुत्वशक्ति है। प्रभुत्वशक्ति है, ईश्वरशक्ति है। आहाहा! समझ में आया? यह ईश्वरशक्ति कहो या प्रभुत्वशक्ति कहो या परमेश्वरशक्ति कहो। आहाहा! अपना परमेश्वर, ऐसा आया है न? भाई! भूल गया है। आया था टीका में। अपने परमेश्वर को भूल गया है। दूसरे परमेश्वर को याद करता है परन्तु अपने परमेश्वर को भूल गया है। सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा सच्चे परमेश्वर परमात्मा है। तथापि उनका स्मरण करने से भी राग होता है, कहते हैं। आहाहा! परद्रव्य है न? उसमें है न? अपना परमेश्वर। ३८ गाथा में है। जीव अधिकार की अन्तिम गाथा। मुट्ठी में सोना हो, दाँतुन करते हैं न? तो दाँत में सोना रखे। दाँत घिसते समय सोना मुट्ठी में रखे फिर भूल गया कि कहाँ रखा? उसी प्रकार भगवान आत्मा परमेश्वरस्वरूप को अनादि से भूल गया है और पुण्य और पाप तथा उसके फल को याद किया। उसके फल आये। अपना परमेश्वर अन्दर चिदानन्द भगवान है। आहाहा!

कहते हैं, द्रव्य जो वस्तु है, उसमें प्रभुत्व है। जो गुण है, उस प्रत्येक गुण में प्रभुत्व है। आहाहा! ज्ञान में प्रभुत्व है, दर्शन में प्रभुत्व है, आनन्द में प्रभुत्व है, अस्तित्व में प्रभुत्व है, कर्ता नाम की शक्ति षट्कारक है, उस प्रत्येक शक्ति में प्रभुत्व है। आहाहा!

मुमुक्षु : अनन्त प्रभुत्व है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त प्रभुत्व है। आहाहा! अरे! यह बात! आत्मा कौन चीज़ है, इसकी खबर कहाँ है? और उसके ज्ञेय में उसका ज्ञान आये बिना सब व्यर्थ निरर्थक है, चार गति के भव की बात है। चाहे तो यह दया, दान, व्रत, तप, अपवास, भक्ति, पूजा और मन्दिर बनावे तो वह शुभभाव है, वह संसार है। आहाहा! गजब बात है, भाई! बालचन्दजी! ऐसी बात है। आहा!

यहाँ कहते हैं कि द्रव्य में प्रभुत्वशक्ति है, वह द्रव्य में, गुण में और पर्याय में-तीनों में व्याप्त है। एक बात। उस प्रभुत्वशक्ति का रूप अनन्त गुण में है। प्रभुत्वशक्ति अनन्त गुण में नहीं परन्तु प्रभुत्व का रूप है। ज्ञान में सामर्थ्यता, दर्शन में सामर्थ्यता, चारित्र में सामर्थ्यता, अस्तित्व में सामर्थ्यता, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, (अपादान), अधिकरण इन छह शक्तियों की पर्याय में सामर्थ्यता, गुण में सामर्थ्यता, द्रव्य में सामर्थ्यता है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसी एक प्रभुत्व नाम की शक्ति। उसने क्या किया? उस शक्ति का स्वरूप क्या? उसका प्रताप अखण्डित है। आहाहा! द्रव्य में और अनन्त गुणों में जो प्रभुत्व है, उसका प्रताप अखण्ड है, उसका प्रताप कोई तोड़ सके, ऐसी कोई वस्तु जगत में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? कि कठोर कर्म उदय में आवे तो आत्मा को लूट ले, यह बिल्कुल झूठ बात है। आहाहा! जिसका प्रताप अखण्डित है। वस्तु भगवान आत्मा का प्रताप अखण्ड प्रताप है। आहाहा! और अखण्ड प्रताप से खण्डित न हो, ऐसी स्वतन्त्रशाली स्वतन्त्रता से शोभायमान द्रव्य है। वह प्रभुत्वशक्ति के कारण से है। आहाहा!

जिसकी ईश्वरता द्रव्य में है, गुण में है और पर्याय में है तथा प्रत्येक गुण में उसकी ईश्वरता का रूप है। आहाहा! प्रभुता का रूप है। पहले एक दलपतराम थे न? हमारे स्कूल के समय एक दलपतराम कवि थे, बहुत होशियार। कवि दलपतराम डाह्याभाई, दलपतराम डाह्याभाई थे। हमारे समय वे थे। उनके लड़के हैं, मिले थे, यहाँ आये थे। वढवाण में है। कवि दलपतराम। कदडा। तब कदडा कहते थे। कदडा—कवि दलपतराम डाह्याभाई, यह कदडा। उन्होंने एक बार ऐसी कड़ी बनायी थी। स्कूल में आयी थी। 'प्रभुता प्रभु तारी तो खरी, मुजरो मुज रोग ले हरि' यह तो स्कूल में आया था। 'प्रभुता प्रभु तारी तो खरी,' समझ में आया? तारी अर्थात् तुम्हारी। 'मुजरो...' मुजरो अर्थात् मेरी विनती। 'मुजरो मुज रोग ले हरि' ऐसी यह प्रभुता। तेरी प्रभुता ऐसी है... आहाहा! वह अज्ञान और राग-द्वेष को हरनेवाली प्रभुता है। समझ में आया?

द्रव्य की प्रभुता अखण्ड प्रताप से शोभायमान, गुण की प्रभुता अखण्ड प्रताप से शोभायमान, पर्याय की प्रभुता अखण्ड प्रताप से शोभायमान। और द्रव्य की स्वतन्त्र शोभा, अपने द्रव्य से अपनी शोभा अपने में है। गुण की शोभा स्वतन्त्रता से है। एक समय की पर्याय है, यहाँ तो निर्मल पर्याय की बात करनी है, हों! यहाँ मलिन की बात नहीं है। अपनी निर्मल पर्याय जो स्वद्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन जो धर्म पर्याय होती है, आहा! उसकी प्रभुता उसमें है। उसकी प्रभुता को कोई खण्डित कर सके, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! कहते हैं न? कर्म ऐसे कठोर आवे। मूढ़ है, कर्म तो जड़ है, पर है। पर का तो तुझे स्पर्श भी नहीं। पर को स्पर्शता नहीं और पर तुझे स्पर्शते नहीं। तुझमें तेरे द्रव्य-गुण-पर्याय को

स्पर्शता है। आहाहा! यहाँ शुद्ध की बात करनी है, हों! शुद्ध। यहाँ अशुद्धता को गिनने में आया ही नहीं, अशुद्धता का तो अभाव है। शुद्धता की पर्याय में द्रव्य-गुण-पर्याय की प्रभुता प्रगटी तो अशुद्धता का अभाव, यह नास्ति है। यही अनेकान्त है। अशुद्धता से प्रभुता की पर्याय प्रगट होती है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन की पर्याय में प्रभुता है। सम्यग्दर्शन पर्याय है, उसमें प्रभुता है और श्रद्धा गुण त्रिकाल है, उसमें प्रभुता है और द्रव्य में प्रभुता है। श्रद्धाशक्ति द्रव्य में व्यापक है, उसमें प्रभुता है। आहाहा! एक श्रद्धाशक्ति द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्यापक है और एक शक्ति प्रभुत्वशक्ति अनन्त गुण में व्यापक है। यह तो भाई! बहुत ध्यान रखे तो पकड़ में आये, ऐसी चीज़ है। यह कहीं (साधारण बात नहीं है)। आहाहा!

अनन्त गुण, अनन्त अनन्त गुण का अफाट विस्तार अन्दर पड़ा है। आहाहा! पर्याय में परिणमन होता है तो वह अपनी प्रभुता से पर्याय, अखण्ड प्रताप से स्वतन्त्रता से शोभायमान होती है। क्या कहते हैं? द्रव्य-गुण तो अखण्ड प्रताप से स्वतन्त्रता से शोभायमान है ही, परन्तु जिसने द्रव्य पर दृष्टि करके सम्यग्दर्शन आदि पर्याय प्रगट की, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो पर्याय है, वह अखण्ड प्रताप से शोभित है। उसका कोई खण्ड करे, ऐसी किसी की ताकत जगत में नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

अखण्ड प्रताप से शोभित है और स्वतन्त्रशाली है। वह स्वतन्त्रता से शोभित है। पर्याय अपनी स्वतन्त्रता से शोभित है। राग है और व्यवहार है तो वह पर्याय प्रगट हुई, ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसी बातें हैं। यह तो शक्ति का खजाना है। आहाहा! तेरी पर्याय की प्रभुता अखण्ड प्रताप से और स्वतन्त्रता से शोभायमान है। ज्ञानचन्दजी! आहाहा! तेरी पर्याय उसे कहते हैं कि जो त्रिकाली शुद्ध द्रव्य है और त्रिकाली गुण शुद्ध है, उसके अवलम्बन से जो प्रगट पर्याय हुई, उस पर्याय को उसकी कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? उसके अवलम्बन बिना, पर्याय जो निमित्त के अवलम्बन से होती है, वह तो अशुद्धता और विकार है, बेकार है, आत्मा के लिये लाभदायक नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा.. अरे रे! खबर ही नहीं कि मैं कौन हूँ? प्रभु! तेरी एक-एक शक्ति

प्रभुता के अखण्ड प्रताप से और स्वतन्त्रता से शोभायमान है। यह उसका श्रृंगार है। आहाहा! शरीर पर श्रृंगार पहनते हैं न? यह धूल के श्रृंगार, मुर्दे के श्रृंगार हैं। यह तो मुर्दा है, मुर्दा। आहाहा! ९६ गाथा में अमृतचन्द्राचार्य ने कहा है। शास्त्र में ऐसा आता है, सच्चे मुनि भावलिंगी हों, वे भिक्षा (आहार) के लिये जायें, उसमें कोई रुदन करे तो वापस फिर जाते हैं। हम तो मोक्षमार्ग में निकले हैं, उसमें रुदन कहाँ? उसे अन्तराय गिना है। अन्तराय में ऐसा है। हम तो आनन्द की मौज में चलते हैं और आनन्द को साधते हैं, वहाँ यह क्या? बालक रोवे तो चले जाते हैं। हमारे आनन्द की लहर में रुदन क्या? आहाहा! इसी प्रकार यहाँ भगवान आत्मा अमृतरस का भण्डार जहाँ खुलता है, वहाँ दुःख और रुदन क्या?

यहाँ कहते हैं... आहाहा! दूसरी चीज़ कर्ता होकर, निमित्त होकर लाभ करे, ऐसी यह चीज़ नहीं है। धन्नालालजी! आहाहा! अरे! ऐसा कहाँ मिलता है? ऐसा भगवान विराजता है, भाई! तुझे खबर नहीं। तेरी कीमत तुझे नहीं आयी। आहाहा! अनुभवप्रकाश में लकड़हारे का दृष्टान्त दिया है न? कठियारा समझे? लकड़ीवाला। उसमें उसे कोई रत्न, हीरा मिल गया। चकचकाट... चकचकाट होती है। घर में आकर स्त्री से कहता है, देखो! अब अपने को केरोसिन जलाना मिट जायेगा। इसके प्रकाश में रोटियाँ बनाना। समझे? हीरा की कीमत नहीं होती। उसके प्रकाश में अपने केरोसिन बच जायेगा। उसमें एक झवेरी उसके घर में आ गया। देखकर कहा, यह क्या? भाई! कोई वस्तु है, इसके प्रकाश में हमारा केरोसिन बचता है। अरे! प्रभु! तू क्या करता है? यह हीरा मुझे दे और हजार गोदाम जो सोना-मोहर के हैं, उस एक-एक गोदाम में लाखों सोना-मोहर है, ऐसे एक हजार गोदाम मैं तुझे दूँ, तू यह मुझे दे दे। अरे! ऐसी चीज़! मुझे खबर नहीं। अनुभवप्रकाश में दृष्टान्त आता है। आहाहा! इसी प्रकार भगवान चैतन्य हीरा अन्दर है। आहाहा! जिसके प्रकाश में लोकालोक ज्ञात होता है, ऐसा कहना, वह भी असद्भूत व्यवहार है। अपनी पर्याय अपने से जानती है। आहाहा!

ऐसे अखण्ड प्रताप से ज्ञान की पर्याय (शोभित है)। गुण-द्रव्य है, वे तो अखण्ड प्रताप से ध्रुवरूप हैं परन्तु यहाँ तो जो परिणमन हुआ... आहाहा! ज्ञान की पर्याय अपने अखण्ड प्रताप से स्वतन्त्ररूप से शोभित हुई है। उस स्वतन्त्रपने की अपने शोभा है। ऐसे समकित की पर्याय उत्पन्न होती है, उस पर्याय में भी अखण्ड प्रताप स्वतन्त्रता से

शोभायमान होती उत्पन्न होती है। आहाहा! दर्शनमोह गया, मिथ्यात्व गया तो समकित हुआ, ऐसी अपेक्षा नहीं है। समझ में आया? इसी तरह आनन्द की पर्याय उत्पन्न होती है, अतीन्द्रिय आनन्द का खजाना भगवान है। आनन्द द्रव्य में, गुण में, पर्याय में पसरा है। उस आनन्द की पर्याय में प्रभुता अखण्ड प्रताप से स्वतन्त्रपने शोभायमान होती हुई अनन्त पर्याय प्रगटे, उसकी प्रभुता को कोई लूटे, खण्ड करे—ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐसा है। यह तो शक्ति का वर्णन (चलता है)। यह कक्षा (शिविर) आता है तो शक्ति का वर्णन करना, ऐसा रामजीभाई ने कहा। मुझे भी थोड़ा विचार आ गया था। सुने तो सही, यहाँ ४३ वर्ष हुए। आहाहा! भले सूक्ष्म पड़े परन्तु बापू! ऐसा कुछ है। मार्ग में पद्धति कोई अलग प्रकार की है। इसके ख्याल में तो आवे न! आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत सरस बात है, सरस बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले नम्बर की बहुत बढ़िया बात है। एम.ए. के नम्बर की नहीं। पहले सम्यग्दर्शन होने के नम्बर की यह तो बात है। आहाहा! अरे! कहाँ निवृत्ति, कहाँ फुरसत है लोगों को? आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं कि पर जो रागादि व्यवहाररत्नत्रय है, उसके कारण से सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट हुई, ऐसा है ही नहीं। यह सम्यग्दर्शन की पर्याय स्वतन्त्ररूप से अखण्ड प्रताप से शोभायमान होकर प्रगट हुई है। आहाहा! इसी तरह अपने में चारित्रगुण की पर्याय (प्रगट होती है)। चारित्र एक शक्ति है, पर्याय चारित्र भिन्न। चारित्र नाम की एक शक्ति है। अकषायस्वभाव वीतरागस्वभाव कहो या चारित्रस्वभाव कहो। वह चारित्रगुण भी द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्यापक है। व्यापक कब? कि जब सम्यग्दर्शन हुआ तो। समझ में आया? नहीं तो द्रव्य-गुण में तो था परन्तु पर्याय में नहीं था। यहाँ तो वस्तुस्थिति ऐसी है कि अनन्त चारित्र का पिण्ड भगवान शक्तिरूप है, उसका जहाँ आश्रय हुआ तो पर्याय में चारित्र आनन्द, आनन्द वैभव (प्रगट हुआ)। अपने निज वैभव की सेवा करनेवाला चारित्र, अनन्त गुण का अनुभव करनेवाला चारित्र, वह चारित्र की पर्याय अखण्ड प्रताप से स्वतन्त्ररूप से शोभित होती है, वह पर्याय है। अरे रे! अभी तो लोग पंच महाव्रत और विकल्प और नग्नपने को चारित्र मानते हैं। अभी खबर भी नहीं।

मुमुक्षु : राग को चारित्र मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग की खबर नहीं। नौवें ग्रैवेयक में गया, उस समय जो राग था, वह राग भी (अभी) कहाँ है? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' भाई! यह तो वस्तु है। लोग ऐसा समझते हैं कि अरे रे! हमारे साधुपने की निन्दा करते हैं। अरे प्रभु! तू सुन तो सही, भाई! साधुपने की निन्दा? आहा! धन्य वह परमेश्वर पद है! साधुपद तो पंच परमेष्ठी पद है। आहाहा! यह तो पहले कहा न? पहले यह बोलते हैं, पश्चात् यह बाहर से बोलते हैं। पहले अन्दर में बोलते हैं कि णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। पहले अन्दर बोलते हैं न? पहले बोलने के बाद णमो अरिहंताणं बोलते हैं। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आईरियाणं—यह धवल का पाठ है। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती उव्वज्झायाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं। आहाहा! जो वर्तमान साधु नहीं और वह जीव कोई नरक में भी हो परन्तु भविष्य में साधु होगा तो कहते हैं कि हम तो त्रिकालवर्ती साधु को नमस्कार करते हैं। समझ में आया?

चारित्र की जो पर्याय है, वह वीतरागी आनन्द लेकर वह पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! धन्य अवतार! बापू! चारित्र अर्थात् क्या? समझ में आया? वह चारित्र की पर्याय द्रव्य-गुण में तो शक्तिरूप है परन्तु जहाँ स्वभाव का अवलम्बन लेकर सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ और उग्र आश्रय लिया तब चारित्र हुआ। समझ में आया? वह तो परमेश्वरपद! प्रभु! आहाहा! अरे! भाई! वह चारित्र की पर्याय अपने अखण्ड प्रताप से (शोभित है)। प्रभुत्वशक्ति का उसमें रूप है। चारित्रशक्ति की पर्याय में प्रभुत्वशक्ति का रूप है। आहाहा! वह अखण्ड प्रताप से शोभायमान वीतरागी पर्याय स्वतन्त्रता से शोभायमान है।

शाली कहा है न? शाली कहा है। है? शाली-स्वतन्त्रशाली। पण्डितजी ने प्रश्न किया था न? मैंने कहा, यह स्वतन्त्रशाली क्या? यहाँ शोभायमान अर्थ किया है। दूसरी जगह चैतन्यशाली आता है। पंचास्तिकाय में से निकाला था। चैतन्यशाली है। वहाँ अर्थ नहीं किया। चैतन्यशाली के दो अर्थ होते हैं। चैतन्यवान और चैतन्य से शोभायमान। लोग ऐसा कहते हैं न? यह पुण्यशाली है, भाग्यशाली है। वह पुण्यवान और भाग्यवान कहलाता है। बस! यह शोभायमान नहीं। यह धूल मिले, पाँच-पचास लाख, करोड़, दो करोड़ धूल मिले, वह कहीं शोभा नहीं है, वह तो अकेला पाप है।

योगसार (७१ गाथा) में तो योगीन्द्रदेव ऐसा कहते हैं कि 'पाप पाप को तो सब कहे परन्तु अनुभवीजन पुण्य को भी पाप कहे।' आहाहा! चिल्लाहट मचाये न लोग! पुण्य-पाप में भेद जाने, वह घोर संसारी प्राणी है। प्रवचनसार (७७ गाथा) में आया है। पुण्य ठीक है और पाप अठीक है, ऐसे भेद करता है, वह घोर संसार चार गति में भटकनेवाला है। ऐसी बात है। समझ में आया? पुण्य-पाप दोनों में पुण्य ठीक है, शुभभाव ठीक है, (ऐसा माने)। वहाँ तो ऐसा कहा है कि जो भाव कुशील है, संसार में प्रवेश कराता है, वह भाव ठीक कहाँ से होगा? आहाहा! वह शुभभाव संसार में प्रवेश कराता है, भव मिलते हैं। आहाहा!

यहाँ तो सम्यग्दर्शन की बात चलती है। जिसमें भव का अभाव हो, तब मुक्ति होती है। पहले से भव का अभावस्वभावस्वरूप, भव के अभावस्वभावस्वरूप और भव के कारणरूप विकार के अभावस्वभावस्वरूप भगवान आत्मा है। समझ में आया? उसके द्रव्य-गुण-पर्याय में प्रभुता व्यापक है। आहाहा! ईश्वरता। यह दूसरा ईश्वर खोजे कि हमारा करनेवाला दूसरा ईश्वर है। आहाहा! तेरी पर्याय की ईश्वरता का द्रव्य-गुण कर्ता नहीं तो तेरा कर्ता कोई दूसरा ईश्वर है? आहाहा! समझ में आया? बापू! यह तो मार्ग अलग है। आहाहा!

एक-एक शक्ति में कितना भरा है! अखण्ड प्रताप। अपने द्रव्य-गुण में और एक-एक गुण में अखण्ड प्रताप से स्वतन्त्ररूप से वह गुण शोभायमान रहा है और अपनी पर्याय में निर्मल पर्याय जो स्वद्रव्य के आश्रय से प्रगट होती है, वही उसकी पर्याय है, यथार्थता में तो विकार उसकी पर्याय नहीं। निश्चय से तो वह पर्याय पुद्गल की—जड़ की है। आहाहा! यह व्यवहाररत्नत्रय देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का भाव राग है, वह पुद्गल है, यह आत्मा की पर्याय में नहीं है। आहाहा! अरे! तेरा माहात्म्य! तेरी पर्याय का माहात्म्य अलौकिक है। प्रभुता अखण्डता से शोभायमान है तो तेरे द्रव्य-गुण की प्रभुता अखण्ड शोभा और स्वतन्त्रता का तो क्या कहना? समझ में आया? परन्तु बात विश्वास में आना (कठिन)। आहाहा! इसके द्रव्य-गुण-पर्याय प्रभुत्वशक्ति से भरपूर है। एक-एक गुण प्रभुत्व से भरपूर है, ऐसा प्रतीति में आना चाहिए। वह प्रतीति अखण्ड प्रताप से शोभायमान स्वतन्त्र है। तब इसने प्रभुत्वशक्ति को जाना और माना। यह तो पामरता... अरे रे! हम तो

ऐसे, हम तो दीन हैं, हम दीन हैं, हम गरीब व्यक्ति हैं, हमारा पुरुषार्थ बहुत अल्प है। अल्प है, ऐसा नहीं; विरुद्ध है। अल्प पुरुषार्थ तो तब कहलाये...

यह कार्तिकेयानुप्रेक्षा में आया है कि निज स्वरूप का भान हुआ कि अनन्त प्रभुत्व से मैं विराजमान हूँ। एक-एक शक्ति प्रभुत्व और पर्याय में प्रभुत्व। एक समय में जो अनन्त पर्याय हैं, वह तो प्रत्येक पर्याय की प्रभुता से वह अखण्ड शोभायमान है। दूसरी पर्याय से वह शोभायमान है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा भान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ तो वहाँ कार्तिकेयानुप्रेक्षा में लिया है कि ओहो! मेरी पर्याय में पामरता है। किस अपेक्षा से? केवलज्ञान की अपेक्षा से। स्वामी कार्तिकेय में गाथा है। स्वामी कार्तिकेय की द्वादश अनुप्रेक्षा है न? उसमें एक श्लोक है कि सम्यग्दृष्टि जीव द्रव्य-गुण-पर्याय की प्रभुता मानता है परन्तु वह प्रभुता, पूर्ण पर्याय के समक्ष पामर है। समझ में आया? आहाहा! एक ओर पर्याय की प्रभुता अखण्ड प्रताप से स्वतन्त्र शोभायमान कहना तथा दूसरी ओर उस पर्याय को केवलज्ञान की अपेक्षा से पामर कहना। यह स्याद्वादमार्ग है। अनेकान्तस्वरूप है। आहाहा!

कहते हैं कि पर्याय में जब परमात्मदशा प्रगट हुई परन्तु परमात्मपने की पर्याय प्रगट नहीं हुई, तब तक पर्याय अखण्ड प्रताप से शोभायमान है, स्वतन्त्र है; तथापि केवलज्ञान की अपेक्षा से वह पर्याय पामर है। अरे... अरे..! ऐसी बात। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव, अपने स्वरूप का अनुभव हुआ, आनन्द का स्वाद आया, पूर्णानन्द की प्रतीति हुई पूर्ण की, तथापि जब तक चारित्र और वीतरागता नहीं है, तब तक मैं पामर हूँ, ऐसा कहते हैं—ऐसा पाठ है। अपने को तृण समान मानता है। एक ओर प्रभुता पर्याय है। अखण्ड प्रताप से शोभायमान है परन्तु पूर्ण केवलज्ञान का अभाव है, इस अपेक्षा से अपने को तृण समान मानता है। मैं कहाँ और प्रभु कहाँ! और चारित्रवन्त मुनिराज की आनन्द की रमणता और मेरी पर्याय कहाँ! आहाहा!

मुमुक्षु : आंशिक शुद्धि और पूर्ण शुद्धि।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूर्ण शुद्धि। आहाहा! तथापि आंशिक शुद्धि को यहाँ तो अखण्ड प्रताप से स्वतन्त्रता से शोभायमान कहा। समझ में आया? आहाहा! परन्तु केवलज्ञान की

अपेक्षा से चारित्र की आनन्द की रमणता... आहाहा! क्षायिक समकिती श्रेणिक राजा, जिन्होंने तीर्थंकर गोत्र बाँधा, आहाहा! वह क्षायिक समकित की पर्याय अखण्ड प्रताप से शोभायमान है। वही क्षायिक समकित की पर्याय आगे जाकर केवलज्ञान लेगी। परन्तु वह क्षायिक समकित की पर्याय अखण्ड प्रताप से शोभायमान होने पर भी, अरे रे! हमारी पर्याय पामर है। कहाँ चारित्रवन्त सन्त, कहाँ केवलज्ञानी परमात्मा और कहाँ मैं! आहाहा! अपने को तृण समान मानता है। कार्तिकेयानुप्रेक्षा में ऐसा पाठ है। किस अपेक्षा से?

यहाँ तो प्रभुता की बात चलती है। परन्तु मुझे पूर्ण शुद्धि का अभाव है। अरे रे! वहाँ धवल में तो ऐसा भी लिया है कि मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की पर्याय अपने स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई, वह मतिज्ञान और श्रुतज्ञान... आहाहा! धवल में ऐसा पाठ है कि केवलज्ञान को बुलाता है। ऐसा पाठ है। जैसे कोई एक मनुष्य मार्ग भूला हो और बुलावे, ऐ... भाई! यहाँ आओ, यहाँ आओ, यह मार्ग कहाँ जाता है? कहते हैं न? रास्ता भूल जाये तब। ऐ.. भाई! यहाँ आओ। यह रास्ता वाड में से जाता है या खेत में से जाता है? हमें सिद्धपुर जाना है। सिद्धपुर का रास्ता वाड है वहाँ से जाता है या यहाँ से जाता है? इसी प्रकार भगवान कहते हैं कि... आहाहा! जिसे मतिज्ञान में अनन्त प्रभुता अखण्ड प्रताप से प्रगट हुई, अरे! मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है, प्रभु! मुझे तेरा विरह है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रभु! आप तो हाथ पकड़कर दिखलाते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! ऐसा पाठ है, भाई! सेठ! डालचन्दजी, इसमें पाठ है। आहाहा! आचार्यों ने-सन्तों ने तो कमाल कर दिया! एक-एक गाथा कमाल-कमाल कर दिया!! आहाहा! प्रभु! एक बार सुन तो सही, नाथ! नाथ क्यों कहा? तेरे द्रव्य, गुण और पर्याय की रक्षा करनेवाला तू है। योगक्षेम करनेवाले को नाथ कहते हैं। तेरी पर्याय की रक्षा करनेवाला तू है और क्षेम—नहीं प्राप्त को प्राप्त करने के लिये तू नाथ स्वतन्त्र है। समझ में आया? नाथ नहीं कहते? पति। पत्नी का पति नाथ है। क्यों? कि पत्नी के पास जो संयोग है, उसकी तो रक्षा करता है और उसे नहीं प्राप्त हुआ, उसे प्राप्त करा देता है। गहने, कपड़े इत्यादि। ऐसे उसके पति को नाथ कहते हैं।

आत्मा को यहाँ पर्याय में नाथ कहा। आहाहा! प्राप्त हुई चीज, निर्मल आनन्द की

पर्याय जितनी प्रगट हुई है, उसकी तो रक्षा करता है और नहीं प्राप्त केवलज्ञान की और चारित्र की पर्याय प्राप्त करा देता है। आओ, आओ! धवल में ऐसा पाठ है, हों! बुलाता है, ऐसा पाठ है। आहाहा! यह धवल है न? चालीस पुस्तकें आयी हैं। धवल, जयधवल, महाधवल। अभी चार-पाँच प्रकाशित होती हैं। यहाँ सब पुस्तकें हैं, सब देखते हैं। हजारों पुस्तकें देखी हैं। आहाहा! उसमें ऐसा आया है, हों! आहाहा! धन्य अवतार! मेरी ऋद्धि मुझे प्रगट हुई परन्तु पूर्ण ऋद्धि मुझे नहीं है। पर्याय में, हों! द्रव्य-गुण तो पूर्ण ऋद्धि से भरपूर ही है। आहाहा! मेरा वैभव पूर्ण केवलज्ञान अनन्त आनन्द है। मतिज्ञान पुकार करता है कि आओ पूर्ण, पूर्ण आओ, हम अपूर्णता में नहीं रह सकते। रतनलालजी! यह छाल की छाल है। बाल की खाल कहते हैं। बात तो ऐसी है, भगवान! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, वह परतन्त्र... परतन्त्र... पराधीन... पराधीन का पुकार करते हैं। कर्ता की व्याख्या ही यह है, स्वतन्त्ररूप से करे, वह कर्ता। षट्कारक है न? कर्ता, कर्म, करण आदि छह शक्ति आगे आयेंगे। कर्ताशक्ति, कर्मशक्ति, करणशक्ति, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। कर्ता किसे कहते हैं? है न यह आर्यसमाज का? उसके पास कर्ता की व्याख्या के लिये इतिहास मँगाया था कि इतिहास क्या कहता है? गुरुकुल। अपने हिम्मतभाई पहले वहाँ थे। उमाशंकर न? उमाशंकर का इतिहास है। व्याकरण। उसमें से ऐसा निकला कि स्वतन्त्ररूप से करे, वह कर्ता। पर की अपेक्षा नहीं, पर का दास नहीं, पर की पराधीनता नहीं। ऐसी आत्मा की सम्यग्दर्शन पर्याय, सम्यग्ज्ञान पर्याय स्वतन्त्ररूप से शोभायमान स्वतन्त्र कर्ता होकर करती है। आहाहा! विद्यालय में आता था। भाई! नन्दकिशोरजी! छह कारक आते थे। हमारे समय में चौथी पुस्तक में आता था। पश्चात् तो क्या होगा? यह तो सत्तर वर्ष पहले की बात है। कर्ता उसे कहते हैं कि स्वतन्त्ररूप से करे। अखण्ड प्रताप से शोभायमान मेरी पर्याय। आहाहा! समझ में आया? मैं स्वतन्त्ररूप से यह पर्याय करता हूँ। मुझे कोई राग या निमित्त की अपेक्षा है तो यह पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसी अपेक्षा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

नियमसार की दूसरी गाथा में ऐसा कहा... चारों ओर से इस प्रकार से वस्तु को सिद्ध करते हैं... आहाहा! निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर की अपेक्षा बिना निरपेक्षरूप से उत्पन्न होते हैं। परम निरपेक्ष। आहाहा! नियमसार दूसरी गाथा। आहाहा! यह लोग

चिल्लाहट मचाते हैं, व्यवहार होवे तो निश्चय होगा। अरे! सुन तो सही। प्रभु! तू क्या कहता है? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, बहुत तपस्या करे, राग करे तो निश्चय होता है। धूल में भी नहीं होता, सुन तो सही। आहाहा!

यहाँ ऐसा कहा, परम निरपेक्षरूप से। जिसमें व्यवहाररत्नत्रय की और भेद की भी अपेक्षा नहीं। ऐसा भगवान आत्मा अपनी शक्ति की अपार प्रभुता की प्रतीति, उसका ज्ञान, उसकी रमणता, पर की अपेक्षा बिना निरपेक्षरूप से करता है। समझ में आया? एक घण्टे में कितनी बात याद रखना? यह तो प्रभु चैतन्यराजा की बात है। १७-१८ गाथा में आता है न? राजा की सेवा करे। यह राजा। ऐसा चैतन्यराजा... आहाहा! अपनी अनन्त शक्ति और अनन्त परिणति से शोभायमान है।

मुमुक्षु : अपनी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी बात है। आहाहा! अध्यात्म पंचसंग्रह में तो लिया है। नव रस उतारे हैं। श्रृंगाररस अपने में है। अपने आनन्दस्वरूप में अनन्त शक्ति का परिणमन, वह उसका श्रृंगार है। व्यवहाररत्नत्रय का श्रृंगार, वह इसका श्रृंगार नहीं। आहाहा! समझ में आया? आठों रस उतारे हैं। अद्‌भुतरस उतारा है। अद्‌भुतरस में क्या उतारा है? बहुत सरस! दीपचन्दजी साधर्मी गृहस्थ थे परन्तु आत्मा है न? आत्मा है न? गृहस्थ कहा और ब्रह्मचारी कहा। आत्मा के एक-एक गुण ब्रह्मचारी हैं। क्यों? अपने गुण में ब्रह्मपना है, उसमें दूसरे दोष नहीं आने देता। अब्रह्म नहीं आने देता। राग का अब्रह्म। आहाहा! ऐसी बात है। अरे! भगवान! यह तो तीन लोक के नाथ वीतराग परमेश्वर के यह कथन हैं। भाई! यह कहीं वार्ता-कथा नहीं। समझ में आया? आहाहा! इसके लिये समझनेवाले की भी योग्यता होनी चाहिए। आहाहा! इसे उकताहट नहीं आना चाहिए कि ऐसा सूक्ष्म, ऐसा सूक्ष्म। अरे! सूक्ष्म नहीं। तू इससे भी सूक्ष्म है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि पर्याय में... आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह पर्याय है, गुण नहीं। गुण तो त्रिकाल है। मोक्षमार्ग, वह पर्याय है। संसार भी विकारी पर्याय है, मोक्षमार्ग निर्विकारी अपूर्ण पर्याय है और सिद्ध की पूर्ण शुद्ध पर्याय है। ये सब पर्याय के भेद हैं। समझ में आया? यहाँ कहते हैं, आहाहा! मेरी जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय है,

वह अखण्ड प्रभुता से स्वतन्त्रता से शोभायमान है, उसे पर की अपेक्षा नहीं है। व्यवहाररत्नत्रय की अपेक्षा नहीं है, ऐसा कहते हैं। बाबूभाई! आहाहा! भाई! तेरा श्रृंगार तो देख!

उसमें एक अद्भुतरस लिया है। जिस समय में एक समय की पर्याय लोकालोक को भेद पाड़े बिना देखती है, उसी एक समय में ज्ञान की पर्याय यह जीव, यह अजीव, यह गुण, यह पर्याय, यह पर्याय के अविभाग प्रतिच्छेद—सबको भिन्न करके देखती है। उसी समय में दर्शन पर्याय भिन्न किये बिना, यह मैं जीव हूँ या जड़ हूँ, ऐसा भेद पाड़े बिना सत्ता के दर्शन करे। और ज्ञान की पर्याय एक-एक पर्याय और गुण के भेद कर-करके जाने। उसी समय में एक ही क्षेत्र में रही हुई दो पर्यायें। एक पर्याय सामान्य सत्ता को देखे तथा एक पर्याय उसी समय में द्रव्य-गुण-पर्याय भिन्न-भिन्न करके तीन काल को देखे (जाने) यह भविष्य की पर्याय, यह भूत की पर्याय, यह वर्तमान पर्याय। समझ में आया? ऐसा अद्भुतरस आत्मा में है। समझ में आया? यहाँ कहते हैं... यह तो गजब बात है, भाई! इसमें पूरा कहे, ऐसी शक्ति तो भगवान के पास है। आहाहा! मुनिराज क्षयोपशम से बात करते हैं। आहाहा!

जिसका प्रताप अखण्डित है। प्रत्येक गुण में जिसका प्रताप अखण्डित है। प्रत्येक पर्याय में जिसका प्रताप अखण्डित है। आहाहा! वीर्यशक्ति भी अखण्ड प्रताप से शोभायमान है। वीर्यशक्ति जो अन्दर में है, पुरुषार्थ... पुरुषार्थ... पुरुषार्थ द्रव्य में पुरुषार्थ, गुण में पुरुषार्थ, पर्याय में पुरुषार्थ। आहाहा! कोई ऐसा कहता है... लो, हो गया समय। कोई ऐसा कहता है कि तुम क्रमबद्ध मानते हो, उसमें पुरुषार्थ कहाँ रहा?

मुमुक्षु : यह स्पष्टीकरण तो अवश्य करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : करना? समय हो गया है, कल बात।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ९, शक्ति-७, शुक्रवार, (द्वितीय) श्रावण शुक्ल ५, दिनांक १९-०८-१९७७

समयसार, शक्ति अधिकार। आठवीं शक्ति है न? सात शक्तियाँ चलीं, सात। सातवीं में क्या आया? यह आत्मा जो है, वस्तु आत्मा, उसमें संख्या से शक्ति अनन्त हैं। संख्या से। शक्ति का सामर्थ्य अनन्त है, वह दूसरी चीज। परन्तु एक, दो, तीन, चार, पाँच संख्य-असंख्य-अनन्त ऐसी संख्या से द्रव्य एक और संख्या से अनन्त शक्तियाँ हैं। समझ में आया? उसमें ऐसी एक शक्ति है कि प्रभुत्व नाम की शक्ति है। यह कल चला था। तुम्हारे क्रमबद्ध का थोड़ा रह गया है। कल प्रश्न आया था न? भाई!

यह प्रभुत्वशक्ति (कि जिसका) प्रताप अखण्डित है। द्रव्य में, गुण में और पर्याय में जिसका प्रताप अखण्डित है। सूक्ष्म है, भगवान! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! अपूर्व बात है, भाई! यहाँ कहते हैं कि पर्याय में प्रभुता के अखण्ड प्रताप से स्वतन्त्र शोभायमान है, तथापि वह प्रभुत्वशक्ति पर्याय आगे-पीछे कर सके, ऐसी ताकत नहीं है। समझ में आया? क्यों? कि प्रभुत्वशक्ति जो है, वह सत् द्रव्य का सत्त्व है, कस है, माल है। वह शक्ति अपने द्रव्य में, गुण में और पर्याय में व्यापक होकर व्यापती है। तथापि उस प्रभुत्वशक्ति की पर्याय जिस समय में जो होनेवाली है, वही होगी। समझ में आया? क्योंकि उसमें एक अठारहवीं शक्ति है। अन्दर शक्तियाँ हैं। ४७ शक्तियाँ हैं न? उसमें अठारहवीं शक्ति क्रमवृत्तिरूप अक्रमवृत्तिरूप वर्तन जिसका लक्षण है। अठारहवीं शक्ति, अठारहवीं। है? भाई शकुनचन्दजी! अठारहवीं शक्ति। क्या कहते हैं? सुनो! यह क्रमबद्ध लेना है न!

क्रमवृत्तिरूप और अक्रमवृत्तिरूप वर्तन जिसका लक्षण है... आत्मा में एक उत्पाद-व्यय-ध्रुव नाम की शक्ति है। उमास्वामी के तत्त्वार्थसूत्र में आया कि 'उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्' और 'सत् द्रव्य लक्षणम्' ऐसा पाठ है। यहाँ कहते हैं कि आत्मा में एक उत्पाद-व्यय-ध्रुव नाम की शक्ति है कि जो शक्ति अनन्त गुण में व्याप्त है। प्रभुत्वशक्ति में भी उत्पाद-व्यय-ध्रुव का रूप है। आहाहा! उसमें उत्पाद-व्यय-ध्रुव नाम की शक्ति है तो जिस समय में जो पर्याय उत्पन्न होनी है, वह उत्पन्न होगी और पूर्व की पर्याय का व्यय होगा और ध्रुवरूप से सदृश कायम रहेगा। समझ में आया?

कोई ऐसा कहता है कि यदि ऐसा है तो क्रमबद्ध पर्याय में पुरुषार्थ कहाँ रहा? यह प्रश्न है न? भाई! आहा! तो कहते हैं कि उत्पाद-व्यय-ध्रुव नाम की शक्ति है, एक गुण है, वह अनन्त शक्तियों में व्यापक है। अनन्त शक्ति में वर्तमान पर्याय में जो पर्याय उत्पन्न होनी है, क्रमवर्ती—क्रम से वर्तनेवाली। भाषा है? **क्रमवृत्तिरूप और अक्रमवृत्तिरूप वर्तन जिसका लक्षण है...** वर्तना जिसका लक्षण है। आहाहा! क्या कहते हैं? सूक्ष्म है, भाई! अपूर्व बात है, बापू! आहाहा!

आत्मा में उत्पाद-व्यय-ध्रुव नाम की शक्ति है, हों! वह गुण है, वह स्वभाव है कि जो अनन्त शक्तियों में व्यापक है। अनन्त शक्तियों में भी प्रत्येक शक्ति में क्रमवर्ती जो पर्याय होती है, क्रम से वर्तनेवाला वर्तन... आहाहा! नन्दकिशोरजी! बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! क्रम से वर्तनेवाली अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें। आहाहा! अनन्त गुण में उत्पाद-व्यय-ध्रुव शक्ति व्यापक है न? रूप, रूप। अनन्त शक्ति में जिस समय उत्पाद होनेवाला है, उस समय में उत्पाद होगा और वही समय व्यय का क्षण है। उत्पाद जन्मक्षण है और व्यय का भी वही समय है। आहाहा! पर्याय जो है, उसके उत्पाद का काल भी वही है, आगे-पीछे नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। मार्ग, बापू! भगवान का वीतराग मार्ग सूक्ष्म है और ऐसी चीज सर्वज्ञ के अतिरिक्त वीतराग मार्ग के अतिरिक्त कहीं है नहीं। बापू! इसे समझने के लिये भी बहुत प्रयत्न चाहिए। समझे? संसार की पढ़ाई के लिये, एल.एल.बी. और एम.ए. के पूंछड़े लगवाने के लिये कितना पढ़ते हैं?

मुमुक्षु : अमेरिका जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अमेरिका इनका लड़का गया था, ऐसा कहते हैं। सुमनभाई है न इनका पुत्र? पैंतीस हजार रुपये खर्च किये, पाप के बनाये थे। यह तो रामजीभाई का दृष्टान्त देते हैं, ऐसा सबका समझ लेना। पैसा खर्च किया, इस वकालात में पाप करके पैदा किया था। नन्दकिशोरजी! वकालात पाप है? वह तो अशुभभाव था। इनका पुत्र सुमनभाई है, एक ही पुत्र है। उसे पढ़ाने के लिये अमेरिका में पैंतीस हजार खर्च किये। अभी छह हजार का तो वेतन है। एक हजार... क्या कहलाता है तुम्हारे? बक्षीस। बोनस का दूसरा नाम क्या कहा? ईनाम? छह हजार का वेतन और एक हजार का पेन्शन। भाषा भूल गये।

एक हजार का पेन्शन देते हैं। छह हजार का वेतन, पेन्शन और मकान का किराया सात सौ, ऐसे आठ हजार का वेतन है। उम्र पचास वर्ष है न? आहाहा! उस समय में पढ़ने की जो पर्याय हुई, वह उत्पादरूप होनेवाली थी, वह उत्पन्न हुई है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि यदि ऐसा है तो फिर पुरुषार्थ कहाँ रहा? प्रश्न तो यह था न? सवेरे यह था न? भाई! स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में प्रभु तो ऐसा कहते हैं कि जिस समय, जिस क्षेत्र में, जिस संयोग में, जिस प्रकार की पर्याय उत्पन्न होनी है, वह होगी। ऐसा माने, वह सम्यग्दृष्टि है, ऐसा लिखा है।

मुमुक्षु : न माने वह?

पूज्य गुरुदेवश्री : न माने वह कुदृष्टि, मिथ्यादृष्टि है, ऐसा उसमें लिखा है। इसका अर्थ क्या हुआ? कि प्रत्येक गुण की जिस समय में जो पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रुव गुण के कारण से (होगी)। वह गुण तो उत्पाद-व्यय-ध्रुव नाम का गुण है परन्तु उसकी पर्याय उत्पाद-व्यय और ध्रुव तीनोंरूप परिणमे, ऐसा उस शक्ति का स्वरूप है। उस समय अनन्त गुण में उत्पाद-व्यय-ध्रुव (होता है)। जिस समय में जो उत्पाद पर्याय (होनी है, वह होगी)। लोगों को यह नियत लगता है परन्तु नियत ही है। समझ में आया? परन्तु नियत के साथ पुरुषार्थ आया कि जिस समय में जिस गुण की पर्याय होनेवाली है, ऐसा निर्णय करनेवाला पर्याय के ऊपर लक्ष्य नहीं रखता। देवीलालजी! जरा सूक्ष्म बात है। बहुत गड़बड़ हो गयी है न?

क्रमबद्ध की तो वर्णीजी के साथ भी चर्चा हुई थी। वे कहे कि क्रमबद्ध नहीं है। एक फूलचन्दजी ने स्वीकार किया था। बनारस में संवत् २०१३ के वर्ष में गये थे। अपने एक दिगम्बर गृहस्थ है, बड़े झवेरी हैं। बड़ी प्राचीन प्रतिमा रखी है, घर में मन्दिर है। हम तो वहाँ भोजन करने जाते थे। कैलाशचन्दजी, फूलचन्दजी साथ में थे। मैंने उस समय कहा, पण्डित जरा (समझे)। कहा, भाई! प्रत्येक द्रव्य की पर्याय क्रमबद्ध है। भोजन करने जाते थे, साथ में पण्डित थे। संवत् २०१३ की बात है, बीस वर्ष हुए। तो फूलचन्दजी ने कहा... कैलाशचन्दजी नहीं बोले, क्योंकि यह बात बाहर थी नहीं और वर्णीजी की श्रद्धा में भी यह नहीं थी। एक समय में क्रम-क्रम से यदि हो तो नियत हो जायेगा, निश्चय हो

गया, उसमें पुरुषार्थ कहाँ रहा? अरे! भगवान! अनन्त गुण की क्रमसर जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, वह होगी, उसका निर्णय तो द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि करने से निर्णय होगा। पण्डितजी! ज्ञानचन्दजी! समझ में आया? भाई! सेठ! सर्राफ है न सेठ? सर्राफ का धन्धा तो यह है, भगवान! आहाहा!

कहते हैं कि जिस समय में (पर्याय) होनी है, वैसी पर्याय का निर्णय करनेवाले की दृष्टि द्रव्य के ऊपर जाती है। पर्याय का निर्णय पर्याय में रहकर नहीं होता। समझ में आया? यशपालजी! सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! अरे! प्रभु! तेरी बात तो... तेरी प्रभुता पड़ी है न, नाथ! तेरे द्रव्य में प्रभुता, गुण में प्रभुता, पर्याय में प्रभुता, तथापि उस प्रभुता की पर्याय का काल है, तब उत्पन्न होती है। वह प्रभुता की शक्ति भी पर्याय में फेरफार कर दे, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! परमेश्वर ईश्वर सर्वज्ञदेव भी जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, उसे फेरफार करे ऐसा द्रव्य का स्वभाव ही नहीं है। आहाहा! तो उसका पुरुषार्थ कहाँ रहा? भगवान! एक बार सुन तो सही, प्रभु! पर्याय में क्रमवर्तीपना... अठारहवीं शक्ति में आया न? क्रमवर्ती जिसका वर्तन है, ऐसा पाठ है। क्रम से वर्तना जिसका वर्तन है, उसका वर्तन ही वह है। आहाहा! जिसका लक्षण ऐसा है, (ऐसा) द्रव्य के ऊपर (लक्ष्य जाता है)। मैं ज्ञायकभाव चिदानन्द हूँ, ऐसा दृष्टि का निर्णय हुए बिना क्रमबद्ध का निर्णय नहीं होहता। (द्रव्य के ऊपर दृष्टि जाये), तब क्रमबद्ध का निर्णय सच्चा है। समझ में आया?

स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में ऐसा लिया है, चार गाथायें आयी न? पहले यहाँ बहुत बार चर्चा हो गयी है। तब बंशीधरजी थे। कलोलवाले सोमचन्दभाई थे। उस समय तो अनुकूल थे परन्तु बाद में... यह वस्तु अलौकिक है, अलौकिक बात है भगवान! आहाहा! एक प्रश्न था। ध्यानविजय थे न? ध्यानविजय। ध्यानविजय नहीं? उज्जैन में थे। ध्यानविजय ने यहाँ का वाँचन बहुत किया। ध्यानविजय थे, तुमने सुना है? नाम सुना है? उज्जैन में रहते थे, फिर हमें गजपन्था में मिले थे। गजपन्था। नासिक है न? नासिक। वहाँ गजपन्था आये, उठ-बैठ करके वन्दन किया। रात्रि में आये थे, इसलिए बोल नहीं सके। वन्दन किया और हमें गजपन्था से दोपहर को निकल जाना था। वे आये नहीं। मैंने कहा, उनका हृदय क्या

है, यह मुझे जानना है। ऐसे तो बहुत कहते थे कि ध्यानविजय ऐसा कहते हैं और वैसा कहते हैं। सोनी थे... परजिया सोनी थे। यहाँ का वाँचन करके बातें बहुत करे, वापस दोपहर को हम वहाँ गये थे। कमरे पर गये। दरवाजा खोला। नीचे उतर गये, पाट पर हम बैठे, (उन्होंने) वन्दन किया। मुझे तो उनका हृदय लेना था। कहा, यह बात करते हैं परन्तु है क्या यह ?

कहा, ध्यानविजयजी ! शास्त्र में ऐसा चला है, कालनय से मोक्ष और अकालनय से मोक्ष, दो बात चली है। बाबूभाई ! प्रवचनसार में ४७ नय (आते हैं)। कालनय से काल में भी मोक्ष होता है और अकाल में भी मोक्ष होता है, ऐसा शास्त्र में पाठ है। ऐ... नन्दकिशोरजी ! यदि क्रमबद्ध ही हो, जिस काल में जो होना है, वह होगा तो अकाल में मोक्ष कहाँ आया ? अकाल में मोक्ष है, ऐसा पाठ है। उसका उत्तर ? कालनय से मोक्ष और अकालनय से मोक्ष, ऐसा ४७ नय में पाठ है। यह तो ४७ शक्तियाँ हैं। प्रवचनसार में ४७ नय है। उसे ख्याल आ गया कि यह महाराज मुझे पकड़ेंगे। इसलिए स्वीकार कर लिया। नहीं तो वह कहते थे हमारी तरह कि जिस समय में होना है, उस समय में होगा, ऐसी बात करे। कहा, शास्त्र में यह कालनय है न ? काल से मोक्ष और अकाल से मोक्ष ऐसा पाठ है। मैंने विचार नहीं किया, ऐसा कहकर छूट गये। क्योंकि वे जानते हैं कि मैं कुछ कहूँगा तो पकड़ेंगे। बाबूभाई !

इसका अर्थ तो ऐसा है कि कालनय से तो जिस समय में मोक्ष होना है, उसी समय में मोक्ष होगा, परन्तु उस समय में अकालनय भी है। अकालनय का अर्थ काल आगे-पीछे होता है, ऐसा अर्थ नहीं है। अकालनय का अर्थ पुरुषार्थ और स्वभाव मिलाकर कहे तो अकाल हुआ। समझ में आया ? आहाहा ! सर्वज्ञ वीतराग त्रिलोकनाथ की वाणी की अमृतधारा, उसका क्या कहना ! वह वस्तु... बापू ! आहाहा ! जिसकी समझ में आ जाये, वह तो निहाल हो जाये, आहाहा ! जन्म-मरण से रहित हो जाये, बापू ! चार गति में दुःखी है।

अकालनय का अर्थ जिस समय में मोक्ष होना है, उसी समय में होगा। अकाल का अर्थ समय आगे-पीछे होगा, ऐसा अर्थ है ही नहीं। तो अकाल का अर्थ क्या ? कि अकेले कालनय में अकेला काल लिया था। अकालनय में स्वभाव, पुरुषार्थ, भवितव्यता,

काललब्धि आदि पाँच आये। अकेला काल नहीं, परन्तु साथ में पुरुषार्थ, स्वभाव है उसे अकालनय कहते हैं। अकालनय का अर्थ काल आगे-पीछे है, ऐसा नहीं। है। नन्दकिशोरजी! फिर से कहते हैं, यहाँ कहाँ अपने को... देवीलालजी! वह ध्यानविजय थे। उस समय रूपचन्दजी थे। कहाँ गये नेमचन्दजी? तुम्हारे भाई रूपचन्दजी साथ में थे। हम तीनों अन्दर बैठे थे। दो-चार व्यक्ति बैठे थे। यह प्रश्न उठा था। मैंने कहा, यहाँ का वाँचन कर यह बात करते हैं तो इनके अन्दर चीज़ ख्याल में आयी है या नहीं? देवीलालजी! तो उन्होंने उत्तर दिया, मैंने विचार किया नहीं।

इसका अर्थ यह है कि काल में तो जिस समय में होना है, उसी समय में केवलज्ञान और मोक्ष होगा। परन्तु अकाल का अर्थ उस समय पुरुषार्थ और स्वभाव सन्मुख पुरुषार्थ गया, काल तो उसी समय है परन्तु त्रिकाली स्वभाव सन्मुख पुरुषार्थ गया तो पुरुषार्थ और स्वभाव साथ में आये, उसे अकाल कहा गया है। भाई! समझ में आया? यह तो क्रमबद्ध का चलता है न! आहाहा!

कहते हैं, यह प्रश्न तो पहले यहाँ चर्चित हुआ था। यहाँ तो पहले से बहुत चलता है। पश्चात् देवकीनन्दन यहाँ आये। देवकीनन्दन पण्डित थे न? इन्दौर में देवकीनन्दन पण्डित थे, बहुत नरम थे। उन्होंने पंचाध्यायी के अर्थ किये हैं न? पंचाध्यायी के अर्थ किये हैं, उसमें भूल थी। क्या भूल थी? हमने तो सब देखा है न! सब पुस्तकें देखी हैं, सबके देखते हैं। उसमें ऐसा लिखा था कि छठवें गुणस्थान में जो मुनि हैं, उन्हें बुद्धिपूर्वक राग है और सातवें गुणस्थान में अबुद्धिपूर्वक राग है। ऐसा उन्होंने लिखा था। बाबूभाई! पंचाध्यायी में ऐसा अर्थ किया है। कहा, देवकीनन्दनजी! यह तुम्हारी भूल है। कहो, महाराज! नरम, हों! देखो! भाई! छठवें गुणस्थान में भी बुद्धि और अबुद्धिपूर्वक दोनों राग हैं। बुद्धिपूर्वक अकेला राग है और अबुद्धिपूर्वक साथ में है, ऐसा नहीं। गोम्मटसार में पाठ है—व्यक्त और अव्यक्त। राग ख्याल में आता है, इतना बुद्धिपूर्वक है और उसी समय ख्याल में नहीं आता, वह अबुद्धिपूर्वक है। अत: छठवें गुणस्थान में भी बुद्धिपूर्वक, अबुद्धिपूर्वक दोनों लागू पड़ते हैं। अकेला बुद्धिपूर्वक है, ऐसा नहीं है। और सातवें गुणस्थान में अकेला अबुद्धिपूर्वक राग है। समझ में आया? बात सूक्ष्म है परन्तु भाई! यह

तो... आहाहा! स्वीकार किया, बदल गये। कहा, महाराज! मेरी दूसरी कोई भूल हो तो बताओ। बहुत नरम थे। फिर तो रामजीभाई के साथ विचार किया, नरम देखे न तो कहा, तुम छह महीने यहाँ रहो। उनको और कैलाशचन्दजी दोनों को। तुमको जो वेतन मिलता है, वह यहाँ से संस्था देगी। परन्तु एक बार हमारी बात छह महीने सुनो, पश्चात् तुम्हें प्रचार करना हो तो करो, परन्तु एक बार सुनो तो सही क्या है? पश्चात् वहाँ गुजर गये। देवकीनन्दन गुजर गये, नहीं रहे।

उस समय यह बात चली। ३०८, 'दवियं जं कम्मणियमित' समयसार है न? ३०८।

दवियं जं उप्पज्जइ गुणेहिं तं तेहिं जाणसु अणण्णं।
जह कडयादीहि दु पज्जएहिं कणयं अणण्णमिह।।३०८।।

है न? आहाहा! देखो! फिर इसकी टीका। टीका में विशेष है। टीका है? **प्रथम तो जीव क्रमबद्ध ऐसे अपने परिणामों से उपजता हुआ...** है? लो, ज्ञानचन्दजी! हिन्दी पुस्तक। यह तो ध्यान रखे... ३०८ की टीका। टीका है? **प्रथम तो...** ३०८ (गाथा) है? **प्रथम तो...** मुख्य यह कहना है कि प्रथम अर्थात् 'तावत्' शब्द संस्कृत में है। 'तावत्'। हमारे मुख्यरूप से यह कहना है कि, 'तावत्' अर्थात् प्रथम। मुख्यरूप से जो कहना है, वह यह बात है कि, संस्कृत टीका। हमने तो अक्षर-अक्षर संस्कृत टीका देखी है। कितनी बार देखा है! संवत् १९७८ के वर्ष से समयसार मिला है। ५५ वर्ष हुए। पहली पुस्तक यह आयी थी।

'तावत्' अर्थात् **प्रथम तो जीव क्रमबद्ध ऐसे...** देखो! आया। पाठ में क्या है? देखो! पाठ में 'क्रमनियमित' है, संस्कृत में 'क्रमनियमित' है। क्रम से नियम से होनेवाली पर्याय क्रमसर होती है। क्रमनियमित का अर्थ नीचे लिखा है—क्रमबद्ध। है? यह क्रमनियमित का अर्थ क्रमबद्ध है। हमारे पण्डितजी ने ऐसा अर्थ किया है। यह क्रमबद्ध शब्द तो बहुत जगह है, अब तो बहुत जगह आये हैं। परन्तु क्रमबद्ध की व्याख्या क्या? आहाहा! समझ में आया?

पहले जीव की बात है। जीव क्रमबद्ध—क्रम-क्रम से जिस समय जो होनेवाली है, वह बद्ध अर्थात् नियम से उत्पन्न होगी। समझ में आया? भाई फूलचन्दजी ने अर्थ

किया है। क्योंकि क्रमबद्ध की व्याख्या वहाँ हुई थी। उन्होंने अर्थ किया कि क्रमबद्ध (अर्थात्) क्रमबद्ध पर्याय एक के बाद एक है, ऐसी बँधी हुई नहीं। ऐसा अर्थ किया है। बँधी हुई है, उसका यहाँ काम नहीं। एक के बाद एक पर्याय उसके साथ बँधी हुई है, ऐसी बद्ध की बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो एक के बाद एक होनेवाली है, उसे क्रम नियमित बद्ध कहते हैं। आहाहा! यह तो तत्त्व की मुख्य वस्तु है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : बद्ध नहीं। बद्ध की व्याख्या ऐसी नहीं है। क्रमबद्ध का अर्थ— समय-समय में नियम से होनेवाली है, वह क्रमबद्ध है। क्रमबद्ध का अर्थ ऐसा नहीं है कि इस पर्याय के बाद पर्याय के साथ बन्धन है, बँधी हुई है, ऐसा नहीं।

आत्मावलोकन में ऐसा चला है कि मोक्षमार्ग की पर्याय है तो केवलज्ञान होगा, उसके जोर से होगा – ऐसा नहीं है। क्या कहा? शान्ति से सुनो। मोक्षमार्ग की पर्याय है न? सम्यग्दर्शन-ज्ञान। वह पर्याय होने के पश्चात् केवलज्ञान मोक्ष होता है। तो इस पर्याय के जोर से केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न होगी, यह पर्याय है तो वह पर्याय उत्पन्न होगी, ऐसा नहीं है। ऐसी बात है। आहाहा! क्या समझ में आया? भगवान!

आत्मा में... यहाँ पहले जीव की बात लेते हैं, बाद में अजीव की लेंगे। आत्मा जो है... जीव कहो या आत्मा कहो। जीव सवेरे आया था। आत्मा शब्द आया था, पश्चात् जीवद्रव्य कहा था। जीव अलग है और आत्मा अलग है, ऐसी कोई वस्तु नहीं है। यह जीव—आत्मा जो इसके अनन्त गुण हैं, उसकी क्रमबद्ध क्रमसर जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, वह क्रमनियमित—क्रम से निश्चय से वह होनेवाली है। समझ में आया? देखो!

अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ... क्रमसर अपनी पर्याय से उत्पन्न होता हुआ। अपने परिणामों से जीव उत्पन्न होता हुआ **जीव ही है,...** यह परिणाम जो क्रमसर उत्पन्न होते हैं, वे जीव ही हैं। आज सवेरे भी आया था। शुद्धचेतनापरिणाम और अशुद्धचेतना-परिणाम जीव है। वह जड़ है और पर है, ऐसा नहीं। समझ में आया? मार्ग, बापू! बहुत सूक्ष्म, सूक्ष्म, आहाहा! भाग्यशाली लोग तो यहाँ दूर से सुनने आते हैं। दूर-दूर से आते हैं।

मार्ग तो ऐसा है, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ की अमृतवाणी का यह झरना है, नाथ! आहाहा!

क्रमसर परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव ही है। ऐसा जहाँ देवकीनन्दन को कहा तो देवकीनन्दन तो ऐसा बोले, नरम व्यक्ति थे, ओहो! 'आगमसहावो चक्खु'। सिद्धान्त में साधु को आगमचक्षु कहते हैं, वह बात यहाँ दिखायी देती है। बहुत नरम थे। देवकीनन्दन को तुमने देखा था? देवकीनन्दन को देखा था? नरम थे। बहुत वर्ष पहले गुजर गये। भाई ने देखा है, बहुत नरम थे, नरम। परन्तु कोई सत्समागम गुरुगम नहीं, इसलिए जरा अर्थ में फेरफार हो गया। उस फेरफार को यहाँ सुधार दिया। बताओ, हमारी कुछ भूल हो तो हम सुधार लेंगे। कहा न? छठवें गुणस्थान में बुद्धि-अबुद्धिपूर्वक दोनों राग हैं। अकेला बुद्धिपूर्वक राग है और अबुद्धिपूर्वक सातवें में है, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

अध्यात्मदृष्टि से जो राग बुद्धिपूर्वक ख्याल में आता है, उसे असद्भूत उपचार कहते हैं। ग्यारहवीं गाथा में आता है न? समस्त व्यवहार अभूतार्थ है। चारों व्यवहार। अध्यात्म के चार नय हैं। असद्भूतव्यवहार, सद्भूतव्यवहार। असद्भूतव्यवहार के दो प्रकार—उपचार और अनुपचार। सद्भूतव्यवहार के दो प्रकार—उपचार और अनुपचार। असद्भूतव्यवहार, जो छठवें गुणस्थान में राग ख्याल में आता है, उसे बुद्धिपूर्वक असद्भूत उपचार कहते हैं और उपयोग स्थूल है तो ख्याल में नहीं आता, वह अबुद्धिपूर्वक है। अबुद्धिपूर्वक (राग) को असद्भूत अनुपचारनय कहते हैं। ख्याल में आता है, उसे असद्भूत उपचार कहते हैं। असद्भूत व्यवहार उपचार और उसी समय जो ख्याल में नहीं आता, उसे असद्भूत अनुपचार कहा जाता है। थोड़ी सूक्ष्म बात है। आहाहा! वेणीप्रसादजी! इसमें नजर करनी पड़ेगी। ऐसे का ऐसा नहीं चलेगा। भाई ऐसा कहते थे, उन्हें बहुत रस नहीं है। यह तो रस लेने की वस्तु है, भगवान! करना तो यह है, बाकी सब थोथा है।

मुमुक्षु : रस लेने के लिये यहाँ कितने दिन रहना चाहिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : कमाने में अवधि करता है कि मेरे इतने वर्ष कमाना है? वहाँ नहीं करता। कहो, सेठ! नौकरी में भी पचपन वर्ष होवे तो निकाल देते हैं। व्यापार में तो कुछ ठिकाना नहीं। सत्तर-अस्सी हो, तो भी राग की मजदूरी किया ही करता है। वहाँ अवधि

डालता है ? पोपटभाई ! कि मुझे इतनी अवधि तक मुझे कमाना है, पश्चात् छोड़ देना है। इसी प्रकार समझने के लिये इतने वर्ष या इतने दिन ऐसी अवधि नहीं होती। समझ में आया ? तथापि अमृतचन्द्राचार्य ने कलश में कहा है, भाई ! छह महीने तक ध्यान रखकर यह अभ्यास कर। तेरी वस्तु की प्राप्ति होगी या नहीं ? होगी ही होगी। समयसार (३४वें) कलश में है। भाई ! छह महीने इस बात का अभ्यास कर। है तो जघन्य अन्तर्मुहूर्त। जघन्य अर्थात् अल्प काल में अन्तर्मुहूर्त में अनुभव हो जाता है और उत्कृष्ट होवे तो अनन्त काल में भी नहीं होता, अतः अमृतचन्द्राचार्य ने मध्यम लिया। भगवान ! एक बार छह महीने तो लगन लगा। मैं आनन्दकन्द शुद्ध चैतन्यघन हूँ। मैं रागरहित हूँ। पर से रहित हूँ, ऐसा अभ्यास छह महीने कर, तुझे प्राप्ति होगी, होगी और होगी ही। वेणीप्रसादजी ! ऐसी बात है, भाई ! जिनेश्वरप्रसादजी को तो रस है, उन्हें तो रस है, प्रेम है। उन्हें बहुत रस है। रुचिवाले हैं। मंगलवार को बहिन का जन्मदिवस है।

यहाँ कहते हैं, क्रमसर होगा यह बात सुनकर तो देवकीनन्दन ऐसा बोल गये, ओहोहो ! ऐसी बात तो हमने कभी सुनी नहीं। और महाराज ! हमारे सब पण्डितों की पढ़ाई अभी तक तो निमित्ताधीन की है। ऐसा बोले, हों ! सब पण्डितों की, कोई अपवाद छोड़कर, सब पण्डितों की दृष्टि निमित्ताधीन है। यह उपादान से यह पर्याय स्वयं से होती है, यह बात तो हमारे पठन में आयी नहीं। समझ में आया ? पढ़ने में आयी नहीं, हम अभी पढ़े ही नहीं। अनुभव तो बाद में। समझ में आया ?

कहते हैं कि ऐसा जीव ही है, जीव ही है। जो क्रमसर परिणाम उत्पन्न हुए तो वह जीव ही है और जीव से उत्पन्न हुए और जो नियमित काल है, उस काल में उत्पन्न हुए हैं, अजीव नहीं, पर से नहीं। वे उत्पन्न हुए, वे पर से नहीं हुए। आहाहा ! कर्म से नहीं। सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ तो कर्म के अभाव से नहीं है। मिथ्यात्व उत्पन्न हुआ वह कर्म के उदय के कारण से नहीं। अजीव से उत्पन्न नहीं होता। आहाहा ! समझ में आया ? **अजीव नहीं...**

इसी प्रकार अजीव भी... अब दूसरे पाँच अजीव लिये। छह द्रव्यों में एक जीव, पाँच अजीव। **क्रमबद्ध अपने परिणामों से उपजता हुआ अजीव ही है,...** आहाहा !

पाँचों ही रजकण, आकाश, धर्मास्ति, अधर्मास्ति आदि भगवान ने छह द्रव्य देखे। जीव की बात करने के पश्चात् पाँच अजीव हैं, उनकी भी क्रमसर जो पर्याय जिस समय में होनेवाली है, वह पाँच द्रव्य में भी होगी। समझ में आया? ध्यान रखना, भगवान! न समझ में आये ऐसी वस्तु नहीं है। आहाहा!

अरे! भगवान की ताकत एक समय में केवलज्ञान लेने की नाथ की ताकत है, उसे यह न समझ में आये? वह ऐसा मान लेता है कि यह सब सूक्ष्म है, यह हमसे नहीं समझ में आयेगा। नहीं समझ में आये, यह बात उसे समझने नहीं देती। आहाहा! भगवान आत्मा है, न समझ में आये, ऐसी बात कहाँ है? प्रभु! आहाहा! यह बात तो एक बार कही नहीं थी? वृद्ध व्यक्ति को घर में प्यास लगी हो तो घर में दो हजार का अश्व हो, दो हजार का बैल हो तो उसे कहेगा कि पानी लाओ? जल लाओ, उसे कहेगा? आठ वर्ष की लड़की हो तो उसे कहेगा—बहिन! सांकली! जल लाओ... पानी लाओ, क्योंकि मैं कहूँगा उसे यह समझेगी। घोड़ा और बैल नहीं समझेगा। नन्दकिशोरजी! इसी प्रचार आचार्य कहते हैं कि मैं कहता हूँ यह शरीर और राग को नहीं कहता। आत्मा को कहता हूँ। समझे उसे मैं कहता हूँ। पोपटभाई! ऐसी बातें हैं, भगवान! आहाहा! समझ सकता है, उसे मैं समझाता हूँ। मैं राग को-व्यवहार को और जड़ को नहीं कहता। आचार्य कहते हैं कि तू समझ सकेगा। आहाहा!

पाँचवीं गाथा में तो कुन्दकुन्दाचार्य ने तो यहाँ तक लिया है, समयसार पाँचवीं गाथा। **'तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।'** मेरे निज वैभव से मैं समयसार कहूँगा। पाँचवीं गाथा में है। यह तो पूरा शास्त्र में एक-एक शब्द रहस्य से भरपूर है। मैं **'एयत्तविहत्तं'** मेरा स्वभाव स्वभाव से एकत्व है और राग से विभक्त है। मैं ऐसी बात कहूँगा। ऐसा लिया है। **'तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण। जदि दाएज्ज' 'जदि दाएज्ज'** आहाहा! यदि मैं दिखाऊँ। राग से पृथक् और स्वभाव से अपृथक्, ऐसी बात मैं तुझे दिखाऊँ, **'जदि दाएज्ज'** जरा गम्भीर भाषा है। तो प्रभु! तो अनुभव से प्रमाण करना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पाँचवीं गाथा। दो बात **'दाएज्ज'** आया है। एक बार ऐसा आया था कि **'तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।'** मेरे वैभव से दिखाऊँगा। प्रत्येक पद

में बहुत गम्भीर भाषा है, भाई! पश्चात् तीसरे पद में कहा, **'जदि दाएज्ज'** यदि वाणी आदि आयी तो प्रमाण करना, प्रभु! यह प्रमाण अर्थात् अकेली हाँ नहीं, अनुभव से मेरी वाणी को प्रमाण करना। आहाहा! समझ में आया? दिगम्बर सन्तों की वाणी रामबाण वाणी है। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, **अजीव भी क्रमबद्ध अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ अजीव है, जीव नहीं; क्योंकि जैसे (कंकण आदि परिणामों से उपजते ऐसे) सुवर्ण को कंकण आदि परिणामों के साथ तादात्म्य है...** सोने की जो कुण्डल, कड़ा आदि जो पर्याय होती है, सोना उस पर्याय के साथ तादात्म्य है। क्रमबद्ध में सोने में भी कंकण आदि जो होते हैं, वे तादात्म्यस्वरूप है। इसी प्रकार भगवान आत्मा और जड़ में जो क्रमसर पर्याय उत्पन्न होती है, उसके साथ वह द्रव्य तादात्म्य है। अग्नि जैसे उष्णता के साथ तादात्म्य है, वैसे पर्याय आत्मा के साथ तादात्म्य है, तत् स्वरूप है। आहाहा!

जीव की पर्याय क्रमसर होती है, वह भी जीव के साथ तद्रूप और तन्मय है। आहाहा! और अजीव की पर्याय जिस समय में होती है, वह अजीव की पर्याय अजीव के साथ तन्मय तद्रूप तादात्म्य है। आहाहा! समझ में आया? बड़ी व्याख्या है। यहाँ तो अपने थोड़ा इतना कहना था। गाथा की व्याख्या लम्बी है। यहाँ तो क्रमबद्ध की व्याख्या लेनी थी, वहाँ क्रमनियमित निकाला है। एक देवेन्द्र शास्त्री है, वह कहे, क्रमबद्ध शब्द शास्त्र में है ही नहीं। ऐसा आया था। यह तो सोनगढ़वालों ने निकाला है, ऐसा कहता है। अब सुना है कि नरम पड़ गया है। ऐसा सुना है। मुझे सोनगढ़ आना है, ऐसा सुना है। पहले बोल गये हों, फिर बोल गये थे कि क्रमबद्ध शब्द नहीं है। अब सुना है कि हमारा सोनगढ़ आने का भाव है। पत्र था। किसे ख्याल रहे? भूल तो हो, अनादि की है, उसमें क्या? भूल हो, उसकी विशेषता नहीं; भूल का निकास करना, उसकी विस्मयता है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि प्रभुत्व। अपनी प्रभुता पर्याय में क्रमसर होती है, परन्तु वह प्रभुता पर्याय को बदल डाले, ऐसी प्रभुता शक्ति की नहीं है। ईश्वरता है, प्रभुता है, बल है, सामर्थ्य है परन्तु जिस समय जो पर्याय अनन्त गुण की होती है, उसकी वह प्रभुता है। आहाहा!

अपने में बहुत बल है, प्रभुता है तो पर्याय आगे-पीछे करूँ, ऐसा स्वरूप है ही नहीं। बाबूभाई! समझ में आया? ऐसी बातें। यह तो वीतराग त्रिलोकनाथ... दिगम्बर सन्तों ने तो केवलियों के पेट खोलकर रखे हैं, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें पुरुषार्थ कहाँ आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पुरुषार्थ कहा न! क्रमबद्धपर्याय का ऐसा निर्णय करता है, तो पर्याय से पर्याय में निर्णय नहीं होता, वह पर्याय द्रव्य के सन्मुख होती है, तब पुरुषार्थपूर्वक क्रमबद्ध का निर्णय होता है। यह तो पहले कहा था। समझ में आया? बापू! यह तो उपदेश -भगवान की वाणी ऐसी है। दया पालो और व्रत करो, भक्ति करो और पूजा करो, यह तो कुम्हार भी कहता है। कुम्हार कहता है, यह समझ में आया?

हमारा गाँव है न? जन्मगाँव, उमराला, यहाँ से ग्यारह मील है। हम तो वहाँ तेरह वर्ष रहे। हमारे उमराला गाँव में रिवाज था। जब श्रावण महीना आवे, श्रावण शुक्ल एकम को सेठिया आवे। कुम्हार, घांची के पास पाँच-पाँच सुपारी लेकर जाये। हमारे गाँव में रिवाज था। चार-पाँच हजार की आबादी। वे पाँच सुपारी लेकर जाये तो उन्हें ख्याल आवे कि इन सेठिया के पर्यूषण आने की तैयारी है। वह पाँच सुपारी दे, इसलिए श्रावण शुक्ल एकम से घाणी बन्द। मुसलमान घाँची घाणी बन्द कर दे। समझ में आया? कुम्हार निभाडा (भट्टी) बन्द कर दे। हमारे गाँव में ऐसा रिवाज था। जब श्रावण शुक्ल एकम आवे सेठिया जाए। अषाढ़ कृष्ण अमावस को जाये। घाँची समझते हो? घाँची। तैली, मुसलमान। तो भी वहाँ ऐसा रिवाज था... हमारे रूबक सेठ थे, बहुत खानदानी व्यक्ति थे। दो-चार व्यक्तियों को लेकर जाये। घांणी बहुत थी और बहुत कुम्हार थे। पाँच-पाँच सुपारी दे। आषाढ़ शुक्ल एकम से भाद्र शुक्ल पंचमी एक महीने तेली घाणी बन्द कर दे। ऐसा रिवाज था। वेणीप्रसादजी! समझ में आया? यह तो कुम्हार भी ऐसा करते थे। एक महीना और पाँच दिन घाणी चालू न करे। निभाडा नहीं करना, घाणी नहीं करना और भी बड़ी शर्त चलती थी। भाद्र शुक्ल पंचम तक न करे। स्थानकवासी श्वेताम्बर में पंचमी को पूरे होते हैं परन्तु फिर कौन पहले करे, उसे पाप अधिक लगेगा। इसलिए कोई सप्तमी, अष्टमी, नौवीं तक बन्द रखे। ऐसा हमारे गाँव में चलता था। अब ऐसा तो घाणी पेलने की

मुसलमान बन्द कर दे और कुम्हार निभाडा बन्द कर दे, यह कहीं नयी वस्तु है। समझ में आया? यह तो मुसलमान भी करते थे। आहाहा!

यहाँ तो तीन लोक के नाथ की वाणी अन्दर में जिसे आत्मा का ध्यान करना हो, उसके लिये है। दया पालो और व्रत करो, यह नहीं। वे ज्ञान में जानने में आते हैं, परन्तु वह जानने के लिये आते हैं। यह वस्तु करनेयोग्य है, इसलिए आती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, प्रभुता की शक्ति... आहाहा! अपने अखण्ड प्रताप से शोभित है तो अनन्त गुण की... उत्पाद-व्यय-ध्रुव नाम की शक्ति का रूप अनन्त गुण की प्रभुता में जिस समय में जो पर्याय स्वतन्त्ररूप से उत्पन्न होती है, उससे वह शोभायमान है। उसका प्रताप कोई खण्डित कर सके, उसमें फेरफार कर सके और स्वतन्त्रता को कोई परतन्त्र कर दे, ऐसी जगत में किसी की ताकत नहीं है। देवीलालजी! ऐसी बात है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : हम जल्दी मोक्ष में नहीं जा सकते।

पूज्य गुरुदेवश्री : जल्दी, एक समय में जा सकता है। किसने कहा? अपने स्वभाव सन्मुख का जोर दिया तो उस समय केवलज्ञान होने का समय है तो केवलज्ञान होगा ही। आहाहा!

मुमुक्षु : शर्त डाली।

पूज्य गुरुदेवश्री : शर्त डाली न। अन्दर पुरुषार्थ करे तो। यह शर्त है। आहाहा! ऐसा वीतराग का मार्ग, अरे! सुनने को नहीं मिलता। अरे! क्या करे? कहाँ करे? आहाहा! अरे! यह दु:खी प्राणी चार गति में, जैसे घाणी में तिल पिलता है, वैसे आत्मा अनादि से राग और द्वेष में पेला जाता है। तल पिलता है, उसे क्या कहते हैं? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं कि जब क्रमबद्ध का निर्णय हुआ तो उसे आनन्द की पर्याय उत्पन्न होती है, उसका निर्णय द्रव्य पर जाता है। समझ में आया? उसकी पर्याय में क्रमबद्ध के निश्चय के काल में द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि होने से क्रमबद्ध में आनन्द की पर्याय का वह क्रम है। आहाहा! सूक्ष्म बात है। समझ में आया? भाषा तो बहुत सादी है, भाव भले सूक्ष्म हो। आहाहा!

प्रभुत्वशक्ति... आहाहा! परन्तु प्रभुत्वशक्ति की ऐसी व्याख्या नहीं कि जो होनेवाली पर्याय है, उसे न करे और दूसरी पर्याय उत्पन्न हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया? वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा! जब द्रव्यस्वभाव ज्ञानानन्द सहजानन्द प्रभु... आहाहा! पहले एक बार कहा था, हमारी सज्झाय आती थी। श्वेताम्बर में चार सज्झायमाला है। एक-एक सज्झाय की पुस्तक में दो सौ-दौ सौ, ढाई सौ सज्झाय और एक-एक सज्झाय में आठ, दस, पन्द्रह, बीस श्लोक। ऐसी चार सज्झायमाला है। हमारे तो गृहस्थाश्रम में निवृत्ति थी न! पिताजी की दुकान थी, फिर मैं भी दुकान चलाता था। निवृत्ति थी, घर की दुकान थी। मैंने चार पुस्तकें पढ़ीं। चारों पुस्तकें। एक-एक पुस्तक में दो सौ-ढाई सौ सज्झाय। एक-एक सज्झाय में दस-पन्द्रह श्लोक। ऐसी चार पुस्तकें हैं। समझ में आया? सज्झायमाला।

उसमें यह आया था, समझ में आया? कहना था कुछ दूसरा। 'सहजानन्दी रे आत्मा...' इतना आया था। 'सहजानन्दी रे आत्मा, सो रहा क्यों निश्चिन्त रे...' प्रभु! तूने आत्मा की चिन्ता क्यों छोड़ दी और राग और पुण्य-पाप की चिन्ता में तू सो गया। आहाहा! 'सहजानन्दी रे आत्मा, सो रहा क्यों निश्चिन्त रे, मोह तणा रे रणिया भ्रमे' राग और पुण्य-पाप मेरे हैं, इस मोह का तुझे बड़ा कर्ज है। देनदार। तेरे सिर पर भ्रमते हैं। 'मोह तणा रळिया भमे, जाग जाग रे मतिवन्त रे...' अरे! प्रभु! जाग न अब। अनादि से राग में सो रहा है। देवीलालजी! श्वेताम्बर में आता है। 'जाग जाग मतिवन्त रे... लूंटे जगतना जंत रे' यह स्त्री कहे, किसलिए हमसे विवाह किया था? हम जवान स्त्री हैं और तुम भोग लेते नहीं और छोड़कर बैठे तो वृद्ध से शादी करनी थी न! यह बना है, हों! नाम-ठाम है। हम नाम-स्थान नहीं देते। समझ में आया? उसके पति को प्रश्न था, वह पति यहाँ बैठा है, हम नाम नहीं देते। पत्नी ने प्रश्न किया था, हमारे पास नहीं आते, वहाँ रहते हो, हम जवान हैं, किसी वृद्ध से विवाह करना था। वह कहीं बाहर रहता होगा, नाम नहीं देते। समझ में आया? लूटे जगत के जन्त। सब लुटेरे इकट्ठे हुए हैं।

नियमसार में पाठ है, ठगों की टोली तुझे मिली है। यह स्त्री, पुत्र और कुटुम्ब सब ठगों की टोली है। नियमसार में है, श्लोक है। आजीविका के लिये ठगों की टोली मिली है। जवान अवस्था है, हमारा भोग नहीं लो? हमारा साधन नहीं करो? वस्त्र, जेवरात आदि

लाना। जेवरात समझे? जेवर। गाय और भैंस को जेवरात कराकर देते हो हमें नहीं करा देते? ऐसा करके ताना (टोंट) मारकर लुटेरे तुझे लूटेंगे। ऐ.. देवीलालजी! दुनिया को देखा है, नाचे नहीं परन्तु नाचनेवालों को देखा तो है। भाई! आहाहा! 'लूटे जगत के जंत, विरला कोई उगरंत' ऐसे शब्द हैं। कोई विरला तिरता है, अपने स्वभाव के साधन में जाता है। आहाहा! 'सहजानन्दी रे आत्मा' आहाहा! उसमें एक बात यह आयी थी और दूसरी भी एक आयी थी। 'केवली आगण रह गयो कोरो' कोरो समझे? केवलज्ञानी के पास समवसरण में गया था परन्तु तू लूखा रहा। आहाहा! समझ में आया? हमारे तो सत्तर वर्ष से सब शास्त्र का अभ्यास है। श्वेताम्बर का। हम तो श्वेताम्बर में थे न? घर की दुकान थी, निवृत्ति थी, बहुत वाँचन करते, हमें छोटी उम्र में भगत कहते थे। सब पाप करे, हम तो दुकान में बैठकर भी शास्त्र पढ़ें। गद्दी पर दूसरा भागीदार आवे तो हम शास्त्र वाँचते थे। छोटी उम्र में। (संवत्) १९६५-६६ के वर्ष। अरे! वहाँ यह पढ़ते हुए... आहाहा! अरे! जगत के प्राणी तुझे लूटते हैं, भाई! तेरी चीज़ की समझ बिना तेरा माहात्म्य तुझे नहीं आता। आनन्द का नाथ अन्दर भरा है, वहाँ आनन्द मानता नहीं और पर में—लुटेरों में आनन्द मानता है। देवीलालजी! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, अपने तो आज यह लेना था कि क्रमबद्ध में पुरुषार्थ कहाँ रहा? जिस समय जो होनेवाली वह नियत क्रम से होगी और भगवान ने देखा तद्नुसार होगा। भगवान तो ज्ञायक हैं, वे कहीं तेरी पर्याय नहीं करते। वे तो निमित्त हैं। लोकालोक में केवलज्ञानी निमित्त है और केवलज्ञान लोकालोक को निमित्त है। क्या केवलज्ञान की पर्याय ने लोकालोक को बनाया है? और लोकालोक ने केवलज्ञान की पर्याय बनायी है? क्या कहा, समझ में आया? सर्वविशुद्ध अधिकार में पाठ है। केवलज्ञान की पर्याय लोकालोक को निमित्त है। निमित्त का अर्थ—उपस्थित वस्तु। परन्तु केवलज्ञान की पर्याय ने लोकालोक को उपजाया नहीं तथा लोकालोक केवलज्ञान की पर्याय में निमित्त है तो लोकालोक ने केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न की है, ऐसा नहीं है। निमित्त का अर्थ दूसरी वस्तु है, इतनी बात है। उससे पर में कुछ होता है, ऐसा नहीं है। यह भी बड़ी गड़बड़ है न अभी? निमित्त से होता है, निमित्त से होता है।

किसी समय निमित्त से होता है। बिल्कुल झूठ बात है। समझ में आया? यह

क्रमबद्ध की व्याख्या, निमित्त से होता है और व्यवहार से निश्चय होता है, यह पाँच बातें सोनगढ़ के सामने है। और छठी बात अभी निकली है। रतनचन्दजी तो कहते थे, परन्तु अब मक्खनलालजी ने निकली। क्या? पर्याय में अशुद्धता हो तो द्रव्य भी अशुद्ध हो जाता है। अभी यह बात आयी है। रतनचन्दजी मुख्तयार तो पहले कहते थे। ऐ... वेणीप्रसादजी! तुम्हारे गाँव के हैं। वे कहते हैं कि, जब पर्याय में शुभाशुभ रागादि की अशुद्धता होती है, तब द्रव्य भी अशुद्ध हो जाता है। ऐसा तीन काल में नहीं है। द्रव्य तो तीनों काल शुद्ध परमात्मरूप विराजता है। आहाहा! पर्याय में अशुद्धता हो तो वह क्षणिक पर्याय की है, द्रव्य में अशुद्धता कहाँ से घुस गयी? यह तो कहते ही थे अब, मक्खनलालजी ने निकाला है। उन्होंने पंचाध्यायी के अर्थ किये हैं।

पंचाध्यायी में तो ऐसा पाठ है, एक श्लोक है कि शुभभाव दुष्ट है। दुष्ट पुरुष के जैसे शुभभाव दुष्ट है। पंचाध्यायी में ऐसा श्लोक है। उसका अर्थ किया है। यहाँ वापस कहते हैं कि शुभभाव मोक्ष का मार्ग है। अभी आया है। बड़ी चर्चा यह है। शुभभाव मोक्ष का मार्ग है। तो जगनमोहनलालजी ने कहा था कि मोक्षमार्ग नहीं। कैलाशचन्दजी ने कहा था कि शुभभाव मोक्ष का मार्ग नहीं है। मक्खनलालजी ने कैलाशचन्दजी को चैलेंज दिया है, शुभभाव मोक्ष का मार्ग है। तुम निषेध करते हो, इनकार करते हो, यह नहीं चलेगा। कहो, ऐसा चैलेंज! अरर! पंचाध्यायी में एक श्लोक है, शुभभाव ऐसा है कि दुष्ट पुरुष की भाँति दुष्ट है। दुष्ट पुरुष का उपदेश जैसे दुष्ट है, वैसे यह शुभभाव दुष्ट है। पंचाध्यायी में यह गाथा है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि तेरी प्रभुता... आहाहा! इस शक्ति का धारक भगवान पर तेरी दृष्टि पड़ती है तो क्रमसर जो केवलज्ञानादि जिस समय होनेवाले हैं, वे होंगे। वह तेरा पुरुषार्थ है। समझ में आया? विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १०, शक्ति-८, ९, शनिवार, (द्वितीय) श्रावण शुक्ल ६, दिनांक २०-०८-१९७७

सर्वभावव्यापकैकभावरूपा विभुत्वशक्तिः।

सर्व भावों में व्यापक ऐसे एक भावरूप विभुत्वशक्ति। (जैसे, ज्ञानरूपी एक भाव सर्व भावों में व्याप्त होता है।)।८।

यह समयसार शक्ति का अधिकार चलता है। सातवीं प्रभुत्वशक्ति आ गयी। क्या कहते हैं? कि जो यह आत्मपदार्थ है, आत्मवस्तु। वह तो कर्म, शरीर आदि से भिन्न चीज है, अनादि से भिन्न चीज है और अन्दर में पुण्य-पाप के विकल्प जो राग है, उससे भी भिन्न है परन्तु अपनी अनन्त शक्ति से वह अभिन्न है। समझ में आया? यह शक्ति का वर्णन है।

जो आत्मद्रव्य है, उसमें अनन्त शक्तियाँ हैं। आयी न? सात शक्ति तो आ गयी। एक-एक शक्ति में अनन्त शक्ति है। एक-एक शक्ति अनन्त पर्यायरूप होती है। ऐसी अनन्त शक्ति है, उसमें आज यहाँ विभुशक्ति आती है। सात तो हो गयी। शक्ति का तो पार नहीं, अपार चीज है।

सर्व भावों में... क्या कहते हैं? देखो! आत्मवस्तु है, उसमें सर्व भाव अर्थात् अनन्त शक्तियाँ हैं, उसे भाव कहते हैं। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, जीवत्व, चैतन्य, ऐसी अनन्त शक्ति को यहाँ भाव कहते हैं। आहाहा! भाव के चार प्रकार हैं। द्रव्य को भाव कहते हैं, भाव को—शक्ति को (गुण को) भाव कहते हैं, पर्याय को (भाव) कहते हैं और राग को भी भाव कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ भाव त्रिकाली शक्ति को कहते हैं। जैसे आत्मा त्रिकाल है, वैसे ज्ञान आ गया न? प्रभुत्वशक्ति तो आ गयी, वह प्रभुत्वशक्ति आदि अनन्त शक्तियों को यहाँ भाव कहते हैं।

कहते हैं कि **सर्व भावों में व्यापक**... अन्य (मत में) ऐसा कहते हैं कि यह आत्मा सर्वव्यापक है। परन्तु ऐसा नहीं। परन्तु आत्मा अनन्त शक्ति में व्यापक है, वह विभु। भक्तामर में आता है विभु। बहुत वर्ष पहले 'बरवाळा' है न? वहाँ एक भाईलालभाई थे, गुजर गये। वेदान्त का अभ्यास था, यहाँ का प्रेम था परन्तु वेदान्त का (अभ्यास था)। उन्होंने प्रश्न किया था, बहुत वर्ष हो गये, (संवत्) २००६ का वर्ष होगा। विभु है न? ऐसा

उसने प्रश्न किया था। है स्थानकवासी जैन परन्तु यहाँ का प्रेम है। आत्मा विभु है, ऐसा भक्तामर में आता है। भक्तामर है न ? 'भक्तामर प्रणीत मौलि मणिप्रमाणा' इसमें विभु आता है तो विभु का प्रश्न हुआ। विभु तो सर्व व्यापक है। ऐसा नहीं है। भक्तामर में जो विभु आया, वही यह विभुशक्ति की बात है।

अनन्त शक्ति में सर्व भावों में व्यापक। समझ में आया ? आहाहा! **ऐसे एक भावरूप...** सर्व भाव में व्यापक परन्तु विभुशक्ति एकरूप है। सब में व्यापक है तो अनन्तरूप नहीं हो गयी। समझ में आया ? यह विभुत्वशक्ति। **(जैसे, ज्ञानरूपी एक भाव सर्व भावों में व्याप्त होता है।)** आहाहा! ज्ञान है न ? ज्ञानशक्ति सर्व भावों में व्यापती है। जैसे दर्शनशक्ति सर्व भावों में व्यापती है। ऐसे आनन्दशक्ति सर्व भावों में व्यापती है। वैसे वीर्यशक्ति सर्व भावों में व्यापती है। यहाँ ज्ञान का दृष्टान्त दिया है। ज्ञान सर्व भावों में व्यापक है। अनन्त शक्ति है, उसमें ज्ञान ऐसे तिरछा व्यापक है। पर्याय है, वह क्रमसर और शक्ति है, वह तिरछी-एकसाथ है। ज्ञान सर्व भावों में वर्तमान में अनन्त शक्ति में व्यापक है।

यहाँ बतलाना यह है कि शक्ति है, ऐसा ज्ञान कराना है। पश्चात् वह शक्तिवान और शक्ति का भेद निकाल कर। यह शक्तिवान आत्मा है, यह भी व्यवहार हुआ। निश्चय अकेला अभेद हुआ। सूक्ष्म बात है। यह शक्तिवान आत्मा, ऐसा भेद हो गया। शक्ति बताते हैं, उसमें उसकी शक्ति के स्वभाव का सामर्थ्य बतलाते हैं। परन्तु वह शक्ति और शक्तिवान, द्रव्य शक्तिवान है और गुण शक्ति है, परन्तु यह शक्ति और शक्तिवान का भेद करना, वह भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

सम्यग्दर्शन का विषय तो शक्तिवान जो अकेला अभेद है, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो, उसे शक्तियाँ हैं—ऐसा जानना, परन्तु शक्ति और शक्तिवान, ऐसा भेद भी दृष्टि में से छोड़ देना। आहाहा! धन्नालालजी!

दूसरी बात—जो यह ज्ञानशक्ति है, वह ज्ञान सर्व में व्यापक है। तो ज्ञान की क्रमबद्ध पर्याय होती है। ज्ञान में भी क्रमसर पर्याय एक के बाद एक, एक के बाद एक होती है। तो सर्व गुण की पर्याय भी एक के बाद एक क्रमबद्ध होती है। कितने ही ऐसा कहते हैं, खानिया चर्चा आयी न ? केवलज्ञान की अपेक्षा से नियत क्रमसर है, यह बराबर है।

सामनेवालों का प्रश्न है। क्रमसर पर्याय होती है, यह केवलज्ञान की अपेक्षा से क्रमबद्ध बराबर है परन्तु श्रुतज्ञान की अपेक्षा से क्रमबद्ध बराबर नहीं। ऐसा प्रश्न था। खानिया चर्चा में है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि यहाँ तो भावश्रुतज्ञान की बात चलती है। आहाहा! शक्ति और शक्तितवान का भेद छोड़कर दृष्टि होती है, तब उसे भावश्रुतज्ञान होता है। वह भावश्रुतज्ञान भी क्रमबद्ध को ही मानता है। क्योंकि भावश्रुतज्ञान केवलज्ञान को अनुसरकर होता है। केवलज्ञान मानता है कि क्रमसर होता है और श्रुतज्ञान में ऐसा नहीं, ऐसा लोग कहते हैं। पण्डित लोगों ने खानिया चर्चा में फूलचन्दजी के सामने ऐसी बात उठायी है। यहाँ तो पहले से क्रमबद्ध की यह बात हो गयी थी। उसकी चर्चा तो फिर हुई। यह तो बीस वर्ष पहले काशी में उन्हें कहा था। काशी, बनारस। भाई! प्रत्येक द्रव्य की पर्याय जिस समय में होती है, उस समय में वही होती है, दूसरे समय में दूसरी होती है, ऐसा क्रमबद्ध है। उसमें आगे-पीछे नहीं होती। आगे-पीछे की व्याख्या क्या? समझ में आया?

जैसे मोती की माला में जहाँ-जहाँ मोती है, वहाँ-वहाँ मोती है। उसे आगे-पीछे करो तो हार टूट जायेगा। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। खानिया चर्चा में बहुत लिया है। हमने तो पहले ही कहा था। पश्चात् यह प्रश्न वर्णीजी के पास गया, वहाँ भी विरोध हुआ कि क्रमबद्ध नहीं है। एक के बाद एक होगी परन्तु उसके बाद यह भी होगी और यह भी होगी, ऐसा नहीं है। यहाँ कहते हैं एक के बाद जो होनेवाली है, वही होगी। समझ में आया? क्षणिक उपादान की अवस्था जो क्रमसर पर्याय में होती है, वही होगी।

अनन्त शक्ति है, उसमें विभुशक्ति व्यापती है तो अनन्त शक्तियाँ क्रमबद्ध परिणमती है। आहाहा! तथापि शक्ति और शक्तिवान की दृष्टि छोड़कर अभेद की दृष्टि करना और अभेद से क्रमसर पर्याय होती है। निश्चय से तो त्रिकाली शक्ति और शक्तिवान, ऐसा ज्ञान की पर्याय में ज्ञेयरूप ज्ञान में आया और प्रतीति में भी आया तो वह प्रतीति की पर्याय द्रव्य-गुण ने की, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया? पहले यह बात चल गयी है। ३२० गाथा। जयसेनाचार्य की (टीका)। अभी चल गयी है, व्याख्यान हुए, वे प्रकाशित होंगे। अभी ३२० गाथा चल गयी है, बहुत सरस! बहुत! एक व्यक्ति ने दस हजार रुपये दिये हैं।

प्रकाशित करना है। यह शक्ति चलती है न? वे ३२० गाथा के प्रवचन और शक्ति के व्याख्यान सब एक पुस्तक में प्रकाशित होंगे। विचार तो है, देखते हैं लोग (क्या करते हैं)? समझ में आया?

मुमुक्षु : आप हुकम करो तो हो जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, हम कुछ नहीं कहते। हम तो कहे वह सुन लेते हैं। हम तो इस तत्त्व के विचार के अतिरिक्त क्या करना, नहीं करना, यह हम नहीं कहते। आहाहा!

यहाँ तो यह कहना है, यहाँ तो विभुशक्ति है, वह सर्व गुण में व्यापक है। ज्ञान भी विभु हुआ और उसकी पर्याय में जो क्रमसर पर्याय होती है तो अनन्त गुण की पर्याय भी साथ में क्रमसर होती है। व्यापक है न? तो विभुत्वपर्याय भी अनन्त पर्याय में व्यापक है। आहाहा! ऐसा मार्ग। धन्नालालजी!

द्रव्य, गुण और पर्याय तीन चीज है। द्रव्य जो है, वह तो पूर्ण शक्तिवान है। गुण है वह शक्ति है और उसका बदलना, पलटना, परिणमन होना, वह पर्याय है। यहाँ तो कहते हैं कि वह विभुत्वशक्ति सर्व गुण में व्यापक है तो पर्याय में भी जो अनन्त पर्याय होती है, उसमें विभुत्वशक्ति की पर्याय भी व्यापक है। यह तो ठीक परन्तु कोई ऐसा कहता है कि क्रमबद्ध पर्याय में तो नियत हो जायेगा। निश्चय-नियत ही है। किस अपेक्षा से? जैसे द्रव्य-गुण नियत है या नहीं? है? निश्चय है या व्यवहार है? द्रव्य और शक्तियाँ निश्चय है और नियत है, तो पर्याय भी नियत है। समझ में आया? पर्याय भी नियत जिस समय में जो होनेवाली है, वह होगी। परन्तु क्रमबद्ध का निर्णय करनेवाले की दृष्टि ज्ञायक पर जाती है। आहाहा! शुद्ध स्वरूप त्रिकाली भगवान पर दृष्टि जाये, तब उसे क्रमबद्ध का निर्णय यथार्थ होता है। समझ में आया?

हमने तो पहले बात की थी परन्तु वे पण्डित लोग फूलचन्दजी के सामने ऐसा कहते हैं, केवलज्ञान की अपेक्षा से नियत क्रम है, यह तो बराबर है। ऐसे तो हाँ किया। कहाँ जाये? परन्तु श्रुतज्ञान की अपेक्षा से नहीं। क्योंकि श्रुतज्ञान छद्मस्थ का है और अल्पज्ञान है, इसलिए जिस समय में पुरुषार्थ करेगा, उस समय में होगा; क्रमबद्ध होगा, ऐसा उसमें नहीं है। यह बात मिथ्या है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। वेणीप्रसादजी! अन्दर पुरुषार्थ करना पड़ेगा, ऐसे का ऐसा नहीं चलेगा।

मुमुक्षु : अनियत नय कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा नहीं ? अनियत का अर्थ क्या ? किसने कहा ? ४७ नय में अनियत का अर्थ क्या ? काल-अकाल का कहा था न ? काल-अकाल का कल कहा नहीं ? कालनय से मोक्ष है और अकालनय से मोक्ष है, इसका अर्थ क्या ? यह तो कल कहा था। ध्यानविजय (के साथ बात हुई थी)। नियत के साथ अनियत स्वभाव, पुरुषार्थ आदि है, उसे अनियत कहते हैं। आगे-पीछे होती है, यह प्रश्न ही नहीं है।

एक प्रश्न तो यह आया है, पंचास्तिकाय में १५५ गाथा है। नियत, अनियत दोनों हैं। पण्डित लोग ऐसा कहते हैं, देखो ! नियत है और अनियत भी है। वहाँ ऐसा अर्थ नहीं है। वहाँ तो नियत अर्थात् गुण की पर्याय जो होती है, वह नियत है। समझ में आया ? और दूसरी पर्याय जो अन्दर है, वह नियत तो है, परन्तु स्वभाव की पर्याय, पुरुषार्थ की पर्याय अनियत है। अनियत अर्थात् नियत नहीं, परन्तु है तो नियत में। समझ में आया ? है ? पंचास्तिकाय। १५५ है न ? एक प्रश्न चला था। १५५, देखो !

जीवो सहावणियदो अनियदगुणपज्जओध परसमओ।
जदि गुणदि सगं समयं पब्भस्सदि कम्मबंधादो।।१५५।।

निजभावनियत अनियतगुणपर्याय ऐसा पाठ है। इसका अर्थ ऐसा करते हैं कि पर्याय अनियत है और नियत भी है, दोनों है। परन्तु ऐसा यहाँ पाठ नहीं है। यहाँ क्या है ? देखो ! **जीव, (द्रव्य अपेक्षा से) स्वभावनियत होने पर भी, जो अनियत गुणपर्याय...** अर्थात् गुण जो एकरूप वस्तु है, उसकी पर्याय अनियत अर्थात् विकारी पर्याय जो होती है, उसे अनियत कहते हैं। और निर्विकारी और गुण को नियत कहते हैं। ऐसा अर्थ है। नियत, अनियत शब्द इसमें है। भाई का प्रश्न है। १५५। नियत का अर्थ स्वाभाविक पर्याय, अनियत का अर्थ विभाविक पर्याय। नियत और अनियत का अर्थ क्रम और अक्रम, ऐसा है नहीं। ज्ञानचन्दजी !

संसारी जीव, (द्रव्य अपेक्षा से) ज्ञानदर्शन में अवस्थित होने के कारण... स्वभाव तो नियत है। **जब अनादि मोहनीय के उदय को अनुसरण कर परिणति प्रगट करने के लिये उपरक्त उपयोगवाला (अशुद्ध उपयोगवाला) होता है, तब (स्वयं)**

भावों का विश्वरूपपना (अनेकरूपपना) ग्रहण की होने से उसे... अनियतपर्याय भी कहा जाता है। विकारी पर्याय को अनियत कहा जाता है। अनियत का अर्थ अक्रम है, ऐसा नहीं। शास्त्र के अर्थ करने में भी बड़ी (गड़बड़)। समझ में आया? रतनचन्दजी ने यह डाला है। रतनचन्दजी है न? सहारनपुर, कौन है सहारनपुर के? यह रहे सहारनपुर के। यह सहारनपुर के मुख्य व्यक्ति हैं। यह रतनचन्दजी ने डाला है कि देखो! १५५ गाथा में अनियत है। अनियत अर्थात् क्रम नहीं, अक्रम है। क्रम और अक्रम दोनों है, यह अनेकान्त है। ऐसा अर्थ है ही नहीं।

अनियत अर्थात् पानी का स्वभाव ठण्डा है, वह नियत है; उष्ण है, वह अनियत है। इसी प्रकार यहाँ बात है। सूक्ष्म बात, बापू! यहाँ तो एक-एक श्लोक के अर्थ हो गये हैं परन्तु लोगों को पूर्व के आग्रह। यह बात थी ही नहीं। फूलचन्दजी ने जैनतत्त्व मीमांसा में डाला है। जब से क्रमबद्ध की बात प्रमुखरूप से बाहर आयी, तब से केवलज्ञान को माननेवाले भी शंका करने लगे कि यदि केवलज्ञान मानूँगा तो तीनों काल में जैसा देखा है, वैसा होगा, यह निश्चित हो जायेगा। तो क्रम हो गया। क्रमसर की बात प्रमुखरूप से जब से बाहर आयी... यह जैनतत्त्व मीमांसा में है और यह खानियाचर्चा में ऐसा है कि जिनवाणी और महापुरुष ने जिसने क्रमबद्ध का स्वतन्त्र ढ़िंढ़ोरा पीटा... समझ में आया? तब से जगत में केवलज्ञान में भी शंका हो गयी। केवलज्ञान है, वह तो जहाँ जो पर्याय होनेवाली है, उसे बराबर देखता है। वह पर्याय उस समय में होगी। इसमें तो क्रमबद्ध हो गया। खानिया चर्चा में क्रमबद्ध का निर्णय सामनेवाले पण्डित ने स्वीकार किया है। केवलज्ञान के हिसाब से तो क्रमनियमित है ही, क्या करे? परन्तु श्रुतज्ञान की अपेक्षा से नहीं, ऐसा वे कहते हैं। तो उसके सामने प्रश्न है कि श्रुतज्ञान केवलज्ञान को अनुसरकर श्रुतज्ञान है या कल्पना का श्रुतज्ञान है? समझ में आया? यदि केवलज्ञान को अनुसरकर श्रुतज्ञान होता है तो केवलज्ञान जैसे मानता है, वैसा ही श्रुतज्ञान जानता है और मानता है। आहाहा! अरे रे! कहाँ मूल की बात की खबर नहीं और धर्म... धर्म... धर्म बाहर में हो गया। शुभक्रिया की, वह धर्म हो गया। धूल भी धर्म नहीं, भाई! आहाहा! ऐसे शुभभाव तो अभव्य ने भी अनन्त बार किये, वह तो बन्ध का कारण है।

धर्म तो शक्ति और शक्तिवान जैसे नियत है, नियत है न? या नहीं? वैसे पर्याय भी

नियत है। ऐसा निर्णय करनेवाले की दृष्टि द्रव्य के ऊपर होने से ऐसा निर्णय होता है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है। इसका अभ्यास करना पड़ेगा, ऐसे अध्धर से नहीं चलेगा। बड़े भाई तो अभ्यास करते हैं। उन्हें तो रस है। बहुत अभ्यास है। आहाहा! अरे! ऐसा मनुष्यपना मिला। सर्वज्ञ वीतराग जिनेश्वरदेव क्या आज्ञा करते हैं और वस्तु का स्वरूप कैसा है, उसका निर्णय नहीं करे तो उसका क्या होगा?

मुमुक्षु : अभ्यास का क्रम आयेगा, तब करेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभ्यास के क्रम का पुरुषार्थ करेगा तो क्रम आयेगा। समझ में आया? काललब्धि है या नहीं? शास्त्र में पाठ में काललब्धि है। जिस समय में होगा, वह काललब्धि है। ऐसा स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में पाठ है। स्वामी कार्तिकेय में छहों द्रव्य की काललब्धि कही है। काललब्धि का अर्थ छहों द्रव्य की पर्याय जिस समय में जो पर्याय होनी है, वह काललब्धि है। छहों द्रव्य। समझ में आया?

प्रवचनसार में १०२ गाथा में ऐसा कहा कि जिस समय जो पर्याय ज्ञेय की होनी है, वह उसका जन्मक्षण—उसकी उत्पत्ति का वह काल है। और ज्ञेय अधिकार में ९९ गाथा में ज्ञेय का स्वभाव लिया कि अपने-अपने अवसर में जो पर्याय होनी है, वह अपने अवसर के अतिरिक्त आगे-पीछे नहीं होगी, ऐसा वहाँ लिया है।

अब यहाँ दूसरी बात, जब ऐसी काललब्धि पर्याय में होती है तो काललब्धि का ज्ञान किसे होता है? समझ में आया? टोडरमलजी में नौवें अध्याय में आया है, शिष्य ने प्रश्न किया, महाराज! प्रभु! काललब्धि होगी तब होगा, पुरुषार्थ से होगा, स्वभाव से होगा, कर्म का अभाव होगा तो होगा, इसमें सत्य क्या है? तो ऐसा उत्तर दिया है कि काललब्धि और भवितव्यता कोई वस्तु नहीं है। ऐसा कहा है? हमारे इस प्रश्न की बहुत चर्चा (संवत्) १९८३ के वर्ष में चली थी। १९८३, कितने वर्ष हुए? ५०। पचास वर्ष पहले एक सेठ थे। दामनगर में गृहस्थ थे। दूसरों के पास पैसे थोड़े थे, उनके पास दस लाख थे। साठ वर्ष पहले। पचास वर्ष पहले यह चर्चा हुई थी। क्या कहा? काललब्धि की बात चलती है। मैंने कहा, देखो! यहाँ। वे कहें कि काल में होगा, काल में होगा, काल में होगा, अपन क्या पुरुषार्थ करें? ऐसा कहा। (मैंने) कहा, यह टोडरमलजी क्या कहते हैं? कि काललब्धि

कोई भिन्न वस्तु नहीं है। जिस समय होनी है, उस समय होनी है, उसका नाम काललब्धि। भवितव्यता जिस समय भाव होना है, वह होगा, वह भवितव्यता। जो कोई वस्तु नहीं है। जब आत्मा अपने स्वभाव सन्मुख पुरुषार्थ करके कार्य करता है तो उसे काललब्धि का ज्ञान होता है और उस समय में काल आया, उसका ज्ञान उसको है। काललब्धि... काललब्धि धारणा करनी है ? न्याय समझ में आता है ? सूक्ष्म है, भाई ! यह तो मार्ग...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर में जाये तब... उसका कारण है। पंचास्तिकाय में १७२ गाथा में ऐसा लिया है कि चारों अनुयोग का तात्पर्य वीतरागता है। है ? १७२ गाथा। चारों अनुयोग का तात्पर्य वीतरागता है। तो वीतरागता कब होगी ? कि द्रव्य का आश्रय करे तो वीतरागता होगी। इसका अर्थ यह हुआ। क्या कहा ? शान्ति से समझना, बापू ! यह तो वीतराग का मार्ग है। जब चारों अनुयोग—द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग, कथानुयोग—चारों का सार तो १७२ गाथा में वीतरागता कहा है। वीतरागता उत्पन्न किस प्रकार से होती है ? निमित्त के आश्रय से होती है ? राग के आश्रय से होती है ? पर्याय के आश्रय से होती है ? इसका अर्थ यह हुआ कि स्व का आश्रय करे तो वीतरागता होगी। चारों अनुयोग में स्व का आश्रय करना, यह बात चलती है। समझ में आया ? देवीलालजी ! जरा सूक्ष्म बात है परन्तु भाई ! इसे समझना पड़ेगा, बापू ! आहाहा ! अरे ! समझे बिना सच्चा ज्ञान भी नहीं होता, वहाँ दृष्टि तो कहाँ से होगी ? आहाहा ! ज्ञान, व्यवहारु ज्ञान भी जहाँ खोटा है, कि पर से होती और अक्रम से होती है, वह तो ज्ञान भी मिथ्या है। परलक्षीज्ञान भी मिथ्या है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि उस पर्याय में जो अनियतता कहा, वह तो विकारी पर्याय की अपेक्षा से अनियत कहा। आगे-पीछे होती है, इस अपेक्षा से अनियत नहीं कहा। जब काललब्धि कहा... सब चर्चा हुई थी। (संवत्) १९८३, पचास वर्ष पहले। दामनगर के नगरसेठ हैं, वहाँ हमारा चातुर्मास बहुत बार था। यह दिगम्बर पुस्तक बहुत रखते थे, श्रद्धा-दृष्टि विपरीत थी परन्तु दिगम्बर शास्त्र बहुत रखते थे। बड़े गृहस्थ थे। गुजर गये, उनका पुत्र है परन्तु वह भी विपरीत। चालीस हजार की तो आमदनी थी और घर में एक गाँव था।

हमारी जाति के बनिया थे। दस हजार की उपजवाला एक गाँव था। घर में एक-दो घोड़ा नहीं, घोड़ा सात। घोडियाँ, घोड़े बहुत। था बनिया, परन्तु जमींदार। उसके साथ बहुत चर्चा हुई। काललब्धि है न, तब होगा।

चौबीस तीर्थंकर उनके काल में होते हैं, चक्रवर्ती उनके काल में होते हैं। यह प्रश्न आया। समझ में आया? कहा, काललब्धि है, इस काललब्धि का अर्थ क्या? काललब्धि है, उसका ज्ञान किसे होता है? लॉजिक से-न्याय से समझना चाहिए न? जिसे ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा, जो यह १७२ गाथा कही न? सब शास्त्रों का तात्पर्य वीतरागता है। सब शास्त्र बारह अंग और चौदह पूर्व का तात्पर्य वीतरागता है। वीतरागता होगी कब? कि जब वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा है, (उसका आश्रय ले तब)। आहाहा! सवेरे कहा था न? 'शुद्धता विचारे ध्यावे शुद्धता में केलि करे, शुद्धता में मगन रहे, अमृतधारा वरसे' वह शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा का आश्रय ले तो वीतरागता उत्पन्न होगी। चारों अनुयोग और समस्त शास्त्रों का तात्पर्य द्रव्य स्वरूप का आश्रय लेना, यह तात्पर्य है। समझ में आया? कहा, जब आत्मा अपने पुरुषार्थ से द्रव्य का आश्रय लेता है, तब वीतरागता उत्पन्न हुई। सम्यग्दर्शन, वह वीतराग पर्याय है। उसमें भी अभी तो बहुत विवाद है। सम्यग्दर्शन सराग समकित है, वीतराग नहीं। सराग तो इसलिए कहा कि दोष सहित—चारित्र के दोष सहित समकित को कहा। समकित तो वीतराग पर्याय ही है। चारित्र में राग है, तो उसे सराग समकित कहा। परन्तु सराग समकित है ही नहीं, समकित तो वीतराग पर्याय ही है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि जब काललब्धि की धारणा कर ली परन्तु काललब्धि का ज्ञान यथार्थ किसे होता है? जिसने द्रव्यस्वभाव शुद्ध चैतन्यघन का अवलम्बन लिया तो वीतरागता उत्पन्न होती है। सर्व शास्त्र का तात्पर्य स्व का अवलम्बन लेना, स्व का आश्रय लेना यह है। आहाहा! जब अवलम्बन लिया, तब पर्याय में जो वीतरागता, सम्यग्दर्शन आदि हुए तो काललब्धि को जाना कि इस समय में होनेवाली थी। इतना जाना और भवितव्य अर्थात् सम्यग्दर्शन आदि के भाव हुए, वे भवितव्यता है, यह भाव है। वह भाव भी तब ज्ञात हुए कि इस समय में यही भाव होने थे और इस समय में यही काललब्धि थी।

उसका ज्ञान स्वभाव सन्मुख पुरुषार्थ करनेवाले को यथार्थ ज्ञान होता है। देवीलालजी! आहाहा! अरे! भाई! आहाहा!

भगवान के चार अनुयोग में, बारह अंग और चौदह पूर्व में यह कहते हैं। वीतरागता बताते हैं। वे तो वीतराग है न? तो वीतरागता बताते हैं। शुरुआत से वीतरागता किस प्रकार उत्पन्न हो, यह बताते हैं। वह वीतरागता—रागरहित वीतरागता कहाँ से उत्पन्न होती है? कि 'जिन सोही आत्मा अन्य सोही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' नन्दकिशोरजी! यहाँ तो अलग-अलग बात है, कभी सुनी न हो ऐसी बात है। वाडा में जन्मे वे कहे, हम दिगम्बर हैं, वे कहें श्वेताम्बर हैं। खबर नहीं कुछ। इन्द्रलालजी यह कहते थे, जयपुर में इन्द्रलालजी पण्डित थे न? वे ऐसा कहते थे कि दिगम्बर में जन्म हुआ वह सम्यग्दृष्टि तो है ही। अब उसे व्रत, चारित्र लेना। ऐसा कहते थे। अरे! भगवान!

मोक्षमार्गप्रकाशक सातवें अध्याय में तो यह लिया है कि जैन में जन्म हुआ, जैन को मानता है तो भी सूक्ष्म मिथ्यात्व रह जाता है। सातवें अध्याय में यह अधिकार है। पाँचवें अध्याय में अन्यमत का अधिकार है, वैशेषिक, वेदान्त, श्वेताम्बर, स्थानकवासी सब अन्यमती हैं, वह जैनमत नहीं। छठवें में कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र का लेख लिखा। सातवें में दिगम्बर जैन में जन्मे, उसे भी मिथ्यात्व कैसे रहता है, (यह अधिकार लिखा)। समझ में आया? वाडा में जन्मे, इससे क्या हुआ?

यहाँ कहते हैं, अपने तो काललब्धि, क्रमबद्ध और विभुशक्ति के साथ उसका ज्ञान होता है (ऐसा लेना है)। समझ में आया? क्योंकि विभुशक्ति अनन्त गुण में व्यापक है। दृष्टान्त दिया न? **ज्ञानरूपी एक भाव सर्व भावों में व्याप्त होता है।** जब पर्याय में अपना ज्ञान हुआ तो द्रव्य-गुण में और सभी गुण में ज्ञान तो व्यापक है ही, पर्याय में भी व्यापक हो गया। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय के साथ ज्ञान व्यापक है। आहाहा! समझ में आया? बात सूक्ष्म पड़े, क्या करे? आहाहा!

यह तो जिसका मूल मिथ्यात्व संसार है। मिथ्यात्व ही संसार है। पश्चात राग, द्वेष, अविरति भाव रहते हैं, वे तो अल्प संसार हैं। उसकी बात गिनने में नहीं आयी। आहाहा! यह मिथ्यात्व संसार है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा, लक्ष्मी, यह संसार नहीं। यह तो बहार

की वस्तु है। संसार तो इसकी पर्याय में रहता है। भूल और अभूल, मोक्षमार्ग और भूल तो पर्याय में होती है। आहाहा! पर में नहीं होती, द्रव्य-गुण में नहीं होती। आहाहा! अरे! दिगम्बर सन्तों ने बहुत स्पष्ट कर दिया है परन्तु अभ्यास नहीं और उस ओर की रुचि तथा झुकाव नहीं। बाहर में झुकाव। यह किया और यह किया और यह किया।

यहाँ कहते हैं कि काललब्धि और छहों द्रव्यों की काललब्धि। एक बात। प्रवचनसार में ज्ञेय अधिकार लिया है। ज्ञेय शब्द से छह द्रव्य। ज्ञेय अधिकार १०२ गाथा में ऐसा लिया, जिस समय में जो पर्याय उत्पन्न होगी, वह उसका जन्मक्षण, उसकी उत्पत्ति का वह काल है, आगे-पीछे नहीं। आहाहा! उस ज्ञेय का ऐसा स्वभाव है। और वहाँ जयसेनाचार्य ने तो ऐसा लिया है कि यह ज्ञेय अधिकार हम कहते हैं, परन्तु यह समकित का अधिकार है। सम्यग्दृष्टि... आहाहा! जिस समय में जो पर्याय होनी है, वह होनी है, वह उसका जन्मक्षण है-ऐसी सम्यग्दृष्टि प्रतीति करता है। समझ में आया? ऐसे सम्यग्दर्शन का विषय भले अभेद है परन्तु जब ज्ञानप्रधान समकित की व्याख्या कहे तो प्रवचनसार में लिया है कि ज्ञान और ज्ञेय, दो की यथार्थ प्रतीति का नाम सम्यग्दर्शन है। ऐसा लिया है। चरणानुयोगसूचक अधिकार, प्रवचनसार। समझ में आया?

अकेले द्रव्य की अभेददृष्टि की बात कहे, वह दृष्टि की अपेक्षा से बात है परन्तु जब ज्ञानप्रधान श्रद्धान कहना हो तो ज्ञान-ज्ञायक और ज्ञेय दोनों की यथार्थ प्रतीति, वह सम्यग्दर्शन है। कितनी गाथा है यह? २४२। **ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्व की तथाप्रकार से (जैसा है, वैसा यथार्थ) प्रतीति जिसका लक्षण है, वह सम्यग्दर्शनपर्याय है;...** ज्ञानप्रधान श्रद्धान है न? दृष्टिप्रधान श्रद्धान में तो अकेले अभेद की दृष्टि (आती है)। समझ में आया? यह तो ज्ञानप्रधान प्रवचनसार है। समयसार में दृष्टिप्रधान कथन है। कहते हैं कि ज्ञेयतत्त्व—छह द्रव्य। और ज्ञायकतत्त्व—ज्ञायकतत्त्व, उसकी **तथाप्रकार से (जैसा है, वैसा यथार्थ) प्रतीति जिसका लक्षण है, वह सम्यग्दर्शनपर्याय है;...** आहाहा! समझ में आया? इसमें ज्ञेय का स्वभाव जिस समय में जो पर्याय होनी है, वह होनी है, वह छहों द्रव्य—ज्ञेय का स्वभाव है। समझ में आया? प्रवचनसार दूसरे अधिकार में आचार्य कहते हैं कि हम तो समकित का अधिकार कहते हैं। समकित के अधिकार में ऐसा आया

कि छह द्रव्य जो ज्ञेय है, जिस समय में जो (पर्याय) होनेवाली है, वह होगी—ऐसा ज्ञेय का स्वभाव है। स्व और परज्ञेय की यथार्थ प्रतीति हो, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! भाई! ऐसी सूक्ष्म बात है। अभी तो बहुत गड़बड़ हो गयी, बहुत गड़बड़, भाई! आहाहा!

देखो! २४२। **ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्व की तथाप्रकार से अनुभूति...** देखो! यहाँ ज्ञान अधिकार में अनुभूति ली है। समझ में आया? अपने कल श्रीमद् में से जो लिया था, वहाँ अनुभूति चारित्र में ली थी। है न? 'अनुभव लक्ष्य प्रतीत।' तो लक्ष्य, वह ज्ञान की पर्याय; प्रतीति श्रद्धा की पर्याय; अनुभव चारित्र की पर्याय। यहाँ दूसरा लिया है। यहाँ ज्ञेयतत्त्व अनन्त और ज्ञान (ज्ञायक) तत्त्व यह।

तथाप्रकार से अनुभूति जिसका लक्षण है, वह ज्ञानपर्याय है... आहाहा! उसका सम्यग्ज्ञान की पर्याय, श्रुतज्ञान पर्याय है। आहाहा! अपने-अपने पर्याय के काल में पर्याय होती है, वह ज्ञेय का स्वभाव है और ऐसा स्वभाव न माने तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञेय और ज्ञाता की क्रियान्तर से निवृत्ति... क्रियान्तर अर्थात् अन्य क्रिया। है? पहला बोल है। (फुटनोट) 'अन्य क्रिया (ज्ञेय और ज्ञाता अनन्य क्रिया से निवृत्ते उसके कारण रचित जो देखने-जाननेवाले आत्मतत्त्व में परिणति वह चारित्रपर्याय...)' है। ज्ञान-दर्शन में रमणता वह चारित्र पर्याय है। महाव्रत-बहाव्रत और नग्नपना, वह कोई चारित्र नहीं है। आहाहा! है? क्रियान्तर—अन्य राग जो विकार है, उसकी निवृत्ति। शुभराग से भी निवृत्ति। क्रियान्तर—अन्य क्रिया से निवृत्ति ऐसी स्वरूप में रमणता होना, वह चारित्र है। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग है। समझ में आया?

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन दो प्रकार के हुए या कथन दो प्रकार के हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, कथन दो प्रकार के हैं। ज्ञानप्रधान और श्रद्धाप्रधान। समझ में आया? आहाहा!

अपने यहाँ **सर्व भावों में व्यापक ऐसे एक भावरूप...** एक भावरूप **विभुत्वशक्ति।** आहाहा! यह आठवीं शक्ति पूरी हुई। अब नवमी।

विश्वविश्वसामान्यभावपरिणतात्मदर्शनमयीसर्वदर्शित्वशक्तिः।

समस्त विश्व के सामान्य भाव को देखनेरूप से (अर्थात् सर्व पदार्थों के समूहरूप लोकालोक को सत्तामात्र ग्रहण करनेरूप से) परिणमित ऐसे आत्मदर्शनमयी सर्वदर्शित्वशक्ति।९।

समस्त विश्व के सामान्य भाव को देखनेरूप से... यह शक्ति जरा सूक्ष्म है। सर्वदर्शित्वशक्ति। इसमें भी जरा मर्म है। **समस्त विश्व के...** समस्त विश्व—पूरा विश्व। सामान्य भाव सामान्यरूप से, भेद पाड़े बिना। यह जीव है और यह जड़ है और यह गुण है और यह गुणी है तथा यह पर्याय है, ऐसे भेद पाड़े बिना। **समस्त विश्व के सामान्य भाव को...** एकरूप सत्ता का भाव। **देखनेरूप से (अर्थात् सर्व पदार्थों के समूहरूप लोकालोक को सत्तामात्र ग्रहण करनेरूप से) परिणमित ऐसे आत्मदर्शनमयी सर्वदर्शित्वशक्ति।** आहाहा! क्या कहते हैं? सामान्य पदार्थ। सब 'है' इतना, बस! आत्मा है, गुण है, पर्याय है, यह है। यह है, ऐसा भी नहीं। यहाँ तो समझाने के लिये ऐसा कहना पड़ता है। यह सत्ता है, ऐसा भी नहीं। यह सत्ता है, ऐसा ज्ञान करे तो वह ज्ञानशक्ति हो गयी। दर्शन में ऐसा नहीं है। है, ऐसा अन्दर दर्शन में होता है। और वह भी सर्वदर्शिशक्ति, है न? क्या आया?

आत्मदर्शनमयी... यह क्या कहते हैं? कोई ऐसा कहता है न कि सर्व को देखना, वह उपचार है। अपने अतिरिक्त सभी पर को देखना, वह उपचार है। यहाँ कहते हैं कि ऐसा नहीं है। ऐसी एक बात है कि अपनी दर्शनशक्ति का अपने में दर्शनरूप परिणमन हो तो उसमें सब सत्ता का देखना होता है, परन्तु देखने में सब आया तो वह पर का उपचार हुआ, सब हैं तो, ऐसा नहीं है। वह सर्वदर्शनमयी आत्मदर्शनमयी शक्ति है। जरा सूक्ष्म बात है, भाई! सर्व शब्द है न? तो सर्वदर्शित्व। सबको देखे। सबको देखे, तो सबको देखे तो पर को देखे। यह तो असद्भूतव्यवहारनय है। पर को देखे, यह तो असद्भूतव्यवहारनय है। यहाँ सर्वदर्शित्वशक्ति को आत्मदर्शनमयी कहा। वह पर की बात यहाँ नहीं है। आत्मदर्शनमयी सर्वदर्शित्वशक्ति ऐसा कहा है, देखो! यह सर्व शब्द है तो वहाँ पर की अपेक्षा नहीं है। अपने में सर्वदर्शित्वशक्ति का स्वरूप है, वही परिणमित होता है। सर्व आया तो पर आये

और पर की अपेक्षा आयी, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

फिर से, सर्वदर्शित्व—ऐसा आया न? सर्व। तो सर्व में तो पर भी आये। पर आये तो पर को देखे, तब तो वह उपचार है। यहाँ कहते हैं कि सर्वदर्शित्वशक्ति का स्वरूप ही अपने से है कि अपने को और पर को देखनेरूप परिणमित होता है, वह आत्मदर्शनमयी सर्वदर्शित्वशक्ति है। पर को देखना, यह बात यहाँ नहीं है। समझ में आया?

फिर से, सूक्ष्म बात, बापू! वीतराग का मार्ग सूक्ष्म है। आहाहा! यहाँ कहते हैं, समस्त विश्व को सामान्यरूप से देखे। तो जब उसे सर्वदर्शित्व कहा तो सर्व में तो पर आये। पर आये, वह तो उपचार है तो सर्वदर्शीपना उपचार से है, ऐसा कोई कहता है। ऐसा नहीं है। यह सर्वदर्शीपने का परिणमन अपने में हुआ, वह आत्मदर्शनमयी पर्याय है, परदर्शनमयी वह पर्याय नहीं है। क्या कहते हैं? समझ में आया? क्या कहा? देखो!

समस्त विश्व के... पूरा विश्व। समस्त अनन्त द्रव्य, गुण, पर्याय। सभी एकरूप सत्ता। लोकालोक त्रिकाल। **समस्त विश्व के सामान्य भाव को...** भेदरूप नहीं। सामान्य अर्थात् है, सत्ता—महासत्ता। महासत्ता का अर्थ महासत्ता नाम की कोई शक्ति भिन्न है, ऐसा नहीं है। परन्तु सब 'है', है, सामान्य। उसे **देखनेरूप से...** सर्व भाव को देखनेरूप। अरे! सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा!

(अर्थात् सर्व पदार्थों के समूहरूप लोकालोक को सत्तामात्र...) लोकालोक की अस्तिमात्र। उसे... है? **(ग्रहण करनेरूप से) परिणमित...** यहाँ तो परिणमित लिया है। सर्वदर्शी में परिणमन शक्ति तो है परन्तु जब सर्वदर्शित्वशक्ति है और शक्तिवान द्रव्य है तो द्रव्य पर दृष्टि होने से सर्वदर्शी का परिणमन हुआ। सर्वदर्शी का परिणमन हुआ, वह आत्मदर्शनमयी है। सर्वदर्शनमयी अर्थात् सर्व में पर आये, ऐसा नहीं। समझ में आया? अरे.. अरे..! अब ऐसी बातें। साधारण बेचारी महिलाओं को कभी पकाने से निवृत्ति नहीं होती। पुत्र और भाई (पति) को सम्हालने, उसमें अब ऐसी बातें। आहाहा! मार्ग प्रभु...!

कहते हैं कि तुझमें एक अनादि-अनन्त सर्वदर्शित्वशक्ति है। जैसे ज्ञानशक्ति, जीवत्वशक्ति, दर्शनशक्ति आयी न? उस दर्शनशक्ति में सर्वदर्शिशक्ति गर्भित है। दृशिशक्ति पहले आ गयी। उस दर्शनशक्ति में सर्वदर्शिशक्ति गर्भित है। उसके कारण से यहाँ दूसरी

गिनने में आयी है। वहाँ दृशिशक्ति इतना था, परन्तु सर्वदर्शिपना उसमें नहीं था। उस दृशिशक्ति में सर्वदर्शिशक्ति (गर्भित) पड़ी है और उस सर्वदर्शिशक्ति को धरनेवाला द्रव्य, उस पर दृष्टि करने से पर्याय में सर्वदर्शिपने की पर्याय प्रगट होती है। वह सर्वदर्शिपने की पर्याय हुई तो सर्व पर आये, यह तो उपचार हो गया। तो कहते हैं, नहीं। सर्व और अपने को देखने की पर्याय अपने से, अपने में, अपने कारण से हुई है। यह लोकालोक है तो उत्पन्न हुई है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! ऐसी बात है। यह प्रश्न भी (संवत्) १९८३ में हुआ था। कहा था न? एक वीरजीभाई वकील थे।

मुमुक्षु : ... दर्शनपर्याय हुई...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर्याय हुई, वह दर्शनमयी अपनी पर्याय पूर्ण है। सबको देखे, उसमें सबकी अपेक्षा नहीं। पर्याय अपने से सबको देखे, ऐसी अपनी पर्याय अपने से परिणमित हुई, लोकालोक के कारण से नहीं।

मुमुक्षु : श्रुतज्ञान उस पर्याय को जानता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : जानता है। वह बराबर जानता है कि सर्वदर्शिपना वह अपनी पर्याय में होता है, ऐसा जानता है। कहा न? यह प्रश्न (संवत्) १९८३ में चला था। वीरजीभाई वकील थे। काठियावाड़ में दिगम्बर का अभ्यास सबसे पहले उनको था। वीरजी वकील थे। जामनगर। उनकी सेठ के साथ दोपहर में चर्चा हुई। मैं तो नीचे बैठा था। कमरे पर। मेडी कहते हैं न? मंजिल। यह प्रश्न हुआ। सेठ ने कहा कि यह लोकालोक है तो यहाँ सर्वज्ञपर्याय उत्पन्न होती है। वीरजीभाई कहे, सर्वज्ञपर्याय अपने से होती है, लोकलोक के कारण से नहीं। यह चर्चा करते-करते फिर नीचे उतरे। मुझे पूछा, अरे! भाई! वहाँ सर्वज्ञ की बात चली थी। सर्वज्ञ पर्याय अपनी पर्याय को ही सर्वज्ञ कहते हैं, परन्तु वह सर्वज्ञपर्याय आत्मज्ञानमयी है। उसमें पर का ज्ञान नहीं है, ऐसा नहीं है। पर सम्बन्धी और अपने सम्बन्धी पर्याय अपने से उत्पन्न हुई है। पर के कारण से नहीं। पर को देखने की बात यहाँ नहीं है। आहाहा! भारी सूक्ष्म ऐसा। भाई! इसे किसी समय समझना तो पड़ेगा या नहीं?

आत्मा में सर्वदर्शिशक्ति है तो उसका परिणमन सर्वदर्शिपना हुआ, वह सामान्य

सभी वस्तु को देखता है। उसमें सर्व आया तो सर्व को—पर को देखता है, यह तो उपचार हुआ। यहाँ तो कहते हैं आत्मदर्शनमयी सर्वदर्शिशक्ति है। है ? क्या कहा ? **सामान्य भाव को देखनेरूप से परिणमित ऐसे आत्मदर्शनमयी**... यहाँ सर्वदर्शनमयी शब्द नहीं लिया। वह सर्व को देखती है, वह अपनी दर्शनशक्ति अपने में है। सर्व को देखती है, यह प्रश्न यहाँ है ही नहीं। आहाहा! अरे! ऐसी गड़बड़।

फिर से, यहाँ जो सर्वदर्शिशक्ति है, वह परिणमन में सर्वदर्शिपने की पर्याय प्रगट हुई तो सर्वदर्शिपना है तो सर्व में पर आये या नहीं ? नहीं, यहाँ यह बात नहीं है। सर्व में स्व और पर को सबको देखनेरूप परिणमती आत्मदर्शनमयी शक्ति है। पर्याय की इतनी ताकत है, वह स्वयं से उत्पन्न हुई है। समझ में आया ? सूक्ष्म बातें, बापू! यह सब वकीलों ने भी अभी तक ध्यान नहीं दिया। वकील तो बुद्धिवाले और तर्कबाज कहलाते हैं। आहाहा! क्या कहते हैं ?

सर्वदर्शी शब्द आया न ? सर्वदर्शी में सर्व—पर की अपेक्षा आयी या नहीं ? नहीं। अपनी पर्याय स्व-पर को अपने से अपने कारण से अपनी पर्याय में आत्मदर्शनमयी सर्वदर्शिशक्ति कही जाती है। बहुत अन्तर है। पण्डितजी! समझ में आया ? प्रभु! तेरी ऋद्धि कितनी है! ऐसा कहते हैं। तुझमें सर्वदर्शिशक्ति पड़ी है। प्रभु! तेरी शक्ति में सर्वदर्शिपना पड़ा है। आहाहा! उस सर्वदर्शिशक्ति का आश्रय—आधार द्रव्य है। उस द्रव्य का आश्रय लेकर जब सर्वदर्शिपने का परिणमन हुआ, उसमें सर्वदर्शिपने की पर्याय उत्पन्न हुई। उसमें सर्व शब्द है तो पर लागू पड़ा तो सर्व है ? नहीं। वह पर्याय ही सर्वदर्शी—आत्मदर्शनमयी शक्ति है, उसकी वह पर्याय है। समझ में आया ? बाबूभाई! थोड़ा अन्तर कहाँ पड़ा ? बहुत अन्तर पड़ा। वे लोग कहें, सर्व आया; इसलिए पर आये। यहाँ कहते हैं, नहीं। वह सर्व को देखे, वह अपनी दर्शन की पर्याय सर्वदर्शनमयी आत्मदर्शनमयी है। आत्मदर्शनमयी है, परदर्शनमयी नहीं। अपनी पर्याय अपने में से हुई है। आहाहा! शब्द में थोड़ा अन्तर लगे परन्तु पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। उगमणो-आथमणा को क्या कहते हैं ? पूर्व-पश्चिम। आहाहा!

यहाँ भगवान आत्मा! शक्ति में आठवीं सर्वदर्शिशक्ति है। यह आठवीं है न ?

नवमी। विभु तो आठवी गयी न ? आहाहा! क्या कहते हैं ? द्रव्य में सर्वदर्शिशक्ति व्यापक है, गुण में सर्वदर्शिशक्ति व्यापक है, यह सर्वदर्शिशक्ति अनन्त गुण में व्यापक है और सर्वदर्शिशक्ति जो है, वह पारिणामिकभाव से है। लो, और दूसरी बात आयी। अन्दर जो सर्वदर्शिशक्ति है, वह पारिणामिकभाव से है। पारिणामिक अर्थात् अपना सहज स्वरूप ही ऐसा है। उसमें कोई पर की अपेक्षा, निमित्त की या निमित्त के अभाव की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! यह सर्वदर्शिशक्ति आत्मा में है तो आत्मा पारिणामिक सहज स्वभाव से है। सवेरे आया था। सहज श्रुतज्ञानमयी। स्वाभाविक श्रुतज्ञानमयी। ऐसी स्वाभाविक पारिणामिक स्वभावमयी आत्मा है। पारिणामिक अर्थात् किसी की अपेक्षा नहीं। ऐसी सर्वदर्शिशक्ति पारिणामिक स्वभाव से, सहज भाव से है। उसका आश्रय लेकर परिणमन में जो सर्वदर्शिपना आया तो उस पर्याय में सर्व देखना, ऐसा आया वह तो व्यवहार कथन आया। सर्व को और अपने को देखती है, वह आत्मदर्शनमयी शक्ति है। पर्याय में। आहाहा! वह पर्याय जो उत्पन्न हुई, वह क्षयोपशम और क्षायिकभाव उत्पन्न हुई है।

आत्मा सहज स्वभाव पारिणामिकभाव, सर्वदर्शिशक्ति, पारिणामिकभाव और उसके आश्रय से जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र पर्याय हुई या पूर्ण सर्वदर्शी, तो पूर्ण पर्याय है, वह क्षायिकभाव है और नीचे जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय है, वह क्षायिक, उपशम और क्षयोपशम तीन भाव से है। पाँच भाव हैं या नहीं ? वस्तु और वस्तु का स्वभाव पारिणामिकभाव से है और उसकी धर्म की पर्याय होती है, सर्वदर्शी की पूर्ण पर्याय होती है, वह क्षायिकभाव है। और सर्वदर्शिशक्तिवान की प्रतीति, ज्ञान और स्थिरता हुई, वह परिणति—पर्याय उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक भाव से है। और राग उत्पन्न होता है, वह उदय भाव से है। समझ में आया ? आहाहा! अब ऐसी बातें।

कहते हैं कि यह पर्याय जो प्रगट हुई, उसमें सर्वदर्शिपना आया। पहले प्रतीति में आया, ज्ञान में—श्रुतज्ञान में आया। यह प्रतीति और ज्ञान क्षयोपशम, क्षायिक और उपशमभाव से है। ज्ञान क्षयोपशमभाव से है, दर्शन-प्रतीति उपशम और क्षयोशपमभाव से है और पूर्ण सर्वदर्शी का परिणमन हुआ, वह क्षायिकभाव है। समझ में आया ? यह क्षायिकभाव की पर्याय या क्षयोपशमभाव की पर्याय प्रगट हुई, उसका कर्ता वास्तव में द्रव्य-गुण नहीं। विशेष आयेगा.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ११, शक्ति-९, १०, रविवार, (द्वितीय) श्रावण शुक्ल ७, दिनांक २१-०८-१९७७

व्यवहार शुभयोग धर्म है, धर्म का कारण है, यह बड़ा शल्य, मिथ्यात्व का शल्य है। क्योंकि समयसार पुण्य-पाप अधिकार में स्थूल शुभभाव कहा है। भगवान इस अपेक्षा से सूक्ष्म है और उसकी परिणति—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र भी सूक्ष्म है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि आत्मा में जो शक्ति है... भाई! कल सर्वदर्शिशक्ति के अर्थ में थोड़ा स्पष्टीकरण कम रहा है। उसमें 'परिणमित' ऐसा शब्द पड़ा है। सर्वदर्शी में 'परिणमित' शब्द पड़ा है। जरा सूक्ष्म है। क्या? है? **समस्त विश्व के सामान्य भाव को देखनेरूप से (अर्थात् सर्व पदार्थों के समूहरूप लोकालोक को सत्तामात्र ग्रहण करनेरूप से) परिणमित ऐसे आत्मदर्शनमयी...** भाषा देखो! क्योंकि यहाँ तो पहले से ऐसा लिया है कि क्रम और अक्रम का समूह, वह आत्मा है। थोड़ा सूक्ष्म विषय है। यह क्रम अर्थात् विकार का क्रम नहीं। यहाँ तो शक्ति का वर्णन है तो सभी शक्तियाँ शुद्ध हैं तो उनकी परिणति भी शुद्ध है। द्रव्य शुद्ध है, शक्ति शुद्ध है, वैसे परिणति शुद्ध है। वह शुद्ध परिणति क्रमसर होती है। और गुण-शक्ति है, वह अक्रम रहती है। वह क्रमसर शक्ति की परिणति और अक्रम का समुदाय आत्मा है, ऐसा कहना है। आहाहा! समझ में आया? आज तो बहुत विचार आये। यह परिणमित शब्द आया न? यहाँ तो पूरे दिन यही धन्धा है, दूसरा तो है नहीं। थोड़ा सूक्ष्म आया है।

आत्मा में सर्वदर्शिशक्ति है। यदि वह न हो तो वस्तु अदृश्य न हो। अदृश्य अर्थात् देखने में न आवे अर्थात् अभाव हो। सर्व है न? सर्वदर्शिशक्ति जो है, उसमें भी यहाँ तो परिणमन लिया है। समझ में आया? 'अध्यात्म पंचसंग्रह' है, उसमें लिया है। तुमने पढ़ा है? अध्यात्म पंचसंग्रह। उसमें ऐसा लिया है कि अभव्य को ज्ञान है परन्तु ज्ञान की परिणति नहीं है। भाई! ध्यान रखना! अभव्य को ग्यारह अंग और नव पूर्व की लब्धि होती है परन्तु वह ज्ञान परिणति नहीं। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान परिणति तो सम्यक्रूप परिणमे और द्रव्य-गुण को ज्ञेय बनाकर परिणमे, उसे ज्ञान परिणति कहा जाता है। समझ में आया? अभव्य को ग्यारह अंग और नौ पूर्व की लब्धि होती है। ग्यारह अंग, (और) एक अंग में ग्यारह हजार श्लोक एक-एक पद में। ऐसे-ऐसे अठारह हजार पद। अठारह हजार

पद का आचारांग। एक पद में इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक। ऐसे-ऐसे ग्यारह अंग का ज्ञान और नौ पूर्व का ज्ञान (हो) तो भी वह ज्ञान की परिणति नहीं है। आहाहा! क्योंकि जो ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा है, उसकी परिणति ज्ञान—स्व के आश्रय से ज्ञान की परिणति हो, उसे ज्ञान की परिणति कहा जाता है। आहाहा!

जो आत्मा ज्ञानस्वरूप है, पहले ज्ञान आ गया न? अब आज तो अपने सर्वदर्शी का थोड़ा लेकर सर्वज्ञशक्ति लेना है। ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, ज्ञान की परिणति, ज्ञान की परिणति के साथ आनन्द का अनुभव (आवे)... समझ में आया? उसे ज्ञान की परिणति कहा जाता है।

मुमुक्षु : आनन्द का अनुभव होवे तो ज्ञान की परिणति कहलाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : तो ज्ञान परिणति कहलाये। आहाहा! अभव्य को ज्ञान परिणति नहीं है, ऐसा कहा है। इतना ग्यारह अंग का और नौ पूर्व का ज्ञान होने पर भी वह ज्ञान परिणति नहीं। आहाहा! वह ज्ञान परिणति होने पर वेदन में आनन्द का वेदन आता है। समझ में आया?

उसमें—अध्यात्म पंचसंग्रह में दृष्टान्त दिया है। रावण ने लक्ष्मण को शक्ति मारी थी। रावण। सुना है न? शक्ति (मारी तो) असाध्य हो गये, बेसुध हो गये। हम तो दुकान पर यह बोलते थे। (संवत्) १९६५-६६। समझे? रामचन्द्रजी, लक्ष्मण को कहते हैं, 'आये थे तब तीन जने और जाऊँगा एकाएक।' यह तो (संवत्) १९६५-६६ में दुकान पर कण्ठस्थ किया था। हे लक्ष्मण! शक्ति लगी है न? इसलिए असाध्य हो गये हैं। रामचन्द्रजी कहते हैं, 'आये थे तब तीन जने और जाऊँगा एकाएक, माताजी खबर पूछेगी उन्हें क्या-क्या उत्तर दूँगा, लक्ष्मण जाग रे ओ.. जी... एक बार बोल दे..' एक बार बोल, जवाब तो दे, प्रभु! तू सो गया, शक्ति लगी। आहाहा! सीताजी को रावण ले गया न, तू असाध्य हो गया, मैं माता के पास अकेला जाऊँगा तो माता पूछेगी, भाई! अकेले कैसे आये? आहाहा! ऐसा कहते थे, वहाँ विशल्या आयी। उसने पूछा, प्रश्न पूछा कि साहेब! इसका क्या करना? तब किसी ने कहा कि एक विशल्या नाम की कन्या है, वह इस लक्ष्मण की पत्नी होगी। उसके पास एक लब्धि—शक्ति है।

पूर्व में विशल्या चक्रवर्ती की पुत्री थी। उस पुत्री को जंगल में किसी ने छोड़ दिया

था। जंगल में छोड़ दिया तो उसे अजगर... अजगर समझे न? निगल जाये। अजगर अर्थात् मनुष्य को निगल जाये। उस जंगल में अजगर उसे—कन्या को निगल गया। इतना मुख बाहर रहा। उसमें उसके पिता आये, अरे! आहाहा! अजगर को बाण मारूँ तो छूट जायेगी। (विशल्या कहती है), पिताजी! बाण नहीं मारना, मुझे तो त्याग है। आहार-पानी का आजीवन त्याग है। मैं बाहर निकलूँ तो भी आहार नहीं लूँगी। इसलिए नहीं मारना, हों! आहाहा! अजगर के पेट में थी, थोड़ा मुँह बाहर था। अजगर समझते हो? अज-गर। अज अर्थात् बकरा और गर अर्थात् निगल जाये। इसलिए अजगर। अजगर। अज अर्थात् बकरा। बड़ा होता है न? उसे निगल जाये, इसलिए अजगर। पेट में निगल जाये। विशल्या मरने के बाद एक राजा की कन्या हुई। यहाँ प्रश्न हुआ कि यह शक्ति खुलेगी किस प्रकार? क्या करना? किसी निमित्तवादी ने कहा कि भरत का राज है। रामचन्द्रजी को तो वनवास था। भरत को राज सौंपा था न? भरत के राज में एक विशल्या नाम की राजकन्या है। भरत को कहो, उसकी राजकन्या विशल्या को यहाँ लाओ, कुँवारी कन्या है। उसके आने से इस शक्ति का नाश होगा, ऐसी उसे लब्धि है। समझ में आया? ध्यान रखना, हों! कहाँ उतारेंगे? यह तो दृष्टान्त, परन्तु सिद्धान्त कहाँ उतरेगा?

वह विशल्या वहाँ आती है। भरत के राज में थी, इसलिए भरत को खबर पड़ी कि यह तो राजा की कन्या है। उसने हुक्म किया कि तुम्हारी कन्या को लक्ष्मण के पास ले जाओ। शक्ति से असाध्य है। जहाँ पाण्डाल में प्रवेश करती है, वहाँ बहुत शूरवीर घायल थे, बहुत घायल थे न? जहाँ प्रवेश करती है, वहाँ वे घायल लोग तन्दुरुस्त हो जाते हैं। जहाँ लक्ष्मण के पास आती है, वहाँ शक्ति छूट जाती है, शक्ति खुल जाती है। बाद में तो उनके साथ विवाह करती है।

यहाँ कहते हैं कि आत्मा में जो शक्ति है... आहाहा! शुद्ध परिणति—नारी का सम्भोग करे तो उस शक्ति का वास्तविक कार्य आवे, तो शक्ति खुल जाये। समझ में आया? यह परिणमित शब्द पड़ा है न? भाई! दो जगह है। ऊपर भी कहा है। पहला जहाँ उत्तर दिया था न? कि तुम ज्ञानप्रमाण कैसे कहते हो? **परस्पर भिन्न ऐसे अनन्त धर्मों के समुदायरूप परिणमित एक ज्ञप्तिमात्र भाव**... ऐसे शब्द हैं। यहाँ जरा सूक्ष्म है परन्तु बात यथार्थ आ गयी है।

यह शक्ति है परन्तु इसकी परिणति होती है, पर्याय में परिणमती है, तब उस शक्ति का कार्य हुआ तो वह शक्ति की प्रतीति हुई और और शक्ति का अस्तित्व ख्याल में आया। समझ में आया ? परिणति बिना वह शक्ति शक्तिरूप से रही, खिली नहीं, खुली नहीं। समझ में आया ? इसी प्रकार भगवान आत्मा में सर्वदर्शी, सर्वज्ञ आदि शक्तियाँ हैं। आहाहा! वे शक्तिरूप हैं। आचार्य ने ऐसा शब्द प्रयोग किया है, देखो! कल आ गया था परन्तु परिणमित शब्द बोले थे परन्तु स्पष्टीकरण बहुत नहीं आया था। क्या कहते हैं ? देखो!

समस्त विश्व के सामान्य भाव को देखनेरूप से... एक तो यह कि सभी चीज़ जो जगत में है, उसके देखनेरूप। यदि देखनेरूप न हो तो वह चीज़ अदृश्य—नहीं, ऐसा हो जाये। देखने की पर्याय है तो देखने में जो चीज़ आयी, उसकी अस्ति ख्याल आयी। समझ में आया ? सर्वदर्शिशक्ति है, वह सर्व विश्व के सामान्य भाव को... भगवान! यह अध्यात्म की वाणी तो बहुत सूक्ष्म।... पहले एक आया है, सत्याग्रह करो। शुभ पुण्य, वह धर्म है, शुभभाव धर्म है। इस धर्म का निषेध करते हैं। अरे! भगवान! सुन तो सही, प्रभु! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! शुभभाव तो अनन्त बार हुए। अभी तो ऐसे शुभभाव हैं ही नहीं। नौवें ग्रैवेयक गया, तब इतना शुभभाव था कि शुक्ललेश्या हुई थी। जिसे शुक्ललेश्या कहते हैं। शुक्लध्यान दूसरा और शुक्ललेश्या अलग। शुक्ललेश्या तो अभव्य को भी होती है। शुक्लध्यान तो सम्यग्दृष्टि को आठवें (गुणस्थान) में जाये तब शुक्लध्यान होता है। शुक्ललेश्या अलग, शुक्लध्यान वस्तु अलग। शुक्ललेश्या से नौवें ग्रैवेयक पहुँचे। शुक्ललेश्या से छठवें स्वर्ग में जाये तो भी शुक्ललेश्या है। क्या कहते हैं ? छठवाँ स्वर्ग है। यहाँ से शुक्ललेश्यावाला जीव छठवें में भी जाये और शुक्ललेश्या से नौवें ग्रैवेयक भी जाये। इस शुक्ललेश्या से छठवें देवलोक जाये, ... जाय तो वह शुक्ललेश्या तो भावों की होती है। शुक्ल भाव—शुभभाव, बहुत उज्ज्वल। उसके कारण से छठवें स्वर्ग में नहीं गया। नहीं तो शुक्ललेश्यवाला तो छठे स्वर्ग में जाता है, अभव्य या भव्य। शुक्ललेश्या हो तो समकिती भी जाता है। शुक्ललेश्यावाला छठवें, सातवें, आठ, नौ, दस, ग्यारह और बारह और पश्चात् नौ ग्रैवेयक। यह नौवे ग्रैवेयक में जाता है, वह शुक्ललेश्या कैसी होगी ? तथापि

वह धर्म नहीं है, अधर्म है, आहाहा! गजब बात है, भाई! कषाय परिणाम है, वह आकुलता है।

यहाँ तो कहते हैं कि देखनेरूप जो सर्वदर्शिशक्ति है। वह दर्शिशक्ति—देखने की शक्ति। इसका अर्थ यह कि देखने की शक्ति से वस्तु को देखा। यदि देखने की शक्ति नहीं हो तो जो चीज़ दिखती है, उस चीज़ का अभाव हो जाये। समझ में आया? दर्शिशक्ति का विषय पूर्ण स्वभाव। तीन काल-तीन लोक सब वस्तु। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि दर्शिशक्ति सामान्य भाव को देखनेरूप **(अर्थात् सर्व पदार्थों के समूहरूप लोकालोक को सत्तामात्र ग्रहण करनेरूप से)**... ग्रहण करनेरूप अर्थात् देखनेरूप। **परिणमित ऐसे**... भाषा यह है। परिणमित ऐसे। आहाहा! यह सर्वदर्शिशक्ति तेरहवें गुणस्थान में परिणमित हुई। आहाहा! समझ में आया? इस शक्ति का परिणमन हुआ, तब शक्ति की प्रतीति और सत्ता देखने में आयी। सर्वदर्शिरूप से परिणमी। भगवान को सर्वदर्शिरूप से पर्यायरूप से परिणमन हुआ तो जो चीज़ है, वह देखने में आती है, तब उसकी सत्ता की प्रतीति होती है। देखने के भाव से देखने की चीज़ को देखी। समझ में आया? ऐसी बात है, इसलिए लोगों को कठिन लगता है। परन्तु क्या हो? प्रभु! तेरा मार्ग बहुत अलग, बापू! आहाहा! समझ में आया?

यह बात कही थी न? एक बार दलपतराम का कहा था। 'प्रभुता प्रभु तारी तो खरी' हम चौथी-पाँचवीं कक्षा में गुजराती पढ़े थे न? पिचहत्तर वर्ष पहले की बात है। वह तो प्रभु को कहते हैं, परन्तु यहाँ तो यह प्रभुत्वशक्ति आ गयी न? 'प्रभुता प्रभु तारी तो खरी' प्रभुता तेरी तब खरी कि 'मुजरो मुज रोग ले हरि।' प्रभुता की शक्ति अप्रभुता का नाश कर देती है। समझ में आया? अरे!

दर्शनशक्ति है, उसे भी ऐसे उतारी है कि वह यति है। सर्वदर्शिशक्ति यति है। अपने में यत्न से परिणमन किया तो अशुद्धता नहीं आने देता, ऐसा वह यति है। क्या कहा? यति—यत्न किया। अपनी सर्वदर्शि की परिणति हुई तो अल्पज्ञपना और अशुद्धपना आने नहीं देता, ऐसी यति ने यत्ना की। सर्वदर्शिशक्ति यति है। आहाहा! ऐसी बातें अब। यहाँ परिणमित शब्द में से निकाला है, हों! समझ में आया?

यह सर्वदर्शिशक्ति परिणमित हुई है। ऐसे तो यहाँ अधिकार शक्ति का है कि आत्मा में ऐसी अनन्त शक्तियाँ हैं, ४७ का वर्णन किया है, परन्तु यहाँ शक्ति के वर्णन में यह लिया

है कि इस शक्ति का परिणमन जब होता है, क्रमसर जो परिणमन होता है, वह क्रमपरिणत और अक्रम का समुदाय आत्मा है। समझ में आया ? यहाँ परिणमित लिया है। सर्वदर्शिशक्ति अन्दर अकेली पड़ी है, ऐसा नहीं। जैसे विशल्या ने आकर लक्ष्मण की शक्ति तोड़ डाली, खोल डाली; उसी प्रकार अन्दर जो सर्वदर्शिशक्ति पड़ी है, उस शक्ति को परिणति में खोल डाली, पर्याय में सर्वदर्शिपना प्रगट हुआ। आहाहा ! ऐसी बातें। भाई ! प्रभु का मार्ग बहुत सूक्ष्म है। आहाहा ! अभी तो बहुत गड़बड़ हो गयी है। अभी तो चोर कोतवाल को डण्डे, ऐसा हो गया है। अधिक चोर इकट्ठे हो जाये तो कोतवाल को (डण्डे)। प्रभु ! यह तो सत्य है। भाई ! यह तो सत्य मार्ग है। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, **परिणमित ऐसे आत्मदर्शनमयी...** यहाँ वजन है। आत्मदर्शनशक्ति तो गुण है, शक्ति है, सत् का सत्त्व है, आत्मा का स्वभाव है, परन्तु वह स्वभाव परिणमित हुआ, तब उसे आत्मदर्शनमयी शक्ति कहने में आता है। आहाहा ! दूसरी एक बात है कि श्रीमद् के पत्र में ऐसा आता है कि चौथे गुणस्थान में श्रद्धारूप से केवलज्ञान प्रगट हुआ है। फिर से कहेंगे, एकबार में (पूरा नहीं करेंगे)। श्रीमद् के एक पत्र में ऐसी बात आयी है कि चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि को श्रद्धारूप से केवलज्ञान प्रगट हुआ। सम्यग्दर्शन बिना, केवलज्ञान है, ऐसी श्रद्धा पहले नहीं थी। सम्यग्दर्शन बिना। यह केवलज्ञानमयी है, ऐसा परिणमकर प्रतीति हुई, तब वह केवलज्ञान श्रद्धारूप से प्रगट हुआ, ऐसा कहा है। आहाहा ! चीज़ तो भले हो, परन्तु श्रद्धा में जब आया, परिणति में (परिणमित हुआ), तब श्रद्धारूप से केवलज्ञान है, ऐसी श्रद्धारूप से प्रतीति हुई, श्रद्धारूप से केवलज्ञान हुआ, श्रद्धारूप से केवलज्ञान हुआ, परिणम कर केवलज्ञान तेरहवें गुणस्थान में होगा। समझ में आया ? ऐसी बातें, बापू ! बहुत (सूक्ष्म), भाई !

इस चैतन्य के खजाने में इतने भण्डार भरे हैं कि उस खजाने की बात सुनने में कठिन पड़े। आहाहा ! उस निधान पर नजर करने से जब परिणति पर्याय में होती है, निर्मल, हों ! विकारी की परिणति की तो यहाँ गन्ध भी नहीं ली। यह शुभभाव... इतना कहा जा सकता है कि शुद्ध परिणति है, उसमें शुभभाव का अभाव है, ऐसा अनेकान्त लिया। उसमें अभाव है। भावरूप से तो सर्वदर्शिशक्ति स्वयं से परिणमी है। वह परिणमी तो शक्ति खिली। शक्तिरूप थी, वह परिणमी तो शक्ति खुल गयी। जैसे विशल्या आयी और शक्ति

खुल गयी, उसी प्रकार यहाँ परिणति—अपनी नारी—स्त्री—परिणति... आहाहा! उसके साथ एकाग्र हुआ तो आनन्द का अनुभव करके आनन्द—पुत्र उत्पन्न हुआ। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! कितनों को तो कान में पहली बार पड़े, ऐसी बात है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, सर्वदर्शि... **परिणमित ऐसे आत्मदर्शनमयी...** यह क्या कहा? सर्वदर्शि है अर्थात् सर्व को देखती है, इसलिए अन्दर सर्व आया है, ऐसा नहीं है। वह सर्व को और अपने को देखनेरूप आत्मदर्शनमयी शक्ति का स्वरूप है। वह आत्मदर्शन की परिणति का शक्तिरूप ऐसा है, वह आत्मदर्शनमयी है। समझ में आया? यह क्या कहा?

सर्वदर्शिपना है तो कोई ऐसा कहता है कि यह तो पर को देखने की पर्याय भी अन्दर आयी। ऐसा नहीं है। वह सर्व को देखे और अपने को देखे, वह आत्मदर्शनमयी अपनी पर्याय में है। इस सर्व का देखना यहाँ नहीं है। आहाहा! क्या कहा? यह तो परमात्मा जिनेश्वरदेव... भाई! आहाहा! उनका मार्ग बहुत सूक्ष्म है। अभी स्थूल हो गया है। अभी तो शुभभाव से धर्म होता है, ऐसा कहते हैं। वे लोग ऐसा कहते हैं, सत्याग्रह करो। कोटा में चला है, भाई! आज पत्र आया है। सत्याग्रह करो कि शुभभाव से धर्म होता है। ऐ... सेठ! परन्तु अब यह सेठिया पके हैं, इसलिए अब उसका कुछ चले ऐसा नहीं है। मार्ग यह है, ऐसा श्रद्धा में तो निर्णय करो। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **देखनेरूप से परिणमित ऐसे आत्मदर्शनमयी...** दो शब्द आये। एक तो आत्मदर्शन की परिणति और आत्मदर्शन पर्याय, वह आत्मदर्शन की पर्याय है। वह सर्व को देखने की पर्याय नहीं है। वह सर्वदर्शि अपने आत्मदर्शनमयी शक्ति है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानचन्दजी! आहाहा! कहा न? अब अपने आज सर्वज्ञशक्ति लेते हैं।

विश्वविश्वविशेषभावपरिण–तात्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्वशक्तिः।

समस्त विश्व के विशेष भावों को जाननेरूप से परिणमित ऐसे आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्वशक्ति।१०।

समस्त विश्व के विशेष भावों को... दर्शनशक्ति जो है, उसमें तो सब 'है', भेद बिना सामान्यरूप से सभी सत्ता है, सबका अस्तित्व पूर्ण है, ऐसा दर्शनशक्ति में देखने में आता है। उसमें यह आत्मा है और यह जड़ है, यह गुण है और यह पर्याय है, ऐसे भेद नहीं

हैं। समझ में आया? सर्वदर्शिशक्ति में यह है। 'अध्यात्म पंचसंग्रह' में यह लिया है, ओहोहो! एक समय में सर्व अस्तित्व को भेद बिना देखना, वह सर्वदर्शि का कार्य है। उसी समय में सर्वज्ञ की पर्याय में सबको भिन्न-भिन्न करके जानना, यह सर्वज्ञ का कार्य है। एकसाथ दो पर्यायें हैं परन्तु एक पर्याय ऐसे देखे और एक पर्याय ऐसे जाने, यह अद्‌भुतरस है। नव रस उतारे हैं। समझ में आया? आहाहा! अद्‌भुतरस है। साधारण लोगों को ख्याल में आना कठिन पड़े, ऐसा है।

सर्वदर्शि, यह सूक्ष्म चीज़ है। क्योंकि सर्वदर्शिशक्ति है, उसमें यह शक्ति है ऐसा होता है, वह तो ज्ञान हो गया। समझ में आया? यह सर्वदर्शिशक्ति तो सामान्य सब है, ऐसा देखती है। लोकालोक अपना द्रव्य, अपने गुण, अपनी अनन्त पर्याय आदि सबको 'है', उस रूप परिणमने की शक्ति, बस! और सर्वज्ञशक्ति भी उसी समय में है। देखो! **समस्त विश्व के विशेष...** उसमें सामान्य था। **समस्त विश्व के सामान्य भाव...** ऐसा था। यहाँ... आहाहा! **समस्त विश्व के विशेष भाव...** सब विशेष भाव। विशेष भाव में तो द्रव्यभाव, गुणभाव, पर्यायभाव, एक समय की पर्याय में अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद, केवलज्ञान की पर्याय में तो अनन्त केवली ज्ञात होते हैं। तीनों काल के केवली ज्ञात होते हैं। आहाहा! उन अनन्त केवलियों ने सब जाना, ऐसे अनन्त केवली को केवलज्ञान पर्याय जाने। उस पर्याय में कितनी ताकत! पर्याय में छेद करके अविभाग। अविभाग—भाग पाड़ते-पाड़ते अन्तिम भाग रहे, उसे अविभाग कहते हैं। ऐसे अनन्त अविभाग। एक केवलज्ञान की एक पर्याय में अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद है। अरे! उसमें तो है परन्तु निगोद के जीव, जिन्हें अक्षर के अनन्तवें भाग विकास रहा है, उस पर्याय में भी अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद हैं। आहाहा! पर्याय है न? आहाहा! निगोद का जीव, हों! जिसे अक्षर के अनन्तवें भाग विकास रहा। शक्ति तो सर्वज्ञ, सर्वदर्शि है ही। उस निगोद के जीव में भी सर्वज्ञ और सर्वदर्शिशक्ति तो है ही, परन्तु परिणमन बिना, कार्य बिना कारण प्रतीति में आया नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो आत्मा... भगवान सर्वज्ञ ने... पहले एक बार कहा था, 'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता हो लाल...' प्रभु! आपका केवलज्ञान जगत को सबको देखे। 'निज सत्ता से शुद्ध...' प्रभु! हमारे आत्मा की जो निज सत्ता है, उसे तो आप शुद्ध देखते हैं।

पुण्य-पाप, वह कहीं आत्मा नहीं है। आहाहा! 'निज सत्ता से शुद्ध सबको...' सबको—निगोद के जीव आदि सभी जीवों को। हे नाथ! आपके ज्ञान में उनकी सत्ता, अस्तित्व शुद्धरूप देखते हो। आहाहा! समझ में आया? बात बहुत गम्भीर है, भाई! आहाहा!

भगवान! वे निगोद के जीव भी स्वभाव से और शक्ति से तो शुद्ध ही है। पर्याय में अशुद्धता है, वह तो एक समय की है। वह तो एक समय की अशुद्धता है। सेकेण्ड के असंख्य भाग में एक समय की अशुद्धता है अथवा अक्षर के अनन्तवें भाग में विकास, वह एक समय की चीज है। अन्तर वस्तु है, वह तो सर्वज्ञ, सर्वदर्शि परिपूर्णरूप से पड़ी है। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि परिणमे बिना, परिणमे बिना, अपनी स्त्री—परिणति के साथ वेदन किये बिना वह सर्वज्ञशक्ति प्रतीति में नहीं आती।

नीचे के गुणस्थान में भी सर्वज्ञशक्ति है, ऐसा प्रतीति में आया। केवलज्ञान की प्रतीति हुई, केवलज्ञान हुआ नहीं। पहले जो अल्पज्ञपना माना था, वह सम्यग्दर्शन होने पर केवलज्ञान मैं हूँ, केवलज्ञान, अकेला ज्ञान मैं हूँ, ऐसी प्रतीति हुई तो केवलज्ञान की शक्ति की श्रद्धा से केवलज्ञान प्रगट हुआ। श्रद्धा से केवलज्ञान प्रगट हुआ। यह क्या कहा? जिस श्रद्धा में पूर्ण ज्ञान, आनन्द है, ऐसी प्रतीति नहीं थी, तब वह प्रगट नहीं हुआ। आहाहा! श्रद्धा में केवलज्ञान प्रगट हुआ कि मैं केवलज्ञान हूँ, ऐसा श्रद्धा से केवलज्ञान प्रगट हुआ है। केवलज्ञान की परिणति की पूर्ण दशा तेरहवें गुणस्थान में होगी। समझ में आया? ऐसी बातें हैं। ऐसा कैसा उपदेश? इसमें दया पालना, व्रत करना, अपवास करना ऐसा होवे तो समझ में भी आवे। क्यों, माणेकलाल! भगवान! मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा! तेरा निधान तेरी नजर में कभी आया नहीं और नजर में आये बिना यह चीज़ है, ऐसी प्रतीति भी हुई नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि आत्मज्ञानमयी। **परिणमित ऐसे आत्मज्ञानमयी...** आहाहा! यह ज्ञान की पर्याय सर्वज्ञशक्तिरूप से जो शक्ति है, वह परिणमित हुई। आहाहा! सारी पर्याय में उसका परिणमन हुआ। वह परिणमन आत्मज्ञानमयी है। सर्वज्ञरूप से कहा, परन्तु वह है आत्मज्ञानमयी। यह आत्मा का ज्ञान हुआ है। आहाहा! समझ में आया? पर को जानता है—ऐसा कहना, वह तो असद्भूतव्यवहारनय का विषय है। क्यों? कि पर में तन्मय होकर नहीं जानता। इसलिए पर को जानता है—ऐसा कहना, वह असद्भूतव्यवहार

है। आहाहा! और अपनी पूर्ण पर्याय को तन्मय होकर जानता है। समझ में आया? आहाहा! ज्ञानचन्दजी! बात थोड़ी सूक्ष्म है परन्तु सुन तो सही, ऐसा कहाँ (सुनने को मिले)? आहाहा!

नियमसार में सिद्धान्त तो ऐसा कहते हैं, कोई ऐसा कहे कि निश्चय से आत्मा लोकालोक को नहीं जानता, उसे दोष क्यों दें? नियमसार में है। सर्वज्ञ लोकालोक को नहीं जानते, यह बराबर है, निश्चय से लोकालोक को नहीं जानते। निश्चय से तो अपनी पूर्ण पर्याय को ही जानते हैं। और व्यवहारनय से कोई ऐसा कहे कि आत्मा पर को जानता है परन्तु स्व को नहीं जानता। दो बोल आये हैं। नियमसार, (शुद्ध) उपयोग अधिकार में अन्तिम भाग में हैं। यह भी सत्य है। व्यवहार से अपने को जानता है, ऐसा नहीं; व्यवहार से पर को जानता है, वह व्यवहार है। अपने को जानता है, यह तो निश्चय है। पर को व्यवहार से जानता है, उसी प्रकार स्व को व्यवहार से जानता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात।

वास्तव में तो लोकालोक को जानता ही नहीं। क्योंकि लोकालोक में तन्मय नहीं हुआ। यदि लोकालोक में तन्मय हो तो नारकी के दुःख का वेदन इसे आना चाहिए। समझ में आया? लोकालोक में सातवें नरक का नारकी महादुःखी... दुःखी... दुःखी है। चक्रवर्ती महाराजा हो, ब्रह्मदत्त नरक में पड़ा है। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती। आहाहा! सात सौ वर्ष। चक्रवर्ती पद में थोड़े वर्ष रहा परन्तु जिन्दगी सात सौ वर्ष। उन सात सौ वर्ष में श्वास कितने हैं? वह मरकर सातवें नरक में तैतीस सागर में गया। अभी है। एक श्वास में... कितने हैं? जयन्तीभाई! ग्यारह लाख छप्पन हजार नौ सौ पिचहत्तर ऐसे पल्योपम का एक श्वास का दुःख है!

यहाँ एक श्वास लिया, इतने में उसकी जो जिन्दगी गयी... इतना एक श्वास का दुःख। ग्यारह लाख छप्पन हजार पल्योपम का दुःख। समझ में आया? फिर से लेते हैं। एक श्वास, सात सौ वर्ष रहे न? एक श्वास में संसार का कल्पना का सुख भोगा। एक श्वास का फल आया, ग्यारह लाख पल्योपम। एक श्वास के फल में ग्यारह लाख पल्योपम का दुःख है। समझ में आया? यह अंक तो याद नहीं रहे। जयन्तीभाई को याद है। आहाहा! और वह भी छोटी उम्र में कहीं चक्रवर्तीपद नहीं था, बाद में आया। परन्तु सात सौ वर्ष के श्वास की संख्या हो और एक श्वास के फलरूप से ग्यारह लाख पल्योपम वहाँ दुःख है। आहाहा! कोई ऐसा कहे... क्या कहलाता है तुम्हारे? ककड़ी का चोर।

ककड़ी के चोर को फाँसी ? नहीं, नहीं, नहीं। परिणाम इतने तीव्र थे कि तत्प्रमाण यहाँ सात सौ वर्ष कल्पना के, पाप के दुःख भोगे। यहाँ भी पाप के दुःख थे। परन्तु उसके फल में... आहाहा! एक बार हिसाब किया था। यहाँ तो सब बातें (देखी है)। ग्यारह लाख छप्पन हजार पल्योपम। तीसरा क्या कहा ? नौ सौ पिचहत्तर। कहो! ग्यारह लाख छप्पन हजार नौ सौ पिचहत्तर पल्योपम। एक पल्य के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष जाते हैं। ऐई! नन्दकिशोरजी! एक पल्योपम के काल की अवधि में, एक पल्य काल की उपमा है, उसके असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष जाते हैं। ऐसा एक पल्योपम, ऐसे दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम; ऐसे तैंतीस सागर की स्थिति में ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती सातवें नरक गया है। आहाहा! यह ककड़ी के चोर को फाँसी है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? बड़ा गुनाह किया है। आत्मा का अनादर करके तीव्र रौद्रध्यान किया। आहाहा!

भगवान अनन्त आनन्द और अनन्त शक्ति का निधान प्रभु! उसका अनादर किया। वह नहीं, वह नहीं, वह नहीं, यह है, यह है... विषय का सुख, भोग का सुख, यह है। इसके अस्तित्व की स्वीकृति में भगवान अनन्त आनन्द के नाथ का अनादर करके जिसके फल में ग्यारह लाख पल्योपम की अवधि के दुःख में जाता है। आहाहा! समझ में आया ? समझ में आता है या नहीं ? आहाहा! और वे भी कल्पित सुख। अरे रे! भोग में दुःख है। 'कुरुमति' उसकी रानी थी। छियानवें हजार में एक रानी थी, उसकी एक हजार देव सेवा करते थे। चौदह रत्न में एक स्त्री रत्न...। समझ में आया ? आहाहा! वह मरते हुए... उसे स्त्रीरत्न कहते हैं। स्त्रीरत्न क्यों कहा ? कि बहुत कोमल और सुन्दर शरीर होता है। और हजार देव तो उस स्त्री की सेवा करते हैं। (चक्रवर्ती) स्त्री के भोग में इतना लवलीन हो गया कि मृत्यु के समय ऐसा बोले, कुरुमति... कुरुमति। हीरा का पलंग! हीरा के पलंग में सोता था। सोलह हजार देव अन्दर तैयार थे। आहाहा! कुरुमति! हाय... हाय..! कुछ भोग न ले सके। मरकर सातवें नरक गया। भाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि तेरा जो ज्ञानस्वभाव है, उसकी परिणति हो तो अनन्त आनन्द तुझे आवे। आनन्द पुत्र का साथ में जन्म होता है। इस सर्वज्ञ की परिणति के साथ आत्मा भोग—वेदन करता है तो उसमें आनन्द-पुत्र का जन्म होता है, अन्य में दुःख उत्पन्न होता है। आहाहा! भारी मार्ग भाई ऐसा। एक अन्तर्मुहूर्त आत्मा का ध्यान करने से... आहाहा!

केवलज्ञान जलहल ज्योति परिणति प्रगट होती है, और वह केवलज्ञान अनन्त आनन्द के साथ उत्पन्न होता है और वह अनन्त आनन्द और केवलज्ञान की पर्याय समय-समय में भिन्न-भिन्न होती है। जो पहले समय में केवलज्ञान हुआ, वह दूसरे समय नहीं रहता। पहले समय जो अनन्त आनन्द आया, वह दूसरे समय नहीं रहता। दूसरे समय वैसा आयेगा परन्तु वह नहीं आयेगा। समझ में आया ? और यह दु:ख तो... ओहोहो ! सातवें नरक में तूने अनन्त भव किये, भाई ! तुझे खबर नहीं। भूल गया। पेट में से बच्चा आवे, फिर ऊंआ... ऊंआ... करता है, ऊंआ... ऊंआ... ऐसा कि वहाँ यह और हम यहाँ। अब हमारे कुछ सम्बन्ध नहीं होता। आहाहा ! अव्यक्तरूप से ऐसा है। आहाहा ! यह लोरियाँ बोलते हैं न ? लोरियाँ नहीं होती ? लोरिया सोहम् सोहम बोले। परन्तु सोहम का उसे भान कहाँ ? यह कापोतर (कबूतर जैसा पक्षी) नहीं होता ? कापोतर को क्या कहते हैं ? छोटे कबूतर। कबूतर अलग चीज़ है और होला अलग चीज़ है। दो चीज़ है। दो भिन्न चीज़ है। कबूतर कबूतर बड़ा होता है और कापोतक छोटा होता है। हमारी भाषा में होळा कहते हैं। तुम्हारी भाषा में कुछ होगा। अपशुकन कहे, खबर है। भुगु कहते हैं। आहाहा ! उस होला के भव में... यह भी भाषा तो ऐसा बोले, ओ..हो.. ! ओ..हो.. ! ऐसा बोले। परन्तु मैं.. मैं... क्या इसकी खबर नहीं होती।

यह तो सोहम्। स-परमात्मा, वह मैं, सो वह मैं, सो निकालकर अहं वह मैं। सोहम् तो भगवान है, वैसा मैं हूँ, यह भी अभी भेद हुआ। सोहम् निकालकर अहम् पूर्ण सर्वज्ञ सर्वदर्शिशक्ति परिपूर्ण परमात्मस्वभाव। आहाहा ! समझ में आया ? अनुभवरस में रोग न शोगा, कौन पूछेगा फिर ? जहाँ आत्मा का आनन्द आया, कौन कर्ता कौन करणी ? वह तो राग का कर्ता और क्रिया उसमें नहीं होती। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ परिणमित लिया है। सर्वज्ञशक्ति है, वह परिणत हुई तो सर्वज्ञशक्ति का यथार्थ वेदन हुआ। समझ में आया ? पहले कहा था न ? ज्ञानमात्र आत्मा, ऐसा पहले कहा। तो शिष्य ने प्रश्न किया था कि ज्ञानमात्र आत्मा कहने से तो एकान्त हो जाता है, एक ही गुण आया। अनेकान्त नहीं रहा, अनेक धर्म नहीं रहे। सुन तो सही ! ज्ञानमात्र कहने में अनन्त धर्म आ गये। ज्ञान है, वह ज्ञान अस्तिरूप है, ज्ञान वस्तुत्वरूप है, ज्ञान प्रमेयरूप है, ज्ञान ज्ञातारूप है, ऐसी अनन्त शक्तियाँ उसमें आ गयी। और ज्ञान के परिणमन में अनन्त शक्तियाँ

उछलती हैं। है ? आहाहा! अर्थात् वह ज्ञान की परिणति जब हुई, सम्यग्ज्ञान, हों! ग्यारह अंग का ज्ञान, वह ज्ञान की परिणति नहीं। आहाहा! स्वरूप का ज्ञान, अन्दर ज्ञेय बनाकर ज्ञान हुआ... आहाहा! वह स्वरूप की परिणति। समझ में आया ? वह यथार्थ परिणति जब हुई, तब आनन्द आया। यह कार्य हुआ तो कारण उसने यथार्थ देखा और जाना कहलाता है। आहाहा! समझ में आया? बात थोड़ी है परन्तु बात सत्य है। अभी चलता नहीं, इसलिए लोगों को कठिन लगता है। क्या हो ? भाई! आहाहा!

यहाँ तो शक्ति का वर्णन है तो व्यवहार का उसमें अभाव है, उसकी बात है। यह अभाव की बात नहीं की, परन्तु यहाँ निश्चय कराने के लिये सर्वज्ञ परिणति जब हुई तो चौथे गुणस्थान में (श्रद्धा में) केवलज्ञान प्रगट हुआ। था तो सही परन्तु ज्ञान में ज्ञेय करके प्रतीति हुई, तब श्रद्धा में केवलज्ञान प्रगट हुआ और तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान की परिणति प्रगट हुई। वह परिणति प्रगट हुई, उसकी चौथे गुणस्थान में प्रतीति आयी। आहाहा! आहाहा! भाई! सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है! आहाहा! जिसने पूरे पूर्ण सत् की प्रतीति की। सम्यक् और सत्य। पूरे पूर्ण सत्य की प्रतीति। ज्ञान में ज्ञेय होकर प्रतीति हुई। जानने में आया, पश्चात् प्रतीति हुई। ज्ञात नहीं तो प्रतीति किसकी? समझ में आया ? आहाहा!

यह सर्वज्ञशक्ति का परिणमन हो तो सर्वज्ञशक्ति का कार्य आया तो कारण की प्रतीति है। आहाहा! चौथे गुणस्थान में सर्वज्ञशक्ति की प्रतीति आयी। केवलज्ञान हूँ, ऐसा केवलज्ञान श्रद्धा में आया, प्रगट हुआ नहीं। प्रगट तो तेरहवें गुणस्थान में होगा। समझ में आया ? एकबार यह बात कही थी, मति-श्रुतज्ञान में पूरी पूर्ण वस्तु प्रतीति में आयी। तो उस मति-श्रुतज्ञान में केवलज्ञान श्रद्धा में प्रगट हुआ। नहीं माना था, उसे माना। पश्चात् वह मति-श्रुतज्ञान जो हुआ, वह केवलज्ञान को बुलाता है। भाई! मुझे सिद्धपुर जाना है, मार्ग कहाँ से निकलेगा ? इस थोर में से... थोर समझते हो ? थोर में से जाते हैं कि इस नदी के किनारे से जाते हैं ? भाई! यहाँ आओ, जरा मार्ग बताओ। ऐसा कहते हैं न ? यहाँ मति-श्रुतज्ञान में पूर्ण आत्मवस्तु की प्रतीति हुई, केवलज्ञान ज्ञान में आया तो वह प्रतीति पर्याय, मति-श्रुतज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है कि अब आओ, परिणति आओ, परिणति आओ... नन्दकिशोरजी! ऐसी बातें कभी सुनी नहीं होगी। आहाहा! यह धवल में आता है। धवल

है न? जयधवल, धवल चालीस पुस्तकें हैं। एक-एक दस बारह का पुस्तक है, चालीस पुस्तकें हैं। पुस्तक में सब है, सब देखा है। आहाहा!

आत्मा में पूर्ण आनन्द, सर्वज्ञ और सर्वदर्शिशक्ति की परिणति हो, तब पूर्ण दशा है, ऐसी प्रतीति में आया कि यह शक्ति है, उसकी श्रद्धा नहीं थी, अनुभव में वह श्रद्धा हुई। और पर्याय की प्रतीति हुई कि यह पर्याय पूर्ण है, उसे केवलज्ञान कहते हैं। आहाहा! इसलिए लिया, **'जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं'** प्रवचनसार ८० गाथा आती है न? जिसने अरिहन्त की केवलज्ञान की पर्याय परिणतरूप से है, उसे जिसने माना... है अभी विकल्प से। वह केवलज्ञान की पर्याय है, ऐसा विकल्प से जाना है परन्तु फिर आत्मा में मिलान करता है कि मेरे पास केवलज्ञान की पर्याय नहीं और शक्तिरूप से तो केवल है, उसकी दृष्टि सर्वज्ञशक्ति पर पड़ने से... उसे प्रवचनसार में कहा है कि त्रिकाली ज्ञान को कारण बनाकर, त्रिकाली ज्ञान को कारण बनाकर पर्याय में कार्य हुआ। अरे... अरे...! ऐसी बातें हैं। प्रवचनसार में है, ज्ञान अधिकार है न? भाई! असाधारण ज्ञान को कारण बनाकर, ऐसा पाठ है। आहाहा!

यह ज्ञानशक्ति से परिपूर्ण प्रभु है। उस शक्ति को कारण बनाकर दृष्टि में जब सम्यग्दर्शन हुआ, तब प्रतीति में भी आया कि तेरहवें (गुणस्थान) में मुझे पूर्ण परिणति अल्पकाल में होगी। समझ में आया? वर्तमान में केवलज्ञान है, ऐसी प्रतीति हुई। केवलज्ञान नहीं, ऐसी प्रतीति थी। मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हूँ, पूर्ण शक्ति हूँ, ऐसी प्रतीति नहीं थी तो उसे केवलज्ञान नहीं था। समझ में आया? आहाहा! परन्तु जब अन्दर ज्ञेय बनाकर ज्ञान में प्रतीति हुई तो श्रद्धा में केवलज्ञान प्रगट हुआ और पूर्ण प्रगट होने की उसे तैयारी हो गयी। आहाहा! कहो, ज्ञानचन्दजी! ऐसी बात है। लोग तो अभी बाहर के विवाद में पड़े हैं, हों! अरे! पुण्य, वह धर्म है; शुभभाव, वह धर्म है। उसे धर्म न माने तो उनके साथ सत्याग्रह करो। अरे! प्रभु! किसके साथ सत्याग्रह करता है? ऐसा आया है। अरे! भाई! शुभभाव तो स्वरूप में ही नहीं है। द्रव्य में है नहीं, गुण में है नहीं, यहाँ तो शक्ति के परिणमन में शुभभाव नहीं। समझ में आया? चाहे? तो सम्यग्दर्शन का परिणमन हो तो उस परिणमन में भी शुभभाव नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

परिणमित भाषा कहकर तो गजब काम किया है! और उसमें ऊपर भी था न?

परिणत एक ज्ञप्तिमात्र भावरूप... परिणमित। ज्ञान के आश्रय से ज्ञान की पर्याय परिणमी। वैसे यह केवलज्ञान भी त्रिकाल जो ज्ञानशक्ति है, उसके आश्रय से केवलज्ञान की परिणति पर्याय में हुई। आहाहा! इस प्रकार छद्मस्थ को केवलज्ञान प्रतीति में आया... आहाहा! एक ज्ञानमूर्ति भगवान आत्मा है, पूर्ण है, पूर्ण है और उसकी सर्वज्ञशक्ति पूर्ण है। उसका आश्रय लेकर जो सम्यग्दर्शन हुआ तो सम्यग्दर्शन की पर्याय में पूर्ण की प्रतीति है, विकार का अभाव है। समझ में आया? शुभराग का भी जिसमें अभाव है। तब यथार्थ प्रतीति कही जाती है। आहाहा!

त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव की परिणति में प्रतीति हुई, उस समय जो ज्ञानपर्याय प्रगट हुई, वह, जिस प्रकार का राग है, उस प्रकार की स्व-परप्रकाशक ज्ञान की पर्याय अपने में अपने कारण से प्रगट होती है। राग है तो पर को जानने की पर्याय हुई, ऐसा भी नहीं। समझ में आया? राग होता है, ज्ञानी को भी राग आता है परन्तु बारहवीं गाथा में कहा न? जाना हुआ प्रयोजनवान है। 'तदात्वे'—जाना हुआ प्रयोजनवान। इसका अर्थ यह कि राग के काल में, अपने ज्ञानस्वरूप के लक्ष्य से, स्व-परप्रकाशक पर्याय अपने कारण से अपनी सत्ता में, अपनी सत्ता के सामर्थ्य से प्रगट होती है। उसमें राग का ज्ञान कहना, वह व्यवहार है। राग सम्बन्धी अपना ज्ञान, अपना ज्ञान और राग सम्बन्धी ज्ञान, दोनों ज्ञान अपने से अपने को उत्पन्न होते हैं। वे राग के कारण से नहीं। राग का तो अभाव है परन्तु राग के कारण से ज्ञान भी नहीं। आहाहा! गजब बात है। समझ में आया?

उस समय... बारहवीं गाथा में 'तदात्वे' शब्द पड़ा है। उस काल में। जिस समय ज्ञान की पर्याय अल्प है और रागादि हैं, उस समय ज्ञान उसे जानता है। जाना हुआ प्रयोजनवान कहा, उसका अर्थ यह है, वह पर को जानता है, यह भी व्यवहार कहा। परन्तु यहाँ तो वह भी निकाल दिया कि अपनी परिणति को ही जानता है। राग को जानता है, ऐसा कहना, वह तो असद्भूतउपचार है। आहाहा!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १२, शक्ति- १०, ११ सोमवार, (द्वितीय) श्रावण शुक्ल ८, दिनांक २२-०८-१९७७

समयसार, शक्ति का अधिकार चलता है। दसवीं शक्ति। **समस्त विश्व के विशेष भावों को**... सर्वज्ञशक्ति में बहुत गम्भीरता है। सर्वज्ञशक्ति है, उसका परिणमन अपने से होता है, इसलिए कहा कि **समस्त विश्व के विशेष भावों को जाननेरूप से परिणमित**... समझ में आया ? सूक्ष्म है। सर्वज्ञशक्ति जो त्रिकाल है, वह सर्व भावों को जाननेरूप वर्तमान में परिणमित होती है। है ? वह **आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्वशक्ति।** इसमें बहुत विवाद है न ? खानिया चर्चा में। वे कहते हैं कि सर्वज्ञशक्ति है, वह सबकी अपेक्षा रखती है, इसलिए व्यवहार सर्वज्ञ है। ऐसा नहीं है। आत्मा में वस्तु सर्वज्ञस्वभाव शक्ति है, उसकी प्रतीति करने से, उसके सन्मुख होने से अथवा सर्वज्ञशक्ति का धारक भगवान आत्मा का आश्रय करने से प्रथम सम्यग्दर्शन होता है तो उस सम्यग्दर्शन में सर्वज्ञशक्ति केवलज्ञान की शक्ति श्रद्धा में उत्पन्न हुई। यह क्या कहा ? श्रद्धारूप से केवलज्ञान हुआ। सूक्ष्म बात है।

जिस श्रद्धा में आत्मा अल्पज्ञ है अथवा सर्वज्ञशक्ति नहीं है, ऐसी जो दृष्टि थी, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा ! यह प्रश्न बहुत चला था न ? कहा, जगत में सर्वज्ञ है या नहीं ? तो ऐसा उत्तर दिया कि सर्वज्ञ की सर्वज्ञ जाने। अरे ! प्रभु ! क्या करता है ? भाई ! आहाहा ! आत्मा पदार्थ है, उसमें सर्वज्ञ—ज्ञ स्वभाव कहो या सर्वज्ञ स्वभाव कहो, उसका वही स्वरूप है और उस सर्वज्ञस्वभाव को धारक शक्तिवान आत्मा है। क्योंकि धर्म का मूल तो सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ से धर्म की स्थिति उत्पन्न हुई है। आहाहा ! सर्वज्ञ क्या है ? और सर्वज्ञ किस प्रकार परिणमते हैं, उस बात को तो इसे जानने पड़ेगा।

आत्मा में सर्वज्ञशक्ति—स्वभाव है, स्वभाव। उसमें भी दो मत है। श्वेताम्बर कहता है कि केवलज्ञान सत्तारूप है और दिगम्बर कहते हैं कि शक्तिरूप है। दोनों में अन्तर है। ऐसा कि केवलज्ञान है परन्तु ऊपर आवरण है। ऐसा नहीं है। केवलज्ञान है, वह शक्तिरूप है। उसके परिणमन में अल्पज्ञता है, वह उसका आवरण है। हमारे सम्प्रदाय में तो बहुत चर्चा चलती थी न ! अन्दर सत्ता है और आवरण है, ऐसा नहीं होता। शक्तिरूप है। अन्तर है। सत्ता और शक्ति में बहुत अन्तर है। प्रगट है और आवरण है, ऐसा वे कहते हैं। यहाँ थोड़े अन्तर से बहुत अन्तर है। समझ में आया ?

यहाँ तो शक्तिरूप से, शक्ति अर्थात् ताकत, सर्वज्ञ होने की इसकी ताकत-शक्ति है। और उस सर्वज्ञशक्ति की ताकत जब परिणमन में आवे, तब सर्वज्ञ परिणति आती है। आहाहा! यह सर्वज्ञशक्ति द्रव्य में भी है, गुण में भी है, यह शक्ति है और इसका जब पर्याय में परिणमन होता है... इसलिए यह भाषा ली, देखो! **विशेष भावों को जाननेरूप से परिणमित**... आहाहा! नहीं तो अधिकार तो शक्ति का, उसकी सामर्थ्य का चलता है परन्तु उस सामर्थ्य का परिणमन होता है। जिस समय में जिस काल में उसी काल में सर्वज्ञशक्ति का परिणमन होकर उस काल में सर्वज्ञपना प्रगट होता है। आहाहा! मार्ग बहुत अलौकिक, भाई! आहाहा! यह सर्वज्ञशक्ति जाननेरूप परिणमते हुए। आहाहा! जाननेरूप से परिणमते हुए। पर को जानना, ऐसा यहाँ शब्द नहीं है। समझे?

विशेष भावों को जाननेरूप से परिणमित... भेदरूप भाव जो अनन्त द्रव्य, अनन्त गुण आदि है, उन सबको एक समय में सर्वज्ञ जानने की शक्ति रखते हैं। समझ में आया? इसलिए कहा कि **'जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं'** जिसने अरिहन्त के द्रव्य, गुण और पर्याय को जाना तो उस पर्याय में केवलज्ञान आया। जगत में केवलज्ञान की परिणति है, उसे जाना, वह अपने आत्मा में मिलान करता है कि मेरी पर्याय में सर्वज्ञपना क्यों नहीं? समझ में आया? क्योंकि उनमें सर्वज्ञशक्ति थी तो उन्हें सर्वज्ञशक्ति का परिणमन हुआ। तो मुझमें सर्वज्ञशक्ति है तो उसका परिणमन क्यों नहीं? समझ में आया? आहाहा! मेरी दृष्टि अन्तर में गयी नहीं। सर्वज्ञशक्ति का स्वीकार नहीं हुआ, इसलिए सर्वज्ञपरिणति नहीं होती। समझ में आया? तो उन अरिहन्त की पर्याय को जाने, वह अपने आत्मा को जानता है और **'मोहो खलु जादि तस्स लयं'** उसके दर्शनमोह का नाश होता है। उस सम्यग्दर्शन में... आहाहा! केवलज्ञान... सवेरे एक बोल कहा था न? दूसरा बोल रह गया था, भाई! मुझे चाहिए था, वह बोल रह गया था। मुख्यवृत्ति से केवलज्ञान वर्तता है, यह साधारण बात है। परन्तु वहाँ तीन बातें थी। त्रिकाल शक्ति से वर्तता है, वह नय की अपेक्षा से परन्तु यहाँ तो सर्वज्ञशक्ति....

श्रीमद् राजचन्द्र को प्राप्त था। समझ में आया? कहते हैं कि सर्वज्ञ—केवलज्ञानशक्ति, जिसके वचन के योग से विचार में से सर्वज्ञशक्ति की प्रतीति हुई, ऐसे भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ। परन्तु उस सर्वज्ञशक्ति की प्रतीति हुई, केवलज्ञान है—ऐसा जो ख्याल

में नहीं था, वह केवलज्ञान है, पूर्ण ज्ञान है—ऐसी प्रतीति हुई तो श्रद्धारूप से केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है। णमो अरिहंताणं—यह वह क्या चीज़ है, बापू! ऐसी की ऐसी भाषा तो अनन्त बार रटी और की।

अरि अर्थात् विकार का नाश करके, जिसने स्वाश्रय से सर्वज्ञपर्याय प्रगट की, तो वह सर्वज्ञपर्याय प्रगट की परन्तु यहाँ तो अभी जिसने प्रगट नहीं की, उसे प्रतीति में आया कि मैं सर्वज्ञस्वरूप हूँ। इसलिए प्रतीति में आनन्द आया, प्रतीति में अतीन्द्रिय आनन्द आया। उस आनन्द के कारण से पूरी चीज़ की उसे प्रतीति उत्पन्न हुई। ओहोहो! समझ में आया? कहते हैं कि तो यह श्रद्धारूप से केवलज्ञान हुआ। सम्यग्दर्शन में श्रद्धारूप से केवलज्ञान हुआ।

दूसरी बात, विचारदशा से केवलज्ञान हुआ। पहले दर्शन लिया, फिर ज्ञान, पश्चात् चारित्र। ऐसे तीन बोल लेंगे, सुनो! आहाहा! वस्तु जो आत्मा अकेला ज्ञान का पिण्ड, ज्ञ-स्वभावी, त्रिकाल ज्ञ—स्वभाव, त्रिकाल ज्ञ—स्वभाव में सर्वज्ञस्वभाव शक्तिरूप से है, उसकी सम्यग्दर्शन में प्रतीति हुई तो प्रतीति में श्रद्धारूप से केवलज्ञान नहीं था, वह केवलज्ञान है—ऐसी प्रतीति हुई तो श्रद्धारूप से केलवज्ञान प्रगट हुआ। सूक्ष्म ज्ञान है, भगवान! आहाहा! और विचारदशा से केवलज्ञान प्रगट हुआ। क्योंकि ज्ञान की पर्याय में पूरे ज्ञेय की प्रतीति होती है तो ज्ञान की पर्याय में भी विचारदशा में केवलज्ञान आया। श्रद्धारूप से आया, विचारदशा से भी आया। आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात है।

इच्छादशा से केवलज्ञान हुआ। तीन बोल लिये। पहले दर्शन लिया, फिर ज्ञान लिया, अब इच्छा अर्थात् चारित्र। भाई! सर्वज्ञपना मानना, वह कोई अलौकिक चीज़ है! समझ में आया? ऐसा का ऐसा सर्वज्ञ है और अरिहन्त है, ऐसा तो बहुत बार रटा। रट लिया। गोखी लिया। गोखी लिया समझे? रटन कर लिया। आहाहा!

भगवान आत्मा वर्तमान ज्ञान की पर्याय में यह सर्वज्ञशक्ति स्वभावरूप है, ऐसे स्वाश्रय करके जिसे सर्वज्ञपने का परिणमन हुआ, उस परिणमन की प्रतीति पहले सम्यग्दर्शन में होती है। समझ में आया? तो श्रद्धारूप से केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। पूर्ण ज्ञानस्वरूपी प्रतीति में नहीं था, मैं तो अल्पज्ञ और रागरूप हूँ, पर्यायबुद्धि में वर्तमान पर्यायबुद्धि में

अल्पज्ञ और रागबुद्धि थी तो सर्वज्ञ-केवलज्ञान है—ऐसी श्रद्धा नहीं थी। आहाहा! ऐसा मार्ग। जब भगवान आत्मा पूर्णानन्द चैतन्य के प्रकाश के तेज का पुंज... आहाहा! चैतन्यचन्द्र, चैतन्यचन्द्र, प्रकाश का पुंज और शीतलता—शान्ति, उपशमरस का कन्द है.. आहाहा! ऐसा जब प्रतीति में आया तो कहते हैं कि श्रद्धारूप से केवलज्ञान प्रगट हुआ। नहीं माना था और अब माना तो (कहते हैं) प्रगट हुआ। सूक्ष्म बात है, भाई!

विचारदशा से केवलज्ञान हुआ। ज्ञान की पर्याय में पूरी चीज़ सर्वज्ञस्वभाव की परिणति ऐसी है, ऐसा उसकी प्रतीति में आ गया, ज्ञान में भी आ गया। रात्रि में थोड़ा प्रश्न हुआ था। एक स्तम्भ होता है न? स्तम्भ। उसका भाग होता है न? भाग। एक भाग। एक भाग को देखे, वह अवयव है, तो पूरी चीज—अवयवी का ज्ञान हो गया। यह अवयव इस अवयवी का है। मतिज्ञान की पर्याय में पूरा प्रतीति में आ गया। पूरा आत्मा ऐसा है। पूरा स्तम्भ है। ऐसा मतिज्ञान में, श्रुतज्ञान में सर्वज्ञशक्ति की प्रतीति हुई तो मतिज्ञान का जो अंश (प्रगट) हुआ, वह केवलज्ञान का अंश है। उस अंश को जिसने जाना, उसने अंशी को जाना। अवयव को जाना, उसने अवयवी को जाना है। ऐसा जयधवल में पाठ है। सूक्ष्म पड़े परन्तु मार्ग यह है। समझ में आया?

इच्छादशा से केवलज्ञान वर्तता है, ऐसा कहा। श्रद्धारूप से केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, विचारदशा से केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, इच्छादशा से केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। वहाँ इच्छा अर्थात् केवलज्ञान की प्राप्ति करने की अब भावना है। समझ में आया? पूर्ण परिणति... कहा न? **जाननेरूप से परिणमित...** ऐसी जो पर्याय है, वह प्रगट करने की सम्यग्दृष्टि को इच्छा हुई तो इच्छादशा से केवलज्ञान वर्तता है, ऐसा कहने में आया। आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है, बापू! वीतराग का धर्म बहुत सूक्ष्म है। एक बात (हुई)।

दूसरी (बात)— **जाननेरूप से परिणमित ऐसे आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्वशक्ति।** अब सर्वज्ञ कहा तो पर की अपेक्षा आयी, ऐसा नहीं है। आत्मज्ञानमयी, अपनी पर्याय सर्वज्ञरूप से आत्मज्ञानमयी परिणमी है। वह स्वयं के कारण से (परिणमी है)। सबको जाना और अपने को जाना, ऐसी आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञशक्ति है। पर को जानना, ऐसा नहीं परन्तु पर को और अपने को जाने, ऐसी आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञशक्ति है। आहाहा! क्या

कहा, समझ में आया? धर्म मार्ग ऐसा सूक्ष्म है, भाई! क्रियाकाण्ड कर करके जिन्दगी व्यतीत हुई।

कहते हैं कि **आत्मज्ञानमयी...** सर्वज्ञशक्ति, वह स्वआश्रित सर्वज्ञपर्याय प्रगट हुई है। वह सर्व है तो उन्हें जाना, इसलिए प्रगट हुई, ऐसा भी नहीं। समझ में आया? शक्ति में अभी बहुत विरोध है। समझ में आया? सामनेवाले पण्डित खानिया चर्चा में ऐसा कहते हैं कि सर्वज्ञशक्ति है, उसमें पर की अपेक्षा आयी। एक धर्म आत्मज्ञानमयी है और पर को जानने का एक धर्म अन्दर है, ऐसे दो धर्म हैं। दो धर्म नहीं, एक ही धर्म है। आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञशक्ति कहा, परन्तु धर्म एक ही है। वह सर्वज्ञपना कहो या आत्मज्ञपना कहो। यह विवक्षा के कथनभेद हैं, वस्तुभेद नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? समझ में आये ऐसा है, हों! न समझ में आये, ऐसा नहीं है। बापू! इसमें तो केवलज्ञान लेने की ताकत है न, प्रभु! आहाहा!

एक समय में उस समय के काल में, वह केवलज्ञान पर्याय उत्पन्न होने का स्वकाल है, इसलिए उत्पन्न होती है। पूर्व के चार ज्ञान थे, उनका व्यय होकर उत्पन्न हुआ, यह व्यवहार है। आहाहा! सर्वज्ञपर्याय केवलज्ञान उस समय में उत्पन्न होने का स्वकाल था और वह केवलज्ञान की पर्याय सर्व को जाने, इसलिए पर का जानना उसमें आया, इतनी अपेक्षा आयी—ऐसा नहीं है। सर्वज्ञपना है, वह आत्मज्ञपना है। समझ में आया? सर्व को जाननेरूप परिणमन हुआ, वह अपना अपने से स्वआश्रय है, पर के कारण नहीं। लोकालोक है, इसलिए सर्वज्ञपने का परिणमन हुआ, ऐसा नहीं है। समझ में आया? थोड़ा अन्तर है, उसमें बहुत अन्तर है।

यह चर्चा तो हमारे बहुत वर्ष पहले हो गयी थी। (संवत्) १९८३ के वर्ष, पचास वर्ष पहले, पचास वर्ष पहले। दामनगर, वहाँ सेठ है न? वे कहते थे कि यह लोकालोक है तो सर्वज्ञपना उत्पन्न होता है। यहाँ कहा, यह सर्वज्ञपने की पर्याय अपने में अपने कारण से स्वआश्रय से उत्पन्न हुई है; लोकालोक है, इसलिए उत्पन्न हुई है—ऐसा नहीं है। ज्ञेय है तो ज्ञान की परिणति पूर्ण प्रगट हुई, ऐसा नहीं। स्वयं के कारण से उत्पन्न हुई है। आहाहा! परन्तु किसे निरधार करना है? आहाहा! किसे पड़ी है?

अरे! प्रभु! बापू! तू कौन है? भाई! तेरी शक्ति में सर्वज्ञपना पड़ा है, वह तेरा सामर्थ्य है। राग का सामर्थ्य तुझमें नहीं; अल्पज्ञपने रहना, वह तुझमें सामर्थ्य नहीं। आहाहा! बालचन्दजी! ऐसी बात है। लोक के साथ मिलान नहीं खाता, इसलिए बेचारे विरोध करते हैं। अरे! भाई! आत्मज्ञान कहो या सर्वज्ञ कहो, यह एक ही शब्द है। शब्द में अन्तर है परन्तु आत्मज्ञान, यह निश्चय है और सर्वज्ञपना, यह व्यवहार है—ऐसा नहीं है। आत्मज्ञानमयी—ऐसा कहा न? आत्मज्ञानमयी। आत्मज्ञानवाला ऐसा भी नहीं; आत्मज्ञानमयी। आहाहा! आत्मज्ञानमयी कौन? सर्वज्ञ। आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञ। आहाहा! एक समय में सर्वज्ञ की परिणति आत्मज्ञानमयी है, पर के ज्ञान की यहाँ बात नहीं है। समझ में आया? परसम्बन्धी अपना ज्ञान और अपना ज्ञान उस समय में अपने से परिणमा है। पर को जानता है, इसलिए सर्वज्ञशक्ति प्रगट हुई, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। ऐसा सूक्ष्म समझकर कब धर्म हो? आहाहा!

मुमुक्षु : न समझ में आये ऐसा धर्म है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! न समझ में आये, (ऐसा नहीं है) आहाहा! इसे विश्वास हो जाये और मुझे अल्पकाल में केवलज्ञान होगा, ऐसा निर्णय हो जाये। निःसन्देह निर्णय हो जाये। समझ में आया? उसे भगवान को पूछना नहीं पड़े। आहाहा! ऐसा अन्दर में, अन्दर में आत्मा में, आत्मज्ञानमयी अनुभूति में प्रतीति हुई। आहाहा! मैं तो अकेली ज्ञानशक्ति सर्वज्ञ से भरपूर हूँ। आहाहा! उस सर्वज्ञशक्ति की स्वभाव के आश्रय से प्रतीति हुई। प्रतीति ऐसी की ऐसी नहीं। ज्ञान में आया नहीं और प्रतीति हुई, वह प्रतीति ही नहीं है। ज्ञान की पर्याय में सर्वज्ञशक्ति, ऐसा द्रव्य लक्ष्य में आया। ज्ञान की पर्याय में सर्वज्ञशक्ति और सर्वज्ञशक्ति के धारक का ज्ञान आया। सर्वज्ञशक्ति पर्याय में नहीं आयी। अरे... अरे...! अब ऐसी बातें। समझ में आया?

सर्वज्ञ परिणति जो हुई, परिणति शब्द प्रयोग किया है न? कल तो एक घण्टे बहुत लिया था। आज तो वे दो बोल याद नहीं थे, वह पढ़ा। श्रीमद् में ३१३ पृष्ठ पर है। श्रीमद् राजचन्द्र पढ़ा था। यहाँ हजारों शास्त्र पढ़े हैं। यहाँ कहते हैं, आहाहा! सर्वज्ञ आत्मज्ञानमयी। सर्वज्ञ (शब्द) आया तो पर की अपेक्षा आयी, ऐसा नहीं है—यह कहते हैं। समझ में आया? वह आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञशक्ति है। सर्वज्ञशक्ति कहो या आत्मज्ञानमयी कहो, एक

ही चीज़ है। आत्मज्ञान है, वह निश्चय से है और सर्वज्ञशक्ति व्यवहार से है, ऐसा नहीं है। अथवा सर्वज्ञ—सबको जानने का परिणमन हुआ, वह व्यवहार और अपने को जाना, वह निश्चय, ऐसा नहीं है। पर को और अपने को जानने की परिणति अपने से, अपने कारण से, अपनी सत्ता से परिणमित हुई है। पर की ज्ञेय सत्ता है तो सर्वज्ञपने का परिणमन हुआ, ऐसा नहीं है। पर की अपेक्षा है ही नहीं। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें। बापू! मार्ग अलग।

जिसका फल अनन्त केवलज्ञान 'सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख में' जिसका फल केवलज्ञान, अनन्त आनन्द। उसकी आदि हो—अनन्त आनन्द की पर्याय में आदि हुई न? शक्ति तो अनादि की है परन्तु भान हुआ तो आदि हुई, प्रगट हुई। 'सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख में' जब से केवलज्ञान हुआ, तब से आदि हुई। क्योंकि शक्ति तो अनादि की थी परन्तु प्रगट हुआ, वह आदि हुई। और जब आदि हुई तो 'सादि अनन्त अनन्त समाधि'—शान्ति... शान्ति... शान्ति... 'उपशमरस वरसे रे प्रभु तेरे नयन में' आता है? स्तुति आती है। इसी प्रकार केवलज्ञान में उपशमरस बरसता है। आहाहा! उपशमरस अर्थात् चारित्र। चारित्र अर्थात् वीतरागदशा। केवलज्ञान हुआ तो वहाँ यथाख्यातचारित्र साथ में हुआ। यथाख्यात अर्थात् जैसी वस्तु है, वैसी प्रसिद्धि पर्याय में आ गयी। सर्वज्ञपने में चारित्र की पर्याय पूर्ण शान्ति... शान्ति... शान्ति.. अकषाय स्वभाव, वीतरागरस की, उपशमरस की परिणति पूर्ण हो गयी। आहाहा! समझ में आया? यह 'परिणमित' शब्द में से यह बात चलती है। यह तो गम्भीर है, भाई!

अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त! आहाहा! आकाश के स्तम्भ! आकाश को स्तम्भ नहीं होते परन्तु यह तो धर्म के स्तम्भ!! आकाश को स्तम्भ है? आहाहा! उसी प्रकार यह तो वीतरागी परिणति के स्तम्भ हैं, भगवान! आहाहा! इसी प्रकार तू भी ऐसा है। स्वभाव में शक्ति में सामर्थ्य में सत्त्व में सत् के भाव में; सत् अर्थात् वस्तु, उसके भाव में... आहाहा! सर्वज्ञशक्ति है, ऐसी प्रतीति जहाँ हुई तो सर्वज्ञ की परिणति भले न हो, परन्तु सर्वज्ञ की परिणति की पर्याय में प्रतीति आ गयी। ओहो! इसमें से तो अब सर्वज्ञपर्याय ही प्रगट होगी, मैं सर्वज्ञपर्याय में आऊँगा। दूज उगी है, दूज, दूज उगी है, वह अब तेरहवें दिन पूर्णिमा होगी, होगी और होगी। समझ में आया? आहाहा! अब ऐसी बातें, इसलिए दूसरों के साथ मिलान नहीं खाता। बापू! मार्ग ऐसा है, भाई!

जैसे समुद्र में छलाछल पानी भरा हो। छलाछल कहते हैं न? लबालब। वैसे भगवान ज्ञानशक्ति और आनन्दशक्ति से लबालब भरा है। आहाहा! उसका जो परिणमन होता है, उसे आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञशक्ति कहा। सर्वज्ञ हैं, उसमें पर की अपेक्षा आयी ऐसा है ही नहीं। निश्चय से आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञशक्ति है। फिर पर को जानता है, ऐसा कहना, वह व्यवहार हो गया। परन्तु यह तो निश्चय है। समझ में आया? ऐसा मार्ग है। सूक्ष्म बात है, भाई! शक्ति का वर्णन... आहाहा! रामजीभाई ने कहा था कि कक्षा में (शिविर में) शक्ति का वर्णन करना। आहाहा!

यह सब मिट्टी के-जड़ के रजकण भिन्न, कर्म के अचेतन जड़ रजकण भिन्न, पुण्य-पाप के परिणाम भिन्न, अल्पज्ञ पर्याय भी जिसमें नहीं, ऐसी भिन्न सर्वज्ञशक्ति है। समझ में आया? ऐसी बात है। वह राग से उत्पन्न होती है और अमुक से उत्पन्न होती है यह बात नहीं है। ऐसा कहते हैं। व्यवहाररत्नत्रय करते-करते सम्यग्दर्शन होगा और केवलज्ञान होगा, ऐसा है ही नहीं है। यहाँ तो सम्यग्दर्शन में ऐसी प्रतीति हुई कि मैं सर्वज्ञशक्तिमय हूँ तो उसकी परिणति पूर्ण अपने से होगी। वह आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञपरिणति है, वह मुझसे उत्पन्न होगी और वह षट्कारक परिणमन होकर उत्पन्न होगी, पर की अपेक्षा रखे बिना। ज्ञेय—लोकालोक है, उसकी अपेक्षा रखे बिना मेरी पर्याय सर्वज्ञरूप से परिणमित होगी। भाई! बालचन्दजी! ऐसी बात है, भगवान! आहाहा! ऐसा मार्ग। अरे! भगवान! तू कौन है? प्रभु! भाई! आहा! समझ में आया? आहाहा!

अरे! एक भाव भी यथार्थ बैठे न... जयसेनाचार्य की टीका में लिखा है, एक भाव भी यथार्थ बैठे तो सर्व भाव यथार्थ बैठें। जयसेनाचार्य की टीका में है। समयसार। एक भाव, एक ही भाव, कोई भी एक भाव। सर्वज्ञ कहो, सर्वदर्शि कहो, ज्ञानपर्याय कहो, शक्ति कहो, द्रव्य कहो। एक भी भाव जिसे यथार्थरूप से ख्याल में आया, उसे सर्व भाव यथार्थरूप से ख्याल में आते हैं। धन्नालालजी! आहाहा! आज तुम्हारे ग्वालियरवाले कोई आये थे। प्रदर्शन नहीं बताते? वे आते हैं? क्या नाम? नरम व्यक्ति है, बहुत माँग करते थे। द्रव्यदृष्टिप्रकाश दिया। पूछा था तो कहे, हमारे धन्नालालजी का उपकार है। वहाँ सुनने को मिलता है, ऐसा। आहाहा! यहाँ यह दसवीं शक्ति और नौवीं शक्ति तो गजब बात है, भाई!

मुमुक्षु : सब आपका ही उपकार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात... आहाहा! वे कहते थे कि हमारे प्रदर्शनी... हमारा और बहिन का कुछ बाहर देना नहीं है। भगवान, देव-गुरु-शास्त्र की बात करो। हम तो देव-गुरु-शास्त्र के दास हैं। आहाहा! बहिन के लिये भी... बहिन को कहाँ पड़ी है? बहिन तो धर्मरत्न है। वह कौन है, यह पहिचानना मुश्किल पड़े, बापू! स्त्री का देह, शान्त चले, बोलने का बहुत नहीं, दूसरे में ऐसे धाराप्रवाह बोलते हों, ऐसा इनमें दिखे नहीं। मणिभाई! आहाहा! नौ भव है और यह है, वह कैसे जँचे? मैंने कहा, तुमको नहीं जँचे तो विश्वास रखो। क्या हो दूसरा? यह चीज़ कहीं बाहर में बतायी जाती है?

यहाँ आत्मज्ञान और सर्वज्ञपना, यह दो नहीं है। आत्मज्ञान कहो या सर्वज्ञपना कहो, यह दोनों एक ही वस्तु है। आत्मज्ञान है, वह निश्चयपरिणति है और सर्वज्ञ है, वह व्यवहार है—ऐसे दो नहीं हैं। यह तो दो होकर एक है। समझ में आया? पश्चात् लोकालोक को जानते हैं, ऐसा कहना व्यवहार है। यह व्यवहार नहीं, यह तो आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञशक्ति तो निश्चय है। नन्दकिशोरजी! इस वकालात से अलग प्रकार की वकालात है। आहाहा! यह भगवान होने की वकालात है। आहाहा! और वह भगवान है। है, वह होगा। स्वभाव और शक्तिरूप से है। है, वह होगा। नहीं होगा, ऐसा कहाँ से आया?

सवेरे आया था, आज अच्छा लिया था, हों! जीतूभाई ने। सवेरे जीतू था। पहला कलश अच्छा लेता है। आहा! मैंने कहा, यह हिन्दी होवे, इन लोगों को समझ में आवे ऐसा... आठ दिन में थोड़ा विश्राम मिलता है। हमेशा सज्झाय करते हैं, परन्तु आज तो रिकार्डिंग लिया। आहाहा! हितरूप साररूप, हित और सुखरूप सार और दुःखरूप असार। आहाहा! वहाँ तो ऐसा लिया है, कि पुद्गल के एक परमाणु से लेकर कर्म, शरीर, वाणी, पैसा, लक्ष्मी, स्त्री का शरीर, इसमें ज्ञान भी नहीं और सुख भी नहीं। तथा निगोद के जो अनन्त जीव हैं, उनमें ज्ञान भी नहीं। शक्ति की बात नहीं, परिणति में ज्ञान भी नहीं और सुख भी नहीं। और वे निगोद के अनन्त जीव हैं, और अनन्त परमाणु का स्कन्ध यह शरीर है, उसे जाननेवाले को भी ज्ञान और सुख नहीं है। क्या कहा? यह सवेरे यह आया था। संसारी प्राणी अनन्त निगोद के जीव, अनन्त! आहाहा! मलिनरूप से परिणमनवाले को पर्याय में सुख भी नहीं है और ज्ञान भी नहीं है। वस्तु में सुखगुण त्रिकाली है, यह बात नहीं है, और ऐसे संसारी प्राणी अनन्त निगोद को भी जाने तो उस जाननेवाले

को ज्ञान भी नहीं और सुख भी नहीं। आहाहा! उसे तो नहीं परन्तु उसके जाननेवाले को भी नहीं। आहाहा!

यहाँ तो शुद्ध चैतन्य भगवान पूर्णानन्द... संसारी लिये है, इसलिए सिद्ध भी लिये हैं। सिद्ध और आत्मा शुद्ध दोनों साथ में हैं। सिद्ध को शुद्ध को जाने उन सिद्ध को ज्ञान और सुख है और उन्हें अपने में जाने, उसे भी ज्ञान और सुख होता है। आहाहा! परन्तु वह जाना कब कहलाये? भगवान पूर्ण शुद्ध है, अपना आत्मा भी ऐसा ही पूर्ण शुद्ध है। आहाहा! उस शुद्ध की दृष्टि करने से शुद्ध का स्व का आश्रय करने से जो ज्ञान होता है, उसमें सुख होता है और ज्ञान होता है, उसे ज्ञान और सुख कहते हैं। शुद्ध को जाननेवाले को शुद्ध में ज्ञान और सुख है? जाननेवाले को ज्ञान और सुख है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : अकेले सिद्ध को जाने तो सुख है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख है, वह कहा जाता है परन्तु सिद्ध को कब जाना कहा जाये? अपने स्वरूप में शुद्धता सिद्ध समान मैं हूँ, ऐसी दृष्टि हो, तब जाना कहा जाये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तब तो हो गया। न हो तब तो कोई आवश्यकता नहीं। सिद्ध परद्रव्य है, परद्रव्य का विचार वह विकल्प है। दुःख है। आहाहा! मोक्षपाहुड़ में कहा न? मोक्षपाहुड़ की१६वीं गाथा। '**परदव्वादो दुग्गई**' भगवान तो अलौकिक बातें करते हैं! तेरे द्रव्य के अतिरिक्त दूसरे द्रव्य पर लक्ष्य जायेगा तो विकल्प ही उत्पन्न होगा। परन्तु वहाँ तो यह जानकर फिर आत्मा में घुस गया, उसकी बात ली है। आहाहा! मेरी पर्याय में सर्वज्ञपना नहीं और उन्हें सर्वज्ञपना हुआ तो कहाँ से हुआ? सर्वज्ञशक्ति में से हुआ। उन्हें सर्वज्ञपर्याय उसमें से हुई तो मेरी सर्वज्ञपर्याय भी मेरी सर्वज्ञशक्ति में से होगी, तो उसकी दृष्टि सर्वज्ञशक्ति के धारक आत्मा पर जाती है। ज्ञानचन्दजी! ऐसी बात है, बापू! धीरे-धीरे समझना। ऐसी बात है, बापू! क्या हो? आहाहा! अरे! लोग विरोध करे... भाई! चैतन्यस्वरूप भगवान पूर्णानन्द का नाथ! आहाहा! ऐसी आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञशक्ति। गजब बात है, बापू! इसमें से कितना निकालना? पूरा नहीं होता। समझ में आया? यह दसवीं (शक्ति पूरी) हुई, अब ग्यारहवीं लेते हैं।

नीरूपात्मप्रदेशप्रकाशमानलोकालोकाकारमेचकोपयोगलक्षणा स्वच्छत्वशक्तिः।

अमूर्तिक आत्मप्रदेशों में प्रकाशमान लोकालोक के आकारों से मेचक (अर्थात् अनेक-आकाररूप) ऐसा उपयोग जिसका लक्षण है, ऐसी स्वच्छत्वशक्ति। (जैसे दर्पण की स्वच्छत्वशक्ति से उसकी पर्याय में घटपटादि प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार आत्मा की स्वच्छत्वशक्ति से उसके उपयोग में लोकालोक के आकार प्रकाशित होते हैं।)।११।

अमूर्तिक आत्मप्रदेशों में... क्या कहते हैं अब? ग्यारहवीं शक्ति—गुण—सत्त्व—स्वभाव। आहाहा! कहते हैं कि भगवान तो अमूर्तिक आत्मप्रदेश है। आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं, वे तो अमूर्त हैं। उसमें कोई वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं है। **अमूर्तिक आत्मप्रदेशों में प्रकाशमान...** अमूर्त आत्मप्रदेशों में प्रकाशमान। आहाहा! **लोकालोक के आकारों से मेचक...** लोक और अलोक, इसमें जड़ भी आये। जड़ के भी वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श अमूर्त आत्मप्रदेश में ज्ञात होते हैं। मूर्त यहाँ नहीं आते। समझ में आया? स्वच्छत्वशक्ति का इतना स्वभाव है कि अपने आत्मप्रदेश अमूर्त होने पर भी मूर्त और अमूर्त सभी वस्तु को अपने में पर की अपेक्षा रखे बिना स्वच्छता के कारण परिणमन स्वच्छ—शुद्ध होता है।

मुमुक्षु : लोक-अलोक है तो होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। यह बात तो हो गयी है। दृष्टान्त देंगे, दर्पण का दृष्टान्त देंगे। आहाहा! यह तो सर्वज्ञ की बातें। भाई! आहाहा! भगवान के समवसरण में सौ इन्द्र जाते हैं, अरे! जिन्हें सिंह और बाघ, केसरिया सिंह जंगल में से सैकड़ों धीमे-धीमे चलते हुए समवसरण में जाते हैं। आहाहा! बाघ और काले नाग पच्चीस-पच्चीस हाथ के लम्बे, पचास हाथ के काले नाग जंगल में से चलते हुए समवसरण में जाते हैं। एक क्षण में ऊपर चले जाते हैं। बीस हजार सीढ़ियाँ होती हैं न? समवसरण में बीस हजार सीढ़ियाँ होती हैं। पगथिया समझे? सीढ़ियाँ। अन्तर्मुहूर्त में चले जाते हैं। आहाहा! वहाँ जाकर ऐसा सुने, वीतराग की वाणी! आहाहा! बाघ और सिंह, दो पैर नीचे और दो पैर ऐसे (ऊँचे)।

यहाँ कुत्ते नहीं बैठते? नीचे बैठते हैं दो पैर ऐसे रखकर। वहाँ भी बाघ और सिंह दो पैर नीचे (रखकर सुनते हैं)। आहाहा! वे समझ सके और सम्यग्दर्शन पा जाये। आत्मा है या नहीं? आत्मा है तो अन्दर पूर्णानन्द का नाथ पड़ा है न! ऐसा कहते हैं, वह समझ जाये? वह मनुष्य अभी नहीं समझते। तू मनुष्य है ही नहीं, तू तो आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? सम्यक्त्व प्राप्त कर जाए, ऐसे असंख्य बाघ और सिंह ढाई द्वीप के बाहर हैं। यह मनुष्यक्षेत्र है न, वह ढाई द्वीप है। पैंतालीस लाख योजन में मनुष्य हैं, पश्चात् असंख्य द्वीप समुद्र में मनुष्य नहीं। अन्तिम स्वयंभूरमण समुद्र में तो असंख्य समकिती और पाँचवें गुणस्थानवाले तिर्यंच, हजार योजन के लम्बे मगरमच्छ और पंचम गुणस्थान में आत्मअनुभव सहित शान्ति की वृद्धि करके पंचम गुणस्थान में विराजते हैं। आहाहा! वे तिर्यंच!

भगवान के आगम में पाठ है, स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्य मच्छ समकिती आत्मज्ञानी जातिस्मरणज्ञानवाले, अवधिज्ञानवाले, पंचम गुणस्थानवाले हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन उपरान्त स्व का आश्रय लेकर शान्ति प्रगट की है। उन्हें बारह व्रत का विकल्प हो, परन्तु वह कोई श्रावकपना नहीं। श्रावकपना तो अन्दर जो स्वरूप में रमणता और शान्ति बढ़ी, वह श्रावकपना है। ऐसे असंख्य तिर्यंच पड़े हैं। स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्य पशु (ऐसे हैं)। आहाहा! और द्वीप में बाघ, रीछ... रीछ समझते हो? रीछ। कौआ, तोता, चिड़िया, चिड़ा, भगवान आत्मा है न! वह कहाँ शरीर हैं? ऐसे समकिती असंख्य पड़े हैं। द्वीप में असंख्य थलचर है और पानी में असंख्य जलचर है। क्या कहा, समझ में आया? असंख्य द्वीप हैं, उसमें थलचर है। जलचर तो कहीं थल में रह नहीं सकते। थल में रहनेवाले नेवला, कोल, सर्प भी समकिती है। भले हैं थोड़े। एक समकिती और असंख्य मिथ्यादृष्टि। तो भी वहाँ असंख्य समकिती हैं। तिर्यंच की संख्या बहुत है। तिर्यंच पंचेन्द्रिय की संख्या बहुत है।

एक बार कहा था न? सबसे कम भव मनुष्य के करे (तो भी अनन्त किये)। अनन्त काल में एक मनुष्यभव हो तो भी अनन्त भव हो गये। सबसे कम। मनुष्य की संख्या की अपेक्षा प्रत्येक प्राणी ने नारकी के भव असंख्य गुने अनन्त हुए, ऐसा भगवान ने कहा है। क्या कहा? मनुष्य की अनन्त भव की संख्या से नारकी के भव की संख्या असंख्यगुणी अनन्त है। तो मनुष्य इतने हैं और असंख्यगुणे अनन्त कहाँ से आये? पशु में

से आते हैं। पशु की इतनी संख्या है, मनरहित पंचेन्द्रिय और मनवाले पंचेन्द्रिय की इतनी संख्या है कि वे सब नारकी में जाते हैं। आहाहा! मनुष्य का एक भव और असंख्य भव नारकी। मनुष्य मरकर जाए तो नारकी असंख्यगुना कहाँ से आये? भगवान शास्त्र में असंख्यगुना अनन्त भव कहते हैं। वह तिर्यंच की इतनी संख्या है कि उसमें से मरकर वहाँ जाते हैं। आहाहा! और नारकी के जो मनुष्यभव की अपेक्षा असंख्यगुणे अनन्त भव, उससे स्वर्ग के असंख्यगुण अनन्त भव। कहाँ से आये? नारकी मरकर तो स्वर्ग में जाते नहीं। मनुष्य तो अनन्तवें भाग है। नरक की संख्या असंख्यगुणी अनन्त है, उससे असंख्यगुणे अनन्त जीव अभी तक स्वर्ग में गये। कोई मनुष्य भी स्वर्ग में गये और तिर्यंच की संख्या बहुत है, उसमें से स्वर्ग में गये। कोई शुक्लेश्या, पद्मलेश्या आदि भाव होकर स्वर्ग में गये। आहाहा!

देव की संख्या नारकी के भव की अपेक्षा असंख्यगुणी अनन्त, असंख्यगुणी अनन्त तो वह कहाँ से आये? तिर्यंच में से आये। समझ में आया? आहाहा! अरे रे! यह देखो न! यह पशु दिखते हैं न! उस बैल को देखकर ऐसा हो जाता है... आहाहा! अरे रे! यह प्राणी कहाँ जायेगा? क्योंकि धर्म तो है नहीं, पुण्य है नहीं। आहाहा! बेचारा पच्चीस-पचास, साठ वर्ष (रहे)। बैल और पशु मरकर नरक में जाये या पशु मरकर बहुत तो पशु हो। आहाहा! तो संख्या पशु की बहुत है। तिर्यंच में है ऐसे प्रत्येक प्राणी ने अनन्त अवतार किये हैं। समझ में आया? यह तो प्रत्येक प्राणी ने ऐसा किया है।

मनुष्य के अनन्त भव किये, उससे असंख्यगुणे अनन्त नारकी के किये, उससे असंख्यगुणे अनन्त स्वर्ग के किये; उससे अनन्तगुणे अनन्त निगोद के किये। यह तिर्यंच में आता है। तिर्यंच में एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक सबको तिर्यंच कहते हैं। आहाहा! एक आत्मज्ञान बिना मर गया। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भगवान तो अमूर्त है न! तो मूर्त अन्दर में आता है? मूर्त की प्रतिछाया अन्दर पड़ती है? नीम देखे तो नीम है। इस ज्ञान में नीम का आकार आता है? वह तो जड़ का आकार है। वर्ण, गन्ध, रस, हरा रंग है, वह यहाँ आता है? परन्तु उस सम्बन्धी ज्ञेयाकाररूप से ज्ञान अपना अपने से परिणमन करता है। वह ज्ञेयाकार जड़ है, इसलिए यहाँ जड़रूप परिणमन हुआ, ऐसा नहीं है। वह मूर्त है तो यहाँ मूर्तरूप परिणमन होता है,

आत्मा अमूर्त है तो मूर्त कहाँ से हुआ ? इसे तो पहला सम्बन्ध ही कहाँ ? आहाहा !

भगवान आत्मा, जिसके प्रदेश अमूर्त हैं। **अमूर्तिक आत्मप्रदेशों में प्रकाशमान लोकालोक के आकारों...** आकार शब्द से वह वस्तु नहीं, परन्तु उस सम्बन्धी का विशेष ज्ञान। स्वच्छता को उस सम्बन्धी का और अपने सम्बन्धी का विशेष ज्ञान होता है। वह जड़ का आकार कहीं यहाँ आता है ? आकार तो वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, संस्थान जड़ है। यह पत्थर, लो ! उसका आकार अन्दर आता है ? आकार का अर्थ—स्व-पर अर्थ का ज्ञान, उसका नाम आकार कहते हैं। अर्थ विकल्प, स्व और परपदार्थ का ज्ञान हो, उसका नाम यहाँ आकार कहते हैं। आहाहा ! बात बात में अन्तर लगता है। मार्ग ऐसा है, बापू ! आहाहा !

मुमुक्षु : बात-बात समझने जैसी लगती है...

पूज्य गुरुदेवश्री : समझने जैसी....

अमूर्तिक आत्मप्रदेशों में प्रकाशमान लोकालोक के आकारों से मेचक... आहाहा ! मेचक अर्थात् अनेक आकार। स्व का और पर का आकार शब्द से (आशय है) ज्ञान। स्व और पर का ज्ञान, उसका नाम यहाँ आकार कहते हैं। ज्ञान को साकार कहते हैं और दर्शन को निराकार कहते हैं। ज्ञान को साकार कहते हैं तो पर का आकार आता है, इसलिए साकार कहते हैं ? परन्तु यह स्व-परप्रकाशक परिणति हुई, उसका नाम आकार कहते हैं। विशेषरूप परिणमन हुआ, उसका नाम आकार। आहाहा ! ऐसी बातें। भाई ! कान में तो पड़े, सुने तो सही। अरे रे ! चौरासी के अवतार कर-करके (मर गया)। यहाँ बड़ा अरबोंपति सेठ हो, वह मरकर दूसरे क्षण में नरक में जाये। तैंतीस सागर में ! आहाहा ! वह पीड़ा... उसकी पीड़ा को देखनेवाले को रुदन आवे, ऐसी पीड़ा। प्रभु ! ऐसी पीड़ा तूने सहन की, भाई ! आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ तुझे शरीर जरा ठीक हो और चले तो ऐसे... पोपटभाई ! शरीर जरा ठीक हो और निरोगी शरीर हो और पैसा हो, स्त्री-पुत्र कुछ ठीक हो तो ऐसे चले। क्या है परन्तु बापू तुझे ? भगवान ! यह पागलपन कहाँ से आया ? पागल है, तू पागल है। आहाहा ! शरीर जरा सुन्दर दिखायी दे, चमड़ी रूपवान दिखाई दे... सवेरे उठकर तेल चुपड़े, स्नान करके दर्पण में (देखे)... पागल है, पागल जैसे देखे। छोटा दर्पण हो, बड़ा होवे तो पूरा दिखाई दे, परन्तु

दर्पण छोटा हो तो ऐसा करके (ऐसे करे)। कंघा हो, कंघा... कंघा कहते हैं? (ऐसे-ऐसे करे...) क्या करता है तू? बापू! दांतिया को क्या कहते हैं? कंघा? अभी वह रखे। पहले ऐसा नहीं था। अभी जवान आदमी जेब में रखे और ऐसे किया करे... ऐसा करके... आहाहा! 'हाड जले ज्यों लकड़ी, केश जले ज्यों घास...' आहाहा! यह हड्डियाँ जैसे लकड़ियाँ जले, वैसे जलेगी, बापू! यह तो जड़ है। और तेल चुपड़ी हुई सब लपटियों और ऐसे लम्बे (बाल) वे जैसे घास जले, वैसे श्मशान में जलेगी, भाई! आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, प्रभु! तू अमूर्तिक है न! तेरे ज्ञान में यह मूर्त आता है तो वहाँ मूर्तपने का आकार आता है? समझ में आया? एक तो अमूर्तिक आत्मप्रदेश (में) प्रकाशमान। क्या? लोकालोक। लोक और अलोक में मूर्त और जड़ और सब आया। आहाहा! और आकार। आकार अर्थात् विशेषता। उसकी सब विशेषता। ज्ञान में ज्ञान की परिणति होती है। ज्ञेयाकाररूपी ज्ञान की परिणति। ज्ञेयाकार अर्थात् जड़ का आकार, ऐसा नहीं, परन्तु ज्ञेय का जो स्वरूप है, उस प्रकार से ज्ञान का परिणमन हो, उसे यहाँ आकार कहा जाता है। आहाहा! है? और वह भी **मेचक...** अनेकरूप हुआ। ज्ञान की पर्याय में एकरूप नहीं रहा। लोकालोक को जानने में अनेकरूप ज्ञानपर्याय हुई। आहाहा! **(अर्थात् अनेक-आकाररूप)...** ऐसा कहा है न? मेचक अर्थात् अनेक।

ऐसा उपयोग जिसका लक्षण है... आहाहा! ऐसा उपयोग—जानना, उपयोगरूपी जिसका लक्षण है। आहाहा! **ऐसी स्वच्छत्वशक्ति।** स्वच्छत्वशक्ति। पहली चितिशक्ति आयी थी। चिति में फिर भेद पाड़कर दर्शन, ज्ञान आये। उनमें आगे लेकर दर्शन में सर्वदर्शि और ज्ञान में सर्वज्ञान आयी। अब स्वच्छत्वशक्ति भिन्न लेते हैं। ऐसी कोई ज्ञान की निर्मलता है, ऐसा कहते हैं। ऐसी स्वच्छता निर्मलता है कि जिसमें लोकालोक मूर्त और अमूर्त के प्रकाशमान आत्मा के अमूर्त प्रदेश में ज्ञान होता है। समझ में आया?

दृष्टान्त से समझायेंगे। **(जैसे दर्पण की स्वच्छत्वशक्ति से...)** दर्पण होता है न? दर्पण—अरीसा। यह स्वच्छत्वशक्ति से **उसकी पर्याय में घटपटादि प्रकाशित होते हैं,...** घटपट वहाँ नहीं जाते है परन्तु घटपट सम्बन्धी की स्वच्छता वहाँ देखने में आती

है। समझ में आया ? दर्पण है। यहाँ अग्नि है और बर्फ है। अग्नि ऐसे-ऐसे होती है तो यहाँ दर्पण में ऐसे-ऐसे होता है। वह अग्नि नहीं है, वह स्वच्छत्वशक्ति का परिणमन दर्पण का है। अन्दर अग्नि दिखती है, वह अग्नि नहीं है। वह तो दर्पण की स्वच्छत्वशक्ति है। समझ में आया ? वह दर्पण की पर्याय है, अग्नि की पर्याय वहाँ नहीं आयी। अग्नि में हाथ जलता है, यहाँ हाथ लेकर देखे तो शरीर जलता है ? वह तो दर्पण की पर्याय है। उसी प्रकार भगवान स्वच्छता की पर्याय में लोकालोक, जैसे घटपट दर्पण में दिखते हैं, वे घटपट वहाँ नहीं हैं। वह तो स्वच्छता की पर्याय है। उसी प्रकार लोकालोक को जानने में अपनी स्वच्छता की पर्याय है। आहाहा! इसने दरकार नहीं की, ऐसी की ऐसी यह जिन्दगी व्यतीत की। अरे! मेरा क्या होगा ? मैं कहाँ जाऊँगा ? समझे ? आहाहा!

भगवान तो ऐसा कहते हैं, देखो! जैसे घटपटादि प्रकाशते हैं, **उसी प्रकार आत्मा की स्वच्छत्वशक्ति से...** स्वच्छत्व। अपनी निर्मलता के कारण से लोकालोक दिखता है। वह लोकालोक नहीं परन्तु लोकालोक सम्बन्धी अपनी स्वच्छता की पर्याय दिखायी देती है। समझ में आया ? विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १३, शक्ति- ११, १२ मंगलवार, (द्वितीय) श्रावण शुक्ल ९, दिनांक २३-०८-१९७७

समयसार, शक्ति का अधिकार है। यह आत्मपदार्थ है, वह अनन्त शक्ति का संग्रहालय है। जिसमें अनन्त शक्ति अर्थात् स्वभाव अर्थात् गुण, उसका वह संग्रह-आलय-स्थान है। आहाहा! इस आत्मा की अन्तर अनन्त शक्तियों का ज्ञान करके शक्तिवान पर दृष्टि करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है, धर्म की पहली शुरुआत यह है। यहाँ तो शक्ति का वर्णन है। समयसार में द्रव्यदृष्टि का अधिकार है तो शक्ति का अधिकार लिया है। उस शक्ति का आधार आत्मा है। शक्ति आधेय है, आत्मा आधार है। ऐसा भेद भी जिसमें नहीं। ऐसे आत्मा पर ज्ञान की पर्याय को झुकाने से अपनी ज्ञान की पर्याय में जो भान हुआ, उसकी प्रतीति करने का नाम सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन है। कठिन बात है। लोगों को यह मुश्किल पड़ती है। व्यवहार से नहीं होता, ऐसा कहो तो एकान्त है, ऐसा कहते हैं। निमित्त से उपादान में होता है, व्यवहार से निश्चय में होता है और क्रमसर होता है, उसमें किसी समय अक्रम भी होता है, अनियत भी होता है, ऐसा (वे) कहते हैं। अरे! भगवान!

मुमुक्षु : उन तीन बातों में एकाध बात सत्य है कि...

पूज्य गुरुदेवश्री : उनकी तीनों बातें झूठी हैं। वस्तुस्थिति ऐसी है, भाई! पहले आया न? कुम्हार घड़ा बनाता है, ऐसा तो हम देखते नहीं। ३७२ गाथा। मिट्टी से घड़ा होता है। ध्रुव उपादान तो मिट्टी है और क्षणिक घट की पर्याय है, वह क्षणिक उपादान है। आहाहा! उसमें निमित्त हो, परन्तु निमित्त पर में कुछ करता है, यह बात तीन काल में जैनदर्शन के स्वभाव में यह बात नहीं है। समझ में आया? ऐसा व्यवहार होता है, वह भी निश्चय की अपेक्षा से तो निमित्त है परन्तु शुभराग, वह आत्मा के स्वभाव की प्राप्ति में सहायक हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! लोगों को कठिन लगता है। सवेरे आया था न? कठिन तो है। आया था? सवेरे आया था। अतिकठिन तो है परन्तु अशक्य नहीं है। आहाहा! अतिकठिन, सवेरे आया था। कठिन है, इसलिए अभ्यास नहीं न, अनादि का अभ्यास शरीर मेरा, राग मेरा, पुण्य मेरा, पैसे मेरे—ऐसी दृष्टि में इसे भेद करने का तो अभ्यास नहीं और अभ्यास बिना यह प्राप्त होता नहीं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि उपादान से... यह स्वच्छत्वशक्ति चलती है। जैसे दर्पण में घटपट आदि प्रकाशित होते हैं, वे घटपट नहीं। वह दर्पण की पर्याय है। दर्पण में जो घटपट, अग्नि या बर्फ आदि सामने हो, पिघलता हो, ऐसा उसमें दिखाई दे तो कहीं बर्फ और घटपट उसमें नहीं है। वह तो दर्पण की स्वच्छता की अवस्था है। इसी प्रकार भगवान आत्मा अमूर्त असंख्य प्रदेशी वस्तु में लोकालोक का भास होता है, वह लोकालोक नहीं है। यहाँ स्वच्छत्वशक्ति की पर्याय में लोकालोक भासित होता है, वह स्वच्छत्वशक्ति का ही परिणमन है। लोकालोक से परिणमन है, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

वैसे तो शास्त्र में आता है कि लोकालोक में केवलज्ञान निमित्त है। सर्वविशुद्ध अधिकार में क्या कहा? पूरा लोकालोक। अनन्त सिद्ध, अनन्त निगोद के जीव, उसमें केवलज्ञान निमित्त है। उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि केवलज्ञान ने लोकालोक बनाया है। समझ में आया? केवलज्ञान की पर्याय लोकालोक में निमित्त है। इसका अर्थ ऐसा नहीं कि लोकालोक को ज्ञान की पर्याय ने बनाया है। है? दूसरी बात, लोकालोक का ज्ञान हुआ तो लोकालोक निमित्त है परन्तु उससे यहाँ स्वच्छता की पर्याय में प्रत्यक्ष अनुभव हुआ, उसका लोकालोक कर्ता नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह आया न?

अमूर्तिक आत्मप्रदेशों में प्रकाशमान लोकालोक के आकारों से... आकार अर्थात् विशेषता। यह जड़ के आकार कहीं इसमें नहीं आते परन्तु उन सम्बन्धी का जो इसका विशेष स्वभाव है, उसका यहाँ स्वयं से ज्ञान होता है। आहाहा! **मेचक...** अनेकरूप जो ज्ञान की स्वच्छता की पर्याय में अनेकरूपता आयी, वह अपनी पर्याय का स्वभाव है। अनेक है तो अनेकरूप का परिणमन हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! भारी बातें आयी हैं। **(अनेक-आकाररूप) ऐसा उपयोग जिसका लक्षण है, ऐसी स्वच्छत्वशक्ति।** यह स्वच्छत्वशक्ति अनन्त शक्ति में निमित्त है और अनन्त शक्ति में स्वच्छत्वशक्ति का रूप भी है। आहाहा! आहाहा! ज्ञान स्वच्छ, दर्शन स्वच्छ, आनन्द स्वच्छ, समकित स्वच्छ, त्रिकाली श्रद्धा स्वच्छ, शान्ति स्वच्छ, अस्तित्व स्वच्छ, वस्तुत्व स्वच्छ, कर्ता स्वच्छ, कर्म स्वच्छ, करण स्वच्छ, षट्कारक की शक्तियाँ भी स्वच्छ। आहाहा! यहाँ का लोगों को एकान्त लगता है, बेचारों को। क्या हो?

मुमुक्षु : व्यवहार से कुछ लाभ हो इतना...

पूज्य गुरुदेवश्री : इससे लाभ हो, भगवान ऐसा कहते है। रामकिशोर, क्या नाम है? रामकिशोर। हमारे प्रति भाई का पत्र आया है। जुगलकिशोरजी का (पत्र) आज आया है। अरे रे! प्रभु! क्या करते हैं? उन्हें तो तूफान करना है, विरोधियों को तूफान करना है और शिखरचन्दजी को भिण्ड से बुलाना है। भाई का पत्र आया है। तुम्हारा नाम भी लिखा है, भाई का लिखा है। वहाँ आया है। अरे! प्रभु! क्या करना? भाई! आहाहा!

तेरी अनन्त-अनन्त शक्तियाँ स्वच्छरूप परिणमे, ऐसा तेरा स्वभाव है। कोई राग अस्वच्छ है तो उसके कारण से परिणमे, यह लोगों को कठिन पड़ता है। समझ में आया? व्यवहार हो, निमित्त हो, उससे किसने इनकार किया? परन्तु निमित्त से पर में कार्य होता है (ऐसा नहीं है)। वह तो अभी कैलाशचन्दजी ने जैनसन्देश में स्वीकार किया है कि सोनगढ़वाले निमित्त को नहीं मानते, ऐसा नहीं है परन्तु निमित्त से पर में कुछ होता है, यह नहीं मानते। तो यह बराबर है। और क्रमबद्ध मानते हैं तो वह क्रमबद्ध यथार्थ है। पहले तो वे क्रमबद्ध को मानते नहीं थे। समझ में आया?

जब यहाँ (संवत्) २००३ के वर्ष में चर्चा हुई थी, तीस वर्ष हुए। प्रवचन हॉल में, ३२ पण्डित आये थे न? विद्वत् परिषद भरी थी। तब लालबहादुर ने क्रमबद्ध स्वीकार किया था, अब वे बदल गये। और जगनमोहनलालजी ने उस समय क्रमबद्ध नहीं मानते थे। अब माना कि बात तो ऐसी है। द्रव्य की पर्याय व्यवस्थित स्वयं से क्रमसर होती है। क्रमवर्ती कहो, अक्रमवर्ती गुण और पर्याय क्रमवर्ती। क्रमवर्ती का अर्थ क्रम से वर्तनेवाले। समझ में आया? ऐसी पर्याय क्रम-क्रम से होती है, वह निश्चय है। निमित्त हो परन्तु निमित्त से कोई पर्याय यहाँ रची है और नयी पर्याय हुई, वह होनेवाली थी, वह नहीं हुई और निमित्त आया तो दूसरी हुई, ऐसा नहीं है।

यहाँ तो भगवान आत्मा... आहाहा! स्वच्छत्वशक्ति **(स्वच्छत्वशक्ति से उसके उपयोग में लोकालोक के आकार प्रकाशित होते हैं।)** आहाहा! लोकालोक निमित्तरूप से हो परन्तु स्वच्छता की परिणमन शक्ति है, उसमें निमित्त कुछ करता नहीं। आहाहा! समझ में आया? इतनी बात यहाँ रखते हैं। अब बारहवीं शक्ति। यह सूक्ष्म शक्ति है, बहुत सरस! बारह, बारह।

स्वयम्प्रकाशमानविशदस्वसम्वित्तिमयी प्रकाशशक्तिः।

स्वयं प्रकाशमान विशद (-स्पष्ट) ऐसे स्वसंवेदनमयी (-स्वानुभवमयी) प्रकाशशक्ति।१२।

स्वयं प्रकाशमान विशद (-स्पष्ट) ऐसे स्वसंवेदनमयी (-स्वानुभवमयी) प्रकाशशक्ति। गजब काम किया है! आहाहा! भगवान आत्मा को, प्रभु! एक बार सुन तो सही! यहाँ तेरी स्वतन्त्रता की पुकार है। समझ में आया? आहाहा! दुनिया माने, न माने उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। सत्य को संख्या की आवश्यकता नहीं कि बहुत माने तो वह सत्य और थोड़ा माने तो वह असत्य, ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा! क्या कहते हैं?

प्रभु! तुझमें ऐसी एक शक्ति है, स्वयं अपने से प्रकाशमान स्पष्ट। आहाहा! आत्मा प्रकाशशक्ति के कारण से अपने में प्रत्यक्ष अपना स्वसंवेदन ज्ञान होता है, वह प्रकाशशक्ति के कारण से होता है। आत्मा प्रत्यक्ष अपने से स्वयं प्रत्यक्ष होता है। स्व—अपने से, सं—प्रत्यक्ष वेदन होता है। ऐसी यह शक्ति है। आहाहा! यह राग की अपेक्षा यहाँ प्रत्यक्ष वेदन होता है, ऐसा नहीं है। निमित्त की अपेक्षा से प्रत्यक्ष वेदन होता है, ऐसा नहीं है। जरा सूक्ष्म बात है, भगवान!

प्रकाशशक्ति स्वयं अपने से स्वसंवेदनमयी प्रत्यक्ष वेदनमयी इस शक्ति का कार्य है। सम्यग्दर्शन में मतिज्ञान और श्रुतज्ञान द्वारा इस प्रकाशशक्ति के कारण से, और इस प्रकाशशक्ति का रूप अनन्त शक्तियों में है। आहाहा! यह श्रुतज्ञान और मतिज्ञान में भी प्रत्यक्ष होने की शक्ति है। सूक्ष्म बात है। परोक्ष रहना, वह इसका स्वभाव ही नहीं है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या कहते हैं? स्वयं अपने से प्रकाशमान प्रत्यक्ष। स्पष्ट अर्थात् प्रत्यक्ष। स्पष्ट प्रत्यक्ष ऐसी स्वसंवेदनमयी—स्वानुभवमयी प्रकाशशक्ति। आहाहा! अपने आत्मा का स्व-आनन्द का अनुभव होना, वह इसकी शक्ति का ही कार्य है। आहाहा! व्यवहार है तो स्वानुभवशक्ति काम करती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू!

अनन्त काल संसार... आहाहा! अरे! रुलते भटकते चौरासी के अवतार में मनुष्यपना प्राप्त हुआ, उसमें भी जैनदर्शन का सम्प्रदाय, वाड़ा तो मिला। समझ में आया? उसमें यह

बात न समझ में आये, प्रभु! आहाहा! पहली श्रद्धा में भी यह बात न रुचे, उसे अनुभव तो कहाँ से होगा? आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो परमात्मा पुकार करते हैं, परमात्मा की यह आवाज है, सन्त आढ़तिया होकर परमात्मा का माल जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! समझ में आया? प्रभु! तुझमें एक शक्ति ऐसी है कि तू तुझसे प्रत्यक्ष हो, ऐसी तेरी एक शक्ति है। समझ में आया? वेणीप्रसादजी! यह तो जिन्दगी में कभी सुना भी नहीं। यह कमाना और खाना और पीना और भोगना। हो गया, जिन्दगी उसमें चली गयी। अर र र! प्रभु का—आत्मा का कार्य जो है, वह कार्य पड़ा रहा। आहाहा! बहुत तो राग, दया, दान, व्रत और भक्ति पुण्य की क्रिया करे तो समझ में आये कि हमारे कुछ धर्म हुआ। भगवान! तुझमें एक शक्ति भगवान ने देखी है। आहाहा! बारहवीं शक्ति।

स्वयं प्रकाशमान—अपने से प्रकाशमान आत्मा। प्रवचनसार की १७२ गाथा है, उसमें अलिंगग्रहण आया है न? अमृतचन्द्राचार्य ने एक अलिंगग्रहण के बीस अर्थ किये। उसमें एक छठवाँ बोल है। अलिंगग्रहण। वह यह। पहले उसमें ऐसा है कि इन्द्रिय से आत्मा ज्ञात नहीं होता और इन्द्रियों से आत्मा जानता भी नहीं। इन्द्रियप्रत्यक्ष का वह विषय ही नहीं, यह तीसरा बोल है। इन्द्रिय से आत्मा (ज्ञात नहीं होता)। मन और इन्द्रियों से आत्मा ज्ञात ही नहीं होता। आहाहा! और इन्द्रिय से जानने का काम आत्मा करता ही नहीं। और इन्द्रिय प्रत्यक्ष का विषय वह आत्मा नहीं; वह तो अनीन्द्रिय भगवान है। आहाहा! इन्द्रिय प्रत्यक्ष का आत्मा विषय नहीं होता कि इन्द्रिय से प्रत्यक्ष ज्ञात हो। आहाहा! ये तीन बोल हुए। छठवाँ बोल कहना है।

दूसरे द्वारा अनुमान से आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। एक अलिंगग्रहण। अ लिं ग ग्र ह ण—छह अक्षर हैं, इसके बीस अर्थ किये। सब प्रकाशित हो गया है। आहाहा! यह क्या कहा? दूसरे द्वारा अनुमान से आत्मा ज्ञात होता है, ऐसा नहीं है। और आत्मा स्वयं अनुमान से पर को जाने, ऐसा आत्मा नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! यह तो प्रत्यक्ष की बात आयी न! अरे रे! ऐसा वीतरागमार्ग। आहाहा! परमेश्वर का विरह पड़ा और सर्वज्ञ की पर्याय प्रगट होने का विरह पड़ा। आहाहा! यह बड़ी गड़बड़ खड़ी हुई।

यहाँ कहते हैं, पर से अनुमान से ज्ञात हो, वह आत्मा नहीं है। और आत्मा अपने अनुमान से पर को जाने, ऐसा नहीं है। आहाहा! प्रत्यक्ष कहा न? छठवाँ बोल ऐसा है, भगवान आत्मा अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। यह छठवाँ बोल है। ऐसे बीस बोल हैं, बीस। अलिंगग्रहण के बीस बोल हैं। समझ में आया? आहाहा! यहाँ यह कहते हैं, स्वयं अपने से प्रत्यक्ष होता है, ऐसा उसका स्वभाव-शक्ति ही ऐसी है। आहाहा! अरे! बात सुनने में कठिन पड़े, वह कब विचार में ले और कब अन्तर अनुभव प्रत्यक्ष करे? आहाहा! समझ में आया? उसके तो बीस बोल हैं। यह तो जरा छठवाँ बोल इसके साथ मिलाने के लिये कहा।

इसमें छठा बोल ऐसा है कि आत्मा अपना स्वभाव, शुद्ध स्वभाव पुण्य-पाप से नहीं, इन्द्रिय से नहीं, शुद्ध स्वभाव से ज्ञात होता है, ऐसा वह प्रत्यक्ष ज्ञाता है। यह शक्ति। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता है, वह प्रकाशशक्ति के कारण से?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रकाशशक्ति का स्वरूप है। समझ में आया? बापू! भगवान! यह तो परमात्मा त्रिलोकनाथ के वचन हैं। उन महापुरुष वीतराग के वयन का नकार नहीं होता, प्रभु! आहाहा! समझ में आया? लोक में भी अपने पुत्र को कोई कन्या दी हो। एक ही लड़की हो, पैसेवाला हो और कन्या दी हो तो पचास-सौ कन्या नारियल लेकर आवे। हमारी कन्या के साथ सगाई करो। सगपण कहते हैं? क्या कहते हैं? सगाई करो। उसमें से वह बड़ा करोड़पति हो, उसकी कन्या जरा हल्की-फुल्की हो..., मोळीपातळी समझे? बहुत रूपवान न हो तो भी वह करोड़पति की कन्या पास करता है। क्योंकि कन्या विवाह में पाँच-पच्चीस लाख लायेगी और उसका बाप मर जायेगा तो सारा उत्तराधिकार भी मिलेगा। तुम्हारा काम बताते हैं।

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा... आहाहा! समझ में आया? सर्वज्ञ परमात्मा के संदेश हैं, उस संदेश को स्वीकार, न नहीं कर, प्रभु! आहाहा! समझ में आया? तेरी सगाई करने का वीतराग का संदेश है। 'समकित साथ सगाई कीधी, सपरिवार सु गाढी' आनन्दघनजी में ऐसे शब्द हैं। श्वेताम्बर में हुए हैं न? सब देखा है। श्वेताम्बर के करोड़ों

श्लोक देखे हैं, ग्रन्थ देखे हैं, यशोविजय का सब देखा है, परन्तु यह वस्तु कोई अलग है। समझ में आया ? आहाहा! क्या कहते हैं ?

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा की दिव्यध्वनि में तेरे ऊपर बड़ा सन्देश आया कि तेरी सगाई कब हो ? कि तू प्रत्यक्ष आत्मा को जाने, तब आत्मा के साथ तेरी सगाई हुई। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो अनुभव में होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो यही है। यह तो अनुभव की... वलुभाई! यह अलग प्रकार का दवाखाना है।

मुमुक्षु : हमेशा का रोग मिट जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिट जाये, बापू! वहाँ अलिंगग्रहण में सातवें बोल में तो ऐसा भी कहा है कि आत्मा के उपयोग में परज्ञेय का आलम्बन है ही नहीं। स्वच्छत्वशक्ति आयी न ? क्या कहा ?

अपना भगवान आत्मा का ज्ञान का उपयोग जो होता है, उस उपयोग में परज्ञेय का आलम्बन है ही नहीं। आहाहा! सातवाँ बोल है। बीस बोल हैं, सब कण्ठस्थ हैं। सम्प्रदाय में भी श्वेताम्बर शास्त्र के छह-सात हजार श्लोक कण्ठस्थ किये थे। पहले दीक्षा उसमें हुई थी न ? पिताजी का धर्म स्थानकवासी था, उसमें जन्म हो गया। (संवत्) १९७०-७१ में दो वर्ष में छह-सात हजार श्लोक कण्ठस्थ किये थे। कण्ठस्थ, हों! ऐसे पानी की पूर की भाँति चले, ऐसी भाषा थी। परन्तु वह सब सत्य बात नहीं। आहाहा!

यह तो एक-एक शब्द, देखो! ओहोहो! भगवान आत्मा! उपयोग आया था न उसमें ? स्वच्छत्वशक्ति में उपयोग में लोकालोक के आकार (ज्ञात हो)। उस उपयोग में, आत्मा के जानन उपयोग में स्वच्छत्वशक्ति के उपयोग में ज्ञेय लोकालोक का आलम्बन है ही नहीं। समझ में आया ? आहाहा! पोपटभाई! यह अलग प्रकार की बात है, भगवान! आहाहा! अरे रे! क्या करे ? भगवान! तेरा स्वभाव ऐसा है तो तुझे क्या ऐसा मानना है कि राग करते-करते होगा ? तेरी शक्ति ऐसी है कि प्रत्यक्ष होगा, स्वयंसिद्ध प्रत्यक्ष होगा, ऐसा तेरा स्वभाव है। आहाहा! धन्नालालजी! नहीं; तेरे उपयोग में लोकालोक ज्ञेय का आलम्बन

नहीं, नाथ! ऐसा तू स्वतन्त्र है। तेरे ज्ञान का उपयोग केवलज्ञानमयी स्वच्छ है, उसमें लोकालोक है, ऐसा जो ज्ञेय, उसका उपयोग में आलम्बन है ही नहीं। आहाहा! ज्ञानचन्दजी! आहाहा! यह दिगम्बर सन्तों की वाणी एक से अधिक एक देखो! रामबाण! आहाहा! अरे रे! भाई!

मुमुक्षु : ऐसा अर्थ तो आप कर सकते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ सुना है न! भगवान के पास सब सुना है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, स्वयं प्रकाशमान। स्वयं कहने से पर की अपेक्षा है ही नहीं। समझ में आया? अपना अनुभव करने में राग और व्यवहार की अपेक्षा है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। अपने आनन्द का प्रत्यक्ष अनुभव करना, वह स्वयं अपनी शक्ति है। आहाहा! समझ में आया? सवेरे तो कहा न, जरा कठिन तो है। आया था न? कितना पाठ? ६०वाँ कलश (कलश टीका) **ऐसा अनुभव करना बहुत ही कठिन है।** सवेरे आया था, भाई! **अनुभव करना बहुत ही कठिन है। उत्तर ऐसा है कि साचा ही कठिन है।** बात तो सच्ची है, भगवान! परन्तु तेरा स्वभाव है, वह अशक्य नहीं होता, कठिन हो परन्तु अशक्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया? है? अभी कल आयेगा। **साचा ही कठिन है। परन्तु वस्तु का शुद्धस्वरूप विचारने पर भिन्नपनेरूप स्वाद आता है।** समझ में आया? वह यह। बारहवीं शक्ति। वस्तु का स्वरूप विचारने पर भिन्नपने का स्वाद आता है। आहाहा! समझ में आया? सवेरे आया था, भाई!

उसी प्रकार यहाँ यह बात कठिन है, परन्तु अशक्य नहीं। कठिन है परन्तु अशक्य नहीं। शक्य है, उसकी शक्ति ऐसी है तो शक्य है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा न समझ सके, ऐसी चीज़ ही नहीं है, प्रभु! अभ्यास नहीं और यह प्रथा ही पूरी लोप हो गयी। ऐसी बात है। लो! यह सब सेठिया कहते हैं अभी तक लोप हो गयी थी। ऐसा मार्ग है, प्रभु! आहाहा! रामजीभाई ने कहा था कि शक्ति का वर्णन करना। मुझे भी विचार तो आया था कि चलता विषय है, वह जरा थोड़ा साधारण पड़ेगा। समयसार चलता था न? शक्ति लेना, ऐसा रामजीभाई ने कहा। आहाहा! थोड़ा लिखा बहुत करके

जानना, नाथ! थोड़े शब्द में बहुत कहा है। आहाहा!

प्रभु! तुझमें एक शक्ति अर्थात् गुण अर्थात् स्वभाव प्रकाशशक्ति ऐसी पड़ी है... आहाहा! कि उसके कारण से स्वसंवेदन में आत्मा प्रत्यक्ष हो, वह तेरा स्वरूप और कार्य है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा काम है। उसमें प्रत्यक्ष होना, यह तो उसकी शक्ति का कार्य है और शक्ति का स्वरूप है। यह कहते हैं कि राग से होता है और निमित्त से होता है, वह तो है ही नहीं। हो, निमित्त हो, व्यवहार होता है, निमित्त होता है, परन्तु उससे होवे तो परोक्ष हो गया। समझ में आया?

यहाँ तो प्रत्यक्ष भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु, प्रत्यक्ष होने की शक्ति है। प्रत्येक शक्ति में उसका रूप है। प्रत्येक शक्ति प्रत्यक्ष हो, ऐसा ही उसका स्वरूप है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानशक्ति में भी प्रत्यक्ष होना, वह शक्ति है। प्रभु... प्रभु! आहाहा! और दर्शनशक्ति में भी प्रत्यक्ष होना, वह उसका स्वभाव है और आनन्द में आनन्द का प्रत्यक्ष वेदन आना, वह आनन्द का स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है, भगवान! भाषा कहीं ऐसी कठिन नहीं है। आहाहा!

कहते हैं, यहाँ थोड़े में बहुत भरा है! आहाहा! भगवान के तो 'सहेजे समुद्र उल्लस्यो जेमां रतन तणाणा जाये' गुजराती है। सहजरूप से समुद्र उल्लसित हुआ है, उसमें रत्न बहते जाते हैं। 'भाग्यवान कर वावरे एनी मोतिये मुठीयुं भराय, भाग्यहीन वावण वारे तो एने शंखले मुठीयुं भराय।' आहाहा! समझ में आया? आहाहा! गजब बात है! बारहवीं शक्ति है। है न? भाई! भगवान! पाटनीजी! है इसमें? यह कोई सम्प्रदाय की बात नहीं। यह कोई सोनगढ़ की बात है? सोनगढ़ की है, ऐसा कहते हैं। अरे! भगवान! यह तो भगवान के घर की बात है। सेठियों को भी ना पाड़ने का कहे तो कहे ना नहीं, हाँ पाड़ो। आहाहा! कहाँ गये? यह रहे। मनसुख को पहिचानते हो? हमारे बुआ का लड़का था। सात-आठ पीढ़ी में। उनका पुत्र हमारा भागीदार था। इनके पिताजी और बड़े भाई, वे हमारे भागीदार थे। इनके पिताजी और मेरे बड़े भाई भागीदार थे। दो दुकानें थीं। यह मनसुखभाई आये हैं। एक आया है। दो व्यक्ति धन्धे में... इसे और एक लड़का है तो वह काम करता है। आहाहा! बड़ा व्यापार है, पैसा है। धूल है। आहाहा!

भगवान! तेरी शक्ति में तो ऐसी लक्ष्मी पड़ी है... आहाहा! कि तेरा आत्मा प्रत्यक्ष आनन्द का वेदन करे, ऐसी तुझमें लक्ष्मी पड़ी है। आहाहा! हाँ तो कर, नाथ! एक बार हाँ कर तो हालत होगी। हाँ कर तो हालत होगी। लत। समझ में आया? आहाहा! गजब बात है। बारहवीं शक्ति। स्वयं प्रकाशमान। आहाहा! अपने आनन्द का, ज्ञानस्वरूप का और अनन्त गुण का प्रत्यक्ष वेदन होना, वह स्वयं प्रकाशमान प्रकाशशक्ति में ताकत है। आहाहा! वह प्रत्यक्ष आत्मा स्व-अपने को, सं—प्रत्यक्ष वेदन में आवे, ऐसी ही उसकी शक्ति और स्वभाव है। आहाहा! यह माने नहीं और कहे, यह एकान्त हो जाता है। अरे! प्रभु! सुन तो सही, धन्नालालजी! अन्दर है या नहीं? है, उसका अर्थ होता है या नहीं? आहाहा!

दिव्यध्वनि में आता है, वह कहीं भगवान का ज्ञान है, इसलिए दिव्यध्वनि में आता है, ऐसा नहीं है। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का अर्थ ज्ञान निमित्त है, योग निमित्त है, परन्तु दिव्यध्वनि उठती है, स्वयं के उपादान भाषावर्गणा में से उत्पन्न होती है। समझ में आया? चार प्रकार की भाषा—वचनवर्गणा है। सत्यभाषा, असत्यभाषा, मिश्रभाषा, व्यवहारभाषा। चार प्रकार की वचनवर्गणा भिन्न-भिन्न है। एक ही वचनवर्गणा है, ऐसा नहीं है, चार प्रकार की भाषा की वर्गणा भिन्न-भिन्न है। आहाहा! उसमें से भगवान के पास तो अकेला केवलज्ञान है। उसमें तो सत्य (सच्ची) भाषा निकलनी चाहिए। निमित्तरूप से, निमित्तरूप से। भाषा तो भाषा है, परन्तु भाषा में तो सत्य और व्यवहार दो ही आते हैं। क्या कहा? भाई! समझ में आया? केवलज्ञान है, उसमें तो व्यवहार है ही नहीं। केवलज्ञान है तो उसमें अकेला सत्य निकलना चाहिए। भले निमित्तरूप भाषा हो। परन्तु भाषा की योग्यता ही ऐसी है कि सत्य और व्यवहाररूप से बतलाती है, ऐसी ताकत भाषा में है। आहाहा! भाई! क्या कहा? समझ में आया? आहाहा! क्या कहा?

यहाँ प्रत्यक्ष हुआ न? वहाँ भी भाषा की पर्याय स्वतन्त्र अपने से होती है। केवलज्ञान है, वह निमित्त हो, परन्तु निमित्त उसका कर्ता नहीं है। भाषावर्गणा की पर्याय का कर्ता आत्मा नहीं, केवली नहीं। और केवली का योग भी भाषावर्गणा का कर्ता नहीं। आहाहा! जब भाषा की वर्गणा भी स्वयं अपनी पर्याय के योग के काल में, स्वकाल में, उस काल में जो भाषा होनी है, वह स्वकाल में भाषा की पर्याय जड़ में होती है। आहाहा! उसका

आत्मा कर्ता नहीं और आत्मा ने प्रयोग करके भाषा बनायी नहीं। आहाहा! भाषा में स्व–पर कहने की ताकत है और आत्मा में स्व–पर जानने की ताकत है। दो बातें हुई। आत्मा में स्व–पर जानने की स्वयं से ताकत है, पर है तो (जानता है), ऐसा नहीं। अपने में ही अपने से स्व–पर जानने की ताकत है। स्व–पर कहने की ताकत नहीं। और स्व–पर कहने की ताकत भाषा में है तो वहाँ स्व–पर जानने की शक्ति नहीं है। समझ में आया? आहाहा! मार्ग तो देखो प्रभु का! एक–एक पर्याय स्वतन्त्र! आहाहा! बाहर की तेरी धूल–लक्ष्मी दो–पाँच करोड़ हो और धूल करोड़ हो, उसमें क्या आया? वह तेरी लक्ष्मी है? वह मेरी है, यह तो भ्रान्ति, महामिथ्या भ्रम, पाखण्ड है। आहाहा!

मुमुक्षु : जितने दिन रहे, उतने दिन तक तो इसकी है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय भी इसकी नहीं। जितने दिन साथ में रहे, मरे नहीं तब तक रहे, उतने दिन तो इसकी है न? कहो, सेठ! माणेकचन्दजी कहते हैं। जितने दिन रहे, उतने दिन पुत्र है या नहीं? ऐसा कहते हैं। यहाँ तो भगवान... आहाहा! राग भी जहाँ इसका नहीं, वहाँ परचीज़ तो भिन्न (है)। यह तो पर्याय के सम्बन्ध में राग, अशुद्धता होती है। यह राग भी आत्मा का नहीं, तो वह तो भिन्न क्षेत्र में और भिन्न प्रदेश में रहनेवाली वस्तु है। आहाहा! समझ में आया? वह मेरी कहाँ से होगी? प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि भावश्रुतज्ञान से बात सुनी कि यह ऐसा कहते हैं कि तेरी शक्ति में स्व प्रत्यक्ष होना, वह तेरी शक्ति है। ऐसी भगवान की वाणी कान में पड़ी और अपने में अपने से ज्ञान हुआ, भाषा से नहीं। वह ज्ञान भी परोक्ष है। परोक्ष रहना, वह इसका स्वभाव नहीं। आहाहा! क्या कहा यह? भगवान की वाणी—दिव्यध्वनि सुनने को मिली, समवसरण में अनन्त बार गया, सुनी तो उस समय भी सुनने से यहाँ ज्ञान की पर्याय हुई नहीं। भले परलक्ष्यी ज्ञान है। उस परलक्ष्यी ज्ञान में भी सुनने से परलक्ष्यी ज्ञान हुआ है, ऐसा नहीं, वह तो अपना अपने उपादान से हुआ है। परन्तु वह पर्याय भी अपनी नहीं। क्योंकि उसमें आत्मा प्रत्यक्ष नहीं होता तो वह पर्याय अपनी नहीं। आहाहा! कहो, मणिभाई! ऐसा है। बड़े भाई क्यों नहीं आये? काम में होंगे। आहाहा! लोग कहाँ से आये हैं, देखो न! जिज्ञासु सैकड़ों कोस दूर से आये हैं न! मार्ग तो प्रभु... आहाहा!

कहते हैं कि शास्त्र से ज्ञान हुआ, ज्ञान हुआ है स्वयं से, यह अक्षर है न? इनका ज्ञान होता है न? वह अक्षर से नहीं होता, अपनी पर्याय से हुआ है, परन्तु वह पर्याय भी परोक्ष है। उससे आत्मा प्रत्यक्ष नहीं हुआ। आहाहा! समझ में आया? और परोक्ष रहना उसका स्वभाव नहीं है। आहाहा! रानियाँ पर्दे में रहती हैं न? रानी... रानी। ओजल कहते हैं? पर्दे में रहती है, पर्दे में। वे पर्दे में से बाहर निकले तो लोग ऐसे प्रसन्न-प्रसन्न हो जाते हैं। भावनगर की रानी थी। एक बार पर्दे में से निकली। पच्चीस लाख की आमदनी थी, अभी एक करोड़ की है। उस समय पचास-साठ वर्ष पहले पच्चीस लाख की (आमदनी थी), अब एक करोड़ है। कृष्णकुमार राजा अपने यहाँ व्याख्यान में आये थे। उनका पुत्र भी आया था। वह करोड़ों की आमदनी हो या पच्चीस लाख की हो, वह कहीं आत्मा का कार्य नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो दूसरी बात कहनी है कि शास्त्र सुना। वह ज्ञान की पर्याय स्वयं से हुई, अक्षर से नहीं। इसी तरह ज्ञान की पर्याय भगवान की दिव्यध्वनि सुनी और यहाँ अपने से पर्याय हुई, वह पर्याय हुई, वह वस्तु की यथार्थ पर्याय नहीं है। पराश्रित है और जिसमें आत्मा प्रत्यक्ष नहीं हुआ, वह पर्याय अपनी नहीं है। आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया? उसमें प्रत्यक्ष होने की शक्ति है तो भी द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों में व्यापती है। पर के लक्ष्य से परलक्ष्यी ज्ञान की पर्याय हुई, वह तो अकेली पर्याय में है, समझ में आया? और यह स्वसंवेदनमयी प्रत्यक्ष होने की जो शक्ति है, ऐसे शक्तिवान की जहाँ दृष्टि हुई, अन्तर में जहाँ शक्तिवान का स्वीकार हुआ तो द्रव्य, गुण में अनादि से शक्ति थी, परन्तु जहाँ स्वीकार हुआ तो पर्याय में स्वसंवेदन प्रत्यक्ष हो गया। सूक्ष्म बात तो है, भाई! आहाहा! समझ में आया?

स्वयं, यहाँ वजन दो बातों पर है। स्वयं अपने से प्रकाशमान, यह तो ठीक परन्तु **विशद (-स्पष्ट)**... स्पष्ट। अपनी शक्ति में आत्मा का स्पष्ट ज्ञान प्रत्यक्ष होना, ऐसी शक्ति है। आहाहा! समझ में आया? धीरे-धीरे समझना, यह कोई भाषण नहीं है। ऐ... बलुभाई! यह तो भगवान की दिव्यध्वनि! आहाहा! क्या आचार्यों ने काम किया है! अमृतचन्द्राचार्य। मूल श्लोक है कुन्दकुन्दाचार्य के और टीका तथा यह शक्तियाँ बनायीं अमृतचन्द्राचार्य ने।

आहाहा! हजार वर्ष पहले चलते सिद्ध-समान सन्त थे। आहाहा! मुनिपना अर्थात्... आहाहा! ज्ञायके मुनिपना। जाननशक्ति प्रगट हुई, प्रगट हुई जाननशक्ति, उसे मुनि कहते हैं। मुनते इति मुनि। आत्मा ज्ञायकभाव से जाने, वह मुनि। आहाहा! राग से और निमित्त से नहीं, वह आत्मा में स्वभाव नहीं है। आहाहा! भारी कठिन। समझ में आया?

एक जगह ऐसा आता है कि समकिती को गृहस्थाश्रम में ऐसा उपयोग होता नहीं। ऐसा पाठ आता है। सम्यग्दृष्टि को शुद्धोपयोग नहीं होता। ऐसा पाठ है। प्रवचनसार में टीका में है। वह कौन सा उपयोग नहीं होता? मुनि को जो शुद्धोपयोग होता है, वैसा उपयोग नहीं होता, यह बात है। समझ में आया? भाई! आता है न? सर्वविशुद्धि। टीका में है। सम्यग्दृष्टि को गृहस्थाश्रम में शुद्धोपयोग नहीं होता, ऐसा कहा है तो वहाँ से पकड़ लेते हैं, देखो! शुद्धोपयोग गृहस्थाश्रम में नहीं है। उसे तो शुभ उपयोग ही होता है।

यहाँ तो कहते हैं कि गृहस्थाश्रम में समकिती को भी स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता है, ऐसी उसमें शक्ति है और उसका परिणमन भी ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? न्याय, लॉजिक से, युक्ति से तो समझ में आये ऐसी वस्तु है। यह कहीं ऐसा का ऐसा मान लेना, ऐसी कोई वस्तु नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : स्वसंवेदन प्रत्यक्ष शुद्धोपयोग की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शुद्धोपयोग है। वह तो मुनि के योग्य शुद्धोपयोग जो तीन कषाय के अभाववाला उपयोग हो, वह उपयोग गृहस्थाश्रम में नहीं होता, ऐसा बतलाना है। यहाँ यह क्या कहा? यह शक्ति समकिती को है या नहीं? है तो समकिती को स्वसंवेदन प्रत्यक्ष हुआ या नहीं? आहाहा! तो स्वसंवेदन प्रत्यक्ष हुआ, वह शुभयोग है या शुद्धोपयोग है? समझ में आया? शुद्धोपयोग है। सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में भले राज्य में हो, छह खण्ड का राज्य चक्रवर्ती को दिखता है परन्तु उसके वे स्वामी नहीं।

४७ शक्तियों में अन्तिम शक्ति है। स्वस्वामीसम्बन्धशक्ति। वह चक्रवर्ती छह खण्ड और छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में दिखाई दे परन्तु वह अपने शुद्ध द्रव्य, शुद्ध गुण और पर्याय शुद्ध वेदन की है... समझ में आया? उसके वे स्वामी हैं। राग के स्वामी नहीं तो पर का स्वामी, स्त्री का स्वामी-फामी कहाँ हुआ? आहाहा! समझ में आया?

अनन्त शक्ति में प्रत्यक्ष होने का रूप है। ज्ञान भी ज्ञान प्रत्यक्षरूप से हो, दर्शन भी प्रत्यक्षरूप से हो, आनन्द भी प्रत्यक्षरूप से हो। आहाहा! यह तो भण्डार है। कितना निकाले, उसका पार नहीं आवे, ऐसी बात है। आहाहा! एक 'जगत' शब्द पड़ा होवे तो जगत का विस्तार करे तो कितना हो? छह द्रव्य और उसके गुण और उसकी पर्याय और अनन्त सिद्ध और अनन्त निगोद... ऐसे एक शक्ति का बहुत विस्तार है। समझ में आया? आहाहा! दुनिया मानो, न मानो, दुनिया में बाहर में बात प्रसिद्ध में आवे, न आवे परन्तु वस्तु तो ऐसी है। समझ में आया? आहाहा!

स्वयं अपने से प्रकाशमान। एक बात। स्पष्ट पर की अपेक्षा बिना, ऐसी स्वसंवेदनमयी स्व—अपने, सं—प्रत्यक्ष वेदनमयी—स्वानुभवमयी, स्वानुभवमयी। देखो! स्वसंवेदन का अर्थ किया—स्वानुभवमयी प्रकाशशक्ति है। आहाहा! चौथे गुणस्थान में यह है या नहीं? आहाहा! जब सम्यग्दर्शन होता है, तब शुद्धोपयोग में होता है। समझ में आया? द्रव्यसंग्रह, ४७ गाथा में नहीं कहा? तत्त्वानुशासन में ३३ गाथा है। **'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।'** द्रव्यसंग्रह में नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती कहते हैं कि निश्चय और व्यवहारमोक्षमार्ग ध्यान में प्राप्त होता है। इसका अर्थ क्या? **'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।'** ऐसा पाठ है। आहाहा! तो ध्यान तो जब स्वरूप में दृष्टि हो, तब ध्यान होता है। तो यह तो शुद्धोपयोग हुआ। आहाहा! यह ध्यान, वही शुद्धोपयोग है। ज्ञायक पर ध्यान लगाया तो इस शक्ति के कारण से अन्दर प्रत्यक्ष हुआ। मति-श्रुतज्ञान में आत्मा प्रत्यक्ष हुआ। तत्त्वार्थसूत्र में मति-श्रुत को परोक्ष कहकर पर को जाननेवाला कहा है। यह बात अपवाद की गम्भीर बात अन्दर पड़ी है। समझ में आया? यह बात कहीं छठवें, सातवें और तेरहवें गुणस्थान की नहीं। समझ में आया?

बहुत वर्ष पहले यह प्रश्न हुआ था। वे मगनलाल थे न? मोरबीवाले। क्या कहलाते हैं वे? दफ्तरी। बाहर में बहुत प्रसिद्ध थे। वाँचन था परन्तु... मोरबी में गवर्नर आये थे। उन्होंने भाषण किया तो गवर्नर कहे, ओहो! तुम्हारे शहर में चिथड़े से लिपटा रत्न है। यह लौकिक की अपेक्षा से। हमारे साथ एक बार (संवत्) १९८२ में चर्चा हुई। मतिज्ञान को तुम प्रत्यक्ष कहते हो परन्तु शास्त्र में तो मतिज्ञान परोक्ष कहा है। तत्त्वार्थसूत्र में। भाई! परोक्ष

तो पर की अपेक्षा से कहा है। परन्तु अपनी अपेक्षा से प्रत्यक्ष है, यह बात उसमें गर्भित है। समझ में आया? वे मगनलाल व्याख्यान में आते थे।

स्वयं प्रकाशमान... भगवान आत्मा स्वयं से प्रकाशमान है। निमित्त से नहीं, संयोग से नहीं, वाणी से—भगवान की वाणी से नहीं, शास्त्र से नहीं। आहाहा! **स्वयंप्रकाशमान विशद (–स्पष्ट) ऐसे स्वसंवेदनमयी**... स्पष्ट ऐसे स्वसंवेदनमयी। स्पष्ट। जैसे व्यवहारप्रत्यक्ष कहते हैं न कि इस मनुष्य को मैंने प्रत्यक्ष देखा है। व्यवहारप्रत्यक्ष। इसी प्रकार भगवान आत्मा स्पष्ट प्रकाशमान, यह आत्मा है—ऐसा प्रत्यक्ष होता है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? लोग नहीं कहते? मैंने प्रत्यक्ष राजा आया था, उसे देखा था न! यह व्यवहार प्रत्यक्ष में कहा जाता है। कल आयेगा, और वह भी पर का ज्ञान भी, पर का राजा है या ठण्डा पानी है या उष्ण अग्नि है या देव है या यह शास्त्र है—ऐसा ज्ञान भी, जिसे स्वरूपज्ञान हुआ हो, उसे उनका सच्चा ज्ञान हुआ है। स्वरूपग्राही। निजस्वरूप का ज्ञान हुआ हो, वह यह, उसे पर का ज्ञान व्यवहार में कहने में आता है। आहाहा! बाकी स्व का ज्ञान नहीं हो और वहाँ पर का ज्ञान हो, वह ज्ञान ही नहीं है, उसे ज्ञान कहते ही नहीं। वह परप्रकाशक एकान्त है। आहाहा! समझ में आया? ओहो!

चैतन्य के विलासस्वरूप। आहाहा! नहीं। स्वसंवेदनमयी। चैतन्य के विकलासस्वरूप, बाद की शक्ति में आयेगा। स्वसंवेदनमयी—स्वानुभवमयी। आहाहा! हम एक अनुभव की बात कहते हैं, एक बार (संवत्) १९८० के वर्ष में... ५३ वर्ष हुए। सम्प्रदाय में बोटाद में बहुत लोग आते थे। हमारी तो प्रतिष्ठा बहुत थी न! हजार-पन्द्रह सौ लोग आते थे। एक बार कहा कि भाई! स्वानुभव होना चाहिए। तो एक वीसाश्रीमाली काशी में पढ़ा हुआ था। अमृतलाल पण्डित, काशी में पढ़े हुए थे। गोपाणी, वे उसके दादा होते हैं। उसके पिता सोमचन्द गोपाणी, और दूसरे थे ठाकरशी गोपाणी। वे कहे, यह अनुभव... अनुभव कहाँ से कहते हैं? हमारे महाराज तो कभी अनुभव कहते नहीं। यह तो (संवत्) १९८० की बात है। २० और ३३ = ५३ वर्ष हुए।

यहाँ कहते हैं, स्वानुभव प्रत्यक्ष आत्मा है। उन लोगों में ऐसी भाषा ही नहीं है। उसमें यह भाषा है ही नहीं। विभाव और अनुभव दो बात कही तो लोग भड़क गये।

(संवत्) १९८० के वर्ष की बात है, ५३ वर्ष पहले। यहाँ कहते हैं, अनुभव प्रत्यक्ष हो, ऐसी शक्ति है। आहाहा! स्वानुभवमयी—स्व अनुभवमयी। आत्मा अपने आनन्द का प्रत्यक्ष वेदन हो जाना और मति-श्रुतज्ञान में आत्मा प्रत्यक्ष देखने-जानने में आता है, ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? है या नहीं अन्दर? देखो! शक्ति का पार नहीं, भाई! इतनी अन्दर गम्भीरता भरी है।

यह प्रकाशशक्ति है, इसके दो रूप। एक ध्रुवरूप है, वह ध्रुव उपादान और परिणति हुई, वह क्षणिक उपादान। वह परिणति की यहाँ बात चलती है। स्वानुभव में आत्मा प्रत्यक्ष होता है। ध्रुव भी स्वानुभव में प्रत्यक्ष ज्ञात होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? और उस वह स्वानुभवमयी प्रत्यक्ष वस्तु अनन्त गुण में व्यापक है। जितनी शक्तियाँ हैं, वह सब स्वानुभव व्यापक है। तो स्वानुभव प्रत्यक्ष में अनन्त शक्ति का पिण्ड प्रत्यक्ष होता है। आहाहा! यह बारहवीं शक्ति... विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १४, शक्ति- १२ से १४, बुधवार, (द्वितीय) श्रावण शुक्ल १०, दिनांक २४-०८-१९७७

समयसार, शक्तियों का अधिकार है। बारहवीं शक्ति चली। बारहवीं शक्ति में क्या चला? कि आत्मा में एक ऐसी शक्ति है, स्वभाव है। सत् वस्तु का सत्त्व, उसमें कस भरा है। ऐसा कस है कि जो स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रत्यक्ष होता है, इसका अर्थ क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह प्रत्यक्ष होता है, इसका अर्थ राग और निमित्त की अपेक्षा छोड़कर। सवेरे आया था न? शुद्ध स्वरूप का विचार करने पर। ऐसा आया था। आया था? उसमें गम्भीरता है। कठिन है परन्तु शुद्ध स्वरूप का विचार करने से प्रत्यक्ष होता है। अर्थात् राग और पुण्य और पर्याय के विचार में न रुकने से। आहाहा! शुद्ध स्वरूप का विचार अर्थात् ज्ञान करने से, ऐसा कहते हैं। राग, पुण्य और पाप के विकल्प का ज्ञान तो अनन्त बार किया है, वह तो परप्रकाशक मिथ्याभाव है। आहाहा! अपने में शुद्धस्वरूप का विचार करने पर अर्थात् शुद्धस्वरूप का ज्ञान करने पर अर्थात् पर्याय और राग की ओर का विचार जो अनादि से झुक रहा है... आहाहा! उस विचार को शुद्धस्वरूप की ओर झुकाना। ऐसी बात है। उसमें आत्मा प्रत्यक्ष होता है। अर्थात्? उसमें आया था न? शुद्ध स्वरूप का विचार करने पर आनन्द का स्वाद आता है, ऐसा आया था। बहुत गम्भीर है। आहाहा!

अपना चैतन्यस्वरूप, उसमें अनन्त शक्ति है। उसमें एक शक्ति ऐसी है... है? **स्वयं प्रकाशमान...** अपने से प्रकाश करती है, स्पष्ट प्रकाश करती है। पश्चात् कहा कि स्वसंवेदन से प्रकाश करती है। आहाहा! समझ में आया? आत्मपदार्थ में यह शक्ति है तो शक्ति पर नजर नहीं करनी है। समझ में आया? सवेरे ऐसा कहा था न? शुद्ध स्वरूप का विचार करने पर, ऐसा कहा था। शक्ति का विचार करने पर, ऐसा सवेरे नहीं कहा था। समझ में आया? यह तो सर्वज्ञ की वाणी गम्भीर है। यह पात्रता प्राप्त करना। आहाहा!

कहते हैं कि इसमें स्वसंवेदनमयी शक्ति है। अपना स्वरूप सं—प्रत्यक्ष आनन्द का प्रत्यक्ष वेदन होना। मति और श्रुतज्ञान से भी प्रत्यक्ष। आहाहा! समझ में आया? मति-श्रुतज्ञान के पर्याय से वह प्रत्यक्ष होता है। आहाहा! ऐसी उसमें शक्ति भरी पड़ी है। भरोसा

नहीं, भरोसा। विश्वास नहीं। समझ में आया? आहाहा! लोग कहते हैं न कि विश्वास से जहाज तिरते हैं। ऐसा कहते हैं या नहीं? है न तुम्हारे। विश्वास से नाव तिरे। इसका अर्थ क्या? अपने आत्मा में अनन्त शक्तियाँ हैं, उसमें यह एक शक्ति है। ऐसा विश्वास करने से आत्मा प्रत्यक्ष होता है। अन्दर में नाव तिर जाती है। आहाहा! समझ में आया? भाई! वेणीप्रसादजी! ऐसी चीज़ है, आहाहा!

यह तो जन्म-मरण का अभाव करने की चीज़ है, भगवान! बाकी जिसमें भव हो, वह तो भव करेगा। कोई दया, दान से, कदाचित् स्वर्ग में जायेगा तो वहाँ से निकलकर तिर्यंच होकर, पशु होकर नरक और... आहाहा! निगोद... निगोद... निगोद... एक शरीर में अनन्त जीव, उसमें उपजना। उसमें अनन्त बार उपजा। स्वर्ग के जो अनन्त भव किये, उससे अनन्तगुणे निगोद में एकेन्द्रिय में एक श्वास में अठारह भव किये। आहाहा! एक श्वास चले, इतने में निगोद के अठारह भव किये। ऐसे अनन्त बार अठारह भव किये। आहाहा! ऐसे भव के दुःख में से निकलना हो... आहाहा! तो इसे अपना शक्तिवान जो भगवान आत्मा... शक्ति का तो वर्णन चलता है, परन्तु शक्तिवान जो आत्मा है, उसके ऊपर दृष्टि लगाना। शक्ति और शक्तिवान का भेद भी छोड़ देना। समझ में आया? आहाहा!

यह चीज़ ऐसी है कि गुप्त नहीं रह सकती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? इस वस्तु का स्वभाव—शक्ति ऐसी है कि गुप्त नहीं रह सकती, प्रगट हो जाये। आहाहा! परन्तु इस वस्तु का विश्वास और अनुभव होने पर प्रगट होती है। ऐसी बातें हैं। लोगों को बाहर में अभी ऐसी माथापच्ची बढ़ गयी है... आहाहा! शुभभाव होता है, स्वरूप में रह नहीं सकते तो अशुभ से बचने के लिये भाव आता है, परन्तु वह कोई जन्म-मरण मिटाने की चीज़ नहीं है। वह तो भव प्राप्त करने की चीज़ है। आहाहा! भाई! भव के अभाव की बात है, भाई कहते थे। बात तो ऐसी है, भगवान!

अरे! प्रभु! तू कौन है? आहा! प्रभु! तुझमें एक शक्ति ऐसी है, उसमें प्रभुता भी पड़ी है। स्वसंवेदनमयीशक्ति में प्रभुता भी पड़ी है। प्रभुता की शक्ति भिन्न है परन्तु उस स्वसंवेदनशक्ति में प्रभुता का रूप है, स्वरूप है। आहाहा! अपनी प्रभुता से शक्ति में प्रत्यक्ष होना, वह तो गुण है तो प्रत्यक्ष होता है, वह अपनी शक्ति से होता है। कोई पर की अपेक्षा

है नहीं। ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! गजब बात की है। आचार्य ने ४७ शक्तियाँ कहकर (गजब काम किया है)। ऐसा वर्णन कहीं नहीं है। श्वेताम्बर में उनके ४५ सूत्र में कहीं नहीं।

उनमें एक हुए हैं... क्या कहलाते हैं? देवचन्दजी! देवचन्दजी ने किया था। उन्हें उन लोगों का वाँचन कुछ अधिक था। उन्होंने यह शक्ति पढ़ी अवश्य, पढ़कर बनाने गये, आठ शक्तियाँ बनायीं परन्तु यह नहीं बन सकीं। यह नहीं। अपनी कल्पना से आठ बनायी। क्योंकि वाँचन किया था। इसमें जीवत्वशक्ति से उठाया है तो उन्होंने दूसरी शक्ति से उठाया था। यहाँ तो मूल शक्ति का वर्णन है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, मति-श्रुतज्ञान में भी स्वसंवेदनशक्ति के कारण आत्मा प्रत्यक्ष वेदन में आता है और आनन्द का स्वाद स्वयं से लेता है, उसमें परोक्षपना नहीं है। समझ में आया? यह बात बारहवीं शक्ति की हुई। आज अब तेरहवीं शक्ति लेते हैं। यह तो अपार है, भण्डार है, इसमें से निकाले उतना (कम है)।

क्षेत्रकालानवच्छिन्नचिद्विलासात्मिका असङ्कुचितविकाशत्वशक्तिः।

क्षेत्र और काल से अमर्यादित ऐसे चिद्विलासस्वरूप (-चैतन्य के विलासस्वरूप) असंकुचित-विकाशत्वशक्ति।१३।

अब, असंकुचितविकासशक्ति। तेरहवीं है, तेरहवीं। क्याक हते हैं? **क्षेत्र और काल से अमर्यादित ऐसे चिद्विलास स्वरूप (-चैतन्य के विलासस्वरूप) असंकुचित-विकाशत्वशक्ति।** क्या कहते हैं? उसमें एक ऐसी शक्ति है, संकोच है ही नहीं। कोई भी शक्ति प्रगट करने में संकोच नहीं है। पूरा द्रव्य, पूरा क्षेत्र, पूरा काल और पूरा भाव असंकोच—संकोच बिना यह शक्ति विकास करती है। समझ में आया? कितने ही ऐसा कहते हैं न? कि भगवान है, वे एक समयवर्ती को जाने। हमेशा अखबार में आया है। श्रीमद् का दृष्टान्त दिया है। श्रीमद् तो दूसरी बात करते हैं। ऐसा कि तीन काल की पर्याय जो है, वह वर्तमान वर्तती न देखे, इतनी बात। एक समय की वर्तमान वर्तती है, उसे देखे। वर्तती देखे। भूत और भविष्य वर्तती न देखे परन्तु वह होगी, हुई और होगी ऐसा प्रत्यक्ष देखते हैं।

मुमुक्षु : इसलिए वर्तती कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तती (कहा), इसलिए एक समय को ही देखे-ऐसा नहीं है। समझ में आया? एक न्याय बदले तो पूरी वस्तु बदल जाती है।

यहाँ तो कहते हैं, उस शक्ति के कारण ज्ञानशक्ति में भी ऐसा असंकोचविकास का रूप है। कि जो ज्ञानशक्ति संकोच बिना विकास होती है। तीन काल-तीन लोक पर्याय जाने, ऐसा एक समय की पर्याय में विकास होता है, संकोच बिना। आहाहा! समझ में आया? क्या कहते हैं? देखो!

क्षेत्र... यहाँ क्षेत्र की मर्यादा नहीं कि इतना ही जाने। क्षेत्र भी अमर्यादित। आहाहा! और काल की मर्यादा नहीं कि अमुक ही काल जाने। वह तो सर्व काल—तीन लोक-तीन काल (जाने)। आहाहा! एक समय में ज्ञान में भी असंकोचविकासशक्ति का रूप है तो ज्ञान की पर्याय एक समय में तीन काल-तीन लोक संकोच बिना विकास शक्ति से विकास होता है। आहाहा!

दूसरी बात—तत्त्वार्थसूत्र में आता है न? कि चार घातिकर्म का नाश हो तो केवलज्ञान होता है। समझ में आया? यह तो निमित्त से कथन है। यहाँ तो कहते हैं कि चार घातिकर्म का नाश करना, वह भी उसमें नहीं है। वह अपनी असंकोचविकासशक्ति के कारण से केवलज्ञान की पर्याय प्राप्त करता है। आहाहा! पामर को प्रभुता बैठना कठिन है। आहाहा! एक-एक ज्ञान में असंकोच—संकोच नहीं और विकास हो, ऐसा रूप ज्ञान में है, ऐसा दर्शन में है। असंकोचविकास का रूप है। जो दर्शन संकोच बिना सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को विकासरूप देखता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसे आनन्द—अतीन्द्रिय आनन्द आत्मा में है, उसमें भी असंकोचविकास नाम का रूप है। शक्ति भिन्न है। वह आनन्द भी संकोच बिना पूर्ण आनन्द का विकास है, ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? और उसकी श्रद्धाशक्ति त्रिकाल है। सम्यग्दर्शन वह पर्याय है, परन्तु अन्दर में श्रद्धाशक्ति है, उस श्रद्धाशक्ति में असंकोचविकास का रूप है। आहाहा! संकोच बिना पूर्ण स्वरूप की प्रतीति करे, पूर्ण स्वरूप की प्रतीति करे, ऐसा असंकोचविकास। श्रद्धागुण में भी असंकोचविकास का रूप है। अरे! यह तो अलौकिक बातें हैं, भाई! समझ में आया?

इसी तरह आत्मा में चारित्रगुण है। चारित्रगुण है। अकषायस्वभाव चारित्रगुण है। समझ में आया? वह चारित्रगुण अर्थात् रमणता—स्थिर होना। अन्दर चारित्र त्रिकाल अकषायभाव है। वह चारित्रशक्ति है। इसमें आयी नहीं। उसे सुखशक्ति में समाहित कर दिया है। सम्यग्दर्शन को और चारित्र को सुखशक्ति में गर्भित कर दिया है। समझ में आया? और सिद्ध के गुण में भी चारित्र नहीं आया, समकित आया है और सुख आया है। सिद्ध के आठ गुण हैं न? एकबार यह कहा था। सम्यग्दर्शन और सुख। तो सुख में चारित्रशक्ति पूर्ण है। अर्थात् कि चारित्र अर्थात् रमणता, पूर्ण, संकोच बिना पूर्ण स्थिरता हो, ऐसा चारित्रशक्ति में भी असंकोचविकास का रूप है। आहाहा! समझ में आया?

परमात्मप्रकाश में एक दृष्टान्त दिया है। एक बेलडी होती है, बेलड़ी, बेल। मण्डप के ऊपर बेल होती है न? जहाँ तक मण्डप है वहाँ तक बेल जाती है परन्तु बेल में आगे जाने की शक्ति नहीं है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? मण्डप होता है न? मण्डप। बाँस का। बाँस होता है न? अन्दर बेलडी है, वह जहाँ तक बाँस है, वहाँ तक जाती है। बाँस तक जाती है। परन्तु बाँस हैं, वहाँ तक ही जाने की शक्ति है, ऐसा नहीं है। उससे भी आगे हो तो जा सकती है, ऐसी बेल की शक्ति है। समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा में, तीन काल-तीन लोक का मण्डप है... यह मण्डप है। तुम्हारे मण्डप में लड़के का विवाह करते हैं, वह तो सब पाप का मण्डप है। यह मण्डप लोकालोक है, उससे भी अनन्तगुना यदि लोक और अलोक क्षेत्र और काल हो तो भी असंकोचविकासशक्ति अपने में विकास करती है। वह... विकास! यह असंकोचविकास आया। इसका नाम विकास है। समझ में आया? आहाहा!

भगवान! तुझमें एक शक्ति ऐसी है, ऐसी-ऐसी अनन्त शक्ति में एक शक्ति का रूप है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द भी असंकोचविकास से परिणमन करता है। पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय। आहाहा! पूर्ण शान्ति की पर्याय, पूर्ण स्वच्छता की पर्याय... आहाहा! पूर्ण दर्शन की पर्याय। उस शक्ति में असंकोच अर्थात् बिल्कुल संकोच नहीं। आहाहा! श्वेताम्बर में भिक्षा के लिये जाते हैं न? भिक्षा के लिये। उसमें ऐसा रिवाज है (ऐसा कहे), बहिन! आहार-पानी का संकोच नहीं न? तो हमें दो। दो व्यक्ति हों और थोड़ा जीमने का

हो तो संकोच हो। उसे दे तो स्वयं को कम पड़े, नया बनाना पड़े। उसकी भाषा ऐसी है। माँ! बहिन! तुम्हें आहार का संकोच नहीं न? अधिक हो, तुम्हें घर में पूरा पड़ने के उपरान्त अधिक हो तो दो। समझ में आया?

इसी प्रकार यहाँ तो परमात्मा कहते हैं... आहाहा! लोकालोक से भी अनन्त लोकालोक हो और अनन्त काल भी हो तो भी तेरी एक-एक पर्याय संकोच बिना विकास पावे, ऐसी शक्ति है। बलुभाई! आहाहा! ऐसी बात है। ऐसी बात में लोग ऐसी गड़बड़ करते हैं। समझ में आया? यह तो एक दूसरी साधारण बात है। फिर एकान्त में कहूँगा। ऐसा बिना नाम का पत्र आया है, दूसरे के दोष निकालना है। अरे! ऐसी बात? आहाहा! ऐसा कि आप तो इस धर्म की दशा में हो, इस महान तीर्थधाम में आप विराजते हो, उसमें बाहर में खटपट बहुत है, ऐसा लिखा है। बाहर में अर्थात् यहाँ, हों! चार बिना नाम के पत्र आये हैं। अरे रे! प्रभु! ऐसा? आप तो ऐसे महान धर्मतीर्थ में विराजते हो। इसमें खटपटी लोग बहुत खटपट चलाते हैं, ऐसा लिखा है। देखभाल में खटपट चलाते हैं। रामजीभाई को प्रमुख बनाया, उसमें खटपट हुई। यह तो मैंने कहा था, दूसरे ने नहीं कहा था, मैंने कहा था कि रामजीभाई अब प्रमुख हो। तो ऐसा लिखा है कि आपके नाम से लोगों ने ऐसा किया। अरे रे! ऐसी बात इसमें नहीं होती, बापू! आहाहा! ऐसा होता है? बापू! प्रभु! आहाहा! वे बिना नाम के पत्र लिखकर किसी को हल्का करना... तुम्हारी स्थिति में ऐसी खटपट चलती है। अरे! प्रभु! आहाहा! तुम्हें पूछना हो तो अमुक-अमुक को पूछो। ऐसे नाम दिये हैं। ऐसा नहीं होता, बापू! रामजीभाई को प्रमुख बनाने का तो मुझे विकल्प आया था। रामजीभाई पहले से प्रमुख हैं न? इन्होंने बहुत काम किये हैं न? तो लिखा है, आपके नाम से उनको ऐसा चलाया है। रामजीभाई अपना पोषण करने को प्रमुख बन गये। अरे! भगवान! ऐसी बात प्रभु! इसमें शोभा नहीं देता। समझ में आया?

यहाँ तो... आहाहा! एक-एक शक्ति का भण्डार असंकोचविकासस्वरूप है। आहाहा! जिसमें कोई शक्ति संकोचरूप होकर विकास न हो, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! प्रभु! तेरी महत्ता तो देख! तेरी महत्ता की महिमा परमात्मस्वरूप है, प्रभु! आहाहा! यह कहते हैं कि कोई द्रव्य, कोई क्षेत्र, कोई काल को संकोच होकर जाने, ऐसा

नहीं है। सर्वक्षेत्र और सर्वकाल संकोच बिना अपनी शक्ति से विकास करके जाने, ऐसा उसका स्वभाव है। पर की अपेक्षा नहीं। चार घाति का नाश हुआ, इसलिए विकास हुआ—ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

फूलचन्दजी ने यह प्रश्न लिया है। फूलचन्दजी ने खानिया चर्चा करके बहुत काम किया है परन्तु लोग ऐसा मानते हैं कि वे सोनगढ़िया हैं। अरे! प्रभु! परन्तु सत्य हो, वह बात करे। तुझे दूसरा क्या काम है? सत्य कहे तो कहते हैं, सोनगढ़िया है और वापस (ऐसा कहे), पैसे दिये होंगे। अरे रे! प्रभु! लोगों पर ऐसे आरोप देना..? अरे! ऐसी स्थिति होगी? ऐसा कि उन्हें सत्य लगे। यह तो पहले से हमारा सत्य है। करते-करते किसी को सत्य लगे... वस्तुस्थिति ऐसी है, भगवान! आहाहा! हमने भगवान के पास तो साक्षात् सुना है। आहाहा! अरे! बात ऐसी सूक्ष्म है, भाई! कठिन बात है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि... आहाहा! प्रभु! तुझमें जितनी अनन्त शक्तियाँ हैं, उसमें—जीवत्वशक्ति में भी ज्ञान, दर्शन, आनन्द की सत्ता के प्राण का संकोच बिना पर्याय का विकास हो, ऐसा जीवत्वशक्ति का स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? दूसरे प्रकार से कहें तो कर्ता नाम की उसमें एक शक्ति है। आगे आयेगा। उस कर्ताशक्ति में भी अनन्त पर्याय को, पूर्ण पर्याय का विकास करके करे, ऐसा कर्ताशक्ति में भी असंकोचविकास का रूप है। समझ में आया? ऐसा है, भगवान! आहाहा! अरे! प्रभु! मुनि तुझे प्रभुरूप से बुलाते हैं। आहाहा! दिगम्बर सन्त ऐसा कहे, भगवान आत्मा! अरे! प्रभु! तुझे... आहाहा! ७२ गाथा में आया। ७२ गाथा, संस्कृत टीका है, भगवान आत्मा..! मुनि दिगम्बर सन्त, वीतरागी झूले में झूलते, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में झूलते थे। आहाहा!

मुमुक्षु : आप कहाँ मुनियों को मानते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनियों को नहीं मानते? हम तो उनके दासानुदास हैं। मुनि होना चाहिए, प्रभु! किसी को दुःख लगे, क्या करे? यह भी एक लेख आया है, यह भी कोई शंकरलाल का पत्र आया है। द्रव्यलिंगी कहकर नहीं होंगे तो पूरा धर्म उड़ जायेगा। तो फिर प्रभु! पचास वर्ष पहले तो कोई द्रव्यलिंगी नहीं थे। यह तो अभी हुए हैं। शान्तिसागर के बाद एक पन्नालाल क्षुल्लक हुए हैं। उससे पहले कोई नहीं थे। ऐसा कि तुम इन लोगों को

यदि द्रव्यलिंगी नहीं मानो तो धर्म का लोप हो जायेगा। अरे! भगवान! प्रभु! तुझे... आगम प्रमाण उनका व्यवहार हो, तब तो व्यवहार भी कहलाये, परन्तु आगम प्रमाण व्यवहार नहीं। हमेशा उनके लिये चौका बनाकर आहार ले तो आगम प्रमाण अट्ठाईस मूलगुण का व्यवहार से भी ठिकाना नहीं। प्रभु! यह कहीं तेरा अनादर करने के लिये बात नहीं है, नाथ! तेरी वस्तु कैसी है, यह बतलाने की बात है, भाई! आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, आहाहा! जो ऐसा कहे कि शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से निश्चय होता है, उसे द्रव्य और द्रव्य की शक्ति की प्रतीति की खबर नहीं। समझ में आया? नन्दकिशोरजी! यहाँ तो ऐसी बात है। आहाहा! यहाँ तो भगवान आत्मा राग की मन्दता की अपेक्षा छोड़कर... क्योंकि ऐसा राग करना, वह कोई आत्मा की शक्ति नहीं। आहाहा! परन्तु आत्मा की शक्ति तो राग के अभावस्वरूप वीतरागता की पूर्णता का विकास करे, ऐसी उसमें शक्ति है। आहाहा! राग करने की तो कोई शक्ति नहीं परन्तु राग का अभाव करना, यह भी उसमें नहीं है। वह तो वीतरागपने का विकास उत्पन्न होता है। जिस समय में उसकी—वीतरागता की उत्पत्ति है, वह अपरिमित उत्पत्ति है। भाई! आहाहा! समझ में आया? यह तो अमृतचन्द्राचार्य ने भण्डार (भर दिये हैं)। आहाहा!

मृतक कलेवर में अमृतसागर मूर्च्छित हो गया है। (समयसार) ९६ गाथा में ऐसा कहा है। यह मृतक कलेवर—मुर्दा है, यह तो मुर्दा है, यह तो जड़ अचेतन है। आहा! भगवान अमृत का सागर है, ९६ गाथा में आता है। अमृत का सागर मृतक कलेवर में मूर्च्छित हो गया है। तीनों म... म। मृतक, अमृत, मूर्च्छित हो गया। समझ में आया? अरे! तेरी पर्याय अल्पज्ञ रहे, यह भी तेरा स्वभाव नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! रागरूप रहना, वह तो तेरा स्वभाव है ही नहीं... आहाहा! (परन्तु) अल्पज्ञ रहना, वह तेरा स्वभाव नहीं, भगवान! आहाहा!

यहाँ तो सर्वज्ञशक्ति और सर्वदर्शिशक्ति संकोच बिना सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को विकास करके जाने, ऐसा स्वभाव है। आहाहा! भाई! सर्वज्ञ किसे कहना, इसमें बहुत गम्भीरता है। आहाहा! एक समय में अनन्त केवली को जाने। अनन्त केवली को एक समय में जाने। केवलज्ञान की पर्याय अनन्त केवली को जाने। अरे! तीन काल-तीन लोक

से विकास विशेष हो तो भी जानते, ऐसी उसमें विकासशक्ति है। आहाहा! तेरी प्रभुता की तुझे प्रतीति नहीं है। अल्पज्ञ और राग जो पामर है, उसकी तुझे प्रतीति है। वह प्रतीति तो मिथ्या है। समझ में आया? आहाहा! इस शरीर के आकार, स्त्री के, पुरुष के और नपुंसक के आकार न देख, प्रभु! यह तेरी चीज़ नहीं, तुझमें है ही नहीं और तुझे राग है, उस राग को न देख, वह राग तुझमें है ही नहीं। अल्पज्ञपना न देख, अल्पज्ञ रहना, यह तेरा स्वभाव नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

श्वेताम्बर में एक बात आती है। 'अतिमुक्तकुमार' बात तो कल्पित है। बालक था, राजकुमार। फिर दीक्षित हुआ। दीक्षित होने के बाद जंगल में जा रहा था, दिशा—जंगल साधु के साथ (जा रहा था)। जहाँ जंगल में गये, वहाँ बहुत वर्षा हुई। पानी बहता था, पानी। पानी समझे न? जल, वर्षा का पानी बहता था। बालक था न तो वह पात्र रखता था। है तो कल्पित। फिर वह पानी बहता था और वह बालक था, उसने पाल बाँधी, कीचड़ की पाल बाँधी। फिर पात्र डाला। पात्र होते हैं न? 'नाव चले रे मोरी नाव चले, अेम मुनिवर जल शुं खेल करे' उसमें आता है। पानी में 'नाव तरे रे मोरी नाव तरे, ऐसे मुनिवर जल शु खेल करे, मोहकर्मकर्म अे चाळा, मुनिवर दोरे नानकडा अे बाळा' यह अतिमुक्त छोटी उम्र में, यह गजसुकुमार। बहुत छोटी उम्र में दीक्षा ली थी। उसकी सज्झाय है। यहाँ कहते हैं, मेरी नाव तिरते है, मेरी नाव तिरती है। आहाहा! आनन्द की दशा, ज्ञान-दर्शन के विकास में मेरी नाव तिरती है। वह तो सब कल्पित था। मुनि को पात्र नहीं होते, वस्त्र नहीं होते। वह तो कल्पित बनाया है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा की—आत्मा की नाव असंकोचविकासशक्ति के कारण अनन्त गुण की पर्याय संकोच बिना विकास होती है। मेरा आत्मा संसार के ऊपर तैरता है। समझ में आया? ऐसा मेरा स्वभाव है। आहाहा! ऐसी दृष्टि करना और ऐसी वस्तु के सामर्थ्य का विश्वास करना, वह अलौकिक वस्तु है। ज्ञानचन्दजी! आहाहा! क्या कहा? उसके जानने में क्षेत्र की मर्यादा नहीं। है? उसके जानने में काल की मर्यादा नहीं। क्षेत्र और काल से असंकोचित, अमर्यादित। आहाहा! जिसे मर्यादा नहीं। ओहोहो!

मण्डप का दृष्टान्त दिया था न? बेलड़ी जहाँ तक चलती है... परमात्मप्रकाश में

दृष्टान्त दिया है। बेलड़ी की आगे जाने की शक्ति नहीं है, ऐसा नहीं है। फिर अन्दर ऊपराऊपरी चढ़ती है। मण्डप दूर तक हो तो भी चढ़ती है। इसी प्रकार लोकालोक से भी अनन्तगुना लोकालोक हो... आहाहा! तो भी ज्ञान की पर्याय संकोच बिना विकास से जानती है। समझ में आया? आहाहा! यह अरिहन्त का रूप देखो! आहाहा! समझ में आया?

क्षेत्र और काल से अमर्यादित ऐसे चिद्विलास स्वरूप... आहाहा! ज्ञान का विलास! यह बाग में विलास करने जाते हैं या नहीं? फूल के वृक्ष। वह नहीं, बापू! यह तो आत्मबाग का चिद्विलास है। समझ में आया? सायंकाल लोग घूमने के लिये बाग में जाते हैं न? मुम्बई में बड़ा बाग है। ऊपर बाग है न? फूल-झाड़ बहुत है। वहाँ जाते हैं। हम एक बार देखने गये थे। चारों ओर वृक्ष और हवा। और सवेरे एक पहर पहले रात्रि में बाग में हवा खाने निकले। उस बाग में हवा तो पाप है, सुन न! यह तो आत्मबाग में चैतन्यविलास! आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

चिद्विलास... ऐसा शब्द लिया न? चिद् अर्थात् ज्ञान। विलास। ज्ञान का ऐसा विलास है कि संकोच बिना सर्व क्षेत्र और सर्व काल को जाने, ऐसी उसकी शक्ति है। आहाहा! समझ में आया? इस चैतन्य के विलासस्वरूप असंकुचितविकासत्व। संकोच नहीं होने से, संकोच नहीं करने से विकास होती शक्ति, ऐसी स्वरूप में शक्ति है। आहाहा! ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व, कर्ता, कर्म... आहाहा! कर्ता नाम की एक शक्ति है, वह भी अनन्त पर्याय में संकोच बिना पूर्ण पर्याय को करे, संकोच बिना पूर्ण पर्याय को विकास करे, ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! बलुभाई! ऐसा कहीं तुम्हारे डॉक्टर में नहीं था ओर कहीं नहीं था। आहाहा! दवा के बड़े (व्यापारी)। बड़ा कारखाना था। अब तो सत्तर लाख में बिक गया। थोड़े-बहुत पैसे बीस-पच्चीस लाख अपने होंगे, बाकी के दूसरे के होंगे। हम एक बार इनके मकान में गये थे। रामजीभाई साथ में थे। दवा का कारखाना। दवा बनाते हैं, हों! देशी दवा। विलायती भी बनाते थे। धूल में भी दवा नहीं। यह दवा है।

मुमुक्षु : पहले महिमा करते हो और फिर धूल कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले दिखाते हैं कि ऐसा था। समझ में आया? आहाहा! यह तेरहवीं शक्ति। प्रत्येक शक्ति में असंकुचितविकासत्वरूप लेना। आहाहा!

यहाँ तो अभी कहते हैं, महेन्द्र पण्डित थे न? महेन्द्र पण्डित के साथ बहुत चर्चा हुई थी। रामजीभाई और सबको। वे कहे, सर्वज्ञ अर्थात् वर्तमान में सर्व से विशेष जाने, वह सर्वज्ञ। पण्डित थे। महेन्द्र, ललितपुर में मिले थे, यहाँ भी आये थे। यहाँ विद्वत् परिषद (संवत्) २००३ के वर्ष में भरी थी, तब आये थे। तीस वर्ष हुए। यहाँ भी आये हैं। उस समय भी हमने कहा, भाई! परमाणु में अनन्तगुणी हरी आदि पर्याय होती है, वह स्वयं से होती है, उसमें पर का कारण नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। आहाहा! क्रमबद्ध में परमाणु में अनन्तगुणी स्निग्धता, अनन्तगुणी रूक्षता, अनन्तगुणे रंग की पर्याय होनेवाली है, वह होगी ही होगी, स्वयं से होगी; पर के कारण से नहीं। समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा में, सर्वज्ञपर्याय होती है, उसमें पर का कोई कारण नहीं है। आहाहा! उन्हें नहीं जँचा। देह छूट गयी, तब तक सर्वज्ञ नहीं बैठे। सर्वज्ञ अर्थात् एक समय में तीन काल (जाने)। काल नहीं, वर्तमान नहीं, भूत नहीं। भूतकाल का वर्तमान नहीं, भविष्य वर्तमान नहीं, उसे वर्तमान प्रत्यक्षवत् देखे, इसका नाम सर्वज्ञ है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, असंकोचविकास। ज्ञान की पर्याय में संकोच बिना पूर्ण विकास हो। आहाहा! उसकी मर्यादा क्या? आहाहा! अमर्यादित है। अरे! प्रभु! तेरे गुण भी तूने सुने नहीं हैं। आहाहा! क्रियाकाण्ड में सब घुस गये, परन्तु राग से भिन्न भगवान में अल्पज्ञ रहने की भी उसमें शक्ति नहीं। आहाहा! अल्पदर्शी रहने की शक्ति नहीं, अल्पवीर्य रहने की शक्ति नहीं। आहाहा! अल्प आनन्द में रहने की भी उसकी शक्ति नहीं। समझ में आया? अलौकिक बातें हैं, बापू! यह तो धर्म की बात है। धर्म अर्थात् अलौकिक चीज़ है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि में ऐसी सर्वज्ञ, सर्वदर्शि आदि अनन्त शक्ति का संकोच बिना विकास हो, ऐसी प्रतीति उसमें आती है। सम्यग्दृष्टि को ऐसी प्रतीति आती है। आहाहा! निःसन्देह।

चैतन्य भगवान... आहाहा! स्वभाव शुद्ध चैतन्यस्वरूप, उसकी अनन्त शक्तियाँ, प्रत्येक शक्ति में पूर्ण विकास हो, संकोच न हो, मर्यादित न रहे, ऐसी उसमें शक्ति है। आहाहा! समझ में आया? एक बात भी यथार्थ समझे तो दूसरे सब भाव समझे। एक भाव

का भी ठिकाना नहीं और... यह समयसार में जयसेनाचार्य ने कहा है, एक भाव भी यथार्थ समझे, एक ही भाव, चाहे सर्वज्ञ, सर्वदर्शि कोई भी एक शक्ति, एक भाव भी यथार्थ समझे तो सर्व भाव यथार्थ समझ में आ जाये। समझ में आया? यह तेरहवीं शक्ति (हुई)। आहाहा!

असंकोचविकासशक्ति द्रव्य-गुण में है परन्तु जब उसका स्वीकार होता है, तब पर्याय में व्याप्त होते हैं। असंकोचपना और विकारपना अन्दर पर्याय में आ जाता है। आहाहा! और अनन्तगुण में यह असंकोचविकासशक्ति व्यापक है। समझ में आया? असंकोचविकासशक्ति ध्रुवरूप से उपादान है और क्षणिक पर्याय में उत्पन्न हुई, वह क्षणिक उपादान है। समझ में आया? आहाहा! यह असंकोचविकासशक्ति किसी के कारण से उसका कार्य हुआ, ऐसा नहीं है, और लोकालोक को जाने, यह कार्य नहीं, उसकी पर्याय को वह जानता है। आहाहा! समझ में आया? लोकालोक का कारण नहीं और लोकालोक का कार्य नहीं। अर्थात् जो ज्ञान, दर्शन और आनन्द की पूर्ण शक्ति का विकास हुआ, वह लोकालोक है तो कार्य हुआ, ऐसा नहीं और लोकालोक का कारण वह शक्ति नहीं है। पर्याय में जो विकास व्याप्त हुआ, वह लोकालोक का कारण नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसी व्याख्या। पहला तो इतना सरल था, दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, रस छोड़ो, वस्त्र छोड़ो... ऐई! इन्होंने भी वर्षीतप किया था, हों! वर्षीतप किया था। कितने वर्ष हुए? दस वर्ष। वर्षीतप किया था, एक दिन भोजन, एक दिन अपवास। इसके पारणे में हम गये थे। इनके पिताजी थे। वैशाख शुक्ल तीन। दस वर्ष पहले। कहा, यह सब लंघन है। आहाहा! भगवान की महत्ता और महिमा की मर्यादा बिना की वस्तु है, ऐसा भान हुए बिना करे, वह सब लंघन है। वह अपवास और संथारा दो-दो महीने, सब लंघन है। तप नहीं, धर्म नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : तप न कहो, धर्म न कहो, परन्तु लंघन तो न कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : लंघन क्या शास्त्र तो क्लेश कहता है। निर्जरा अधिकार में इस क्रियाकाण्ड के करनेवाले को क्लेश कहते हैं, दुःख है। क्लेश करो तो करो परन्तु आत्मा उससे प्राप्त नहीं होगा। आहाहा! यह तेरह।

अन्याक्रियमाणान्याकारकैकद्रव्यात्मिका अकार्यकारणत्वशक्तिः।

जो अन्य से नहीं किया जाता और अन्य को नहीं करता, ऐसे एक द्रव्यस्वरूप अकार्यकारणत्वशक्ति। (जो अन्य का कार्य नहीं है और अन्य का कारण नहीं है, ऐसा जो एक द्रव्य उस-स्वरूप अकार्यकारणत्वशक्ति।)।१४।

चौदह। **जो अन्य से नहीं किया जाता...** इस शक्ति में भी विवाद है। क्या? यहाँ तो द्रव्य की बात है। द्रव्य किसी का कारण नहीं और द्रव्य किसी का कार्य नहीं, ऐसा कहते हैं। वे रतनचन्दजी... के गाँव के (ऐसा कहते हैं)। सब सुना है न! आता है न! यह शक्ति जो है, कितनी है? चौदहवीं। यह तो द्रव्य की शक्ति की बात चलती है। द्रव्य किसी का कारण नहीं और द्रव्य किसी का कार्य नहीं। ऐसा नहीं है। यहाँ तो शक्ति जो है, उस शक्तिवान का जहाँ अनुभव हुआ तो पर्याय में भी अकार्यकारण की पर्याय—दशा प्रगट हुई। वह पर्याय भी राग का कारण नहीं और राग का कार्य नहीं। समझ में आया?

जैसे द्रव्य और गुण किसी का कारण नहीं और किसी का कार्य नहीं, वह तो स्वतः वस्तु है। इसी प्रकार उसकी पर्याय जो होती है, वह पर्याय भी किसी पर का कारण नहीं और पर का कार्य नहीं। द्रव्य-गुण-पर्याय में यह अकार्यकारणशक्ति व्याप्त हो गयी। आहाहा! समझ में आया? यह शक्ति ७२ गाथा में से निकाली है। ७२ गाथा है न? उसमें यह है। सम्मेदशिखर में यह शक्ति दो घण्टे चली थी। यात्रा में गये थे न तब? तब चन्दुभाई थे, नहीं? चन्दुभाई डॉक्टर थे।

यह दवा के लिये विवाद हुआ है। वे होमियोपैथी से दवा करते थे, उन सबने इकट्ठे होकर बन्द करायी। अरे! भगवान! उसमें तो ऐल्कोहल का ख्याल आया तो छोड़ दी। पहले डॉक्टर कहते थे... ऐल्कोहल समझे? केण होता है न? केण। केण का रस निकाल कर सड़ा होता है, वह उसमें डालते हैं। पहले डॉक्टर ने ऐसा कहा था कि उसमें ऐल्कोहल बिना की चीज़ है, तो ली थी। फिर पुस्तक पढ़ी। पढ़ने में ऐसा निकला कि ऐल्कोहल बिना की कोई होमियापैथी की दवा होती नहीं तो हमने छोड़ दी। राजेन्द्रभाई आये हैं या नहीं? वे रहे। ये डॉक्टर हैं। लोगों ने छुड़ा दी, ऐसा कहते हैं। मुझे ख्याल आया कि यह बात नहीं है। दो महीने से एकदम देशी दवा चलती थी परन्तु फिर भी खून की जो रिपोर्ट आयी है,

उसमें रोग की वृद्धि हुई है, ऐसी रिपोर्ट आयी है। वह दवा से नहीं बढ़ा, दवा तो छोड़ दी है। तो कहे, इन लोगों ने छुड़ा दी। ऐसे के ऐसे, कौन जाने ठिकाने बिना के... अब शरीर का होना होगा, वह होगा परन्तु हमारे तो... उससे तो रोग हुआ, वृद्धि हुई अन्दर में। समझ में आया ? इस कारण से हमने छोड़ दी है। लोग माने, इसलिए छोड़ दी ऐसा नहीं। चण्डाल चौकड़ी है, ऐसा उसमें लिखा है। नाम नहीं लेते हैं। आहाहा! ऐसा प्रभु ? जहाँ अमृत घुलता हो, वहाँ जहर की बातें ? ऐसे किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिए। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, अकार्यकारणशक्ति है गुण, वह शक्ति द्रव्य और गुण में व्यापक है और प्रत्येक गुण परिणति में पर का कारण नहीं और पर का कार्य नहीं। ऐसा इस शक्ति का भी विकास होता है, वह पर के कारण से नहीं। चार घाति का नाश हुआ तो केवलज्ञान हुआ, ऐसा नहीं। पण्डित फूलचन्दजी ने तो ऐसा स्पष्टीकरण किया है, चार घातिकर्म का नाश हुआ तो हुआ क्या ? वह तो अकर्म पर्याय हुई। जो कर्मपर्याय थी, वह अकर्म हुई। उसमें केवलज्ञान हुआ, ऐसा कहाँ से आया ? यह तो निमित्त से कथन है। यह जैनतत्त्व मीमांसा में है। देखा है न ? भाई! जैनतत्त्व मीमांसा। भाई! उन्होंने बराबर किया है। फूलचन्दजी ने तो खानिया चर्चा बनाकर ऐतिहासिक सिद्धान्त प्रसिद्ध किया है। ऐतिहासिक चर्चा हुई है। लोगों को रुचती नहीं। अभी आया है। खानिया चर्चा अधूरी है, फिर से बनाओ। आहाहा! भगवान! यह वादविवाद से (पार) नहीं पड़ता, प्रभु! वीतरागता की चर्चा हो। यथार्थ वस्तु क्या है, ऐसी चर्चा हो, तब तो वीतरागता सिद्ध हो। परन्तु पर को मिथ्या सिद्ध करने और अपनी बात सच्ची है, उसमें सत्य नहीं मिलता। आहाहा! समझ में आया ? यहाँ तो इनकार करते हैं, देखो!

आत्मा की जो निर्मल पर्याय होती है, वह राग का कार्य नहीं। राग व्यवहार था, वह गया तो यह कार्य हुआ, ऐसा नहीं है। और अकार्यकारणशक्ति राग का कारण नहीं। राग का कार्य तो नहीं, संसार की उत्पत्ति का कारण नहीं। समझ में आया ? आहाहा! अपनी निर्मल शक्ति उत्पन्न करनेवाले की कर्ता है और निर्मल शक्ति उसका कार्य है। यह कर्ता-कर्म के छह बोल बाद में आयेंगे। समझ में आया ? आहाहा! अभी सत् की वस्तुस्थिति की मर्यादा कैसी है, (इसकी खबर नहीं होती)। द्रव्य सत्, गुण सत्, पर्याय सत्। तीनों

सत् है। पर्याय सत् स्वयं से उत्पन्न हुई है। उस पर्याय को कोई कारण मिला तो उत्पन्न हुई है, ऐसा नहीं है। निश्चय में तो ऐसा है कि जब सम्यग्दर्शन आदि, केवलज्ञान आदि पर्याय उत्पन्न होती है, वह उत्पत्ति का जन्मक्षण था, वह उत्पत्ति का काल था। आहाहा! वह काललब्धि थी। उस समय में भवितव्यता का भाव उत्पन्न होने का था, वह पर से हुआ नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अपने स्वरूप में स्थिर होता है तो चारित्रमोह का नाश होता है। तो कहते हैं कि वह नाश होने का कार्य अपना नहीं। तथा राग का कारण भी नहीं। समझ में आया? **जो अन्य से नहीं किया जाता...** आहाहा! यहाँ वे द्रव्य लेते हैं। यह शब्द द्रव्य है परन्तु द्रव्य की शक्ति है तो पर्याय में व्याप्त होती है। समझ में आया? शक्ति है, वह द्रव्य में भी है और गुण में भी शक्ति है परन्तु उसका जहाँ स्वीकार हुआ कि यह है, तो पर्याय में भी अकार्यकारणपना आ गया। आहाहा! समझ में आया?

(समयसार) ७२ गाथा में है। भगवान आत्मा दु:ख का कार्य नहीं, अर्थात् राग का केवलज्ञान कार्य नहीं या समकित आदि की पर्याय राग का कार्य नहीं। तथा समकित आदि की पर्याय राग का कारण नहीं। समझ में आया? है? ७२ गाथा में है। यह समयसार है न? ७२ गाथा। आस्रव आकुलता के उत्पन्न करनेवाले हैं। ७२ गाथा में बीच में है। आस्रव—पुण्य और पाप के भाव, वे आस्रव आकुलता के उत्पन्न करनेवाले हैं। आहाहा! है? बलुभाई! मिला? इसलिए **दु:ख के कारण हैं; भगवान आत्मा तो सदा निराकुल स्वभाव के कारण, किसी का कार्य तथा किसी का कारण नहीं होने से...** आहाहा! इसमें से शक्ति निकाली है। समझ में आया?

भगवान आत्मा द्रव्य और गुण तो किसी के कारण-कार्य है नहीं। ईश्वर ने द्रव्य बनाया और शक्ति ईश्वर ने दी, ऐसा तो तीन काल में नहीं, परन्तु उसकी पर्याय का भी पर कारण नहीं और पर के कारण से पर्याय उत्पन्न हुई नहीं। आहाहा! जैसे द्रव्य-गुण का कोई कारण-कार्य नहीं, वैसे अपनी जो निर्मल पर्याय होती है, उस पर्याय का कोई कारण नहीं और वह पर्याय किसी का कार्य नहीं। आहाहा! ऐसी बात। शास्त्र में लेख आये। दो कारण का एक कार्य है, ऐसा तत्त्वार्थराजवार्तिक में आता है। वह तो दूसरे निमित्त का ज्ञान कराने

के लिये निश्चय से इस बात को सिद्ध रखकर, पर्याय में किसी का कारण नहीं और किसी का कार्य नहीं, इस निश्चय को लक्ष्य में, दृष्टि में सिद्ध रखकर फिर निमित्त को मिलाया तो प्रमाणज्ञान हुआ परन्तु निमित्त को मिलाकर प्रमाणज्ञान हुआ तो पहली बात को सत्य रखकर निमित्त को मिलाया। समझ में आया? पहली बात निश्चय से पर्याय स्वयं से है, उसका कोई कारण-कार्य नहीं, यह बात रखकर प्रमाणज्ञान निमित्त को मिलाता है। निश्चय को झूठा सिद्ध करके निमित्त को मिलावे तो प्रमाण हुआ नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १५, शक्ति- १४, १५ गुरुवार, (द्वितीय) श्रावण शुक्ल ११, दिनांक २५-०८-१९७७

१४वीं शक्ति चली न? **जो अन्य से नहीं किया जाता और अन्य को नहीं करता, ऐसे एक द्रव्यस्वरूप...** यह द्रव्यस्वरूप शब्द पड़ा है न? इसलिए लोग ऐसा कहते हैं कि यह द्रव्य की बात है। द्रव्य की बात नहीं। यहाँ तो द्रव्य में शक्ति है, वह शक्ति पर्याय में व्याप्त है, उसे यहाँ द्रव्य कहते हैं। समझ में आया? एक द्रव्य अन्य से नहीं किया जाता। अपनी सम्यग्दर्शन पर्याय किसी अन्य से नहीं की जाती और सम्यग्दर्शन पर्याय अन्य को नहीं करती। समझ में आया?

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन...

पूज्य गुरुदेवश्री : (सम्यग्दर्शन) पर्याय का कार्य अन्य से नहीं कि राग, व्यवहार है तो सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई, ऐसा नहीं। इसी तरह केवलज्ञान मनुष्य और संहनन और ऐसा निमित्त है तो केवलज्ञान उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं है। पर का कार्य और पर का कारण केवलज्ञान पर्याय है ही नहीं। आहाहा!

दूसरे प्रकार से कहें तो केवलज्ञान पहले चार ज्ञान अथवा मोक्षमार्ग था तो मोक्षमार्ग कारण और केवलज्ञान कार्य, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! क्योंकि केवलज्ञान पर्याय अकार्यकारण है। उसमें अकार्यकारणशक्ति है। केवलज्ञान की पर्याय पूर्व के मोक्षमार्ग के कारण से उत्पन्न हुई, ऐसा भी नहीं। और राग को उत्पन्न करती है या निमित्त को उत्पन्न करती है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! ऐसी बात सूक्ष्म पड़े, इसलिए लोगों को (कठिन पड़ती है)। सत्य तो यह है। समझ में आया?

प्रत्येक शक्ति में अकार्यकारणशक्ति का रूप है। कहते हैं कि चारित्र की पर्याय जब उत्पन्न होती है, वह अपने द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न होती है, यह भी व्यवहार है। चारित्र की पर्याय में कारण द्रव्य है या राग, व्यवहाररत्नत्रय के कारण से निश्चयचारित्र की पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। आहाहा! समय-समय की निर्मल पर्याय में शक्ति के कारण से कहना, यह भी व्यवहार है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! उसी समय में जहाँ केवलज्ञान या सम्यग्दर्शन या सम्यक्चारित्र (या) अपनी अनुभूति में आनन्द की दशा उत्पन्न होना... आहाहा! उस आनन्द की दशा में व्यवहार कारण और आनन्ददशा कार्य,

ऐसा नहीं और वह आनन्द की दशा होने से पहले जो शुद्धता की अपूर्णता अथवा शुभभाव था, इस कारण से अनुभूति हुई, ऐसा भी नहीं है। समझ में आया? ऐसी बात है।

अकार्यकारणशक्ति। ज्ञान में, दर्शन में, आनन्द में, चारित्र में, वीर्य में प्रत्येक में अकार्यकारण है। आहाहा! अपना पुरुषार्थ—वीर्य जो पुरुषार्थ की जागृति होती है, उसमें कोई पर कारण है और वह पुरुषार्थ कार्य है, ऐसा भी नहीं। और वह पुरुषार्थ किसी का, पर का कारण है या वीर्य के कारण से, आत्मा के पुरुषार्थ के कारण से शरीर चलता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? इस अकार्यकारणशक्ति का अनन्त शक्ति में इसका रूप है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का प्रगट होना, वह द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न होता है, ऐसा कहने में आता है। सम्यग्दर्शन **'भूदत्थमस्सिदो खलु'** भूतार्थ के आश्रय से उत्पन्न होता है, ऐसा कहा जाता है, वह भी व्यवहार है। सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होने में कोई द्रव्य-गुण भी कारण नहीं और पर भी कारण नहीं, ऐसा पर्याय का स्वभाव है। सूक्ष्म है, भाई! सत् तत्त्व बहुत सूक्ष्म है। और यह अपूर्व बात है। समझ में आया? यह बात तो अकार्यकारण की हो गयी। अब आज तो पन्द्रहवीं शक्ति। आज तुम्हारे शिक्षण शिविर का पन्द्रहवाँ दिन है न? पन्द्रहवीं शक्ति। आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म हैं, ध्यान रखना! आहाहा!

परात्मनिमित्तकज्ञेयज्ञानाकारग्रहणग्राहणस्वभावरूपा परिणम्यपरिणाम-कत्वशक्तिः।

पर और स्व जिनके निमित्त हैं, ऐसे ज्ञेयाकारों तथा ज्ञानाकारों को ग्रहण करने के और ग्रहण कराने के स्वभावरूप परिणम्यपरिणामकत्व शक्ति। (-पर जिनके कारण हैं, ऐसे ज्ञेयाकारों को ग्रहण करने के और स्व जिनका कारण है, ऐसे ज्ञानाकारों को ग्रहण कराने के स्वभावरूप परिणम्यपरिणामकत्व-शक्ति।)।१५।

पर और स्व... है? **पर और स्व जिनके निमित्त हैं, ऐसे ज्ञेयाकारों...** अपने में ज्ञेयाकार ग्रहण करने की शक्ति है, पर ज्ञेयाकार ग्रहण करने की शक्ति है। यह प्रमाण हुआ। **तथा ज्ञानाकारों को ग्रहण करने के और ग्रहण कराने के स्वभावरूप...** समझ में आया? ज्ञानाकार अपना जो स्वभाव है, वह पर को ग्रहण कराने का स्वभाव है, तो वह प्रमेय है। परिणम्यशक्ति है, वह प्रमाण है और परिणामकत्व है, वह प्रमेय है। दो को एक

शक्ति गिनने में आया है। पर को ज्ञेयाकाररूप से ग्रहण करना, ऐसी अपनी परिणम्य-प्रमाण शक्ति है और अपनी शक्ति का जो स्वभाव है, पर को ग्रहण कराना, वह अपने में प्रमेय स्वभाव है। अरे! समझ में आया?

फिर से, आहाहा! कहते हैं कि आत्मा में प्रमाण नाम की एक शक्ति और प्रमेय नाम की शक्ति, दो मिलकर एक शक्ति है। प्रमाण और प्रमेय। परिणम्य, वह प्रमाण; परिणामकत्व, वह प्रमेय। दो शब्द है न? परिणम्यपरिणामकत्व। परिणम्य, वह प्रमाण। परिणामकत्व, वह प्रमेय। प्रमाण और प्रमेय दो होकर एक शक्ति है, इसका अर्थ कि पर के ज्ञेयाकार, जो अनन्त ज्ञेय वस्तु है, उसे विशेषरूप से अपने में ग्रहण करना, ऐसी प्रमाण नाम की शक्ति है। अपने प्रमाण में परवस्तु ज्ञेयाकार का ज्ञान हो, ज्ञेयाकार का कार्य नहीं, ज्ञेयाकार का ज्ञान यहाँ अपने स्वभाव में हो। आहाहा! अनन्त ज्ञेय हैं, उन्हें यहाँ ग्रहण करने का—जानने का स्वभाव है। ग्रहण करने का अर्थ जानने का। और अपना स्वभाव जो अनन्त है, वह पर के प्रमाण में प्रमेय होने की शक्ति है। पर को ग्रहण कराने की शक्ति है। आहाहा!

दो चीज़ सिद्ध की। अकेला आत्मा है, ऐसा नहीं। अकेले परज्ञेय हैं और आत्मा नहीं, ऐसा भी नहीं। ज्ञेय भी अनन्त हैं और ज्ञान में भी प्रमाणरूप अनन्त (स्वभाव) है। आहाहा! सूक्ष्म बात है। शक्ति का वर्णन है न? तो आत्मा में सामर्थ्यता (कितनी है, उसका वर्णन है)। पर का कर्ता या पर से अपने में कार्य हो, वह तो अपने में है ही नहीं परन्तु अपने स्वभाव में प्रमाण में परज्ञेयाकारों को ग्रहण करना, वह अपना स्वभाव है। और परज्ञेय में—परप्रमाण में अपने प्रमेयत्व के कारण से पर को ग्रहण कराने का स्वभाव है। ऐसी वस्तु। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा?

मुमुक्षु : जरा कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए धीरे से कहते हैं न! एक बात, दो बार, तीन बार, चार बार कहते हैं।

यह आत्मा जो है, उसमें प्रमाण और प्रमेय नाम की एक शक्ति है। वह प्रमाण और प्रमेय नाम की शक्ति का कार्य क्या? कि प्रमाण जो है, उसमें पर ज्ञेयाकार का ज्ञान करना, वह प्रमाण का कार्य है।

मुमुक्षु : पर के अकेले का ? स्व का नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो आ गया न ? ज्ञेयाकार। यहाँ तो प्रमाण है न ? तो पर ज्ञेयाकार को ग्रहण करने की शक्ति, ऐसी बात है। प्रमाण में पर ज्ञेयाकार विशेष जो है, उनका ज्ञान होना, वह अपना स्वभाव है। प्रमाण तो अपनी शक्ति है। समझ में आया ? वे सभी ज्ञेयाकार तो उसमें आत्मा भी आया। परन्तु सब ज्ञेयाकारों का प्रमाणज्ञान में ज्ञेयाकार का ज्ञान होना, वह अपनी शक्ति है। पर से अपने में कार्य होता है, वह कोई वस्तु नहीं। और पर को ग्रहण कराना। अपनी जो अनन्त शक्ति, अनन्त गुण स्वभाव है, उसमें एक प्रमेय नाम की शक्ति है, प्रमेय, जिस प्रमेय के कारण से परज्ञान के प्रमाण में प्रमेय को ग्रहण कराना, इसका स्वभाव है। भाई ! प्रमेय और प्रमाणशक्ति दो मिलकर एक (शक्ति) है। आहाहा !

इसका अर्थ ऐसा है, ऐसा कहना है कि आत्मा में पर और अनन्त ज्ञेय हैं, उनका ज्ञान होना, यह स्वभाव है कि पर की रचना करना या पर को बनाना, यह इसका स्वभाव नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? और अपने में जो अनन्त गुण आदि द्रव्यस्वभाव है, उसमें प्रमेयत्व है, इस कारण से परद्रव्य के प्रमाण में प्रमेयत्व को ग्रहण कराना, परज्ञान में ग्रहण कराना, यह इसका अपना स्वभाव है। आहाहा ! परिणम्य, यह प्रमाण हुआ; परिणामकत्व, यह प्रमेय हुआ। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बातें ! अब इन सेठियाओं ने तो सुना भी न हो।

मुमुक्षु : यह बात ही नहीं थी सुने कहाँ से ?

पूज्य गुरुदेवश्री : थी नहीं, बात सत्य है। लोगों को बेचारों को (सुनने को मिलता नहीं)। आहाहा ! कोई बाहर का बड़ा पत्र आया है कि भाई पढ़ते हैं। भाई जुगलकिशोर बहुत सरस वाँचन करते हैं, ऐसा लिखा है। सौ के लगभग लोग आते हैं। गाँव में दूषित वातावरण बहुत हो गया है। भिण्डवाले आनेवाले हैं। अरे रे ! प्रभु ! इस काल में ऐसी बात ! उन्हें तो यहाँ का साहित्य है, उसे पानी में डाल देना है। आहाहा ! क्या हो ?

मुमुक्षु : अपना ज्ञान पानी में डालते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी है। भगवान ! तुझे नुकसान है, प्रभु ! यह तो सत्

साहित्य है। आहाहा! उसका ज्ञान करना, वह तेरा स्वभाव है। ज्ञेय को पानी में डालना, वह तेरा स्वभाव नहीं है। पत्र आया है, तुम्हारा कोई है। नाम है। बड़ा पत्र आया है। ऐसा लिखा है, किसी को भेजो। बाबूभाई को या हुकमचन्दजी को। दो अभी प्रसिद्ध है न? ज्ञानचन्दजी और शिखरचन्दजी तो अभी अब प्रसिद्धि में आते हैं। परन्तु चाहे जिसे एक-दो भेजो। बात सच्ची। अट्ठाईस तारीख को, रविवार अट्ठाईस तारीख को सवेरे तूफान है। अब आज तो कितनी हुई? पच्चीस। दो दिन रहे। किसी को जाना। ऐसा उसमें मेरे प्रति लिखा है, किसी को कहो। मैंने तो किसी को अभी तक कहा नहीं। उसका लेख है। आहाहा! अरे रे! क्या हो? प्रभु! सत्साहित्य में तो यह वस्तु है। समझ में आया?

तेरी वस्तु में अनन्त ज्ञेयों को जानना, वह तेरा स्वभाव है परन्तु अनन्त ज्ञेयों की रचना करना या उनका कार्य करना, वह तेरे स्वभाव में नहीं है और उन ज्ञेय के स्वभाव में नहीं है। क्योंकि ज्ञेय का स्वभाव अपने में प्रमाणरूप से जो ज्ञेय का स्वभाव आता है, उसमें ज्ञेय का स्वभाव ऐसा नहीं कि पर से रचना हो। वह ज्ञेय—द्रव्य, गुण, पर्याय है, वह अपने ज्ञान के प्रमाण में ज्ञात हो, ऐसा स्वभाव है। अरिहन्त और त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर और सर्वज्ञ तथा पंच परमेष्ठी... समझ में आया? वे ज्ञेय हैं। उनको अपने प्रमाणज्ञान में जानने का स्वभाव है, परन्तु उनसे कुछ मिले, ऐसा स्वभाव नहीं है। नन्दकिशोरजी! ऐसी बातें हैं, भाई! आहाहा! समझ में आया?

पर जिसमें निमित्त है। अपने ज्ञानप्रमाण में पर निमित्त है। है न? स्व जिसे निमित्त है। अपना आत्मा पर को निमित्त है जनवाने में, पर को ग्रहण कराने में। समझ में आया? आहाहा! ऐसी शक्ति है, अब इसकी अपेक्षा भक्ति और पूजा करे तो लोगों को ठीक पड़े। बापू! वह तो भक्ति, पूजा होती है, वह राग अशुभ से बचने को शुभभाव होता है और वास्तव में तो समकिती को ही सच्ची भक्ति होती है। आहाहा! आया न? पंचास्तिकाय में आया है, टीका में आया है। सम्यग्दृष्टि को ही यथार्थरूप से भक्ति का शुभभाव होता है, उनको ही यथार्थ व्यवहार है। अज्ञानी को व्यवहार कहाँ आया? आहाहा! समझ में आया?

हम तो सम्प्रदाय में थे न? तो वहाँ चर्चा बहुत चलती थी। संवत् १९८३ के वर्ष में बहुत चर्चा हुई। एक सेठ थे, उन्होंने कहा कि सम्यग्दृष्टि होने के बाद मूर्तिपूजन है ही नहीं। जब तक मिथ्यादृष्टि हो, तब तक मूर्ति पूजा होती है। ऐसी बात चली। नन्दकिशोरजी!

यह तो १९८३ की बात है, पचास वर्ष हुए। बाबूभाई को अभी ४८ वर्ष हुए। यह तो पचास वर्ष पहले की बात है। आहाहा!

कहते हैं, उसने ऐसा कहा कि जब तक मिथ्यादृष्टि हो, तब तक मूर्ति की पूजा होती है। सम्यग्दृष्टि होने के बाद मूर्ति की पूजा नहीं होती। मैंने उनसे ऐसा कहा, सुनो! पचास वर्ष पहले। यथार्थ में तो सम्यग्दर्शन होता है, तब श्रुतज्ञान होता है। श्रुतज्ञान होता है, उसमें श्रुतज्ञान अवयवी है और निश्चय-व्यवहार, वे अवयवी के अवयव हैं। अवयवी शब्द (तब) नहीं था परन्तु इतना कहा कि श्रुतज्ञान होने के बाद दो नय होते हैं—निश्चय और व्यवहार। और व्यवहारनय को जो चार निक्षेप हैं—नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव वे ज्ञेय के भेद हैं। यहाँ निश्चय-व्यवहार यह नय के भेद हैं। वास्तव में तो सम्यग्दर्शन के पश्चात् ही व्यवहारनय होता है और व्यवहारनय में यह पूजनीय वस्तु है, वह निमित्त पड़ती है तो वास्तव में तो सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् पूजने का भाव व्यवहार आता है। समझ में आया? यह तो पचास वर्ष पहले की बात है। कहा, हम ऐसा नहीं मानते। इसमें आ गये, इसलिए हम मान लेंगे, (ऐसा नहीं है)। यहाँ तो हमें जँचे तो मानते हैं।

वास्तव में तो भगवान की प्रतिमा, वह ज्ञेय का भेद है। नाम निक्षेप, स्थापना निक्षेप, द्रव्य निक्षेप, भाव निक्षेप—ये ज्ञेय के भेद हैं। तब नय श्रुतज्ञान का भेद है। श्रुतज्ञान के भेद में निश्चय और व्यवहार आते हैं। व्यवहारनय से निक्षेप भगवान की प्रतिमा पूजनीय है, ऐसा सच्चा व्यवहार समकिती को ही आता है। है भले शुभभाव। समझ में आया? धन्नालालजी! हम स्थानकवासी में आ गये, इसलिए हम ऐसा मान लेंगे—ऐसा नहीं है। हम तो हमारे आत्मा का निश्चय करने (निकले हैं)। पचास वर्ष पहले! भाई! मार्ग यह है, कहा। हम ऐसे का ऐसा नहीं मानेंगे। हमें तो अन्दर जँचना चाहिए। वास्तव में तो व्यवहारनय समकिती को ही होता है, मिथ्यादृष्टि को नय कहाँ से आये? नय नहीं है तो निक्षेप का विषय भी समकित के बिना कहाँ से आया? समझ में आया? न्याय समझ में आया? यहाँ तो न्याय से बात समझ में आये, वह बात अनुभव में इसके ज्ञान में आना चाहिए न? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि आत्मा में एक ऐसी शक्ति ली—परिणम्यपरिणामकत्व। परिणम्य—प्रमाण और परिणामकत्व—प्रमेय। प्रमाण और प्रमेयरूप एक शक्ति है कि जिस प्रमाण में

पर निमित्त है, ज्ञान कराने में। और पर को ज्ञान कराने में अपना आत्मा निमित्त है। है? **पर और स्व जिनके निमित्त हैं, ऐसे ज्ञेयाकारों...** यह पर, यह पर। पर ज्ञेयाकारों को ग्रहण करने की अपने में प्रमाणज्ञान की शक्ति है। **तथा ज्ञानाकारों को ग्रहण करने के और ग्रहण कराने के स्वभावरूप...** आहाहा! है? **ज्ञानाकारों को ग्रहण करने के...** अर्थात् ग्रहण कराने के **स्वभावरूप परिणम्यपरिणामकत्व शक्ति।** आहाहा! महिलाओं को यह सूक्ष्म पड़े। वस्तु तो ऐसी है।

मुमुक्षु : बहुत बहने तैयार हो गयी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! पर जिसको निमित्त है। आत्मा को पर निमित्त है। ज्ञान में ज्ञेयाकारों का ग्रहण होना, वह पर निमित्त आत्मा में है। और अपना स्वरूप—स्व, पर को ग्रहण कराने में निमित्त है। उसके प्रमाणज्ञान में अपना प्रमेय / ज्ञान कराने का स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

यह शक्ति भी अनन्त शक्ति में एक-एक शक्ति में उसका रूप है। आहाहा! तो केवलज्ञान में भी परज्ञेयों को ग्रहण करने का स्वभाव है और केवलज्ञान में भी पर को ग्रहण कराने का, पर केवली आदि को ग्रहण कराने का प्रमेय स्वभाव है। आहाहा! इसका ज्ञान स्वभाव, ज्ञान स्वभाव पर को जानने में प्रमाणरूप है और ज्ञानादि अनन्त स्वभाव पर को ज्ञेय बनाने में, प्रमेय बनाने में, पर को ग्रहण कराने में समर्थ है। आहाहा! केवलज्ञान में आत्मा अपना स्वभाव ग्रहण कराने का निमित्तपना है। और केवलज्ञान को अपनी पर्याय में ग्रहण कराने का स्वभाव है। केवलज्ञान ऐसा है, ऐसा जानने का स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसी बातें।

मुमुक्षु : अभी समझ में नहीं आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : अधिक स्पष्ट करते हैं, भगवान! आहाहा! अरे रे! तू तो चैतन्यस्वरूप है न, नाथ! आहाहा! आबाल-गोपाल, आज आया न? १७-१८ गाथा। १७-१८ गाथा में आबाल-गोपाल आया। अर्थात् बालक से लेकर वृद्ध सब जीव को... आहाहा! अपनी ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय (आत्मा को) जानने का उसका स्वभाव है, ज्ञेय को जानता ही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सर्व प्राणी, बाल, वृद्धादि सर्व। अपनी ज्ञान की पर्याय में सब ज्ञेय को जानते ही हैं। ऐसा ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है।

आहाहा! पर्याय ने स्वयं को प्रमेय बनाया और स्वयं को प्रमाण बनाया पर को ग्रहण करने में। पर को ग्रहण किया, यह प्रमाण बनाया। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

यहाँ प्रमेयशक्ति और प्रमाणशक्ति दो को भिन्न नहीं लिया, दो होकर एक ली है। भगवान! तुझमें एक परिणम्यपरिणामकत्व नाम का गुण है। गुण कहो, शक्ति कहो, सत् भगवान का सत्त्व—कस कहो, माल कहो। यह तुम्हारे रुपये-बुपये के माल की यहाँ बात नहीं। इसमें है, उसकी बात है। यह ज्ञेयरूप जाननेयोग्य है, ऐसा तेरा स्वभाव है। ये पैसे मेरे हैं, ऐसा तेरा स्वभाव नहीं है। ऐ... बलुभाई! लक्ष्मी, मकान, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पुत्र सब ज्ञेयरूप से तेरे ज्ञान में जाननेयोग्य स्वभाव है। वे मेरे हैं, ऐसा कहीं तेरे स्वभाव में है नहीं। आहाहा! और तेरा स्वभाव भी, पर का पुत्र हो या पर पिता तेरे हों, (ऐसा नहीं है)। समझ में आया? पर को प्रमेय होना, पर के प्रमाण में प्रमेय होने का तेरा स्वभाव है परन्तु पर का पुत्र होना, पर तेरा पिता हो, ऐसी वस्तु नहीं है। आहाहा! लक्ष्मी आदि परज्ञेय को जानने का तेरा स्वभाव और ज्ञानी के ज्ञान में तू प्रमेय हो, ग्रहण कराने का तेरा स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? पोपटभाई! ऐसी बातें हैं। आहा! यह आठ लड़के हों, उनकी बहुएँ, मकान और बँगले, आठ के लिये भिन्न-भिन्न बँगले और उनके लिये भिन्न-भिन्न कपड़े, सबके लिये होते हैं न? पचास-पचास हजार, लाख-लाख के कपड़े... यह तो कहते हैं, सुन तो सही, प्रभु! वह चीज़ ज्ञेयरूप से तेरे ज्ञान में ज्ञात हो, ऐसी चीज़ है। आहाहा!

मुमुक्षु : हमारी मालिकी की हो जाये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : मालिक तो प्रमाणज्ञान का मालिक है। पर को ग्रहण किया, ऐसे प्रमाणज्ञान का मालिक है। प्रमेय का मालिक है? वह प्रमेय है न? प्रमाण में वह प्रमेय हुआ। और अपना प्रमेय पर के प्रमाण में गया। तो पर इस आत्मा का स्वामी है? केवलज्ञानी आत्मा के स्वामी हैं? आहाहा! मेरे भगवान, मेरे गुरु, तो कहते हैं सुन तो सही, प्रभु! आहाहा! वह तो ज्ञेय हैं। तेरे ज्ञान में जाननेयोग्य वे ज्ञेय हैं, परन्तु मेरे भगवान और मेरे गुरु, ऐसी तो कोई वस्तु नहीं है। समझ में आया? ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न? कोई चीज़ है, उसे जानने का स्वभाव है और कोई

ज्ञानानन्द स्वभावाला जीव है, वह तेरा ज्ञेय होकर, प्रमेय होकर, ज्ञात होनेयोग्य है, परन्तु पर का होने के योग्य तू नहीं और वह पर तेरे हों, ऐसी योग्यता तुझमें नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब व्यवहार की बातें। समझ में आया? ऐसा कहते हैं, भगवान को चौदह हजार साधु थे, इतनी छत्तीस हजार आर्यिकायें थीं, ऐसा आता है। यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! सुन तो सही! तेरे ज्ञानस्वभाव में उस ज्ञेय को जानने का—ग्रहण करने का अर्थ जानने का... है न?

पर और स्व जिनके निमित्त हैं, ऐसे ज्ञेयाकारों (पर) तथा ज्ञानाकारों (स्व) को ग्रहण करने के... ज्ञानाकार ग्रहण करने का। है न? ज्ञेयाकार ग्रहण करने का तथा ज्ञानाकार ग्रहण कराने का। है? सब शब्द में अन्तर है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अरे! यह झगड़ा। ऐसा क्या... ?

यह दवा के नाम से झगड़े उठे। अरे! परन्तु यह क्या झगड़ा? होमियोपैथी दवा करते थे तो हमको तो पहले कहा था। भाई 'राजेन्द्र' है, राजेन्द्र आया न? तो उसने कहा, ऐल्कोहल नहीं है, इसलिए मैंने ली। फिर पुस्तक पढ़ी तो ऐल्कोहल है (ऐसी खबर पड़ी)। रामजीभाई को रात्रि में बतायी थी। राजकोट में पढ़ी। ऐल्कोहल है, अपने यह दवा नहीं लेंगे। ख्याल नहीं था, उसने कहा तो मैंने छोड़ दी, तो लोगों के सिर डाला। हिम्मतभाई और वजुभाई और चन्दुभाई तथा वे चन्दुभाई डॉक्टर—चार। ऐ..ई..! चाण्डाल चौकड़ी चारों बनाये। अर र र! अरे! भगवान! यह नहीं शोभता। अरे! नाथ! ऐसी बात निकले, उसमें यह बात कहाँ है? भाई! और यह जो अभी दो महीने दवा की, दो महीने की परन्तु उसमें रक्त में तो प्रतिशत बढ़ गया। इसलिए मैंने छोड़ दी। समझ में आया? डॉक्टर ने कहा कि रक्त में प्रतिशत बढ़ गया है तो यह दवा काम की नहीं। मैंने छोड़ दी। तो लोग कहें, हिम्मतभाई, चन्दुभाई, वजुभाई और चन्दुभाई डॉक्टर ने चारों ने छुड़ा दी। ऐसी वह क्या बात करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा होता है? आहाहा! जहाँ अमृत के सागर की बात उछलें,

वहाँ ऐसी बात शोभे ? आहाहा ! जगत में कोई प्राणी विरोधी है ही नहीं। आहाहा ! सभी प्राणी तो ज्ञेय—ज्ञान में जाननेयोग्य है। उसका विरोध करना कि वह ऐसा है और वह ऐसा है, अरे ! प्रभु ! क्या करता है ? समझ में आया ? जिसे दुनिया दुश्मन कहे, वह भी ज्ञेय। ज्ञान में जाननेयोग्य है, बस ! दुश्मन है, यह मान्यता आत्मा में है ही नहीं। बाबूभाई ! कहो, नन्दकिशोरजी ! यह (बात) तो वकालत—लॉजिक से चलती है, भगवान ! लॉजिक से न्याय से भगवान का मार्ग है। ऐसा का ऐसा मानना, ऐसा नहीं है। उसकी जैसी स्थिति, मर्यादा है, उस प्रकार का ज्ञान करना, प्रतीति करना, वह वस्तु का स्वरूप है। आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं कि पर ज्ञेयाकार अपने ज्ञान में निमित्त है और अपने ज्ञानाकार पर ज्ञान में निमित्त है। है न ? **पर जिनके कारण हैं, ऐसे ज्ञेयाकारों को...** स्व जिसका निमित्त है, ऐसे ज्ञानाकार। पर जिसके निमित्त हैं, ऐसे ज्ञेयाकार, उन्हें ग्रहण करने के, उन ज्ञेयाकारों को ग्रहण करने की **और स्व जिनका कारण है, ऐसे ज्ञानाकारों को ग्रहण कराने के स्वभावरूप...** आहाहा ! कितनी शक्ति ! अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त तो ऐसा कहते हैं। आहाहा ! ज्ञेयाकार को ग्रहण करना और ज्ञानाकार को पर में ग्रहण कराना।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इसमें आ गया। प्रमाण सब आ गया न ? आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भगवान ! मार्ग ऐसा सूक्ष्म है। तीर्थंकर सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा कहते हैं कि मेरे ज्ञान में भी तू ज्ञेयरूप से जाननेयोग्य है। और मैं भी केवलज्ञानी के ज्ञान में जनवाने के—ग्रहण करवाने के योग्य हूँ। परन्तु मैं केवलज्ञानी उनका हूँ, ऐसा मेरे स्वभाव में नहीं है। समझ में आया ? आहाहा !

इसी प्रकार स्त्री, पुत्र, लक्ष्मी, मकान तो प्रभु ! तेरे ज्ञान में वे ज्ञेयाकार ग्रहण करने का—जानने का स्वभाव है और सामने ज्ञान हो, उसमें तेरा प्रमेयत्व ग्रहण कराने की—जनवाने की ताकत है, परन्तु उसका पुत्र हो या उसकी स्त्री हो, ऐसा कोई स्वभाव नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : .... पुत्र है, ऐसा जानने का ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुमनभाई पुत्र भी नहीं यहाँ तो। भाई ने घर की बात की। मासिक

आठ हजार का वेतन लाता है न! सुमनभाई इकलौता पुत्र है और पचास वर्ष की उम्र है। आठ हजार। छह हजार का वेतन और एक हजार का.... क्या कहलाता है वह? बोनस। पेन्शन। और सात सौ किराया। आठ हजार का वेतन। रामजीभाई के आत्मा का पुत्र है या नहीं? आहाहा! अरे रे!

जिसे यहाँ लोग ऐसा कहते हैं कि यह मेरी अर्धांगिनी है, हमारी घरवाली है, अरे! सुन तो सही, प्रभु! तेरी घरवाली तो उस ज्ञेय का ज्ञान करे, वह पर्याय तेरी घरवाली है। आहाहा! समझ में आया? यह दरबार, जमींदार और दरबार, दो-दो लाख की आमदनी और... है न? भाई है या नहीं? कहाँ गये? देवजीभाई गये? देवजीभाई बैठे हैं। हमारे इतने खेत हैं और इतनी उपज है। तेरे स्वभाव में वह है, ऐसा जानने का स्वभाव है। देवजीभाई! पटेल है, पटेल। दस-बारह घर है। मन्दिर बनाया है, दिगम्बर मन्दिर बनाया है। बहुत होशियार हैं। किसान... किसान। कृषिकार है। अस्सी हजार की आमदनी बारह महीने में है। अस्सी हजार की आमदनी है। यह तो कहते हैं कि वह सब ज्ञेय-जाननेयोग्य है। आहाहा! वकालात में जो भाषा निकलती है और उसमें पैसा मिलता है, वह सब ज्ञेय का ज्ञान करने का तेरा स्वभाव है। आहाहा! और सामने प्रमाणज्ञानवाले ज्ञानी हों तो तेरा स्वभाव ज्ञेय होकर, प्रमेय होकर पर में जनवाने का तेरा स्वभाव है, परन्तु पर का करना और तेरा स्वभाव पर का हो जाये, और परज्ञेय तेरा हो जाये, ऐसा कोई स्वभाव नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म पड़े, इसलिए लोगों को (कठिन लगता है)। मूल वस्तु तो यह है। समझ में आया? ख्याल तो आवे। पहले तो कहा था कि ध्यान रखना।

भगवान आत्मा में एक ऐसी शक्ति—सामर्थ्य—स्वभाव—गुण है कि परज्ञेयों को जानने का स्वभाव है। ग्रहण करने का अर्थ जानने का स्वभाव है, और तेरा स्वभाव ज्ञानी के ज्ञान में प्रमेय होने का स्वभाव है। परन्तु पर का शिष्य होने का और पर का गुरु होने का, मैं पर का गुरु हूँ—ऐसा कोई स्वभाव नहीं है। आहाहा! गजब बात है न!

मुमुक्षु : शक्ति की अपेक्षा से...

पूज्य गुरुदेवश्री : इस शक्ति का पर्याय में परिणमन हो, उसकी बात चलती है। शक्ति की प्रतीति हुई, तब शक्ति द्रव्य-गुण में तो अनादि से थी, प्रतीति हुई तो शक्ति का परिणमन पर्याय में आया। पर्याय में आया, वह पर्यायस्वभाव इसका ऐसा है कि परज्ञेय का

ज्ञान करने का पर्याय में स्वभाव है। ध्रुव में तो कहाँ (जानने का परिणमन है ?) समझ में आया ? आहाहा ! पच्चीस-पचास बीघा, साठ, दो सौ बीघा... अपने यह पोपटभाई हैं या नहीं ? दो सौ बीघा ? कितनी जमीन है ? छह सौ बीघा, लो ! इनकी छह सौ बीघा जमीन है। यह पोपटभाई ! यह दो अरब और चालीस करोड़ (वाले) के बहनोई हैं। गुजर गया न ! छह सौ बीघा जमीन है। इनके साले के पास दो अरब चालीस करोड़ है। दो अरब चालीस करोड़। इनकी बहिन उनके घर में है। कहते हैं, किसका पैसा ? भाई ! तुझे खबर नहीं। आहाहा ! उस परचीज़ की अनन्तता और बहुलता वह तेरे ज्ञान में जाननेयोग्य है, परन्तु वह पर की बहुलता मेरी है, ऐसा मानने का स्वभाव नहीं है, वह तो तेरी विपरीत दृष्टि है। कहो, मणिभाई ! ऐसी बात है। आहाहा !

पर का ज्ञान जो केवलज्ञान हो या मति-श्रुतज्ञान आदि हो, उसमें तेरी वस्तु पर में ज्ञेय हो, पर को ग्रहण कराने का, ज्ञेय होकर ग्रहण कराने का स्वभाव है परन्तु तू पर का हो जाये, ऐसा कोई स्वभाव नहीं है। आहाहा ! बण्डीजी ! यह प्रोफेसर है, भगवान !

मुमुक्षु : पाप का धन्धा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाप का धन्धा ? ऐसा कहते हैं, प्रोफेसर सब पाप का धन्धा करते हैं। आहाहा ! आत्मा किस प्रकार से ज्ञाता-दृष्टा है, वह किस प्रकार से सिद्ध करते हैं ! समझ में आया ? आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है, उसे किस प्रकार से सिद्ध करते हैं ? कि भगवान ! तू तो ज्ञाता-दृष्टा है न ! तो ज्ञेय को जानने का तेरा स्वभाव है न ! आहाहा ! और दूसरे जो ज्ञाता-दृष्टा हैं, उन्हें तो तू प्रमेय—जनवाने का स्वभाव है, परन्तु उनका होने का स्वभाव तुझमें नहीं है। आहाहा ! यह विवाद।

मुमुक्षु : ... वहाँ जायें तो बदल जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाजरा और तल ऐसा दिखाई, उसमें घुसे तो मानो घुस गया उसमें। देखने जाये न अन्दर ? यहाँ तक बाजरा पके। एक 'अलवर'... कैसा ? अलवर नहीं। 'अलियाबाड़ा'। हम एक बार अलियावाड़ा गये थे। सम्प्रदाय में थे। स्पेशल आये थे। सामने लोग बहुत। तो गाँव में हो.. हा... हो गया। ओहोहो ! महाराज ! बाजरा के डूंडा लाये। इतने डूंडा। इतने में तो बाजरा और उसका... क्या कहलाता है वह ? तना, तना इतना और बाजरा इतना। जामनगर के पास अलियावाडा है। उसके तना का भाग छोटा और

उसमें जो बाजरा पके वह इतना अधिक लम्बा! क्या कहलाता है वह? डूंडा। डूंडा... डूंडा। तुम्हारे नाम भूल जाते हैं। वह बाजरा ऐसे पचास-पचास बीघा में पका हो और यह दरबार जैसे अन्दर देखने जाये... आहाहा! यह तो बाजरा पका, ज्वार पकी, तल पके।

मुमुक्षु : हिन्दी में कहो, महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : तल भाषा नहीं आती? बाजरा पकता है न? पकता है, उसे क्या कहते हैं? बाजरा पके। उसे देखने खेत में जाये। खेत में जरा घूमे। अन्दर जाये तो ओ..हो..हो..! (हो जाये)। क्या है? प्रभु! वह चीज़ तो ज्ञेय है, तेरे ज्ञान में ज्ञात होने की योग्यता है और तेरी वस्तु है, वह पर के ज्ञान में जनवाने का स्वभाव है। मेरा मानना, यह तीन काल में स्वभाव नहीं है। वेणीप्रसादजी! ऐसी बातें हैं। आहाहा! कहो, पोपटभाई! यह दो करोड़ और हसमुख और छह लड़के, कहते हैं, ज्ञेय है। ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य है। मेरे हैं—ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : लड़के हैं, ऐसा जाननेयोग्य है?

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़के नहीं, ज्ञेय है। आहाहा!

कोष्ठक में। **पर जिनके कारण हैं...** पर जिनके कारण हैं अर्थात् ज्ञेय। अपने ज्ञान में कारण हैं। **ऐसे ज्ञानाकारों को ग्रहण करने के...** परज्ञेय के आकार अर्थात् विशेष स्वभाव को जानने का और **स्व जिनका कारण है...** पर को। **ऐसे ज्ञानाकारों को...** अपने ज्ञानाकार जो हैं, वे पर ज्ञान में ग्रहण कराने का स्वभाव है, जनवाने का स्वभाव है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में ऐसा मान्यता में आता है कि मैं तो परिणम्यपरिणामकत्व शक्तिवान हूँ तो जितने ज्ञेय हैं, उन्हें जाननेयोग्य मैं हूँ और पर ज्ञान में मैं प्रमेय होकर जनवानेयोग्य हूँ। सम्यग्दृष्टि को ऐसी प्रतीति होती है। आहाहा! समझ में आया? यह शक्ति की प्रतीति होती है, यह आ गया।

प्रमाण और प्रमेय, परिणम्य अर्थात् प्रमाण, परिणामकत्व अर्थात् प्रमेय। यह मेरी शक्ति है। यह शक्तिवान मैं हूँ, ऐसी जहाँ प्रतीति हुई तो समकिती को अपने अतिरिक्त शरीर, वाणी, मन, कर्म, रागादि सब... आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प उठता है, उसे भी ज्ञेयरूप से मैं जाननेयोग्य हूँ। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का जो विकल्प, राग उठता है, उसे ज्ञेयरूप से मेरे ज्ञान में जाननेयोग्य है परन्तु वह राग मेरा है, ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा!

यह बड़ा विवाद। नहीं; शुभयोग तो मोक्ष का मार्ग है और शुभयोग से आत्मा का शुद्धभाव होता है। यहाँ तो प्रभु इनकार करते हैं। समझ में आया? शुभयोग भी ज्ञेय है। ज्ञेय को जानने का—ग्रहण करने का (स्वभाव है)। यह आ गया, व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। बारहवीं गाथा। चारों ओर से देखो तो एक ही बात सिद्धान्त खड़ा होता है। आहाहा! बारहवीं गाथा में आया न? ग्यारह में आया कि अपना स्वभाव सत्यार्थ, भूतार्थ का आश्रय लेकर जिसे सम्यग्दर्शन हुआ तो साथ में ज्ञान में भी हुआ। अब उसे जो राग होता है, उस राग को ज्ञेयरूप से जानने का स्वभाव है। परन्तु राग मेरा स्वभाव है और राग से ज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं है। राग का ज्ञान हुआ, वह राग से हुआ, ऐसा भी नहीं है। वह राग का ज्ञान तो अपने प्रमाण स्वभाव के कारण से राग का ज्ञान हुआ है। क्या कहा?

मुमुक्षु : वहाँ तो ऐसा लिखा है कि व्यवहार द्वारा उपदेश करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ ऐसा है ही नहीं। विवाद भी यह है न! वह तो पद की रचना ऐसी है। टीका में तो (स्पष्ट है)। दिल्ली में सेठ ने ऐसा प्रश्न किया था। शाहूजी ने। पण्डितजी ने कहा कि देखो! व्यवहार का उपदेश करना। अरे! उपदेश की बात नहीं, प्रभु! वहाँ तो यह पद्य में ऐसा आया है परन्तु इसकी टीका में तो अमृतचन्द्राचार्य ने कहा है कि उस-उस समय में जो कुछ रागादि आते हैं, उन्हें व्यवहार से-उपचार से जाननेयोग्य है, ऐसा जानना। आहाहा! संस्कृत में 'तदात्वे' शब्द है। बारहवीं गाथा में 'तदात्वे' है। उस-उस समय में अर्थात् क्या? जिस समय में राग की तीव्रता हुई, उस समय में स्व और पर राग का ज्ञान करने की ताकत अपने से ज्ञान होता है। समझ में आया? और दूसरे समय में जरा मन्द राग हुआ तो उसी समय में ज्ञान की पर्याय अपने से स्व-परप्रकाशरूप राग को ज्ञेय और मैं उसका जाननेवाला, (ऐसा जानता है) वह भी व्यवहार है। राग सम्बन्धी जो मेरी ज्ञान की स्व-परप्रकाशक पर्याय हुई, उसका मैं जाननेवाला और वह मेरा ज्ञेय, यह भी व्यवहार है। आहाहा! यह बात सेटिका में आ गयी है। सेटिका-कलई है न? आहाहा! बहुत सूक्ष्म, भाई! है न?

क्रमवर्ती ज्ञानपर्याय पर को जाने, यह भी व्यवहार है। यह तो लिखाया था न? आहाहा! क्या कहा? अपने ज्ञान की पर्याय में रागादि ज्ञेय हैं, उन्हें जानने का स्वभाव है, परन्तु वह राग और ज्ञेय है तो ज्ञान की पर्याय पर को प्रकाशित करती है, ऐसा नहीं है।

अपनी पर्याय की ताकत से स्व और पर को जानने की पर्याय उत्पन्न हुई, वह राग के कारण से नहीं। आहाहा! समझ में आया? अब यह विवाद बड़ा, विवाद सोनगढ़ के नाम से। अरे! भगवान! प्रभु! तेरा मार्ग... तेरी चीज़ ऐसी है। राग आया, उसे उस समय में उस सम्बन्धी और अपने सम्बन्धी ज्ञान करना, वह तेरा स्वभाव है। समझ में आया? परन्तु राग से, व्यवहार से ज्ञान की पर्याय निश्चय प्रगट हुई, यह तो है नहीं परन्तु राग है तो उस सम्बन्धी की अपनी ज्ञान की पर्याय हुई, ऐसा भी नहीं है। अपनी ज्ञान की स्व-परप्रकाशक पर्याय हुई, उसमें उस ज्ञेय का ज्ञान हुआ। समझ में आया? यह भी व्यवहार है। आहाहा! और ज्ञान की पर्याय को जाननेवाला मैं, यह भेद हुआ, यह भी व्यवहार है। मैं तो ज्ञायक हूँ। बस! ऐसा परिणमन हुआ, इसका नाम ज्ञायक कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात तो है।

एक शक्ति एक घण्टे चली। थोड़ी। बाकी तो पार नहीं, भाई! अन्दर में जो इसकी गम्भीरता भासित होती है, उतना तो कहने की ताकत नहीं है। आहाहा! सन्तों और केवली इसका स्पष्टीकरण करे, गजब करते हैं! आहाहा! अरे रे! ऐसे परमात्मा, सन्तों का भरत में विरह पड़ा। समझ में आया? आहाहा!

पर जिनके कारण हैं... कौन? अपने स्वभाव के अतिरिक्त जो ज्ञेय रागादि पर वे जिनके कारण हैं। अपने ज्ञान में ज्ञेयरूप से ज्ञात हो, ऐसा कारण है। **ऐसे ज्ञेयाकारों को ग्रहण करने के और स्व जिनका कारण है, ऐसे ज्ञानाकारों को ग्रहण कराने के...** पर के ज्ञान में ग्रहण कराना। मैं ज्ञेय हूँ, बस! पर के ज्ञान में मैं ज्ञेय हूँ। आहाहा! अपने ज्ञान में वे पर ज्ञेय हैं। पर के ज्ञान में मैं ज्ञेय हूँ, बस! इतनी बात है। आहाहा! ऐसी शक्ति माननेवाले को शक्तिवान द्रव्य की जब प्रतीति होती है, तो पर्याय में राग से मुझे ज्ञान हुआ, यह तो नहीं, निश्चय पर्याय जो हुई, वह राग से हुई, ऐसा तो नहीं परन्तु राग है तो परप्रकाशक पर्याय हुई, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! धन्नालालजी! यह सर्राफा बाजार चलता है। आहाहा! आया? क्या कहा?

स्व जिनका कारण है, ऐसे ज्ञानाकारों को ग्रहण कराने के स्वभावरूप परिणम्यपरिणामकत्व-शक्ति है। परिणम्य में प्रमाण लेना और परिणामकत्व में लेना प्रमेय। पर का ज्ञान करने की ताकत और पर में प्रमेय होने की ताकत, बस! इस शक्ति में तो बहुत भरा है! अनन्त शक्ति में इस शक्ति का रूप पड़ा है। इतना विस्तार है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १६, शक्ति- १५ से १७ शुक्रवार, (द्वितीय) श्रावण शुक्ल १३, दिनांक २६-०८-१९७७

समयसार, शक्ति का अधिकार चलता है। पन्द्रहवीं शक्ति चली। उसमें क्या कहा? एक-एक शक्ति में तो बहुत भण्डार भरे हैं। ऐसा कहते हैं कि आत्मा में एक परिणम्यपरिणामकत्व नाम की शक्ति है। उसका अर्थ कि अपने अतिरिक्त परज्ञेयों को ग्रहण करने का—जानने का जिसका स्वभाव है, वह परिणम्य (शक्ति)। और अपना स्वभाव परज्ञान में ग्रहण कराने का स्वभाव, उसका नाम प्रमेय। परिणम्यपरिणामकत्व, प्रमाण और प्रमेय, दोनों का अर्थ यह है। इस शक्ति का स्वभाव (ऐसा है कि) अपने स्वभाव में पर ज्ञेयों को ग्रहण करना अर्थात् जानना स्वभाव है परन्तु परद्रव्य का कुछ करना, ऐसा स्वभाव नहीं है। निश्चय से तो प्रमाणज्ञान—परिणम्य का अर्थ चलता है, इन रागादि का ज्ञान करे। समझ में आया? राग का कर्तापना, वह स्वरूप में नहीं है। आहाहा! बड़ा विवाद, विवाद पूरा यह है न अभी? एक शक्ति समझे एक धारा से, जयसेनाचार्य कहते हैं कि एक भाव यथार्थ समझे, उसे सर्व भाव यथार्थ (समझ में आ जाते हैं)। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि आत्मा में परिणम्यपरिणामकत्व नाम की एक शक्ति है। एक शक्ति अनन्त गुण में व्यापक है और अनन्त गुण में वह निमित्त है। और वह शक्ति ध्रुवरूप उपादान है और क्षणिक पर्याय में जो परिणति होती है, वह क्षणिक उपादान है। अपनी पर्याय में पर को जानना—ग्रहण करना, ऐसी परिणम्यशक्ति है और अपना स्वभाव पर के ज्ञान में पूरे द्रव्य, गुण और पर्याय, पर्याय में जानने का स्वभाव, इतनी बात परिणम्य (शक्ति में) की। परिणम्य कहा न? वह तो परज्ञेयों को अपने में जानने का स्वभाव है। आहाहा! अनन्त सिद्ध और अनन्त पंच परमेष्ठी ज्ञेय हैं, तो ज्ञेय को जानने का स्वभाव है परन्तु पंच परमेष्ठी मेरे हैं और मैं उनका शिष्य हूँ, ऐसी कोई चीज़ नहीं। आहाहा! समझ में आया? और अपने द्रव्य-गुण-पर्याय... परिणम्य में पर्याय की बात आयी। पर ज्ञेय अनन्त निगोद के जीव हैं, अनन्त सिद्ध हैं, अनन्त केवली हैं और त्रिकाल के पंच परमेष्ठी—णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं, उन त्रिकालवर्ती अरिहन्त को ज्ञान की पर्याय में जानने का स्वभाव है। आहाहा! और अपने द्रव्य-गुण और पर्याय पर के ज्ञान में ग्रहण कराने का स्वभाव है। पर को तो ग्रहण करने का स्वभाव है नहीं। समझ में आया?

परद्रव्य में जो ज्ञाता—प्रमाणज्ञानवाले हैं, उन्हें अपने द्रव्य, गुण, पर्याय ग्रहण कराने, ऐसा प्रमेय स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? पर को प्रमेय बनावे और पर का प्रमेय स्वयं बने। आहाहा! पोते समझे? स्वयं। थोड़े गुजराती शब्द आ जाते हैं। समझ में आया? यह परिणम्यपरिणामकत्वशक्ति एक भी यदि यथार्थरूप से समझे (तो सब बात यथार्थरूप से समझ में आ जाये)। यहाँ मलिन परिणाम का प्रश्न तो है नहीं। शक्ति का वर्णन है न? शक्ति शुद्ध है तो उसका परिणमन भी शुद्ध है। अशुद्ध परिणमन की यहाँ बात नहीं है। द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध, पर्याय शुद्ध। इन तीन की यहाँ बात है। जो शुद्ध पर्याय क्रमवर्ती है, राग क्रमवर्ती की यहाँ बात नहीं है। आहाहा! ... व्यवहार से, राग से ज्ञान की निश्चय पर्याय होती है, यह बात तो है ही नहीं, परन्तु राग का ज्ञान करने का—ग्रहण करने का स्वभाव है कि यह राग है, बस! उस राग को ग्रहण करने के स्वभाव में भी अपना ज्ञान जो राग को जानता है, ऐसी जो स्व-परप्रकाशक ज्ञान की पर्याय है, वह राग है तो स्व-परप्रकाशकज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। ऐसा मार्ग है। आहाहा! समझ में आया? वेणीप्रसादजी!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इतनी बात है, भाई! तेरी प्रतीति में भरोसा आया नहीं। आहाहा! परिणम्यपरिणामकत्वशक्ति—स्वभाव, द्रव्य की शक्ति, सत् का सत्त्व, उस शक्ति का संग्रहालय करनेवाला द्रव्य। आहाहा! उसमें ऐसा आया, परद्रव्य को अपना मानना, पंच परमेष्ठी को अपने मानना, ऐसा उसका स्वभाव नहीं है—ऐसा कहते हैं। नन्दकिशोरजी! यह तो आनन्द की बात है। आहाहा! ज्ञेय को जानने का स्वभाव है। यह भी व्यवहार कहने में आता है। आहाहा! आत्मा अपने को जाने, यह भी व्यवहार है। भेद पड़ा न? (इसलिए) यह बात सेटिका (की गाथा ३५६ से ३६५) में आ गयी। समझ में आया? आत्मा तो ज्ञायक है, बस! आत्मा ज्ञान द्वारा जाने, ऐसा भेद भी जिसमें नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह वस्तु सम्यग्दर्शन का विषय है। धर्मचन्दभाई! आहाहा! समझ में आया? यह तो अलौकिक बातें, प्रभु! सर्वज्ञ वीतराग की अमृतधारा है। आहाहा! यह साधारण चीज़ नहीं है। समझ में आया?

परिणम्यपरिणामकत्वशक्ति में प्रमाण होने का और पर में प्रमेय होने का स्वभाव है।

पर को अपना मानना या पर से अपने को मानना, पर से अपने में कोई कार्य होता है और अपने से पर में कार्य होता है, ऐसी शक्ति है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : पर के काम तो सब करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : रामजीभाई भी करते थे, वकालत में दलील नहीं करते थे? कौन दलील करता था? वह तो जड़ की पर्याय है। उस जड़ की पर्याय को जानने का स्वभाव आत्मा का है परन्तु जड़ की पर्याय को करना, यह आत्मा का स्वभाव नहीं है। समझ में आया? आहाहा! गजब बात की है।

दूसरी बात, निगोद अनन्त जीव है। एक प्याल, लहसुन के एक राई जितने टुकड़े में तो असंख्य शरीर। और एक शरीर में अभी तक सिद्ध हुए, छह महीने आठ समय में छह सौ आठ सिद्ध होते हैं, तो अभी तक सिद्ध हुए, उनसे अनन्त गुणे एक शरीर में जीव। उस जीव की दया पाली इसलिए है, ऐसा नहीं, यह कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह बड़ी चर्चा हुई थी। तेरापंथी और स्थानकवासी के बीच हुई थी। तेरापंथी... और स्थानकवासी... बड़ी चर्चा हुई थी। .... ऐसा शब्द है। स्थानकवासी में बत्तीस सूत्र हैं न? श्वेताम्बर में पैंतालीस मानते हैं। उसमें यह एक शब्द पड़ा है। हमारे तो पहले से बहुत चर्चा हुई है। वहाँ ऐसा शब्द है, भगवान ने प्रवचन क्यों कहा? कि सर्व जीव... तब बाईस ... वाला ऐसा कहते हैं, रक्षा के लिये कहा। तब तेरापन्थी ऐसा नहीं मानते। रक्षा कर नहीं सकते, ऐसा कहे। पर की रक्षा करना, वह तो पाप है। उस पाप का अर्थ रक्षा कर सकता है, इसकी तो खबर भी नहीं। यह तो पर की रक्षा का भाव है, वह पाप है—ऐसा (वे) मानते हैं। समझ में आया? दोनों के बीच एक महीने चर्चा हुई। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान ने... कहा ऐसा आया तो सर्व जीव की रक्षा के लिये कहा है, ऐसा भी नहीं। सर्व जीव की दया पालने के लिये कहा है, ऐसा नहीं। लालचन्दभाई! आहाहा! वे ज्ञेय हैं, ज्ञान में जानneयोग्य है, इसलिए बताया है। मणिभाई! ऐसी बातें हैं, भाई! आहाहा! लोग अब सत् को समझने के लिये जिज्ञासु तो हुए हैं। आज ही फिर से पत्र आया है, भाई! कोटा का आया है, कोई हुकमचन्दजी हैं। किसी को भेजो। गये हैं, पाँच-छह व्यक्ति गये हैं। ज्ञानचन्दजी भी गये हैं। वहाँ भोपाल में... क्या कहलाता है? पण्डित

युगलकिशोर। ...वहाँ... अरे..रे..! भाई! यह विवाद और यह क्या? बापू! प्रभु! तेरा स्वभाव क्या है, इसकी तुझे खबर नहीं है और तू यह क्या कहता है?

यहाँ तो कहते हैं कि शुभराग से धर्म तो होता नहीं परन्तु शुभराग है तो ज्ञान उससे जानता है, ऐसा भी नहीं है। अपनी पर्याय का स्व-परप्रकाशक जानने का स्वभाव है, उसे जानता है। अर्थात् कि पर को जानता है, ग्रहण करता है। और अपने को ग्रहण कराता है ज्ञानी को, पर को तो कुछ... समझ में आया? ऐसा उसका स्वभाव अनादि-अनन्त है। आहाहा! यह बात तो कल चली थी। अब आज तो उससे भी थोड़ी सूक्ष्म बात है। ध्यान रखना, भगवान! यह तो भगवान के घर के प्रवाह की बात है। समझ में आया? सोलहवीं शक्ति। आज तुम्हारा सोलहवाँ दिन है। आहाहा! और सोलह किरण से पूर्ण भगवान है, वह शक्ति यहाँ बतायेंगे। क्या कहते हैं?

अन्यूनाति-रिक्तस्वरूपनियतत्वरूपा त्यागोपादानशून्यत्वशक्तिः।

जो कम-बढ़ नहीं होता, ऐसे स्वरूप में नियतत्वरूप (-निश्चित्तया यथावत् रहनेरूप) त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति।१६।

जो कम-बढ़ नहीं होता... आहाहा! ज्ञायकस्वरूप जो ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, उसमें घट-बढ़ कभी नहीं होती। क्या कहते हैं? भगवान आत्मा भरितअवस्थ—परिपूर्ण अवस्थस्वरूप है। अपने बन्ध अधिकार में लिया है। सर्व जीव भरितअवस्थ है। भरितअवस्थ (अर्थात्) अवस्था नहीं। निश्चय-स्थ। पूर्ण पूर्ण स्वभाव से भरपूर भगवान आत्मा। परमात्मस्वरूप अपना परमात्मा है। आहाहा!

कहते हैं कि अपने परमात्मस्वरूप में... अशुद्धता की तो यहाँ बात ही नहीं, यहाँ तो शुद्धता की अपूर्ण पर्याय है, तो अन्दर शुद्धता में बहुत शुद्धता है, ऐसा नहीं है। और शुद्धता की पूर्ण पर्याय केवलज्ञान में होती है तो वहाँ शुद्धता में कमी हो गयी, ऐसा नहीं है। समझ में आया? फिर से, एक-दो बार कहें तो ... आहाहा! सुजानमलजी! ऐसी बात है। कहाँ गये? छगनभाई! नहीं आये? आहाहा! सुनो, भाई!

एक बार यह कहा था, 'गगन मण्डल में गौआ विहाणी, वसुधा दूध जमाया' वसुधा

अर्थात् पृथ्वी अर्थात् श्रोता। श्रोता के कान में गौआ—गौ अर्थात् वाणी।'गगन मण्डल में गौआ विहाणी वसुधा दूध जमाया, सहु रे सुनो रे भाई, वलोणुं वलोवे तो...' मन्थन नहीं करते ?'सहुं रे सुनो रे भाई, वलोणुं वलोवे तो तत्त्व अमृत कोई पाये, अवधु जोगी गुरु मेरा, अे सबका करे...' आहाहा! अमृत की वाणी भगवान के श्रीमुख से। गौ, गौ का अर्थ वहाँ गाय लिया है। गौ का अर्थ वाणी, गौ का अर्थ वाणी होता है। भगवान की वाणी ॐ ध्वनि आकाश में निकली है। यहाँ आकाशवाणी नहीं कहते ? रेडियो में कहते हैं। वह तो सब ठीक। यह तो भगवान पाँच सौ धनुष ऊँचे, पाँच हजार धनुष ऊँचे। समवसरण में ॐ ध्वनि निकली, वह आवाज। गौ अर्थात् आवाज।'गगन मण्डल में गौआ विहाणी, वसुधा दूध जमाया, सुगुरा होवे सो भरभर पीवे प्यारा, नगुरा जाये रे प्यासा, अवधु सो जोगी रे गुरु मेरा...' आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि एक बार सुन तो सही, नाथ! तू कैसी चीज़ है ? कि तेरी चीज़ में कभी घट-बढ़ नहीं होती। आहाहा! सिद्धपद की पर्याय होती है, इतनी पूर्ण शुद्धता आयी तो अन्दर शुद्धता में न्यूनता हो गयी, ऐसा नहीं है। लालचन्दभाई! आहाहा! चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन की निर्मल पर्याय हुई, पूर्ण पर्याय नहीं तो शुद्धता में विशेष शुद्धता है, ऐसा नहीं। वह तो है, वह है। आहाहा! समझ में आया ? मार्ग प्रभु का... भाई! अभी बाहर के कर्ता (हो), यह करना और यह करना और पूजा, भक्ति... यह भाव होते हैं परन्तु यह तो शुभ है। यहाँ इसकी तो बात ही नहीं है। शक्ति में इसका वर्णन ही नहीं है।

शक्ति में तो जो शक्ति है, वह द्रव्य-गुण में तो अनादि से व्याप्त है। परन्तु शक्ति की जब प्रतीति होती है, तब पर्याय में शक्ति का कार्य आता है। आहाहा! कहते हैं, शक्ति का कार्य अन्दर निर्मल पर्याय आया तो निर्मल पर्याय अल्प है तो वहाँ बहुत शुद्धता बहुत है या नहीं ? नहीं। वहाँ तो शुद्धता परिपूर्ण है, ऐसी है। आहाहा! ज्ञानचन्दजी! प्रभु का ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा!

घटन अर्थात् पर्याय में शुद्धता बहुत बढ़ गयी तो अन्दर शुद्धता कम हो गयी, ऐसा नहीं है। बढ़न—पर्याय में अशुद्धता थोड़ी हुई तो वहाँ अन्दर में बहुत शुद्धता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! शिखरचन्दजी! ऐसी बातें प्रभु की हैं, भाई! आहाहा! **कम-बढ़ नहीं होता...** घट और बढ़ कभी नहीं होती। आहाहा! समझ में आया ? **ऐसे स्वरूप में**

नियतत्वरूप (निश्चित्तया यथावत् रहनेरूप)... आहाहा! भगवान ध्रुवस्वभाव ज्ञायकभाव वह तो है। आहाहा! यथास्थित रहता है। उसमें—द्रव्यस्वभाव में कुछ घट-बढ़ हो, ऐसा कभी नहीं होता। आहाहा! एक बात।

घट-बढ़ रहित नियतत्वरूप शक्ति है, तो उस शक्ति का परिणमन तो पर्याय में होता है। समझ में आया? तो पर्याय में भी घट-बढ़ नहीं, ऐसा उसे लागू पड़ेगा या नहीं? आहाहा! पर्याय में भी घट-बढ़ नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। क्योंकि भले शुद्धता अल्प हो, परन्तु वह त्रिकाली को सिद्ध करती है। वह पर्याय यदि घटी हुई हो तो त्रिकाली सिद्ध नहीं होता। समझ में आया? ऐसी बात है। आहाहा!

यहाँ अशुद्धता की बात नहीं है। अशुद्धता का ज्ञान अपनी पर्याय में अपने से होता है। ऐसी क्रमवर्ती पर्याय में त्यागोपादानशक्ति का परिणमन होता है तो यहाँ कहते हैं कि त्यागोपादानरहित, वस्तु जो है, वह तो त्यागोपादानरहित है। पर का त्याग करना और पर का ग्रहण करना, वह तो स्वरूप में है ही नहीं, परन्तु राग का त्याग करना या ग्रहण करना, वह स्वरूप में नहीं है। आहाहा! अब निर्मल पर्याय का प्रगट होना और उसका त्याग होना और नयी पर्याय का उत्पन्न होना, वह है। परन्तु वह जो है, आहाहा! जो निर्मल पर्याय हुई, वह भी घट-बढ़ बिना की पर्याय है। ऐई! लालचन्दभाई! धीरे से समझना। यह तो वीतराग का मार्ग! आहाहा! गणधर और सन्त इसके अर्थ करें, वे कैसे होंगे? आहाहा! यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं है। बात सब करे, शुद्ध ऐसा है और ऐसा है, परन्तु वह शुद्ध वस्तु क्या है? (इसकी खबर नहीं होती)। पूर्ण शुद्ध है, उसमें से शुद्धता आती है तो शुद्धता अपूर्ण थोड़ी आयी, इसलिए वहाँ अन्दर में शुद्धता विशेष है, (ऐसा नहीं है)। और शुद्धता बहुत आयी तो वहाँ शुद्धता कम है, ऐसा है? आहाहा!

जो कम-बढ़ नहीं होता... घटना और बढ़ना नहीं होता। अब यहाँ तो वापस थोड़ा पर्याय में लेना है। समझ में आया? जो शक्ति-गुण ऐसा है तो वह द्रव्य में व्यापक है, अन्दर में शक्ति में शक्ति है, अब जब उसका भान हुआ, उसकी यहाँ बात है। भान हुआ तो घट-बढ़ रहित शक्ति है, उसका परिणमन तो आया। जैसे गुण और द्रव्य में घट-बढ़ नहीं है, वैसे पर्याय में घट-बढ़ नहीं है, ऐसी (पर्याय होती) है। आहाहा! ज्ञानचन्दजी!

समझ में आया ? अरे ! परमात्मा का विरह पड़ा और भगवान की वाणी रह गयी। समयसार ! आहाहा ! साक्षात् शब्दब्रह्म। वाणी शब्दब्रह्म ! आहाहा ! अरे रे ! विरोध करे, प्रभु ! तुझे खबर नहीं। ऐसा साहित्य हो, उसमें राग का कर्ता और राग से लाभ न माने, वह साहित्य खराब है, ऐसा वे लोग मानते हैं। अरे ! प्रभु ! यह झगड़ा है न ? ... परसों कोटा में तूफान होगा। अरे रे ! क्या करते हैं ? भगवान !

तेरी चीज़ घट-बढ़ रहित है, नाथ ! वास्तव में तो पर्याय का ग्रहण करना और पर्याय का छोड़ना, वह भी द्रव्य में नहीं है। लालचन्दभाई ! पर का त्याग करना और ग्रहण करना, यह मानना मिथ्यात्व है। आहाहा ! क्योंकि पर के त्याग-ग्रहण आत्मा कहाँ (करे) ? आत्मा ने रजकण पकड़े हैं ? स्त्री-कुटुम्ब को भी पकड़ा है कि छोड़े ? धन्नालालजी !

मुमुक्षु : कथंचित् पकड़ा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी पकड़ा नहीं। सर्वथा नहीं पकड़ा, ऐसा कहते हैं। सेठ स्पष्ट कराते हैं, हों ! समझ में आया ? आहाहा !

भगवान अनन्त आनन्द का नाथ प्रभु, उसकी शक्ति में और स्वभाव में घट-बढ़ नहीं होती परन्तु उसकी जब परिणति होती है... क्योंकि वह तो द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्याप्त है। समझ में आया ? अनन्त गुण में भी वह निमित्त है और अनन्त गुण में इस शक्ति का रूप है और अनन्त शक्ति का इस शक्ति की पर्याय में भी रूप है। आहाहा ! समझ में आया ? तब कहो कि वस्तु में घट-बढ़ भले नहीं, परन्तु जब उस पर्याय का परिणमन होता है तो उसमें भी घट-बढ़ नहीं, ऐसा लागू पड़ता है। लालचन्दभाई ! आहाहा ! अर्थात् वह अपूर्ण शुद्ध है और पूर्ण शुद्ध है, ऐसा भेद भले हो परन्तु वह अपूर्ण शुद्ध है, वह पूरे द्रव्य को सिद्ध करती है। बराबर पूरी है। एक पर्याय को निकाल डालो तो अनन्त पर्याय का पिण्ड द्रव्य सिद्ध नहीं होता। समझ में आया ? समझ में आये इतना समझो। यह तो... आहाहा ! गजब बात है !

एक के बाद एक शक्ति का वर्णन अन्दर सूक्ष्म होता जाता है। फिर अगुरुलघु लेंगे। आहाहा ! यह तो ख्याल में आवे, ऐसी बात है। अगुरुलघु तो ख्याल में न आवे, ऐसी बात बाद में कहेंगे। समझ में आया ? क्योंकि वह तो केवली जान सकते हैं। श्रुतज्ञान में इतनी

ताकत नहीं कि अगुरुलघु पर्याय, षट्गुणहानिवृद्धि (जान सके)। आहाहा! प्रतीति कर सकता है। समझ में आया? आहाहा! लोगों को शंका पड़ती है कि जब वस्तु है, पूर्ण अवस्थित, भरितअवस्थ शब्द है न? भाई! बन्ध अधिकार में बन्ध विनाशार्थ यह भावना करना। निर्विकल्पोअहं। भरितअवस्थअहं। मैं अभेद हूँ, और भरितअवस्थ—अवस्थ अर्थात् पर्याय नहीं, भरितअवस्थ—निश्चय शक्ति से भरपूर भरा हुआ हूँ। आहाहा! ऐसी अनन्त शक्ति से पूर्ण भरपूर हूँ। यह कहा था। बन्ध अधिकार में कहा था। है इसमें? नहीं? है, है।

राग का सम्बन्ध—बन्ध है, उसके विनाशार्थ—नाश करने के लिये विशेष भावना—खास भावना कही जाती है। कैसी भावना करना? सहज शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभावोअहं। स्वाभाविक शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभाव से मैं परिपूर्ण हूँ। आहाहा! समझ में आया? यह तो एक बार कहा था न? १९६४ के वर्ष, संवत् १९६४। हम पालेज से माल लेने बाहर जाते थे। भरुच, बड़ोदरा, मुम्बई, अहमदाबाद। १८ वर्ष की उम्र में माल लेने वड़ोदरा गये थे। वहाँ अनुसूया का नाटक था। सती अनुसूया। भरुच के किनारे नर्मदा है और वहाँ अनुसूया नदी है। दोनों बहिनें थीं। हों! फिर नदी का नाम पड़ा है। उस अनुसूया का नाटक देखने हम गये थे। उस अनुसूया को पुत्र नहीं था। बाई स्वर्ग में जाती थी। वे लोग मानते हैं न, अपुत्रस्य गति नास्ति। पुत्र न हो, उसे गति नहीं। क्योंकि पुत्र होवे तो... क्या कहलाता है? श्राद्ध... श्राद्ध। श्राद्ध रखे। श्राद्ध में तो कौवे आवे, तेरा पिता कौवा होकर आयेगा? सब गप्प उठाया है।

वहाँ अनुसूया बाई थी। बड़ा नाटक था। फिर उस बाई को कहा, स्वर्ग की गति नहीं मिलेगी, पुत्र होना चाहिए। क्या करना? नीचे गिर और जो मिले, उसके साथ विवाह कर। नीचे अन्धा ब्राह्मण था, उस अन्धे ब्राह्मण के साथ विवाह किया। उसे पुत्र हुआ। बाई पुत्र को झूलाती थी (और गाती थी), निर्विकल्पो बेटा! तू शुद्धोसी, निर्विकल्पोसी, उदासीनोसी। ये तीन शब्द याद रह गये हैं। बाकी बहुत शब्द बोलती थी। अपने यहाँ... शब्द हैं। बहुत वर्ष हो गये। (संवत्) १९६४ के वर्ष। कितने वर्ष हुए? ६९। सत्तर में एक कम वर्ष। सत्तर समझे न? सात और शून्य। आहाहा! वह कहती थी, बेटा! तू शुद्ध है, निर्विकल्पो, उदासीनो। आहाहा! जो नाटक में बात थी, वह अभी सम्प्रदाय में रही नहीं। यह तो राग

का कर्ता है और राग से ऐसा होता है। अरे! प्रभु! क्या करता है तू यह? समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, सहज शुद्ध ज्ञानानन्द... स्वाभाविक शुद्ध ज्ञानानन्द एक स्वभाव। यहाँ एक कहा न? घट-बढ़ नहीं। एकरूप स्वभाव। उसमें घट-बढ़ त्रिकाल स्वभाव में कभी नहीं होती। निर्विकल्पोअहं। मैं अभेद हूँ। मैं उदासीन हूँ। पर से मेरा आसन भिन्न है, ज्ञेय से मेरा आसन—मेरी स्थिति भिन्न है। पर से मैं उदास हूँ। निरंजन निजशुद्धात्म सम्यक्श्रद्धानज्ञानअनुष्ठान आचरणरूप निश्चयरत्नत्रयात्मक निर्विकल्प समाधि संजात। निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न वीतराग सहजानन्दरूप सुखानुभूति। सुखानुभूति लक्षण में वह ज्ञात होता है। आहाहा! व्यवहार से, राग से और निमित्त से ज्ञात होता है, ऐसी चीज़ नहीं है। समझ में आया?

स्वसंवेदनज्ञान संवेद्यो प्राप्य भरितवस्तु अहं। यह शब्द है। भरितअवस्थ। पूर्ण, पूर्ण, पूर्ण... ज्ञानरस, आनन्दरस, श्रद्धारस, शान्तरस, चारित्ररस, स्वच्छतारस, प्रभुतारस, इन सब रस से भरपूर—भरित पूर्ण हूँ। आहाहा! समझ में आया? धर्मी को यह भावना करना चाहिए, ऐसा कहते हैं। बारह भावना करने की अपेक्षा यह भावना (करना)। आहाहा! राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ, पंचेन्द्रिय विषय व्यापार, मन-वचन-काया व्यापार से रहित हूँ। एक शब्द पड़ा रहा, छापने में भूल हुई होगी। द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से मैं रहित हूँ। जड़कर्म, नोकर्म—शरीर, वाणी, भावकर्म—दया, दान के विकल्प आदि, उनसे मैं शून्य हूँ। अपने स्वभाव से भरितअवस्थ हूँ। मैं पर से शून्य हूँ। समझ में आया? प्रवचनसार में यह आता है। अपने से अशून्य हूँ, पर से शून्य हूँ। अपने से अशून्य हूँ अर्थात् पूर्ण हूँ, पर से शून्य हूँ। रागादि से मैं त्रिकाल शून्य हूँ। आहाहा!

ख्याति, पूजा, लाभ, श्रुत-अनुभूत भोगाकांक्षारूप निदान, माया, मिथ्याशल्य... सर्व विभाव परिणाम रहितोअहं। शून्यअहं। पर से मैं त्रिकाल शून्य हूँ। आहाहा! संसार का जो उदयभाव है, उससे तो मैं शून्य हूँ। आहाहा! अब यहाँ (लोग) कहते हैं कि उदयभाव से कल्याण होगा। आहाहा! जगतत्रयी—तीन लोक में तीन काल में सर्व जीव सम्पूर्ण स्वभाव से भरपूर है, ऐसी भावना करो। सर्व भगवन्तस्वरूप हैं। आहाहा! निगोद के जीव भी सम्पूर्ण स्वभाव से पूर्ण हैं। भले एक शरीर में अनन्त जीव हों, परन्तु एक-एक जीव पूर्ण स्वभाव से भरपूर है। यह कौन माने? आहाहा! दया पालने के लिये निगोद कहा है,

ऐसा नहीं। वे जीव अनन्त हैं, उनका ज्ञान ग्रहण करने के लिये कहा है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि सर्व जीवा जगतत्रये—तीन लोक में, कालत्रये—तीनों काल में, मन-वचन-काय, कृतकारितअनुमोदे शुद्धनिश्चयनयेन तथा सर्वजीवा। आहाहा! निरन्तर भावना कर्तव्य। निरन्तर यह भावना करना, ऐसा कहते हैं। ऐ... मणिभाई! अरे... अरे...! यहाँ कहाँ लागू पड़ा? घट-बढ़ नहीं। पूर्ण वस्तु। सभी सर्व आत्मा भगवान है। आहाहा! वेदान्त कहता है एक आत्मा सर्व व्यापक है। ऐसा नहीं है। पूरे लोक में सभी भगवान आत्मा ही आत्मा विराजते हैं। भिन्न-भिन्न हैं। पर्याय में अशुद्धता हो, शुद्धता हो, उसका लक्ष्य छोड़ दे। स्वरूप से तो भगवान है, स्वरूप से निर्विकल्प शुद्ध चिदानन्द भरितअवस्थ है। आहाहा! निगोद के जीव एक शरीर में अनन्त। एक जीव के साथ कार्मण और तैजस दो शरीर, तथापि वे आत्मा तो परिपूर्ण ध्रुवस्वरूप भरितअवस्थ है। आहाहा! समझ में आया?

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि यह पूर्ण वस्तु कम-बढ़ रहित है। अब अन्तर कितना? कि कम-बढ़ नहीं होना। यह तो वीतराग की वाणी है, बापू! यह कहीं वार्ता-कथा नहीं है। एक-एक शब्द में कितना गूढ़ भरा है! आहाहा! **जो कम-बढ़ नहीं होता, ऐसे स्वरूप में...** त्रिकाली **नियतत्वरूप (-निश्चित्तया यथावत् रहनेरूप)...** जैसा है, वैसा त्रिकाली रूप भगवान आत्मा। आहाहा! **त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति।** यह शक्ति ऐसी है कि राग का त्याग करे या राग को ग्रहण करे, इससे यह चीज़ शून्य है। आहाहा! ऐसी बात है।

समयसार ३४वीं गाथा में आया न? भाई! राग का त्यागकर्ता नाममात्र आत्मा में है। परमार्थ से राग का त्यागकर्ता भी आत्मा नहीं है। आहाहा! यह तो स्वरूप की स्थिरता हुई, वहाँ राग की उत्पत्ति नहीं हुई तो राग का त्याग किया, ऐसा व्यवहार से कहने में आया है। समझ में आया? आहाहा! चारित्र उसे कहते हैं कि स्वरूप परिपूर्ण भरा है, उसकी प्रतीति सहित स्वरूप में स्थिर होना, वह स्थिर होने में राग का त्याग चारित्रगुण करता है, वह नाममात्र है। परमार्थ से राग का त्याग भी आत्मा को लागू नहीं पड़ता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! जैन में जन्मे, उसे भी अभ्यास नहीं। घर में पूँजी क्या है (इसकी खबर

नहीं)। पिताजी की पूँजी हो तो सम्हाले। चाबी का दृष्टान्त दिया था न? यह चाबी क्या है? आहाहा!

कहते हैं, पर्याय में भी त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति का परिणमन होता है। कम-बढ़ नहीं, ऐसा पर्याय में लागू पड़ता है, भाई! आहाहा! धीरे से समझना। न समझ में आये तो रात्रि में इस सम्बन्धी प्रश्न करना। आहाहा! यहाँ तो यह प्रभु पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पर के त्यागग्रहण से शून्य, ऐसी इसमें शक्ति है, गुण है, स्वभाव है। तो उस स्वभाव की जहाँ प्रतीति हुई, स्वसन्मुख होकर स्व का आश्रय लेकर जहाँ ज्ञान हुआ तो पर्याय में भी इस त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति का परिणमन पर्याय में भी आया। वह पर्याय भी त्यागोपादान से शून्य है। आहाहा! क्योंकि एक भी पर्याय हो, चाहे तो सम्यग्दर्शन की शुद्ध पर्याय हो, यदि इस पर्याय को निकाल डाले तो पूरा द्रव्य सिद्ध नहीं होगा। समझ में आया? यहाँ शुद्ध की बात है, हों! अशुद्ध की बात यहाँ नहीं है।

शुद्धपर्याय छोटी में छोटी सम्यग्दर्शन की पर्याय हो, तो भी वह पर्याय पूर्ण द्रव्य को सिद्ध करती है, साबित करती है। इसलिए पर्याय को पूर्ण कहने में आता है। कहो, चिमनभाई! ऐसी बातें हैं, भाई! आहाहा! अरे रे! इसके सम्प्रदाय के जन्में उन्हें जैन परमेश्वर क्या है? जैन कौन होंगे? (इसकी खबर नहीं होती)। जैन कोई सम्प्रदाय नहीं। जैन कोई कल्पना से खड़ा हुआ मार्ग नहीं। वह तो वस्तु (स्वरूप है)। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन प्रवचन का मर्म।' आहाहा!

ज्ञायकभाव परिपूर्ण प्रभु, उसमें एक शक्ति ऐसी है तो प्रत्येक गुण की पर्याय भी पूर्ण भरितअवस्थ है, उसका रूप उसमें आया या नहीं? बण्डीजी! क्या कहा, समझ में आया? ज्ञानगुण की सम्यक् पर्याय हुई तो उसमें भी यह त्यागोपादानशक्ति का रूप पर्याय में है, ऐसा इसमें भी रूप है। आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया? थोड़ी सूक्ष्म, ऐसा कहते हैं, हों! आहाहा! सन्त—दिगम्बर मुनि इसका स्पष्टीकरण करते हों... ओहोहो! आत्मा को ऐसे हथेली में बताते हैं। ऐसे आत्मा को बताया है।

प्रत्येक गुण की पर्याय भी त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति का रूप उसमें है। आहाहा! ज्ञान की पर्याय भी राग का त्याग करे या राग को ग्रहण करे, यह पर्याय में नहीं है। ज्ञान

की पर्याय में नहीं है। ऐसे श्रद्धा की पर्याय में मिथ्यात्व का त्याग करे, यह श्रद्धा की पर्याय में नहीं है। आहाहा! ऐसे ही चारित्र की पर्याय में राग का अभाव करे, यह चारित्र की पर्याय में नहीं है। आनन्द की पर्याय प्रगट हुई, उसमें दुःख का त्याग करे, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग। दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त ऐसे झरने कहीं नहीं हैं। अमृत के झरने बहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान! तू परिपूर्ण है न नाथ! और परिपूर्ण में से पर्याय हुई, वह भी परिपूर्ण है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! अल्प है न? भले अल्प हो, और पूर्ण केवल (ज्ञान) हो। आहाहा! क्षयोपशम समकित की पर्याय हो, क्षायिक की पर्याय हो, आहाहा! क्षयोपशमज्ञान की पर्याय हो, क्षायिक केवलज्ञान की पर्याय हो... आहाहा! चारित्र की निर्मल पर्याय अल्प हो और चारित्र की पूर्ण पर्याय हो, वह भी एक-एक पर्याय पूर्ण को सिद्ध करती है। यह आया था न? नय, उपनय का समुदाय वह द्रव्य है। आया था न? संस्कृत में आया था। धवल में आया था। नय, उपनय का समुदाय वह भगवान आत्मा। उसका विषय। आहाहा! ऐसी बात। बापू! तेरे घर की बातें बड़ी है न, भाई! तू कितना बड़ा है? कि तेरी पर्याय में शुद्धता हो तो भी तेरी महिमा में न्यूनता हो गयी, ऐसा नहीं है। आहाहा!

त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति। त्याग-उपादानशून्यत्वशक्ति, हों! ग्रहण—उपादान, त्याग अर्थात् त्याग। ग्रहण और त्याग से शून्य आत्मा है। आहाहा! पर्याय में भी त्यागोपादानशक्ति का जो परिणमन आया तो वह शक्ति द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्याप्त हुई और तीनों में व्याप्त हुई तो अनन्त शक्ति की पर्याय में भी वह व्याप्त हुई। समझ में आया? आहाहा! गजब! बड़ा समुद्र है। यह समुद्र तो साधारण है। स्वयंभूरमण समुद्र असंख्य योजन में है। यह तो अनन्त भाव से भरा है। आहाहा! अनन्त भाव से भरी हुई जिनवाणी, श्रीमद् में आता है न? 'अनन्त अनन्त भावभेद से भरेली' जिनवाणी। वह जिनवाणी जानी उसने जानी है, बापू! आहाहा! समझ में आया? लो, कितनी हुई? सोलह हुई। अंक भी सोलह है। पूर्ण। तुम्हारे शिक्षण-शिविर का सोलहवाँ दिन चलता है। इसमें बहुत भरा है। थोड़ा-थोड़ा कहा। थोड़ा लिखा बहुत जानना, नहीं आता? थोड़ा लिखा उसमें बहुत जानना, मण्डप की शोभा है तो तुम्हें आना है। इसी प्रकार यहाँ थोड़ा कहा बहुत जानना और अपने आत्मा की शोभा बढ़ाना। धन्नालालजी!

सत्रह। क्रमसर लिया है, देखो! क्रमसर। आहाहा! यह बात बैठना (कठिन पड़ती है)। व्यवहार, व्यवहार, व्यवहार... व्यवहार की तो यहाँ बात भी नहीं की है। व्यवहार राग का ज्ञान करता है, वह भी व्यवहार है। राग का ज्ञान तो अपनी पर्याय से अपने कारण से होता है। क्या करे? लोगों को भड़कावे, ऐ... यह अकेली निश्चय की बात है, निश्चयाभास है। एकान्त है। अरे! प्रभु! सुन तो सही। यह सम्यक् एकान्त की बात है, सम्यक् एकान्त की बात है। और सम्यक् एकान्त का ज्ञान हो, उसे ही पर्याय में अपूर्णता आदि का ज्ञान हो, उसे अनेकान्त कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? अरे! इसमें विवाद और झगड़ा। अरे रे! जहाँ राग का त्याग भी स्वरूप में नहीं... आहाहा! यह तो पर का त्याग करे, कुटुम्ब-दुकान कुछ छोड़े, उसने संसार छोड़ा। अरे! सुन तो सही, प्रभु! मैंने छोड़ा, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो सातवें गुणस्थान की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चौथे गुणस्थान की (बात है), ऐसा कहते हैं, यह तो निर्विकल्प हो (उसकी बात है)। ऐसा कहकर स्पष्टीकरण कराते हैं। आहाहा! यह तो सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की बात है। समझ में आया?

षट्स्थानपतितवृद्धिहानिपरिणतस्वरूपप्रतिष्ठत्वकारणविशिष्टगुणात्मिका अगुरुलघुत्वशक्तिः।

षट्स्थानपतित वृद्धिहानिरूप से परिणमित, स्वरूप-प्रतिष्ठत्व का कारणरूप (वस्तु के स्वरूप में रहने के कारणरूप) ऐसा जो विशिष्ट (-खास) गुण है उस-स्वरूप अगुरुलघुत्व शक्ति। इस षट्स्थानपतित वृद्धिहानि का स्वरूप 'गोम्मटसार' ग्रन्थ से जानना चाहिए। अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्यारूप षट्स्थानों में पतित-समाविष्ट-वस्तुस्वभाव की वृद्धिहानि जिससे (-जिस गुण से) होती है और जो (गुण) वस्तु को स्वरूप में स्थिर होने का कारण है, ऐसा कोई गुण आत्मा में है; उसे अगुरुलघुत्वगुण कहा जाता है। ऐसी अगुरुलघुत्वशक्ति भी आत्मा में है।।१७।

अब सत्रह। **षट्स्थानपतित...** यह बहुत सूक्ष्म है, इससे भी सूक्ष्म है। क्या कहते हैं?—कि आत्मा में जो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और केवलज्ञान आदि पर्याय है, उस पर्याय में

ऐसी कोई चीज़ है, अगुरुलघुस्वभाव है। यद्यपि अगुरुलघुस्वभाव तो अनन्त गुण में है। वह अगुरुलघुस्वभावशक्ति है, वह अनन्त गुण में नहीं, परन्तु अगुरुलघुस्वभाव का रूप अनन्त शक्ति-प्रत्येक में है। ज्ञान की पर्याय में भी अगुरुलघुपना है। दर्शन की पर्याय में अगुरुलघुपना है। एक समय में षड्गुण वृद्धि होती है और षड्गुण हानि (होती है)। समय एक। भाई ने जरा उतारा है परन्तु अन्तर है। दीपचन्दजी ने उतारा है। अनन्तवें भाग अर्थात् आठ गुण, असंख्यवें भाग उतारा है, यह तो... किया। यह तो एक समय में षड्गुण हानि और षड्गुण वृद्धि। यह केवलीगम्य बात है। श्रुतज्ञान में समाहित हो जाये तो फिर केवलज्ञान की महिमा क्या ? आहाहा!

केवलज्ञान की पर्याय में भी एक समय में षड्गुण हानि-वृद्धि होती है। केवलज्ञान तो है, वैसा है, तीन काल-तीन लोक को जानता है। हानि के समय घट जाये और वृद्धि के समय बढ़ जाये, ऐसा नहीं है। ऐसा कोई पर्याय का स्वभाव है, जो सर्वज्ञ ने कहा, परमागम में कहा, वह परमागम से मानना चाहिए। यह पंचास्तिकाय में बात है। आगम से बात मानना चाहिए। आहाहा! अभी त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति की बात भी पर्याय में पूर्ण मानना कठिन पड़ती है। यहाँ तो एक समय की पर्याय में क्षायिक समकित की पर्याय हो तो भी अगुरुलघु का पर्याय में षड्गुणहानि (होती है)। षड्गुण हानि अर्थात् अनन्त गुण हानि, असंख्य गुण हानि, संख्य गुण हानि; अनन्त भाग हानि, असंख्य भाग हानि, संख्य भाग हानि—यह छह बोल। है ? षड्स्थानपतित का अर्थ चलता है। षड्स्थानपतित—षट् स्थान के आश्रित **वृद्धिहानिरूप से परिणमित,...** आहाहा! पहले में तो कम-घट नहीं है, ऐसा कहा था। सर्वज्ञपर्याय में।

यहाँ कहते हैं कि एक-एक गुण की एक-एक पर्याय में ऐसी कोई गम्भीर वस्तु है कि एक समय में ज्ञान की पर्याय में, दर्शन की पर्याय में, वीर्य की पर्याय में... अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए हों, अरे! सिद्ध की पर्याय में... आहाहा! षड्गुण हानि और षड्गुण वृद्धि। यह पर्याय में ऐसा कोई स्वभाव भगवान ने देखा है, वह आगम से मानना चाहिए। पर से ख्याल आ जाये, ऐसी वस्तु नहीं है। आहाहा! समझ में आया ?

केवलज्ञान की पर्याय में षड्गुण हानि। हानि तो केवलज्ञान कम हो जाता है ?

केवलज्ञान में षड्गुण वृद्धि। तो केवलज्ञान बढ़ जाता है ? आहाहा! बहुत तो यह पर्याय का ऐसा कोई स्वभाव है कि षड्गुण हानि अर्थात् अनन्त भाग हानि, असंख्य भाग हानि, संख्य भाग हानि। समझ में आया ? इसी तरह अनन्त गुण वृद्धि, असंख्य गुण वृद्धि, संख्य गुण वृद्धि। आहाहा! षड्स्थानपतित—षड्स्थान के आश्रित **वृद्धिहानिरूप से परिणमित,...** परिणमित (अर्थात्) वर्तमान पर्याय, हों! वर्तमान प्रत्येक गुण की परिणमती पर्याय में षड्गुणहानिवृद्धिरूप पर्याय होती है। भगवानगम्य है। आहाहा! ऊपर की त्यागोपादानशक्ति में तो थोड़ा ख्याल आवे, ऐसी बात थी।

यहाँ तो कहते हैं, **षट्स्थानपतित वृद्धिहानिरूप से परिणमित, स्वरूप-प्रतिष्ठत्व का कारणरूप...** देखो! स्वरूप की प्रतिष्ठा इसमें है। षड्गुण हानि-वृद्धि हो, यह स्वरूप की प्रतिष्ठा है, स्वरूप का स्वरूप ऐसा है। आहाहा! छह बोल समझे ? अनन्त गुण हानि, असंख्य गुण हानि, संख्य गुण हानि। इसी तरह अनन्त भाग हानि, असंख्य भाग हानि, संख्य भाग हानि। यह छह बोल हुए।

मुमुक्षु : एक समय में... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय में। एक समय में छह रूप एक साथ।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, छह रूप एक साथ। एक समय में छह रूप। एक समय में। एक समय में छह रूप तो हानि... परन्तु उसी समय में अनन्त गुण वृद्धि, असंख्य गुण वृद्धि, संख्य गुण वृद्धि। अनन्त भाग वृद्धि, असंख्य भाग वृद्धि, संख्य भाग वृद्धि, एक ही समय में है। बारह बोल एक समय में है। पहले तो कहा, अगम्य बात है। समझ में आया ? प्रत्येक गुण की एक समय की पर्याय में षड्गुण हानि और षड्गुण वृद्धि, समय एक। एक समय में षड्गुण हानि और दूसरे समय में षड्गुण वृद्धि, ऐसी बात नहीं है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने जैसा देखा, वैसा कहा है। उन सबके ज्ञान में ख्याल में आ जाये तो फिर केवलज्ञान की महिमा क्या ? लालचन्दभाई! आहाहा! विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १७, शक्ति- १६ से १८ शनिवार, (द्वितीय) श्रावण शुक्ल १४, दिनांक २७-०८-१९७७

समयसार, शक्ति का अधिकार चलता है। शक्ति अर्थात् आत्मा जो सत् वस्तु त्रिकाली अविनाशी है, उस सत् का सत्त्व—शक्ति। द्रव्य है, वह गुणी है और शक्ति है, वह गुण है। यह गुण की व्याख्या है। शक्ति कहो, गुण कहो, सत् का सत्त्व कहो, सत् का स्वभाव कहो। वह यह शक्ति का वर्णन है। सूक्ष्म है। पहले अपने १६वीं शक्ति आयी।

जो कम-बढ़ नहीं होता। यहाँ तो शक्ति की बात है, परन्तु उस शक्ति की बात में पहले शुरुआत में लिया है कि क्रमरूप और अक्रमरूप अनन्त धर्मसमूह जो कुछ जितना लक्षित होता है, वह सब वास्तव में आत्मा है। यह पहला बोल है। क्या कहा? जो अनन्त शक्तियाँ हैं, वे अक्रम से हैं और शक्ति का परिणमन है, वह क्रम से है। समझ में आया? यहाँ अशुद्धता क्रम में नहीं लेना। यहाँ तो अकेली शुद्धता की बात है। अशुद्धता का तो ज्ञान होता है। अपनी पर्याय में अपने से राग है तो नहीं, परन्तु अपनी पर्याय में उस समय में स्व-परप्रकाशक का सामर्थ्य है तो अपने से स्व-परप्रकाशक पर्याय होती है। बारहवीं गाथा में कहा है कि व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। उस राग को जानता है, ऐसा कहना वह भी व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु पहले ऐसा लिया है कि क्रमवर्ती और अक्रमवर्तीरूप अनन्त धर्मसमूह। यहाँ कम-बढ़ नहीं होती, ऐसी त्रिकाली शक्ति, वह अक्रम है परन्तु उसका क्रम भी यहाँ लेना पड़ेगा। समझ में आया?

कहते हैं कि **जो कम-बढ़ नहीं होता, ऐसे स्वरूप में नियतत्वरूप (निश्चित्तया यथावत् रहनेरूप) त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति।** अर्थात् पर का त्याग और पर का ग्रहण तो इसकी पर्याय में है नहीं तथा राग का ग्रहण और त्याग भी नहीं है। समझ में आया? क्योंकि राग का त्याग, वह तो नाममात्र है। यह ३४वीं गाथा में आया है, ३४। यहाँ तो पर्याय में शुद्धता अल्प हो और शुद्धता विशेष हो तथापि, त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति है, वह शक्ति तो त्रिकाल है, परन्तु शक्ति का परिणमन होता है तो पर्याय में भी त्यागोपादानशून्यत्व का परिणमन होता है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **कम-बढ़ नहीं होता, ऐसे स्वरूप में नियतत्वरूप (निश्चित्तया यथावत् रहनेरूप) त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति।** आहाहा! यह शक्तिवान और शक्ति का

भेद भी यहाँ से निकालना है। समझ में आया? वर्णन शक्ति का है परन्तु शक्ति और शक्तिवान का भेद, यह भी व्यवहार हो गया। शक्तिवान जो चीज़ है, शक्ति का ज्ञान करके शक्तिवान की दृष्टि करना, ऐसा है। समझ में आया? विषय सूक्ष्म है, अलौकिक विषय है। आहाहा!

त्यागोपादान—पर्याय में राग का त्याग और राग का ग्रहण है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों में यह त्यागोपादानशक्ति व्यापक है। आहाहा! समझ में आया? त्यागोपादानशक्ति अनन्त गुण में व्यापक है। अनन्त शक्ति में व्यापक है। एक बात। त्यागोपादानशक्ति अनन्त गुण को निमित्त है। समझ में आया? और त्यागोपादानशक्ति का अनन्त शक्ति में रूप है। त्यागोपादानशक्ति अन्दर में नहीं परन्तु प्रत्येक गुण में त्यागोपादान का रूप है। आहाहा! अर्थात् क्या? कि जो ज्ञानगुण है, उसकी जो पर्याय होती है, उसमें भी त्यागोपादानशून्यत्व पर्याय है। आहाहा! अल्प ज्ञान का त्याग और विशेष ज्ञान की उत्पत्ति उसमें नहीं है, ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म है।

अनन्त गुण में त्यागोपादानशक्ति का रूप है। जैसे ज्ञानगुण है और अस्तित्वगुण है। अस्तिगुण और ज्ञानगुण भिन्न है तथापि अस्तिगुण का रूप ज्ञानगुण में है। अर्थात् ज्ञान है, है—ऐसा अस्तित्व का रूप ज्ञान में भी है। वह अस्तित्वगुण के कारण से नहीं। रूप है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है। तत्त्वज्ञान का विषय बहुत सूक्ष्म है। प्रत्येक गुण की पर्याय में, द्रव्य-गुण में तो है ही, परन्तु पर्याय में भी त्यागोपादानशून्यत्वपना है। आहाहा! समझ में आया?

कम-बढ़ नहीं होता, ऐसे स्वरूप में नियतत्वरूप त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति। यह तो शक्ति का वर्णन किया परन्तु यह शक्ति पर्याय में भी व्यापती है। यह शक्ति है, ऐसा शक्तिवान और शक्ति का भेद निकालकर शक्तिवान पर दृष्टि पड़ती है तो पर्याय में भी त्यागोपादानशून्यत्व की क्रमवर्ती पर्याय होती है। अरे! इतनी शर्तें! समझ में आया? इतनी शर्त।

त्यागोपादानशक्ति है, यह शक्ति है, वह ध्रुव उपादान है और पर्याय में जो परिणति होती है, वह क्षणिक उपादान है। प्रत्येक गुण में ऐसा लेना, हों! आहाहा! एक बात। त्यागोपादानशक्ति है, उसका क्रमवर्ती परिणमन में क्रम से होता है तो उस शुद्धता का क्रम

त्यागोपादानशून्यत्व में आता है। उसमें व्यवहार का अभाव है। इसका नाम अनेकान्त है। राग का अभाव है। यहाँ तो क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती शुद्ध की व्याख्या है। शक्ति के वर्णन में द्रव्य प्रधान कथन है। यह शक्ति का वर्णन वह द्रव्यदृष्टिप्रधान कथन है और प्रवचनसार में ४७ नय हैं, वह ज्ञानप्रधान कथन है। वहाँ ज्ञानप्रधान में तो ऐसा लेते हैं कि राग का कर्ता भी आत्मा है, ऐसा ज्ञान करता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : दोनों में से सत्य कौन सा?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों सत्य, परन्तु किस अपेक्षा से? जहाँ शक्ति और शक्ति का स्वभाव और स्वभाव का धारक आत्मा, उसकी दृष्टि जहाँ करानी है, वहाँ अशुद्धता होती नहीं। उस शक्ति में अशुद्धता होने की कोई शक्ति नहीं है। थोड़ा समझे। और परिणमन में जब तक साधकपना है, तब तक राग तो है, यह दृष्टि के साथ जो ज्ञान हुआ, उस ज्ञान में स्व-परप्रकाशक जानने की शक्ति है। दृष्टि तो निर्विकल्प है और उसका विषय भी निर्विकल्प है। परन्तु ज्ञान का विषय स्व-परप्रकाशक है। तो जब ज्ञान से बात चले तो राग का परिणमन अपने में है, और राग का कर्ता आत्मा है। पर्याय में, हों! समझ में आया? और राग का भोक्ता भी आत्मा है। यहाँ यह बात नहीं लेनी है।

यहाँ तो शक्ति का वर्णन है, तो शक्ति का परिणमन होता है, वह क्रमसर शुद्ध होता है। क्रमसर क्रमवर्ती परन्तु शुद्ध होता है, अशुद्ध नहीं। अशुद्ध तो ज्ञेय में—परज्ञेय में जाता है। आहाहा! शुद्धता की पर्याय है, वह भी परिपूर्ण है, त्यागोपादानशून्यत्व से परिपूर्ण कही गयी है। क्यों?—कि भले एक समय की शुद्ध सम्यग्दर्शन आदि की पर्याय हो, वह पर्याय पूरे द्रव्य को सिद्ध करती है—साबित करती है।

मुमुक्षु : विकार तो अभी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ विकार नहीं लेना है। वहाँ तो विकार भी है। जहाँ अंश लिया है, अंश लिया है कि राग का अंश भी अपना है, यदि उसे निकाल डालो तो त्रिकाल पर्याय का समूह (वह द्रव्य) यह सिद्ध नहीं होता। यहाँ यह नहीं लेना है। यहाँ तो शुद्धता लेनी है। वह शुद्धपर्याय भी भले अल्प हुई परन्तु परिपूर्ण द्रव्य को सिद्ध करती है, साबित करती है। वह अंश भी अंशी पूर्ण है, उसे सिद्ध करता है। यदि वह अंश निकाल डालो तो पूर्ण द्रव्य सिद्ध नहीं होता। समझ में आया? बात सूक्ष्म, बापू! यह तो तत्त्वज्ञान है।

मुमुक्षु : बराबर समझ में नहीं आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं समझ में आता? वहाँ तो ऐसा लिया है आप्तमीमांसा में कि चाहे तो अशुद्ध पर्याय हो या शुद्ध हो, वह पर्याय एक अंश पूरे द्रव्य को सिद्ध करता है। क्योंकि नय, उपनय का समूह, वह द्रव्य है। श्लोक है। समझ में आया? नय, उपनय का समूह, विषय—समूह पूरा द्रव्य है, तो वहाँ अशुद्धनय भी उसमें लिया है। परन्तु यहाँ तो वह नहीं लेना। यहाँ तो वह अशुद्ध जो राग होता है, उसे क्रमबद्धपर्याय में उस राग का पर्याय में ज्ञान होता है। वह ज्ञान भी राग है तो होता है, ऐसा नहीं। राग है तो ज्ञान होता है, ऐसा नहीं। वह पर्याय में क्रमवर्ती में स्व-परप्रकाशक पर्याय स्वयं से होती है। वहाँ राग परज्ञेय है, ऐसा व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! निश्चय पर्याय अपनी है, बस इतना। राग को जानता है, यह भी नहीं। आहाहा!

जैसे केवलज्ञानी प्रभु... यह अपने आ गया है। सर्वदर्शि, सर्वज्ञशक्ति आत्मज्ञानमयी। क्या कहते हैं? सर्वज्ञशक्ति है, वह सर्व अर्थात् पर की अपेक्षा आयी, इसलिए सर्वज्ञ है—ऐसा नहीं है। अपने त्रिकाली द्रव्य, गुण, पर्याय का भी ज्ञान करता है और पर का भी ज्ञान करता है परन्तु वह सर्वज्ञपर्याय आत्मज्ञानमयी है। निश्चय आत्मज्ञानमयी है। सर्व आया तो पर का उपचार हुआ, ऐसा यहाँ नहीं है। अरे! ऐसी बातें हैं। क्या कहा?

केवलज्ञान एक समय में स्व-परप्रकाशक होने से पर को प्रकाशित करता है इसलिए यहाँ सर्व है, ऐसा नहीं। आत्मज्ञान ही सर्वस्वरूप से परिणमन करना, जानना उसका स्वभाव है। पर को जानना, ऐसा कहना तो असद्‌भूतव्यवहार है। लोकालोक को जानता है, लोकालोक तो पर है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किस अपेक्षा से? सर्व को जानना, यह आत्मज्ञानमयी पर्याय का ही स्वभाव है। लोकालोक है तो सर्वज्ञपर्याय है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह बात तो कही थी न? पचास वर्ष पहले। पण्डितजी के जन्म पहले। पचास वर्ष पहले दामनगर में संवत् १९८३ का चातुर्मास था, वहाँ वीरजीभाई वकील थे। इस काठियावाड़ में दिगम्बर का प्रथम शास्त्र-वाँचन आदि उनको था, वीरजीभाई को। वे वीरजीभाई वहाँ १९८३ में आये थे। वहाँ एक दामोदर सेठ थे, गृहस्थ। इन दो के बीच चर्चा चली। मैं नीचे बैठा था,

वे लोग ऊपर थे। वह सेठ कहता है कि लोकालोक है तो केवलज्ञान की पर्याय हुई। वीरजीभाई कहे, केवलज्ञान की पर्याय हुई, वह स्वयं से हुई है, लोकालोक है, इसलिए हुई—ऐसा नहीं है। ऐई! क्या अन्तर पड़ता है, (ख्याल में आया)?

मुमुक्षु : लोकालोक है, इसलिए हुई तो लोकालोक तो कायम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो बात है। सर्वविशुद्ध अधिकार में आया है। सूक्ष्म बात है, ध्यान रखना! तो समझ में आये ऐसी है, बापू! यह तो अन्तर की बातें हैं। केवलज्ञान लोकालोक को निमित्त है, निमित्त है और लोकालोक केवलज्ञान में निमित्त है। ऐसा पाठ है। परन्तु निमित्त है, इसका अर्थ—लोकालोक है तो केवलज्ञान है, ऐसा नहीं और केवलज्ञान है तो लोकालोक है, ऐसा नहीं। आहाहा! यह तो १९८३ के वर्ष में बहुत चर्चा हुई। वे लोग नीचे उतरे और पूछा, यह कैसे है महाराज? लोकालोक है तो केवलज्ञान की पर्याय है, ऐसी बात है ही नहीं। पण्डितजी! अपनी पर्याय की ताकत सर्व को जानना, वह अपने से है। निमित्त है तो निमित्त को जानती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह पर्याय का धर्म है।

'वत्थुसहावो धम्मो' वस्तु जो भगवान आत्मा है, उसकी जो शक्तियाँ हैं, वे स्वभाव उसका धर्म है। वह धर्म प्रगट नहीं। अब उस धर्मी का जो धर्म है, धर्मी आत्मा की शक्तिरूप धर्म, उसकी प्रतीति करता है तो पर्याय में धर्म होता है। धर्मी का का धर्म और धर्म तथा धर्मी का भेद निकालकर अकेले धर्मी पर दृष्टि देने से पर्याय में वीतरागता धर्म पर्याय होती है। आहाहा! बलुभाई! आहाहा! ऐसा मार्ग है। इन्होंने लंघन बहुत किया था, वर्षी तप किया था, इसके पारणा में हम गये थे, परन्तु वह तो लंघन था, बापू! तप नहीं।

तप तो उसे कहते हैं, जहाँ अमृत का सागर पर्याय में उछले। आहाहा! समुद्र के किनारे जैसे पानी की बाढ़ आती है, वैसे भगवान आत्मा में शक्तिरूप जो आनन्द है, वह आनन्द और आनन्ददाता, दोनों का भेद दृष्टि में से निकालकर, आनन्दस्वरूप भगवान त्रिकाल है, उसकी दृष्टि करने से पर्याय में आनन्द की लहर आती है, आनन्द की बाढ़ आती है, वह धर्म है। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया? और क्रमबद्ध तो अब कैलाशचन्दजी ने स्वीकार किया है, साबित किया है। वर्णीजी के साथ चर्चा हुई थी, उस समय वर्णीजी की दृष्टि नहीं थी तो पण्डितों की भी दृष्टि नहीं थी। मात्र एक फूलचन्दजी

ने स्वीकार किया था। रास्ते में बात की थी। बीस वर्ष हुए। बनारस (में) भोजन करने जाते थे, फूलचन्दजी और कैलाशचन्दजी साथ में थे। कहा, क्रमबद्ध है। प्रत्येक वस्तु की क्रमसर व्यवस्थित पर्याय होती है, आगे-पीछे नहीं। समझ में आया? फूलचन्दजी ने ऐसा कहा कि यदि क्रमबद्ध न हो तो वैशेषिक मत हो जाता है। ऐसा कहते थे। यह (संवत्) २०१३ के वर्ष काशी गये थे। कोई झवेरी थे। प्रतिमा नहीं थी? खो गयी थी। मंजिल पर प्रतिमा रखी थी, दर्शन करने गये थे।

अरे! भाई! यह क्रमबद्ध की व्याख्या तो यहाँ ३० वर्ष पहले हुई थी। यहाँ प्रवचनमण्डप में। लालबहादुर ने उस समय स्वीकार किया था। तीस वर्ष हुए। क्रमबद्ध है, क्रमबद्ध बराबर है। जगनमोहनलालजी इनकार करते थे। क्योंकि यह बात थी नहीं। इसलिए सवेरे भाई ने कहा, जो क्रमबद्ध स्वीकार करने जायें तो सोनगढ़ का हो जाता है। और सोनगढ़ से उद्‌घाटन हुआ है। शब्द का उद्‌घाटन तो हिम्मतभाई ने किया। क्रमनियमित में से। समझ में आया? भाव का उद्‌घाटन तो अन्दर मैंने किया। कहते हैं कि यदि हम क्रमबद्ध मानेंगे तो सोनगढ़ की बात सिद्ध हो जायेगी, तो लोग सोनगढ़ चले जायेंगे। यह मान्यता सत्य है। अरे रे! भगवान! सत्य है, ऐसा लेना है या तुझे कोई पक्ष करना है?

मुमुक्षु : आपने नया धर्म क्यों चलाया?

पूज्य गुरुदेवश्री : नया नहीं है। अनादि से सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं, वह बात है। समझ में आया? आहाहा! यह तो कहा न? (संवत्) १९७२ के वर्ष, १९७२, कितने वर्ष हुए? ६१, ६० और १। १९७२ में चर्चा चली। दो वर्ष सुना कि केवली ने देखा, वैसा होगा हम क्या पुरुषार्थ करें? यह बात दो वर्ष सुनी। नवदीक्षित थे। साढ़े तेईस वर्ष में दीक्षा ली। पच्चीस वर्ष की उम्र थी। अभी तो ८८ हुए। कितने वर्ष हुए? ६१। हमारे गुरुभाई बारम्बार ऐसा कहते कि केवलज्ञानी ने देखा, वैसा होगा, अपन क्या पुरुषार्थ करें? दो वर्ष तो सुना, पश्चात् एक बार कहा—केवलज्ञान है, ऐसी सत्ता का स्वीकार है? लालचन्दभाई! यह तो १९७२ की बात है।

केवलज्ञान एक समय प्रभु! ज्ञानगुण की एक समय की पर्याय अनन्त केवली को जाने। उन केवली को जाने, यह कहना भी व्यवहार है। उस पर्याय का सामर्थ्य इतना है। आहाहा! एक गुण की एक समय की एक पर्याय में इतनी ताकत है कि अनन्त केवली

को जाने। अपनी पर्याय से; केवली है तो नहीं। केवली है तो केवली को जानते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी एक समय की केवलज्ञान की पर्याय की सत्ता जगत में है, उसका जिसे स्वीकार है, उसकी दृष्टि ज्ञान में घुस जाती है। समझ में आया ? उस समय इतना था। १९७२ का वर्ष था। तब द्रव्य का आश्रय और इतना नहीं था। समझ में आया ?

जिसने... आहाहा! सर्वज्ञ पर्याय एक गुण की एक समय की पर्याय इतनी ताकतवाली है कि वह पर्याय द्रव्य-गुण को जाने, अपने त्रिकाली द्रव्य-गुण को जाने, छह द्रव्य को जाने, अनन्त सिद्धों को जाने। एक ही पर्याय का अस्तित्व है, बाकी सबका उसमें नास्तित्व है। समझ में आया ? ऐसी एक समय की पर्याय द्रव्य-गुण के कारण से भी नहीं। इतना तो उस समय नहीं था। परन्तु केवलज्ञान है, एक समय की सत्ता जगत में है, आहाहा! उस सत्ता का जिसे स्वीकार है तो वास्तव में सर्वज्ञ की सत्ता का स्वीकार, सर्वज्ञशक्तिवान भगवान है, उस पर दृष्टि पड़ने से सर्वज्ञ की सत्ता का यथार्थ श्रद्धान होता है। समझ में आया ? आहाहा!

मुमुक्षु : सर्वज्ञशक्ति तो स्वभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब भगवान। परिपूर्ण भरितवस्थ। कहा था न ? तीन जगह है। बन्ध अधिकार में है, सर्वविशुद्ध में है और परमात्मप्रकाश में है। सर्व जीव निर्विकल्प, निरंजन, भरितअवस्थ। अवस्थ अर्थात् पर्याय नहीं, भरित-अवस्थ—शक्ति से पूर्ण भरपूर भगवान है। सभी भगवान आत्मा परमात्मा है। पर्याय की बात छोड़ दो। वस्तु तो परमात्मा ही है। सर्व जीव ऐसे हैं, ऐसी भावना करना। ऐसा पाठ है या नहीं ? बन्ध विनाशनार्थ अथवा ज्ञायक को सिद्ध करने के लिये ऐसी भावना करना। उसमें बहुत शब्द हैं। यह तो तब कहाँ पढ़ा था। समझ में आया ? यह तो सब बाद में (संवत्) १९७८ में आया। प्रवचनसार, समयसार, नियमसार (७८ के बाद पढ़ा)। यह १९७२ की बात है।

मैंने तो दृष्टान्त दिया था कि गजसुकुमार, श्रीकृष्ण के छोटे भाई, वे स्वयं गोद में बैठकर... खोळा समझे ? गोद। गोद में बैठकर हाथी के हौदे भगवान के दर्शन करने जा रहे थे। एक सोनी की कन्या थी। सोमीला नाम की एक कन्या थी, वह उसके घर में सोने के गेंद से खेल रही थी। यह श्रीकृष्ण, भगवान के दर्शन करने जा रहे थे। इन्होंने देखा। कन्या बहुत रूपवान, बहुत सुन्दर। उन्हें ऐसी इच्छा हुई, लोगों को कहा, जाओ! इस कन्या

को अन्त:पुर में ले जाओ। इस गजसुकुमार का विवाह करने के लिये। गजसुकुमार छोटे भाई थे न? कन्या को ले गये।

यहाँ भगवान के पास गये गजसुकुमार—गज अर्थात् हाथी का तलुवा सुकुमार ऐसा तो शरीर। गजसुकुमार। भगवान की वाणी सुनी। कहा, तुम ऐसा कहते हो कि (केवली ने देखा होगा, वैसा होगा), यह तो भगवान की वाणी सुनी और एकदम फटाफट पुरुषार्थ उत्पन्न हुआ। प्रभु! मैं तो आगार (गृहस्थदशा) छोड़कर अणगार होने का मेरा भाव है। आहाहा! देव का आराधना करके गजसुकुमार पुत्र हुआ था। समझ में आया? लम्बी बात है। वे गजसुकुमार जहाँ भगवान की वाणी सुनते हैं, वहाँ एकदम अन्दर से फाट... फाट... पुरुषार्थ (उठता है), प्रभु! मैं अब अणगार होना चाहता हूँ। इन लोगों की तो ऐसी भाषा है, उन लोगों में ॐ नहीं है। आहा! सोहम ऐसा शब्द है। श्वेताम्बर में (ऐसा है) आहा सोहम् देवानुप्रिया मा प्रतिबन्ध कर। ऐसे शब्द हैं। हे देवानुप्रिय! ऐसा भगवान कहते हैं। ऐसी वाणी तो उन्हें कहाँ होगी? वह तो ॐकार है। परन्तु उसमें ऐसा है। श्वेताम्बर में तो ऐसी सब गड़बड़ है न?

हे गजसुकुमार! आपको यथासुखम्। जैसे सुख उपजे वैसा करो, प्रतिबन्ध नहीं करना। प्रतिबन्ध—रुकाव नहीं करना। ऐसा कहा। माता के पास गये (कहते हैं) माता! मैं मुनिपना लेना चाहता हूँ। माँ! एक बार आज्ञा दे। मैं भगवान के पास जाऊँ। देवकी कहती है, अरे! पुत्र! देव का आराधन करके तू आया है और तुझे लाड़ किया है कृष्ण तो ग्वाले के घर पले हैं और इससे पहले छह पुत्र थे... दूसरी बाई... क्या नाम? शुलषा। शुलषा के घर में छह पले थे। कृष्ण से पहले छह पुत्र थे, देवकी को छह पुत्र थे परन्तु उनका सहरण करके शुलषा के घर गये थे। छह और यह सात। बालकपना तो देवकी ने देखा नहीं था। बेटा! तेरा बालकपना मैंने देखा नहीं और तू चला जाता है। (गजसुकुमार कहते हैं), माता! मेरा आनन्दस्वरूप भगवान है, उसके पास जाता हूँ। मेरी माता तो अन्दर आनन्द है। आहाहा! माता! एकबार आज्ञा दे। जननी! एक बार रोना हो तो रो ले, माँ! परन्तु मैं कोलकरार करता हूँ, फिर से माँ नहीं बनाऊँगा, फिर से माता नहीं करूँगा। माता! माँ! मैं ऐसी कोलकरार करता हूँ। माताा! आहाहा! पाटनीजी! कितना पुरुषार्थ! केवलज्ञानी जिसे बैठे, उसका पुरुषार्थ स्वभाव की ओर झुक जाता है। समझ में आया? आहाहा!

दूसरे प्रकार से कहें तो केवलज्ञान है, ऐसी चार अनुयोग में बात आयी। तो चारों अनुयोग का तात्पर्य तो वीतरागता है। केवलज्ञान है, ऐसा सुना तो उसका तात्पर्य तो वीतरागता आना चाहिए। वीतरागता कब आती है? आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय की सत्ता का स्वीकार करने में वीतरागता आना चाहिए। तो वीतरागता कब आती है? कि ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा की ओर झुकने से वीतरागता आती है। न्याय समझ में आता है? आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई!

उस सत्ता का स्वीकार करने में इसे भव नहीं है, कहा। हम कहते हैं कि जिसे केवलज्ञान की सत्ता का स्वीकार हुआ, उसके भव केवलज्ञानी नहीं देखते, उसे भव है ही नहीं, ऐसा देखते हैं। लालचन्दभाई! १९७२ हों! १९७२। ६१ वर्ष हुए। अन्तर से (आया था)। यह तो पढ़ा भी नहीं था परन्तु संस्कार थे न अन्दर! आहाहा! माता! कोलकरार करता हूँ। हम जिस मार्ग में जा रहे हैं, उसमें अब भव नहीं मिलेंगे। कहा, यह पुरुषार्थ तो देखो! केवलज्ञान की सत्ता का स्वीकार करने में तो पुरुषार्थ है। देखा, वह बाद में होगा। देखा वह होगा, देखा वह होगा, यह तो है, परन्तु केवलज्ञान जगत में है या नहीं? उसका माहात्म्य और उसकी सामर्थ्य—शक्ति पर्याय में कितनी है, उसकी सत्ता का स्वीकार करने से, अल्पज्ञ में रहकर शक्ति की ओर झुकने से अल्पज्ञ में सत्ता का स्वीकार होता है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं कि अन्दर जो सर्वज्ञशक्ति है... यह तो अपने पहले आ गयी। यहाँ दूसरा कहना था, यह सर्वज्ञपना, वह आत्मज्ञपना है। यह पहले शक्ति में आ गया है। सर्वज्ञपना, वह आत्मज्ञपना है। आत्मज्ञ कहो या सर्वज्ञ कहो, यह विवक्षाभेद है, कथनभेद है; भावभेद नहीं। यह क्या कहा? सर्वज्ञपना है और आत्मज्ञपना है, यह तो कथन की शैली से बात है। आत्मज्ञ है, वह स्व है और सर्वज्ञपना है, वह पर से है—ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

इसी प्रकार सर्वदर्शि। दोनों में लिया है न? सर्वदर्शि, वह आत्मदर्शनपना है। वह सर्व को देखे, उसमें सर्व को पर का लेना, वह तो असद्भूतव्यवहार है। क्योंकि? जिसमें तन्मय होकर नहीं देखते, उसे असद्भूत कहते हैं और जिसमें तन्मय होकर देखते हैं, तो अपनी पर्याय में तन्मय होकर देखते हैं तो अपने को देखते हैं। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं कि पर्याय में भी कम-बढ़ नहीं। आहाहा! सर्वज्ञशक्ति सत् है और कम-बढ़ नहीं, ऐसी त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति है, ऐसा स्वीकार करने से परिणति में भी कम-बढ़ नहीं, ऐसी पर्याय प्रगट होती है। अर्थात् भले अल्प हो परन्तु एक अंश पूर्ण द्रव्य को सिद्ध करता है, पूरे अंशी को सिद्ध करता है। इसलिए पर्याय को भी पूर्ण कहा जाता है। आहाहा! इतना लिया। पण्डितजी ने प्रश्न किया था। अब सत्रहवीं शक्ति। यह बहुत सूक्ष्म है।

षट्स्थानपतित... है पहला शब्द? षट्स्थान आश्रित। पतित अर्थात् आश्रय। षट्स्थान अर्थात्? अेटले कहते हैं? अर्थात्, आत्मा में प्रत्येक गुण में, पर्याय में षट्स्थानपतित अर्थात् पर्याय में अनन्त गुण वृद्धि, असंख्य गुण वृद्धि, संख्य गुण वृद्धि, अनन्त भाग वृद्धि, असंख्य भाग वृद्धि, संख्य भाग वृद्धि—यह छह बोल हुए। अब हानि के (छह बोल)। अनन्त गुण हानि, असंख्य गुण हानि, संख्य गुण हानि, अनन्त भाग हानि, असंख्य भाग हानि, संख्य भाग हानि—छह ये हुए। समझ में आया? ऐसी बात।

अगुरुलघुशक्ति का वर्णन करते हैं। प्रत्येक गुण की पर्याय में अगुरुलघुपना है। प्रत्येक गुण में अगुरुलघु का रूप है। आहाहा! और उसकी पर्याय में भी अगुरुलघुपना आता है। यह थोड़ा सूक्ष्म विषय है। क्योंकि केवलज्ञान की पर्याय है तो भी एक समय में षट्गुणहानिवृद्धि उसमें है। इससे पहले समय हानि, दूसरे समय वृद्धि होती है, ऐसा नहीं है। उसी समय हानि और उसी समय वृद्धि कोई अगम्य बात है। ऐसा क्यों कहते हैं? यदि श्रुतज्ञानी सब जान सके तो केवलज्ञान की महिमा कहाँ रही? पाटनजी! आहाहा!

श्रुतज्ञान में भी षट्गुणहानिवृद्धि (होती है)। एक समय में हानि और दूसरे समय में वृद्धि, ऐसा भी नहीं है। एक समय में अनन्तगुण वृद्धि, उसी समय में अनन्तगुण हानि। उसी समय में असंख्यगुण वृद्धि, उसी समय में असंख्यगुण हानि। ऐसे संख्यगुण वृद्धि, संख्यगुण हानि। एक ही समय में में द्रव्य की पर्याय का ऐसा ही कोई स्वभाव भगवान ने देखा है।.... आहाहा! क्या कहा? समझ में आया?

षट्स्थानपतित... छह प्रकार से आश्रय से हानि-वृद्धि होती है। हानि-वृद्धि दोनों है न? दीपचन्दजी ने जरा उतारा है, परन्तु वह तो समझाने के लिये उतारा है। अनन्तवें भाग में आठ गुण, असंख्यवें भाग में अमुक गुण, अनन्तवें भाग में (अमुक गुण)। ऐसे गुण

उतारे हैं। परन्तु वह तो एक के बाद एक उतारा है। चिद्विलास में। समझ में आया? परन्तु वह तो समझाने को, वास्तव में तो एक समय में षट्गुणहानिवृद्धि है। एक समय में! आहाहा! सूक्ष्म है, भगवान!

तेरी मतिज्ञान की पर्याय हो तो भी उस पर्याय में षट्गुणहानिवृद्धि होती है। केवलज्ञान की पर्याय हो तो भी षट्गुणहानिवृद्धि केवलज्ञान की पर्याय में होती है। क्षायिक समकित हो, उस पर्याय में भी षट्गुणहानिवृद्धि होती है। यथाख्यातचारित्र हो... आहाहा! वीतरागता हो, वीतराग की पर्याय में षट्गुणहानिवृद्धि है। यह बात तो सर्वज्ञ के अतिरिक्त (कहीं नहीं है।)

मुमुक्षु : निगोद में?

पूज्य गुरुदेवश्री : निगोद के जीव को अक्षर के अनन्तवें भाग में (उघाड़ है तो) उसमें भी षट्गुणहानिवृद्धि है। आहाहा! देखो! सर्वज्ञस्वभाव भगवान आत्मा का और उसकी पर्याय का धर्म! आहाहा! भगवान ने देखा, भगवान को दिखा। समझ में आया? भगवान ने देखा, वैसा कहा। आहाहा!

यहाँ तो थोड़ा ऐसा कहते हैं, पंचास्तिकाय में है। षट्गुणहानिवृद्धि श्रुतगम्य नहीं है, आगमगम्य है। आगम कहता है, इतना स्वीकार करना, उसमें तर्क करना नहीं। तुझे तर्क से नहीं बैठेगा। समझ में आया? आहाहा! एक मति की पर्याय हो। निगोद के जीव को अक्षर के अनन्तवें भाग का विकास है और वीर्य का भी अनन्तवें भाग का विकास है। तथापि उस पर्याय में भी षट्गुणहानिवृद्धि है। आहाहा!

मुमुक्षु : एक समय में बारह भाग।

पूज्य गुरुदेवश्री : बारह भाग। छह हानि के और छह वृद्धि के, समय एक! आहाहा! नन्दकिशोरजी! यह कभी सुना नहीं। वकील ऐसे बुद्धिवाले व्यक्ति हैं परन्तु यह... आहाहा! यह तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर... आहाहा! जिनचन्द्र वीतरागचन्द्र शीतलता भगवान पूर्णानन्द में अमृत भरा है। उन परमात्मा ने यह बात की है। समझ में आया?

षट्गुणहानिवृद्धिरूप से **परिणमित,...** देखो! परिणमित कहा। पर्याय में परिणमित

है। शक्ति तो है परनतु पर्याय में परिणमित है। **स्वरूप-प्रतिष्ठत्व का कारणरूप (वस्तु के स्वरूप में रहने के कारणरूप) ऐसा जो विशिष्ट (-खास) गुण है उस-स्वरूप अगुरुलघुत्व शक्ति।** यह तो जरा विशेष कहा। **(इस षट्स्थानपतित वृद्धिहानि का स्वरूप 'गोम्मटसार' ग्रन्थ से जानना चाहिए।) अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्यारूप षट्स्थानों में...** क्या कहते हैं? एक समय की मति की पर्याय हो या केवलज्ञान हो परन्तु उसमें षट्गुणहानिवृद्धि (होती है)। है न? आहाहा! अविभाग प्रतिच्छेद। क्या कहते हैं? देखो! एक मतिज्ञान है परन्तु उस पर्याय में तो अनन्त लोकालोक भी ज्ञात होते हैं और स्वद्रव्य भी ज्ञात होता है। लोकालोक ज्ञात होता है तो उस पर्याय में अविभाग प्रतिच्छेद कितने पड़े? अंश छेदते-छेदते अविभाग—जिसका भाग न हो, ऐसे प्रतिच्छेद करते-करते अन्तिम अंश रहे, उसे अविभाग कहते हैं। ऐसे अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद। निगोद के अक्षर के अनन्तवें भाग की पर्याय में भी अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद हैं। ऐसी बात। ऐसा कुछ है, इतना तो (लक्ष्य में ले)। ऐसा वीतराग का मार्ग है। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय तो स्वयं अंश है, उसमें भी वापस अविभाग प्रतिच्छेद?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहा न? केवलज्ञान की पर्याय है तो उसमें अनन्त केवली जानते हैं? अनन्त लोकालोक अनन्त निगोद जानते हैं, उससे अनन्त गुणे परमाणु जानते हैं, उस पर्याय में इतना जानने के अंश छेदो तो अनन्त हो जाते हैं। समझ में आये उतना समझो, बापू! यह तो भगवान की बात है। 'सहजे समुद्र उल्लस्यो जेमां रतन तणाणा जाय, भाग्यवान कर वावरे, अेनी मोतीअे मुठ्युं भराय, भाग्यहिन वावरे अेने शंखले मुठीयुं भराय।' आस्था से, श्रद्धा से, उत्साह से, उल्लसित वीर्य से (स्वीकार कर)। लालचन्दभाई!

मुमुक्षु : शर्त रखी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह शर्त। जो यह स्वीकार करे... आहाहा! यह अगम्यगम्य की परमात्मा की बातें। तेरी पर्याय के अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद। आहाहा! यह कहा न? **वस्तुस्वभाव की वृद्धिहानि जिससे (-जिस गुण से) होती है और जो (गुण) वस्तु को स्वरूप में स्थिर होने का कारण है, ऐसा कोई गुण आत्मा में है; उसे अगुरुलघुत्वगुण कहा जाता है।** आहाहा! **ऐसी अगुरुलघुत्वशक्ति भी आत्मा में है।** प्रत्येक गुण में यह है। द्रव्य में भी अगुरुलघु, गुण में भी अगुरुलघु और पर्याय में भी

अगुरुलघु। शक्ति है न? आहाहा! प्रत्येक गुण में अगुरुलघु। यह सूक्ष्म बात है। अब अधिक समझने की बात इसमें है। अठारहवीं शक्ति। आज तो तुम्हारे सत्रह दिन हुए। पहले से शक्ति शुरु की है। सत्रह दिन में सत्रह हुई।

क्रमाक्रमवृत्तवृत्तित्वलक्षणा उत्पादव्ययध्रुवत्वशक्तिः।

क्रमवृत्तिरूप और अक्रमवृत्तिरूप वर्तन जिसका लक्षण है, ऐसी उत्पादव्यय-ध्रुवत्वशक्ति। (क्रमवृत्तिरूप पर्याय उत्पादव्ययरूप है और अक्रमवृत्तिरूप गुण ध्रुवत्वरूप है।)।१८।

क्रमवृत्तिरूप और अक्रमवृत्तिरूप वर्तन जिसका लक्षण है... भाषा देखो! पर्याय क्रम से वर्तती है, यह वर्तन जिसका लक्षण है। क्रमवर्ती अर्थात् पर्याय में क्रम से वर्तना, यह वर्तन जिसका लक्षण है। आहाहा! ऐसे पर्याय क्रमवर्ती, गुण अक्रमवर्ती। इसका अर्थ यह हुआ, गुण ऐसे एकसाथ है, पर्याय एकसाथ ऐसे—आयत समुदाय है। वह क्रमवर्ती। पर्याय क्रमवर्ती कहने में आती है। और गुण अक्रमवर्ती कहलाते हैं। पर्याय क्रमवर्ती कहने में आयी, यह क्रमबद्ध आ गया। क्रम आया न? **क्रमवृत्तिरूप और अक्रमवृत्तिरूप वर्तन जिसका लक्षण है...** क्रम से वर्तना जिसका लक्षण है। आहाहा!

यह लोग ऐसा कहते हैं, हम यदि क्रमबद्ध का सच्चा निर्णय करने जायें तो उन लोगों की बात तो सच्ची है परन्तु सच्चा निर्णय करने जायें तो लोग वहाँ ढल जायेंगे कि इनका सच्चा और अपना खोटा, ऐसा हो जायेगा। अरे! भगवान! आहाहा! बापू! ऐसा नहीं होता, भाई! तू भगवान है न! एक समय की भूल है, उसे निकालने में कितना समय लगे? एक समय लगे। आहाहा!

मुमुक्षु : अपने आप निकालेंगे, आपके कहने से नहीं निकालेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने आप निकालने में भी समय तो एक ही लगे न? उसे निकालने में समय कितना लगे?

क्रमवर्ती पर्याय है तो क्रम से वर्तना जिसका लक्षण है। आहाहा! अर्थात् क्रम से वर्तना जिसका स्वरूप है। आहाहा! अब ऐसी बातें। इसकी अपेक्षा वे व्रत करना और

अपवास करना और भक्ति करना, पूजा करना, मन्दिर बनाना सहलासट्ट था। एक व्यक्ति आया था, हम सरल मार्ग मुश्किल से करते थे, वहाँ आपने बीच में मारा।

प्रत्येक गुण में यह उत्पादव्ययध्रुव नाम की शक्ति का रूप है और वह क्रमवर्ती पर्याय और अक्रमवर्ती गुण का समुदाय, वह आत्मा है। समझ में आया? यह बोल लिया है। वहाँ लिया है, ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है क्रमवर्ती में, तो उसमें अनन्त गुण की पर्याय उछलती है। यह कल आ गया है। उछलती है अर्थात् ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, सम्यक्, हों! उसके साथ अनन्त गुण की पर्याय उछलती है। उछलती है अर्थात् उत्पन्न होती है। आहाहा! ऐसी बात है। यह दूसरा बोल है। भाई ने उतारे हैं। बोल उतारे हैं न? एक-एक शक्ति में इतने बोल लागू पड़ते हैं।

पहले कहा, क्रम-अक्रमरूप अनन्त धर्मसमूह, वह आत्मा। ज्ञानमात्र एक भाव की अन्तःपातिनी अनन्त शक्तियाँ। यह दूसरा बोल है। प्रत्येक शक्ति में यह लागू पड़ता है। क्रमवर्ती और अक्रमवृत्तिरूप वर्तन जिसका लक्षण है। प्रत्येक शक्ति का क्रम से प्रवर्तना और अक्रम से गुण रहना उसका लक्षण—स्वरूप है। एक-एक शक्ति अनन्त में व्यापक है। एक शक्ति अनन्त में व्यापक है। एक शक्ति अनन्त को निमित्त है। एक शक्ति द्रव्य-गुण-पर्याय में व्याप्त है। एक शक्ति में ध्रुव उपादान और क्षणिक उपादान दोनों हैं। आहाहा! ध्रुव, वह ध्रुव उपादान है और पर्याय, वह क्षणिक उपादान है। क्रम से वर्तना, वह क्षणिक उपादान है और अक्रम से रहना, वह ध्रुव उपादान है। आहाहा! एक-एक शक्ति में व्यवहार का अभाव है, यह अनेकान्त है। व्यवहार से भी होता है और निश्चय से भी होता है, ऐसा शक्ति के वर्णन में है ही नहीं। समझ में आया?

एक-एक शक्ति को स्वयं क्रम से प्रवर्ते और अक्रम से प्रवर्तती है। प्रत्येक शक्ति। उसमें क्रम से प्रवर्ते वह निर्मल परिणति। निर्मल परिणति क्रम से प्रवर्तती है और निर्मल गुण एक साथ रहते हैं। उसमें व्यवहार का अभाव है। रागादि, निमित्त आदि का अभाव है, यह अनेकान्त है। समझ में आया? यहाँ तो व्यवहार की बात ही करते नहीं। उसका ज्ञान होता है, वह अपनी पर्याय में अपनी ताकत से होता है। उसमें व्यवहार का अभाव और निश्चय स्वयं से हुआ है। ज्ञान की पर्याय, समकित की पर्याय, चारित्र की पर्याय, आनन्द

की पर्याय अपने से पर की अपेक्षा रखे बिना होती है। आहाहा! समझ में आया?

यह उत्पादव्ययध्रुवशक्ति शक्ति है। इस शक्ति के कारण प्रत्येक गुण में जिस समय में (पर्याय) उत्पन्न होने का समय है, वह वहाँ उत्पन्न होगी। प्रत्येक गुण की पर्याय। आहाहा! जिस समय में उत्पाद है, उसी समय में पूर्व की पर्याय का व्यय है। ऐसा उसकी शक्ति का स्वभाव है। आहाहा! दूसरे प्रकार से कहें तो प्रत्येक गुण में उत्पन्न होने की उत्पादव्ययध्रुव ऐसी शक्ति है तो वह पर के कारण उत्पन्न हो, ऐसा वहाँ रहा नहीं। राग की मन्दता की, दया, दान, वन्दना, पंच महाव्रत किये, इसलिए वह पर्याय निर्मल हुई, ऐसा वस्तु में है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! नहीं कहते? लोहा काटे छैनी। यह बात है सूक्ष्म, लोहा काटे छैनी। लोहे की छैनी हो, वह काटती है। यह लकड़ी काटेगी? यह टूट जाती है। लोहे की छैनी सूक्ष्म होती है, छैनी; इसी प्रकार यह सूक्ष्म बारीक बातें, भेदज्ञान की बातें हैं। आहाहा!

कहते हैं कि एक-एक शक्ति में व्यवहार का अभाव है, यह स्याद्वाद है। यह शक्ति है, वह पारिणामिकभाव से है। कोई एक बार पूछता था, मोक्षमार्ग क्या है? मोक्षमार्ग है, वह उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव से है और शक्ति जो गुणरूप है, वह पारिणामिकभाव से है। समझ में आया? यह क्या होगा ऐसा? मणिभाई! यह तो तत्त्व की बात है, भाई! आहाहा! भगवान आत्मा, उसमें उत्पादव्ययध्रुव नाम की शक्ति है। वह शक्ति पारिणामिकभाव से है। परन्तु शक्ति की प्रतीति हुई, उत्पादव्ययध्रुव तो शक्ति है परन्तु उसके कारण से उत्पादव्यय होता है, उस पर्याय में यहाँ उदय का अभाव लेना ही नहीं। उस शक्ति में उत्पाद होता है, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उपशमभाव से, क्षयोपशमभाव से अथवा क्षायिकभाव से (उत्पन्न हो) वह उत्पन्न होता है, वह क्रमवर्ती पर्याय है। इसमें कितना याद रहे? बलुभाई! मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा! अरे! ऐसे मनुष्यपने में यह न समझे तो कब समझेगा? भाई! आहाहा!

यह तो सर्वज्ञस्वभाव का समुद्र भरा है! आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय, ऐसी तो अनन्त पर्याय गुण में पड़ी है। ज्ञानगुण में तो अनन्त केवलज्ञान की पर्यायें (पड़ी हैं)। पर्याय क्रमसर हुई, वह तो एक समय की अवस्था है। केवलज्ञान भी एक समय की अवस्था है। दूसरे समय दूसरी पर्याय ऐसी सही परन्तु वह नहीं। ऐसी-ऐसी सादि-अनन्त

केवलज्ञान की पर्याय, अनन्त अर्थात् कहीं अन्त नहीं, ऐसी पर्याय का समुदाय वह ज्ञानगुण है। आहाहा! और ऐसे श्रद्धागुण की अनन्त पर्याय, चारित्रगुण की अनन्त पर्याय, आनन्द की अनन्त पर्याय, उन अनन्त पर्याय का पिण्ड वह आनन्द, श्रद्धा और वीर्य है। उन अनन्त गुणों का पिण्ड, वह द्रव्य है। समझ में आया? बलुभाई! यह कहाँ अभ्यास किया है? अपवास करने, यदि कुछ कल्याण हो जाये तो कर डालो लंघन। लोगों को कठिन पड़ता है। ऐई! यह तो एकान्त निश्चय है। आहाहा!

यह बात अभी हुई, भाई! महासभा इकट्ठी हुई। महासभा में मक्खनलालजी और उन सबको निर्णय करना था कि सोनगढ़ एकान्त मिथ्यात्व है। ऐसा निर्णय करना था। उसमें राजकुमारसिंह बोले। उसे उतारा डाला। क्या कहलाता है तुम्हारी भाषा में? फटकार दिया। यह तुम्हारे लक्षण? तुम्हें यह करना है? राजकुमार ने कहा। अजमेर गये थे। बहुत फटकारा। उन लोगों को निर्णय करना था, निर्णय बन्द कर दिया और भागचन्दजी भी फिर इसके कारण (बोले)। राजकुमार जब बोले, बहुत फटकारा। तुम्हारी भाषा दूसरी थी। काम तो करते नहीं और गालियाँ देते हों। उन्हें उतार दिया, ऐसा करके कुछ भाषा। उन्हें बहुत फटकारा। अरे..! प्रभु! क्या करता है? भाई! आहाहा! शर्मिन्दा कर दिया, हमारी भाषा में यह है। शर्मिन्दा कर दिया, ऐसी हमारी भाषा है। अरे! भगवान! मार्ग तो यह है, भाई! आहाहा!

एक-एक शक्ति में उत्पादव्ययध्रुव जो पर्याय होती है, वह षट्कारक से उत्पाद होता है। यह विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. १८, शक्ति- १८, १९ रविवार, (द्वितीय) श्रावण शुक्ल १५, दिनांक २८-०८-१९७७

अपने कितनी शक्ति है ? १८। शिक्षण शिविर का अठारहवाँ दिन है। क्या कहते हैं ? आत्मा में एक शक्ति—गुण... आत्मा सत् शाश्वत् वस्तु है, उसमें शक्तियाँ भी शाश्वत् हैं। आत्मा स्वभावभाव पारिणामिकभाव से है। उसकी शक्ति भी पारिणामिकभाव से है, सहज स्वभाव से है। एक शक्ति दूसरी शक्ति को निमित्त है परन्तु एक शक्ति दूसरी शक्ति को उत्पन्न करे, ऐसा नहीं है।

यहाँ तो उत्पादव्ययध्रुवशक्ति ऐसी कही कि प्रत्येक ज्ञान में भी उत्पादव्ययध्रुव रूप है। उत्पादव्ययध्रुवशक्ति उसमें नहीं, परन्तु उत्पादव्ययध्रुव का रूप है। क्या (कहा) ? ज्ञानशक्ति जो त्रिकाल है, उसमें जिस समय ज्ञान की पर्याय... यहाँ निर्मल की बात है, मलिनता की यहाँ बात नहीं है। जिस समय में ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, वह उत्पादव्ययध्रुवशक्ति के कारण से है। आहाहा! यह क्या कहा ? जो ज्ञान में निर्मल पर्याय का उत्पाद होता है, मति-श्रुतज्ञान, केवलज्ञान आदि पर्याय की उत्पत्ति उत्पादव्ययध्रुव(शक्ति के) कारण से वह पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! समझ में आया ?

ऐसा कहते हैं न ? खानिया चर्चा में बड़ी चर्चा हुई। चार घातिकर्म का नाश होता है तो केवलज्ञान होता है, ऐसा कहा। तत्त्वार्थसूत्र में ऐसा वचन है न ? परन्तु वह तो निमित्त का कथन है। वस्तुस्थिति ऐसी (नहीं) है। ज्ञानगुण में उत्पादव्ययध्रुव का रूप है तो केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, वह स्वयं से होती है, पर कारण की कोई अपेक्षा नहीं है। आहाहा! समझ में आया ?

सच्चिदानन्द प्रभु ध्रुव है, शक्ति भी ध्रुव है। जैसे वस्तु ध्रुव है, वैसे शक्ति भी ध्रुव है। शक्ति और शक्तिवान का भेद लक्ष्य में न लेकर, अभेददृष्टि करने से (सम्यग्दर्शन होता है)। पर्याय में ज्ञान कराने के लिये यह बात की है। तत्त्वार्थ राजवार्तिक आदि में यह है न ? अथवा स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में बहुत दृष्टान्त देते हैं। फूलचन्दजी ने बहुत दिये हैं। पूर्व पर्याययुक्तद्रव्य, वह कारण और उत्तर पर्याययुक्तद्रव्य, वह कार्य। यहाँ तो यह भी निकाल दिया। पण्डितजी! स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में ऐसा लिया है और फूलचन्दजी ने जैनतत्त्व

मीमांसा में, खानिया चर्चा में इसका बहुत आधार लिया है। द्रव्य जो वस्तु है न? उसकी पर्यायसहित द्रव्य उपादानकारण है और बाद की पर्यायसहित द्रव्य, वह कार्य है। पर्यायसहित द्रव्य। परन्तु वह भी व्यवहार है।

यहाँ तो कहते हैं कि उत्पादव्ययध्रुव, उस समय जो पर्याय उत्पन्न होती है, वह पूर्व (पर्याय के) कारण से नहीं। धन्नालालजी! सूक्ष्म बात है। शास्त्र में ऐसा बहुत आता है और उसका आधार भी फूलचन्दजी ने बहुत दिया है। वह तो पूर्व पर्याय क्या थी और बाद की पर्याय कौन सी है, ऐसे द्रव्यसहित का कारण-कार्य बताया है।

यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! एकबार सुन तो सही! आहाहा! तेरे एक-एक गुण में ध्रुवता और पर्याय में उत्पन्न होना, वह स्वतन्त्र पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! ज्ञान में हो, दर्शन में हो, चारित्र में हो, आनन्द में हो। आहाहा! आनन्दशक्ति है, उसमें भी उत्पादव्ययध्रुव का भी रूप है। आहाहा! यह पहले आ गया है। सुख पाँचवीं शक्ति, पाँचवीं शक्ति। जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान और सुख तथा छठवीं वीर्य (शक्ति)। वीर्य तो सवेरे कहा था कि वीर्य तो उसे कहते हैं... वीर्य में भी उत्पादव्ययध्रुव का रूप है। आहाहा! गम्भीर! वह वीर्य भी अपनी पर्याय में उत्पन्न होने की उसमें शक्ति है। अपने से वीर्य की पर्याय स्वरूप की रचनामय उत्पन्न होती है। आहाहा! सूक्ष्म बात है। समझ में आया?

वीर्य भी शक्ति है। उसमें यह उत्पादव्ययध्रुव का रूप है तो वीर्य भी अपनी पर्याय में जो पुरुषार्थ उत्पन्न होता है, वह अपनी शक्ति के कारण से उत्पन्न होता है। पूर्व की पर्याय के कारण से नहीं। आहाहा! समझ में आया? निमित्त से तो नहीं, परन्तु पूर्व कारण से भी नहीं। वह तो नहीं परन्तु वर्तमान में जो अनन्त पर्याय है, तो एक पर्याय के कारण से दूसरी पर्याय है, ऐसा भी नहीं। क्योंकि प्रत्येक द्रव्य के प्रत्येक गुण में उत्पादव्ययध्रुव का रूप है तो उस गुण में उत्पाद ज्ञान में, दर्शन में अपने से उत्पन्न होता है। सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ तो सम्यग्ज्ञान की पर्याय उसके कारण से उत्पन्न हुई, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले तो कहा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न? पहले तो कहा था कि व्यवहार का कथन है।

मुमुक्षु : व्यवहार को तो आप हेय मानते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हेय ही है। ऐसा ही है।

चिदानन्द भगवान ध्रुव आनन्द का कन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का तल स्पर्श करने से, उसका तल... तल... अर्थात् ध्रुवता में स्पर्श करने से... स्पर्श का तो निषेध किया, पर्याय स्पर्श नहीं करती। समझ में आया? परन्तु ध्रुव सन्मुख लक्ष्य करने से जो उत्पादव्ययध्रुवशक्ति है तो प्रत्येक गुण की पर्याय अपने में उत्पन्न होती है, पूर्व से व्यय पाती है और ध्रुवता धारण करती है। आहाहा! ऐसी बात है। और अभी विवाद तो व्यवहार का झगड़ा। अरे! प्रभु! सुन तो सही। व्यवहार हो, परन्तु अन्तर निर्मल पर्याय उत्पन्न करने में वह कारण नहीं है। समझ में आया? सोनगढ़ के सामने यह विवाद है न? कि उपादान में निमित्त से होता है, निश्चय में व्यवहार से निश्चय होता है और पर्याय में क्रमवर्ती एकान्त है, और नियत है, ऐसा नहीं। नियत-अनियत दोनों हैं। अरे! ऐसा नहीं है, भाई! समझ में आया?

(पंचास्तिकाय) १५५ गाथा में आता है। नियत, अनियत के लिये इसका दृष्टान्त देते हैं। वहाँ नियत-अनियत की व्याख्या दूसरी है। नियत अर्थात् उसके स्वभाव को नियत कहते हैं और विभाव को अनियत कहते हैं। ऐसा अर्थ है। पचांस्तिकाय की १५५ गाथा। यह सब चर्चा हो गयी है। देखो! यह अनियत भी है। परन्तु अनियत का अर्थ आगे-पीछे होती है, यह बात ही वहाँ नहीं है। विभाव अनियत है। स्वभाव की जाति नहीं न। अनियत का अर्थ आगे-पीछे, ऐसा नहीं है। समझ में आया? स्वभाव जो है, वह नियत है; इसलिए उसकी पर्याय और आत्मा निज स्वभाव है। और विभाव है, वह अनियत है। निश्चय की पर्याय है, इसलिए व्यवहार की पर्याय है, (ऐसा नहीं है)। विभाव अनियत है। अनियत अर्थात् आगे-पीछे पर्याय होती है, यह प्रश्न यहाँ नहीं है। समझ में आया?

सैंतालीस नय में नियत-अनियतनय आया है और काल-अकालनय आया है। वह सब नय एक समय में ४७ धर्म साथ में है। सैंतालीस नय में ऐसा भी कहा है कि काल में मोक्ष होगा और अकाल में भी होगा, ऐसा लिया है। इसका अर्थ ऐसा करते हैं कि देखो! अकाल में भी मोक्ष होता है। ऐसा अर्थ है ही नहीं। काल में तो जिस समय में केवलज्ञान और मुक्ति होनी है, उस समय में होगी। अकाल का अर्थ (यह कि) काल के अतिरिक्त

स्वभाव और पुरुषार्थ को साथ में लेकर अकाल कहा है। समझ में आया? काल और अकाल, नियत और अनियत एक समय में ४७ धर्म साथ में है। आगे-पीछे है नहीं, एक साथ धर्म है। किसी को काल और किसी को अकाल है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : उसे ही काल, उसे ही अकाल...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे ही अकाल कहते हैं। स्वभाव और पुरुषार्थ की अपेक्षा से (अकाल कहते हैं)। समझ में आया? अरे! सत्य की खबर नहीं होती। आहाहा! काल और अकाल कहा था न? ध्यानविजय का प्रश्न नहीं था? श्वेताम्बर के एक ध्यानविजय थे न? श्वेताम्बर थे, फिर दिगम्बर हुए। यहाँ का वाँचन करके बहुत बातें करते थे। रूपचन्दजी मलकापुरवाले थे, उनके भगत थे। नेमचन्दभाई! तुम्हारे भाई रूपचन्दजी। एक बार हम जब गजपंथा गये तो वहाँ रहते थे। हम नीचे उतरे थे। आये, आकर वन्दन किया, उठ-बैठ करके चरण स्पर्श किये। रात का समय था, इसलिए बोल नहीं सके। दूसरे दिन शाम को हमें जाना था, वहाँ से निकलना था। आये नहीं तो बातचीत कुछ हुई नहीं। इसलिए वे आये नहीं, मैं ऊपर गया। सायंकाल पाँच बजे निकलना था, मैं ढाई-तीन बजे गया। बैठे थे। दरवाजा बन्द था। हम गये तो दरवाजा खोल दिया, नीचे उतर गये, वन्दन किया। मेरा तो ये प्रश्न था, यहाँ की बात वाँचन करके कहते हैं या इनके ख्याल में कोई चीज़ है? लालचन्दभाई! यहाँ का वाँचन करके बात करते हैं या इनके ख्याल में कोई यथार्थता का ख्याल है? यह प्रश्न किया। नेमिचन्दभाई! तुम्हारे रूपचन्दजी बैठे थे। चार-पाँच व्यक्ति थे।

कहा, शास्त्र में काल में मोक्ष और अकाल में मोक्ष दो बातें आती हैं। क्रमबद्ध में पर्याय में मोक्ष होता है। शास्त्र में काल और अकाल दोनों है। नेमिचन्दभाई! वे समझ गये कि यह अभी पकड़ेंगे। इसलिए कहा, मैंने विचार किया नहीं। समझ में आया? यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि जिस समय में उत्पाद होना है, उसी समय में होता है। समझ में आया? अकालनय में पुरुषार्थ और स्वभाव की अपेक्षा से अकालनय कहा है। आगे-पीछे (पर्याय) होती है, यह अकाल का अर्थ है ही नहीं। समझ में आया? पोपटभाई! यह सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : इसके लिये तो आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा न? वह अभी तक स्थूल किया है न? आहाहा!

परमात्मा पूर्ण कालस्वरूप... एक बार तो यह भी कहा था कि जो पूर्ण कालस्वरूप है, वह स्वकाल है और उसकी पर्याय का उत्पन्न होना, वह परकाल है। क्या कहा? समझ में आया? २५२ कलश में लिया था न? २५२ कलश में है। सवेरे चलता है न? कलश-टीका। उसमें ऐसा लिया है कि जो स्वद्रव्य है, वह अभेद है और द्रव्य में विकल्प करना कि यह द्रव्य है और यह गुण है, वह परद्रव्य। समझ में आया? क्षेत्र में असंख्य प्रदेशी एकरूप (क्षेत्र) है, वह स्वक्षेत्र। और क्षेत्र में भेद करना कि यह प्रदेश और यह प्रदेश, वह परक्षेत्र और काल में त्रिकाली वस्तु, वह स्वकाल। स्वकाल। और पर्यायान्तर, अवस्थान्तर एक समय की अवस्था का पृथक् लक्ष्य करना, वह परकाल। समझ में आया? सूक्ष्म बात, बापू! मार्ग सूक्ष्म है, सूक्ष्म है, बहुत सूक्ष्म। आहाहा! यह विकल्प से भी वस्तु ज्ञात नहीं होती। भले विकल्प से धारणा कर ले। समझ में आया? बालचन्दभाई! कि यह ऐसा और यह ऐसा है। परन्तु विकल्प से ज्ञात हो, ऐसी वस्तु ही नहीं है। वह तो निर्विकल्प से ज्ञात होती है। आहाहा! समझ में आया?

वहाँ तो ऐसा कहा है, त्रिकाली द्रव्य को स्वकाल कहा और एक समय की अवस्था को परकाल कहा। पर के काल की अवस्था तो भिन्न रह गयी। आहाहा! क्योंकि भेद से दृष्टि उठाना है। भाई! द्रव्य का भेद, क्षेत्र का भेद, काल का भेद, भाव का भेद (ऐसे) भेद से (दृष्टि उठाने को कहा है)। और निश्चय से तो जो द्रव्य है, वही क्षेत्र है, वही काल है, वही भाव है। यह क्या कहा? निश्चय में जो द्रव्य कहा, पर्याय बिना का, वही क्षेत्र है, वही क्षेत्र है, वही द्रव्य है, वही क्षेत्र है, वह त्रिकाल, वह काल है और वह त्रिकाल भाव है। इन चार के भेद भी नहीं। पर्याय का भेद तो नहीं परन्तु चार का भेद नहीं। आहाहा! ऐसी वस्तु में उत्पादव्ययध्रुवशक्ति पड़ी है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! मार्ग ऐसा है। आहाहा!

कहते हैं कि जिस समय में (पर्याय) उत्पन्न होती है, प्रत्येक गुण की, हों! प्रत्येक गुण की और प्रत्येक गुण में उत्पादव्ययध्रुव का रूप पड़ा है। आहाहा! समझ में आये उतना समझना। वस्तु तो ऐसी गम्भीर है। निर्विकल्प अनुभव बिना उसका अनुभव नहीं होता।

आहाहा! क्योंकि वस्तु भेदरहित है, रागरहित है, पर्यायरहित है। तथापि उसमें उत्पादव्ययध्रुव नाम की शक्ति प्रत्येक गुण में है, अत: प्रत्येक गुण का अपनी पर्याय में उत्पाद होता है और पूर्व की पर्याय का व्यय होता है, वह इस गुण के कारण से अथवा इस शक्ति के रूप के कारण से (होता है)। पर की शक्ति के कारण से नहीं। आहाहा! व्यवहार के कारण से तो नहीं, परन्तु पूर्व की पर्याय है, उसके कारण से और एक शक्ति है तो दूसरी शक्ति के कारण से भी नहीं। प्रियंकरजी! ऐसी वस्तु है, भाई! आहाहा! अरे! लोगों को समझ में नहीं आता। लोगों को बाहर के क्रियाकाण्ड में जोड़ दिया। यह करो और यह करो। अरे! परन्तु यह तो बापू! अनन्त बार किया है न, प्रभु! शुभभाव भी अनन्त बार किये हैं। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' भगवान! आनन्द के तल में भगवान पड़ा है। आहाहा! जिसके तल में आनन्द है।

जैसे समुद्र के तल में मोती आदि पड़े हैं। समुद्र में कितने ही मोती पड़ गये हों, चाँदी खो गयी है, सोना अन्दर समुद्र में नीचे पड़ा है। समझ में आया? बहुत अनन्त काल हुआ न? तो कोई ऐसी चाँदी डूब गयी हो तो अन्दर चाँदी पड़ी हो। सोना नीचे पड़ा हो, मोती नीचे पड़े हों, बहुत पड़ा है। समझ में आया? परन्तु अन्दर डुबकी मारकर... श्वास लेने की नली रखे, हों! लेने के लिये डुबकी मारे सही परन्तु साथ में श्वास की नली में हवा आवे। तो ही हवा आवे, नहीं तो वहाँ तो हवा आवे नहीं। ऊपर से हवा नहीं और अन्धेरा हो तो दिखाई भी न दे, तो अन्दर प्रकाश भी रखे। वह देखे कि यह मोती है, तो मोती उठा लेता है; इसी प्रकार भगवान के तल में तो अनन्त आनन्दादि मोती पड़े हैं। समझ में आया? आहाहा! अनन्त ज्ञान है, अनन्त आनन्द है, अनन्त शान्ति है, अनन्त प्रभुता है, अनन्त स्वच्छता है। आहाहा! वह प्रत्येक शक्ति उत्पादव्ययध्रुव से कार्य करती है। आहाहा! उस उत्पाद के लिये दूसरा कारण तो नहीं परन्तु दूसरी शक्ति और दूसरी पर्याय भी कारण नहीं। बहुत समय से तो सुनते हैं। ४३ वर्ष तो यहाँ हुए। चार और तीन (४३वाँ) तो चातुर्मास चलता है।

मुमुक्षु : ४३ तो आपको हुए हैं। सबको नहीं हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे भी इतने ही हुए है। परन्तु सुनने तो आते हैं या नहीं? कि

ऐसी बात करते हैं, ऐसी बात करते हैं। भले इतने वर्ष न हुए हों परन्तु ऐसा कहते हैं, ऐसा कहते हैं—ऐसा लोक में प्रचार तो हो गया है या नहीं ? आहाहा!

प्रभु! एक बार सुन न, नाथ! तेरा उत्पाद, आनन्द और सम्यग्दर्शन की पर्याय का उत्पाद, एक-एक गुण में उस-उस उत्पाद का काल है तो उत्पन्न होता है। आहाहा! और वह भी उत्पाद होता है, द्रव्य की दृष्टिवन्त को वह उत्पाद निर्मल होता है। समझ में आया ? पर्याय के लक्ष्य से पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : मोक्षमार्गप्रकाशक में ऐसा लिखा है—पुरुषार्थ से उत्पन्न होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ से होती है परन्तु उस प्रत्येक में वीर्यशक्ति भी है न ? कहा न ? वीर्यशक्ति भी है न ? तो अपने से, पुरुषार्थ से होती है। उसमें पुरुषार्थ है। अरे! उसमें तो है परन्तु परमाणु में भी वीर्यशक्ति है। उसकी शक्ति है। वीर्य अर्थात् परमाणु में शक्ति है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शरूप से एक, दो, तीन आदि स्निग्धतारूप परिणमता है, वह अपनी शक्ति से परिणमता है, पर के कारण से नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

यह प्रश्न हुआ था न ? यह स्कन्ध यहाँ है। तो सूक्ष्म परमाणु भिन्न थे, वे यहाँ आये तो स्थूल हो गये तो देखो! निमित्त से स्थूल हुए। सामनेवाले की ओर से यह प्रश्न आया था। ऐसा है नहीं। परमाणु में भी अपनी शक्ति से स्थूलरूप होने की योग्यता से (पर्याय) उत्पन्न हुई है। निमित्त के कारण से नहीं। बात सत्य है। अकेला परमाणु सूक्ष्म है, यहाँ आया तो सूक्ष्म नहीं रहा। परन्तु सूक्ष्म नहीं रहा, वह स्थूलरूप उत्पन्न होने की शक्ति से स्थूल हुआ है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी तो यह निमित्त का कथन है। कहा न ? यह प्रश्न भी चला था। (संवत्) २००३ के वर्ष में विद्वान आये थे तब। परमाणु में भी जो दो गुण स्निग्धता है और दूसरे परमाणु में चार गुण की पर्याय की स्निग्धता है। दोनों इकट्ठे होने पर यह चार गुण हो जाता है। चार गुण होता है परन्तु स्वयं की पर्याय की योग्यता से उस समय में उत्पन्न होने की योग्यता से ऐसा हो जाता है। निमित्त आया तो चार गुण स्निग्धता हुई, ऐसी वस्तु नहीं है। भाई! आहाहा! देखो! गजब किया है न!

प्रत्येक शक्ति में उत्पादव्ययध्रुवशक्ति का रूप है और वह भी उस समय जो उसका उत्पाद है, वह उत्पाद होगा। जिस समय में जिसका व्यय है, उसका व्यय होगा और उस समय में ध्रुव तो सदृश तो कायम है। आहाहा! ऐसी शक्ति का वर्णन सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं है। बिना भान के बात की है कि आत्मा निर्मल है और शुद्ध है और सर्वव्यापक है। उसमें क्या हुआ?

मुमुक्षु : ओघे-ओघे अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : ओघे-ओघे नहीं समझते? ओघे अर्थात् जाना हो ऐसे और दृष्टि रही ऐसे, और जाता है वह ओघे-ओघे गया कहलाता है। खबर बिना। खबर नहीं, खबर नहीं। व्यक्ति को जाना हो पश्चिम की ओर किन्तु उसकी धुन में और धुन में दक्षिण में चला गया। अरे! मुझे तो ऐसा जाना था न! वह ओघे-ओघे—भान बिना। इसी प्रकार यह भान बिना आत्मा की बातें करे, वे सब खोटी हैं।

उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। तत्त्वार्थसूत्र में आया न? उस शक्ति का यह वर्णन है। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् जो तत्त्वार्थसूत्र में आया है, यह वह उत्पादव्ययध्रुवशक्ति है। प्रत्येक गुण में, प्रत्येक द्रव्य में। परमाणु में भी ऐसी शक्ति है। आहाहा! यह तो आत्मा की बात चलती है। क्योंकि आत्मा जाने तो परमाणु को यथार्थ जाने। समझ में आया? यह अपने आ गया है।

कलश-टीका में दो बात आ गयी थी कि पानी शीतल है और उष्णता अग्नि की है, इसका ज्ञान किसे होता है? निजस्वरूपग्राहीज्ञानवाले को ज्ञान होता है। यह क्या कहा?

मुमुक्षु : निज स्वरूप के ज्ञान... बिना...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह भान नहीं होता। भेदविपर्यास, कारणविपर्यास में ... समझ में आया? तीन बोल आये हैं न, मोक्षमार्गप्रकाशक में? कारणविपर्यास, स्वरूपविपर्यास और भेदविपर्यास। तीन में से एक बोल तो उसे—भूलवाले को होता ही है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, वह स्वयं से उत्पन्न हुआ, पर से नहीं। आहाहा! और पर का ज्ञान

भी, अपने निज स्वरूप का ज्ञान करे तो पर का ज्ञान, परप्रकाशक का ज्ञान यथार्थ होता है। आहाहा! दो बातें ली थी न? एक तो, पानी शीतल है और अग्नि के निमित्त से उष्ण हुआ, ऐसा ज्ञान किसे होता है? जिसे निजस्वरूप का ज्ञान होता है, उसे व्यवहार का ज्ञान यथार्थ होता है। आहाहा! और वहाँ एक बात ऐसी ली है कि सब्जी है न? सब्जी। सब्जी में खारापन है, वह लवण का—नमक का है और सब्जी उस खारेपन से भिन्न है। उसका ज्ञान किसे होता है? आहाहा! निजस्वरूपग्राही ज्ञानवाले को ज्ञान होता है। जिसने अपने स्व-प्रकाशक भगवान आत्मा के ज्ञान का ज्ञान किया, उसे सब्जी खारी नहीं परन्तु नमक खारा है, खारा नमक है, ऐसा भेद का ज्ञान निजस्वरूपग्राहीवाले को ही होता है। जिसे निज स्वरूप का ज्ञान नहीं, उसे व्यवहार का ज्ञान सच्चा नहीं होता। कोई भी कारणविपर्यास, भेदविपर्यास, स्वरूपविपर्यास, तीन में से कोई एक भूल तो रह जाती है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **क्रमवृत्तिरूप और अक्रमवृत्तिरूप वर्तन जिसका लक्षण है, ऐसी उत्पादव्ययध्रुवत्वशक्ति।** क्रमवर्तीरूप पर्याय, उत्पादव्ययरूप। अक्रमवर्तीरूप गुण ध्रुवरूप। यह अक्रम अर्थात् पर्याय अक्रम नहीं, गुण अक्रम है। समझ में आया? ऐसा तो समयसार पूर्वरंग ३८ गाथा में आता है, क्रम-अक्रम पर्याय दोनों आते हैं। कौन सी गाथा? ३८। क्रम-अक्रम दो पर्याय चलती है। उसका अर्थ क्या? गति एक के बाद एक होती है तो उसे क्रम कहते हैं और राग, कषाय, योग एक साथ होते हैं तो अक्रम कहते हैं। योग है, राग है, लेश्या है एक साथ है। मार्गणा नहीं। यहाँ तो तीन बोल लेना है। योग है, उसी समय लेश्या है, उसी समय कषाय है, उस समय मतिज्ञान है। एक साथ है तो अक्रम कहा गया है। अक्रम अर्थात् आगे-पीछे होता है, ऐसी बात वहाँ नहीं है। एकसाथ है तो अक्रम कहा और गति है, वह एक के बाद एक होती है। नरक के बाद पशु; पशु के पश्चात् अन्य तो उसे क्रमवर्ती गति कहा गया है। समझ में आया? आहाहा! अक्रम शब्द खानिया चर्चा में आया है। देखो! यहाँ अक्रम कहा है। परन्तु अक्रम किसे कहा है?

मुमुक्षु : गुणस्थान क्रम से होते हैं और मार्गणा अक्रम से होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक-एक समय की पर्याय, गति है, ज्ञान है, दर्शन है, वह एक साथ है। समझ में आया? यह तो मार्गणा में से अपने संक्षिप्त लेना है। योग है, उस समय

लेश्या है; लेश्या है, उस समय कषाय है तो उसे अक्रम कहा जाता है। मार्गणा के तो चौदह बोल हैं। वहाँ मार्गणा में तो ऐसा लिया है, भव्य-अभव्य का भी निषेध किया है। आत्मा भव्य, अभव्य नहीं है। चौदह बोल में है न? अन्तिम बोल। आहारक, अनाहारक, समकित के भेद, दर्शन के भेद, ज्ञान के भेद, गति के भेद। बाद में कहा कि भव्य-अभव्य भी नहीं। आत्मा में भव्य-अभव्य मार्गणा है ही नहीं। अक्रम होता है, वहाँ उसका निषेध कर दिया। समझ में आया? आहाहा! अब ऐसी बातें। यहाँ यह कहा, अठारह शक्ति हुई।

द्रव्यस्वभावभूतध्रौव्यव्ययोत्पादालिङ्गितसदृशविसदृशरूपैकास्तित्वमात्रमयी परिणामशक्तिः।

द्रव्य के स्वभावभूत ध्रौव्य-व्यय-उत्पाद से आलिंगित (-स्पर्शित), सदृश और विसदृश जिसका रूप है, ऐसे एक अस्तित्वमात्रमयी परिणामशक्ति।१९।

अब १९। इस १९वीं शक्ति का नाम परिणामशक्ति है। अस्तित्वमयी परिणामशक्ति इसका नाम है। आहाहा!

वास्तव में तो जैसे उत्पादव्ययध्रुव कहा, ऐसा सत् द्रव्यलक्षणम्। तत्त्वार्थसूत्र में (आया न)? उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। एक बात। सत् द्रव्यलक्षणम्। दूसरा सूत्र। वह यहाँ सत् के परिणाम की व्याख्या करके अस्तित्वमयी परिणामशक्ति का वर्णन है। आहाहा! क्या कहा? देखो!

द्रव्य के स्वभावभूत... यह १९वीं शक्ति। आत्मा के द्रव्य के स्वभावभूत। **ध्रौव्य-व्यय-उत्पाद से...** पहले में उत्पादव्ययध्रुव कहा था। पहले उत्पाद-व्यय लिया था, फिर ध्रुव लिया। इसमें पहले ध्रुव लिया है। समझ में आया? इसका स्वभाव है न, इसलिए पहले ध्रुव लिया। ध्रुव और व्यय, अभाव होता है न, इसलिए पहले व्यय लिया। उसमें तो उत्पाद पहले लिया और उत्पादव्ययध्रुव, ऐसा लिया। उत्पन्न होता है, व्यय होता है और ध्रुव (रहता है)। यहाँ तो ध्रुव, व्यय और उत्पाद ऐसा लिया है। आहाहा! एक शब्द में अन्तर है, उसमें हेतु है। स्वभावभूत ध्रुव पहले सिद्ध करना है। आलिंगन, इन तीन को आलिंगन करता है, ऐसा यहाँ लेते हैं। समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म तो है, भाई! क्या कहा?

द्रव्य के स्वभावभूत ध्रौव्य-व्यय-उत्पाद से... ध्रुव—कायम रहनेवाली चीज़, व्यय—पूर्व की पर्याय का अभाव और नयी पर्याय का उत्पाद, उसे आलिंगन, तीन को द्रव्य आलिंगन करता है। परिणामशक्ति तीन को आलिंगन करती है। क्या कहा? आलिंगन का अर्थ पर्याय, द्रव्य को स्पर्श करती है-ऐसा नहीं, तीन को आलिंगन करती है। तीन में अस्तित्वपना है। तीन होकर अस्तित्व है, ऐसा। अस्तित्व लिया न? देखो!

द्रव्य के स्वभावभूत... यह तो वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म, प्रभु! इसे तो बहुत ध्यान रखे तो पकड़ में आये, ऐसी चीज़ है। दया पाली और व्रत करना, भक्ति करना और पूजा करने में धर्म है। अरे! वह तो अधर्म है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वत्र पूरी दुनिया अनादि से (यह करती है)। आहाहा! अन्दर शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा! यहाँ ये तीनों उत्पाद, व्यय और ध्रुव पवित्र है। इस पवित्र की बात है। राग की बात नहीं। ध्रुव, व्यय और उत्पाद ऐसे शब्द लिये हैं। पहले में उत्पाद, व्यय और ध्रुव ऐसा लिया था। क्योंकि उत्पत्ति पर्याय, व्यय हुई और ध्रुव रहा। यहाँ तो पहले ध्रुव स्वभावभूत लिया है। आत्मा के स्वभावभूत... अब ऐसा सब सूक्ष्म... सूक्ष्म.. कातना। कातना समझे? डोरा निकले न? सूत। कोई बीस नम्बर का हो, कोई चालीस नम्बर का हो, कोई साठ नम्बर का हो।

मुमुक्षु : यह तो १२० नम्बर का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : १२० नम्बर? ऊँची चीज़ का डोरा, उसकी कीमत चाहिए न? १२० नम्बर का डोरा बहुत पतला होता है। समझ में आया? आहाहा! और चाँदी का भी डोरा निकले हैं। चाँदी होती है न, चाँदी? लोहे के छिद्र हों, उसमें खींचे। लोहे के छिद्र होते हैं न? छिद्र। खींचकर पतला बनाते हैं। यह तो देखा है न! यहाँ खींचकर नहीं, यहाँ तो यथार्थ है वैसा बताते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए तो कहा। खींचकर नहीं, इसमें यथार्थ है, वह कहते

हैं। आहाहा! उसमें से सूक्ष्म बात निकालते हो, ऐसा पण्डितजी कहते हैं। बात सत्य है। परन्तु खींचकर नहीं। ऐसी चीज़ अन्दर है। आहाहा!

भगवान आत्मा ध्रुव, व्यय और उत्पाद... आहाहा! तीनों को द्रव्य आलिंगन करता है। तीसरी गाथा में लिया न? समयसार तीसरी गाथा। प्रत्येक द्रव्य अपने धर्म को चुम्बन करता है। चूमता है कहो या स्पर्श करता है कहो। परद्रव्य को तो स्पर्श ही नहीं करता। आहाहा! समझ में आया? यह लोग चिल्लाहट मचाते हैं न? कर्म के कारण होता है, कर्म के कारण होता है। परन्तु कर्म के उदय को तो आत्मा कभी स्पर्श ही नहीं करता। समझ में आया? यह आया न? टीका बहुत चली थी।

बंशीधरजी यहाँ आये थे। इन्दौरवाले... यहाँ आये थे। ऐसे नरम व्यक्ति थे, परन्तु बहुत वर्ष से पुरानी रूढ़ि की पकड़ थी। यहाँ तो स्वीकार करते थे कि देखो! इसमें परसंग एव, (१७५) कलश में शब्द है। 'परसंग एव'। परएव—ऐसा नहीं। पर का संग करता है तो राग होता है। पर से राग होता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? अपने असंग तत्त्व को छोड़कर पर का संग करता है, सम्बन्ध करता है तो विकार होता है। पर से विकार होता है, ऐसा नहीं है। बहुत चर्चा, आठ कर्म की बात... आहाहा! समझ में आया? विकार होता है, वह अपने से अपने कारण से होता है।

ईश्वरशक्ति ली है न? ४७ नय। उसमें ईश्वरनय है। ईश्वरनय का अर्थ ऐसा लिया है कि जैसे धायमाता के पास बालक पराधीन होता है। धायमाता के पास बालक को दूध पिलाते हैं न? तो पराधीन होता है। इसी प्रकार आत्मा में ऐसी योग्यता है कि निमित्त के आधीन होने की शक्ति है। निमित्त आधीन कराता है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : आधीन होने की शक्ति?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, समझ में आया? अपनी योग्यता ऐसी है, ऐसा ईश्वरनय है। सैंतालीस नय में ईश्वरनय, अनीश्वरनय समझ में आया? आहा! एक-एक नय का वर्णन यहाँ तो हो गया है। व्याख्यान हो गये हैं। ज्ञेय-ज्ञायक स्वभाव... आहाहा! अधिक स्पष्टीकरण आता है न? विरोध बहुत हुआ न?

मुमुक्षु : पर्याय नयी-नयी है तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय नयी है और विरोध बहुत हुआ तो उसका स्पष्टीकरण / खुलासा बहुत आता है।

मुमुक्षु : सामनेवाले को तो आप स्पष्टीकरण करते ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कल कहा न? प्रियंकरजी बोले, उतरे। यहाँ उतरे वे बाहर अखबार में देना नहीं। अपना काम नहीं, अपने तो एक जानना बस! कोई समाचार-पत्र में देना नहीं, कोई आत्मधर्म में नहीं, कोई... क्या कहलाता है? टेप रिकार्डिंग कर ले उसमें भी नहीं। यहाँ तो जानने की बात है, किसी व्यक्ति के प्रति... अपना काम नहीं है।

मुमुक्षु : दूसरे समझ सकते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : योग्यता होवे तो सुनने आवे तो समझे न?

मुमुक्षु : आप बुलाते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सत्य कहते हैं।.... हमारा सच्चा है और तुम्हारा खोटा है, इसीलिए तो आते हैं, समझने आते हैं?

मुमुक्षु : हमारे अभी शंका है थोड़ी, इसलिए आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटा है, ऐसा निर्णय करके आते हैं। वीतरागभाव से स्पष्टीकरण समझना है, ऐसा कहे तब तो... धन्नालालजी! यह अनादि की बात है, यह कोई नयी नहीं है।

यहाँ तो प्रभु कहते हैं कि तेरी वस्तु में अस्तित्वमात्रमयी परिणामशक्ति है। चिद्विलास में इसका बहुत वर्णन किया है। चिद्विलास में परिणामशक्ति का बहुत वर्णन है। नहीं यहाँ? लिखा है या नहीं? 'अध्यात्मपंचसंग्रह' परमात्मपुराण (आदि) पांच है, पाँच। उसमें परिणामशक्ति का बहुत वर्णन किया है। प्रत्येक गुण के परिणाम होने की अस्तित्वमयी शक्ति है। बहुत वर्णन किया है। दो पृष्ठ में किया है। किसी के पास नहीं? आहा! यहाँ तो सब देखा है न! हजारों शास्त्र। श्वेताम्बर के करोड़ों श्लोक (देखे हैं)। यहाँ तो जिन्दगी पूरी (इसमें गयी है)। ...चिद्विलास, चिद्विलास में यह है। परिणामशक्ति का बहुत वर्णन है। इस शक्ति का वर्णन।

प्रत्येक पदार्थ की, आत्मा की प्रत्येक पर्याय अस्तित्वमयी परिणाम है। अस्तिमय परिणाम है। शक्ति का अस्तित्व ध्रुव है और पर्याय में व्यय-उत्पादरूपी परिणमन है। वह परिणामशक्ति के कारण से है। आहाहा! समझ में आया? १८ और १९ शक्ति में अन्तर क्या है? यहाँ पहले ध्रुव लिया है और उसमें पहले उत्पाद लिया है। अर्थात् पर्याय की प्रधानता से कथन करते हैं। उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत्, यह तत्त्वार्थसूत्र की व्याख्या है। यहाँ तो ध्रुव और व्यय और उत्पाद इस प्रकार से। उसमें उत्पाद पहला, पश्चात् व्यय, पश्चात् ध्रुव। यहाँ ध्रुव पहले, पश्चात् उत्पाद, फिर व्यय। व्यय के बाद उत्पाद ऐसा है। देखो! है? ध्रौव्य, व्यय और उत्पाद। आहाहा! परिणमन करने में उसकी ध्रुवशक्ति और व्यय और उत्पाद से वह परिणाम परिणमता है, ऐसी एक शक्ति है। परिणमन की पर्याय में ऐसी एक शक्ति है, इसलिए वह परिणमन करता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें सूक्ष्म। है?

द्रव्य के स्वभावभूत ध्रौव्य-व्यय-उत्पाद से आलिंगित (-स्पर्शित),... अब अन्तर डाला, देखो! **सदृश और विसदृश...** ध्रुव को सदृश कहा, उत्पाद-व्यय को विसदृश कहा। क्या कहा? जो ध्रुव है, वह सदृश है, कायम एकरूप रहनेवाला है और उत्पाद-व्यय विसदृश है। क्यों? उत्पाद—भाव, व्यय—अभाव। भाव-अभाव, इसका नाम विसदृश है। उत्पाद-व्यय। एक का अभाव, एक का भाव। तो विसदृश हुआ न? और ध्रुव है, वह त्रिकाल सदृश है। त्रिकाल सदृश है। एकरूप रहनेवाले को ध्रुव सदृश कहते हैं और व्यय और उत्पाद को दो का भाव विसदृश है। एक का अभाव होना और एक का भाव होना। व्यय का अभाव होना और उत्पाद का भाव होना, वह विसदृश है। आहाहा! ऐसी बात है।

उसमें भी आया है, धवल में। धवल में आया है, अपने बात हुई थी कि धवल में आया है। सदृश-विसदृश। विसदृश। उत्पाद, व्यय और व्यय, उत्पाद दोनों एक सरीखे नहीं हैं। क्योंकि पूर्व की पर्याय का अभाव है और उसी समय में उत्पाद है तो एक अस्तिरूप से है, एक अभावरूप से है। ऐसे उत्पाद-व्यय को विसदृश कहा जाता है। एकरूपता नहीं, विरूपता है। समझ में आया? ध्रुव को सदृश कहते हैं। सामान्य कहो, ध्रुव कहो, अभेद कहो, एक कहो, त्रिकाली कहो, यह सब सदृश है। और पर्याय में एक समय की अवस्था में व्यय-उत्पाद है, वह विसदृश है। आहा!

धवल में आया है। कहा था न? धवल में। वहाँ विरुद्ध है। वहाँ विरुद्ध है— अविरुद्ध है। धवल में उत्पाद-व्यय को विरुद्ध कहा है और ध्रुव को अविरुद्ध कहा है। ऐसी बात है। यहाँ सदृश-विसदृश कहा, वहाँ विरुद्ध-अविरुद्ध कहा। आत्मा में ध्रुवता, वह अविरुद्ध है और उत्पाद-व्यय है, वह विरुद्ध है। क्योंकि एक उत्पाद और एक व्यय यह विरुद्ध है। आहाहा! उसमें भी आया है न? विरुद्ध और अविरुद्ध को धारण किया है जगत में। तीसरी गाथा। तीसरी गाथा में आया है। तीसरी गाथा में आया न? भाई! विसदृश और सदृश से पूरी वस्तु... वहाँ विरुद्ध-अविरुद्ध शब्द है। वहाँ तीसरी गाथा में विरुद्ध-अविरुद्ध शब्द है। विरुद्ध-अविरुद्ध से पूरा जगत टिक रहा है। उत्पाद-व्यय से और ध्रुव से पूरा जगत अपने से टिक रहा है। आहाहा! समझ में आया? भाई! तीसरी गाथा में है। वहाँ विरुद्ध-अविरुद्ध शब्द है। धवल में विरुद्ध-अविरुद्ध शब्द है, यहाँ सदृश-विसदृश शब्द है। आहाहा! आचार्यों ने तो गजब काम किया है। दिगम्बर सन्तों ने... आहाहा! एक-एक बात को कितनी खोदकर भेदकर भिन्न करके बताया है! आहाहा!

कहते हैं कि ध्रुव, व्यय-उत्पाद स्वभावभूत, द्रव्य के स्वभावभूत। देखा? यह तीन तो इसका स्वभाव है। सत् द्रव्य लक्षण में आया न? उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तं सत् तो पहले में आया और सत्द्रव्यलक्षणम् यह दूसरी शक्ति आयी। सत्द्रव्यलक्षणम्। तो सत् में तीन आये। ध्रुव, व्यय और उत्पाद। उससे आलिंगित **सदृश और विसदृश जिसका रूप है...** आहाहा! व्यय और उत्पाद यह विसदृश है। विसदृश अर्थात् एकरूप नहीं। और ध्रुव है, वह सदृश है, एकरूप है। आहाहा! ऐसा मार्ग! यह समझे बिना, तत्त्व की दृष्टि बिना इसे धर्म हो जायेगा? आहाहा! भाई! यह तो जन्म-मरणरहित होने की वस्तु है। जन्म-मरण और जन्म-मरण का कारण, वह तो यहाँ लिया ही नहीं। क्योंकि कोई शक्ति ऐसी नहीं कि विकार करे। ऐसी कोई शक्ति नहीं कि भवभ्रमण करावे। समझ में आया? आहाहा!

शक्ति और शक्तिवान तो पवित्र परमात्मस्वरूप भगवान विराजता है। आहाहा! उस परमात्मस्वरूप में दृष्टि देने से जो विसदृश व्यय और उत्पाद होता है, वह निर्मल होता है। उत्पाद-व्यय जो होता है, यहाँ व्यय-उत्पाद यह निर्मल की बात है, मलिनता की बात नहीं। विसदृश और सदृश। विसदृश को क्रमवर्ती कहा, विसदृश को विरुद्ध कहा। ध्रुव को

सदृश कहा, ध्रुव को अविरुद्ध कहा। यह क्रमवर्ती पर्याय और अक्रमवर्ती (गुण) का समुदाय, वह आत्मा है, ऐसा कहा। यहाँ तो पर्यायसहित आत्मा लेना है। अकेला द्रव्य नहीं। समझ में आया ? ध्यान रखना ! बात सूक्ष्म है। दूसरा क्या हो ? बापू ! यहाँ पर्यायसहित का द्रव्य लेना है।

३८ गाथा में तो त्रिकाली को ही आत्मा कहा है। नियमसार ३८ गाथा। शुद्धभाव अधिकार। पर्यायरहित त्रिकाली चीज़ है, वही निश्चय आत्मा है। पर्याय भले निर्मल हो तो भी वह व्यवहार आत्मा है। निश्चय से वही आत्मा है। यहाँ तो निश्चय है, उसके भानसहित की यहाँ बात करनी है। अकेला निश्चय, निश्चय है, ऐसा करे (–ऐसा नहीं है)। उसका भान हुआ, उस सहित की बात यहाँ करनी है। समझ में आया ? कारणजीव है, कारणपरमात्मा है, है तो सही उसकी प्रतीति और ज्ञान में आया, उस सहित की यहाँ बात करनी है। समझ में आया ? प्रतीति और ज्ञान में नहीं आया, उसे ध्रुव क्या है ? विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. १९, शक्ति- १९ से २१ सोमवार, (द्वितीय) श्रावण कृष्ण १, दिनांक २९-०८-१९७७

समयसार, शक्ति का अधिकार चलता है। १९वीं शक्ति चलती है न? १९वीं चलती है। शक्ति अर्थात् आत्मा में स्वभावरूप भाव को यहाँ शक्ति कहते हैं। आत्मा गुणी है और यह शक्ति गुण है। यहाँ परिणामशक्ति, अस्तित्वमयी परिणामशक्ति का वर्णन है। किसी को ऐसा लगा कि पूर्व में अठारह में आयी, ऐसी ही १९वीं है। परन्तु ऐसा नहीं है, अन्तर है।

द्रव्य के स्वभावभूत... वस्तु का स्वभाव **ध्रौव्य-व्यय-उत्पाद से आलिंगित (-स्पर्शित), सदृश और विसदृश...** उत्पाद-व्यय में सदृश, विसदृश नहीं आया था। जो गुण है, वह सदृश है और पर्याय है, वह विसदृश है। गुण है, वह अविरुद्ध है और पर्याय है, वह विरुद्ध है। अर्थात् क्या? गुण है, वह अविरुद्ध अर्थात् त्रिकाल एकरूप भाव है और पर्याय में उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय दो है तो एक भाव और एक अभाव, यह विरुद्ध है। तथापि उसका यह स्वभाव है।

यहाँ परिणमनशक्ति। अस्तित्वमयी परिणामशक्ति। शिष्य का प्रश्न था कि, यह परिणमनशक्ति जो है तो उसका अस्तित्वमयी परिणाम पर्याय में आता है, वह परिणामशक्ति से परिणमन आता है या द्रव्य के परिणमन से आता है? क्या कहा, समझ में आया? क्या कहते हैं? सुनो!

मुमुक्षु : चिद्विलास में कहा है कि द्रव्य ही परिणमता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य परिणमता है यहाँ। यह लेना है न! यह वस्तुस्थिति ऐसी है। गुण परिणमता है, इसलिए यह पर्याय हुई—ऐसा नहीं। द्रव्य परिणमता है, इसलिए पर्याय उठती है। समझ में आया? क्योंकि गुण के आश्रय गुण नहीं है किन्तु गुण द्रव्य के आश्रित है। अत: अस्तित्वमयी परिणमन उठता है, वह द्रव्य में से उठता है। शक्ति का वर्णन किया है कि ध्रुव-व्यय-उत्पाद तीनों से आलिंगित सदृश-विसदृश... उत्पाद-व्यय विसदृश है, उत्पाद-व्यय वह भाव-अभाव है, इस अपेक्षा से विरुद्ध भी कहा, विरुद्ध भी कहा, समयसार की तीसरी गाथा में लिखा है, विरुद्ध-अविरुद्ध से पूरा जगत टिक रहा है।

तीसरी गाथा। पूरा जगत विरुद्ध–अविरुद्ध से टिक रहा है। पूरा जगत अपने गुण और उत्पाद–व्ययरूप विरुद्ध से पूरा जगत टिक रहा है। यह तीसरी गाथा में है। और धवल में भी ऐसा है कि पर्याय, वह विरुद्ध है और गुण है, वह अविरुद्ध है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि तीन तीन से आलिंगित **सदृश और विसदृश जिसका रूप है, ऐसे एक अस्तित्वमात्रमयी परिणामशक्ति।** यह परिणमन जो उठता है, वह गुण से उठता है या द्रव्य से उठता है? प्रश्न ऐसा है। समझ में आया? गुण की परिणति कहना है। पर्याय उत्पाद–व्यय है, वह ध्रुवगुण की उत्पाद–व्ययरूप पर्याय है। तो वह गुण की परिणति गुण से उठती है या वह परिणति द्रव्य से उठती है? तो कहते हैं कि गुण से नहीं। द्रव्य की परिणति होने पर गुण की परिणति साथ में उठती है, परन्तु द्रव्य से गुण परिणति उठती है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म है, भाई! यह तो तत्त्वज्ञान का विषय है। समझ में आया?

द्रव्य जो वस्तु अनन्तशक्ति का पिण्ड है, वह द्रव्य स्वयं परिणमता है, उसमें गुण परिणति होती है। और शास्त्र में भी ऐसा लिखा है कि गुणपर्यायवत् द्रव्यम् लिया है। पर्यायवत् गुण, ऐसा नहीं लिया। क्या कहा? तत्त्वार्थसूत्र। गुणपर्यायवत् द्रव्यम्। अनन्त शक्ति और उसकी पर्याय... यह अपने में पहले आ गया। क्रमवर्ती पर्याय और अक्रमवर्ती गुण दोनों का समुदाय होकर पूरा आत्मा है। अरे... अरे...! ऐसी बातें। समझ में आया? क्रमवर्ती पर्याय और अक्रमवर्ती गुण, इन दो का समुदाय वह आत्मा है। अतः इसका अर्थ यह हुआ कि गुणपर्यायवत् द्रव्यम् कहा परन्तु पर्यायवत् गुण, ऐसा नहीं कहा। समझ में आया? तत्त्वार्थसूत्र में ऐसा शब्द है। आहाहा! —गुणपर्यायवत् द्रव्यम्। गुण और पर्याय, क्रम और अक्रम, यह बोल पहले आया था। क्रम और अक्रम... आहाहा! वस्तु का स्वरूप तो देखो! वस्तु के स्वरूप की खबर नहीं और इसे धर्म हो जाये? समझ में आया?

यहाँ परमात्मा... सन्त कहते हैं, वह परमात्मा ही कहते हैं। समझ में आया? कहते हैं कि तीन को स्पर्शित। पहले में ऐसा आया था कि उत्पाद, व्यय और ध्रुव आया था। आलिंगन और सदृश–विसदृश नहीं आया। अठारहवीं शक्ति में। और उन्नीसवीं शक्ति में ध्रुव, व्यय, उत्पाद। उसमें उत्पाद, व्यय और ध्रुव ऐसा आया था। यहाँ ध्रुव से लिया है।

अस्तित्व है न त्रिकाली? ध्रुव, व्यय और उत्पाद। क्योंकि अभाव होता है न? अभाव होता है तो पहले लिया और भाव को बाद में लिया। तो ध्रुव, व्यय, उत्पाद तीन को आलिंगन करता है, ऐसी परिणामशक्ति है। परन्तु उस परिणामशक्ति में जो परिणमन उठता है, उत्पाद-व्यय का परिणमन उठता है, वह शक्ति में से नहीं उठता। इसलिए ऐसा कहा कि शक्ति और शक्तिवान का भेद दृष्टि में से छोड़ दे। समझ में आया? शक्ति का वर्णन है। भेद से अभेद को दिखाते हैं परन्तु भेद और अभेद दो के भेद का लक्ष्य छोड़ दे। अभेद एकरूप चीज़ है। आहाहा! अबद्धस्पृष्ट सामान्य वस्तु जो ध्रुव है, उस पर दृष्टि देने से, अभेद पर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन होता है। शक्ति पर दृष्टि देने से नहीं। क्योंकि शक्ति का परिणमन द्रव्य परिणमन में से उठता है। समझ में आया? इसमें कहाँ... पोपटभाई! इसमें कहाँ टाईल्स में कुछ सूझे ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : टाईल्स में परिणमन तो होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह परिणमन कैसे होता है? यह परिणमनशक्ति है, इसलिए परिणमन होता है, ऐसा नहीं है। द्रव्य का परिणमन होने से गुण का परिणमन साथ में अविनाभाव होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कहकर द्रव्य पर दृष्टि करानी है। समझ में आया? द्रव्य पर दृष्टि होने से द्रव्य—पूरी अन्वयशक्ति के गुणरूप द्रव्य स्वयं परिणमता है तो उसमें गुण की परिणति आ गयी। परन्तु वह गुण की परिणति गुण से नहीं, द्रव्य से उठती है। समझ में आया? लो, अब ऐसी बातें। उसमें समझना क्या? हमें तो धर्म करना है। भाई! धर्म करना हो, वह तो ऐसी चीज़ है कि जो शक्ति है, वह धर्म है और वस्तु है, वह धर्मी है। वस्तु धर्मी है और शक्ति, यह गुण कहो या धर्म कहो, अब धर्म अर्थात् त्रिकाली स्वभाव। यहाँ कहा न? किसका? **द्रव्य के स्वभावभूत...** है? द्रव्य के स्वभावभूत। आहाहा! **ध्रौव्य-व्यय-उत्पाद से आलिंगित (-स्पर्शित),...** सदृश, वह ध्रुव; विसदृश, वह उत्पाद-व्यय पर्याय। सदृश, वह अविरुद्ध; विसदृश, वह विरुद्ध। उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय दो हुए न? एक भाव और एक अभाव, इसलिए विरुद्ध हुआ। और यह सदृश अविरुद्ध एकरूप भाव है। इसमें उत्पन्न होना और व्यय होना, ऐसे भेद नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा है, प्रियंकरजी! इसलिए लोगों को ऐसा लगता है कि यह सोनगढ़ ने नया निकाला। नया नहीं, बापू!

मुमुक्षु : लोग समझे, इसके लिये तो यह बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके लिये लोग आते हैं न? यहाँ भाषा तो सरल है, भाव भले ऊँचे हों। आहाहा!

मुमुक्षु : गम्भीर भाव सुनने के लिये आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनने आते हैं, बात सत्य है। मार्ग तो ऐसा है, भाई!

शक्ति का वर्णन किया परन्तु शक्ति से परिणमन नहीं उठता। कहा तो सही। क्या कहा? **सदृश और विसदृश जिसका रूप है, ऐसे एक अस्तित्वमात्रमयी...** देखा? एक सत्तारूप परिणाम है। यह है तो शक्ति परन्तु उसका परिणमन भी परिणाम में आता है। आहाहा! परिणमना, परिणाम होना, वह अस्तित्वमात्रमयी शक्ति का कार्य है। अस्तित्वमात्रमयी शक्ति का कार्य है तो भी अस्तित्वशक्ति से परिणाम उठते हैं, ऐसा नहीं। यहाँ तो शक्ति का वर्णन किया। समझ में आया? परन्तु परिणाम उठते हैं द्रव्य में से। द्रव्य—द्रवति, द्रव्य—द्रवति। गुण द्रवति, ऐसा नहीं। गुण को द्रवति ऐसा भी कहने में आता है, द्रव्यत्वगुण के कारण से। द्रव्यत्वगुण है न उसमें? उसमें गुण द्रवता है, पर्याय द्रवति है, द्रव्य द्रवता है ऐसा कहने में आता है। परन्तु वास्तव में तो द्रव्य—द्रवतिती इति गच्छति इति। ऐसा शब्द है। पंचास्तिकाय की नौवीं गाथा है। पंचास्तिकाय की नौवीं गाथा से मूल पाठ में ऐसा है कि द्रवति इति द्रव्यम्। गच्छति द्रव्यति गच्छति। वहाँ दो शब्द लिये हैं। क्योंकि एक तो द्रवति अर्थात् स्वभावरूप से द्रवता है और गच्छति—विभावरूप से भी वही द्रवता है। वहाँ ऐसा लेना है। यहाँ ऐसा नहीं लेना। समझ में आया?

यहाँ तो स्वभावरूप से शुद्ध परिणमे, ऐसी शक्ति का वर्णन है। आहाहा! एक जगह कुछ कहे, दूसरी जगह कुछ कहे, परन्तु क्या अपेक्षा है, उसे न समझे। वहाँ पंचास्तिकाय की नौवीं गाथा में तो ऐसा लिया है, **'दवियदि गच्छदि'** ऐसे दो शब्द हैं। तो द्रव्य स्वयं द्रवता है। जैसे पानी तरंग उठाता है, वैसे वस्तु तरंग उठाती है। पर्याय की तरंग। द्रवति, द्रवति—द्रवे। आहाहा! वह द्रव्य स्वयं द्रवति। गुण द्रवति कहने में आता है, यह भेद का कथन है। फिर कहने में आता है कि यह परिणति गुण की है, ज्ञान की है, दर्शन की है, चारित्र की है, आनन्द की है, परन्तु वह आनन्द की परिणति सब उठती है, वह अकेले

आनन्दगुण में से नहीं। सम्यग्दर्शन की पर्याय भी श्रद्धागुण में से उठती है, ऐसा नहीं।

आत्मा वस्तु है और एक श्रद्धा नाम की शक्ति है। सम्यग्दर्शन जो है, वह तो पर्याय है परन्तु अन्दर में श्रद्धा नाम की एक शक्ति त्रिकाली ध्रुव है। उस श्रद्धाशक्ति का परिणमन समकितपर्यायरूप परिणमता है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह त्रिकाली द्रव्य जो भगवान आत्मा... देखो न! कैसा कहा है! आहाहा! बात यह है कि गुणभेद की दृष्टि ही छोड़ दे। कहीं गुण परिणमते नहीं, द्रव्य परिणमने से गुण परिणम जाते हैं। गुण परिणमते हैं, ऐसा भेद करने से तो गुण स्वयं एक-एक भिन्न द्रव्य हो जायेगा। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो वीतरागमार्ग है, बापू! आहाहा! एकदम वीतरागता बताते हैं। यह शक्ति बताकर भी वीतरागता बताते हैं और इसका फल वीतरागता आता है, वह किस प्रकार? द्रव्य का आश्रय करे तो वीतरागता फल आता है। गुण का आश्रय करे तो गुणपरिणति, ऐसी नहीं है, द्रव्य परिणमता है। आहाहा! समझ में आया?

द्रव्य स्वयं वस्तु अखण्डरूप। वह द्रव्य शब्द ही ऐसा कहता है कि, द्रवति द्रव्यम्। द्रव्य शब्द ऐसा नहीं कहता कि गुण द्रवति इति द्रव्यम्। समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म है परन्तु इसे जानना तो पड़ेगा या नहीं? आहाहा! पानी में से जो तरंग उठती है, वह समुद्र में से उठती है, अकेले पानी से नहीं। समुद्र में से तरंग उठती है। इसी प्रकार समुद्र— भगवान आत्मा, एक समय में अनन्त शक्ति का समुदाय अथवा अनन्त स्वभाव का सागर अथवा अनन्त शक्ति का संग्रहालय, अनन्त शक्ति के संग्रह का आलय अर्थात् स्थान अथवा अनन्त गुण का गोदाम द्रव्य। गुण गोदाम नहीं। समझ में आया? आहाहा! अनन्त गुण का गोदाम आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ कहते हैं,...

मुमुक्षु : ऐसा सूक्ष्म समझे बिना धर्म नहीं होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु तत्त्व तो समझे बिना तत्त्व कैसा है? कैसा परिणमन है? कैसी शक्ति? यह समझे बिना धर्म कैसे होगा?

मुमुक्षु : तिर्यंच कहाँ समझता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : तिर्यंच समझता है अन्दर। इन शब्दों का ख्याल नहीं परन्तु वस्तु यह परिणमती है, वह परिणति है, वह संवर, निर्जरा है और पूर्ण करूँ तो मोक्ष होगा और

यह आनन्दस्वरूप द्रव्य है और पर्याय में विकल्प होता है, वह दुःख है, ऐसा ज्ञान तो है, भाषा भले न हो, भाषा का ख्याल न हो परन्तु भाव का भासन तो होता है। समझ में आया?

मोक्षमार्गप्रकाशक में यह लिया है, बहुत लिया है। भावभासन—इसका अर्थ भाव का ज्ञान तो है, नाम याद न हो, नाम न आवे। उससे क्या हुआ? आहाहा! यह तिर्यंच समकिती है, जुगलिया में क्षायिक समकिती तिर्यंच भी है। क्या कहा यह? पहले तिर्यंच का आयुष्य बँध गया हो, पश्चात् क्षायिक समकित हुआ तो वह जुगलिया में जाता है। क्षायिक समकित लेकर। समझ में आया? वह समकित लेकर मनुष्य में ही जाता है, यदि मनुष्य का आयुष्य बँध गया हो तो। नहीं तो आयुष्य पहले बँध गया हो तो वहाँ तिर्यंच में भी जाना पड़े। क्षायिक समकित लेकर। मनुष्य में भी जाये परन्तु वह मनुष्य जुगलिया। मनुष्य मरकर महाविदेह में मनुष्य हो, वह तो मिथ्यादृष्टि। आहाहा! भोगभूमि। समझ में आया? आहाहा! ये सब नियम हैं। सिद्धान्त के, वस्तुस्वरूप के ये सब नियम हैं। यह नियम कहीं किसी ने घड़े नहीं हैं, ऐसे नियम हैं ही। भगवान ने कहीं घड़े नहीं। भगवान ने तो जाना, ऐसा कहा।

यह कहा, एक अस्तित्वमयी। वापस भाषा ऐसी है। भले तीन भेद हुए परन्तु तीन के एक अस्तित्वमयी परिणामशक्ति। तीन मिलकर एक अस्तित्व है। आहाहा! द्रव्य का सत्, गुण का सत् और पर्याय का सत्, ऐसा आता है। परन्तु तीन द्रव्य नहीं। द्रव्य और गुण और पर्याय मिलकर एक सत्ता है, तीनों मिलकर एक सत्ता है। यह १९वीं शक्ति हुई।

चिद्विलास में तो बहुत लिया है। उसमें तो दो बातें ली हैं। एक तो द्रव्य में परिणमनशक्ति, ऐसा लिया है। और एक वस्तु में परिणामशक्ति का स्वरूप क्या? ऐसी दो बातें ली हैं। समझ में आया? इसमें है न? कल यहाँ पुस्तक नहीं थी। कल नहीं थी। अनन्त शक्ति द्रव्य में है, पहला बोल ऐसा लिया है। परिणमनशक्ति द्रव्य में है। द्रव्य परिणमता है तो गुण परिणमता है। गुण परिणमता है तो द्रव्य परिणमता है, ऐसा नहीं है। यह एक बात।

दूसरी बात। **वस्तु में परिणामशक्ति का वर्णन...** दो अधिकार चले हैं। वस्तु में परिणामशक्ति का वर्णन है। और पहले में परिणामशक्ति द्रव्य में है, इसका वर्णन। एक

शक्ति का दो प्रकार से वर्णन लिया है। समझ में आया? यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं है। और द्रव्य, गुण, पर्याय तीन वस्तु अन्यत्र है कहाँ? भान बिना आत्मा निर्मल है और शुद्ध है, अनुभव करो ऐसा कहे, उसमें क्या हुआ? ओघेओघे समझे? नहीं समझे? एक बार कहा था न? समझे बिना चलना, उसे ओघेओघे कहते हैं। आहाहा!

यहाँ चिद्विलास में तो दो बातें ली हैं। परिणमनशक्ति द्रव्य में है, इसका वर्णन लिया। पश्चात् वस्तु में परिणामशक्ति का वर्णन है। समझ में आया? पहले में ऐसा लिया कि गुण परिणमते हैं, ऐसा नहीं, द्रव्य परिणमता है तो गुण परिणमते हैं। यह परिणमनशक्ति द्रव्य में है, वहाँ यह लिया है। और बाद में वस्तु में परिणमनशक्ति है, उसका स्वरूप क्या? तो उसमें तो बहुत विस्तार लिया है। त्यागोपादानशक्ति परिणमती है, साधारण परिणमती है, असाधारण परिणमती है। अनेक शक्तियों का वर्णन उसमें है। पन्द्रह-बीस शक्तियों का वर्णन है। समझ में आया? चिद्विलास। देखा है? देखा है।

अपना द्रव्य, दूसरे का द्रव्य दूसरे में रहा। यहाँ तो अपना द्रव्य जो वस्तु है, उसमें स्वभावभूत... स्वभावभूत क्यों कहा? यह उसका स्वभाव ही है, स्वभाव ही ऐसा है कि ध्रुव-व्यय-उत्पाद को आलिंगन करना अथवा उसे चूमना, अपने गुण-पर्याय को चुम्बन करे, वह द्रव्य स्वभाव है। अपने गुण, पर्याय के अतिरिक्त दूसरे को चूमे या स्पर्श करे, ऐसा स्वभाव नहीं है। समझ में आया? यह तीसरी गाथा में आया है। प्रत्येक पदार्थ अपने गुण और पर्यायरूपी धर्म को चूमता है। चूमता अर्थात् स्पर्श करता है। पर के द्रव्य, गुण, पर्याय को द्रव्य कभी स्पर्श नहीं करता। कर्म के उदय को आत्मा की विकारी पर्याय कभी स्पर्श नहीं करती और कर्म का उदय कभी राग को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! समझ में आया? लोग चिल्लाहट मचाते हैं न कि कर्म के कारण हैरान हो गये, हैरान हो गये। परन्तु कर्म तो स्पर्श भी नहीं करते और तू हैरान कहाँ से हो गया? समझ में आया?

तेरी उल्टी परिणमनशक्ति से तुझे भटकना पड़ता है। तेरी अशुद्धता भी बड़ी और तेरी शुद्धता भी बड़ी। यह अनुभवप्रकाश में आया है। तेरी अशुद्धता भी बड़ी, वह तेरे कारण से है, कर्म के कारण से नहीं। अनन्त तीर्थंकरों का श्रवण किया, व्याख्यान सुने, इन्द्र सुनते थे, वहाँ गया, परन्तु तेरी अशुद्धता बड़ी, तू पलटा नहीं। समझ में आया? आहाहा! तेरे

परिणाम में पलटा नहीं हुआ। भगवान के उपदेश में तो पर्यायदृष्टि छोड़कर द्रव्यदृष्टि कराते हैं। गुण का वर्णन करते हैं परन्तु गुण का वर्णन वह गुणी को बतलाने के लिये वर्णन करते हैं।

चिद्‌विलास में तो ऐसा लिया है कि जैसे-जैसे गुण का, पर्याय का स्पष्ट कथन आता है, वैसे-वैसे सम्यग्दृष्टि को आनन्द की तरंग उठती है। है इसमें? परिणामशक्ति का कहा न? परिणामशक्ति द्रव्य में है। उसमें वर्णन है। **विशेषता से शिष्य को प्रतिबोध किया जाता है, तब जैसे-जैसे शिष्य, गुरु के प्रतिबोध से गुण का स्वरूप जान-जानकर विशेष भेदी होता जाये, वैसे-वैसे शिष्य को आनन्द की तरंग उठती है...** सम्यग्दृष्टि लेना है न!

मुमुक्षु : भेद से तरंग उठे?

पूज्य गुरुदेवश्री : तरंग उठती है। वह भेद से अभेद बतलाना है। अभेद पर दृष्टि पड़ने से तरंग उठती है, ऐसा कहते हैं। भेद बतलाना है परन्तु भेद से अभेद बतलाना है। जैसे-जैसे गुण बताते हैं, वैसे-वैसे वह गुण अभेद द्रव्य को बताता है, इसीलिए तो पहले कहा न... समझे? उसमें आया है, यह **परिणमनशक्ति द्रव्य में से उठती है, गुण में से नहीं।** समझ में आया? चिह्न किये हैं? क्यों? 'द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः' **द्रव्य के आश्रय से गुण हैं, गुण के आश्रय से गुण नहीं।** 'गुणपर्यायवत् द्रव्यम्' **ऐसा भी कहा है। पर्यायवत् गुणद्रव्यम् नहीं कहा।** पर्यायवत् द्रव्य कहा, पर्यायवत् गुण कहा नहीं। आहाहा! समझ में आया? पर्यायवत् गुण को नहीं कहा, पर्यायवत् द्रव्य को कहा। क्योंकि दृष्टि द्रव्य के ऊपर करानी है। आहाहा! थोड़ा सूक्ष्म है, डाह्याभाई! तत्त्वज्ञान बहुत सूक्ष्म, बापू! आहाहा! अभी तो स्थूलता ऐसी हो गयी है कि व्रत करो, अपवास करो और दान, शील, तप (करो)। सवेरे यह आया था न? सवेरे आया था। मिथ्यादृष्टि के व्रत, तप, दान और शील सब बन्ध का कारण है। तब वह कहते हैं कि, व्रत और तप हमारे निश्चय के साधन हैं। अब इन दोनों में मिलान कहाँ करना?

मुमुक्षु : (शुभभाव) सब छोड़ देंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन छोड़े? शुभभाव आये बिना नहीं रहते। जिस समय जो भाव

आता है, वह तो आता ही है। दृष्टि में क्या है, इतनी बात है। दृष्टि उससे धर्म मानती है या दृष्टि व्रत के राग को ज्ञातारूप से जानती है? आते तो हैं, ज्ञानी को भी शुभ के काल में अशुभ से बचने के लिये आवे, ऐसा कहने में आता है। ऐसा भाव आता है। समझ में आया? अन्य स्थान से बचने के लिये, ऐसा पंचास्तिकाय की टीका में है। परन्तु यह भी व्यवहार है। वास्तव में तो उस समय शुभभाव होने का है तो आता ही आता है। उसके क्रम में शुभ आने का हो तो आता ही है, परन्तु अज्ञानी उसे उपादेय मानता है और धर्मी उसे हेय मानता है। इतना अन्तर है। समझ में आया? आहाहा! यह १९वीं शक्ति कही। बीस।

इस शक्ति का भी अनन्त शक्ति में रूप है। प्रत्येक शक्ति अपने ध्रुव, व्यय और उत्पाद को शक्ति स्पर्श करती है और उसमें भी अस्तित्वमयी परिणामशक्ति का प्रत्येक शक्ति में उसका रूप है। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसी सूक्ष्म बातें। पहली तो सीधी प्रतिमा ले लो। दो प्रतिमा, चार प्रतिमा, दस प्रतिमा, ग्यारह प्रतिमा। अधिक होवे तो रामजीभाई कहे, पच्चीस होवे तो पच्चीस ले लेवे। इसे भान कहाँ है? पन्द्रह प्रतिमा कहा था। कोई और पच्चीस ले ले। भान कहाँ है?

एक गुणधरलाल था। जानते हो गुणधरलालजी? गुणधरलालजी थे। कुरावली में। एक बार हम वहाँ गये थे। वे कहते थे एक बार कि अमुक गाँव में सब इकट्ठे हुए थे। कौन सा गाँव? भूल गये। फिरोजाबाद में सब इकट्ठे हुए। उसमें ऐसा आया कि प्रतिमा लो, प्रतिमा लो। मैंने प्रतिमा ली परन्तु मेरे पास आयी या नहीं, इसकी खबर नहीं पड़ती। व्रती सम्मेलन हुआ था। वर्णीजी थे, वर्णीजी थे। मुझे व्रती सम्मेलन में सात प्रतिमा दी अवश्य परन्तु मेरे पास आयी या नहीं, इसकी खबर नहीं पड़ती। यह व्रत की प्रतिमा। अरे! बापू! यह मार्ग तो वीतराग का है, भाई! आहाहा! प्रतिमा तो किसे होती है? जिसे सम्यग्दर्शन है, आत्मा के आनन्द का अनुभव है, उसे आनन्द की विशेष धारा होती है, उसमें यह प्रतिमा का विकल्प उठता है। समझ में आया?

समाधिशतक में ऐसा कहा है कि धूप में खड़े रहने की अपेक्षा छाया में खड़े रहना। अव्रत में रहने की अपेक्षा व्रत में रहना अच्छा है। वहाँ ऐसा कहा। परन्तु व्रत किसे होते हैं? अज्ञानी को व्रत होते हैं? जिसे व्रत के विकल्प उठते हैं, उसे तो सम्यग्दर्शन उपरान्त

अन्दर शान्ति की वृद्धि हुई है। समझ में आया? उसे छाया है। वे लोग ऐसा ले लेते हैं, देखो! व्रत को छाया कहा है। परन्तु किसे? सम्यग्दृष्टि में अव्रतरूप से रहना, इसकी अपेक्षा व्रत का विकल्प (आवे, वह छाया है)। उसकी स्थिति अन्दर में शान्ति की वृद्धि होती है। चौथे गुणस्थान में सर्वार्थसिद्धि का देव एक भवतारी है, उसकी अपेक्षा व्रत के विकल्प जिसे उत्पन्न हुए, उसकी शान्ति पंचम गुणस्थान में सर्वार्थसिद्धि के देव से विशेष है। आहाहा! उस शान्ति के स्थल में—स्थान में जो प्रतिमा का विकल्प उत्पन्न होता है, उसे छाया कहा। वास्तविक छाया तो वह शान्ति उत्पन्न हुई, वह छाया है। पंचम गुणस्थान की शान्ति उत्पन्न हुई है न? या चौथे गुणस्थान में विकल्प आया और व्रत हो गये? समझ में आया? आहाहा! यह १९वीं शक्ति हुई। बीस।

कर्मबन्धव्यपगमव्यञ्जितसहजस्पर्शादिशून्यात्मप्रदेशात्मिका अमूर्तत्व-शक्तिः।

कर्मबन्ध के अभाव से व्यक्त किये गये, सहज, स्पर्शादिशून्य (-स्पर्श, रस, गंध और वर्ण से रहित) ऐसे आत्मप्रदेशस्वरूप अमूर्तत्वशक्ति।२०।

कर्मबन्ध के अभाव से व्यक्त किये गये, सहज, स्पर्शादिशून्य (-स्पर्श, रस, गंध और वर्ण से रहित) ऐसे आत्मप्रदेशस्वरूप अमूर्तत्वशक्ति। क्या कहते हैं? आत्मा में अमूर्त नाम की शक्ति है। कर्मबन्धन के अभाव से उस अमूर्तशक्ति का परिणमन होता है। यहाँ चौथे गुणस्थान में भी जितना कर्म का अभाव हुआ, उतना अमूर्तशक्ति का परिणमन भी हुआ। आहाहा! क्योंकि अनन्त शक्ति साथ में है न? तो अनन्त शक्ति का समुदाय द्रव्य है और जिसे द्रव्यदृष्टि हुई, उसे अनन्त शक्ति का अंश व्यक्तरूप से प्रगट परिणमन में आता है, तो अमूर्तशक्ति का परिणमन भी चौथे गुणस्थान में (प्रगट होता है)। अमूर्त, राग के अवलम्बन बिना अमूर्तपना, अन्दर शुद्ध परिणमन अमूर्तता, अनन्त शक्ति की व्यक्तता के साथ में अमूर्तशक्ति की व्यक्तता अमूर्तपना प्रगट होता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी व्याख्या और ऐसा... इसलिए लोगों को (कठिन लगता है)।

अभ्यास चाहिए भाई यह तो। क्यों? तिर्यंच का दृष्टान्त (लें तो) तिर्यंच को दूसरे

सब शल्य नहीं होता। उसे सीधी दृष्टि हुई तो बाकी सब शल्य निकल गये। यहाँ तो पूर्व के बहुत शल्य, आग्रह रहे हों, उन सब शल्य को निकालने के लिये अनेक प्रकार का सत्य ज्ञान करना पड़ेगा। समझ में आया? यह अन्तर है। तिर्यंच को तो ऐसे कोई शल्य नहीं है। एकत्वबुद्धि का एक ही शल्य था। यहाँ तो पण्डिताई और वाँचन में बहुत आगे बढ़ गया हो। भाई! प्रियंकरजी! जितने विरुद्ध आग्रह हैं, उतनी सच्ची समझ करके विरुद्ध आग्रह को छोड़ने के लिये विशेष ज्ञान करना पड़ता है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **कर्मबन्ध के अभाव से व्यक्त किये गये,...** भाषा देखो! प्रगट किया। अमूर्तपना पर्याय में राग के अत्यन्त सम्बन्ध बिना अपने पुरुषार्थ से जितना कर्म का अभाव हुआ, उतनी अमूर्तता, अनन्त गुण की अमूर्तता व्यक्तरूप से अंश में प्रगट हुई। समझ में आया? **ऐसे आत्मप्रदेशस्वरूप...** क्या कहा? आत्मप्रदेशरूप। आत्मप्रदेश अरूपी का परिणमन उसमें हो गया। आहाहा! है तो अरूपी परन्तु कर्म के सम्बन्ध से उसे रूपी भी कहा जाता है। समझ में आया? और समकिती को पुण्य-पाप के विकार होते हैं, उन्हें भी रूपी कहा है। पुद्गल के परिणाम कहा न? इससे रूपी कहा है। समझ में आया? यहाँ जितना द्रव्यस्वभाव के ऊपर की दृष्टि से अमूर्तशक्ति का भी उतने राग के अभावरूप अमूर्तपना शुद्ध का परिणमन व्यक्तरूप से होता है। समझ में आया?

'सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार' में भावार्थ में लिया है कि चौथे गुणस्थान में भी योग के अंश के अभाव का परिणमन होता है। समझ में आया? अक्रिय में कहा था, अक्रियशक्ति बाद में आयेगी। अक्रियपना जो है, वह योग के अभाव का अक्रियपना है। अक्रियशक्ति जो है, वह कम्पन बिना की अयोगशक्ति है। उस अयोगशक्ति के साथ अमूर्तपना भी साथ में है। आहाहा! जब अपने द्रव्य स्वभाव का आश्रय हुआ तो पर्याय में वह अक्रियशक्ति, अयोगपने की शक्ति का अंश व्यक्त प्रगट हुआ, भले पूर्ण न हो। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : आंशिक अक्रिय हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आंशिक अक्रिय थोड़ा व्यक्तरूप से हो जाये। आहाहा! समझ में आया? यह पर्दा और आज देखा। यहाँ पर्दा है? समझ में आया? यह आज देखा, यहाँ कौन देखे? मकान में तो हमेशा आते हों। जीतू कहता है कि बारह महीने पहले का

है। यहाँ तो खबर भी नहीं। यहाँ तो हर दिन आते हैं। समझ में आया ? आहाहा! किसी का अर्थ—वास्तविक समझण का परिणमन तो अलौकिक है परन्तु किस पद्धति से कहा जाता है, उस पद्धति की गन्ध आती है ? यह कुछ का अर्थ है। समझ में आया ? किस पद्धति से, उसकी पद्धति क्या है, यह कहने में आता है, उसकी गन्ध आती है कि यह इस प्रकार से है ? अनुभव हो जाये तो वह तो प्रत्यक्ष समझण हो गयी। आहाहा! परन्तु अनुभव से पहले भी क्या स्थिति है ? द्रव्य की, गुण की, पर्याय की, स्वतन्त्रता आदि, इसके लक्ष्य में पहले आना चाहिए। समझ में आया ? कर्म से विकार होता है और विकार से दु:ख है। तब तो कर्म से दु:ख हुआ। कर्म से विकार और विकार से संसार, तो कर्म से संसार हुआ। संसार तो अपनी विकारी पर्याय है। समझ में आया ? आहाहा!

प्रवचनसार में तो यहाँ तक कहा है कि जैन साधु है, दिगम्बर है, अट्ठाईस मूलगुण पालन करता है, पंच महाव्रत पालता है तो भी वह संसारी है। वह संसारतत्त्व है, ऐसा लिया है। प्रवचनसार की पंचरत्न की अन्तिम पाँच गाथाएँ हैं। पाँच रत्न की गाथाएँ हैं। उसमें एक गाथा (२७१) में ऐसा लिया है कि ऐसे-ऐसे पंच महाव्रत पाले, अट्ठाईस मूलगुण पाले, हजारों रानियाँ छोड़े, तथापि वह संसारी है। संसारतत्त्व है। क्योंकि राग और पुण्य को अपना मानता है, वह संसारतत्त्व है। वह मोक्ष का मार्ग भी नहीं और मोक्ष भी नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ कहा, **कर्मबन्ध के अभाव से व्यक्त किये गये,...** भाषा (देखो!) कोई कहे कि कर्मबन्ध का अभाव तो चौदहवें गुणस्थान में होता है। यहाँ तो अन्तर में द्रव्यदृष्टि होकर जितनी शक्ति की व्यक्तता उत्पन्न हुई, उतने में तो कर्मबन्धन का अभाव ही है। आहाहा! समझ में आया ? **कर्मबन्ध के अभाव से व्यक्त किये गये, सहज,...** देखा ? स्वाभाविक। **स्पर्शादिशून्य (-स्पर्श, रस, गंध और वर्ण से रहित) ऐसे आत्मप्रदेशस्वरूप....** आत्मा के प्रदेश अरूपी अमूर्तशक्ति की व्यक्तता हो गयी। आहाहा! आनन्द की धारा बहे, वह अमूर्त स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह बीसवीं (शक्ति) हुई। अब अपने यहाँ अधिक लेना है। २१।

सकलकर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्तपरिणामकरणोपरमात्मिका अकर्तृत्व-शक्तिः।

समस्त, कर्मों के द्वारा किये गये, ज्ञातृत्वमात्र भिन्न जो परिणाम उन परिणामों के कारण के *उपरमस्वरूप (उन परिणामों को कराने की निवृत्तिस्वरूप) अकर्तृत्वशक्ति। (जिस शक्ति से आत्मा ज्ञातृत्व के अतिरिक्त कर्मों से किये गये परिणामों का कर्ता नहीं होता, ऐसी अकर्तृत्व नामक एक शक्ति आत्मा में है)।२१।

समस्त, कर्मों के द्वारा किये गये,... कर्म से किये गये ऐसे शब्द हैं। निमित्त के आश्रय से हुए, उसे कर्म से किये गये, ऐसा कहा जाता है। निमित्त के वश से जो हुए, वह कर्म द्वारा हुए—ऐसा कहने में आता है। आहाहा! ऐसा अन्तर पड़ता है। समझ में आया? **समस्त, कर्मों के द्वारा किये गये,...** है न? आठों ही कर्म द्वारा, **किये गये, ज्ञातृत्वमात्र भिन्न...** जानने-देखने के परिणाम से कर्म के निमित्त के वश हुए रागादि का अकर्ता आत्मा का स्वभाव है। समझ में आया? आहाहा!

ज्ञातृत्वमात्र भिन्न जो परिणाम... ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न परिणाम कौन? यह वापस परिणाम लिये, हों! शुभ-अशुभराग, यह ज्ञातापने से भिन्न परिणाम हैं। उसे परिणाम लिया। कर्म के निमित्त के वश जो राग, द्वेष परिणाम समकिती को भी जो उत्पन्न हुए, वे परिणाम हैं। कर्म के निमित्त के वश से हुए परिणाम हैं। समझ में आया? उस परिणाम का कर्ता आत्मा नहीं है। आत्मा में अकर्तृत्व नाम का गुण है। आहाहा! राग को करना, ऐसी कोई त्रिकाली शक्ति नहीं है। पर्याय में योग्यता है। राग का परिणमन करना, वह पर्याय में योग्यता है, परन्तु ऐसा कोई गुण नहीं है कि राग, विकाररूप परिणमे। सभी शक्तियाँ निर्मल आनन्दकन्द है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा में अकर्तृत्व नाम की शक्ति है। अकर्तृत्वशक्ति का कार्य क्या? कि जो दया, दान, रागादि के परिणाम उत्पन्न होते हैं, उनका कर्ता न होना, ऐसी अकर्तृत्वशक्ति है। राग नहीं करना। राग है, परन्तु उसका कर्तृत्व नहीं, ऐसी वह शक्ति है।

---

* उपरम=निवृत्ति; अन्त; अभाव।

सूक्ष्म है। आहाहा! ऐसे तो कहते हैं न? 'अप्पा कता अे विकता' श्वेताम्बर में आता है। अनाथिमुनि के अधिकार में आता है। उसमें वे लोग बहुत कहे, आत्मा कर्म को करे और आत्मा कर्म को भोगे। वैतरणी नदी की भाँति... आहाहा! नदी होती है न? नरक में वैतरणी। बहुत पीड़ा। पानी... पानी... जहर जैसा पानी अन्दर... क्या कहलाता है? उष्ण। अग्नि की ज्वाला जैसी पानी की नदी नरक में चलती है। वहाँ परमाधामी डालते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ राजकुमार हो, २५-३०-४० वर्ष की उम्र हो और मरकर नरक में जाये। आहाहा! वह वैतरणी नदी में... पहले तो स्वयं ऊपर उपजे, पश्चात् नीचे गिरे। जैसे भँवरी का दर होता है न? भँवरी... भँवरी। भँवरी कहते हैं न? भौंरा। वह ऐसे चौड़ा होता है। नरक में जीव को उत्पन्न होने के लिये ऐसा है। वहाँ उपजे और पड़े नीचे। समझ में आया? नीचे आताप, शीत। इतनी पीड़ा। कहते हैं कि समकिती—क्षायिक समकिती श्रेणिक राजा चौथे गुणस्थान में है, वे वहाँ गये हैं। परन्तु उस दुःख के कर्ता नहीं। आहाहा! कहा न?

ज्ञातृत्वमात्र भिन्न... जानने-देखने के परिणाम जो ज्ञानी को होते हैं। सम्यग्दृष्टि को, धर्मी को तो ज्ञायकस्वरूप की दृष्टि होने से पर्याय में जानने-देखने के परिणाम होते हैं। वे परिणाम उसका कार्य है और उन परिणाम का वह कर्ता है। परन्तु उन ज्ञाता-दृष्टा के परिणाम से भिन्न रागादि परिणाम का कर्ता आत्मा नहीं है। आहाहा! व्यवहार श्रद्धा का कर्ता आत्मा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! व्यवहारश्रद्धा, वह राग है। यह प्रश्न उठा न?

यहाँ तो ऐसा कहने में आया था कि देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करे, वह मिथ्यात्व नहीं, राग है। परन्तु राग को धर्म माने तो मिथ्यात्व है। खानिया चर्चा में यह प्रश्न उठा है। क्या देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, यह मिथ्यात्व है? ऐसा प्रश्न उठा है। फूलचन्दजी ने जवाब दिया है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करना, वह मिथ्यात्व नहीं। परद्रव्य की श्रद्धा करना, वह शुभराग है परन्तु राग को धर्म मानना, वह मिथ्यात्व है। देव-गुरु-शास्त्र को मानना अलग बात है और मानने की पर्याय को धर्म मानना, वह अलग चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र का श्रद्धा भाव तो होता है। निश्चयश्रद्धा जब तक पूर्ण न हो, तब तक व्यवहार श्रद्धा आती है।

द्रव्यसंग्रह के ४७वें श्लोक में कहा न? **'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा'** ज्ञायकभाव का ध्यान जहाँ अन्दर में लगा तो निर्विकल्प ज्ञान, दर्शन, चारित्र की पर्याय प्रगट हुई, वह तो निश्चयमोक्षमार्ग है और जितना राग बाकी रहा, उसे आरोप से व्यवहारमोक्षमार्ग कहा। है नहीं, उसे कहा, इसका नाम व्यवहार। है अवश्य परन्तु कर्ता नहीं। आहाहा! यह क्या? आत्मा में शुभराग का कर्तापना ऐसी कोई शक्ति ही नहीं है। राग का अकर्तापना और ज्ञातापने के परिणाम, यह उसकी शक्ति है। आहाहा! अब ऐसा (समझने) कहाँ निवृत्ति है? एक तो स्त्री, पुत्र में लवलीन पड़ा हो। आहाहा! दस-बीस घण्टे तो उसमें जाये। नींद में और खाने और पीने में। कुटुम्ब-कबीला को प्रसन्न रखने में। अरे रे! इसका काल कहाँ जाता है। ऐसा सुनने का समय मिलता नहीं, उसे निर्णय करने का समय कब मिले?

मुमुक्षु : यहाँ आवे, तब समय मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ आवे तब नहीं, अन्दर में निवृत्ति करे तब मिले। समझ में आया? तुम्हारे दरबार को तो बहुत काम होता है। बाजरा हो और ज्वार हो, गेहूँ हो और तिल और मूँगफली... मूँगफली।

मुमुक्षु : भाल के गेहूँ बहुत ऊँचे।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाल के गेहूँ ऊँचे, धूल के। वह भी धूल है और यह भी धूल है। आहाहा! यह पुद्गल की पर्याय है। यहाँ तो राग की पर्याय भी पुद्गल की है, आत्मा की नहीं, आत्मा तो ज्ञाता-दृष्टा है। आहाहा!

खाने की क्रिया का कर्ता आत्मा नहीं। पानी पीने की क्रिया का कर्ता आत्मा नहीं। दवा दे, उसका कर्ता आत्मा नहीं। आहाहा! परन्तु उस सम्बन्धित राग होता है...

मुमुक्षु : ... वह क्रिया तो आत्मा की है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह क्रिया भी नहीं।

मुमुक्षु : पुस्तक पढ़ने की क्रिया तो आत्मा की न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह राग है, विकल्प है।

मुमुक्षु : नहीं पढ़ना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव के लक्ष्य से आगम का अभ्यास करना, ऐसा प्रवचनसार में आया है। स्वभाव के लक्ष्य से। अथवा कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा, अनन्त सिद्धों को पर्याय में रखकर सुन। फिर सुन। **'वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं' 'वंदित्तु सव्व सिद्धे'** तेरी पर्याय में अनन्त सिद्धों... ओहोहो! अभी तो पहली बार सुनने आया हो तो कहते हैं कि अनन्त सिद्ध जो केवली परमात्मा, उनको तेरी पर्याय में मैं स्थापित करता हूँ। आहाहा! आहाहा! अनन्त केवलज्ञानी की पर्याय को, अनन्त केवली को मैं तेरी पर्याय में स्थापित करता हूँ। यह **'वंदित्तु'** का अर्थ है। आहाहा! ऐसा स्थापन किया तो तेरी अल्पज्ञ पर्याय में अनन्त सर्वज्ञ को स्थापित किया तो तेरी दृष्टि गुलांट खा जायेगी। द्रव्य पर लक्ष्य जायेगा और द्रव्य पर लक्ष्य करके सुन। समझ में आया ? इसका तात्पर्य यह है। सुन, ऐसा कहा न ? सुन। धवल में इसकी मुख्य व्याख्या है। एक गाथा है। सुनो! सुनो की बहुत लम्बी व्याख्या की है। बहुत पृष्ठ भरे हैं। सुनो, इसकी गाथा है। आहाहा! धवल में। सुनो का अर्थ यह। तेरी चीज़ है, वह तो अनन्त सिद्धों की पर्याय से भी अनन्तगुणी तेरी शक्ति अन्दर है। क्योंकि सिद्ध की एक समय की पर्याय ऐसी तो अनन्त पर्याय का पिण्ड तेरे पास है। आहाहा! समझ में आया ?

अनन्त सिद्धों को स्थापित कर पश्चात् समयसार (शुरु करते हैं)। **'वंदित्तु सव्वसिद्धे धुमचलमणोवमं गदिं पत्ते। वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं।।'** मैं समय प्राभृत कहूँगा। यह प्रत्यक्ष श्रुतकेवली ने कहा है। साक्षात् केवली और श्रुतकेवलियों ने कहा हुआ मैं कहूँगा। कहूँगा का अर्थ यह कि, सुन! इसका अर्थ हुआ या नहीं ? आहाहा! परन्तु सुन किस प्रकार ? अनन्त सिद्धों को पर्याय में स्थापन करके सुन। आहाहा! मैंने तो स्थापन किया ही है, ऐसा आचार्य कहते हैं। आहाहा! परन्तु तुझे सिद्ध होना हो और सिद्ध की बात तुझे सुननी हो तो सिद्धपर्याय को स्थापित कर (सुन)। सिद्ध होने के लिये थोड़ा समय लगेगा। परन्तु स्थापन कर और पश्चात् सुन। आहाहा! तेरी दृष्टि का घोलन स्वभाव के ऊपर जायेगा और उससे तुझे सम्यग्दर्शन और सिद्धपद प्राप्त होगा। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, रागादि के परिणाम से ज्ञाता-दृष्टा के परिणाम (भिन्न हैं)।

परिणाम तो लिये। भाषा देखो! **ज्ञातृत्वमात्र भिन्न जो परिणाम**... चाहे तो तीर्थंकर गोत्र बाँधने का भाव हो परन्तु वह ज्ञाता-दृष्टा से भिन्न परिणाम है। 'षोडशकारण भावना.... तीर्थंकरपद पाय' आता है या नहीं? 'सोलह तीर्थंकरपद पाय।' यह भाव है, वह राग है, वह ज्ञातृत्व परिणाम से भिन्न जाति के हैं और उसका कर्ता आत्मा नहीं है। आहाहा! आता है। यह तो कहा न?

समस्त, कर्मों के द्वारा किये गये,... कर्म से किये गये ऐसा शब्द है। **किये गये, ज्ञातृत्वमात्र भिन्न जो परिणाम**... क्या कहा? समस्त कर्मों द्वारा किये गये। देखो! आठ कर्म द्वारा किये गये। उनके वश होकर हुए, ऐसा इसका अर्थ है। कर्म क्या करे? 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई'। यह स्तुति में आता है। यहाँ तो भाषा ऐसी ली है। देखो! इसमें विवाद उठावे। गोम्मटसार में ऐसा पाठ आवे, ज्ञानावरणीय कर्म ज्ञान को रोकता है। उसमें ऐसी व्याख्या है, स्वभावदृष्टिवन्त को विकार पर्याय व्याप्त है और कर्म व्यापक है। यहाँ ऐसा कहा है कि आठ कर्म से किये गये। ऐसे कथन।

मुमुक्षु : सच्चा क्या मानना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दोनों सच्चा मानना। किस अपेक्षा से है? कर्म द्वारा अर्थात् आत्मा द्वारा विकार नहीं होता, ऐसा कहते हैं। ऐसा कि आत्मा और आत्मा की शक्ति तो शुद्ध पवित्र है। आहाहा! उसके आश्रय से पवित्रता उत्पन्न होती है, उसके आश्रय से विकार उत्पन्न नहीं होता। कर्म के आश्रय से विकार उत्पन्न होता है तो यह शब्द कहे। समझ में आया? आहाहा!

समस्त, कर्मों... वापस भाषा ऐसी ली है। आठों कर्मों द्वारा **किये गये,**... आहाहा! ऐसा लिखा है। वहाँ ऐसा नहीं मानना कि कर्म से हुए नहीं, कर्म से हुए नहीं। वे कर्म से हुए नहीं, बापू! तेरी कमजोरी से विकार परिणाम हुए हैं। कमजोरी से, सम्यग्दृष्टि को भी कमजोरी के कारण विकार परिणाम (होते हैं)। परन्तु ज्ञाता परिणाम से भिन्न परिणाम का वह कर्ता नहीं है। ऐसी आत्मा में अकर्तृत्वशक्ति है। अकर्तृत्वशक्ति है तो उस अकर्तृत्व का परिणमन कब हुआ? द्रव्य पर दृष्टि जाने से। अकर्तृत्वगुण सीधा अकर्तृत्वरूप परिणमे, ऐसा नहीं है। क्या कहा?

अकर्तृत्वगुण सीधा अकर्तारूप परिणमे, ऐसा नहीं है। वह गुणी जो अकर्तृत्व आदि शक्ति का पिण्ड जो द्रव्य है, वह परिणमने से अकर्तृत्वशक्ति का परिणमन ज्ञाता-दृष्टारूप से होता है और रागरूप नहीं होता। थोड़े अन्तर से (बहुत) अन्तर। कहो, नन्दकिशोरजी! वकालत की परन्तु ऐसा कभी सुना नहीं होगा। दूर से आये हैं। ऐसा मार्ग है। संस्कृत में यह भाषा है— **'सकलकर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्तपरिणामकरणोपरमात्मिका अकर्तृत्वशक्तिः।' (२१)** अकर्तृत्व है न? **'सकलकर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्तपरिणाम-करणोपरमात्मिका अकर्तृत्वशक्तिः।' (२१)** आहाहा! भगवान आत्मा में ऐसी एक अकर्तृत्वशक्ति है कि समस्त कर्म के निमित्त के वश से जो विकार हुआ, वह ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न है। ज्ञायकभाव से तो ज्ञातापना होता है। ज्ञातापना का कार्य अपना और कर्ता आत्मा। ऐसे परिणाम से भिन्न **जो परिणाम उन परिणामों के कारण के उपरमस्वरूप**... देखो! विकार के परिणाम से उपरमस्वरूप (अर्थात्) निवृत्तिस्वरूप, अन्तस्वरूप, अभावस्वरूप... आहाहा! अकर्तृत्वशक्ति है। विशेष लेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २०, शक्ति- २१, २२ मंगलवार, (द्वितीय) श्रावण कृष्ण २, दिनांक ३०-०८-१९७७

समयसार, शक्ति का अधिकार चलता है। शक्ति अर्थात् क्या? जो आत्मा है, वह अनन्त गुणरत्नाकर स्वरूप है। गुण कहो या शक्ति कहो। अनन्त शक्ति रत्नाकर, ऐसा रत्न का सागर /समुद्र आत्मा है। समझ में आया? उसमें अनन्त रत्न—शक्ति (भरी हुई है)। एक-एक शक्ति के साथ उदय में अर्थात् द्रव्य और शक्ति का भेद भी छोड़कर, जिसने शक्ति और शक्तिवान ऐसा विकल्प भी छोड़ा और शक्तिवान को जिसने अनुभव में लिया, उसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और स्वरूपाचरणचारित्र कहा जाता है। समझ में आया? और एक शक्ति के व्यक्त परिणमन में अनन्त शक्ति का परिणमन व्यक्त एक साथ उछलता है अर्थात् उदय होता है। क्या समझना इसमें? भभूतमलजी! इसमें रुपये की कहीं बात आयी नहीं।

यहाँ एक आये थे। पहले पत्र आया था कि मैं तीर्थंकर हूँ, चार घातिकर्म का नाश हुआ है, चार अघाति बाकी है, मैं केवलज्ञानी हूँ। मैं वहाँ सोनगढ़ आनेवाला हूँ तो मेरी लिये सुविधा कर दो। आहाहा! फिर यहाँ आया। सामने बैठा। कहा, मैं तीर्थंकर हूँ। सत्य कहता हूँ। कपड़ा पहने था। गरीब मनुष्य था। लालचन्दभाई! सुना था न? नहीं सुना? ले। बात नहीं की हो, नहीं हुई हो। एक महीने पहले पत्र आया था और महीने भर शत्रुंजय रहा। दिगम्बर था। कहाँ का? प्रतापगढ़ का। नाम क्या? चाँदमल डोडु। चाँदमल गरीब आदमी था। एक महीने पहले पत्र आया और फिर स्वयं आया। बैठा था, रामजीभाई बैठे थे। मैं तीर्थंकर हूँ, सत्य कहता हूँ। ऐई! सुना नहीं? यहाँ आ गये है। और भगवान को जैसे चार घातिकर्म का नाश हुआ है, वैसे मुझे भी हुआ है। भगवान को चार अघातिकर्म बाकी थे न, तो उनके पास पैसा नहीं था। ऐसे भी लोग सामने आते हैं। आहाहा! कुछ मस्तिष्क (नहीं), अन्दर मिथ्यात्व का जोर। आहाहा!

पत्र में तो ऐसा आया था कि चार घाति नाश किस प्रकार हों, यह मैं वहाँ कहूँगा। चार घातिकर्म का नाश हुआ है, तो किस प्रकार नाश होता है, यह वहाँ मैं कहूँगा। पहले पत्र में आया था। यहाँ आकर कुछ नहीं कहा। यहाँ तो इतना कहा, चार घाति का नाश हुआ है और चार अघातिकर्म बाकी हैं। भगवान को चार अघाति बाकी हैं तो उनके पास पैसा

नहीं था, मेरे पास पैसा नहीं। आहाहा! भभूतमलजी! मुझे चरणवन्दन किया, मैंने कहा भाई मिथ्यादृष्टि है, हों! उठकर फिर (उसने) चरणवन्दन किया। आहा! यह दशा भी जगत की देखो! आहाहा! फिर यहाँ से निकलकर ऐसा बोला कि यहाँ तो मेरी किसी ने कद्र नहीं की। मैं अगास जाऊँगा, वहाँ भक्त लोग हैं तो कद्र करेंगे। अगास। वहाँ ऐसे भक्त नहीं कि तुझे तीर्थंकर मानें। अरे रे! क्या करता है आत्मा? आहाहा! मेरे सामने बोला। पत्र आया, फिर यहाँ आया, बैठा और कहा, मुझे चार घाति का नाश हुआ है, मैं सत्य कहता हूँ। ऐसा बोला। भगवान! मिथ्यादृष्टि है, हों! भाई! यह दृष्टि! अरे रे! अभी कपड़ा-बपड़ा है, वहाँ मुनिपना भी नहीं होता, वहाँ केवलज्ञान हो जाये? बहुत विपरीत दृष्टि। और फिर दाँत निकाले (हँसे)। बात की, कहा, मिथ्यादृष्टि है, बापू! हों! यह दृष्टि बहुत विपरीत है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा अनन्त शक्ति का पिण्ड रत्नाकर, उसका अनुभव होने पर उसमें आनन्ददशा होती है। तब तो अभी चौथा गुणस्थान कहा जाता है। मुनि तो... शास्त्र में ऐसा लिखा है, 'चरित्तं खलु धम्मो।' चारित्र, वह धर्म है और सम्यग्दर्शन, वह तो चारित्र का मूल है। 'दंसण मूलो धम्मो।' क्या कहा? चारित्र मूल धर्म है परन्तु उस धर्म का मूल क्या? कि दंसण मूलो। सम्यग्दर्शन, वह चारित्र का मूल है। चारित्र धर्म है और चारित्र का मूल सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन हुए बिना चारित्र कभी नहीं होता। चन्दुभाई!

बन्ध अधिकार में लिया है न? कि वहाँ कारण-कार्य लिया है। वह तो एक व्यवहार से। चारित्र का कारण जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह तो है नहीं, उसके व्रत, नियम कहाँ से आये? समझ में आया? बन्ध अधिकार में है। सम्यग्दर्शन जो चारित्र—स्वरूप की रमणता... आहाहा! जिसमें चरना, आनन्द में रमना, आनन्द के भोजन करना... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का निरन्तर जिसका भोजन है। आहाहा! ऐसा चारित्र! ओहो! धन्य अवतार! वह चारित्र तो समकिती को भी पूज्य है। समझ में आया? चारित्र धर्म है तो उसका मूल कारण दर्शन है। दंसण मूलो धम्मो। दर्शन मूल धर्म। चारित्र का मूल दर्शन और दर्शन का मूल अभेद रत्नत्रयस्वरूप भगवान, अनन्त गुणस्वरूप आत्मा, उसकी दृष्टि, अनुभव में आता है तो सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! समझ में आया?

इस सम्यग्दर्शन के काल में जैसे ज्ञान सम्यक्... एक बार कहा था, अभव्य को ज्ञान है परन्तु ज्ञान की परिणति नहीं है। समझ में आया? 'अध्यात्म पंचसंग्रह' में है। अध्यात्म

पंचसंग्रह पढ़ा है ? भाई ! नहीं मिला ? ऐसा है । यह रहा ग्रन्थ । यह चिद्विलास कोई लाया लगता है । चिद्विलास है । अध्यात्म पंचसंग्रह, दीपचन्दजी कृत है । उसमें दीपचन्दजी 'परमात्मपुराण' में ऐसा कहते हैं, कहा न ? क्या कहा ? अभव्य को ज्ञान है परन्तु ज्ञान की परिणति नहीं है । आहाहा ! क्या कहा ? ज्ञान की परिणति उसे कहते हैं कि ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा का ज्ञान—स्वसंवेदन हो तो ज्ञान की परिणति (होती है) ।

ऐसे तो अभव्य को ग्यारह अंग और नौ पूर्व की लब्धि प्रगट होती है, तथापि वह ज्ञानपरिणति नहीं है । आहाहा ! लालचन्दभाई ! आहाहा ! ग्यारह अंग में एक आचारांगा के अठारह हजार पद और एक पद में इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक । ऐसे-ऐसे अठारह हजार पद का एक आचारांग । सूयगडांग के छत्तीस हजार, ठाणांग के बहत्तर हजार, एक लाख चौबालीस हजार... ऐसे करते-करते दुगुने करते-करते ग्यारह अंग तक ले जाना । आहाहा ! इतना तो जिसे कण्ठस्थ ज्ञान था । तदुपरान्त नौ पूर्व का ज्ञान अभ्यास करने से नहीं होता । वह लब्धि अन्दर से होती है । अभव्य को भी होती है । सात द्वीप, सात समुद्र विभंग में देखे । समझ में आया ? तथापि वह ज्ञान की परिणति नहीं । आहाहा ! वह ज्ञान की पर्याय नहीं । आहाहा !

ज्ञानस्वरूप भगवान, जिसे अपनी ज्ञानपर्याय में ज्ञेय, ज्ञायक द्रव्यस्वभाव का पर्याय में ज्ञान हुआ और श्रद्धा की पर्याय में पूरा ज्ञेय, अनन्त शक्ति का रत्नाकर भगवान... यहाँ तो शक्ति का वर्णन है परन्तु शक्ति पर लक्ष्य करना, ऐसा नहीं । समझ में आया ? शक्ति और शक्तिवान ऐसे दो भेद भी नहीं । आहाहा ! डाह्याभाई ! आहाहा ! तेरा नाथ अभेद चिदानन्दस्वरूप, निर्विकल्परूप से है । प्रत्येक शक्ति भी निर्विकल्प अर्थात् राग के अभावस्वरूप प्रभु शक्ति विराजती है । ऐसे शक्तिवान को अन्तर में ज्ञेय बनाकर ज्ञान हो, तब वह ज्ञान परिणति—पर्याय कही जाती है । आहाहा ! धन्नालालजी !

यहाँ कहते हैं कि वह ज्ञान की परिणति जब हुई तो साथ में अनन्त शक्तियाँ उछलती हैं । पहले शुरुआत में आ गया है । अनन्त शक्ति की व्यक्तता (होती है) । ज्ञान का ज्ञान, आत्मा का ज्ञान, आत्मज्ञान ऐसा लिया है न ? वहाँ ऐसा नहीं लिया कि शास्त्र का ज्ञान या राग का ज्ञान या निमित्त का ज्ञान या पर्याय का ज्ञान, ऐसे शब्द नहीं हैं । आत्मज्ञान । आहाहा ! समझ में आया ? आत्मा जो एकरूप अखण्ड आनन्दकन्द प्रभु, उसका ज्ञान हो, उसे

आत्मज्ञान कहा जाता है। आहाहा! आत्मज्ञान में ऐसा नहीं लिया कि शास्त्र का ज्ञान और निमित्त का ज्ञान और पर्याय का ज्ञान और राग का ज्ञान, ऐसा नहीं लिया। आहाहा! ऐसी बात है, भगवान! आत्मज्ञान। आहाहा! शब्द तो देखो! आत्मा, जो अनन्त शक्ति का भण्डार एकरूप वस्तु, उसका ज्ञान। आहाहा! उसका ज्ञान कब होता है? कि पर्याय को उस ओर झुकने से, तन्मय होने से, ऐसी भाषा है न? झुकने से। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा..! स्वयंभूरमण समुद्र तो असंख्य योजन में है और नीचे रत्न भरे हैं। रेती के बदले रत्न हैं। स्वयंभूरमण समुद्र अन्तिम है न? आखिर कहते हैं न? उसमें रत्न हैं। बालू... कहते हैं? बालू। उसमें रेत नहीं, नीचे रत्न है। आहाहा! इसी प्रकार यह स्वयंभू भगवान आत्मा...! (प्रवचनसार की) १६वीं गाथा में कहा न? भाई! स्वयंभू। आहाहा! उसमें तल में तो अनन्त शक्ति के रत्न भरे हैं। आहाहा! ऐसे शक्तिवान की दृष्टि करने से जो सम्यग्ज्ञान की पर्याय शक्तिरूप से थी, वह व्यक्तरूप से पर्याय आयी। आहाहा! और उसके साथ अनन्तशक्ति का उदय—उछलता है अर्थात् उत्पन्न होता है। वह पर्याय जो उछलती है, वह क्रमसर है और गुण—शक्ति है, वह अक्रम से है। यह पर्याय उछलती है, वह क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती (गुण के) समुदाय को आत्मा कहते हैं। यहाँ विकार नहीं लेना। समझ में आया? विकार क्रमवर्ती में आता है, ऐसा यहाँ नहीं लेना। यहाँ तो शक्ति का वर्णन है, तो शक्ति तो शुद्ध है तो उसका परिणमन शुद्ध है। उस शुद्ध परिणमन में अनन्त शक्तियाँ निर्मलरूप से क्रमसर क्रमवर्ती उत्पन्न होती है और वह क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती गुण—इन दो के समुदाय को आत्मा कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो पर्यायसहित आत्मा लेना है न! समझ में आया?

नियमसार की ३८वीं गाथा में जो आत्मा लिया, वह तो पर्याय बिना का त्रिकाली ज्ञायकभाव, वह आत्मा है। भाई! वहाँ पर्याय नहीं ली है। यहाँ तो जो वस्तु है, शक्ति है, उसका ज्ञान और प्रतीति हुई तो 'है', ऐसा प्रतीति में आया। परिणमन हुआ तो प्रतीति में आया। ऐसा क्रमवर्ती पर्याय में निर्मल पर्याय का व्यक्तपना, अव्यक्त को जानकर (हुआ)। आहाहा! ऐसी बात है। बालचन्दजी! अव्यक्त को व्यक्त ने जाना। आहाहा!

यहाँ तो अब दूसरा कहना है, इस शक्ति में एक अकर्ता नाम की शक्ति है। वह अपने चलती है। है न? २१, २१वीं शक्ति। वर्णन तो क्रम-क्रम से होता है, वस्तु में क्रम नहीं है।

शक्ति में क्रम नहीं है, पर्याय क्रम से है। एकसाथ है। सैंतालीस शक्ति तो एक समय में सैंतालीस शक्तियाँ हैं, और प्रवचनसार में जो सैंतालीस नय लिये, वे भी एक समय में सैंतालीस नयरूपी धर्म है। समझ में आया? वहाँ एक नय का धर्म ऐसा भी लिय है कि काल में भी मोक्ष है और अकाल में भी मोक्ष है। एक समय में दोनों धर्म हैं। वहाँ ऐसा लेना है। पर्याय में योग्यता, हों! आहाहा! समझ में आया? यह शक्तियाँ एक समय में गुणरूप है और वहाँ जो पर्याय ली, नियत अर्थात् स्वभावरूपी पर्याय और अनियत अर्थात् विभावरूपी पर्याय, दोनों धर्म एक समय में हैं। वहाँ तो यहाँ तक लिया है कि क्रिया से भी मोक्ष होता है और ज्ञान से भी मोक्ष होता है। लालचन्दभाई! आहाहा! क्रिया से मोक्ष होता है और ज्ञान से भी मोक्ष होता है, वह किसी को क्रिया से होता है और किसी को ज्ञान से होता है, ऐसा भी नहीं है। और उस जीव को भी किसी समय क्रिया से होता है और किसी समय ज्ञान से होता है, ऐसा भी नहीं है। एक समय में राग के अभावरूपी योग्यता गिनकर क्रियानय से मुक्ति है, ऐसा कहा। परन्तु उसी समय में, ज्ञान से मुक्ति भी उसी समय में है। समझ में आया? अरे! ऐसी बातें हैं। पण्डितजी!

मुमुक्षु : मुक्ति को एक ओर से नहीं, दो ओर से कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विवक्षाभेद है। भाई! धर्म तो एक ही है। उसी धर्म का विवक्षाभेद है। क्रिया से मुक्ति और ज्ञान से मुक्ति, ऐसा कहने में आया। धर्म तो अन्दर में एक साथ है। ऐसी बात है। आहाहा! ऐसा मार्ग भगवान का है, भाई!

अब यहाँ तो अपने अकर्तृत्वशक्ति चलती है। बीस तो चल गयी। एक साथ ४७ शक्तियाँ हैं। जैसे ४७ नय के धर्म एकसाथ है, धर्म है, वह वहाँ शक्ति नहीं। समझ में आया? ज्ञान से मोक्ष होता है तो यह पर्याय की बात है। ज्ञान से मोक्ष होता है तो ज्ञान की पर्याय की कोई दूसरी पर्याय है, ऐसा नहीं है। यहाँ तो शक्ति का वर्णन है तो शक्ति की पर्याय का वर्णन साथ में है।

आत्मा नित्य है, यह धर्म है परन्तु नित्य की कोई पर्याय है, ऐसा नहीं है। आत्मा अनित्य है, ऐसी एक योग्यता—धर्म है। परन्तु अनित्य धर्म की कोई दूसरी पर्याय है, ऐसा नहीं है। और शक्ति की तो पर्यायविशेष है। समझ में आया? यह शक्ति है, उसकी प्रत्येक शक्ति की वर्तमान व्यक्त पर्याय होती है। और उस धर्म में पर्याय नहीं, वह तो एक अपेक्षित धर्म गिनने में आया है। आलाप पद्धति।

यहाँ कहते हैं कि **समस्त, कर्मों के द्वारा...** भाषा यह है। लोग विवाद करते हैं कि देखो! **समस्त, कर्मों के द्वारा किये गये,...** चन्दुभाई!

मुमुक्षु : स्पष्ट लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्ट लिखा है ? लो, हमारे पण्डितजी कहते हैं कि स्पष्ट लिखा है। यह स्पष्ट कराने के लिये कहते हैं। आहाहा! स्पष्ट ही लिखा है। किस अपेक्षा से ? किस नय का यह कथन है ? कि अपने स्वभाव से विकार उत्पन्न नहीं होता। क्योंकि कोई शक्ति विकार उत्पन्न करे, ऐसी अनन्त शक्ति में कोई शक्ति नहीं है। इसलिए पर्याय में जो विकार होता है, वह शक्ति का कार्य नहीं है। तब उसे शक्ति के स्वभाव की दृष्टि कराने के लिये (ऐसा कहा)। कर्म के निमित्त के वश होकर जो विकार हुआ; निमित्त से हुआ है ऐसा नहीं, निमित्त के वश होकर (हुआ है)। **कर्मों के द्वारा किये गये,...** यहाँ तो भाषा ऐसी है।

कहा था न ? पंचास्तिकाय की ६२ गाथा में ऐसा कहा, जो वर्णीजी के साथ चर्चा हुई थी। विकार अपनी पर्याय में षट्कारक के परिणमन से होता है, द्रव्य-गुण से नहीं, परकारक से नहीं। बीस वर्ष पहले बड़ी चर्चा हुई थी। (संवत्) २०१३ के वर्ष, शिखरजी में। पहले यात्रा में निकले थे न, तब की बात है। सब बैठे थे। रामजीभाई थे, हिम्मतभाई, फूलचन्दजी, कैलाशचन्दजी बहुत पण्डित लोग बैठे थे। एक समय की पर्याय में जो मिथ्यात्व या राग-द्वेष विकृतभाव होता है, वह पर्याय में, एक समय की पर्याय में षट्कारक है। जो षट्कारक शक्तिरूप से द्रव्य-गुण में है, वही पर्याय में षट्कारकरूप से विकार स्वयं के कारण से होता है। पर के कारण से बिल्कुल नहीं। ऐसा कहा।

समयसार में ७५-७६-७७ गाथा में ऐसा कहा, चन्दुभाई! कि अपने आत्मा का स्वभाव, वह अपनी पर्याय में व्याप्य और द्रव्य स्वभाव व्यापक। ऐसे धर्मी को दृष्टि में जब आत्मा का पूर्ण स्वभाव आया, तो स्वभाव व्यापक और स्वभाव की निर्मल पर्याय व्याप्य है। अब उसे जो विकार बाकी रहा, वह विकार व्याप्य और कर्म व्यापक है। वहाँ ऐसा लिया, यहाँ यह लिया। द्रव्यस्वभाव सिद्ध करना है न! द्रव्यस्वभाव की दृष्टि कराने के लिये, जो निकल जानेवाली वस्तु है, वह तो निमित्त से हुआ, ऐसा कहने में आया। समझ में आया ? वहाँ ऐसा कहा कि कर्म व्यापक और विकारी पर्याय व्याप्य।

सवेरे अपने अधूरा छोड़ा, ६८ कलश। उसमें अधिकार यह था कि अशुद्ध परिणाम

अपना व्याप्य है और आत्मा व्यापक है और पुद्गल की पर्याय जो कर्मरूप होती है, वह कर्मरूप होती है, वह व्याप्य है और पुद्गल उसका व्यापक है। आत्मा उसमें व्याप्य-व्यापक है—ऐसा नहीं है। ऐसे कर्म की पर्याय में आत्मा व्याप्य-व्यापक है, ऐसा नहीं है और अपनी व्याप्य-व्यापकता में कर्म व्याप्य-व्यापक है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? क्या अपेक्षा है, यह समझना चाहिए न! लिखा है परन्तु किस नय से, किस अपेक्षा से, क्या विवक्षा है, किस प्रकार की विवक्षा चलती है, इस पर ध्यान रखकर उसका अर्थ करना चाहिए। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **समस्त, कर्मों के द्वारा...** समस्त अर्थात् आठों कर्म। **कर्मों के द्वारा...** भाषा देखो! **किये गये,...** स्वभाव का वर्णन है न? तो विभाव है, वह कर्म के निमित्त के आधीन होकर हुआ है तो कर्म द्वारा हुआ, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? यह तो समझना... समझना... समझना। ज्ञानस्वरूप भगवान है तो प्रत्येक अपेक्षा का ज्ञान उसे समझना यह वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया? किस अपेक्षा से कथन नय का, आगम का, अन्य आगम का तात्पर्य क्या है? एक-एक गाथा में पाँच अर्थ चलते हैं न? पाँच अर्थ चलते हैं न? शब्दार्थ, आगमार्थ, अन्य अन्य आगमार्थ (मतार्थ) नयार्थ और तात्पर्य। एक गाथा में पाँच चलते हैं। यहाँ भी कर्म से कहा, वह किस अपेक्षा से है? कि निमित्त की प्रधानता से विकृत होता है, अपने स्वभाव के कारण से विकृत नहीं होता, यह सिद्ध करने के लिये कहा है। आहाहा!

कर्मों के द्वारा किये गये, ज्ञातृत्वमात्र भिन्न... आहाहा! भगवान तो ज्ञायकस्वरूप है न, प्रभु! और ज्ञायक का जहाँ अनुभव हुआ तो पर्याय में ज्ञान और आनन्द की ही पर्याय उत्पन्न होती है। उसे विकार उत्पन्न होता है, ऐसा है ही नहीं। आहाहा! एक बात। और वह ज्ञायकमात्र जो पर्याय है, वह क्रमवर्ती है और शक्ति अक्रमवर्ती है, इन दो का पिण्ड, वह आत्मा है। यहाँ यह लेना है। समझ में आया? **ज्ञातृत्वमात्र भिन्न जो परिणाम...** परिणाम अर्थात् विकार। ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न जो विकार, पुण्य-पाप, दया, दान आदि। आहाहा! व्यापारी को मानो वह का वह धन्धा, इसलिए कुछ नये तर्क या ऐसा कुछ करने का होता नहीं। इस भाव सोना है और इस भाव चाँदी है, प्रतिदिन यही प्रकार। चन्दुभाई! हमारे मास्टर कहते...

मुमुक्षु : धन कमाये तो ढ़ेर हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह धन धूल भी नहीं। वह तो पुण्य हो तो (मिले)। बहुत बेचारे पुरुषार्थ करते हैं, तो भी पुण्य हो तो मिलता है। पुण्य बिना पैसा मिलता नहीं। परन्तु पैसा मिले, वह इसे कहाँ मिलता है? इसके पास तो यह मेरे हैं, ऐसी ममता आती है। पैसे तो पैसे में रहे, वह तो जड़ परद्रव्य है। आहाहा! लो, यह सब पैसेवाले बैठे। करोड़ोंपति, करोड़पति, देखो! धूल में भी नहीं। करोड़पति? जड़ का पति भगवान? आहाहा!

निर्जरा अधिकार में कहा है कि भैंस का पति पाड़ा होता है। पाड़ा समझते हो? पाड़ा कहते हैं? भैंसा-भैंसा। निर्जरा अधिकार। भैंस का पति भैंसा होता है। उसी प्रकार विकार का पति जड़ होता है। विकार अपना माने, वह तो जड़ है। आहाहा! पैसा (मेरा) माने, वह तो कहीं रहा। विकार की पर्याय द्रव्य में नहीं, शक्ति में नहीं और जहाँ द्रव्य, शक्ति का भान हुआ तो पर्याय में भी विकार नहीं। यह यहाँ लेना है। समझ में आया?

उन परिणामों के करण के... विकारी परिणाम के करने में। पुण्य और पाप के विकार को करने में **उपरमस्वरूप...** भगवान तो निवृत्तस्वरूप है। आहाहा! सम्यग्दर्शन हुआ, चैतन्य के धर्म का ज्ञान हुआ तो कहते हैं कि विकारी परिणाम से तो अन्त लानेवाला है, अभावरूप है। उपरम—निवृत्तरूप है। आहाहा! धर्मीजीव—सम्यग्दृष्टि जीव विकार के परिणाम से निवृत्तस्वरूप है। आहाहा! है? उपरम की तीन व्याख्या की। उपरम अर्थात् निवृत्त, उपरम अर्थात् अन्त। वहाँ विकार का अन्त है, विकारसहित नहीं। विकार का अन्त अर्थात् दूर है। अभाव है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन में अनन्त शक्ति का धारक भगवान आत्मा का जहाँ आश्रय लिया, तब जो विकार के परिणाम होते हैं, (आत्मा का) आश्रय लेनेवाले सम्यग्दृष्टि आत्मा विकार से निवृत्तस्वरूप है। विकार में प्रवृत्तस्वरूप कर्ता नहीं। आहाहा! विकार में प्रवृत्तस्वरूप होवे तो कर्ता हो जाये। आहाहा! समझ में आया? बहुत मार्ग बहुत (सूक्ष्म)। इसका मार्ग ऐसा है। आहाहा! और जिसका फल अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति और जो प्रगटे, वह अनन्त काल रहे। उसका उपाय भी अलौकिक होगा न! आहाहा! जिसके कार्य के फल में अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य, अनन्त शक्ति की अनन्तता की पर्यायें अनन्त प्रगटे और वह समय-समय में भिन्न-भिन्न (प्रगटे), वह जाति सही परन्तु वह नहीं, ऐसी

सादि अनन्त-अनन्त समाधि सुख में, इसका उपाय तो अलौकिक होगा या नहीं? जिसका फल अलौकिक लोकोत्तर हो, उसका उपाय भी अलौकिक होगा। समझ में आया?

आत्मज्ञान हुआ, आत्मा आत्मा का ज्ञान हुआ, तो उस ज्ञान में ज्ञातापने का, दृष्टापने का परिणाम आया। वह ज्ञानी कर्म के निमित्त से उत्पन्न हुए, यहाँ द्वारा कहा है, निमित्त द्वारा कथनशैली है, कहीं उपादान से (कहे), कहीं निमित्त द्वारा (ऐसा कहे)। समझ में आया? ६८ गाथा में कहा न? जौ से जौ होते हैं। यह पुद्‌गल से विकारी परिणाम पुद्‌गल के हैं, ऐसा वहाँ कहा। आहाहा! जौ... जौ। यह लड़कियाँ नहीं? कुँवारी कन्या होती हैं न? वे जुवारा बोती हैं। जुवारा समझते हो? जौ के जुवारा। जौ बोबे, भाई! जौ बोबे, ऐसा बोले, यह तो सुना हुआ है। 'मारा जौ का, जुवारा रे', मूल तो यह सुना हुआ हो। यह तो लड़कियाँ, कन्या होती हैं न? इसमें बात तो यह कि हम विवाह करेंगे, तब इस प्रमाण उगेगा ऐसा टिकेगा या नहीं? बोया हो और उगे। बोया हो तो उगे तो सही न! कोई विवाह करे और छह महीने में मर जाये, दूसरे दिन, तीसरे दिन मर जाये। इसमें क्या? जौ का ज्वारा, ऐसा कहते हैं। 'जौ का जुवारा रे' कहाँ गये गुणुभाई'? यह तुम्हारे गेहूँ के जुवारा याद आये। यह सब अनन्त काल। गेहूँ उगे न? वह अनन्तकाय है। वह खुराक... यह लाये हैं, कल ही मुम्बई से लाये हैं... क्या कहलाता है? तुम्हारे रक्त में है न? आहाहा! गेहूँ का जुवारा खाये, रस से मिट जाये। ऐसा लाये हैं। बलुभाई लाये थे। वह अनन्त काय है, उगे न? वह अनन्त काय कहलाता है। कांटे उगते हैं न? वह अनन्त काय है, बाद में प्रत्येक हो जाता है। पहले अनन्त काय होता है। वह खानेयोग्य नहीं। यह बलुभाई के पत्र का उत्तर है।

यहाँ कहते हैं कि भगवान को राग का कर्तापना जहाँ नहीं... आहाहा! कर्म द्वारा हुए विकल्प से निवृत्तस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? धर्मी उसे कहते हैं, सम्यग्दृष्टि उसे कहते हैं, आत्मज्ञानी उसे कहते हैं कि वह विकार से निवृत्तस्वरूप है। आहाहा! प्रवृत्तस्वरूप है, वह तो कर्ता हुआ, तो वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! भाई! ऐसा मार्ग है। लोगों को ठीक नहीं पड़े, इसलिए फिर विरोध करे। बापू! विरोध करने जैसी चीज़ नहीं, प्रभु! यह तो भगवान के श्रीमुख से बात आयी, वह बात है। आहाहा! वस्तु ऐसी है। समझ में आया?

भगवान आत्मा... यहाँ तो कहते हैं न? व्यवहार से होता है। यहाँ तो कहते हैं, समकिती तो व्यवहार से निवृत्तस्वरूप है। क्या कहा? लोगों का यह विवाद है न? एक

ज्ञानमती आर्यिका है न? दिल्ली में (हस्तिनापुर में) जम्बूद्वीप बनाया। हस्तिनापुर में मेरुपर्वत बनाया। हस्तिनापुर में मेरुपर्वत बनाया और दिल्ली में पच्चीस लाख का जम्बूद्वीप बनाया है, ऐसा सुना है। दो वस्तु कहते हैं। यह तो पत्रिका में आता है। आहाहा!

यहाँ तो कहना है कि पर की क्रिया का कर्ता तो है नहीं। क्योंकि कोई द्रव्य निकम्मा नहीं है। निकम्मा का अर्थ पर्याय बिना का नहीं है। कोई भी द्रव्य निकम्मा अर्थात् कार्यरूप पर्याय बिना का नहीं है। तो पर का कार्य करना, यह बात नहीं रही। समझ में आया? प्रत्येक द्रव्य निकम्मा अर्थात् पर्याय के कार्य बिना का नहीं है।

यह सेठिया बहुत कहते थे। सरदारशहरवाले दीपचन्दजी। उनके शब्दों में था। बाद में जरा यह भूल हो गयी। फिर सुना है कि यहाँ आने का भाव था, दर्शन करने का (भाव था), ऐसा सुना है। भाई आये थे न? वहाँ आये थे। पहले तो कहते थे कोई भी द्रव्य निकम्मा नहीं है। कार्य... कार्यरूपी पर्याय किये बिना रहता नहीं है। तो प्रत्येक द्रव्य पर्यायरूपी कार्य करता है तो दूसरा द्रव्य उसे क्या करे? समझ में आया? बाद में थोड़ा अन्तर पड़ गया। न्यालचन्दभाई (सोगानी) कहते हैं, ज्ञानी को भी राग है, वह दुःख है। दुःख का वेदन है। वह उन्हें जरा खटका। वे कहें, नहीं, दुःख का वेदन तो तीव्र कषायवाले को है। यहाँ तो छठवें गुणसथान में भी **'कल्माषितायाः'** है न? **'कल्माषितायाः'** जितना राग है, भाई! उतना परिणमन में ज्ञान की अपेक्षा से तो आत्मा करता है।

यहाँ तो दृष्टि और दृष्टि के विषय की अपेक्षा चलती है। समझ में आया? परन्तु ज्ञान का साथ में लेना। पर्याय में जितना राग होता है, उतना परिणमन है तो कर्ता कहलाता है। यहाँ तो प्रवृत्ति में करनेयोग्य है, ऐसी प्रवृत्ति उसकी नहीं है। समझ में आया? राग करनेयोग्य है, हितकर है—ऐसी प्रवृत्ति ज्ञानी को नहीं होती परन्तु परिणमनरूप है तो कर्ता भी कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? बाद में आयेगा, अभोक्ता। वहाँ तो भोक्ता ही कहा है। जितने प्रमाण में राग होता है, मुनि को या समकिती को, उसका दुःख का वेदन है। क्षायिक समकिती श्रेणिक राजा नरक में है। श्रेणिक राजा भविष्य में तीर्थंकर होनेवाले हैं। आहाहा! जो माता के गर्भ में आयेंगे, अभी नरक में जीव है, नरक में से निकलेंगे, माता के गर्भ में आयेंगे, तब इन्द्र आयेंगे। समझ में आया? आहाहा! (इन्द्र) माता को कहते हैं, माता! 'पुत्र तुम्हारा स्वामी हमारा, तरणतारण जहाज रे, माता यत्न करके रखना इसको' लो,

यह समकिती कहते हैं। सौधर्म इन्द्र, एकावतारी समकिती है। व्यवहार में बोलने में तो ऐसा आता है।'माता यत्न करके रखना इसको तुम पुत्र हम आधार रे...' निमित्त के कथन हों तब (ऐसा ही आता है)। समझ में आया?

आवे तब कहे, हे रत्नकूखधारिणी! त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का जन्म हुआ तो तुम्हारे में गर्भ हुआ और वह केवलज्ञान पायेगा तो अनेक जीवों का मोक्ष होगा। भले उपादान तो उनका है। समझ में आया? हे माता! जननी! पहले तुम्हें नमस्कार! पश्चात् तीर्थंकर को नमस्कार करते हैं। कहो, यह विकल्प है। कहते हैं कि यत्न करके रखना। यहाँ इनकार करते हैं। समझ में आया? किस अपेक्षा से कथन है? भक्ति के वर्णन में ऐसा आये बिना नहीं रहता। परन्तु उस विकल्प से तो निवृत्तस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया?

करण... इन परिणामों के करने के **उपरमस्वरूप... (उन परिणामों को कराने की निवृत्तिस्वरूप)**... आहाहा! धन्धा-पानी का तो कर्ता नहीं परन्तु दया, दान के विकल्प उठते हैं, उनसे निवृत्तिस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? यह भाषा तो सादी है। यह तो मूल तत्त्व की बात है। और यह तत्त्व समझे बिना सब थोथा है। चाहे जैसे व्रत करे और तप करे और मुनिपना ले। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि अकर्तृत्वस्वभाव इसका धर्म है। आहाहा! एक बात। अकर्तृत्वस्वभाव में राग का अभाव है। नीचे आया न? निवृत्ति, अन्त और अभाव। तो राग के अभावस्वरूप है। यही अनेकान्त हुआ। शुद्ध चैतन्य का स्वभाव अकर्तृत्व है तो अकर्तृत्व में ज्ञाता-दृष्टा के परिणाम होते हैं, उसमें राग का अभाव है। वह अनेकान्त है। राग से भी होता है और ज्ञाता-दृष्टा के परिणाम से भी धर्म होता है, यह तो फुदड़ीवाद है, अनेकान्त नहीं।

मुमुक्षु : फुदड़ीवाद क्या होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : फूदड़ीवाद अर्थात् यह चक्कर घूमता है न? फिरकनी। यह तो यथार्थ स्याद्वाद का विषय है, अनेकान्त है। आहाहा! एक-एक शक्ति के वर्णन में निर्मल परिणति का वह कर्ता है और राग से तो निवृत्तस्वरूप है। इसका अर्थ कि उससे वह निवृत्त हुआ ही नहीं। उससे निवृत्ति जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान राग से हुए ही नहीं। क्योंकि उससे तो निवृत्तस्वरूप है। आहाहा! अब यहाँ विवाद यह करते हैं, व्यवहार करते-करते साधन है

तो निश्चय होगा। पंचास्तिकाय में भिन्न साध्य-साधन कहा है। भाई! वह तो भिन्न साधन का ज्ञान कराया है। साधन दो प्रकार के नहीं हैं, साधन तो एक ही है। जैसे मोक्षमार्ग दो प्रकार के नहीं हैं, मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार से है, मोक्षमार्ग की कथनशैली दो प्रकार से है। निश्चय है, वहाँ राग की मन्दता में आरोप देकर सम्यग्दर्शन आदि कहा जाता है। मोक्षमार्ग दो नहीं, मोक्षमार्ग तो एक ही है। इसी प्रकार साधन दो नहीं, साधन तो एक ही है। साधन कहो या उपाय कहो या मार्ग कहो। साधन का निरूपण दो प्रकार से है, कथन दो प्रकार के हैं। समझ में आया?

अकर्तृत्वशक्ति में कर्तृत्वपने के राग का अभाव है। यही अनेकान्त और यही स्याद्वाद है। आहाहा! समझ में आया? इस अकर्तृत्वशक्ति में अकारणकार्यशक्ति साथ में है। यह पहले आ गयी है। अकर्तृत्वशक्ति का धारक भगवान, उसका जहाँ अनुभव हुआ, तब कहते हैं कि अनुभव में राग की मन्दता कारण और अनुभव कार्य, ऐसा नहीं है। ऐसे अनुभव कारण और राग उसका कार्य, (ऐसा नहीं है)। अन्दर अकार्यकारणशक्ति है। समझ में आया? अकार्यकारणशक्ति पहले आ गयी है। शुभभाव कारण और निश्चय सम्यग्दर्शन कार्य, ऐसा नहीं है। तथा निश्चय सम्यग्दर्शन कारण और राग कार्य, (ऐसा नहीं है)। यह तो कहा, निवृत्तस्वरूप है। आहाहा! अरे! वाँचन करते हुए अभी शास्त्र में कहने की पद्धति क्या है, इसकी खबर नहीं और धर्म हो जाये? आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : शास्त्र की पद्धति तो कही, अब धर्म किस प्रकार करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पद्धति क्या है, वह जाने तो करे, नहीं जाने तो करेगा किस प्रकार? उसमें लिखा है कुछ और अर्थ करे कुछ, तो विपरीत दृष्टि हो गयी। समझ में आया?

इस शक्ति में अकार्यकारणशक्ति भी पड़ी है। आहाहा! और वह शक्ति अनन्त गुण में (निमित्त है)। आहाहा! ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, उसके साथ अकर्तृत्वशक्ति की पर्याय उत्पन्न हुई तो ज्ञान की हीनदशा का कर्ता ज्ञान नहीं है। आहाहा! ऐसे राग से निवृत्त है। आहाहा! समझ में आया? अनन्त गुण में यह अकर्तृत्वशक्ति व्याप्त है। प्रत्येक गुण की पर्याय में अकर्तृत्वपना है। ज्ञान की पर्याय में अकर्तृत्वपना है। ज्ञान की पर्याय पर से हुई है, शास्त्र सुनने से हुई है, शास्त्र से हुई है, देव-गुरु की भक्ति से ज्ञान की पर्याय हुई है—

ऐसा नहीं है। यह कारणकार्य उसमें है ही नहीं। आहाहा! यह ७२ गाथा में निकली है। अकारणकार्यशक्ति ७२ गाथा में से निकाली है। जीवत्वशक्ति दूसरी गाथा के पहले शब्द में से निकाली है। ऐसे प्रत्येक शक्ति निकाली है। शास्त्र की टीका में से निकाली है। अन्दर से निकाली है। आहाहा!

सकलकर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्तपरिणामानुभवोपरमात्मिका अभोक्तृत्व–शक्तिः।

समस्त, कर्मों से किये गये, ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न परिणामों के अनुभव की (–भोक्तृत्व की) उपरमस्वरूप अभोक्तृत्वशक्ति।२२।

यहाँ अकर्तृत्वशक्ति के साथ दूसरी अभोक्तृत्वशक्ति है। आहाहा! कहो, यहाँ तो कहते हैं, आहार–पानी, दाल, भात, सब्जी को भोग नहीं सकता, स्त्री का शरीर भोग नहीं सकता, परन्तु विकार को भी भोक्ता नहीं, ऐसी इसकी चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह शरीर माँस, हड्डियाँ, चमड़ी का भोग आत्मा ले, ऐसा तो अज्ञानी को भी नहीं। परन्तु ज्ञानी को जो भोग की आसक्ति की वृत्ति उठती है, उससे वह निवृत्तस्वरूप है। बराबर है? पण्डितजी! सूक्ष्म बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : भोग के भाव से दूर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भोग की क्रिया तो है नहीं, वह तो अज्ञानी भी शरीर को भोग नहीं सकता। यह चमड़ी, हड्डियाँ, माँस, रक्त को भोगे कौन? आत्मा अरूपी है और यह तो वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शवाली वस्तु है। आहाहा! दाल, भात, सब्जी, मौसम्बी, रसगुल्ला यह सब तो जड़, मिट्टी–धूल है, रूपी है। रूपी को आत्मा भोगे? अज्ञानी रूपी का लक्ष्य करके 'यह ठीक है', ऐसा राग उत्पन्न करके राग को भोगता है। मानता है कि मैं इस शरीर को भोगता हूँ। यह दृष्टि विपरीत है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो अब धर्मी की बात चलती है। आहाहा! क्या कहते हैं? देखो! **समस्त, कर्मों से किये गये, ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न परिणामों के अनुभव की...** है? **(–भोक्तृत्व की) उपरमस्वरूप अभोक्तृत्वशक्ति।** आहाहा! पर का भोक्ता तो अज्ञानी भी नहीं और

ज्ञानी स्वरूप की दृष्टि, आत्मज्ञान हुआ है तो उस आत्मा के आनन्द का भोक्ता है। उस राग को भोगने के काल में राग होता है, परन्तु राग से निवृत्तस्वरूप है, उसका भोक्ता नहीं।

मुमुक्षु : तो राग को कौन भोगता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग को राग भोगता है। भोक्ता की पर्याय में षट्कारक का परिणमन विकार का है। और अपनी अभोक्तृत्वशक्ति की पर्याय में निर्मल परिणति के षट्कारक हैं।

फिर से, अभोक्तृत्वशक्ति जो है, यह कहा न? **समस्त, कर्मों से किये गये, ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न परिणामों के अनुभव...** राग का अनुभव, द्वेष का अनुभव, विकल्प का अनुभव, उससे उपरमस्वरूप है। ज्ञातृत्वमात्र है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। अब उसके बदले इन्दौर में दो-तीन वर्ष पहले पचास पण्डित इकट्ठे हुए। रात्रि में चर्चा की, उसमें यह रखा था, कोई भी परद्रव्य का कर्ता न माने, वह दिगम्बर नहीं है। क्योंकि यहाँ (अपने) कर्ता मानते नहीं, इसलिए यह दिगम्बर नहीं है, ऐसा उन्हें सिद्ध करना है। अरे! भगवान! आहाहा! ऐसा मार्ग है, प्रभु! दीपता-शोभता मार्ग है। आहाहा!

ज्ञानी को राग की आसक्ति होती है,... समझ में आया? रुचि नहीं। राग की रुचि नहीं, राग में सुखबुद्धि नहीं। आसक्ति होती है परन्तु उस आसक्ति से निवृत्तस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बाते हैं। हेमचन्दजी, हेमचन्दजी हैं न? ब्रह्मचारी है, बालब्रह्मचारी। आहाहा! ऐसा मार्ग। जिनमार्ग, जैनमार्ग है न? तो जैन में राग के अभावस्वभाव स्वरूप अभोक्ता आत्मा का गुण है। राग का भोक्तागुण, वह आत्मा में नहीं है। आहाहा! कितनी धीरज चाहिए? कितनी अन्दर द्रव्यस्वभाव में घुसकर... आहाहा! चैतन्य ज्ञायक के तल स्पर्श करके... आहाहा! ज्ञातापने के परिणाम... कहा न? क्या कहा?

ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न... आहाहा! जानने-देखने के परिणाम जो हैं, यहाँ परिणाम (कहते हैं), हों! द्रव्य-गुण तो भिन्न है ही, परन्तु धर्मी के ज्ञाता-दृष्टा के परिणाम में विकार के परिणाम से निवृत्तस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? है न? पाठ है न? अरे रे! शास्त्र के अर्थ करने में भी अपनी दृष्टि रखकर अर्थ करे। शास्त्र को किस दृष्टि से कहना है, उस ओर दृष्टि को नहीं ले जाना और अपनी दृष्टि से शास्त्र का अर्थ करना। आहाहा!

समस्त, कर्मों से किये गये,... यहाँ भी किये गये, ऐसा आया। ज्ञातृत्वमात्र भाव से भिन्न परिणाम अर्थात् विकारी भाव, उसके भोक्तृत्व से उपरम—निवृत्तस्वरूप। विकारी भाव के भोक्तापने से निवृत्तस्वरूप अभोक्ताशक्ति है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव आत्मज्ञानी जीव, भरत जैसों को छह खण्ड का राज्य, छियानवें हजार स्त्रियाँ, भोग की आसक्ति के परिणाम थे, परन्तु स्वभाव की दृष्टि के कारण, ज्ञाता-दृष्टा परिणाम के कारण, उन विकारी परिणाम से निवृत्तस्वरूप आत्मा अभोक्ता है। क्या कहा?

जैसे अभोक्ताशक्ति द्रव्य में है, गुण में है, ऐसा जहाँ परिणमन हुआ, वहाँ पर्याय में अभोक्तापना आया। समझ में आया? अभोक्ताशक्ति द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्यापती है। द्रव्य; गुण में तो अनादि से है, परन्तु जब भाव हुआ, तब पर्याय में अभोक्तापने की पर्याय आयी। ज्ञाता-दृष्टापने की कहो या राग के नहीं भोगने की, अभोक्तापने की पर्याय कहो। आहाहा! ऐसा मार्ग है। इसमें निवृत्ति नहीं मिलती, निवृत्ति कब ले और निर्णय कब करे? भभूतमलजी! यह धूल और धमाका। पूरे दिन पाप... पाप। यह किया और यह किया, यह किया, और यह किया... अरे रे! बाहर का करना तो उसकी पर्याय में भी नहीं है। और यह तो उसके द्रव्य, गुण में जो अभोक्तृत्वपना है, उसे स्वीकार करने से अभोक्तापना पर्याय में आता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! द्रव्य-गुण में तो अभोक्तापना त्रिकाल है। पर्याय में भोक्तापना अज्ञानी ने माना है। वह द्रव्य का जहाँ अनुभव होता है तो पर्याय में भी राग का भोक्तापना छूट जाता है। आहाहा! समझ में आया?

अरे! अनन्त गुण—शक्ति की पर्याय में अभोक्ता की पर्याय निमित्त है अथवा अभोक्तृत्व का उसमें रूप है। ज्ञान की हीन दशा और विपरीत दशा का भोक्ता जीव है ही नहीं। ऐसी बात। समझ में आया? भाषा तो सादी है, भाई! यहाँ कहीं संस्कृत या व्याकरण की भाषा नहीं है। वह पण्डित जाने। इस महीने में सीखा था, उसे संकृत में रखा था न? महीने में लोगों को यह सिखाया। सभा को ठीक नहीं पड़ता था, कुछ समझते नहीं थे। आहाहा!

यहाँ अभोक्ताशक्ति द्रव्य-गुण में तो त्रिकाल पड़ी है परन्तु उसका जहाँ भान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ तो पर्याय में अभोक्तापना आ गया। पर्याय में अभोक्तापना आया तो उस राग के भोक्तापने से निवृत्त है। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २१, शक्ति- २३ बुधवार, (द्वितीय) श्रावण कृष्ण ३, दिनांक ३१-०८-१९७७

समयसार, शक्ति का अधिकार है। आत्मवस्तु अनन्त शक्ति के रत्न का भण्डार आत्मा है। एक-एक शक्ति में अनन्त शक्ति है। अनन्त शक्ति तो संख्या से है। इस आकाश के जितने अनन्त प्रदेश हैं, उससे अनन्तगुणी एक द्रव्य में शक्तियाँ हैं। उन एक-एक शक्ति में अनन्त-अनन्त सामर्थ्य है और एक-एक शक्ति में अनन्त पर्याय है। अनन्त शक्तियाँ अक्रम से आत्मा में विराजमान हैं। आहाहा! और उसकी प्रतीति और अनुभव होने पर अन्तर में द्रव्यस्वभाव का स्व-आश्रय करके प्रतीति करके ज्ञान की पर्याय में पूरा द्रव्य और गुण का ज्ञान होता है, तब पर्याय में सर्व गुण की एक अंश शक्ति की व्यक्ति होती है। समझ में आया ?

यहाँ तो अपने निष्क्रियशक्ति चलती है। थोड़ा सूक्ष्म है। थोड़ा। सूक्ष्म कहाँ? सत्तास्वरूप भगवान विराजता है। आहाहा! उसका अस्तित्व ही अनन्त गुण से है और निर्मल पर्याय क्रमसर होती है, वह आत्मा है। विकारी पर्याय को यहाँ लिया नहीं। शक्ति और शक्तिवान ऐसा भगवान आत्मा, उसके सामान्य ध्रुव पर दृष्टि होने से, ध्रुव को ध्येय बनाने से पर्याय में जितने गुण की संख्या है, उतनी संख्या में शक्ति की आंशिक व्यक्तता सम्यग्दर्शन में प्रगट होती। आहाहा! समझ में आया ? यहाँ अपने अभोक्ताशक्ति हो गयी। अब आज तो यह है।

सकलकर्मोपरमप्रवृत्तात्मप्रदेशनैष्पन्द्यरूपा निष्क्रियत्वशक्तिः।

समस्त कर्मों के उपरम से प्रवृत्त आत्मप्रदेशों की निस्पन्दतास्वरूप (अकम्पतास्वरूप) निष्क्रियत्वशक्ति। (जब समस्त कर्मों का अभाव हो जाता है, तब प्रदेशों का कम्पन मिट जाता है, इसलिए निष्क्रियत्व शक्ति भी आत्मा में है।)।२३।

समस्त कर्मों के उपरम से... भाषा ऐसी है, समस्त कर्मों के उपरम से। इसके पहले की दो (शक्तियों) में ऐसा था, **समस्त कर्म से किये जानेवाले परिणाम...** ऐसा था। अकर्ता, अभोक्ता में। यहाँ तो कहते हैं, **समस्त कर्मों के उपरम से प्रवृत्त आत्मप्रदेशों**

की निस्पन्दतास्वरूप (अकम्पतास्वरूप) निष्क्रियत्वशक्ति। है। आहाहा! निष्क्रियत्वशक्ति अत्यन्त अकम्पना तो अयोग में होता है। इसका अर्थ ऐसा किया है, क्षायिक समकिती को। परन्तु समकिती को भी निष्क्रियशक्ति का अंश व्यक्तरूप है। समझ में आया? क्यों? अर्थ में ऐसा लिया कि क्षायिक समकिती को तत्सम्बन्धित अविरति और योग का नाश होता है। आस्रव अधिकार में (लिया है)। तत्सम्बन्धित, इतना। वास्तव में तो सम्यग्दर्शन में सत्यस्वरूप पूर्णानन्द, जहाँ अन्दर में प्रतीति में आया, अनुभव में आया, अनुभूति में उस द्रव्य स्वभाव का अनुभव हुआ तो सम्यग्दृष्टि को भी निष्क्रियत्वशक्ति का एक अंश प्रगट है।

यहाँ समस्त कर्म का अभाव लिया है। निश्चय से तो आत्मा में अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त स्वच्छता, प्रभुता, ऐसी निष्क्रियत्वशक्ति भी अनन्त पड़ी है। उसकी स्वभाव सन्मुख की प्रतीति होने से निष्क्रियत्वशक्ति का भी अंश व्यक्त चौथे गुणस्थान से प्रगट होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : सर्व गुणांश, वह सम्यक्त्व।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सर्व गुणांश, वह समकित, यह श्रीमद् का वाक्य है। अपने रहस्यपूर्ण चिट्ठी में ज्ञानादि एकदेश व्यक्त, ऐसा पाठ है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी। समझ में आया? चन्दुभाई! ज्ञानादि एकदेश व्यक्त, ऐसा आया है। और केवलज्ञानी को ज्ञानादि सर्वदेश व्यक्त हैं। रहस्यपूर्ण चिट्ठी। रहस्यपूर्ण चिट्ठी बनायी है न! इसका अर्थ क्या? वहाँ ऐसा नहीं कहा कि ज्ञान, दर्शन, आनन्द का एक अंश व्यक्त होता है, ऐसा नहीं कहा। वहाँ तो ज्ञानादि सर्व गुणों की एकदेश व्यक्तता होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! सर्व गुण। श्रीमद् ने सर्व गुण कहा। रहस्यपूर्ण चिट्ठी में ऐसा कहा, परन्तु शब्द तो यही है। समझ में आया?

ज्ञानादि अनन्त गुण का... आहाहा! चैतन्य रत्नाकर भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त गुण की खान—खजाना और एक-एक शक्ति में भी अनन्त ताकत और एक-एक शक्ति में अनन्त शक्ति का रूप। आहाहा! और एक-एक शक्ति अनन्त गुण में व्यापक है। एक-एक शक्ति का भान हुआ, तब तो वह शक्ति द्रव्य, गुण, पर्याय में व्यापक हुई। समझ में आया? तो निष्क्रियशक्ति भी पर्याय में व्यापक हुई। चन्दुभाई! आहाहा! लालचन्दभाई!

निष्क्रिय अयोगपने का अंश चौथे गुणस्थान में प्रगट हुआ। आहाहा! अरे! चार घातिकर्मों का नाश होकर चार प्रतिजीवी गुण जो (प्रगट) होते हैं, उनका भी अंश प्रगट हुआ, ऐसा कहते हैं। ज्ञानादि सर्व गुण का एकदेश व्यक्त का अर्थ क्या? समझ में आया? है न मोक्षमार्गप्रकाशक में? रहस्यपूर्ण चिट्ठी। श्रीमद् का वाक्य तो है परन्तु इसमें दिगम्बरों को जरा ख्याल में रहे, (इसलिए यह लेते हैं)।

मुमुक्षु : आपके शब्द ही आगम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु आगम का आधार देना जरा... रहस्यपूर्ण चिट्ठी है न? देखो!

मुमुक्षु : चौथे गुणस्थान की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे गुणस्थान की बात है।

तथा भाईश्री! तुमने तीन दृष्टान्त लिखे व दृष्टान्त में प्रश्न लिखा, परन्तु दृष्टान्त सर्वांग मिलता नहीं है। दृष्टान्त है, वह एक प्रयोजन को बतलाता है। क्योंकि एकदेश प्रगट हुआ, ऐसा कहते हैं तो जैसे चन्द्रमा एकदेश बाह्य में प्रगट हुआ और दूसरे अंश आवरण में हैं, ऐसा नहीं है। यहाँ तो सर्व असंख्य प्रदेश में सर्व गुण एकदेश प्रगट हुए हैं। चन्द्र का दृष्टान्त लागू नहीं पड़ता। चन्द्र की दूज का एक भाग इतने में है और बाकी दूसरा आवरण में है। भले पूरा चन्द्र ख्याल में आता है। ऐसे सम्यग्दर्शन में ख्याल में पूर्ण आता है परन्तु व्यक्त में-सम्यग्दृष्टि को व्यक्त में अनन्त गुण का एक अंश प्रगट है। समझ में आया? दृष्टान्त में ऐसा नहीं कि असंख्य प्रदेश में निचला भाग, चन्द्र का जैसे निचला भाग जैसे व्यक्त है और बाकी का आवरण में है, ऐसा यहाँ दृष्टान्त लागू नहीं पड़ता। भले तुमने दृष्टान्त कहा परन्तु वह दृष्टान्त यहाँ लागू नहीं पड़ता। यहाँ तो पूरे असंख्य प्रदेश में एक अंश व्यक्त है, असंख्य प्रदेश में पूरे में एकदेश व्यक्त है। चन्द्रमा तो अमुक भाग में व्यक्त है और बाकी का (भाग) आवरण में है। इसलिए यह दृष्टान्त यहाँ सिद्धान्त में लागू नहीं पड़ता। समझ में आया?

भगवान आत्मा असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण का निधान, एक-एक प्रदेश में अनन्त गुण, ऐसे सर्व प्रदेश में व्यापक अनन्त गुण है। उसका नीचे का भाग व्यक्त है, चन्द्र की

भाँति, ऐसा दृष्टान्त यहाँ लागू नहीं पड़ता। यहाँ तो सर्व असंख्य प्रदेश में, एक व्यक्त अंश, सब असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण का अंश प्रगट है। समझ में आया? है? देखो! **चौथे गुणस्थान में आत्मा के ज्ञानादि गुण...** इसमें कोई गुण बाकी नहीं रखे। प्रतिजीवी गुण या निष्क्रिय गुण (कोई बाकी नहीं रखे)। सब आये? आहाहा! गम्भीर, चैतन्यरत्न से भरपूर भगवान आत्मा... आहाहा! उसका आश्रय लेकर जहाँ सम्यग्दर्शन हुआ... **'भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो'** ग्यारहवीं गाथा, जैनदर्शन का प्राण है। यह कैलाशचन्दजी ने एक बार लिखा था, ग्यारहवीं गाथा जैनदर्शन का प्राण है, ऐसा जैनसंदेश में लिखा था। उसमें भी **'भूदत्थमस्सिदो खलु'** सर्व भूतार्थ सत्यार्थ त्रिकाल वस्तु का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। उसमें अनन्त शक्तियाँ हैं तो अनन्त शक्तिवान द्रव्य का जहाँ आश्रय लिया तो पर्याय में असंख्य प्रदेश में एक अंश व्यक्त-प्रगट है। निचले प्रदेश में व्यक्त है और ऊपर के प्रदेश में, जैसे चन्द्र में है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

आस्रव अधिकार में है न? **सम्यग्दृष्टि को मिथ्यात्व का और अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय नहीं होने से...** है? गाथा-१७६। १७६ की टीका के बाद भावार्थ में एक पैराग्राफ पूरा होने के बाद दूसरे पैराग्राफ में। समझ में आया? दूसरा पैराग्राफ है? **सम्यग्दृष्टि को...** भाई आया? लालचन्दभाई! **सम्यग्दृष्टि को मिथ्यात्व का और अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय नहीं होने से, उसे उस प्रकार के भावास्रव तो होते ही नहीं और मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी कषाय सम्बन्धी बन्ध भी नहीं होता।** फिर कोष्ठक में डाला। **(क्योंकि क्षायिक सम्यग्दृष्टि को सत्ता में से मिथ्यात्व का क्षय होते समय ही अनन्तानुबन्धी कषाय का तथा उस सम्बन्धी अविरति और उस सम्बन्धी योगभाव का भी क्षय हो गया होता है...)** है? इसमें क्षायिक डाला है और रहस्यपूर्ण चिट्ठी में तो सर्व सम्यग्दृष्टि जीव कहे। समझ में आया? यह क्षायिक क्यों कहा? कि यह क्षय हुआ, वह ऐसा का ऐसा रहेगा। इस अपेक्षा से क्षायिक कहा। योग के अंश का भी चौथे गुणस्थान में क्षय है। कम्पन के एक अंश का क्षय है। आहाहा!

निष्क्रियशक्ति है। अकम्पस्वरूप उसका स्वभाव है तो सम्यग्दर्शन में उस शक्ति के

अकम्प स्वभाव का एक अंश व्यक्त—प्रगट, अयोगपने की पर्याय का प्रगटपना व्यक्त हुआ है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : अद्‌भुत गम्भीर बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अद्‌भुत गम्भीर है। भगवान! एक दूसरा न्याय। इसमें आया न? एकदेश कहा न? पश्चात् कहा, देखो! **ज्ञानादिगुण एकदेश प्रगट हुए हैं...** गुण शब्द से उनकी पर्याय **तथा तेरहवें गुणस्थान में आत्मा के ज्ञानादिगुण सर्वथा प्रगट...** सर्वथा प्रगट, सर्वदेश प्रगट। यह मोक्ष में। (१७६ गाथा में कहा), **क्षायिक सम्यग्दृष्टि को सत्ता में से मिथ्यात्व का क्षय होते समय ही अनन्तानुबन्धी कषाय का तथा उस सम्बन्धी अविरति...** उस सम्बन्धी अविरति। अभी है तो चौथा (गुणस्थान), परन्तु उस सम्बन्धी का जो कषाय का भाव था, अनन्तानुबन्धी आदि का, (उसका) अभाव हुआ। **और योग...** आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो भगवान पूरा पूर्ण अनन्त अनन्त चैतन्यशक्ति का रत्नाकर जहाँ अनुभव में आया वहाँ तो जितनी शक्ति है, उसका (एक अंश व्यक्त हो गया)। अकम्प हो, अयोगपना हो, ज्ञान हो, आनन्द हो, ईश्वरता—प्रभुता हो, स्वच्छता हो, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान (अधिकरण) शक्ति हो, सबका एक अंश एकदेश व्यक्त प्रगट चौथे गुणस्थान में होता है। आहाहा! थोड़ा सूक्ष्म है। समझ में आया? ज्ञानचन्दजी! ज्ञानचन्द्र की बात है। आहाहा! क्यों?

निष्क्रियशक्ति जो यहाँ कहते हैं, वह सम्यग्दर्शन में दृष्टि में भान हुआ तो निष्क्रियशक्ति जो है, वह पर्याय में व्यापती है। भभूतमलजी! इसमें तो बहुत गम्भीरता है। वे पैसे-बैसे पुण्य के कारण मिल गये, वहाँ कहीं चतुराई काम नहीं करती। डहापण समझे? होशियारी। भभूतमल को लोग होशियार कहते हैं, मारवाड़ी में बड़ा होशियार है। दो करोड़ रुपये इकट्ठे किये हैं। धूल में भी होशियार नहीं। आहाहा! यह होशियारी तो अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, आहाहा! उसका जहाँ स्वीकार हुआ, सत्कार हुआ, आश्रय हुआ, सन्मुख हुआ तो जितनी शक्तियाँ है, उसका एक अंश व्यक्त प्रगट (होता है)। वह द्रव्य-गुण में तो है ही, पर्याय में व्याप्त होता है। यह पहले आ गया है। प्रत्येक शक्ति द्रव्य, गुण, पर्याय में व्याप्त होती है। समझ में आया? आहाहा! जैनदर्शन और उसमें द्रव्यानुयोग तत्त्व सूक्ष्म, बहुत सूक्ष्म है।

यशपालजी! यह यशपाल है, लो! भगवान का यश ऐसा है कि अनन्त गुण का पालन करे। आहाहा! क्या कहते हैं?

निष्क्रियता प्रगट हो गयी? हाँ। चौथे गुणस्थान में अंशतः निष्क्रियता प्रगट हो गयी। चन्दुभाई! आहाहा! भाई! यहाँ तो जितने गुण हैं, जितने गुण—प्रतिजीवी गुण भी गुण है या नहीं? आहाहा! तो सत्यस्वरूप जो भगवान, अनन्त गुण और अनन्त गुण का पिण्ड, उसकी सत्य, पूर्ण सत् की सत् प्रतीति, सत्य दर्शन, सत्य का दर्शन, सत् की प्रतीति, सत् का देखना, ऐसी जहाँ आत्मा में प्रतीति हुई तो जितनी शक्तियाँ हैं, उनका एक अंश पर्याय में व्याप्त होता है। आहाहा! यह द्रव्य, गुण और पर्याय की व्याख्या। कोई कहता था, द्रव्य, गुण, पर्याय की व्याख्या भी समझते नहीं। इन्दौर में कोई बात आयी थी। बाबूभाई गये थे और वहाँ यह बात आयी थी। कितनों को तो द्रव्य, गुण, पर्याय की भी खबर नहीं। ऐसा समाचार पत्र में आया था। आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य अर्थात् पैसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा था, यहाँ कहा था। अपने जो ऊपर लिखाया था न? अब इस ओर लिखा है, ऊपर लिखा था। 'द्रव्यदृष्टि वह सम्यग्दृष्टि'। एक श्वेताम्बर आया, नानालाल कालीदास हैं राजकोट में, उनके रिश्तेदार 'थान'वाला माणेकचन्दभाई आये, देखा 'द्रव्यदृष्टि वह सम्यग्दृष्टि'। ओहोहो! यहाँ पैसेवाले बहुत आते हैं। द्रव्यदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि। जिसके पास बहुत द्रव्य है, वह सम्यग्दृष्टि? ऐसा प्रश्न किया। अरे..रे..! पचास-पचास, साठ-साठ वर्ष जैन में जन्मे... पोपटभाई! कुछ खबर नहीं होती। बापू! द्रव्य-पैसे की बात यहाँ कहाँ है? यहाँ तो पैसा धूल कहकर तिरस्कार हो जाता है, अजीवमय हो जाता है। और पैसे का स्वामी हो तो वह जड़ है। भैंस का स्वामी पाड़ा होता है, वैसे अजीव का स्वामी हो, वह मेरा है, वह तो जड़ है, वह चैतन्य नहीं। आहाहा! निर्जरा अधिकार में आता है। यदि मैं राग का स्वामी होऊँ तो अजीव हो जाऊँ। टीका है, भाई लालचन्दभाई! निर्जरा अधिकार में टीका है। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि अपने शुद्ध स्वरूप की प्रतीति, अनुभूति में हुई तो कहता है कि मैं यदि राग को मेरा मानूँ तो मैं अजीव जड़ हो जाऊँ। आहाहा! यहाँ लोग व्यवहाररत्नत्रय से

निश्चय होगा, ऐसा मानते हैं। जड़ से चैतन्य का विकास होता है (-ऐसा मानते हैं)। आहाहा! बहुत विपरीत। इस विपरीतता का ढ़िंढोरा पीटे। एकान्त है, एकान्त है। जैन गजट में भी आज आया है। सोनगढ़ का एकान्त है। सोनगढ़ का नाम अब बाहर आया, भले विरोधरूप से। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं...

मुमुक्षु : तत्त्व को समझने के लिये सोनगढ़ में एकान्त है, शान्ति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डितजी ठीक कहते हैं। एकान्त कहते हैं, इस दृष्टि से नहीं परन्तु यहाँ एकान्त में शान्ति है। आहाहा! एक ऐसा अपना स्वरूप, उसकी एकाग्रता में एकान्त है। एकान्त में आनन्द आता है, शान्ति आती है और अनन्त गुण की शक्ति आंशिक व्यक्तता होती है। आहाहा! तो आनन्दगुण का भी अंश आया, वीर्यगुण का भी अंश आया। वीर्यगुण कौन सा? स्वरूप की रचना करे, वह वीर्य। शुभभाव की रचना करे, उस वीर्य को यहाँ वीर्य नहीं कहते। आहाहा! और प्रभुता के गुण में भी अपनी पर्याय में प्रभुता आती है। प्रभुता शक्ति के कारण से उस शक्ति के धारक की दृष्टि होने से पर्याय में प्रभुता का परिणमन होता है। द्रव्य, गुण और पर्याय में प्रभुता व्यापती है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग तो सूक्ष्म है, बापू! बहुत सूक्ष्म। क्या हो? आहाहा!

बाहर के साथ क्या सम्बन्ध? एक शुभभाव भी दुःखदायक है, भाई! तुझे खबर नहीं। तेरा स्वभाव तो आनन्द है न! तो आनन्द की पर्याय होनी चाहिए, उसके बदले तू शुभभाव में रुक गया। दुःख में रुक गया तो दुःख के अभावस्वरूप आनन्दस्वरूप के समीप तो गया नहीं। और दुःख के समीप रहा। आहाहा! जिसका संग करना नहीं, उसके संग में पड़ा। शुभभाव, वह दुःख है, उसका संग करना नहीं और भगवान आनन्दस्वरूप का, असंग स्वरूप का संग करना है। आहाहा! समझ में आया? असंग का संग किया नहीं और राग का संग किया, यह तो दुःख, दुःख लिया। दुःख ओढ़ लिया, दुःख ओढ़ लिया। आहाहा! लोगों को कठिन पड़ता है। यह शुभयोग साधन-साधन है। चिल्लाहट पाड़ते हैं न? मक्खनलालजी। शुभयोग मोक्ष का मार्ग है। जो शुभयोग को हेय माने, वह मिथ्यादृष्टि है। अर र र! प्रभु! यह क्या पढ़ा? बापू! दुनिया तुझे मानेगी परन्तु वस्तुस्थिति में विरोध होगा, भाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **समस्त कर्मों के उपरम से...** पहली दो शक्तियों में क्या आया था? **समस्त, कर्म से किये जानेवाले...** अकर्तृत्व और अभोक्तृत्व में आया था न? **समस्त, कर्म से किये जानेवाले...** विकार आदि। अकम्पशक्ति की विकृत अवस्था कर्म द्वारा हुई है। समझ में आया? आहाहा! अकम्प भगवान का स्वभाव निष्क्रिय है, उसकी पर्याय में कर्म द्वारा कम्पन होता है। ऐसा आया न? भाई! आहाहा! वह यहाँ आत्मस्वभाव में **समस्त कर्मों के उपरम से...** पहले तो ऐसा कहा था कि कर्म द्वारा हुआ विकार, उसके उपरम से अकर्ता और अभोक्ता है। यहाँ तो कर्म का अभाव (कहा)। आहाहा! समझ में आया? टीका, यह टीका है! शक्ति का भण्डार भरा है! आहाहा! यह चैतन्यरत्न है। चैतन्यरत्नाकर है।

कहते हैं, समस्त कर्म। परन्तु प्रभु! आप सम्यग्दृष्टि को भी ऐसा बताते हो? कि सर्व शक्ति निष्कम्प है, अकम्प है, उसमें भी अकम्प का रूप सर्वगुणों में है। रूप। तो सर्वगुण और निष्कम्पशक्ति पर्याय में निर्मलता होती है, वहाँ अकम्पपना है नहीं। वह अकम्पपना नहीं, वह वस्तु की पर्याय है। कम्पपना है, उसका यहाँ अभाव बताया है। यह क्या कहा? समझ में आया? स्वरूप में अनन्त शक्ति है, उसमें निष्कम्प निष्क्रियशक्ति है, उस निष्क्रियशक्ति का परिणमन में—पर्याय में निष्क्रियता आयी। वह द्रव्य की पर्याय है और जितना कर्म के निमित्त से कम्पन है, उसका निष्क्रिय पर्याय में अभाव है। यह व्यवहार का अभाव है, यह अनेकान्त और स्याद्वाद है। समझ में आया? यह तो गम्भीर शब्द पड़े हैं। एक-एक शक्ति का वर्णन। ओहोहो!

भाई दीपचन्दजी ने बहुत (वर्णन) किया है। सवैया में परमात्मपुराण में भी है, थोड़ा समयसार नाटक में भी है परन्तु इन्होंने जो किया है, उतना विस्तार कहीं नहीं है। बहुत विस्तार! ओहोहो! एक-एक पर्याय में अनन्त नट और अनन्त थट और अनन्त रूप और अनन्त भाव... ऐसे-ऐसे कितने ही बोल लिये हैं। एक-एक पर्याय में, हों!

कहते हैं, समस्त कर्म के उपरम से। पहले परिणाम के उपरम से, ऐसा था। अकर्तृत्व और अभोक्तृत्व में कर्म द्वारा जो विकार परिणाम हुए, उनके उपरम से अकर्तृत्व और अभोक्तृत्व था। उनसे निवृत्त होकर अकर्ता और अभोक्ता था। यहाँ सर्वकर्म से निवृत्त

है। आहाहा! आहाहा! क्योंकि कर्म तो तुझमें अभावरूप है। आहाहा! और इस शक्ति का परिणमन तो तेरा भावरूप है। आहाहा! सूक्ष्म मार्ग, भाई! लोगों को यह अभ्यास नहीं और यह भटकने के सब अभ्यास। पूरे दिन यह किया और यह किया और यह किया...

यहाँ कहते हैं, समस्त कर्म के उपरम से। सब कर्म का उपरम? कहते हैं, कर्म का अभाव है, वह उपरम ही है। द्रव्य जो भगवान आत्मा, उसका द्रव्य, उसके गुण, उसकी पर्याय, समस्त कर्म के उपरमस्वरूप है। कर्म के सम्बन्ध से है नहीं। आहाहा! यह शक्ति सूक्ष्म है। अकम्पपना चौथे गुणस्थान से सिद्ध करना... चन्दुभाई! आहाहा! भाई! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर की ज्ञानधारा है, उनकी दिव्यध्वनि प्रवचन अमृतधारा को समझने के लिये बहुत प्रयत्न चाहिए। समझ में आया? एक एम.ए. और एल.एल.बी. के लिये... भाई ने कहा था न? नन्दकिशोरजी ने कहा, इक्कीस वर्ष होते हैं।

छोटी उम्र में मेरा एक मित्र था। सूरत का एक डॉक्टर था। मित्र था। मैं पालेज तो तेरह वर्ष की उम्र में गया था। फिर बहुत वर्ष यहाँ भावनगर आये। वह निकला, अरे! तुम यहाँ कहाँ से? मैंने कहा, पालेज से आया हूँ। वह कहे, घर आओ, घर आओ। कितने वर्ष से तुम पढ़ते हो? तो कहे, बाईस वर्ष से पढ़ता हूँ। बाईस वर्ष से पढ़ता है। मैंने तो सात कक्षा पढ़कर छोड़ दिया। सातवीं कक्षा की परीक्षा नहीं दी थी। छठवीं की परीक्षा दी थी। सातवीं का छोड़कर पालेज जाने के बाद पढ़ाई छोड़ दी। यह तो तुम इतने वर्ष से (पढ़ते हो)? हाँ। अभी तो बाईस वर्ष हुए। यह एक छह महीने तो अभ्यास कर। आया न? अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं), छह महीने तो अभ्यास कर, प्रभु! आहाहा! 'लागी लगन हमारी' लगन लगा दे परमात्मा में। आहाहा! तू ही परमात्मा है। दूसरे परमात्मा की लगन तो राग है। आहाहा!

यह तो निष्क्रिय की बात है। डाह्याभाई! चौथे गुणस्थान में निष्क्रियशक्ति की व्यक्तता, प्रगटता पर्याय में प्रगटी है। आहाहा! जो चौदहवें गुणस्थान में अयोगपना प्रगट होगा, उसका एक अंश चौथे (गुणस्थान) में प्रगट हो गया। आहाहा! समझ में आया? दूसरा एक न्याय आया है न? कि शुभभाव है, उसमें यदि शुद्धता का अंश न हो तो ज्ञान बढ़कर केवलज्ञान हो और शुभ बढ़कर यथाख्यातचारित्र होगा? क्या कहा, समझ में आया? उसमें आता है न? ज्ञान की पर्याय, मति-श्रुत की (पर्याय) व्यक्त हुई, वह ज्ञान

की धारा बढ़कर केवलज्ञान तक जाति है परन्तु यदि शुभभाव में शुद्धता का अंश न हो तो शुभभाव बढ़कर यथाख्यातचारित्र होता है ? शुभभाव में भी शुद्ध का अंश है, वह बढ़कर यथाख्यातचारित्र होता है। लिया है न ? मोक्षमार्गप्रकाशक में पीछे उपादान-निमित्त की चिट्ठी में। आहाहा! क्या कहा ?

आत्मा में शुभयोग के काल में भी स्थिरता का शुद्धता का अंश यदि न हो तो वह अंश बढ़कर यथाख्यात किस प्रकार होगा ? यह शुभयोग बढ़कर यथाख्यातचारित्र होगा ? और ज्ञान बढ़ा तो वहाँ चारित्र की शुद्धि बढ़ जायेगी ? एक गुण की पर्याय में दूसरे गुण की पर्याय बढ़े, ऐसा होता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? वहाँ सिद्ध किया है कि शुभयोग के समय शुद्ध का अंश है, परन्तु किसे उस शुद्ध के अंश का लाभ होगा ? ग्रन्थिभेद हुआ है, उसे। जिसे राग की एकता टूट गयी है, उसका शुद्ध का अंश बढ़कर यथाख्यात होगा। ज्ञान की शुद्धि ज्ञान की बढ़ाती है। ज्ञान की शुद्धि बढ़ी, इसलिए चारित्र की शुद्धि बढ़े, (ऐसा नहीं है)। एक गुण की शुद्धि में दूसरे गुण की शुद्धि बढ़े, ऐसा नहीं है। आहाहा! डाह्याभाई! मोक्षमार्गप्रकाशक में पीछे है न ? आहाहा!

परमार्थ वचनिका में बनारसीदास ने कहा कि, मैं यथार्थ सुमति प्रमाण केवलज्ञान अनुसार मैं यह कहता हूँ। आया है ? आहाहा! प्रभु! तुम सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में हो, केवलज्ञान अनुसार कहता हूँ, इतना जोर! है न उसमें ? पीछे। समझ में आया ? सुमति प्रमाण... है ? **वचनातीत, इन्द्रियातीत, ज्ञानातीत है...** ज्ञानातीत अर्थात् विकल्पवाला ज्ञान। **इसलिए यह विचार बहुत क्या लिखना ? जो ज्ञाता होगा, वह थोड़ा लिखा हुआ भी बहुत समझेगा।** थोड़ा लिखा बहुत करके जानना। **जो अज्ञानी होगा, वह यह चिट्ठी सुनेगा सही, परन्तु समझेगा नहीं। यह वचनिका जैसे है, वैसे — (यथायोग्य) — सुमतिप्रमाण केवलीवचनानुसार है।'** आहाहा! यह वचनिका यथायोग्य—मेरी योग्यता प्रमाण सुमतिप्रमाण केवली भगवान के अनुसार है, **जो जीव यह सुनेगा, समझेगा, श्रद्धा करेगा, उसे कल्याणकारी है — भाग्यप्रमाण।** पुरुषार्थ अनुसार। आहाहा! चौथे गुणस्थानवाले ऐसा कहते हैं कि मेरी यह बात केवलज्ञान वचन अनुसार है। केवलज्ञानी तो यहाँ थे नहीं। केवलज्ञानी के पास तो कुन्दकुन्दाचार्य गये थे, बनारसीदास तो गये नहीं

थे। परन्तु भगवान आत्मा के पास गये थे न! आहाहा! तो हम कहते हैं वह केवलीवचन अनुसार कहते हैं। भाई! ऐसा है न? लालचन्दभाई! डाह्याभाई! इस चिट्ठी में है। आहाहा! सन्तों की तो बलिहारी है परन्तु दिगम्बर समकिती गृहस्थों की बलिहारी है!! आहाहा!

अभी लोग इनकार करते हैं कि आचार्य के अतिरिक्त कोई नहीं। विद्वानों की बात नहीं। फूलचन्दजी कहते हैं कि हमारे विद्वान पहले हैं। आता है? खानिया चर्चा में है, खानिया चर्चा में। यह तो और वहाँ तक कहते हैं, नियमसार की टीका मुनि ने बनायी है, वह भी नहीं। क्योंकि उनकी दृष्टिप्रमाण मिलान नहीं होता, इसलिए वह नहीं। अर..र..! आचार्य का कथन होना चाहिए, ऐसा (वे) कहते हैं। अरे! भगवान! सम्यग्दृष्टि का हो या पंचम गुणस्थानवर्ती का हो, छठवेंवाले हों, वे सब केवली अनुसार ही कहते हैं। आहाहा! उसमें कुछ फेरफार नहीं है।

यहाँ यह कहते हैं, **समस्त कर्मों के उपरम से**... आहाहा! **प्रवर्तती**... देखो! परिणमन में प्रवर्तती। परिणाम में प्रवर्तती परिस्पन्दरहित क्रिया। इस शब्द में गूढ़ता है। शक्ति में तो है परन्तु **आत्मप्रदेशों की निस्पन्दता**... असंख्य प्रदेश की अकम्पता। आहाहा! मेरुपर्वत हिले तो प्रदेश हिले, कँपे। ऐसी निष्पन्दता है। आहाहा! समझ में आया? **निस्पन्दतास्वरूप (अकम्पतास्वरूप)**... अकम्पस्वरूप। निष्क्रियता अकम्पस्वरूप। चौथे गुणस्थान में भी अकम्पस्वरूप जो शक्ति है, उसका एक अंश, सर्व गुणांश में एक अंश प्रगट हुआ, ऐसा कहते हैं और ऐसा है। आहाहा! समझ में आया?

योग के अंश की तो बात ली नहीं और जितना कम्प है, कम्प, उसका अभाव लिया। निष्कम्पता द्रव्य, गुण, पर्याय में व्याप्त, वह आत्मा। अकम्प जो निष्कम्प पर्याय हुई, वह क्रमवर्ती निष्कम्पता की पर्याय और गुण अकम्प, अक्रम है, इन दो का समुदाय वह आत्मा। कम्प का समुदाय वह आत्मा—ऐसा नहीं लिया। कम्प है, कम्प है परन्तु उस कम्प का अकम्प की पर्याय में अभाव है। आहाहा! चन्दुभाई! ऐसी बात है। आहाहा! शक्ति का वर्णन..! आहाहा! उसके दृष्टि के विषय में सब शक्तियाँ आती हैं। इन शक्ति का पर्याय में अकम्पपना हुआ। आहाहा! प्रभु! शास्त्र में तो चौदहवें गुणस्थान में अयोग कहा है। तेरहवें गुणस्थान में भी अभी सयोग कम्पन कहा है। हो, कम्पन है आंशिक, हो।

यहाँ तो सम्यग्दर्शन में समस्त कर्म का अभाव है, इस कारण से निष्कम्पता की पर्याय में, कर्म का अभाव है और कर्म के निमित्त से कम्पन हुआ, उसका भी अभाव है। भाई! आहाहा! ऐसी गम्भीर (बात है)। आहाहा! ओहोहो!

मुमुक्षु : बहुत सुन्दर स्पष्टीकरण। आत्मा के समुदाय में यह नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है नहीं, भाई! आहाहा! यह दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं नहीं है और यह अन्दर घर में...

कर्म के निमित्त से कम्पन है अपनी योग्यता से। परन्तु निमित्त के सम्बन्ध से कम्पन है, उसका यहाँ अकम्प पर्याय में अभाव है। द्रव्य-गुण में तो अभाव है (परन्तु पर्याय में अभाव है)। आहाहा! ऐसी बात है। ऐसा मार्ग कहाँ है? बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : सबको निष्कम्प बना दिया, गुरुदेव!

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका स्वरूप ही निष्कम्प है। शक्ति निष्कम्प है। शक्ति, उसका सामर्थ्य अक्रियपने का सामर्थ्य है। सक्रियपना कम्पन का सामर्थ्य उसका है ही नहीं। आहाहा! कहो, धन्नालालजी! आहाहा! लो, एक शक्ति में पचास मिनिट तो हुए। पार नहीं, (इतनी) इसकी गम्भीरता है।

अकम्पशक्ति में, जो द्रव्य का अनुभव हुआ तो अकम्पपने का परिणमन हुआ, वह अकम्प कारण और कम्प कार्य, ऐसा नहीं है। और कम्प कारण तथा अकम्प कार्य, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! इसमें तो बहुत भरा है। कम्प है। शुद्धोपयोग हो, तब शुभोपयोग तो है परन्तु शुभोपयोग का यहाँ अभाव है। ऐसी बात है, भाई! कितनों को तो यह पहले-पहले सुनने को मिलता होगा। दो-तीन दिन पहले यह बात की थी।

भगवान! तेरे अनन्त गुण में एक अकम्प नाम का गुण है, तो सर्व गुण अकम्प है। आहाहा! कोई गुण कम्पते नहीं। समझ में आया? उसमें तो एक जगह ऐसा लिया है, योग का कम्पन है, उसमें धर्मास्तिकाय का निमित्त नहीं। ऐसा लिया है। क्योंकि कम्पन है, उसमें धर्मास्तिकाय का निमित्त हो तो कम्पन सदा रहे। धर्मास्तिकाय निमित्त किस प्रकार हो? कम्पन को धर्मास्तिकाय निमित्त होवे तो अकम्प स्थिरता में अधर्मास्तिकाय निमित्त होगा, वह कब होगा? स्थिरता में कभी निमित्त नहीं? क्या कहा, समझ में आया? आहाहा!

श्रोता : इसमें से यह निकलता है...

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रभु का मारग है शूरों का। 'हरि का मारग है शूरों का, अे कायर का नहीं काम जोने, प्रभु का मारग है वीरों का, कायर का नहीं काम जोने।' श्रीमद् में आता है न ?

वचनामृत वीतराग के परमशान्त रसमूल,
औषध जो भवरोग के, कायर को प्रतिकूल रे,
गुणवन्ता रे ज्ञानी अमृत वरस्या रे पंचम काल मां...

आहाहा! मुनियों ने पंचम काल में अमृत बरसाये। दिगम्बर सन्तों ने अमृत की धारा बरसायी है। आहाहा! यह एक-एक गुण में कितना भरा है अन्दर! आहाहा! यह तो यथाशक्ति क्षयोपशम हो और शक्तिप्रमाण अर्थ होता है। मुनियों का क्षयोपशम और केवलज्ञानी इसकी जो बात करे... आहाहा! अपार... अपार... नाथ! तेरी शक्ति का वर्णन..! सर्वज्ञ भगवान की दिव्यध्वनि में जब आता हो और जब तीन ज्ञान के धनी एक भवतारी इन्द्र सुनते हों... आहाहा! वह चीज़ कैसी होगी!

मुमुक्षु : अपूर्व...

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! समझ में आया ?

यह अनेकान्त सिद्ध किया। अकम्पशक्ति के परिणमन में अकम्पना आया। कम्पनना है परन्तु उसका अभाव है। यह भाव है तो उसका अभाव है, यह अनेकान्त है। व्यवहार का अभाव, कम्पपने का अभाव, यह स्याद्वाद और अनेकान्त है। समझ में आया ? कम्पपना भी है और अकम्पपना भी आत्मा में है, इससे इनकार करते हैं। आत्मा में कम्पपना है ही नहीं। आहाहा! क्योंकि ऐसा कहा न ? कि क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती का समुदाय आत्मा, ऐसा कहा। भाई! पहले ये कहा, पहले शुरुआत में। क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती का समुदाय आत्मा कहा। क्रमवर्ती अर्थात् यह निर्मल पर्याय की क्रमवर्ती की बात है। आहाहा! समझ में आया ? अक्रमवर्ती गुण तो निर्मल है ही। क्रमवर्ती पर्याय का और अक्रमवर्ती गुण का समुदाय आत्मा है। कम्पपना आत्मा का है और आत्मा में है, यह तो यहाँ लिया ही नहीं। आहाहा! पोपटभाई! ऐसा सूक्ष्म है। आहाहा!

जब समस्त कर्मों का अभाव हो जाता है... अर्थ में ऐसा लिया। **तब प्रदेशों का कम्पन मिट जाता है, इसलिए निष्क्रियत्व शक्ति भी आत्मा में है।** यह अयोगपने की सिद्धि की। यहाँ तो चौथे गुणस्थान में (सिद्ध करते हैं)। सर्व गुणांश, वह समकित कब होगा? कोई गुण बाकी रहे? निष्क्रिय गुण बाकी रहे? उसका अंश न आवे? आहाहा! **इसलिए निष्क्रियत्व शक्ति भी आत्मा में है।** देखा! निष्क्रियत्वशक्ति भी आत्मा में है। निष्क्रियत्वशक्ति का परिणमन भी आत्मा में है। निष्क्रियत्वशक्ति का परिणमन भी आत्मा में है। समझ में आया? कम्पन आत्मा में नहीं है। आहाहा! गजब बात है! अरे! यह बात कहाँ है? भाई! सर्वज्ञ के अतिरिक्त वस्तु की स्थिति की मर्यादा किसी ने जानी नहीं। आहाहा! अर्थात् तू सर्वज्ञस्वभावी भगवान सर्वज्ञशक्ति सम्पन्न है। सर्वज्ञस्वभावी आत्मा तू है। आहाहा! सर्वज्ञस्वभाव के अतिरिक्त ऐसी शक्ति का वर्णन सर्वज्ञस्वभावी ही जानता है। सर्वज्ञस्वभावी आत्मा जानता है। लो, कितनी हुई? २३, २३ हुई, लो। विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २२, शक्ति- २४ गुरुवार, (द्वितीय) श्रावण कृष्ण ४, दिनांक ०१-०९-१९७७

यह समयसार, शक्ति का अधिकार है। शक्ति का अर्थ क्या? भगवान आत्मा जो वस्तु है, वह स्वभाववान है, शक्तिवान है। उसमें गुण कहो या शक्ति कहो, एक ही बात है। एक आत्मा में, वस्तु द्रव्यरूप से एक है और शक्ति अनन्त है। गुण की संख्या अनन्त है। अनन्त का विस्तार तो किया नहीं जा सकता तथापि आचार्य ने ४७ शक्तियों का वर्णन किया। बाकी तो प्रत्येक आत्मा में सामान्यगुण भी अनन्त है। गुण कहो या शक्ति कहो। और विशेषगुण भी अनन्त हैं। इतने सब अनन्त का विस्तार करने जाये, तब तो अनन्त काल हो जाये, इतना काल तो है नहीं। आहाहा! इसलिए संक्षिप्त में ४७ शक्तियों का वर्णन किया। यह आत्मा जो अनन्त शक्ति शुद्ध और पवित्र है, उसका आश्रय करने से, शक्ति और शक्तिवान के भेद का लक्ष्य भी छोड़कर, उसमें आया है। शक्ति का भेद छोड़कर। तुमने लिखा है उसमें। शक्ति और शक्तिवान का भेद भी दृष्टि का विषय नहीं है। उसमें आया है। अठारहवाँ बोल है। अठारह, अठारह। बाईस बोल एक-एक शक्ति के ऊपर लिखे हैं। पार नहीं शक्ति का। बाईस बोल लिखे हैं।* आहाहा! आत्मा तो अनन्त-अनन्त गुण रत्नाकर का भण्डार है। शुद्ध चैतन्यस्वभाव का सागर पवित्र भगवान है। क्षेत्र भले शरीरप्रमाण हो परन्तु उसके स्वभाव की परिमितता तो है नहीं। मर्यादा है नहीं। एक-एक शक्ति अनन्त मर्यादावाली शक्ति है। ऐसी अनन्त शक्ति का रूप, वह द्रव्य कहा जाता है। वह शक्ति और शक्तिवान... समझाने में शक्ति समझना परन्तु शक्ति और शक्तिवान का भेद दृष्टि में लेना नहीं। आहाहा! तब अभेददृष्टि होती है। तब अनन्त रत्न का स्वाद, अनन्त चैतन्य की शक्ति और स्वभाव इस अनन्त शक्ति का पर्याय में स्वाद आता है। सुख का स्वाद, ज्ञानशक्ति का स्वाद, दर्शन का स्वाद, जीवत्वशक्ति का स्वाद, उसमें यह नियतप्रदेशत्वशक्ति चौबीसवीं आज चलती है, उसका भी स्वाद आता है। अनन्त शक्ति का पर्याय में स्वाद आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : स्वाद अर्थात्?

*** इस ग्रन्थ के परिशिष्ट में प्रत्येक शक्ति पर घटित होनेवाले ये बोल दिये गये हैं। साथ ही गुरुदेवश्री द्वारा ४७ शक्ति उपरान्त विभिन्न ग्रन्थों के आधार से निकाली हुई ५४ शक्तियों के नाम तथा ३७ शक्तियों पर उनके द्वारा किया गया संक्षिप्त विवेचन भी दिया गया है।**

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभव में वेदन। सेठ स्पष्ट कराते हैं। यह लहसुन का, दाल, भात का, सब्जी का स्वाद आता है, वह जड़ का स्वाद नहीं आता। उसमें तो लक्ष्य करके 'यह ठीक है' ऐसी वृत्ति उठाता है, उस राग का स्वाद है और बिच्छू काटे, उसका दुःख नहीं, उसमें अरुचि उत्पन्न करता है, वह दुःख है। उस दुःख का वेदन है, बिच्छू के डंक का वेदन नहीं। समझ में आया? क्योंकि वह तो जड़ है। जड़ का वेदन कहाँ से होगा? भगवान तो अरूपी है। मात्र अपने स्वभाव का लक्ष्य छोड़कर अनुकूल चीज़ में प्रेम उठाना और प्रतिकूल में द्वेष उठाना, इस राग-द्वेष का इसे स्वाद है। आहाहा! वीतरागी भगवान आनन्दस्वरूप का कभी एक समय भी स्वाद लिया नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह अनन्त-अनन्त शक्ति है। एक-एक शक्ति का सुख है। सुखशक्ति भिन्न है परन्तु अनन्त शक्ति में सुख का रूप है। आहाहा! क्षेत्र शरीरप्रमाण है, उस प्रमाण से उसकी शक्ति की हद और माप है, ऐसा नहीं। आहाहा! उसकी शक्ति अमाप है, अनन्त है, अपरिमित है और एक-एक शक्ति का माप भी अनन्त है। शक्ति की संख्या भी अनन्त और अमाप है। यह तो कहा था न? आकाश के प्रदेश हैं, वे लोक में असंख्य प्रदेश हैं और अलोक में अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... कहीं अन्त नहीं। ऐसे आकाश का एक परमाणु जितना क्षेत्र रोके, उसे प्रदेश कहा जाता है। ऐसे आकाश के अनन्त अमाप प्रदेश हैं। उससे भी एक जीव में अनन्तगुणे गुण हैं। आहाहा! स्वभाव है न! स्वाभाविक वस्तु है। स्वभाव को क्षेत्र की महत्ता की आवश्यकता नहीं है। उसके स्वभाव और शक्ति की महत्ता है।

यहाँ कहते हैं कि एक-एक वस्तु में अनन्त शक्ति है, उसमें यह ४७ शक्ति का वर्णन है। २३ शक्तियाँ चल गयीं। २३वीं चली न कल? कल एक घण्टे चला था। और वह प्रत्येक शक्ति अपने द्रव्य, गुण और पर्याय में व्याप्त है। कब? जब द्रव्य की दृष्टि होती है, द्रव्य का स्वीकार (होता है), चिदानन्द भगवान का जहाँ स्वीकार हुआ, सत्कार हुआ, सत्कार हुआ कि तू सत् है, ऐसी प्रतीति हुई, यह सत्कार हुआ (तब द्रव्य, गुण, पर्याय में व्याप्त हैं)। समझ में आया?

ऐसा भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त शक्ति का सागर और एक-एक शक्ति में भी अनन्त-अनन्त सामर्थ्यता और एक-एक शक्ति में भी अनन्त-अनन्त पर्याय। आहाहा!

यह अनन्त शक्ति की क्रमवर्ती उत्पाद-व्यय की पर्याय और अक्रम से (रहे हुए) अनन्त गुण, यह क्रमवर्ती पर्याय और अक्रम से वर्तते गुण के समुदाय को यहाँ आत्मा कहा जाता है। आहाहा! यहाँ विकार की बात नहीं है। समझ में आया? शक्ति का वर्णन है न? तो कोई शक्ति विकार करे, ऐसी बात नहीं है। क्रमवर्ती पर्याय में भी यहाँ विकार की बात का अभाव है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! भाई!

यहाँ चौबीसवीं शक्ति है। क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती का समुदाय, वह आत्मा। एक-एक शक्ति अनन्त शक्ति में व्यापक है। अनन्त शक्ति में एक-एक शक्ति का रूप है। एक-एक शक्ति पारिणामिकभाव से है। उसमें उदय, उपशम, क्षयोपशम नहीं। शक्ति सहज पारिणामिकभाव से है और उसका भान होकर क्रमवर्ती पर्याय होती है, वह उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक (भाव) से है। उदय नहीं। यहाँ उदय की बात ही नहीं है। आहाहा! समझ में आया? शक्ति की जो पर्याय होती है, उसमें षट्कारक का परिणमन होता है। क्योंकि द्रव्य और गुण में षट्कारक शक्तिरूप वस्तु है। तो उस शक्ति का संग्रहालय ऐसा भगवान, उसका सत्कार किया, सत्कार किया—यह है, ऐसा अनुभव में आया। यह लोग सत्कार करते हैं न? आहाहा! समझ में आया? तो पर्याय में निर्मलता प्रगट होती है, वह पर्याय में व्यापक होगा। आहाहा! अनन्त काल से शक्ति और शक्ति का स्वरूप त्रिकाल है परन्तु पर्याय में व्यापक नहीं।

जैसे आत्मा में सुख नाम की शक्ति पूर्ण है परन्तु पर्याय में सुखशक्ति का व्यापकपना, अवस्थापना अनादि से नहीं है। क्योंकि उस चीज़ का ज्ञान नहीं है, चीज़ का भान नहीं, चीज़ का स्वीकार नहीं, चीज़ का सत्कार नहीं, उस चीज़ की ओर की सन्मुखता नहीं। अरे! ऐसी बातें हैं। इससे पर्याय में, जब द्रव्य वस्तु है, उसकी दृष्टि होती है, तब पर्याय में सुख की पर्याय व्याप्य होती है। समझ में आया? यह कल कहा था, 'सर्व गुणांश, वह समकित।' जितनी शक्ति की संख्या है, उतनी संख्या में व्यक्त अंश, अनन्त शक्ति का अंश व्यक्त-प्रगट होता है। प्रगट होता है, वह आनन्द की पर्याय, अस्तित्व की पर्याय, शान्ति की पर्याय, स्वच्छता की पर्याय, प्रभुता की पर्याय, उस पर्याय को यहाँ पवित्र क्रमवर्ती कहा जाता है। समझ में आया? यह तो ध्यान रखे तो पकड़ में आये, ऐसी बात है।

आसन्सारसंहरणविस्तरणलक्षितकिञ्चिदूनचरमशरीरपरिमाणावस्थित-लोकाकाशसम्मितात्मावयवत्वलक्षणा नियतप्रदेशत्वशक्तिः।

जो अनादि संसार से लेकर संकोचविस्तार से लक्षित है और जो चरम शरीर के परिमाण से कुछ न्यून परिमाण से अवस्थित होता है ऐसा लोकाकाश के माप जितना मापवाला आत्म-अवयवत्व जिसका लक्षण है ऐसी नियतप्रदेशत्व-शक्ति। (आत्मा के लोक परिमाण असंख्य प्रदेश नियत ही हैं। वे प्रदेश संसार अवस्था में संकोचविस्तार को प्राप्त होते हैं और मोक्ष-अवस्था में चरम शरीर से कुछ कम परिमाण से स्थित रहते हैं।)।२४।

अब अपने यहाँ चौबीसवीं शक्ति लेते हैं। देखो! यह शक्ति कैसी है? नियतप्रदेशत्वशक्ति। क्या नाम है? नियतप्रदेशत्वशक्ति। चौबीसवीं। कथन में क्रम है, अन्दर वस्तु में क्रम नहीं है। वस्तु में तो एक साथ अनन्त शक्तियाँ हैं। कथन में (एक साथ) किस प्रकार आवे? कथन में क्रम पड़ता है। वस्तु में सभी शक्तियाँ अक्रम हैं। आहाहा! कहते हैं कि नियतप्रदेशत्व अर्थात् क्या? अपना देश, अपना क्षेत्र। जिस क्षेत्र में अनन्त गुण का प्रकाश उठता है। आहाहा! अपना नियतप्रदेशत्व।

यहाँ नियत क्यों कहा? नहीं तो असंख्य प्रदेश हैं, उसे व्यवहार कहा जाता है। पंचास्तिकाय की ३२ गाथा की टीका में ऐसा लिया है कि असंख्य प्रदेश नहीं, एक प्रदेश है। ऐसा पाठ लिया है। है पंचास्तिकाय? सहज ही सामने है। यह प्रश्न और यह उत्तर। गाथा यह निकली, देखो! लाईन की है। **लोकप्रमाण एक प्रदेशवाले हैं।** एक प्रदेशवाले कहने में आया है। किस अपेक्षा से, समझ में आया? यहाँ असंख्य प्रदेश को निश्चय से एकरूप लेना है। निश्चय से एक प्रदेशरूप है, ऐसा कहते हैं। यहाँ निश्चय से असंख्य प्रदेश कहेंगे। किस अपेक्षा से? यह तो निश्चय संख्या असंख्य प्रदेशी है। समझ में आया? असंख्य प्रदेश निश्चय से है। संख्या की अपेक्षा से नियत कहा है और वहाँ भेद निकालकर सब असंख्य प्रदेश एक प्रदेशरूप है। नेमचन्दभाई! आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं, बापू! यह तो भगवान के घर की बात है।

एक ओर एक प्रदेशी कहा। पण्डितजी ने पढ़ा। आहाहा! और यहाँ नियतप्रदेशत्वशक्ति

में असंख्य (प्रदेशी) कहेंगे। दोनों में विरोध है ? नहीं। वहाँ आगे एक प्रदेश एकरूप (कहा), असंख्य का भेद करना, वह व्यवहार हो गया। समझ में आया ? लो, याद आ गया। जिनेश्वरदासजी। चार बोल। २५२ कलश में है न ? २५२ कलश है, यह अपने चल गया है।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। अपना द्रव्य जो है वह एकरूप वस्तु, उसे द्रव्य कहते हैं। स्वद्रव्य कहते हैं। और यह द्रव्य है और यह गुण है, ऐसा भेद उठाना, वह परद्रव्य है। हमारे जिनेश्वरदासजी ने यह प्रश्न किया था। यह बराबर आ गया। क्या कहा ? यह वस्तु है... यह वस्तु सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं है। श्वेताम्बर में भी ऐसी बात नहीं है। अन्यमत में सर्व व्यापक वेदान्त आदि कहता है, उसमें तो कहीं है ही नहीं। आहाहा! क्या करे ? भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी को पंचास्तिकाय की ३२ गाथा की टीका में एक प्रदेशी कहा है। यह भेद पाड़े बिना एक प्रदेशरूप कहा। और यहाँ असंख्य प्रदेशरूप संख्या नियत है, इस अपेक्षा से निश्चय से असंख्य प्रदेशी कहा। समझ में आया ? समझ में आये उतना समझो भाई! यह तो भगवान का मार्ग है। आहाहा!

मुमुक्षु : दो निश्चय हुए।

पूज्य गुरुदेव श्री : वहाँ एकरूप प्रदेश कहा। असंख्य भेद है, वह व्यवहार हो जाता है। जो यहाँ कहा। २५२ कलश। सवेरे आता है न ? २५२ कलश। द्रव्य आत्मा एकरूप द्रव्य है, वह स्वद्रव्य है और उस द्रव्य में भेद से विकल्प उठाना, वह परद्रव्य है। एक बात। और भगवान आत्मा असंख्यप्रदेशी एकरूप क्षेत्र है, वह स्वक्षेत्र है। असंख्यप्रदेशी अपना एकरूप स्वरूप, उसे स्वक्षेत्र कहते हैं। और असंख्य प्रदेश में भेद डालकर विचार करना कि यह प्रदेश और यह प्रदेश और यह प्रदेश, वह परक्षेत्र है। आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ असंख्य (प्रदेश) कहेंगे। उस असंख्य का भेद से लक्ष्य करना, वह परक्षेत्र है। समझ में आया ? और तीसरी बात। आत्मा त्रिकाल है, वह स्वकाल है। भगवान आत्मा त्रिकाली चीज़ भूतार्थ-सत्यार्थ-अभेद-एकाकार, वह स्वकाल है और उसमें एक वर्तमान पर्याय का लक्ष्य भिन्न करना, वह परकाल है। आहाहा! समझ में आया ? यह तो वीतरागमार्ग है, भाई! समझ में आया ? वीतराग के सन्देश हैं। आहाहा! त्रिकाली चीज़ को स्वकाल कहना और एक समय की पर्याय अवस्थान्तर होती है, उसे परकाल कहना। परद्रव्य की

अवस्था तो परकाल है ही, परन्तु अपने एकरूप में वर्तमान पर्याय के भेद का लक्ष्य करना, उसे परकाल कहते हैं। आहाहा!

चौथा बोल। अपनी अनन्त शक्ति का पिण्ड, स्वभावरूप अनन्तशक्ति का भाव। यह शक्ति है न? तो अनन्त शक्ति की एकरूपता, वह स्वभाव है और अनन्त शक्ति में एक-एक शक्ति का भिन्न लक्ष्य करना, वह परभाव है। आहाहा! ऐसी बात। लोग जरा शान्ति से सुनें तो उनके आग्रह मिट जायें। यह कहीं कोई कल्पित बात नहीं है, प्रभु! प्रभु के प्रवाह में से आयी है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : अभेद, वह स्व और भेद, वह पर।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभेद को पकड़, भेद को छोड़ दे। अनन्त शक्ति का... यह लिया न? शक्ति और शक्तिवान का भेद भी दृष्टि का विषय नहीं है। अर्थात् भगवान प्रभु अनन्त रत्नाकर, अनन्त शक्ति के रत्न से भरपूर स्वयंभू भगवान आत्मा है। जैसे वह स्वयंभूरमण समुद्र है, वह तो असंख्य योजन में है। उसके तल में रत्न भरे हैं। परन्तु वह तो क्षेत्र से असंख्य योजन में है। यह तो क्षेत्र से असंख्य प्रदेश है परन्तु असंख्य प्रदेश में एक-एक प्रदेश में अनन्त गुणरूप रत्न भरे हैं। आहाहा! समझ में आया? तो अनन्त भावरूपी शक्ति, वह स्वभाव है परन्तु उसमें से एक लक्ष्य भिन्न करना कि यह ज्ञानशक्ति है, यह सुखशक्ति है, ऐसा भेद डालना, उसे परभाव कहते हैं। जिनेश्वरदासजी!

दूसरी बात। जो स्वद्रव्य है, वही स्वक्षेत्र है, वही स्वकाल है और वही स्वभाव है। यह चार भेद डालना... जो स्वद्रव्य कहा... भगवान आनन्द का कन्द प्रभु, अकेला अकषाय स्वभाव से भरपूर प्रभु, वीतराग स्वरूप, अमृत का पिण्ड प्रभु, वह स्वद्रव्य है। उसे स्वक्षेत्र है, जो असंख्य प्रदेश है, उसे ही क्षेत्र कहते हैं। द्रव्य भी वही और असंख्य प्रदेशी क्षेत्र भी वही। द्रव्य से भिन्न क्षेत्र है और क्षेत्र से भिन्न द्रव्य है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? और काल। त्रिकाल जो क्षेत्र है, वही द्रव्य है, वही त्रिकाल वस्तु है। समझ में आये उतना समझो, बापू! यह तो भगवान का मार्ग है। आहाहा! और अनन्त शक्ति का भाव कहा, वही अनन्त शक्तिरूप भाव है, वही द्रव्य है, वही क्षेत्र है, वही काल है और वही भाव है। भेददृष्टि छोड़कर स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव कहे, परन्तु वे चार एक ही चीज़ है। समझ में आया? आहाहा!

जैसे आम वर्णरूप भी वह है, गन्धरूप भी वह है, रसरूप भी वह है, स्पर्शरूप भी वह ही है। उसमें छिलका और गुठली की बात नहीं लेना। वह पूरी वस्तु रंगरूप भी वही है, गन्धरूप भी वही है, रसरूप भी वही है, स्पर्शरूप भी वही है। इसी प्रकार भगवान आत्मा द्रव्यरूप भी वही है अभेद; क्षेत्ररूप भी वही है; कालरूप भी वही है और भावरूप भी वही है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, **जो अनादि संसार से लेकर संकोचविस्तार से...** असंकुचितविकासत्वशक्ति गयी, वह दूसरी चीज़ है, यह दूसरी चीज़ है। असंकोचविकासशक्ति में तो यह शक्ति ऐसी है कि जिसमें संकोचता का अभाव है और विस्तारता का सद्भाव अपरिमित है। असंकोचविकास नाम की शक्ति अपने चल गयी। पूर्ण द्रव्य, पूर्ण क्षेत्र, पूर्ण काल, पूर्ण भाव इन सबका संकोच किये बिना विकासशक्ति से सबको जानता है। आहाहा! अब ऐसी बात। समझ में आया?

असंकोचविकासशक्ति। लो, उस दिन नाम लिया था न? 'विकास' का नाम लिया था। हमारे 'विकास' है न? यहाँ असंकोचविकासशक्ति। भगवान आत्मा में ऐसी एक शक्ति है कि जिसमें संकोच नहीं, परिमितता नहीं, हद नहीं और विकसित... आहाहा! अनन्त-अनन्त ज्ञान का विकास। ज्ञान में भी संकोच नहीं, ज्ञान (पूर्णरूप से) विकसित। दर्शन में संकोच नहीं, दर्शन विकसित। पूर्ण... पूर्ण विकसित। समझ में आया? आहाहा! अब ऐसी बातें। लोगों को सुनने को मिलती नहीं, इसलिए बेचारे बाहर में रुक जाते हैं। आहाहा!

यह तो अपने सवेरे चलता है या नहीं? यहाँ भी पर्याय में रुक जाये, विकल्प में रुक जाये, तब तक अनुभव नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? सवेरे यह चलता है न? मूढ़-अमूढ़ में आया न? मूढ़ तो है, वह व्यवहारनय से कहा जाता है। उसका तो निषेध करते आये हैं। भगवान मूढ़ नहीं। आहाहा! ज्ञान, आनन्द आदि अमूढ़ है। उसकी शक्ति का पार नहीं, प्रभु! स्वभाव का पार नहीं, ऐसी अमूढ़शक्ति। आहाहा! वह अमूढ़ मैं हूँ, ऐसा विकल्प भी करना, उससे तुझे क्या लाभ है? आहाहा! 'तत् किम'।

मैं अपरिमित अनन्त आनन्द का कन्द हूँ। अनन्त चैतन्यरत्न से भरपूर हूँ। मेरी वस्तु तीन लोक और तीन काल को एक समय में जाने, ऐसी पर्याय, ऐसी अनन्त पर्याय का

पिण्ड ज्ञान-रत्न पड़ा है। आहाहा! ऐसे क्षायिक समकित की पर्याय सादि-अनन्त, उन सब पर्याय का पिण्ड श्रद्धागुण में पड़ा है। ऐसे एक समय का अनन्त आनन्द जो भगवान को उत्पन्न हुआ, वह 'सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख में।' आहाहा! अनादि काल से आकुलता के वेदन में पीड़ित हो गया है, उसने भगवान आत्मा का जहाँ पता लिया, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में जहाँ उसका स्वीकार और सत्कार किया... आहाहा! तो उस पर्याय में वर्तमान में भी आनन्द आया और वह पर्याय पूर्ण आनन्द का कारण है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। यह भी व्यवहार से। बाकी तो अनन्त आनन्द जो प्रगट होगा, वह एक समय में षट्कारक की परिणति से प्रगट होगा। पूर्व का मोक्षमार्ग था, उसका व्यय हुआ और केवलज्ञान हुआ, यह तो व्यवहार की वस्तु है। उत्पाद, व्यय की अपेक्षा नहीं रखता। आहाहा! डाह्याभाई!

केवलज्ञान की पर्याय का उत्पाद, पूर्व के चार ज्ञान की पर्याय के व्यय की अपेक्षा नहीं रखता। ऐसे एक समय में केवलज्ञान की पर्याय कर्ता वह पर्याय, कार्य वह पर्याय, करण अर्थात् साधन वह पर्याय, चार ज्ञान वह साधन नहीं, यहाँ तो। आहाहा! समझ में आया? सम्प्रदान—वह पर्याय करके अपने में रखी, यह सम्प्रदान, अपनी पर्याय से पर्याय हुई, यह अपादान, पर्याय का आधार पर्याय, यह अधिकरण। यह कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण—यह षट्कारक के परिणमन से केवलज्ञान उत्पन्न होता है। आहाहा! पहले संहनन है और मनुष्यपना है, उससे केवलज्ञान प्रगट होता है, ऐसा नहीं है। और चार ज्ञान पहले थे, उनका व्यय हुआ तो केवलज्ञान हुआ, यह भी व्यवहार है।

अभाव होकर भाव हुआ, वह भाव कहाँ से आया? अभाव में से भाव आया? द्रव्य की शक्ति जो है, सर्वज्ञ और सर्वदर्शि (शक्ति) नियतप्रदेश में पड़ी है। यह शक्ति चलती है न? नियत प्रदेश जो असंख्य हैं, यहाँ प्रदेश को संख्या में नियत—निश्चित करना है। और वहाँ (पंचास्तिकाय में) उस संख्या को छोड़कर अकेले प्रदेशरूप—एकरूप कहना है। पंचास्तिकाय है न? पंचास्तिकाय—अपना अस्तिकाय सिद्ध करना है। अपना अस्तिकाय सिद्ध करना है। समझ में आया? तो उसमें पर्याय में एकरूप प्रदेश लिये। आहाहा!

यहाँ तो उसके असंख्य प्रदेश हैं, उन्हें निश्चय कहा और २५२ (कलश में) एकरूप असंख्य प्रदेश को स्वक्षेत्र कहा और उसमें संख्या यह है, यह है, यह है... उसे

परक्षेत्र कहा। बातें ऐसी बहुत सूक्ष्म हैं, बापू! आहाहा!

जिसे भगवान की भेंट करना हो, भगवान आत्मा... ! एक साधारण बड़े चक्रवर्ती के पास जाना हो तो कितनी तैयारी होनी चाहिए ? आहाहा! हमारे यहाँ जमींदार होते हैं न ? जमींदार। उसकी रानी के पास जाना हो तो साधारण लोग ऐसे खुल्ली रीति से नहीं जा सकते। कपड़े खुल्ल पड़े हों और पीछे का शरीर का भाग दिखे, ऐसे नहीं जा सकता। यहाँ ऐसा रिवाज है। होवे भले दस हजार, पच्चीस हजार की आमदनी। हमारे लीमड़ा की बात सुनी थी। कोई वाणंद जाये तो वह भेंट बाँधकर जाये। दरबार! हमारे लीमड़ा में देखा था। भेंट बाँधकर जाये। इस ओर का भाग न दिखायी दे, इस ओर का भाग दिखाई न दे, ऐसा कपड़ा बाँधकर जाये। रानी के पास जाना है। आहाहा! यहाँ तो भगवान की भेंट करना है तो बहुत कमर बाँधना चाहिए। आहाहा!

अनन्त-अनन्त पुरुषार्थ की भेंट बाँधकर भगवान की भेंट होती है। दरबार में जाना है। भगवान का दरबार! वह दरबार तो ठीक, वे तो बेचारे साधारण। यह तो अनन्त-अनन्त शक्ति का भण्डार, भगवान! बादशाह परमात्मा बादशाह, तीन लोक और तीन काल को एक समय में जाने। आहाहा! वह भी तीन लोक और तीन काल को नहीं। अपनी पर्याय में अल्पज्ञ में सर्वज्ञपना सब भासित हो जाये। ऐसे भगवान की एक समय की पर्याय की इतनी ताकत! ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड ऐसा ज्ञान। अनन्त पर्याय का पिण्ड ऐसा आनन्द। ऐसा अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञानादि अनन्त शक्ति का पिण्ड प्रभु बादशाह है। उस बादशाह के पास जाना.... आहाहा! चन्दुभाई!

मुमुक्षु : तब दर्शन दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब दर्शन दे। आहाहा! पद्मचन्दजी! यह तुम्हारे पैसे-फैसेवाले की कुछ बात भी नहीं मिलती। आहाहा! दो तो आये, तीसरे कौन थे ? भभूतमल थे। मैंने कहा, तीसरे एक थे। करोड़पति दो है, तीन थे। किसी ने पूछा था, मैंने कहा, दो याद आते हैं। पोपटभाई और शोभालाल सेठ। तीसरे कौन थे ? भभूतमलजी थे न ? भभूतमल नहीं थे ? बैंगलोर। विनती करने आये थे। मद्रास में पाँच लाख का मन्दिर हुआ है न ? इस बार जा नहीं सके। विनती करते थे कि मद्रास आओ तो चार दिन हमें देना। कहा, अभी तो बहुत समय है। भभूतमल के पास दो करोड़ है। हम वहाँ सोलह दिन रहे। उनके पास दो

करोड़ की स्टील थी। स्टील... स्टील समझे? आठ लाख खर्च किये और चालीस लाख पैदा हुए। लोग ऐसा कहते हैं। आहाहा! महाराज के लिये इतने खर्च किये (तो इतने कमाये)। आठ लाख डाले मन्दिर में, एक ही व्यक्ति ने, हों! चार लाख जुगराजजी स्थानकवासी ने डाले। सोलह दिन धन्धा बन्द रहा। दो करोड़ की स्टील पड़ी थी। भाव बढ़ गया। चालीस लाख पैदा हुए।

मुमुक्षु : गुरुदेव की लकड़ी का प्रभाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोग ऐसा कहते हैं। यहाँ तो गरीब मनुष्य बहुत हैं आजू-बाजू में।

मुमुक्षु : आप उन्हें आशीर्वाद...

पूज्य गुरुदेवश्री : आशीर्वाद... उसका भाव हो, पुण्य का भाव किया हो, उससे पुण्यबन्ध हो गया हो और पूर्व के पुण्य के साथ वर्तमान सुनने से पुण्य आता है, उस पुण्य को मिलाकर पुण्य का उदय आ गया तो मिल जाता है। यहाँ से मिलता है या उसके भाव से मिलता है? परन्तु मिले उसमें आया? चालीस लाख, हों! ...भाई! सोलह दिन में चालीस लाख बढ़ गये।

मुमुक्षु : कितना बढ़िया काम हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी सरस नहीं। आहाहा! तुम्हारे नहीं कहते? देखो! पोपटभाई बैठे हैं। इनके साला थे। पीछे बैठे हैं न? इनके साला के पास दो अरब और चालीस करोड़। इनका साल, यह उसके बहनोई हैं। डेढ़ वर्ष पहले गुजर गया। दो अरब चालीस करोड़। धूल में पाव घण्टे में मर गया। वह भी वापस मुम्बई में मर गया। उसके घर में चालीस लाख के बँगले, दस-दस लाख के दो बँगले। साठ लाख के तीन बँगले। वह मर गया वहाँ मुम्बई, उसकी पत्नी को हेमरेज (हुआ था)। हेमरेज न? दवा कराने के लिये आये थे। वहाँ स्वयं उड़ गया। पाँच मिनिट में! मुझे दुःखता है, दुःखता है। बुलाओ डॉक्टर को। डॉक्टर आवे, वहाँ भाईसाहब... जाओ, चौरासी में भटकने। अर..र..र..! भवाब्धिरूपी समुद्र में प्रवेश कर गया। अरे रे! समझ में आया? यह लक्ष्मी क्या है? शरण है? यहाँ तो राग शरण नहीं और एक समय की पर्याय भी शरण नहीं। आहाहा! भगवान

पूर्णानन्द का नाथ अभेद चैतन्यस्वरूप, वह शरण है, वह मांगलिक है, वह उत्तम है, वह शरण है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **अनादि संसार से लेकर संकोचविस्तार...** किसका? प्रदेश का। निगोद में प्रदेश संकुचित हो जाते हैं। प्रदेश कम नहीं होते, संकुचित होते हैं और हजार योजन का मच्छ हो तो विस्तार होता है। प्रदेश तो उतने ही हैं। प्रदेश का संकोच है, इसलिए घट जाये और विस्तार हो तो बढ़ जाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसे **संकोचविस्तार से लक्षित...** संकोचविस्तार से जाननेयोग्य। संसार में असंख्य प्रदेश में संकोचविस्तार होता है, वह जाननेयोग्य है। है?

और जो चरमशरीर के परिमाण से कुछ न्यून परिमाण से... अन्तिम / चरमशरीर होता है, तत्प्रमाण इनकी अवगाहना चौड़ाई रहती है। उस **परिमाण से अवस्थित...** वहाँ अवस्थित है। चरमशरीर छूट गया तो ऐसा का ऐसा सादि-अनन्त अवस्थित रहेंगे। उसमें चरम शरीर से लक्षित जाननेयोग्य, ऐसा कहा। संसार में असंख्य प्रदेश में संकोचविस्तार होता है, वह जाननेयोग्य है। क्योंकि एकरूप नहीं रहते। आहाहा! समझ में आया? जैसे यह वस्त्र है न? तो वस्त्र ऐसे संकुचित हो, तथापि वस्त्र में प्रदेश घट जाते हैं और ऐसे करे तो प्रदेश बढ़ जाते हैं, ऐसा नहीं है। प्रदेश तो जितने हैं, उतने ही हैं। ऐसे संकोच में निगोद के एक शरीर में अनन्त जीव और एक शरीर अँगुल के असंख्य भाग में... आहाहा! निगोद में एक शरीर का कद कितना? कद... कद। कद कहते हैं? कद कितना? कि अँगुल का असंख्यवाँ भाग। आहाहा! और जीव कितने? अनन्त। कितने अनन्त? कि अभी तक छह महीने आठ समय में छह सौ आठ जीव मुक्ति पाते हैं, अभी तक में अनन्त पुद्गलपरावर्तन हो गये, उन सिद्ध की संख्या से एक शरीर में अनन्त गुणें जीव हैं। आहाहा! समझ में आया? वहाँ प्रदेश का संकोच हो गया। संकोच अर्थात् वे प्रदेश जितने चौड़े हैं, वह संकोच नहीं होते। क्या कहा? जो प्रदेश जितनी चौड़ाई में है, उसमें संकोच नहीं होता। परन्तु प्रदेश बहुत हैं, वे ऐसे संकुचित होते हैं। क्या, कहा समझ में आया?

प्रदेश जितने चौड़े हैं, वे संकोच नहीं होते परन्तु असंख्य प्रदेश ऐसे चौड़े हैं, वे ऐसे संकुचित होते हैं, बस, इतना। असंख्य प्रदेश के साथ (संकुचित होते हैं)। प्रदेश स्वयं

संकोच-विस्तार नहीं पाते परन्तु प्रदेश की संख्या संकुचित हो जाती है और विस्तार हो जाती है। आहाहा! यह स्वरूप वीतराग के अतिरिक्त कहीं नहीं है। असंख्य प्रदेशी सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं है। समझ में आया? किसी शास्त्र में आत्मा के असंख्य प्रदेशी क्षेत्र की बात ही नहीं है। जाना नहीं तो बात कहाँ से होगी? आहाहा! बात सब करते हैं कि आत्मा शुद्ध है और चैतन्य है और ऐसा है, वैसा है, परन्तु उसका क्षेत्र कितना? आहाहा!

श्रीमद् ने, एक बार (एक) वेदान्ती थे... क्या नाम कहा? 'सूर्यराम त्रिपाठी' वेदान्ती थे? बहुत क्षयोपशम था। श्रीमद् ने एक बार पत्र लिखा। उनके साथ बहुत प्रेम था। अपने पदार्थ की व्याख्या चार प्रकार से कर सकते हैं। कोई भी पदार्थ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव (स्वरूप है)। ऐसी व्याख्या की। तो आत्मा में भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उतारना चाहिए। क्योंकि वे मानते थे कि एक सर्वव्यापक है और आत्मा की निश्चय की बात करे, शुद्ध है, ऐसा है और पवित्र है और निर्लेप है और... परन्तु उसका क्षेत्र? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चार से व्याख्या होती है। पत्र लिखा। तो इन चार की व्याख्या तुम करो, इतना लिखा। वह करने जाये, तब तो वेदान्त रहे नहीं। समझ में आया?

द्रव्य से एक, क्षेत्र से असंख्य प्रदेश, काल से त्रिकाली अथवा एक समय की अवस्था और भाव से अनन्त गुण। ऐसे चार भेद तो उसमें है नहीं। समझ में आया? सर्व व्यापक एक आत्मा शुद्ध चैतन्य है, अभेद है, ऐसा कहे। यह तो कथन, भाषा है। वस्तु की स्थिति कैसी है, इसकी खबर नहीं। समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, संकोचविकास। एक प्रदेश का नहीं परन्तु असंख्य प्रदेश जो हैं, वे सब ऐसे होते हैं और विकास होता है। बस! **संकोचविस्तार से लक्षित है और जो चरम शरीर के परिमाण से कुछ न्यून परिमाण से अवस्थित...** वहाँ अवस्थित रहा। संसार में तो अवस्थित न रहा। निगोद में जाये, एक हजार योजन का चौड़ा मच्छ हो, इस शरीर में लो न! बालपने में असंख्य प्रदेश इतने में थे, बड़े हुए तो इतना विस्तार हुआ। समझ में आया? बालपने में इतना था, युवावस्था में, वृद्धावस्था में प्रदेश इतने चौड़े हुए। एक प्रदेश चौड़ा नहीं हुआ, प्रदेश का विस्तार हुआ। समझ में आया? आहाहा! ऐसा कहाँ लोगों को... निवृत्त कहाँ है? भगवान क्या कहते हैं, यह वस्तु पर से किस प्रकार पृथक् पड़ती है और अपने से पर क्या कहते हैं, इसका भेदज्ञान नहीं, इसलिए खिचड़ा कर डालता है।

उसमें भी आत्मा की बात है, अमुक की बात है। धूल भी नहीं। आहाहा! डाह्याभाई! आहाहा!

कहते हैं, चरमशरीर—अन्तिम शरीर। उसके परिमाण से—प्रमाण में **कुछ न्यून...** थोड़ा कम। यह बाल है इतना छोटा। परिमाण से अर्थात् माप से **अवस्थित होता है...** वहाँ अवस्थित रहता है। **ऐसा लोकाकाश के माप जितना...** अब संख्या से कितने हैं? लोकाकाश में जो असंख्य प्रदेश हैं, उतने एक जीव के प्रदेश हैं। लोकाकाश में आकाश के असंख्य प्रदेश की जितनी संख्या है, धर्मास्तिकाय के भी जितने असंख्य प्रदेश हैं, अधर्मास्तिकाय की भी जितनी (प्रदेश) संख्या है, उतनी एक जीव के प्रदेश की संख्या लोकाकाश प्रमाण असंख्यप्रदेश है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसी बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं होती। बातें भले की हों। श्वेताम्बर में भी अन्तर है। यह जो प्रदेश कहते हैं, ऐसे प्रदेश की संख्या का माप उसमें है ही नहीं। यहाँ पुस्तक है, उसमें स्वीकार किया है कि अपने ३४३ राजूप्रमाण लोक कहते हैं तो इतने प्रदेश को मूल माप करने जायें तो अपने जो ३४३ राजू कहते हैं, तत्प्रमाण मिलान नहीं होता। यहाँ एक पुस्तक है। श्वेताम्बर पुस्तक है न? भाई! देखा है। ३४३ राजू कहते हैं न? उसमें जितने हैं, वह अपने कहते हैं, वह मिलान नहीं खाता। और दिगम्बर लोग कहते हैं तत्प्रमाण मिलान खाता है। एक जीव के असंख्य प्रदेश में भी उनके कथन में अन्तर है। क्योंकि लोकाकाश में अन्तर है तो एक जीव के (प्रदेश में भी अन्तर आनेवाला है)। श्वेताम्बर में भी अन्तर है तो अन्यमति की तो बात क्या करना? आहाहा! भारी सूक्ष्म, भाई!

यहाँ यह कहा, **ऐसा लोकाकाश के माप...** माप (अर्थात्) प्रमाण, हों! लोकाकाश प्रमाण होना, ऐसा नहीं। वह तो किसी समय केवलज्ञानसमुद्घात में हो और किसी को न भी हो, परन्तु उसकी संख्या कितनी? लोकाकाशप्रमाण माप। बस इतना। लोकाकाश–प्रमाण व्याप्त हो, ऐसा नहीं। समझ में आया? **लोकाकाश के माप जितना मापवाला आत्म–अवयवत्व...** आहाहा! आत्मा अवयवी और प्रदेश अवयव। जैसे यह शरीर अवयवी है, हाथ, पैर, अँगुली अवयव है; उसी प्रकार भगवान आत्मा अखण्ड एकरूप अवयवी और प्रदेश उसके अवयव हैं। आहाहा!

जैसे श्रुतज्ञान प्रमाण अवयवी है और निश्चय–व्यवहारनय अवयव हैं। समझ में

आया ? श्रुतज्ञान प्रमाण में आत्मा का जो अनुभव हुआ, तो उस श्रुतज्ञान की पर्याय को प्रमाण कहते हैं और प्रमाण में दो भेद पाड़ना, वह अवयवी के अवयव हैं। अवयवी है तो पर्याय, भावश्रुत की पर्याय भी है पर्याय, परन्तु उस पर्याय को अखण्ड कहकर अवयवी कहना और नय में निश्चय और व्यवहार दो भाग पड़े, उसे अवयव कहना। आहाहा! समझ में आया ? इसी प्रकार भगवान आत्मा एक है, असंख्य प्रदेश उसके अवयव हैं। आहाहा! यह अँगुली, हाथ अवयव है, यह इसके नहीं, यह तो जड़ के हैं। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! बहुत डाला है। इस शरीर के अवयव भी अपने हैं। आँख के, पैर के, कान के... धूल में भी नहीं, वह तो पर है। तेरे अवयव तो असंख्य प्रदेश, वे तेरे अवयव हैं।

असंख्य प्रदेश के धाम में अनन्त गुण के धाम का प्रकाश उठता है। वह तेरा देश— असंख्य प्रदेश ऐसे हैं कि प्रदेश-प्रदेश में अनन्त गुण व्यापक हैं। एक प्रदेश में दूसरे प्रदेश का अभाव है। ऐसा तिर्यक्प्रचय कहना, परन्तु एक प्रदेश में जो गुण है, उतने ही दूसरे में है, वे सर्व गुण में व्यापक है। क्या कहा, समझ में आया ? ९९ गाथा में है, ९९ प्रवचनसार। तिर्यक्प्रचय। एक प्रदेश है, उसमें दूसरे प्रदेश का अभाव है तो असंख्य प्रदेश सिद्ध होते हैं, नहीं तो सिद्ध नहीं होते। परन्तु एक प्रदेश में जो गुण अनन्त हैं, वे एक ही प्रदेश में हैं, ऐसा नहीं है। वे अनन्त गुण असंख्य प्रदेश में व्यापक है। समझ में आया ? प्रदेश सिद्ध करना हो तो एक प्रदेश का दूसरे प्रदेश में अभाव है। तो असंख्य सिद्ध होंगे। एक प्रदेश में दूसरे प्रदेश हों तो असंख्य सिद्ध कहाँ से होंगे ? न्याय समझ में आता है ? एक प्रदेश में जो अनन्त गुण हैं, वे ही गुण दूसरे प्रदेश में हैं और वे ही गुण तीसरे प्रदेश में हैं और वे ही गुण असंख्य प्रदेश में हैं। कहो, धन्नालालजी! यह सर्राफ का धन्धा है। आहाहा!

अरे! जिसे खबर भी नहीं कि आत्मा असंख्य प्रदेश वह अवयव है। भगवान अवयवी और उसके अवयव यह हैं। जैसे शरीर अवयवी है और बीस अँगुलियाँ हाथ की और पैर की, हाथ, पैर सब उसके अवयव कहलाते हैं, उसके भाग हैं। एकरूप वस्तु के ये भाग हैं। वैसे भगवान आत्मा द्रव्यरूप से एक है और असंख्य प्रदेश उसके अवयव हैं। यह अँगुली और हाथ, पैर उसके अवयव नहीं हैं, वे तो जड़ के हैं। आहाहा! और अवयव अवयव में अनन्त गुण व्यापक हैं। असंख्य प्रदेश हैं तो असंख्यवें भाग में एक प्रदेश आया, तो अनन्त गुण का अनन्तवाँ भाग में अनन्त गुण का अनन्तवाँ भाग एक प्रदेश में है, ऐसा

नहीं है। समझ में आया ? आहाहा! यह तो गुण का पाटला बड़ा! सोने का पाटला होता है न ? पाटला समझते हो ? सोना... सोना। सोने का लट्ठ होता है न ? लट्ठ। वैसे अनन्त गुण की लट्ठ एक समय में है। आहाहा! अरे! कभी घर का विचार किया नहीं। पोपटभाई! और पर घर की लगायी है। आहाहा! अर र! मेरा घर क्या ? और मेरे घर का क्षेत्र क्या ? और मेरे क्षेत्र में गुण क्या ? और उन गुण की पर्याय क्या ? आहाहा! समझ में आया ?

निश्चय से तो असंख्य प्रदेश में जो निर्मल पर्याय (होती है)... यहाँ निर्मल की बात है, हों! मलिन की बात नहीं। असंकोचविकास में भी शक्ति है। मलिनपना है, उसका तो उसमें अभाव है। आहाहा! क्या कहा यह ? असंख्य प्रदेशी नियत, ऐसा कहा न ? नियत कहा न ? आहाहा! जिसका लक्षण, अवयव जिसका लक्षण है, ऐसी नियतप्रदेशत्वशक्ति। निश्चयप्रदेशत्वशक्ति। नियत अर्थात् निश्चयप्रदेशत्वशक्ति। इसका अर्थ, जो प्रदेश है, वह निश्चय असंख्य ही है, ऐसा सिद्ध करना है। और पंचास्तिकाय में जो लिया, अभी पढ़ा, वह एकरूप प्रदेश, भेद नहीं। वहाँ अस्तिकाय सिद्ध करना है। अस्ति एकरूप है। समझ में आया ? असंख्य प्रदेश की अस्ति एकरूप है और यहाँ शक्ति के वर्णन में असंख्य प्रदेश नियत (कहा), यह प्रदेश की संख्या नियत है। समझ में आया ?

निजघर द्रव्य, निजघर का क्षेत्र, निजघर का काल, निजघर का भाव, यह चारों एक ही वस्तु है। निजघर का द्रव्य अलग, निजघर का क्षेत्र अलग, ऐसा नहीं है। जितने में द्रव्य है, उतने में क्षेत्र है, उतने में काल है, उतने में भाव है। आहाहा! भेद की दृष्टि छोड़कर... आया न, २५२ में ? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का भेद, अपनी पर्याय को भी वहाँ परकाल कहा। आहाहा! और अपने असंख्य प्रदेश में भी यह क्षेत्र यह है और यह है, ऐसा विकल्प उठाना, वह परक्षेत्र है। आहाहा! और त्रिकाली भगवान स्वकाल में है, उसका एक समय की पर्याय का लक्ष्य करना, वह परकाल है। और परकाल की स्वकाल में नास्ति है। आहाहा! अनेकान्त।

जैसे परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। परद्रव्य के क्षेत्र, काल, भाव की अस्ति उसमें है, परन्तु वह परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की नास्ति आत्मा में है। उसका इसमें अभाव है। समझ में आया ? यह तो स्थूल लिया। यहाँ तो त्रिकाली भगवान, त्रिकाली वस्तु स्वकाल त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल, यह स्वकाल। एक समय की निर्मल

पर्याय, वह परभाव। नियमसार में तो एक समय की निर्मल पर्याय को परद्रव्य कहा है। ५० गाथा। समझ में आया? नियमसार। आहाहा! तत्त्वज्ञान बहुत सूक्ष्म, भाई!

मुमुक्षु : किसी जगह ऐसा और किसी जगह ऐसा...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं, किसी जगह कुछ (कहा है)। क्या अपेक्षा है, यह समझना चाहिए न!

मुमुक्षु : गुरुगम बिना नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं... आहाहा! अब कोष्ठक। नियतप्रदेशत्वशक्ति ली न? निजक्षेत्र। उस क्षेत्र में से तो आनन्द पकता है। ऐसे निज प्रदेश हैं। समझ में आया? कुलथी का क्षेत्र भिन्न होता है और चावल पके, उसका क्षेत्र भिन्न होता है। जिस क्षेत्र में कुलथी पके, वहाँ चावल नहीं पकते। यहाँ से 'जिथरी' में जमीन है, वहाँ कुलथी पके। कुलथी समझे? इतनी होती है। नहीं समझ में आया?

मुमुक्षु : हमारे यहाँ नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, सर्वत्र होती है। कुलथी... कुलथी। उसकी सब्जी बनाते हैं। लाखों मण यहाँ पकती है और चावल भिन्न (क्षेत्र में) पकते हैं। उसी प्रकार यह भगवान तो असंख्य प्रदेशी नियत क्षेत्र में पवित्रता पके, ऐसा वह क्षेत्र है। उसमें अपवित्रता पके, ऐसा वह क्षेत्र है ही नहीं। आहाहा! कोष्ठक में है।

(आत्मा के लोकपरिमाण असंख्य प्रदेश नियत ही हैं।) नियत, देखा? नियत ही है। संख्या की अपेक्षा से **(वे प्रदेश संसार अवस्था में संकोचविस्तार को प्राप्त होते हैं और मोक्ष-अवस्था में चरमशरीर से कुछ कम परिमाण से स्थित रहते हैं।)** इस प्रकार वस्तु का स्वरूप है। लो, आज भी एक घण्टे चला।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २३, शक्ति- २४ से २६ शुक्रवार, (द्वितीय) श्रावण कृष्ण ५, दिनांक ०२-०९-१९७७

यह समयसार शक्ति का अधिकार है। शक्ति अर्थात् आत्मा के गुण। गुणी भगवान आत्मा है और उसमें यह शक्ति—रत्न अनन्त शक्ति के रत्न से भरपूर रत्नाकर भगवान आत्मा है। उसमें शक्ति के वर्णन में शक्ति का ज्ञान करना। जानने में यह शक्ति और यह शक्तिवान, ऐसा ज्ञान करना परन्तु श्रद्धा में तो शक्ति और शक्तिवान का भेद छोड़कर अभेद शक्तिवान की दृष्टि (करना)। इससे सम्यग्दर्शनरूपी रत्न... त्रिरत्न कहते हैं या नहीं? रत्नत्रय, मोक्ष के मार्ग को रत्नत्रय कहते हैं न? रत्नत्रय कैसे प्रगट होता है? कि जो आत्मा वस्तु है, उसमें अनन्त शक्तिरूप रत्न से भरपूर भण्डार है। आहाहा! ऐसे शक्तिवान पर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शनरूपी रत्न प्रगट होता है।

द्रव्य-रत्न, गुण-रत्न, पर्याय में रत्न प्रगट होता है। आहाहा! समझ में आया? चाहे जितना कम-ज्यादा जानपना हो, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! और वर्तन में कदाचित् चारित्र—स्वरूप की रमणता न हो परन्तु इस वस्तु की दृष्टि में एकरूप दृष्टि करना, उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रत्नत्रय प्रगट होता है और इस रत्नत्रय का फल अनन्त ज्ञान, दर्शन, यह रत्नत्रय का फल है, वह तो महारत्न है। जब पर्याय रत्न है और फल रत्न है तो उसका कारण द्रव्य-गुण तो महारत्न है। समझ में आया? आहाहा! यह शक्ति का वर्णन साधारण बात नहीं है। अलौकिक वर्णन है।

यह चौबीसवीं शक्ति फिर से लेते हैं। रामजीभाई ने यह कहा, फिर से लेना। तेईस तो चली। चौबीसवीं शक्ति है तो नित्य ध्रुव परन्तु कैसी? **अनादि संसार से लेकर...** ओहोहो! निगोद से लेकर, अनादि संसार निगोद से लेकर **संकोचविस्तार से लक्षित...** असंख्य प्रदेश हैं, वे संकोच होते हैं और विस्तार होते हैं। संख्या इतनी की इतनी रहती है। और एक-एक प्रदेश संकोचविस्तार पाता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? मात्र संकोचविस्तार का अर्थ इतना कि एक परमाणु रोके उतना प्रदेश है, उसमें दूसरा प्रदेश आ जाता है, इसका नाम संकोच है और असंख्य प्रदेश का जो विकास होता है, लोकप्रमाण हो, या एक हजार योजन के मच्छ हों, तत्प्रमाण असंख्य प्रदेश व्यापक हों, परन्तु है तो असंख्य। उनमें घट-बढ़ नहीं होती। एक बात।

इन असंख्य प्रदेश को पंचास्तिकाय में तो एक प्रदेश ही कहा है। बत्तीसवीं गाथा की टीका में है। पंचास्तिकाय है यहाँ? कल बताया था न? पण्डितजी को बताया था। पृष्ठ ही वह निकला था। असंख्य प्रदेश, यह भेद से कथन है और असंख्य प्रदेश का एकरूप, वह अभेद कथन है। आहाहा! ऐसे एक प्रदेशरूप, असंख्य प्रदेश को एक प्रदेश कहा। यहाँ असंख्य प्रदेश को नियत—निश्चय कहा। नियत प्रदेश (शब्द) कहा है न? क्यों? कि संख्या से असंख्य हैं, वह निश्चय है, ऐसा कहना है। और असंख्य प्रदेश को एकरूप करके एक प्रदेश कहना और असंख्य प्रदेश को भेद करके व्यवहार कहना। समझ में आया? अभी यह बात नहीं है। अभी तो असंख्य प्रदेश है, वे निश्चय से हैं। समझ में आया?

यह प्रश्न तो बहुत समय पहले उठा था। अमरेली जाते थे। वहाँ एक रामजी हंसराज थे। थे न? करोड़पति है। उनके पिताजी थे। वे काशी पढ़ने गये थे। बुद्धि साधारण थी। उन्होंने प्रश्न किया था। लगभग (संवत्) १९७८ का वर्ष होगा। १९७८। स्वागत में सामने आये थे। रास्ते में प्रश्न उठा था कि यह प्रदेश है, वह कल्पना से है। भाई! हंसराजभाई ने ऐसा कहा। आकाश के प्रदेश अनन्त, जीव के असंख्य, यह तो कल्पना है। मैंने कहा, कल्पना नहीं। यह तो १९७८ की बात है। तुम्हारे जन्म से पहले। बाईस और तैंतीस, पचपन हुए न? अमरेली जाते थे। एक वरसरा गाँव है। चलकर जाते थे न? वरसरा से वहाँ जाते थे। रास्ते में लोग लेने आवे न? उसमें यह प्रश्न उठा। रेल की पटरियाँ हैं न? उसमें यह प्रश्न उठा कि यह जो प्रदेश कहे जाते हैं, वह कल्पना है। प्रदेश-ब्रदेश नहीं। ऐसा नहीं है, यह यहाँ सिद्ध करते हैं।

असंख्य प्रदेश नियत है, निश्चय से है। समझ में आया? संख्या के निश्चय को नियत लागू पड़ता है। फिर उन्हें एकरूप कहना और भेद से असंख्य का विचार करना, यह और व्यवहारनय हो गया। यहाँ तो असंख्य प्रदेश संख्या से नियत है। उचित रीति से है, यथार्थ रीति से है। आकाश के अनन्त प्रदेश हैं, वैसे जीव के असंख्य प्रदेश यथार्थ हैं।

कहते हैं, **संसार से लेकर संकोचविस्तार से लक्षित...** संकोचविस्तार से ज्ञात हो ऐसा। है न? **और जो चरमशरीर के परिमाण से कुछ न्यून...** अन्तिम शरीर मुक्त होने का है तो शरीरप्रमाण आत्मप्रदेश रहते हैं। सिद्ध में भी शरीरप्रमाण आत्मप्रदेश रहते हैं। शरीर के कारण से नहीं। अपनी योग्यता से अन्तिम शरीरप्रमाण आत्मप्रदेश का रहना, वह

अपना स्वभाव है। कहते हैं कि **चरमशरीर के परिमाण से...** परिमाण अर्थात् माप। चरमशरीर के माप से किंचित् न्यून। चरमशरीर का जो माप है, चरमशरीर का माप, उससे थोड़ा न्यून। समझ में आया? **कुछ न्यून परिमाण से...** न्यून माप से। **अवस्थित होता है...** पश्चात् असंख्य प्रदेश चरमशरीर परिमाण से स्थित रहते हैं। सादि-अनन्त ऐसे के ऐसे रहते हैं। सिद्ध में अन्तिम शरीर से थोड़े न्यून सादि-अनन्त रहते हैं, उन्हें अवस्थित कहा। संकोचविस्तार को लक्षित कहा। आहाहा!

संकोचविस्तार होता है, वह जाननेयोग्य है, पश्चात् सादि-अनन्त असंख्य प्रदेश अवस्थित रहते हैं। फिर कुछ फेरफार नहीं होता। उसे वहाँ अवस्थित कहा। **अवस्थित होता है ऐसा लोकाकाश के माप...** आहाहा! लोक के आकाश प्रमाण जिनका माप है, (उसके) जितने मापवाला आत्म अवयव है। भगवान आत्मा अवयवी है, तब वे प्रदेश उसके अवयव हैं। जैसे शरीर, वह अवयवी है तो हाथ की, पैर की अँगुलियाँ, हाथ, पैर वे अवयव हैं। समझ में आया? ऐसी वस्तु अवयवी है उसके असंख्य प्रदेश उसके अवयव हैं। यह अंग उसके अवयव नहीं। समझ में आया? यह तो मिट्टी के-धूल के अवयव हैं। उसके अवयव तो असंख्य प्रदेश, वे उसके अवयव हैं। और एक-एक प्रदेश में अनन्त गुण व्यापक है।

मुमुक्षु : एक-एक प्रदेश में पूरा-पूरा गुण?

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा नहीं, व्यापक कहा। एक-एक गुण असंख्य में व्यापक है। एक प्रदेश में पूरा गुण है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : असंख्य प्रदेश में पूरा गुण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : असंख्य प्रदेश में पूरा गुण है। और एक प्रदेश में प्रदेश पूरा है। एक प्रदेश में दूसरे प्रदेश का अभाव है। वैसे एक प्रदेश में जो गुण है, उसका दूसरे गुण में अभाव है, ऐसा नहीं। क्या कहा?

मुमुक्षु : एक गुण में दूसरे गुण का अभाव नहीं, प्रदेश में अभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रदेश में अभाव है। ९९ गाथा में ऐसा लिया है। असंख्य प्रदेश उसका स्वरूप है परन्तु वे तिरछे हैं। एक प्रदेश दूसरे प्रदेशरूप है और दूसरा प्रदेश तीसरे

रूप है, ऐसा नहीं है। एक प्रदेश में दूसरे प्रदेश का अभाव है, तब असंख्य सिद्ध होंगे। परन्तु एक प्रदेश में जो ज्ञानादि गुण अनन्त हैं, वे एक ही प्रदेश में है, ऐसा नहीं है। असंख्य प्रदेश में तिरछे व्यापक हैं। आता है न? सामान्य समुदाय। प्रवचनसार में आता है, सामान्य समुदाय। और उस गुण की आकृति की जो व्यंजनपर्याय है... व्यंजनपर्याय और नयी बात आयी। प्रदेश की आकृति की व्यंजनपर्याय, वह संसार में संकोचविस्ताररूप व्यंजनपर्याय है और अन्त में चरमशरीर प्रमाण व्यंजनपर्याय है। द्रव्य के प्रदेश की पर्याय को व्यंजनपर्याय कहते हैं और उसमें दूसरे अनन्त गुण हैं, उनकी पर्याय को अर्थपर्याय कहते हैं। अरे! ऐसी बात। समझ में आया?

मुमुक्षु : गुणों में व्यंजनपर्याय...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, है। परन्तु द्रव्य के प्रदेश को ही व्यंजनपर्याय कहते हैं और प्रदेश में जो अनन्त गुण हैं, उनकी पर्याय को अर्थपर्याय कहते हैं।

यहाँ दूसरी बात कहना है कि व्यंजनपर्याय का आयत जो क्रमसर होता है, और अक्रम जो गुण हैं, वे व्यंजनपर्याय और अर्थपर्याय की क्रमवर्ती पर्याय और अक्रमवर्ती गुण, इन दो के समुदाय को यहाँ आत्मा कहा जाता है। एक बात (हुई)।

दूसरी बात। उसमें जो... क्रिया में आ गया है। प्रदेश में जितना कम्पन आदि है, उस कम्पन का यहाँ अभाव लेना है। यह निष्क्रिय में आ गया। निष्क्रियशक्ति अनन्त गुण में व्यापक है। धन्नालालजी! आहाहा! तो यहाँ यह भी जो असंख्य प्रदेश की व्यंजनपर्याय है, उसमें भी निष्क्रियता है। वे प्रदेश स्थिर हो गये। समझ में आया? और जितनी उसमें अस्थिरता है, उसका उनमें अभाव है। यहाँ व्यंजनपर्याय की मलिनता नहीं लेनी है। निर्मल पर्याय लेनी है। आहाहा! ऐसा मार्ग। समझ में आया?

कहते हैं कि आत्मा की नियतप्रदेशत्वशक्ति। निश्चयप्रदेशशक्ति। आहाहा! और इस शक्ति का रूप तो अनन्त गुण में भी है। समझ में आया? आहा! दीपचन्दजी ने बहुत विस्तार किया है। सवैया में बहुत विस्तार किया है। समझे? सवैया है न? अध्यात्म पंचसंग्रह। उसमें पाँच (ग्रन्थ हैं)। यह अध्यात्म पंचसंग्रह है, उसमें पाँच है न? ज्ञानदर्पण, स्वरूपानन्द, उपदेश सिद्धान्त रत्न, सवैया, (परमात्मापुराण)। इस सवैया में इसका बहुत विस्तार किया

है, बहुत। यह झट साधारण सभा को समझ में नहीं आता। नट और थट और रूप और भाव और बहुत लिया है। सवैया है न? सवैया। देखो!

'गुण एक-एक जाके परजे अनन्त करे, परजे में नंत नृत्य नाना विसतस्यो है।' क्योंकि एक-एक पर्याय में ज्ञान की पर्याय द्रव्य को जाने, गुण को जाने, पर्याय को जाने— ऐसी एक समय में अनन्त गुण की पर्याय द्रव्य को जाने, ऐसी ज्ञान की पर्याय का नृत्य होता है। समझ में आया? **नृत्य में अनन्त थट...** एक पर्याय में नृत्य अनन्त और उसमें अनन्त (थट)। सामान्य-विशेष वस्तु का भी ज्ञान, संकोचविस्तार का ज्ञान, अवस्थित है उसका ज्ञान, अनन्त गुण का ज्ञान, अनन्त पर्याय का ज्ञान, एक पर्याय में नट में थट है। लम्बी बात है। उसमें अनन्त कला है। उसमें भी एक-एक पर्याय के अनन्त भाग में नृत्य और उसके अनन्त भाग में थट, थट में अनन्त कला है। कला में अन्दर भाग होता है। उसका विस्तार किया जाये परन्तु वह सूक्ष्म बहुत है। यह तो एकदम संक्षिप्त शब्दों में (कहते हैं)।

कला में अखण्डित अनन्त रूप धस्यो है। पर्याय में ज्ञान की पर्याय सबको जाने, यह नृत्य हुआ। इस नृत्य में, एक समय की पर्याय में अनन्त-अनन्त गुण और अनन्त पर्याय के थट जानती है। और इस थट में एक-एक पर्याय की कला है और कला में अखण्डित अनन्त रूप है।

रूप में अनन्त सत् सत्ता में अनन्त भाव, भाव को लखावहु अनन्त रस भस्यो है। रस के स्वभाव में प्रभाव है अनन्त 'दीप' सहज अनन्त यो अनन्त लगि कस्यो है। पश्चात् व्याख्या की है। पहले भी पढ़ा है न? आहाहा! दीपचन्दजी का क्षयोपशम, सम्यग्दर्शनसहित क्षयोपशम बहुत था। समझ में आया? स्वसंवेदनसहित क्षयोपशम बहुत था। परन्तु लिखते हैं ऐसा दीपचन्दजी साधर्मी, ऐसा लिखते हैं। परन्तु उनकी क्षयोपशम शक्ति बहुत थी। लगभग दो सौ वर्ष पहले हो गये। श्रीमद् हुए तो श्रीमद् का क्षयोपशम उस समय बहुत था। परन्तु बाहर में स्पष्टीकरण बहुत नहीं किया। बाकी उनका क्षयोपशम बहुत था और इन्होंने तो बाहर में स्पष्टीकरण किया। एक-एक गुण और एक-एक पर्याय, एक-एक पर्याय में अनन्त नट, थट, रूप, भाव और प्रभाव... दरबार भरा है। समझ में आया? दरबार के निधान में विशाल भण्डार होते हैं न? हीरा-माणिक के बड़े भण्डार होते हैं। बड़े राजा चक्रवर्ती के भण्डार में नव निधान होते हैं। उसके एक-एक निधान की एक-एक

देव सेवा करे। निधान में तो बहुत चीज़ भरी है।

उसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त रत्नाकर से भरपूर सागर / समुद्र है। आहाहा! उससे ऊँची चीज़ जगत में कोई है नहीं। समझ में आया? ऐसे आत्मा के प्रदेश... है? **आत्मा के लोक परिमाण असंख्य प्रदेश नियत ही हैं।** निश्चय से असंख्य है, कल्पना से है, ऐसा नहीं। आहाहा! **वे प्रदेश संसार अवस्था में संकोचविस्तार को प्राप्त होते हैं और मोक्ष-अवस्था में चरमशरीर से कुछ कम परिमाण से स्थित रहते हैं।** यह चौबीसवीं शक्ति (हुई)। समझ में आया? कल तो एक घण्टे चली थी। आवे, वह आवे न! आहाहा!

एक-एक प्रदेश में अनन्त गुण भरे हैं। असंख्य प्रदेश में व्यापक है। आहाहा! और एक-एक गुण में अनन्त सामर्थ्य भरी है। एक-एक शक्ति में अनन्त प्रभुता भरी है। यह नियतप्रदेशत्वशक्ति में भी अनन्त प्रभुता है और दूसरी एक बात याद आयी। असंख्य नियत प्रदेश भगवान के हैं, उसमें सर्वज्ञ और सर्वदर्शि के निधान भरे हैं। अपने देश में निधान है। आहाहा! डाह्याभाई! ऐसा है जरा।

असंख्य प्रदेश स्वदेश है। उसमें सर्वज्ञ और सर्वदर्शि (शक्ति) परिपूर्ण भरी है। आहाहा! सर्वज्ञ और सर्वदर्शि, ऐसी शक्ति परिपूर्ण स्वदेश में असंख्य प्रदेश में व्यापक है। आहाहा! वह सर्वज्ञस्वरूपी ही भगवान है और सर्वदर्शिस्वरूपी भगवान है। आहाहा! यह सर्वज्ञ और सर्वदर्शि जब एक समय की पर्याय में प्रगट होता है तो सर्वदर्शिशक्ति एक समय की पर्याय में सब सामान्यरूप से देखती है। भेद पाड़े बिना, विशेष किये बिना सामान्य जो सत् है, उसे देखती है और उसी समय केवलज्ञान की पर्याय एक-एक द्रव्य के भिन्न गुण, गुण की भिन्न पर्याय, पर्याय के भिन्न अविभागप्रतिच्छेद, उसमें नट और थट सब है। सबको ज्ञान की-केवलज्ञान की एक समय की पर्याय एक समय में जानती है। उसी समय में दर्शन भेद पाड़े बिना देखता है और उसी समय ज्ञान की पर्याय सबको भेद करके जानती है। उसे यहाँ परमात्मपुराण में अद्‌भुतरस में लिया है। समझ में आया? अद्‌भुतरस की व्याख्या करते हुए यह लिया है। अद्‌भुत तो देखो! आहाहा!

भगवान आत्मा असंख्य प्रदेश में सर्वदर्शि और सर्वज्ञशक्ति जब शक्ति में से व्यक्ति प्रगट होती है तो एक समय में सर्व को भेद पाड़े बिना देखे और सबको भेद पाड़कर जाने।

एक समय में दो शक्ति और दोनों के लक्षण भिन्न। समझ में आया? उसमें है परन्तु अब याद (आना चाहिए न)। उस दिन निकला, ऐसा कहीं कभी समय निकले? अद्‌भुतरस में है। नव रस आये, लो!

अद्‌भुतरस कहिये हैं– देखो आया? पृष्ठ ५२, **अद्‌भुत सत्ता में ऐसी है...** अद्‌भुतता सत्ता में ऐसी है, भगवान आत्मा की सत्ता, उसकी सत्ता में अद्‌भुतता ऐसी है **साकार ज्ञान है, निराकार दर्शन है, दोऊ की सत्ता एक है।** एक समय में है। **यह अद्‌भुत भावरस है।** अद्‌भुत की व्याख्या। यह अद्‌भुत भावरस है। पण्डितजी को बताया। है अद्‌भुतरस? साकार ज्ञान है। एक समय में साकार सबका भेद पाड़-पाड़कर जाने। साकार का अर्थ आकार नहीं। साकार का अर्थ स्व-पर अर्थ का भेद करके जितने भेद हैं, उन्हें उस प्रमाण जाने, उसे साकार कहते हैं। ज्ञान को साकार, पर के आकार होते हैं, इसलिए उसे साकार कहा जाता है, ऐसा नहीं है। यह तत्त्वार्थसार में है। अमृतचन्द्राचार्य का तत्त्वार्थसार है न? उसमें यह बोल है। ज्ञान को साकार इस कारण से नहीं कहा कि उसमें पर का आकार पड़े, झलक पड़े, इसलिए साकार है, ऐसी बात नहीं है। परन्तु ज्ञान का स्व-पर अर्थ का प्रकाशक स्वभाव है, उस स्व-पर को जानना, वह साकार है। साकार में विकल्प है परन्तु ज्ञान का विकल्प है। स्व-पर का वह विकल्प है, राग नहीं। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म तत्त्व। यहाँ यह कहते हैं, नियतप्रदेशत्वशक्ति उसमें है। यह चौबीस (शक्ति पूरी) हुई। पच्चीसवीं।

सर्वशरीरैकस्वरूपात्मिका स्वधर्मव्यापकत्वशक्तिः।

सर्व शरीरों में एकस्वरूपात्मक ऐसी स्वधर्मव्यापकत्वशक्ति। (शरीर के धर्मरूप न होकर अपने अपने धर्मों में व्यापनेरूप शक्ति सो स्वधर्मव्यापकत्वशक्ति है।)।२५।

सर्व शरीरों में एकस्वरूपात्मक... आहाहा! क्या कहते हैं? निगोद से लेकर चरमशरीर अन्तिम, उसमें सर्व शरीरों में... सर्व शरीर आये न? निगोद से लेकर चरमशरीर, ये जितने शरीर हैं, उनमें **एकस्वरूपात्मक...** उसमें स्वरूप तो एकस्वरूप ही है। इस शरीर में व्यापता है, राग में व्यापता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्या कहते हैं? अनन्त शरीर

में शरीर की पर्याय प्रमाण आकारादि हो, तथापि शरीर में वह पर्याय व्यापक नहीं है। शरीर की अवस्था व्याप्य और आत्मा व्यापक, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? अपने अनन्त गुण व्यापक होकर पर्याय व्याप्य (होती है)। निर्मल पर्याय की यहाँ बात है, मलिन की बात नहीं। शरीर में तो व्यापक नहीं, व्याप्य नहीं, परन्तु राग में भी व्याप्य नहीं। आहाहा! क्योंकि राग अनेक प्रकार के विविध होते हैं। असंख्य प्रकार शुभ और असंख्य (अशुभ)। वे यहाँ नहीं लेना। यहाँ तो एक स्वरूपात्मक। है?

सर्व शरीरों में... सर्व शरीरों में। आहाहा! जैसे पच्चीस कमरे हों, कमरे, और एक दीपक हो। एक कमरे में से दूसरे में, दूसरे में से तीसरे में (जाये) परन्तु वह दीपक तो दीपकस्वरूप ही है। वह कभी कमरेरूप नहीं हुआ। समझ में आया? इसी प्रकार सर्व अनन्त शरीरों में चैतन्य-दीपक स्वरूप प्रभु एक सरीखा उसका रूप है। जैसे दीपक कमरे में व्यापता नहीं, वैसे जीवस्वरूप आत्मा शरीर में व्यापता नहीं और अन्दर में दया, दान के विकल्प हैं, उनमें भी व्यापक नहीं। आहाहा! यहाँ मलिनता की बात तो लेनी ही नहीं। समझ में आया? यहाँ तो क्रम और अक्रम दोनों निर्मल को यहाँ शक्ति के वर्णन में लेना है। यहाँ लोग तो चिल्लाहट यह मचाते हैं कि व्यवहार से निश्चय होता है। अरे! व्यवहार राग निर्मल पर्याय में है ही नहीं। समझ में आया? आत्मा व्यापक और राग व्याप्य, यह वस्तु का स्वरूप ही नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा व्यापक अर्थात् कर्ता होकर द्रव्य, निर्मल पर्यायरूपी व्याप्य अवस्था को करनेवाला है। यह भी व्यवहार है। आहाहा! निर्मल पर्याय अपने से हुई है। वह कर्ता, कर्म, करण से हुई है। परन्तु यहाँ पर से भिन्न पाड़कर बात बतलाना है न?

एक स्वरूपात्मक... आहाहा! अनन्त शरीरों में। एक हजार योजन का शरीर मिला या एक अक्षर के अँगुल के असंख्य भाग में एक शरीर मिला तो भी वह स्वयं तो अपने स्वरूप में ही व्यापक है। शरीर में व्यापक नहीं और राग में कभी व्यापक हुआ ही नहीं। आहाहा! ऐसा चैतन्य भगवान परमात्मस्वरूप विराजता है। तेरी निधि तेरी है। तेरी है, वह तेरे पास है—ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। तेरी निधि तू है। आहाहा!

मुमुक्षु : निधिस्वरूप ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निधिस्वरूप ही है। आहाहा! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, यह

कहते हैं कि शरीर छोटा-बड़ा हो परन्तु उस शरीर में उसके धर्म व्यापक हैं ही नहीं। यह तो अपने स्वरूप में ही व्यापक है। आहाहा! शरीर को कभी स्पर्शा ही नहीं और शरीर को तो नहीं परन्तु राग को भी निर्मल पर्याय कभी स्पर्शी नहीं। ऐसा एक स्वरूपात्मक, ऐसा लिया न? आहाहा! पोपटभाई! बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! यह शक्ति का वर्णन कक्षा (शिविर) में आया न? तुम्हारे कक्षा में यह आया। कक्षा शुरु हुई, तब से शक्ति शुरु की है। आज २३ दिन हुए, शक्ति के वर्णन में आज २३वाँ दिन है। आहाहा! क्या कहा?

सर्व शरीरों में... सर्व शब्द अर्थात्? निगोद से लेकर चरमशरीर तक सर्व शरीरों में। अनन्त-अनन्त छोटे-बड़े ऐसे शरीरों में। अँगुल के असंख्य भाग के शरीर में और हजार योजन के शरीर में। **एकस्वरूपात्मक**... यह तो एकस्वरूप चिदानन्द प्रभु है। उसमें कोई कमी या वृद्धि नहीं है। ऐसी चीज़ भगवान पूर्णानन्द का नाथ परमात्मस्वरूप है। लो, 'परमात्मप्रकाश' आया तुम्हारे। इनके पुत्र का नाम परमात्मप्रकाश है न! यहाँ आया था, फिर कहा, परमात्मप्रकाश दो। पिताजी को दिया है, कहा। तुम अलग लो। आहाहा! परमात्मप्रकाश नया प्रकाशित हुआ है न? परमात्मप्रकाश इनके पुत्र का नाम है। बड़े पुत्र का नाम परमात्मप्रकाश है, छोटे पुत्र का नाम अध्यात्मप्रकाश है और यहाँ अपने झांझरी है, झांझरी। है न यहाँ? यह रहे। इनका पुत्र विमलचन्द है, उनका पुत्र अरिहन्तप्रकाश। उसका नाम अरिहन्तप्रकाश है और दूसरे पुत्र के लड़के का नाम सिद्धप्रकाश है। यह फूलचन्द झांझरी। यह क्या कहलाये? मक्सी... मक्सी।

मुमुक्षु : हुकमचन्दजी के पुत्र का नाम परमात्मप्रकाश है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा न! यह तो पहले कहा। यह तो अरिहन्तप्रकाश और सिद्धप्रकाश, दो नाम हैं। यहाँ परमात्मप्रकाश और अध्यात्मप्रकाश नाम है। सब आत्मा परमात्मप्रकाश ही है। शरीर के नाम पड़े, वह कहीं आत्मा में है नहीं। आहाहा!

असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का धाम और वह आत्मा अनन्त छोटे-बड़े शरीरों में रहने पर भी शरीर को स्पर्शा ही नहीं। आहाहा! तो लक्ष्मी और स्त्री और कुटम्ब, मकान और व्यापार को कभी स्पर्शता ही नहीं, तीन काल में कभी स्पर्शा ही नहीं। आहाहा! शरीर की पर्याय को आत्मा स्पर्शा ही नहीं। अनादि से एकस्वरूप रहा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी चीज़ पर दृष्टि करना.... आहाहा! एकस्वरूपी प्रभु भगवान, अनन्त गुण होने

पर भी, अनन्त शरीर में क्रमसर पलटते रहने पर भी वह तो एकस्वरूपी ही है, उसमें अनेकस्वरूप कभी आया नहीं। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है।

एक स्वरूपी शक्ति, एक स्वभाव - ऐसा लिया है न? **सर्व शरीरों में एकस्वरूपात्मक...** अर्थात् एकस्वरूप लक्षण, एकस्वरूप लक्षण। आत्मक का अर्थ स्वरूप होता है। आत्मक है न? स्वरूपात्मक। स्वरूप अर्थात् लक्षणस्वरूप। उसका एक स्वरूप लक्षणस्वरूप भगवान है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म काँतने जाये... आहाहा! अरे! ऐसे मनुष्यदेह में ऐसी चीज़ नहीं मिलती, वह समझ में नहीं आये तो दृष्टि नहीं होती, तो किया क्या इसने? आहाहा! चाहे जितने व्रत, तप, भक्ति और शास्त्र का जानपना करे, उसमें क्या आया? आहाहा!

एक स्वरूपी भगवान आत्मा। अनन्त भिन्न-भिन्न शरीर रहने पर भी अपना एक स्वरूपपना छूटा नहीं। आहाहा! और पर्याय में भी शुभ-अशुभराग हुए तो भी भगवान एकस्वरूप है, वह पर्याय के रागरूप कभी हुआ नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो छठवीं गाथा में कहा न? ज्ञायक। **'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो'** भगवान ज्ञायकभाव... यहाँ शब्द की बात नहीं। ज्ञायकभाव जो वाच्य है, ज्ञायक शब्द वाचक है। (जैसे) शक्कर शब्द वाचक है और शक्कर वाच्य है। उसी प्रकार यहाँ... आहाहा! ज्ञायकभाव, यह शब्द वाचक है। उसका वाच्य ज्ञायकभाव त्रिकाली, वह उसका वाच्य है। वह एकस्वरूप रहा है। आहाहा! पर्याय में घट-बढ़ आदि भले हो, वस्तु तो एकस्वरूप अनादि-अनन्त पड़ी है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी दृष्टि होने से पर्याय में भी एकस्वरूपपने का परिणमन होता है। द्रव्य और गुण तो एकस्वरूपात्मक है, परन्तु उसका स्वीकार करने से, कल तो कहा था न? पण्डितजी! सत्कार। सत्कार... सत्कार।

पूर्ण सत्स्वरूप भगवान आत्मा, उसका सत्कार—है, ऐसा आदर करना, है-ऐसा आदर करना, यह सम्यग्दर्शन की पर्याय है। उसमें पूरे आत्मा का सत्कार हुआ। है, ऐसा प्रतीति में आया। और उसे पर्याय जितना मानना, राग जितना मानना, वह तो आत्मा की मृत्यु है। पूरी वस्तु है, उसका यह अनादर करता है। पूर्णानन्द का नाथ एकस्वरूप विराजमान है, उसे रागवाला कहना, वह स्वरूप की त्रिकाली शक्ति जो सत्त्व है, उसकी हिंसा करता है। हिंसा अर्थात् निषेध करता है। निषेध करता है, यही हिंसा है। आहाहा!

और अनन्त गुण का जीवन जिसके अन्दर है, ऐसा स्वीकार करने से पर्याय में भी निर्मल परिणति एकस्वरूपात्मक वस्तु है, ऐसा एकस्वरूपात्मक पर्याय में भी परिणमन होता है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसी स्वधर्मव्यापक... सर्व शरीरों में एकस्वरूपात्मक ऐसी स्वधर्मव्यापक... अपने धर्म में व्यापक है। आहाहा! अपने गुण और अपनी निर्मल पर्याय में व्यापक है। आहाहा! मलिन पर्याय में भी व्यापक नहीं। अब यह शुभयोग से धर्म हो... गजब करते हैं! मक्खनलालजी ने ऐसा लिया है, बड़ी विवाद किया है। कैलाशचन्दजी के सामने चैलेंज दिया है। शुभयोग, वह मोक्ष का मार्ग है। तुम कहते हो, शुभयोग हेय माने (वह मिथ्यादृष्टि है)। कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा, कुन्दकुन्दाचार्य हेय मानते हैं और तुम कहते हो, हेय माने वह मिथ्यादृष्टि है तो कुन्दकुन्दाचार्य हेय मानते हैं तो वे भी मिथ्यादृष्टि हो गये। आहाहा! चैलेंज दिया है।

परमात्मप्रकाश में तो ऐसा कहा है कि जो राग को उपादेय मानता है, उसने आत्मा को हेय माना है। परमात्मप्रकाश में ३६-३७ गाथा है। जिसने राग के विकल्प को उपादेय माना, उसके आत्मा के स्वभाव को उसने हेय माना है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का शुभयोग है, वह व्यवहाररत्नत्रय उपादेय है, आदरणीय है, ऐसा जिसने माना, उसने शुद्ध चिदानन्द स्वरूप को, अखण्डानन्द को हेय माना। आत्मा को हेय माना, राग को उपादेय माना। धर्मी जीव राग को हेय मानकर त्रिकाली को उपादेय मानता है। आहाहा! अब यह मिलान कहाँ करना? करो चर्चा और करो वाद। आहाहा! अरे! प्रभु! आहाहा!

तेरी वस्तु जितने-जितने प्रकार से है, उतने प्रकार से स्वीकार न हो, तब तो उसका अनादर हो गया। सब परिपूर्ण भगवान एक स्वरूपात्मक धर्म है। वह स्वधर्म में व्यापक है। अपने गुण और पर्याय में ही व्यापक है। यहाँ पर्याय निर्मल लेना। समझ में आया? आहाहा! शब्द थोड़े परन्तु भाव बहुत गम्भीर। अमृतचन्द्राचार्य ने गजब काम किया है! पंचम काल में कुन्दकुन्दाचार्य पंचम काल रूप से तीर्थंकर जैसा काम किया है और अमृतचन्द्राचार्य ने गणधर जैसा काम किया है। आहाहा! थोड़े शब्द हैं, ऐसा नहीं समझना। थोड़ा तो एक 'जगत' कहे तो सब आ गया। जगत—तीन अक्षर हैं तो जगत में तो अनन्त सिद्ध आये, अनन्त निगोद आये, अनन्त द्रव्य (आये)। आहाहा! सब आ गया। आहाहा!

तीन अक्षर हैं। निरक्षर हैं। कानो मात्रा बिना के। ज-ग-त। जा, जी, जो कुछ नहीं। एकाक्षरी। भगवान की वाणी एकाक्षरी निकलती है न? ॐ। आहाहा! तीन अक्षर—जगत। जगत में तो अनन्त सिद्ध आ गये, अनन्त निगोद आ गया, छह द्रव्य, छह द्रव्य के गुण और पर्याय सब आ गये। धन्नालालजी! ऐसे एक-एक शक्ति में इतनी गम्भीरता है। आहाहा!

मुमुक्षु : गजब किसने किया? आपने कहा न अमृतचन्द्राचार्य ने गजब काम किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अमृतचन्द्राचार्य ने किया।

मुमुक्षु : अभी तो आप गजब करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वे कहते हैं, उसका हम तो स्पष्टीकरण करते हैं। इसमें है। समझ में आया? यह दृष्टान्त नहीं दिया था? गाय या भैंस के आँचल में दूध है। दूध... दूध। जोरदार बाई भी ऐसी होना चाहिए कि आँचल होता है न? उसका आँचल। ऐसे नहीं करे, ऐसे नहीं निकले। गड्डा पड़ जाये। उसके... क्या कहलाता है वह? आँचल... भूल गये। आत्मा का जितना याद रहे, उतना बाहर का याद नहीं रहता। आँचल... आँचल। उस आँचल को ऐसे नहीं दुहे। देखा है कभी? यह तो हमारी बहिन के यहाँ गाय थी। छोटी उम्र में 'गारियाधार' थे। वे दुहती थी तो हम देखते थे। यह अँगुली है, उसमें यह अँगूठा ऐसा करे। ऐसे नहीं... अँगूठे में ऐसे भराकर ऐसे करे तो दूध निकले। उसी प्रकार अमृतचन्द्राचार्य शास्त्र के शब्दों में तर्क लगाकर, उसमें दूध है, उसे निकालते हैं। भाव में है, उसे निकालते हैं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, आहाहा! **सर्व शरीरों में...** अनन्त शरीरों में। भिन्न-भिन्न आकारवाले छोटे और महा शरीरों में। भगवान तो सर्व शरीरों में... आहाहा! एकस्वरूप... एकस्वरूप चिदानन्द आनन्दकन्द रहा है। आहाहा! समझ में आया? निगोद की पर्याय में अक्षर का अनन्तवाँ भाग हो तो भी वस्तु तो एकस्वरूप त्रिकाली आनन्दकन्द रही है। ऐसी दृष्टि कभी की नहीं। सब किया, जानपना किया, ग्यारह अंग पढ़ा। पढ़ डाला। पढ़ करके छोड़ दिया। जो करना है, वह तो यह चीज़ है। अपनी ज्ञान की पर्याय में पूर्णानन्द एक स्वरूप है, उसकी दृष्टि करना, वह तो पर्याय में भी शक्ति की व्यक्तता (होती है)। श्रद्धा की, वीर्य की, आनन्द की, ईश्वरता की... ईश्वर—प्रभुत्वशक्ति आ गयी न? सबका वेदन

पर्याय में आना, इसका नाम धर्म और उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : धर्म तो वीतरागता को कहते हैं, इसमें क्या वीतरागता आयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतरागता ही आयी। वीतरागता कब आयी? वीतरागस्वरूपी ही भगवान है, उसका आश्रय लेने से पर्याय में वीतरागता प्रगट होती है। वीतरागस्वरूप है, उस ओर झुकने से पर्याय में वीतरागता होती है।

आज और जैनसन्देश में बड़ा लेख आया है। सबको प्रेम कहो या वीतरागता कहो, ऐसा लिया है। बड़ा लेख है। प्रेम शब्द से, ऐसा प्रेम नहीं। प्रेम का अर्थ तो ऐसा लेना कि जो स्वरूप है, उसमें एकाग्र होना, उसका नाम प्रेम है। सर्व विश्व के प्रति प्रेम, ऐसा (उसका अर्थ) नहीं है। बड़ा लेख आया है। किसी ने फिर उसमें नोट भी किया है कि यह प्रेम कहते हैं, उसमें वीतरागता लेना। क्योंकि वे हुए न? 'सन्तबाल' स्थानकवासी में है। वे और ऐसा कहते हैं कि विश्वप्रेम। पूरे विश्व के ऊपर प्रेम करो। क्या विश्व के ऊपर प्रेम करे? सन्तबाल है। स्थानकवासी साधु है।... चले गये। सर्व विश्वप्रेम। विश्ववात्सल्य। उसका पत्र निकलता है, उसमें (लिखते हैं), विश्ववात्सल्य। पूरे विश्व के ऊपर प्रेम करना। परन्तु प्रेम की व्याख्या क्या? क्या सबको अपना मानना? एकत्व मानना, यह प्रेम है? विश्व का ज्ञान करके अपने स्वभाव में एकता होना, वह प्रेम है। वह वीतरागता प्रेम है। दूसरे द्रव्य से प्रेम, तीर्थंकरदेव से भी प्रेम करना कि यह मेरे हैं, वह तो राग है। वह तो एकस्वरूपात्मक में है नहीं। आहाहा!

सर्व शरीरों में एकस्वरूपात्मक ऐसी स्वधर्मव्यापकत्वशक्ति। है? स्वधर्मव्यापकत्वशक्ति। **(शरीर के धर्मरूप न होकर...)** कोष्ठक... कोष्ठक। **(अपने-अपने धर्मों में व्यापनेरूप शक्ति सो स्वधर्मव्यापकत्वशक्ति)** कहलाती है। आहाहा! परमार्थ से तो भगवान अपने निर्मल गुण और निर्मल पर्याय में व्यापक है, उसे स्पर्शता है। राग को और शरीर को कभी स्पर्श नहीं करता, ऐसा द्रव्यस्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? अभी चीज़ क्या है, उसकी खबर नहीं और इसे धर्म हो जाये। अरे रे! अनन्त काल चला गया, करते... करते... करते... एक तो संसार के धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं। चौबीस घण्टे में पाप के धन्धे। एक-दो घण्टे कदाचित् देवदर्शन को जाये या वाँचन करे,

बाकी बाईस घण्टे पाप। ऐ... सेठ! कमाना और कमाना और ऐसा और वैसा... पुत्र का विवाह करना, कोई कन्या न दे तो उसके पास याचना करके लेना और कुटुम्बी, स्त्री, पुत्रों को प्रसन्न रखना, उसमें तेरा आत्मा अराजी होता है, इसकी खबर नहीं। दु:खी होता है। पर के साथ सम्बन्ध क्या?

मुमुक्षु : किसी के ऊपर प्रेम नहीं करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रेम क्या करना? प्रेम का अर्थ क्या? उसके सम्बन्धी जो अपना ज्ञान है, उस ज्ञान की पर्याय में समस्त विश्व ज्ञात होता है, वह अपनी पर्याय। अपने प्रेम में—पर्याय में एकाग्र होना। पण्डितजी! आहाहा! २५वीं शक्ति हुई न? अन्धेरा हो गया है। अब २६वीं।

स्वपरसमानासमानसमानासमानत्रिविधभावधारणात्मिका साधारणा-साधारणसाधारणासाधारणधर्मत्वशक्ति:।

स्व-पर के समान, असमान और समानासमान ऐसे तीन प्रकार के भावों की धारणस्वरूप साधारण-असाधारण-साधारणासाधारणधर्मत्वशक्ति।२६।

स्व-पर के समान,... क्या कहते हैं? स्व और पर में समान। अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व आदि स्व-पर में समान है। समझ में आया? **स्व-पर के समान, असमान...** आत्मा में ज्ञान है और पर में नहीं, यह असमान। समान अपने में अस्तित्व है। लो, आया। **स्व-पर के समान,...** स्व-पर के समान का अर्थ समझे? साधारण। साधारण अर्थात् जैसे अपने में अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व है, वैसे अनन्त द्रव्य में अस्तित्व, प्रमेयत्व है तो उसे समान कहा जाता है। साधारण। साधारण को समान कहा जाता है। **स्व-पर के समान, असमान...** असाधारण को असमान कहा जाता है। आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द अपने विशेष है, इसलिए असमान है। समान अर्थात् अपने में है, वैसा पर में है, ऐसी समान शक्ति भी अनन्त है। छह नाम से कही। द्रव्यत्व, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व ऐसी अनन्त है। आहाहा!

उसमें कहा न? अगुरुलघु में। पर्याय है, केवलज्ञान की एक समय की पर्याय है, उसमें भी एक समय में षड्गुणहानिवृद्धि होती है। क्या तर्क से ख्याल में आता है?

केवलज्ञान की पर्याय, अरे..! क्षायिक समकित की पर्याय। उस एक समय की पर्याय में षड्गुणहानिवृद्धि (होती है)। एक ही समय में षड्गुणहानि और एक ही समय में षड्गुणवृद्धि (होती है)। यह स्वभाव श्रुतज्ञान में ज्ञात हो जाये तो फिर केवलज्ञान में क्या रहा? चन्दुभाई! केवलज्ञान... आहाहा! एक समय में ज्ञान की पर्याय का परिणमन लोकालोक है, उसे जाने, ऐसा कहना व्यवहार है, परन्तु उससे अनन्त गुना काल और अनन्त गुना क्षेत्र हो तो भी जिसकी जानने की ताकत है। ऐसी केवलज्ञान की एक समय की पर्याय... आहाहा! वह अपने में असमान गुण है। केवलज्ञान की पर्याय असमान है। ऐसी दूसरे द्रव्य में नहीं है।

एक अपेक्षा से तो प्रवचनसार की ९३ गाथा में ऐसा लिया है कि आत्मा में जो चेतनगुण है, वह भी असमान और समान दोनों है। समझ में आया? वह एक के अतिरिक्त दूसरे में है तो उसे समान कहा गया है। नहीं तो जो ज्ञान है, वह तो असमान विशेष है। समझ में आया? तथापि ९३ गाथा में ऐसा लिया है कि ज्ञान, दर्शन, आनन्द दूसरे आत्मा में भी है, इस अपेक्षा से उसे साधारण कहा गया है। सभी आत्माओं में है। समझ में आया?

स्व-पर के समान, असमान... अब दोनों एक साथ **समानासमान**... अस्तित्व आदि समान और ज्ञानादि असमान **ऐसे तीन प्रकार के भावों की धारणस्वरूप**... एक शक्ति है। आहाहा! ऐसा बहुत सूक्ष्म। लोगों को तो अभी बाह्य के क्रियाकाण्ड में, शुभयोग में सन्तोष करके मान बैठे हैं। अरे! प्रभु! ऐसा तो अनन्त काल में हो गया है। आहाहा!

यहाँ तो अपना गुण जो है, वह अपने में है और दूसरे में भी है, यह समान। तथा अपने में है और दूसरे में नहीं है, उसे असमान कहते हैं। और एक अपेक्षा से तो एक जीव के अतिरिक्त दूसरे में है, उसे भी समान कहा गया है। पर में भी है न? ज्ञान एक आत्मा सिवाय अनन्त आत्मा में है, इस अपेक्षा से समान कहा है। समझ में आया? एक अपेक्षा से ज्ञान को असमान कहा, दूसरी अपेक्षा से ज्ञान को समान भी कहा। क्या अपेक्षा समझना? ज्ञान विशेष है, सामान्यगुण से विशेष है, इस अपेक्षा से वस्तु असाधारण / असमान कहा। परन्तु वह ज्ञान अपने में भी है और अनन्त आत्मा में भी है, इस अपेक्षा से साधारण भी कहा। आहाहा! प्रवचनसार ९३ गाथा में है। समझ में आया?

गाथा ९४ में तो ऐसा कहा, आत्मा का व्यवहार क्या? आत्मा शुद्ध आनन्दरूप

परिणमे, वह आत्मव्यवहार है। रागरूप परिणमे, वह मनुष्यव्यवहार है; वह आत्मव्यवहार नहीं। आहाहा! प्रवचनसार, भगवान की दिव्यध्वनि का सार। भगवान आत्मा अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूपरूप परिणमना, द्रव्य-गुण तो त्रिकाल है, परन्तु परिणमना, वह व्यवहार है। आहाहा! वह पर्याय व्यवहार है। समझ में आया? तो उसे आत्मव्यवहार कहा और रागरूप होना, वह मनुष्यव्यवहार है। भव का कारण है, इसलिए मनुष्यव्यवहार है। आहाहा! ऐसी बात है।

यहाँ कहते हैं, **ऐसे तीन प्रकार के भावों की धारणस्वरूप साधारण**... समान में साधारण आया। **असाधारण —** असमान—अपने में है इतना। **साधारणासाधारण**... यह इकट्ठा। आया न? समानासमान। ऐसी एक शक्ति है। ऐसी एक शक्ति है, शक्ति एक है। साधारण, असाधारण, साधारण-असाधारण मिलकर शक्ति एक है। वह भी अपने स्वभाव में अपने कारण से है, पर के कारण से नहीं। इसमें विशेष है...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २४, शक्ति- २७ से २८ शनिवार, (द्वितीय) श्रावण कृष्ण ६, दिनांक ०३-०९-१९७७

विलक्षणानन्तस्वभावभावितैकभावलक्षणा अनन्तधर्मत्वशक्तिः।

विलक्षण (-परस्पर भिन्न लक्षणयुक्त) अनन्त स्वभावों से भावित ऐसा एक भाव जिसका लक्षण है ऐसी अनन्तधर्मत्वशक्ति।२७।

यह समयसार शक्ति का अधिकार है। छब्बीस शक्तियाँ चलीं। कल छब्बीसवीं चली न ? आज २७वीं। अनन्तधर्मत्वशक्ति। यह शक्ति एक है परनतु अनन्त धर्म शब्द यहाँ लिया है। है तो गुण, परन्तु धर्म क्यों लिया है ? कि धारयति इति धर्म। द्रव्यस्वभाव अनन्त धर्म को धारता है। समझ में आया ? धारयति इति धर्म। द्रव्यस्वभाव अनन्त धर्म को—गुण को धारता है। यह धर्म अर्थात् वे नित्य-अनित्य जो अपेक्षित धर्म, वह नहीं। चन्दुभाई ! वह आलापपद्धति में आते हैं न ? नित्य, अनित्य वे धर्म हैं। परन्तु उसमें गुण और गुण की पर्याय नहीं है। यह तो गुण है। अनन्त धर्म गुण है अन्दर। उन अनन्त गुण को धरनेवाली एक शक्ति अनन्तधर्मत्वशक्ति है। आहाहा ! वस्तु एक, उसमें अनन्त गुण, उन अनन्त गुण को धार रखे, ऐसी अनन्तधर्मत्वशक्ति एक शक्ति है। आहाहा ! समझ में आया ? उस शक्ति का परिणमन क्रमसर होता है। समझ में आया ?

अनन्तधर्मत्वशक्ति है, वह ध्रुव है परन्तु उस अनन्तधर्मत्वशक्ति को दृष्टि में लेने से, शक्तिवान और शक्ति का भेद निकल डालकर... आहाहा ! एकरूप अनन्त धर्म को धरनेवाली शक्ति और शक्ति को धरनेवाला द्रव्य, ऐसी दृष्टि में जो आनन्द की अवस्था का परिणमन होता है, तो आनन्दस्वरूप की अवस्था से आनन्दस्वरूप का ज्ञान और भान होता है। यह सवेरे कहा था, नहीं ? अनित्य से नित्य का ज्ञान होता है। आहाहा ! समझ में आया ? आनन्द की पर्याय, निर्विकल्प आनन्द की दशा, अनन्तधर्मत्वशक्ति सम्पन्न भगवान है, उसमें अनन्तशक्ति एक है परन्तु ज्ञानादि में अनन्तधर्मत्व का रूप है। आहाहा ! समझ में आया ?

ज्ञान है तो उसमें अस्तित्व भी है। वह अस्तित्वगुण के कारण से नहीं। अस्तित्वगुण का रूप है, वह धर्म का-गुण का रूप है। वैसे दर्शन अस्तित्व, आनन्द अस्तित्व, ऐसे

पर्याय का अस्तित्व। यहाँ तो परिणमनवाली शक्ति का वर्णन लिया है। अकेली ध्रुव शक्ति ऐसा नहीं। शक्ति जो है, उसका ज्ञान में भान हुआ तो, वह शक्ति है, ऐसी प्रतीति हुई। ऐसी शक्ति है और अनन्तशक्ति को धरनेवाला द्रव्य है, उस द्रव्य की दृष्टि हुई, ज्ञान में—पर्याय में पूरे द्रव्य का ज्ञान आया। समझ में आया? तब उस शक्ति का परिणमन हुआ तो शक्ति और शक्तिवान ऐसी प्रतीति हुई। सूक्ष्म बात है। बात बहुत सूक्ष्म।

शक्ति है, वह तो त्रिकाल है परन्तु शक्ति का यहाँ तो क्रमवर्ती पर्याय और अक्रमवर्ती गुण, दो होकर—क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती होकर आत्मा है। दो होकर आत्मा है। उसमें विकार नहीं लेना। समझ में आया? क्योंकि शक्ति है, वह निर्मल है और शक्तिवान भी निर्मल है। अत: निर्मल भगवान का जहाँ भान हुआ तो पर्याय में निर्मलता ही प्रगट होती है, विकार नहीं। आहाहा! विकार का तो उसमें अभाव है। इसका नाम स्याद्वाद है। यह एकान्त... एकान्त करते हैं न?

आज ही जैनदर्शन (पत्रिका) में बहुत विरोध आया है। वे (लोग) कहते हैं कि मिट्टी में घड़ा करने का कर्तव्य नहीं है। कर्तव्य तो कुम्हार कर्तव्य करता है तो घड़ा होता है। उपादान में योग्यता हो परन्तु जैसा निमित्त मिले, वैसी पर्याय होती है। ऐसा नहीं है। बहुत विरोध आया है। कोई एक है, इन्दौरवाला है कोई। इन्दौरीलाल बड़जात्या। वकील है? भाई जानते हैं न। बहुत लिखा है। मिट्टी में घड़ा होने का कर्तव्य, शक्ति नहीं, ऐसा कहता है। वह कर्तव्य तो कुम्हार करता है, उसमें कर्तव्यशक्ति है तो उससे घड़ा होता है। अरे!

समयसार ३७२ गाथा में तो आया नहीं? घड़ा कुम्हार से होता है, ऐसा हम तो देखते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। मिट्टी से घड़ा होता है, ऐसा हम तो देखते हैं। कुम्हार से होता है, ऐसा हम तो देखते ही नहीं, ऐसा पाठ है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : जैनदर्शन की बात तो आप बताते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु का स्वरूप (ऐसा है)। जैनदर्शन कोई सम्प्रदाय नहीं। निमित्त से होता है, यह मान्यता जैनदर्शन की नहीं। क्योंकि निमित्त परद्रव्य है और उपादान परद्रव्य है।

यहाँ कहते हैं कि अनन्तधर्मत्वशक्ति भरी है, उसका परिणमन होता है, वह अपने

से होता है। उसमें कर्ता नाम का गुण है और राग का अकर्ता नाम का गुण है। अनन्तधर्म आये न! अकर्ता भी गुण है। राग का अकर्ता गुण है। और आनन्दादि की पर्याय का कर्ता गुण है। आहाहा! ऐसे अनन्तधर्म का परिणमन करना, ऐसी यहाँ कर्ता नाम की शक्ति है। वह शक्ति अनन्तगुण में व्याप्त है। अनन्तधर्मत्वशक्ति में वह अकर्ताशक्ति आ गयी। समझ में आया? वकील है तो बुद्धिवाला नहीं होगा? लिख सकता तो होगा या नहीं? भाई कहते हैं, दूसरे से लिखाया है। जैनदर्शन में बड़ा लेख आया है। दो विरोध आये हैं। एक विरोध बाबूभाई का आता है। यह कमेटी तुम्हारी क्या कहलाती है? तीर्थसुरक्षा। हमने तो कभी कहा नहीं कि तीर्थरक्षा करो या तीर्थ करो, हमने तो कहा ही नहीं। समझ में आया? इसका बहुत विरोध आता है, पत्र-पत्र में विरोध। सोनगढ़ की तीर्थ कमेटी नहीं, झूठ बात है। उसे सहकार लालचन्द सेठ ने दिया।

मुमुक्षु : सभी तीर्थों पर कब्जा कर ले...

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कब्जा करे? अरे! भगवान! बापू! भाई!

यहाँ तो अनन्त धर्म जो है, उसके परिणमन में अनन्तधर्म कारण और धर्मी कारण है। क्या कहा, समझ में आया? अनन्त धर्म जो है, उसकी एक शक्ति अनन्तधर्मत्व नाम की एक शक्ति है कि जो अनन्त धर्म को धार रखती है। अनन्त धर्म और धर्म को धारक धर्मी, उसका परिणमन जो होता है उपादान, उस काल में उसका जन्मक्षण होता है। प्रवचनसार १०२ गाथा। वह जन्मक्षण—उसकी उत्पत्ति का काल होता है, तब उत्पन्न होता है, निमित्त से नहीं।

दूसरी एक बात है। यह चिद्विलास में लिया है। भाई! निश्चय और व्यवहार का अधिकार लिया है न? निश्चय। उसमें ऐसा लिया है कि, होनहार-जिस समय में जो होनी है, वह निश्चय। उसे निश्चय में डाला है। जिस समय जो पर्याय होनी है, वह होगी। आहाहा! परन्तु उसका निर्णय करनेवाला निर्णय किस प्रकार करे? त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव उद्यम... होनहार है परन्तु उद्यम से उसकी प्रतीति आती है। होनहार तो उसी समय में होनहार होगी। परन्तु होनहार में भी उद्यम से प्रतीति होती है। समझ में आया? होनहार... होनहार... होनहार तो होनहार ही है। जिस समय में जिस द्रव्य की पर्याय की उत्पत्ति का क्षण है, उस समय में ही उत्पन्न होगी। नियत ही है, होनहार है। परन्तु वह उद्यम से—पुरुषार्थ से उसका निर्णय होता है। समझ में आया?

पहले कहा था न ? कि भगवान ने देखा वैसा होगा, यह तो बराबर है। परन्तु भगवान ने देखा तो भगवान है कौन ? जिसकी ज्ञानगुण की एक समय की पर्याय तीन काल-तीन लोक को प्रत्यक्ष जाने, प्रत्यक्ष जाने। ऐसी एक समय की पर्याय की इतनी सत्ता कि भविष्य की सादि-अनन्त पर्याय अभी हुई नहीं, उसे भी ज्ञानपर्याय प्रत्यक्ष जाने। ऐसी एक समय की पर्याय का सामर्थ्य / सत्ता जगत में है, ऐसा निर्णय कब होता है ? वह पुरुषार्थ से होता है। क्यों ? कि सर्वज्ञ पर्याय का अस्तित्व सिद्ध करने जाते हैं तो सर्वज्ञस्वभाव जो अपना है, उसके ऊपर दृष्टि जाती है, तब सर्वज्ञ की पर्याय की सत्ता का स्वीकार हुआ। क्योंकि सर्वज्ञस्वभाव अपना ही सर्वज्ञस्वभाव है। आहाहा ! यह तो पर्याय का (स्वभाव) हुआ परन्तु पर्याय हुई कहाँ से ? सर्वज्ञस्वभाव में से हुई है। मैं मेरी सर्वज्ञपर्याय की श्रद्धा करने जाऊँ तो मेरा सर्वज्ञस्वभाव है, उसकी प्रतीति होती है तो सर्वज्ञ की पर्याय की प्रतीति होती है। द्रव्य की प्रतीति होती है, गुण की प्रतीति होती है तो पर्याय की प्रतीति होती है। सूक्ष्म बात है। समझ में आया ? बहुत बात चली थी। (संवत्) १९७२ के वर्ष, सम्प्रदाय में (थे)। कितने वर्ष हुए ? ६१ वर्ष हुए। ६० और एक।

सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा हुई थी। वे कहे कि भगवान ने देखा, वैसा होगा, अपने क्या पुरुषार्थ कर सकते हैं ? पहले दो वर्ष तो सुना। हमें तो पहले से यह बात खटकती थी। यह बात ऐसी नहीं है। उसमें पुरुषार्थ का लोप होता है। कहते हैं, सर्वज्ञ है, भाई ! यह बात कहीं नहीं। एक ज्ञानगुण की... यहाँ तो अनन्तधर्म कहते हैं। अनन्तधर्म की जिस समय में जो पर्याय सर्वज्ञ की उत्पन्न होनी है, वह उत्पन्न होगी। परन्तु होगी, इसका निर्णय किसे होता है ? सर्वज्ञस्वभाव मेरा है, और उनका भी र्स्वज्ञस्वभाव था, उसमें से सर्वज्ञपर्याय आयी है। मेरा सर्वज्ञस्वभाव है... प्रवचनसार में आया न ? भाई ! असाधारण। नहीं ? प्रवचनसार में शब्द आया है। ज्ञानरूपी स्वभाव असाधारण त्रिकाल को ग्रहण करके पर्याय में कार्य होता है। ऐसा पाठ है। प्रवचनसार संस्कृत टीका।

त्रिकाली ज्ञायकभाव—ज्ञानभाव कारणरूप से ग्रहण करके। है न शब्द ? भाई ! है। संस्कृत टीका अमृतचन्द्राचार्य की है। आहाहा ! जो सर्वज्ञ की पर्याय की प्रतीत करने जाता है तो अपना सर्वज्ञ ज्ञायकस्वभाव त्रिकाली को कारणरूप से ग्रहण करने से पर्याय में प्रतीति और ज्ञान होते हैं, वे पुरुषार्थ से हुए हैं। होनहार है, परन्तु पुरुषार्थ से हुआ है। समझ

में आया ? बात जरा सूक्ष्म है। मार्ग बहुत सूक्ष्म। लोग बेचारे निमित्त से होता है... निमित्त से होता है। घड़ा कुम्हार से होता है, बस! उसमें ऐसा लिखा है और अभी पत्रिका में भी आया था। उपादान में अनेक प्रकार की योग्यता है, परन्तु जैसा निमित्त मिले, वैसा कार्य होता है। निमित्त नियामक होता है। आहाहा! अरे! भगवान!

तेरी यह अनन्तधर्मत्वशक्ति है। तेरी शक्ति में अनन्त धर्म पड़े हैं। अनन्त धर्म पड़े हैं, इसकी एक शक्ति अनन्तधर्मत्व है। उसका परिणमन किस प्रकार से होता है ? ऐसे तो अनादि से विकार का परिणमन है। अनादि से तो पर्याय में विकार परिणमन है। आहाहा! उसका अभाव कैसे हो ? और पुरुषार्थ किस प्रकार हो ? कि अनन्त धर्म का धारक भगवान, निर्विकल्प दृष्टि होकर अनन्त गुण के धारक द्रव्य की जहाँ श्रद्धा होती है, वहाँ पुरुषार्थ से पर्याय में वीर्य भी आ गया। वीर्य ने निर्मल पर्याय की रचना की। वीर्यशक्ति का गुण यह है। अन्दर में जो वीर्यगुण—स्वभाव है, यह वीर्य रेत है, जिससे पुत्र जन्में, वह तो धूल है। यह तो आत्मा में एक बल—वीर्य नाम की शक्ति है कि जो अनन्त गुण की निर्मल पर्याय को रचती है। वीर्य रचता है। आहाहा! कब रचे ? कि वीर्य और अनन्त गुण का धारक द्रव्य, उस द्रव्य पर दृष्टि जाने से (रचे)। डाह्याभाई! सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

निमित्त के ऊपर दृष्टि है, राग पर हो और पर्याय पर हो, तब तक सर्वज्ञस्वभाव का निर्णय नहीं होता। समझ में आया ? और सर्वज्ञ ज्ञान में तो अनन्त गुण भी आये। एक ज्ञान की पर्याय में अनन्त गुण का ज्ञान आया और अनन्त गुण का ज्ञान आया और एक पर्याय में इतने भेद पड़ गये कि अनन्त... अनन्त केवली को जाने, ऐसी वह पर्याय है। उस पर्याय का धारक ज्ञानगुण है और उस ज्ञानगुण का धारक द्रव्य है। आहाहा!

पहले एक बार कहा था कि गुण से परिणति नहीं उठती। पूरा द्रव्य है, उसका जहाँ स्वीकार होता है तो पूरे द्रव्य में से परिणति उठती है। क्योंकि 'गुणपर्ययवत्द्रव्यम्' कहा है। पर्यायवंत गुण, ऐसा नहीं कहा। तत्त्वार्थसूत्र में। समझ में आया ? पर्यायवत् गुण, ऐसा नहीं कहा। 'गुणपर्यायवत् द्रव्यम्', कहा है। सूक्ष्म बात है, भाई! उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र में यह बहुत लिया है। है तो व्यवहारप्रधान कथन परन्तु उसमें निश्चय की बात समाहित कर दी है। आहाहा! अन्तर में गुण की परिणति भिन्न होती है और द्रव्य की भिन्न होती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा कहकर द्रव्य पर दृष्टि देते हैं। यह शक्ति भले हो, परन्तु शक्ति

और शक्तिवान दो का भेद छोड़कर अनन्त धर्म के धारक शक्ति को द्रव्य ने धारा है। उस द्रव्य पर दृष्टि देने से अनन्त धर्म का परिणमन शुद्ध व्यक्त—प्रगट होता है। चन्दुभाई! सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

दूसरे प्रकार से (कहें)। अनन्तधर्म है, ऐसी एक शक्ति है। अनन्तधर्म है, ऐसी एक शक्ति। वेदान्त आदि अन्यमत में, ऐसा नहीं होता। समझ में आया? वहाँ तो अनन्तधर्म गिनना, वह भी व्यवहार है और झूठ है, ऐसा कहते हैं। एक ही वस्तु है। ऐई! शशीभाई! ये वैष्णव थे। वैष्णव में से आये हैं। वेदान्त। वे कहते हैं कि आत्मा अनुभव? आत्मा अनुभव करे? यह क्या? यह तो दो बातें हो गयीं। एक में दो कहाँ से आये? आत्मा का अनुभव। तो अनुभव और आत्मा दो वस्तु हो गयी। वे दो को मानते नहीं। एक मानते हैं, एक ही स्वरूप है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, एकस्वरूप है... पहले अपने आ गया है। आ गया न? एकस्वरूपात्मक। सर्व शरीरों में एकस्वरूपात्मक। पच्चीसवीं शक्ति में आ गया। पच्चीस में आ गया। सर्व शरीरों में एकस्वरूपात्मक। परन्तु एकस्वरूपात्मक अनन्त शक्ति का एक स्वरूपात्मक है, तो अनन्त शक्ति का परिणमन शक्तिवान पर दृष्टि देने से (होता है)। द्रव्यस्वभाव भगवान आत्मा, जिसने अनन्त शक्तियाँ धारण कर रखी हैं, चैतन्यपना धारण कर रखा है... आहाहा! जिसने अनन्त आनन्द धार रखा है, जिसमें अनन्त ईश्वरता, प्रभुता धार रखी है। जिसने अनन्त वीर्य बेहद अपरिमित वीर्य धार रखा है, ऐसे धर्म का धारक धर्मी। ऐसे धर्म का धारक धर्मी। धर्मी अर्थात् द्रव्य, हों! पर्याय में धर्म होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

लोगों को बाहर से मानना है। यह व्रत, तप और भक्ति... यह तो सब शुभभाव हैं। यह तो वस्तु में है ही नहीं। और इनसे अपना कल्याण मानना, वह तो महाभ्रम और पाखण्ड है। क्योंकि शुभराग आदि अनन्त धर्म में नहीं है। यह जो अनन्तधर्मशक्ति कही, इसमें शुभराग नहीं। शुभराग तो पर्याय में नया उत्पन्न होता है, वह पर के लक्ष्य से उत्पन्न होता है। द्रव्य, गुण में विकार करने की कोई शक्ति नहीं है। द्रव्य की शक्ति नहीं कि विकार करे और शक्ति की शक्ति नहीं कि विकार करे। आहाहा!

मुमुक्षु : कहाँ से आता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में से अद्धर से (आता है)। पर्याय की योग्यता से षट्कारक के परिणमन से उत्पन्न हुआ है। पंचास्तिकाय की ६२ गाथा कही न? अस्तिकाय सिद्ध करना है न वहाँ? अस्तिकाय सिद्ध करना है तो अस्तिकाय में पर्याय में षट्कारक से परिणमन करके विकार होता है, ऐसी अस्ति सिद्ध करनी है। अस्तिकाय है न? परन्तु जब अपना स्वभाव त्रिकाल सिद्ध करना है, तब वह विकारी पर्याय षट्कारक का परिणमन उसमें नहीं होता। आहाहा!

अपना त्रिकाली ज्ञायक आनन्दस्वरूप प्रभु, अनन्तधर्मत्वशक्ति का धारक, यह एक शक्ति ऐसी है कि जो अनन्त अनन्त गुण में अनन्तधर्मत्वशक्ति व्यापी है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म, भाई! उसमें—सवैया में तो बहुत लिया है। एक गुण में अनन्त पर्याय और अनन्त पर्याय में एक ज्ञान का थट और एक ज्ञान की पर्याय में अनन्त ज्ञान और थट और नृत्य... ऐसा लिया है। आहाहा! समयसार नाटक में है, परन्तु शब्द थोड़े हैं। उसमें अध्यात्म पंच संग्रह में बहुत है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **विलक्षण...** यह क्या कहा? एक गुण में दूसरा गुण विलक्षण है। ज्ञान का लक्षण जानना, दर्शन का देखना, वीर्य की रचना करना, अस्तित्व का सत्तारूप रहना। ऐसे प्रत्येक गुण विलक्षण हैं। किसी गुण का किसी दूसरे गुण में लक्षण एक नहीं होता। पहला शब्द है। **विलक्षण (–परस्पर भिन्न लक्षणयुक्त)...** आहाहा! ऐसी बातें। अनन्तज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्तगुण हैं, परन्तु प्रत्येक गुण विलक्षण है। किसी गुण का लक्षण किसी गुण में नहीं जाता। आहाहा! प्रत्येक भिन्न-भिन्न है और उसके लक्षण भी भिन्न-भिन्न है। आहाहा! समझ में आया?

विलक्षण (–परस्पर भिन्न लक्षणयुक्त)... निज लक्षणयुक्त। कौन? **अनन्त स्वभावों से...** आहाहा! परस्पर भिन्न लक्षण, परस्पर प्रत्येक का भिन्न-भिन्न लक्षण। ऐसे **अनन्त स्वभावों से...** देखो! अनन्तधर्मत्वशक्ति लेनी है? अनन्त स्वभाव है। **अनन्त स्वभावों से भावित...** अनन्त स्वभावों से भावित। आहाहा! परस्पर गुण के विलक्षण—एक लक्षण दूसरे में नहीं मिलता। तो अनन्त सिद्ध होते हैं। एक लक्षण दूसरे में मिल जाये तो अनन्त सिद्ध नहीं होता। यहाँ अनन्तधर्मत्व सिद्ध करना है न? तो प्रत्येक गुण का लक्षण भिन्न-भिन्न है। ज्ञान का जानना, दर्शन का देखना, आनन्द का आह्लाद का, वीर्य का स्वरूप

की रचना का, ऐसे प्रत्येक का लक्षण भिन्न-भिन्न है। अनन्त गुण के लक्षण भिन्न-भिन्न हैं। क्योंकि अनन्त गुण भिन्न है। द्रव्य भले एक है परन्तु गुण है, वह तो भिन्न-भिन्न लक्षणवाले अनन्त हैं।

विलक्षण (-परस्पर भिन्न लक्षणयुक्त) अनन्त स्वभावों से... आहाहा! भगवान ऐसे विलक्षण गुण से, अनन्त स्वभावों से; गुण कहो या स्वभाव कहो, उन अनन्त स्वभावों से भावित, रहनेवाला। **ऐसा एक भाव जिसका लक्षण है...** अनन्त स्वभाव का भाव, उसका एक लक्षण अनन्तधर्मत्व। रत्नचन्दजी! यह कहाँ आया? दया पालो और व्रत करो और भक्ति करो, हो जायेगा कल्याण, लो! आहाहा! भाई! तेरी चीज कोई अलौकिक है, नाथ! महा रत्नाकर चैतन्य रत्नाकर, अन्तर अनन्त गुण का भण्डार है। उसकी राग की एकताबुद्धि में उस भण्डार का ताला बन्द कर दिया है। समझ में आया? राग और स्वभाव की एकताबुद्धि में वह खजाना बन्द हो गया है। वह खजाना खोल! कब खुलता है? कि राग के ऊपर का लक्ष्य भी छोड़ दे और पर्याय के ऊपर का लक्ष्य भी छोड़ दे। आहाहा! और स्वभाव तथा स्वभाववान एकरूप है, (उसकी दृष्टि करना)। **'तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण'** समयसार पाँचवीं गाथा है। **'एयत्तं'** अपने स्वभाव से एकत्व है और पुण्य-पाप के विकल्प से विभक्त है, भिन्न है। आहाहा! ऐसा अपना स्वभाव अनन्त स्वभाव से भावित, अनन्त स्वभाव से रहनेवाला। भावित अर्थात् अनन्त स्वभाव से भावित—रहनेवाला। यह तो एक-एक शब्द में (गम्भीरता है)।

अनन्त स्वभावों से भावित ऐसा एक भाव... आहाहा! ऐसा **एक भाव जिसका लक्षण है...** पहले प्रत्येक गुण विलक्षण है, ऐसा कहा था। परन्तु इस शक्ति का तो एक ही लक्षण है। क्या? अनन्तधर्मत्वशक्ति का लक्षण एक है। आहाहा! वह ज्ञानस्वरूप है तो यह समझ से—ज्ञान से प्राप्त होता है। आनन्दस्वरूप है तो आनन्द की पर्याय से ही प्राप्त होता है। प्रभुत्वशक्ति से भरपूर है तो प्रभुत्वशक्ति की पर्याय से प्रभुत्व का भान होता है। समझ में आया? आहाहा! यह अकर्तृत्वशक्ति से भरपूर है तो पर्याय में राग के अकर्तृत्व की पर्याय से अकर्तृत्व धर्म का भान होता है। अभोक्ता गुण है तो राग का अभोक्ता और अपने आनन्द के भोक्ता से पूर्ण आनन्दस्वरूप है, ऐसा भान होता है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म, बापू! क्या हो?

लोगों ने मार्ग को नोंच डाला है। सत्य बाहर आया तो तोड़ डाले, एकान्त है, एकान्त है। निमित्त से कुछ होता नहीं, व्यवहार से निश्चय होता नहीं... (ऐसा लोग कहते हैं) परन्तु इतना तो अभी कैलाशचन्दजी ने निश्चय किया, पहले तो नहीं था, बीस वर्ष पहले जब चर्चा हुई थी, तब तो क्रमबद्ध को मानते नहीं थे। क्योंकि वर्णीजी मानते नहीं थे, इसलिए उनकी मान्यता नहीं थी। अब तो निर्णय किया है, क्रमबद्ध है। ऐसा जैनसन्देश में आया है। क्रमबद्ध है, ऐसा निर्णय करे तो व्यवहार से निश्चय होता है; निमित्त से उपादान में होता है, यह बात छूट जाती है। बराबर है? बहुत विरोध किया है। बड़ा लेख है। इन्दौर में इन्दौरीलाल बड़जात्या कोई है। बहुत विरोध। एकान्त है... एकान्त है। कोई एक और दूसरे ने लिखा है, श्रुतसागर है। यह बड़े-बड़े लोग इकट्ठे नहीं होते। इकट्ठे होकर करो। धर्मपन्थ का नाश हो जाता है। अरे! भगवान! श्रुतसागर साधु है। धर्मसागर में से बाहर निकले हैं। उनका आया है, बड़े-बड़े सेठिया इकट्ठे होकर निर्णय करो कि यह बात एकान्त है। जैनगजट में आया है। आज तो जैनदर्शन में विरोध आया है। आहाहा! भाई! साधु नाम धरावे और ऐसा विरोध करे। आहाहा!

बात यह है कि यहाँ शक्ति के वर्णन में शक्ति का धारक पवित्र है और शक्ति पवित्र है, तो उसकी परिणति भी पवित्र है। उसे यहाँ गिनने में आया है। शुभराग आदि का उसमें अभाव है। यह अनेकान्त है। निश्चय से शुद्ध से शुद्धता होती है और व्यवहार से शुभ से भी शुद्धता होती है, यह तो मिथ्या अनेकान्त है। क्या कहा? अनेकान्त है अवश्य परन्तु मिथ्या अनेकान्त है। मोक्षमार्गप्रकाशक में आया न? सातवें अध्याय में बात नहीं थी? निश्चयाभास और व्यवहाराभास। यह सब अधिकार आ गया।

अनेकान्त भी दो प्रकार के हैं। एकान्त भी दो प्रकार के हैं। एक सम्यक् एकान्त, एक मिथ्या एकान्त। इसी प्रकार अनेकान्त के दो प्रकार—एक मिथ्या अनेकान्त और सम्यक् अनेकान्त। समझ में आया? निश्चय से अपनी परिणति अपने से होती है, यह निश्चय है और व्यवहार को तो यहाँ गिनने में आया ही नहीं। व्यवहार का अभाव है, वही अनेकान्त है और वही स्याद्वाद है। समझ में आया? बोल लिखा है न? उन बाईस बोल में लिखा है न? बाईस बोल में तुम्हें लिखाया है। तुमने लिख लिया न? उसमें। उसमें है, देखो! एक-एक शक्ति में व्यवहार का अभाव है। आठवाँ बोल है। तुमने लिख लिया?

तुम्हें प्रचार करना है न? यह तो सत्य बात है। कोई गुप्त रखने की वस्तु नहीं है। गाँव-गाँव में व्यक्तिगत व्यक्तिगत पहुँचाने की यह बात है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, आहाहा! जिसका लक्षण एक भाव है। आया न? **अनन्त स्वभावों से भावित ऐसा एक भाव जिसका लक्षण है, ऐसी अनन्तधर्मत्वशक्ति।** लो! आहाहा! यह २७ हुई। एक शक्ति की पर्याय जब उत्पन्न होती है तो उसमें अनन्त शक्ति की पर्याय साथ में उत्पन्न होती है, आगे-पीछे नहीं। अन्दर गुण भी आगे-पीछे नहीं, एक साथ है। पहले ज्ञान है और फिर ऊपर दर्शन है और फिर आनन्द है और फिर चारित्र है, ऐसा नहीं है। एकसाथ अनन्त है। पर्याय में भी एकसाथ अनन्त पर्याय की परिणति होती है। उसे यहाँ अनेकान्त कहा गया है। राग का अभाव। स्याद्वाद यह, अनेकान्त यह कि व्यवहार का अभाव है, निश्चय का सद्भाव है, यह सम्यक् अनेकान्त है। समझ में आया? आहाहा! यह २७ हुई। अब २८।

तदतद्रूपमयत्वलक्षणा विरुद्धधर्मत्वशक्तिः।

तद्रूपमयता और अतद्रूपमयता जिसका लक्षण है, ऐसी विरुद्धधर्मत्व-शक्ति।२८।

तद्रूपमयता और अतद्रूपमयता जिसका लक्षण है, ऐसी विरुद्धधर्मत्व-शक्ति। आहाहा! क्या कहते हैं? पहले जो तत्-अतत् के बोल में लिया है न? तत-अतत् के चौदह बोल लिये न? वहाँ तो पहले ऐसा लिया है कि तत्—आत्मा ज्ञायकस्वभाव, वह तत्, और अतत्—ज्ञेय स्वभाव उसमें नहीं, वह अतत्। चौदह बोल में है। समझ में आया? तत्—अपने में जो भाव है, वह तत्। ज्ञायक ज्ञायकरूप से है, ज्ञान ज्ञानरूप से है, वह तत्; और ज्ञान रागरूप नहीं, ज्ञेयरूप नहीं, ज्ञेय में राग भी आ गया, परज्ञेयरूप नहीं, वह अतत्। चौदह बोल में ऐसा लिया है।

पंचाध्यीय में ऐसा लिया है, तत्-अतत्—वस्तुरूप से है और परवस्तुरूप से नहीं, ऐसा अर्थ भी लिया है। यहाँ चौदह बोल में ज्ञायक और ज्ञेय के बीच तत्-अतत् लिया है। क्या समझे इसमें? अपना ज्ञानस्वरूप अपने से है और ज्ञेय से नहीं। इतना। वह ज्ञेय-ज्ञायक के बीच तत्-अतत् का वर्णन है। परन्तु दूसरी जगह पंचाध्यायी में ऐसा लिया है

कि अपने से जैसे अस्ति है, तत् अपने से है और सब गुण अपने से है। अकेले ज्ञानगुण की बात नहीं है। चौदह बोल में ज्ञान और ज्ञेय के बीच तत्-अतत् लिया है। और ऐसे तत् अर्थात् अपने से है, सब गुण अपने से है, पूरा द्रव्य अपने से है और परद्रव्य से नहीं। ऐसी विरुद्धशक्ति उसमें है। समझ में आया?

यह विरुद्धशक्ति ली है, देखो! अन्यमति को तो यह कभी जँचे नहीं। क्योंकि एक ही माना है। यह तो अनेकपना, अनन्त द्रव्य है तो एक द्रव्य अपने से है तो अनन्त पर से नहीं। उसमें अनन्त पर आ गये। अनन्त पर से नहीं। संक्षिप्त भाषा में ऐसा लिया है, ज्ञान ज्ञान से है, ज्ञेय से नहीं। समझ में आया? बस! इतना लिया है। और ऐसे लेना हो तो तत् है। पूरा द्रव्य अपने से, बाकी के परद्रव्य से वह नहीं, यह अतत्। दोनों अर्थ होते हैं। ज्ञान और ज्ञेय को तत्-अतत् में लेते हैं कि ज्ञानस्वरूपी भगवान ज्ञानस्वरूप से है। वह ज्ञेय का ज्ञान करता है परन्तु ज्ञेय उसमें नहीं है। ज्ञेय का ज्ञान होता है परन्तु ज्ञेय उसमें नहीं है। समझ में आया? ज्ञान, ज्ञान से है, यह तत् और ज्ञेय से नहीं, यह अतत्। ऐसे चौदह बोल में लिया है। पंचाध्यायी में तत्-अतत् में ऐसा लिया है।

नित्य-अनित्य और तत्-अतत् में अन्तर क्या? पंचाध्यायी में लिया है कि वह का वह। तत् अर्थात् वह का वह है। नित्य में तो वह है, बस इतना, बस! परन्तु वह का वह है, यह तत् (हो गया)। पंचाध्यायी में शक्ति भिन्न की है। नित्य-अनित्य। नित्य अर्थात् कायम है और अनित्य पर्याय है, इतना। पश्चात् तत्-अतत् क्या? कि कायम है परन्तु वह का वह, वह का वह है। वह तत्। समझ में आया? ऐसी बात है। रतनलालजी! तुम्हारी टीका आयी है। तुम्हारी पुस्तक निकाली है, क्या कहलाता है? जैनपथप्रदर्शक। उसकी भी टीका (आलोचना) आयी है। जैनदर्शन (पत्रिका) में है।

मुमुक्षु : उसमें लिखा था, जैनपथप्रदर्शक नाम क्यों रखा है? कहानपथ प्रदर्शक रखना था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसमें है। सत्य बात है, ऐसा लिखा है। क्योंकि वह तो सोनगढ़ के पक्ष का लेखन है। ऐसा कहते हैं। अरे! भगवान! ऐसे विवाद का क्या काम है? भाई! आहाहा! यह तो भगवान का-प्रभु का पन्थ है। समझ में आया?

कहते हैं कि आत्मा में दो शक्तियाँ एक साथ है, वह विरुद्ध है। विरुद्ध भी एक

शक्ति है। अपने से है, ज्ञेय से नहीं, यह तो विरुद्ध हुआ। जो है, वह नहीं। वह अपने से है, पर से नहीं। यह तो विरुद्ध हुआ। परन्तु विरुद्धशक्ति उसमें है। विरुद्ध उसका एक गुण है। विरुद्ध नाम का गुण है। आहाहा! उस गुण की पर्याय है, विरुद्ध गुण की पर्याय है। जैसे अपेक्षित नित्य-अनित्य धर्म है, उसकी पर्याय नहीं, ऐसा यह गुण नहीं। क्या कहा, समझ में आया? नित्य, वह धर्म है, तो नित्य धर्म तो अपेक्षित हुआ। कायम रहने की अपेक्षा से नित्य है। कोई नित्य गुण है और नित्य की कोई पर्याय है, ऐसा नहीं है। वैसे अनित्य एक धर्म है। अनित्य धर्म है, वह पलटता है, इस अपेक्षा से अनित्य कहा। परन्तु अनित्य कोई गुण है और उसकी कोई पर्याय है, ऐसा नहीं है। और यह तो गुण है। विरुद्धशक्ति नाम का एक गुण है। आहाहा!

मुमुक्षु : वर्तमान में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान में विरुद्धशक्ति, तत्रूप से है और अतत्रूप से नहीं, ऐसी विरुद्धशक्ति का परिणमन है। समझ में आया? अपने ज्ञानरूप से ज्ञान रहता है, अज्ञानरूप नहीं होता। वीतरागरूप वीतरागता रहती है, वह रागरूप नहीं होती। आनन्दरूप आनन्द की पर्याय रहती है, वह दुःखरूप नहीं होती। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है, बापू! यह तत्-अतत्।

निश्चय से अपने से परिणमता है और व्यवहार से नहीं परिणमता, यह तत्-अतत् है। आहाहा! चौदह बोल में तो तत्-अतत् के साथ स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अस्ति, परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नास्ति, ऐसे आठ बोल अलग लिये हैं न? इसलिए पहले तत्-अतत् में ज्ञान और ज्ञेय सम्बन्धी ही बात की है, दूसरे गुण साथ में नहीं, एक ज्ञानगुण के साथ बात ली है। क्या कहा, समझ में आया? तत्-अतत् में ज्ञानगुण से है ज्ञेय से नहीं इतना सिद्ध किया है। फिर आठ बोल आते हैं। चौदह बोल हैं न? तत्-अतत्, एक-अनेक, स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है, पर से नहीं, यह आठ और नित्य-अनित्य। समझ में आया? ऐसे चौदह बोल वहाँ लिये हैं। स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है, परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नहीं, यह आठ बोल हुए। और तत्-अतत् दो, एक-अनेक दो, बारह हुए और नित्य-अनित्य ये दो होकर चौदह हुए। आहाहा! ऐसी सब बातें लम्बी। मूल अनेक प्रकार के विपरीत शल्य हैं न? उनका निषेध करने, शल्य का नाश करने के लिये अनेक

प्रकार का ज्ञान करना पड़ता है। समझ में आया? किसी की कुछ मान्यता है, किसी की कुछ मान्यता है। तो विरुद्ध है, उसका नाश करने का स्वभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : कहाँ तक याद रखना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ याद रखने की बात नहीं, अन्दर भाव में उत्कीर्ण कर डालना। आहाहा!....

अपना स्वभाव अपने से है, पर से नहीं। वहाँ प्रवचनसार में १९९ गाथा में तो यहाँ तक कहा कि, अपने ज्ञान में अनन्त ज्ञेय उत्कीर्ण हो गये हैं, प्रविष्ट हो गये हैं। ऐसा आता है। अन्दर कीलित हो गये हैं। यह तो निमित्त से कथन है। ज्ञेय सम्बन्धी का ज्ञान यहाँ हो गया है। समझ में आया? आहाहा! अब ऐसी बातें। चारों पहलुओं से सत्य न समझे तो एकान्त हो जाता है। और यहाँ एकान्त ऐसा कहते हैं कि तुम व्यवहार से भी मानो और निमित्त से भी मानो, नहीं तो एकान्त है, ऐसा (लोग) कहते हैं। आहाहा! और ऐसा कि यह व्रत, तप और भक्ति करते हैं इनसे भी धर्म है, ऐसा मानो, नहीं तो एकान्त हो जाता है, ऐसा कहते हैं। कहो, डाह्याभाई! शुभराग तो अधर्म है।

मुमुक्षु : सोनगढ़ में एकदम एकान्त है, आत्मा का हित करने के लिये एकान्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकान्त है, सम्यक् एकान्त है। समझ में आया?

(संवत्) १९८५ का वर्ष था, पोष महीना था। कितने वर्ष हुए? ४८। पचास में दो कम। हम सम्प्रदाय में थे न? बोटाद। तीन सौ घर, पन्द्रह सौ लोग हमेशा (आवे)। हमारी प्रतिष्ठा बहुत थी न! हमारे व्याख्यान में लोग... लोग... लोग चींटियों की तरह उमड़ते थे। पचास वर्ष पहले! यह १९८५ की बात है। पोष महीना।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : तत्त्व की बात निकलती थी। अन्यत्र कहीं नहीं थी, इसलिए लोग बहुत कहते, ओहोहो! महाराज के आस-पास केवलज्ञान घूमता है। ऐसा लोग कहते। सम्प्रदाय में प्रतिष्ठा बहुत थी न! यहाँ तो दूसरा कहना है कि, १९८५ के पोष महीने में सम्प्रदाय में ऐसा कहा, सभा-बड़ी सभा, लाखोंपति, पचास-पचास हजार की एक वर्ष की आमदनी हो, ऐसे रायचन्द गाँधी आदि भी बैठे थे, सब बैठे थे, पूरा उपाश्रय भर जाता

था। उपाश्रय में तो समाते नहीं परन्तु पीछे का खाली भाग... सड़क... क्या कहलाती है ? गली... गली। गली में लोग।

दो शब्द कहे, जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह धर्म नहीं। ४८ वर्ष पहले, तुम्हारे जन्म से पहले। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे... धर्म से बन्धन नहीं होता, इसलिए जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधे, वह धर्म नहीं है। धीरे से कहा, शान्ति से कहें तो अधर्म है। हमारी प्रतिष्ठा थी, इसलिए बहुत खलबलाहट नहीं हुआ। हमारे गुरुभाई एक साधु थे, उन्हें ठीक नहीं लगा। वे जरा ऐसा बोल गये, परन्तु उनका कोई सुने नहीं। प्रतिष्ठा हमारी थी, इसलिए दूसरे का कोई सुने नहीं। वे जरा बोल गये, वोसरे... वोसरे। यह श्रद्धा वोसरे... वोसरे। वोसरे समझे ? यह श्रद्धा नहीं चाहिए, नहीं चाहिए। ऐसा कहकर उठ गये परन्तु लोग कुछ समझे नहीं। व्याख्यान पूरा हुआ, पश्चात् कहा, बैठे रहना था न! तुमने क्या कहा, यह लोग कुछ समझते हैं। तुमने क्या कहा, इसका ध्यान भी नहीं दिया। ध्यान ही नहीं दिया। कौन ध्यान दे ? हमारी बात सुनते थे, उसमें कौन ध्यान दे ? कहा, जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह भाव धर्म नहीं है, अधर्म है। एक बात। और पंच महाव्रत के परिणाम, वह आस्रव है, धर्म नहीं। सभा में ४८ वर्ष पहले सम्प्रदाय में कहा था।

मुमुक्षु : सिंह की तरह गर्जना की।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु तो यह है, बापू! मार्ग यह है। आहाहा! जिस भाव से बन्ध हो, वह भाव धर्म नहीं। धर्म परिणाम तो अबन्धस्वभावी है। क्योंकि भगवान आत्मा अबन्धस्वरूपी है। उसके परिणाम मोक्ष का मार्ग, वह अबन्धपरिणामी है। वह अबन्धपरिणाम बन्ध का कारण हो, ऐसा नहीं होता। और जो बन्ध का कारण हो, वह अधर्म है, धर्म नहीं। चन्दुभाई! आहाहा! लोग तो सुनते थे। हमारी तो प्रतिष्ठा बहुत थी न! हम दिगम्बर शास्त्र पढ़ते तो भी लोग शंका नहीं करे। महाराज को ठीक लगता है, वैसा करते होंगे। सम्प्रदाय में सब देखा था न! आदिपुराण, तत्त्वार्थ राजवार्तिक, समयसार, प्रवचनसार, सब देखा था, सब सम्प्रदाय में देखा था। आहाहा! मैंने कहा, मैं यहाँ आ गया हूँ, इसलिए यहाँ रहूँगा, ऐसा मैं नहीं। आहाहा! मैं तो क्षण में छोड़ दूँगा यदि कोई प्रतिकूलता करेगा तो। लोग घबराते थे। कुछ नहीं कहना, हों! नहीं अभी मुँहपत्ती छोड़ देंगे।

यहाँ तो एक महाव्रत के परिणाम आस्त्रव और बन्ध का कारण है और जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव अधर्म है।

मुमुक्षु : धर्म नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न! धर्म नहीं, पहले ऐसा कहा था। पहले कहकर फिर कहा, दूसरी भाषा में कहें तो धर्म नहीं, इसलिए अधर्म है।

यहाँ कहते हैं कि अपना स्वरूप जो तत्‌रूप, ज्ञायकरूप, आनन्दरूप है, उसकी परिणति आनन्दरूप होती है। और अतत्, परद्रव्यरूप नहीं। परज्ञेयरूप नहीं तो पर के अभावरूप परिणति होती है। अपने स्वभाव की अस्तिरूप परिणति होती है और पर के अभावरूप परिणति होती है। यह विरुद्धशक्ति नाम का एक धर्म है। आहाहा! व्यवहार से भी होता है और निश्चय से भी होता है तो विरुद्धशक्ति नहीं रही। विरुद्धशक्ति का अभाव हुआ। क्या कहा, समझ में आया? विरुद्धशक्ति है। आहाहा! अपने से है, ज्ञान, आनन्दस्वरूप से भगवान आत्मा है और ज्ञेयस्वरूप और व्यवहारस्वरूप से नहीं। अतत्-व्यवहार से नहीं। ऐसी विरुद्धशक्ति नाम का एक गुण है। यह गुण है, हों! इस गुण की परिणति—पर्याय है। नित्य-अनित्य धर्म है, उसकी परिणति—पर्याय नहीं है। यह तो गुण है। विरुद्ध नाम का आत्मा में एक गुण है। आहाहा!

यह विरुद्धशक्ति किसे होती है? अनेक मानते हों उसे हो। एक ही माने, उसमें विरुद्ध कहाँ आया? समझ में आया? वेदान्त एक ही आत्मा सर्वव्यापक मानता है। एक सर्वव्यापक शुद्ध निर्मल निर्मल है। उसमें विरुद्ध कहाँ आया? यह तो विरुद्ध है, ऐसा सिद्ध करना है। अपना स्वभाव अपने से है और व्यवहार से और परद्रव्य से नहीं, ऐसा विरुद्धशक्ति नाम का गुण है। वह गुण है और गुण की परिणति भी है। विरुद्धशक्ति की परिणति अपने विरुद्ध स्वभाव के परिणमन में राग और पर का परिणमन नहीं है, यह विरुद्धशक्ति का परिणमन है। समझ में आया? आहाहा! इसमें तो व्यवहार से नहीं, ऐसा परिणमन है, यह आया। पर्याय में व्यवहार का परिणमन नहीं। अपने स्वभाव का परिणमन है और व्यवहार का परिणमन नहीं, इसका नाम विरुद्धशक्ति गिनने में आया है। तो व्यवहार से होता है, यह बात उड़ जाती है। समझ में आया? व्यवहार का तो अभाव है। यहाँ व्यवहार की बात है ही नहीं। यहाँ तो द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों निर्मल की बात है। शक्ति

का वर्णन है न! शक्ति तो निर्मल है तो उसका परिणमन भी निर्मल है। विकार का परिणमन यहाँ गिना ही नहीं। उसका अभाव गिनने में आया है। आहाहा! समझ में आया?

तद्रूपमयता... भाषा देखी? **तद्रूपमयता...** अपना स्वभाव तद्रूपमयपना। तद्रूपवाला, ऐसा भी नहीं। तद्रूपमयता, तद्रूपमय। है? आहाहा! **और अतद्रूपमयता...** अतद्रूपमय। व्यवहार और परद्रव्य से आत्मा अतद्रूपमय है। अतद्रूपमय है। तद्रूपमय है और पर से अतद्रूपमय है। अतद्रूपमय—बिल्कुल राग से परिणमन होता है या पर के सद्भाव से यहाँ परिणमन होता है, ऐसा है ही नहीं। आहाहा! एक शक्ति में से बहुत निकाला है।

तद्रूपमय—अपने निर्मल अनन्त धर्म, अनन्त गुण उनमें तद्रूपमय परिणमन है और ज्ञेय तथा व्यवहार से अतद्रूपमय है। उसमें बिल्कुल व्यवहार तन्मय नहीं।

मुमुक्षु : तो फिर बेचारे कर्म का क्या होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म तो कहीं रह गये, कर्म के घर में रह गये। कर्म का तो अभाव है, अतद्मय है। कर्म का तो अतद्रूप आत्मा में स्वभाव है। यह तो कहे, कर्म के उदय से विकार होता है। यहाँ तो विकार और उदय का दोनों का अतद्भाव है। दोनों का अतद्भाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : परन्तु उससे क्या होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या होगा क्या? उसमें रहेगा। विकार विकार में रहेगा। निर्विकार परिणति है, उसमें वह नहीं आता। निश्चय से तो उसे वस्तु ही गिनने में नहीं आयी। समझ में आया? परमार्थ से तो विकार वस्तु ही गिनने में नहीं आयी। अपने में, हों! परवस्तुरूप से है। क्या कहा, समझ में आया? व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प शुभराग का अपने में गिनने में आया ही नहीं। तन्मय में वह है ही नहीं। अतन्मय में है, इससे उसका अभाव है। वह एक विरुद्धशक्ति नाम का गुण है। वह प्रत्येक गुण में लागू पड़ता है। प्रत्येक गुण में विरुद्धशक्ति है। समझ में आया? चारित्रगुण है, वह वीतरागरूप परिणमता है और रागरूप नहीं। आनन्दगुण है, वह आनन्दरूप परिणमता है और दु:खरूप नहीं। ऐसी उसमें विरुद्धशक्ति है।

और अतद्रूपमयता जिसका लक्षण है... किसका? किसका? जिसका लक्षण अर्थात् किसका? **ऐसी विरुद्धधर्मत्वशक्ति।** विरुद्धधर्मत्व, विरुद्धधर्मपना, विरुद्धधर्मपना ऐसी शक्ति है। आहाहा! उसका बहुत लम्बा अर्थ है। अपना भगवान आत्मा पवित्र अनन्त धर्म गुण है, उनसे परिणति तन्मय है। और रागादि का तथा पर आदि का अतन्मयरूप भाव है। आहाहा! वस्तु और वस्तु की पर्याय में भी, यहाँ तो पर्याय में भी, अपने अनन्त गुण का तन्मय परिणमन होता है और विकार तथा पर का अतन्मयरूप परिणमन होता है। विकार व्यवहार का परिणमन उसमें अस्तिरूप से है, ऐसा गिनने में आया ही नहीं। समझ में आया? जिनेश्वरदासजी! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! यह तो अब अन्तिम बातें हैं। ४३ वर्ष हुए। यहाँ चालीस और तीन हुए। जो वस्तु है, उसका स्पष्टीकरण तो बराबर आना चाहिए न! बहुत विरोध करते हैं तो विरोध के सामने बहुत स्पष्ट होता है। आहाहा!

विरुद्धशक्ति का तत्त्व, अपने अनन्त गुण जो आनन्द आदि शक्तियाँ हैं, उस रूप परिणमन है, वह तन्मय शक्ति है और रागादि तथा पर से नहीं, वह अतद्रूप शक्ति है। अपने में रागरूप परिणमन है ही नहीं। उसे आत्मा ही नहीं कहते। आहाहा! समझ में आया? राग का परिणमन अपने में है, वह आत्मा ही नहीं है। आहाहा! वह अनात्मा में जाता है, परद्रव्य में जाता है।

मुमुक्षु : नया धर्म निकाला...

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि काल का है। बिल्ली होती है न? बिल्ली। उसे बच्चा हो, उसको एक जगह सात दिन रखती है। क्योंकि बालक आदतन हो जाये! सात दिन में बदलती है। ऐसे करते-करते सात बार बदलती है। फिर आँख खोले, तब जगत देखे। जगत तो है। परन्तु तेरी आँख नहीं थी, तब भी जगत तो था। तुझे आँख हुई और जगत दिखाई दिया तो जगत है, ऐसा नहीं है। उसी प्रकार यह नया पन्थ नहीं है, यह तो अनादि का पन्थ है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २५, शक्ति- २९, रविवार, (द्वितीय) श्रावण कृष्ण ७, दिनांक ०४-०९-१९७७

यह समयसार शक्ति का अधिकार है। आत्मा में अनन्त शक्तियाँ हैं। अनन्त शक्ति का वर्णन तो कर नहीं सकते। इसलिए चालीस और सात, ऐसी (४७) शक्ति का वर्णन किया है। नय में भी ४७ नय लिये हैं। उपादान-निमित्त में भी भैया भगवतीदास ने ४७ दोहे लिये हैं, चार घातिकर्म की प्रकृति भी ४७ है। उनका नाश करने का उपाय है। समझ में आया? चार घातिकर्म है न? उसकी प्रकृति भी ४७ है और उपादान-निमित्त के दोहे भी ४७ हैं। भैया भगवतीदास। प्रवचनसार में नय भी ४७ हैं। ४७ समझे? चार और सात। यह शक्तियाँ भी ४७ ली हैं। आहाहा! द्रव्यसंग्रह में यह ४७वीं गाथा है न? **'दुविहं पि मोक्खहेउं'**। द्रव्यसंग्रह में ४७वीं गाथा है, चार और सात, वहाँ भी यह वर्णन है। **'दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदिं जं मुणी णियमा।'** क्या कहते हैं? अपने आत्मा का अनुभव निश्चयमोक्षमार्ग ध्यान में प्राप्त होता है। ऊपर-ऊपर से किसी ने धारणा कर ली हो, ऐसी कोई वस्तु नहीं है। आहाहा! अपने आत्मा को ध्येय बनाकर विकल्प से रहित, अपनी ज्ञानपर्याय में द्रव्य को ध्येय बनाकर...

कल रात्रि में प्रश्न था। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय। रात्रि का प्रश्न ध्याता, ध्यान और ध्येय का था। परन्तु श्लोक में ऐसा आया कि ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान। भाई! रात्रि में प्रश्न हुआ था। ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान तीनों आत्मा है। ज्ञेय भी आत्मा, ज्ञान भी आत्मा और ज्ञाता भी आत्मा। आहाहा! समझ में आया? उसमें ऐसा लिया है कि ज्ञेय एक शक्ति है। पण्डितजी! कलश-टीका में लिया है। इसमें नहीं। कलश-टीका। ज्ञान एक शक्ति है और ज्ञाता अनन्त शक्ति सम्पन्न है। भाई! चन्दुभाई! ज्ञाता—भगवान आत्मा ज्ञाता अनन्त शक्ति सम्पन्न है। ज्ञेय एक शक्ति है और ज्ञान एक शक्ति है। समझ में आया? रात्रि चर्चा में चर्चा नहीं हुई थी? ध्यान, ध्याता और ध्येय। परन्तु मेरा लक्ष्य तो ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान पर था। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

अन्तर भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, यहाँ तो शक्ति का वर्णन चलता है। शक्ति और शक्तिवान, ऐसा जिसमें भेद नहीं। आहाहा! ऐसी अभेददृष्टि करके ध्यान में अन्दर में एकाग्रता होना... आहाहा! जिसमें विकल्प मैं ऐसा हूँ, मैं ऐसा हूँ—ऐसे विकल्प का भी

जिसमें अभाव है। ऐसा अपना स्वरूप ध्यान में निश्चयमोक्षमार्ग प्रगट होता है। ध्यान में निश्चय स्वआश्रय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र होते हैं और ध्यान में व्यवहारमोक्षमार्ग प्रगट होता है। अर्थात् स्वरूप सन्मुख का ध्यान होने से जितना स्वाश्रय लिया, उतना दर्शन, ज्ञान, चारित्र निर्मल है। अब तत्त्वशक्ति में आयेगा। समझ में आया? और राग बाकी रहा उसे मोक्षमार्ग का व्यवहार किया गया है। ध्यान में दोनों मार्ग प्राप्त होते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है।

तद्रूपभवनरूपा तत्त्वशक्तिः।

तद्रूप भवनरूप ऐसी तत्त्वशक्ति। (तत्स्वरूप होनेरूप अथवा तत्स्वरूप परिणमनरूप ऐसी तत्त्वशक्ति आत्मा में है। इस शक्ति से चेतन चेतनरूप से रहता है-परिणमित होता है।)।२९।

यहाँ अपने शक्ति चलती है। २८ तो चल गयी न? अब २९। थोड़े शब्द हैं परन्तु इसमें बड़ा भण्डार है। क्या कहते हैं? सुनो! **तद्रूप भवनरूप**... आत्मा में ऐसी एक शक्ति है, गुण है, सत् का सत्त्व है, स्वभाव है, तत्त्व नाम की शक्ति स्वभाव उसके अन्दर है, उसका स्वरूप क्या? कि **तद्रूप भवनरूप**... अपना सहजात्मस्वरूप आत्मा अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में तद्‌रूप है। यहाँ यह लेना है। अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव; विकार भी नहीं। आहाहा! अपना द्रव्य ज्ञायकभाव; क्षेत्र असंख्य प्रदेशी; काल त्रिकाल और भाव भी त्रिकाल। ऐसी वस्तु के ऊपर तद्‌रूप होना, उस रूप परिणमन होना। सूक्ष्म है, भाई! धर्म कोई अलौकिक बात है। लोगों ने बाहर से कल्पना की है, वह कोई धर्म नहीं। यह दया, दान और दो-पाँच लाख खर्च किये तो धर्म हो जायेगा। धूल में भी धर्म नहीं। तेरे लाख क्या, करोड़ खर्च कर न! वह तो जड़ वस्तु है। आहाहा! और जड़ मेरे हैं, ऐसा मानकर देता है, वह तो मिथ्यात्व का सेवन करता है।

यहाँ तो तत्त्व में यहाँ तक कहना है, तद्‌रूप भवनरूप। जैसा ज्ञायकभाव सदृश है, क्षेत्र असंख्य प्रदेशी हैं, वह द्रव्य कहो या वह असंख्यप्रदेशी क्षेत्र कहो और काल अपने त्रिकाली स्वरूप को काल कहो, और उस त्रिकाली भाव को भाव कहो। समझ में आया? **तद्रूप भवनरूप**... उसरूप परिणमन। भवन शब्द पड़ा है न? आहाहा! तत्त्वशक्ति का

अर्थ ऐसा है कि भगवान आनन्दस्वरूप ज्ञायकस्वरूप शुद्धस्वरूप परमपवित्र प्रभुत्वशक्ति स्वरूप, ऐसा तत्त्व, तद्रूप होना—उसरूप भवन होना, वह तत्त्वशक्ति का स्वरूप है। अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से तद्रूप होना। थोड़ा सूक्ष्म है। उसमें राग का भी अभाव है। उस तद्रूप में राग नहीं आता। समझ में आया?

ज्ञायक चैतन्यदल प्रभु, असंख्य प्रदेश जिसका देश है और उसमें अनन्त-अनन्त गुण उसके देश में गाँव है और एक-एक गाँव में अनेक बस्ती होती है, वैसे एक-एक शक्ति की अनन्त पर्याय—प्रजा है। ऐसा अपना स्वरूप द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावस्वरूप। यहाँ शुद्ध लेना, हों! पर्याय में राग है, वह अपना काल नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नयत्ररूप होना, वह स्वकाल नहीं। वह अपनी स्थिति नहीं। उसमें तद्रूप नहीं आता। जिनेश्वरदासजी! वस्तु बहुत सूक्ष्म है, भाई! अभी तो लोग बाहर में (रुक गये हैं)। निवृत्ति नहीं। अभी तो निर्णय करने का भी ठिकाना नहीं होता। पूरे दिन संसार... संसार... संसार। अरे! भगवान! तुझे कहाँ जाना है? आहाहा! अपने स्वरूप में तद्रूप रहना, वहाँ जाना है। धन्नालालजी! तत्त्वशक्ति।

दीपचन्दजी ने ऐसा डाला है, भाई! दीपचन्दजी ने इस अतत्त्वशक्ति में परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का अभाव, ऐसा डाला है। उसका अर्थ तत्त्वशक्ति में स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का सद्भाव है। दीपचन्दजी ने ज्ञानदर्पण में (ऐसा लिया है)। ज्ञानदर्पण है न? तुम्हें दिया है न? क्या कहते हैं? सुनो! बापू! यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ (कहे) और जो धर्म सुनने के लिये इन्द्र और इन्द्राणी (आवे)। दोनों एक भवतारी हैं, एक भव में मोक्ष जानेवाले हैं, सौधर्म देवलोक, बत्तीस लाख विमान, एक-एक विमान में असंख्य तो देव हैं। कोई विमान छोटे हैं, संख्यात भी है। बाकी तो बत्तीस लाख विमान में एक-एक विमान में असंख्य देव। और हजारों तो जिन्हें इन्द्राणियाँ हैं। उसमें से एक इन्द्राणी जो है, वह एक भवतारी है। क्या कहा? वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष में जानेवाली है। अभी सौधर्म देवलोक में है। इतनी बाहर की समृद्धि, सम्पत्ति, ऋद्धि है परन्तु अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में नहीं है। ऐसा सम्यग्दृष्टि मानता है और ऐसा अनुभव करता है। समझ में आया? आहाहा! सम्यग्दर्शन यह क्या वस्तु है और सम्यग्दर्शन का विषय अलौकिक अद्भुत बात है, भाई! साधारण लोगों को पता लगे, ऐसी बात नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं, **तद्रूप भवनरूप...** आनन्दस्वरूप ज्ञायकस्वरूप शुद्धस्वरूप पवित्रस्वरूप द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से, उसरूप यहाँ परिणमन होना। भवन है न? शक्ति का स्वरूप ही यह है कि तद्रूप भवन होना। शुद्ध आनन्दरूप, शुद्ध ज्ञानरूप, शुद्ध समकितरूप और शुद्ध चारित्ररूप, शुद्ध प्रभुत्व—ईश्वररूप, शुद्धरूप, तद्रूप परिणमन होना, वह तत्त्वशक्ति का स्वरूप है। अरे! ऐसी बातें लोगों ने कभी सुनी न हो। बाहर की कड़ाकूट। भगवान के दर्शन किये और मन्दिर बनाये और दो-पाँच, पचास लाख खर्च किये... समझ में आया?

यह भभूतमल नहीं आये थे? भभूतमल मारवाड़ी है न? आये थे। परसों मारवाड़ी मिलने आये थे। भभूतमल है श्वेताम्बर, बेंगलोर में है। दो करोड़ रुपये हैं। उसने आठ लाख रुपये खर्च किये। अपना दिगम्बर मन्दिर बनाया। आठ लाख (खर्च किये)। उसमें क्या हुआ? बारह लाख का मन्दिर बनाया। अभी हम पंचकल्याणक में गये थे। बेंगलोर। एक भभूतमल मारवाड़ी है, उनके पास दो करोड़ हैं और एक स्थानकवासी जुगराजजी मुम्बई में हैं। उनका महावीर मार्केट है, मार्केट घर का है। करोड़पति स्थानकवासी है।

मुमुक्षु : अभी भले न हो परन्तु उसके फल में हो जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी उसमें से नहीं होगा। उसमें दृष्टि मिथ्यात्व है, वहाँ तो पुण्यानुबन्धी पुण्य भी नहीं बँधेगा। जिसकी दृष्टि शुद्ध चैतन्यस्वरूप तद्रूप परिणमने की दृष्टि हुई और परिणमन है, तद्रूप परिणमन तत्त्वशक्ति का स्वरूप है। उसमें जो शुभराग है, उसका तो यहाँ अभाव गिनने में आया है। तथापि शुभराग हो, उसमें पुण्य बँध जायेगा। समझ में आया? वह पुण्यबन्ध होगा, वह पुण्यानुबन्धी (होगा)। भविष्य में वह पुण्य भी छोड़कर स्वरूप में स्थिर हो जायेगा। आहाहा!

अज्ञानी, जिसे अभी दृष्टि में राग की रुचि है और परवस्तु लक्ष्मी पर अभी प्रेम है। अपनी चीज़ को भूलकर पर के प्रति अधिक प्रेम है, वह तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव है। चाहे तो वह मन्दिर के नाम से करोड़ों रुपये खर्च करे। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! यहाँ तो, सेठ!

मुमुक्षु : उसमें भी दो उद्देश्य है। आपका प्रवचन सुनने को मिले और मन्दिर भी हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिले तो क्या हुआ उसमें? यहाँ तो भगवान तो कहते हैं कि हमारी वाणी सुनने को मिले, उसमें राग होगा। (समयसार) कर्ता-कर्म अधिकार की ७४ गाथा में कहा है, कि आस्रव कैसे हैं? वर्तमान दु:खरूप है। पुण्य के भाव दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव वर्तमान दु:खरूप है और भविष्य में दु:ख का कारण है। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! बहुत सूक्ष्म तत्त्व। आहाहा! यह क्या कहा? शुभभाव वर्तमान दु:खरूप है और उससे पुण्य बँधेगा और उससे कदाचित् वीतराग की वाणी आदि संयोग मिलेंगे तो भी वाणी सुनने में लक्ष्य है, तो वह राग है। पाटनीजी!

मुमुक्षु : करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहते हैं, राग से भिन्न होकर अनुभव करना, यह करना है। आहाहा! ७४ गाथा। ज्ञानचन्दजी! छह बोल हैं न? छह बोल हैं। छठवाँ बोल ऐसा है। आहाहा!

भगवान आत्मा! पुण्य और पाप के भाव दोनों अशुचि है, जड़ है, तद्रूप परिणमन में वे नहीं आते, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? तद्रूप शक्ति का स्वरूप है, उसमें रागरूप परिणमन आता ही नहीं। आहाहा! सूक्ष्म है। सेठ कहाँ है? फिरोजाबाद। बैठे हैं? सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा!

कहते हैं कि जो शुभभाव है, वह अशुचि है, भगवान तो पवित्र परमात्मस्वरूप है। दोनों का भेदज्ञान करना, इसका नाम धर्म है। यह (आस्रव) अशुचि है और जड़ है। शुभभाव दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा का शुभभाव, वह जड़ है। यहाँ यह कहना है कि तद्रूप परिणमन में वे नहीं आते। नेमचन्दभाई! आहाहा! उसमें तत्त्वशक्ति पड़ी है। भगवान आत्मा में तत्त्वशक्ति है तो उस शक्ति का कार्य क्या? तत्त्वशक्ति तो ध्रुव है। उसके परिणमन बिना यह शक्ति है, उसकी प्रतीति किस प्रकार आवे? तो उसका परिणमन तद्रूप भवन (होना यह है)। ऐसे शब्द हैं। परिणमन में आनन्दरूप होना, परिणमन में ज्ञातारूप होना, शान्तिरूप—अकषायरूप—वीतरागभावरूप परिणमन होना, वह तत्त्वशक्ति का तद्रूप भवन कहा जाता है। रागरूप होना, उसका तो यहाँ अभाव है। आहाहा! समझ में आया? वह जड़ है, वह चैतन्य नहीं। राग में चैतन्यप्रकाश का अंश नहीं है। यह शक्ति है न? भाई! इन शब्द है, शब्द में बहुत गम्भीरता भरी है। आहाहा!

परसों के दिन कहा था न ? जगत, जगत तीन अक्षर हैं। ज-ग-त। कानोमात्रा बिना के। जगत। जगत की व्याख्या क्या ? जगत में छह द्रव्य हैं, अनन्त सिद्ध हैं, अनन्त निगोद है, यह सब जगत में आया। ऐसे इस तत्त्वशक्ति में कितना आया ? समझ में आया ? थोड़े शब्द हैं, भाई ! आहाहा !

तद्रूप भवन... तद्‌रूप—अपने स्वरूपरूप से परिणमन। आहाहा ! शरीररूप तो है ही नहीं, वह तो पर जड़ है, मिट्टी-धूल है। आहाहा ! कल इन्दौर का आया है न ? रतनलालजी गये या हैं ? वे जानेवाले हैं। गंगवाल... गंगवाल। गये ? हैं। कहाँ हैं ? बहुत दिन से हैं। यह उनके गाँव के हैं। कोई इन्दौरीलाल है। यह उसे जानते हैं। कल ऐसा आया है कि मिट्टी में कर्तृत्वशक्ति है नहीं कि घड़ा बनावे। कर्तृत्वशक्ति कुम्हार में है तो घड़ा बनाता है। अरे ! भगवान ! तुझे खबर नहीं, प्रभु ! एक-एक परमाणु में कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, ऐसी छह शक्तियाँ हैं। एक-एक परमाणु में ! आहाहा !

एक बात तो ऐसी ली है कि नरक में जैसे स्वर्ग का सुख नहीं, नारकी में स्वर्ग का सुख नहीं, स्वर्ग में नारकी का दुःख नहीं, परमाणु में पीड़ा नहीं। परमाणु में पीड़ा है ? वैसे भगवान में विकार नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? यह शब्द दीपचन्दजी ने लिया है। दीपचन्दजी ने यह सिद्धान्त सिद्ध करने के लिये (ऐसे शब्द) लिये हैं।

मुमुक्षु : भगवान अर्थात् अरिहन्त ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भगवान आत्मा। वे भगवान तो दूर रहे। समझ में आया ? सात नरक में कहीं स्वर्ग के सुख की गन्ध नहीं, अभाव है। ऐसे स्वर्ग में नरक के दुःख का अभाव है। आहाहा ! वैसे एक परमाणु में पीड़ा का अभाव है। जड़ में पीड़ा क्या ? समझ में आया ? उसी प्रकार भगवान त्रिलोकनाथ आत्मा में विकार और शरीर का अभाव है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बातें कहाँ हैं ? कहाँ पड़ी है ? मेरा क्या होगा ? कहाँ जायेगा ? भाई ! यह देह की स्थिति तो पच्चीस, पचास, साठ, सत्तर वर्ष की है। फिर कहाँ जाना है ? रहना तो है न ! आत्मा तो अनन्त काल रहेगा। तो अनन्त काल कहाँ रहेगा ? जिसने राग पर रुचि की है तो रागरूपी रुचि-मिथ्यात्व में भविष्य में रहेगा... आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि जैसे नरक में स्वर्ग का सुख... स्वर्ग का सुख, हों ! आत्मा के सुख

की तो बात ही नहीं। जैसे सातवें नरक में सातवें नरक के किसी नारकी को स्वर्ग के सुख का अभाव है, वैसे स्वर्ग के देव को नारकी के दु:ख का अभाव है। आहाहा! इसी प्रकार एक परमाणु में पीड़ा का (अभाव है)। जड़ में क्या पीड़ा? वैसे भगवान आत्मा में विकार का अभाव है। पुण्य और पाप के विकार का प्रभु आत्मा में अभाव है। जिनेश्वरदासजी! ऐसी बात है, बापू! क्या हो? लोग बाहर में मर गये। पैसा, शरीर, स्त्री और पुत्र ... आहाहा! हजीरा—बड़ा मकान बनाया। ऐई! पोपटभाई! तुम्हारी बात की थी। पोपटभाई बैठे हैं न? भाई! इनके साले के पास दो अरब चालीस करोड़ हैं। देखो! सामने बैठे हैं। यह पोपटभाई बैठे हैं। इनका साला अभी गुजर गया। दो अरब चालीस करोड़। हमारे बनिया की जाति दशाश्रीमाली कहलाती है न? दशाश्रीमाली बनिया स्थानकवासी था। दो सौ चालीस करोड़। धूल। मरकर गया ढोर में। ढोर समझते हो? पशु... पशु।

मुमुक्षु : मरकर जाना कहाँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ जाये? बहुत पशु में जानेवाले हैं। समझ में आया? हमारे घर की बात है। हमारी बुआ का लड़का था, वह भागीदार था। (संवत्) १९६६ के वर्ष की बात है। १९६६, संवत् १९६६। कितने वर्ष हुए? ६७। दो दुकानें थी। तीस लोग थे। एक रसोई में सब भोजन करते थे। मेरी दुकान में काम करते थे। मैं तो पहले से भगत कहलाता था। छोटी उम्र से भगत कहलाता था। दुकान पर काम करता था परन्तु साधु आवे तो मैं दुकान छोड़ देता। वहीं रहता, इसलिए भगत कहते थे। शाम को आहार करने गया। हमारे भाई भागीदार थे। बड़े भाई के भागीदार थे। उनके बड़े भाई मेरे भागीदार थे। पालेज में दो दुकानें थीं। कुँवरजीभाई थे, वे मुझसे चार वर्ष बड़े थे। उस समय तो दुकान की वर्ष की लगभग पाँच हजार की आमदनी होगी। १९६६ का वर्ष। परन्तु फिर उसकी लोलुपता मैंने इतनी देखी कि यह क्या है? कुछ नहीं। साधु आवे तो सुनना, विचारना (कुछ नहीं)। रात्रि में आठ बजे जाये। साधु गाँव में आवे तो रात्रि में आठ बजे जाये। पूरे दिन सामने न देखे। इतनी लोलुपता... मैं कमाता हूँ, मैं कमाता हूँ, मैं कमाता हूँ... सेठ! मेरी बीस वर्ष की उम्र थी। यह पहले की बात है। मैंने कहा, भाई! कुँवरजीभाई! मेरा भगत नाम था, इसलिए मेरे सामने कोई बोलते नहीं। मुझसे बड़ी उम्र थी परन्तु बोलते नहीं। भाई! कुँवरजीभाई! मुझे तो ऐसा लगता है कि अपन तो बनिया हैं, इसलिए शराब, माँस खाते नहीं, इसलिए

तुम नरक में तो नहीं जाओगे। मुझे तो ऐसा लगता है, भाई! देवलोक में जाने के तुम्हारे लक्षण नहीं। तुम मनुष्य मरकर मनुष्य होओगे, यह मुझे दिखता नहीं। ऐ... ! जिनेश्वरदासजी! दुकान की पेढी पर बैठे थे। पेढ़ी समझे ? मैं भोजन करने गया था। सुनें, हों! मेरे सामने कोई बोलते नहीं। भगत का सुनो। उनके सामने कुछ नहीं बोला जाता। मैंने कहा, देखो! याद रखो, मुझे ऐसा भासित होता है कि तुम नरक में नहीं जाओगे, देवलोक में नहीं, मनुष्य में नहीं, तुम्हारे लिये पशु—ढोर का अवतार है। फिर मरते समय तो दो लाख की आमदनी थी। दो लाख की वर्ष की आमदनी। आमदनी समझे ? कमाई। दस लाख रुपये। अब तो बढ़ गये। बहुत अभिमान किया और... मैं करूँ... मैं करूँ... मैं करूँ... मृत्यु के समय मस्तिष्क पागलपन हो गया। पागलपन समझे ? पागल हो गये। देह छूट गयी। आहाहा!

बहुत बनिये जो हैं, वे पशु में जानेवाले हैं। क्योंकि धर्म नहीं और पुण्य का ठिकाना नहीं। धर्म तो राग से भिन्न करने का सम्यग्दर्शन धर्म तो है नहीं। और सच्चा संग करना, सच्चा श्रवण करना, वाँचन करना, यह तो पुण्य है, इसका भी उसे समय नहीं। पाप के कारण, जगत के पाप के कारण पूरे दिन... आहाहा! ऐ... सेठ! हमने तो हमारे घर का दृष्टान्त दिया। हमारे बुआ का पुत्र—भाई भागीदार था। अरे! प्रभु! भाई! यह कहीं बाहर की लक्ष्मी, धूल, इज्जत साथ में नहीं आयेगी। आहाहा! समझ में आया ? ऐई! पोपटभाई! यह पोपटभाई। तुमको बताते थे न ? मुम्बई में प्रमुख बनाये हैं। उनके पास दो करोड़ रुपये हैं। छह लड़के हैं। धूल... धूल। आहाहा!

अरे! प्रभु! एक बात ऐसी है। तिर्यंच संज्ञी और असंज्ञी की संख्या बहुत है। समझ में आया ? संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, ढोर, पशु। और असंज्ञी—मनरहित। उनकी संख्या बहुत है। क्यों बहुत है ? कि शास्त्र में ऐसा लिखा है कि मनुष्य का भव अनन्त काल में मिले तो भी अनन्त बार मिल गया है। और उससे असंख्यगुने अनन्त बार अभी तक नरक में जीव गया है। जो अनन्त मनुष्य के भव हुए, उस संख्या की अपेक्षा असंख्यगुणे अनन्त बार नरक में गया है। मनुष्य तो उनसे असंख्यवें भाग है। तो कहाँ से गये ? पशु में से नरक में बहुत जाते हैं। समझ में आया ?

भगवान सर्वज्ञदेव परमेश्वर ने ऐसा फरमाया है कि अनन्त काल में अनन्त परिभ्रमण करते-करते अनन्त काल में मनुष्य भव मिले तो भी अनन्त बार मिल गया है। पद्मचन्दजी!

यह सब पैसेवाले हैं, यह सब धूलवाले। कहो, समझ में आया? मनुष्यभव की जो संख्या की, अभी तक अनन्त किये, उनसे एक मनुष्यभव और असंख्यभव नरक के। एक मनुष्य और असंख्य नरक। नरक समझे? नारकी। ऐसे मनुष्य की संख्या अपेक्षा असंख्यगुणे अनन्त नरक के भव किये। तो नरक में कहाँ से गये? मनुष्य तो बहुत थोड़े हैं। पशु की संख्या इतनी है और इसमें इतने मनुष्य जाते हैं। समझ में आया? आहाहा! बहुत किसी समय एक-एक समय में पंचेन्द्रिय में से असंख्य नारकी एक समय में उपजते हैं। स्थिति सरीखी नहीं होती। क्या कहा? सरीखी स्थिति नहीं होती। परन्तु एक समय में नरक में पहले से सातवें तक तिर्यंच मरकर जाते हैं तो एक समय में असंख्य मरकर जाते हैं। कि इतनी संख्या है, तिर्यंच की इतनी संख्या। उसमें अनन्त बार भव किये। वहाँ से मरकर सातवें नरक से पहले नरक तक तिर्यंच में से जाते हैं। तिर्यंच सातवें तक जाते हैं। आहाहा! मनुष्य की अपेक्षा असंख्यगुणे अनन्त भव नरक के किये। तो वे असंख्यगुणे अनन्त कहाँ से आये? पंचेन्द्रिय तिर्यंच पशु की इतनी संख्या है... वहाँ इतने जाते हैं और उसमें से इतने निकलते हैं। नरक में जाते हैं। एक समय में एकसाथ असंख्य आवे। स्थिति समान नहीं। समान स्थिति होवे तो... समझ में आया!

इस प्रकार स्वर्ग में भी अभी तक जो मनुष्य की अपेक्षा असंख्यगुणे अनन्त नरक के भव किये, उससे असंख्यगुणे अनन्त स्वर्ग के भव किये। सब प्राणियों ने अभी तक। नारकी की अपेक्षा एक भव नरक का, असंख्य भव स्वर्ग के। एक नरक, असंख्य स्वर्ग। ऐसे स्वर्ग के भव अनन्तगुणे नारकी के भव की अपेक्षा अधिक किये। वहाँ स्वर्ग में कौन गये? नारकी तो जाते नहीं। मनुष्य थोड़े हैं। समझ में आया? जानवर (गये)। जानवर-पशु पंचेन्द्रिय ढाई द्वीप के बाहर इतने हैं... आहाहा! कोई शुभभाव होवे तो स्वर्ग में जाये। एक समय में असंख्य जीव स्वर्ग में उपजें, ऐसे तिर्यंच हैं। समान स्थिति नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : डर के लिये (ऐसा वर्णन है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : डर के लिये... डर नहीं। परिभ्रमण का भय लगना, भव का भय होना चाहिए। दुःख से डरे तब तो... चारों गतियों में दुःख है। नरक में दुःख, मनुष्यपने में दुःख और स्वर्ग में भी अकेला दुःख है।

यहाँ तो दूसरा कहना था कि स्वर्ग में, नरक की अपेक्षा असंख्यगुणे अनन्तभव प्रत्येक प्राणी ने किये। ऐसा भगवान कहते हैं। तो कहाँ से गये? पशु में से। और स्वर्ग की अपेक्षा निगोद के भव अनन्त किये। आहाहा! स्वर्ग के जो अनन्त भव किये, उसकी अपेक्षा अनन्तगुणे तिर्यंच के किये। तिर्यंच में विशेष निगोद लेना। आहाहा! जो एक श्वास में निगोद के अठारह भव करे। डुंगणी... डुंगणी समझे? प्याल, लहसुन, कान्दा। एक टुकड़े में असंख्य शरीर हैं, एक शरीर में अनन्त भव हैं। उसमें एक श्वास में अठारह भव करे। मरे और जीवे, मरे और जीवे... स्वर्ग की संख्या की अपेक्षा अनन्तगुणी संख्या वहाँ है। समझ में आया?

कहते हैं, प्रभु! एक बार भव के अभाव करने की बात सुन तो सही। आहाहा! प्रभु! तुझमें एक तत्त्वशक्ति है, ऐसा परमात्मा कहते हैं। त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ प्रभु केवली महाराज जिनेन्द्रचन्द्र प्रभु... आहाहा! ऐसा कहते हैं, नाथ! तुझमें एक तत्त्वशक्ति है न! प्रभु! आहाहा! उस तत्त्वशक्ति का परिणमन तद्रूप होना, उससे भव का अभाव होता है। आहाहा! शब्द तो थोड़े हैं, परन्तु गम्भीर बहुत है।

तद्रूप भवन... यह शब्द पड़ा है। यहाँ तद्रूप में विकार नहीं लेना। यहाँ शक्ति के परिणमन में विकार है ही नहीं। क्योंकि शक्ति निर्मल है तो उसका परिणमन भी निर्मल ही है। निर्मल शक्ति की क्रमवर्ती पर्याय (निर्मल ही होती है)। क्रमवर्ती पर्याय और अक्रमवर्ती गुण का समुदाय आत्मा है। विकार के साथ समुदाय है, ऐसा आत्मा गिनने में आया ही नहीं, वह आत्मा नहीं है। आहाहा! पहले आया न? पहला शब्द है, पहला शब्द है। **क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तमान, अनन्तधर्म समूह जो कुछ जितना लक्षित होता है, वह समस्त वास्तव में एक आत्मा है।** आहाहा! यह तो इसमें बोल है। एक शक्ति पर बाईस बोल लिखे हैं। हमारे ज्ञानचन्दजी ने लिख लिये हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन न! तुझमें एक तत्त्वरूप शक्ति ऐसी है कि अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप से निर्मलरूप परिणमना, वह तत्त्वशक्ति का कार्य है। आहाहा! तद्रूप है न? तद्रूप आत्मा का स्वरूप तो ज्ञायक और आनन्द है। समझ में आया? आहाहा! एक काँटा लगे, काँटा, तो भी चिल्लाहट मचाता है। आहाहा! अरे! दुःखता है, छूना नहीं, ऐसा कहता है। ऐसे दुःख प्रभु! इस काँटे के दुःख की अपेक्षा नरकी

की पहली स्थिति में दस हजार वर्ष उपजे, वह काँटे के दु:ख की अपेक्षा अनन्तगुणा दु:ख है। आहाहा! उस दु:ख से निवृत्त होने का उपाय यह एक है। भगवान आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, चिद्घन, प्रभुत्वस्वरूप है, उसरूप भवन (होना), उसरूप परिणमन करना। आहाहा! समझ में आया? बापू! बातें सूक्ष्म हैं। अभी तो बाहर में धर्म के नाम से भी गड़बड़ (उठी है)। स्थूलभाव दया और दान, व्रत और तप को धर्म मान लेते हैं, यह तो मिथ्यात्व है।

यहाँ तो कहते हैं, सम्यग्दर्शन का स्वरूप, जो वस्तु अखण्ड है, वह जिसके ध्येय में है, उसमें एक तद्रूप नाम की शक्ति पड़ी है। आहाहा! तद्रूप भवन—आनन्दरूप परिणमन होना, ज्ञातापने का परिणमन होना, सम्यग्दर्शनपने का परिणमन होना, स्वरूप में वीतरागता का परिणमन होना... आहाहा! पर्याय में प्रभुत्वशक्ति का परिणमन पर्याय में आना। जितनी शक्ति है, उसका तद्रूप परिणमन पर्याय में आना, वह तत्त्वशक्ति का स्वरूप है। ऐसा उपदेश है। जिनेश्वरदासजी! अनजाने लोगों ने तो कुछ सुना न हो, कुछ खबर भी नहीं होती, बेचारी जिन्दगी मूढ़रूप से निकालते हैं। बाहर में चतुर-होशियार गिने जाते हैं। डाह्या समझे? समझदार और होशियार। धूल में भी है। आहाहा! प्रभु! जिस हाथ में हथियार हो, वह अपना गला काटे, वह होशियारी किस काम की? इसी प्रकार जो समझ की होशियारी अपने भव बढ़ावे, वह होशियारी किस काम की? आहाहा! कोई (शब्द) गुजराती आ जाते हैं। भाषा थोड़ी समझ लेना। आहाहा! क्या कहा?

तद्रूप भवनरूप ऐसी तत्त्वशक्ति। (तत्स्वरूप होनेरूप...) अपना तत्त्व जो ज्ञान, आनन्दस्वरूप है, उस तद्रूप होनेरूप **(अथवा तत्स्वरूप परिणमनरूप...)** भवन है न? भवन। आहाहा! यह तत्त्वशक्ति का वस्तुस्वरूप ही यह है। तत्त्वशक्ति है वह ध्रुव है परन्तु उसके परिणमन में उसकी प्रतीति आती है। परिणमन बिना तत्त्वशक्ति की प्रतीति किसके आवे? समझ में आया? सुनो! आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है परन्तु अतीन्द्रिय आनन्द का पर्याय में वेदन आये बिना यह अतीन्द्रिय आनन्द है, ऐसा इसकी प्रतीति में कहाँ से आये? आहाहा! ऐसा मार्ग है।

मुमुक्षु : ढाई लाईन में समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाटनीजी कहते हैं कि इस ढाई लाईन में इतना अधिक भरा है,

यह ख्याल में नहीं आता। बात तो सत्य है। ऐसे तो ज्ञेय-ज्ञायक का पहले लिया। परन्तु उसमें इस प्रकार से लिया है। समझ में आया? क्योंकि इसमें स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से अस्ति और पर से नास्ति, ऐसा कोई शक्ति का बोल नहीं है। नय में है। ४७ नय हैं न? नय। उसमें स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से अस्ति; परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नास्ति, अस्ति-नास्ति, अवक्तव्य, अस्ति अवक्तव्य, नास्ति अवक्तव्य, अस्ति-नास्ति अवक्तव्य— ऐसे सात भंग ४७ नय में है। वह ज्ञानप्रधान कथन है। यहाँ तो दृष्टिप्रधान कथन है। आहाहा! यह क्या होगा?

यहाँ तो तद्रूप परिणमन, तत्स्वरूप परिणमन। भगवान आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, उसरूप से पर्याय में परिणमन होना, उस कारण का कार्य आना, उस कार्य में कारण की प्रतीति आना, इसका नाम तत्स्वरूप शक्ति कहा जाता है।

मुमुक्षु : कारण में से कार्य में आना और कार्य में से प्रतीति होना।

पूज्य गुरुदेवश्री : कार्य से कारण की प्रतीति होना। कारण में प्रतीति कहाँ होती है? वह तो ध्रुव है। आँख बन्द करके चला जायेगा, बापू! इसे तत्त्व की दृष्टि की खबर नहीं, वह मरकर कहाँ चला जायेगा? बापू! इस देह के रजकण साथ नहीं आयेंगे। फू... जाओ जा...ओ... चौरासी में भटकने। आहाहा! परिभ्रमण और परिभ्रमण का कारण आत्मा में है ही नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। धन्नालालजी! आहाहा! समझने में बहुत पुरुषार्थ करना पड़ेगा। पहले अपने कलश-टीका में आया था, वस्तु कठिन है, अति कठिन है, ऐसा आया था। आहाहा! मार्ग अति कठिन है, परन्तु शुद्धस्वरूप का विचार करने पर आनन्द आता है। विचार करने से इसका अर्थ क्या? उसमें पाठ है। शुद्धस्वरूप का ज्ञान करने से यह शुद्ध चैतन्य है, उसे ज्ञेय बनाकर ज्ञान करने से। कठिन है, दुर्लभ है, अशक्य नहीं। आहाहा! परन्तु कभी पुरुषार्थ क्या है, इसकी खबर ही नहीं। अन्धे अन्ध। 'अन्धे अन्ध पलाय...' अन्धा चले और अन्धा दिखानेवाला मिले, इसलिए गिरे कुएँ में। आहाहा! भाई! प्रभु का मार्ग (बहुत गम्भीर है)। जिनेन्द्रदेव परमेश्वर, जिसमें इन्द्र और इन्द्राणी जैसे एक भवतारी सुनने आवे, वह वस्तु कैसी होगी? इन्द्र और इन्द्राणी असंख्य देव के स्वामी हैं, तथापि अन्तर में उनके स्वामी नहीं मानते। आहाहा! मैं तो तत्त्वस्वरूप पूर्ण आनन्द की पर्याय, गुण और द्रव्य का स्वामी हूँ, (ऐसा मानते हैं)। आहाहा! इन्दौरीलाल ने उसमें ऐसा

भी लिखा है, यह देव भी इतने-इतने काम करते हैं। समकिती है, तथापि सब करते हैं या नहीं? क्या करते हैं? बापू! तुझे खबर नहीं, भाई!

सम्यग्दृष्टि धर्मी को राग आता है, युद्ध का भी राग आता है परन्तु वह राग मेरी पर्याय में है, उसकी नास्ति मानते हैं। तत्स्वरूप में वह नहीं है। आहाहा! परज्ञेयरूप से उसका ज्ञान करते हैं। आहाहा! समझ में आये उतना समझना, प्रभु! यह तो तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव का पन्थ है। यह कोई पामर प्राणी का पन्थ नहीं है। आहाहा!

कहते हैं, तद्रूप **तत्स्वरूप होनेरूप**... तत्स्वरूप होनेरूप है न? कोष्ठक में। भवन शब्द है न? **तत्स्वरूप होनेरूप अथवा तत्स्वरूप परिणमनरूप**... भवन कहो, अस्तिरूप कहो, या परिणमनरूप कहो। भगवान आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, वह तत्त्वशक्ति के कारण से ज्ञान और आनन्दरूप परिणमन होना, वह द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों में तत्त्वशक्ति व्यापती है। इतने बोल लिये। समझ में आया? यह और क्या कहा? एक मुश्किल से समझ में आये वहाँ दूसरा कठिन आवे। आहाहा! भगवान आत्मा वस्तु—पदार्थ, उसमें तत्त्वशक्ति पड़ी है, वह गुण में-शक्ति में है। वह पर्याय में कब व्यापक होता है? तत्स्वरूप का पर्याय में कब परिणमन होता है? कि तत्स्वरूप पर दृष्टि पड़ने से परिणमन में तत्त्वरूपी परिणमन दशा आती है। निर्मल दशा, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (होता है)। तब यह तत्त्वस्वरूप की शक्ति पर्याय में व्यापक हुई। आहाहा! पर्याय और गुण और द्रव्य-पर्याय के नाम भी आते न हों और (माने) हम जैन हैं, दिगम्बर हैं। कुछ खबर नहीं होती। रतनलालजी! आहाहा!

प्रभु! तेरा रूप क्या है? तेरा स्वरूप क्या है? यह तो पहले आ गया न? स्वधर्म व्यापकस्वरूप है। राग और पर में व्यापक, वह तेरा स्वरूप है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं कि तत्स्वरूप, तद्रूप भवन, तद्रूप भवन इतने शब्द हैं। **तत्स्वरूप होनेरूप**... आनन्द और ज्ञायकरूप से होनेरूप। तद्रूप परिणमनरूप। जो अपना अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्दस्वरूप है, उसरूप परिणमनरूप, वह तत्त्वशक्ति है। आहाहा! चन्दुभाई! कहाँ गये? नवरंगभाई आये हैं? नहीं? वहाँ बैठे हैं, ठीक! दो डॉक्टर साथ में आये थे, इसलिए याद आया। समझ में आया?

अरे! प्रभु! सुन तो सही, नाथ! तेरी ऋद्धि तो देख! तेरी सम्पत्ति तो देख कि तुझमें

क्या है ? यह धूल की सम्पत्ति में मोहित होकर मूढ़ हो गया। आहाहा! समझ में आया ? तेरी सम्पत्ति में ऐसा तद्रूपस्वरूप है, अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त प्रभुता, अनन्त चैतन्यरत्नाकर भगवान है। उसमें तत्त्वशक्ति नाम का एक रत्न पड़ा है। आहाहा! और वह शक्ति पड़ी है तो यहाँ तो परिणमनरूप लिया। क्योंकि है, कारण आत्मा है...

यह प्रश्न कहा था न ? राजकोट। त्रिभुवनभाई ने यह प्रश्न किया था। वीरजीभाई के पुत्र। काठियावाड़ में वीरजीभाई वकील थे। वे ९२-९३ वर्ष में गुजर गये। काठियावाड़ में दिगम्बर का पहला अभ्यास उन्हें था। वीरजी वकील थे। पूरे काठियावाड़ में दिगम्बर के शास्त्र का अभ्यास पहला उन्हें था, फिर दूसरे। उनका पुत्र है। उसने प्रश्न किया कि महाराज! यह कारणपरमात्मा त्रिकाली वस्तु भगवान कहते हो। कारणपरमात्मा वस्तु है न ? वस्तु द्रव्य जो है, वह कारणपरमात्मा है। कारणजीव कहो, या कारणपरमात्मा कहो, या कारणरूप कहो, कारण ईश्वर कहो। आहाहा! कारणपरमात्मा है तो कार्य तो आना चाहिए। कारण है तो कार्य तो आना ही चाहिए। ऐसा प्रश्न किया। कार्य तो आता नहीं। भाई! कारणपरमात्मा है, वह किसे ? जिसे प्रतीति में आया उसे। है, परन्तु प्रतीति में आया नहीं, ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय यह कारणद्रव्य है, ऐसा पर्याय में तो आया नहीं, तो पर्याय में आये बिना 'यह है' ऐसी किस प्रकार मान्यता हुई ? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह कारणपरमात्मा तो तद्रूप से त्रिकाल है। यहाँ तो परिणमन में बात लेनी है।

तद्रूप है परन्तु उसकी प्रतीति है, उसके ज्ञान में है, उसकी प्रतीति किसे है ? जिसने स्वरूप सन्मुख की दृष्टि करके ज्ञेय बनाकर ज्ञान हुआ, और प्रतीति हुई, उसे कारणपरमात्मा है, ऐसा जिसने कारणपरमात्मा माना, उसे सम्यग्दर्शन—कार्य हुए बिना नहीं रहता। समझ में आया ? अरे! ऐसी बातें हैं। अरे! कहाँ निवृत्ति है ? पूरे दिन संसार, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब... आहाहा! मारा डाला जीव को तो।

पर के प्रेम में स्व का द्वेष है। क्या कहा ? 'द्वेष अरोचक भाव', आनन्दघनजी श्वेताम्बर साधु थे, वे ऐसा कहते हैं। आहाहा! स्वरूप रुचता नहीं और राग रुचता है, वह तुझे तेरे स्वरूप के प्रति द्वेष है। आहाहा! जो स्वरूप में नहीं, ऐसा राग दया, दान, विकल्प आदि या हिंसा, झूठ आदि उस राग का रस है और राग का प्रेम है, राग को ज्ञेय बनाकर

प्रसन्न होता है, तो तुझे ज्ञान के प्रति द्वेष है, तुझे स्वरूप के प्रति द्वेष है। आहाहा! समझ में आया? 'द्वेष अरोचक भाव' ऐसा लिया है। 'सम्भवदेव... सेवो... सेवन कारण प्रथम भूमिका रे... अभय अद्वेष अखेद...' लम्बी बात है। सब देखा है। 'भय चंचलता रे परिणामनी' भगवान में परिणाम जाते हैं और भय पाकर चंचलता करता है तो तुझे भगवान का भय है। 'भय चंचलता रे परिणामनी' जो परिणाम अन्दर जाते नहीं तो तेरे परिणाम में तुझे डर है। तेरे स्वरूप का तुझे भय है। भय परिणाम अन्दर नहीं जाते। और बाहर भटकते हैं। सेठ! ऐसी बात है, भगवान! इसका नाम 'भगवानदास' है। आहाहा! 'भय चंचलता रे परिणामनी, द्वेष अरोचक भाव' आहाहा! अन्दर में प्रवृत्ति करते हुए थककर इसे खेद आ जाये। अन्दर में जाने में थकान लग जाये। यह तुझे तेरे स्वरूप के प्रति खेद है। आहाहा! इस तद्रूपभवन में से सब निकलता है। समझ में आया? लो, आज तो एक घण्टा एक (शक्ति) में गया। आहाहा!

मुमुक्षु : तद्रूपभवन में से निकलता है या आपके अन्दर से?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर से।

मुमुक्षु : तद्रूपभवन अन्दर हो गया है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका भाव है न उसमें! शास्त्र नहीं बोलते परन्तु उसमें भाव है या नहीं? आहाहा! यह एक शब्द अन्दर इतना है। जिनेश्वरदासजी! अरे! आहाहा! भगवान! तुझे एक शक्ति का भी ख्याल नहीं। एक शक्ति का ख्याल होवे तो अनन्त शक्ति का ख्याल साथ में आये बिना रहता ही नहीं। जयसेनाचार्य कहते हैं, एक भाव भी यथार्थ जाने तो अनन्त भाव जाने बिना रहता नहीं। आहाहा! ऐसी यह शक्ति यथार्थ जाने तो अनन्त शक्ति का ज्ञान यथार्थ हुए बिना रहे नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २६, शक्ति- २९-३०, सोमवार, (द्वितीय) श्रावण कृष्ण ८, दिनांक ०५-०९-१९७७

समयसार, शक्ति का अधिकार है। आत्मा में तद्‌रूप शक्ति है, यह चलती है न? कल चली थी, कल तो एक घण्टे चली। क्या कहते हैं? यह भगवान आत्मा जो ध्रुवस्वरूप चिदानन्द, उसमें एक तत्त्वशक्ति है। तद्‌रूप होना, वह तत्त्वशक्ति। इसका अर्थ—यह चेतन और आनन्द और ज्ञान शुद्धस्वरूप है, उसमें यह चैतन्यरूप का परिणमन होना, वह तद्‌रूपभवन, तद्‌रूपभवन स्वरूप। चैतन्य के चिदानन्द आनन्द शान्ति वीतरागता स्वरूप, उस स्वरूप का भवन-उस स्वरूप का होना-परिणमन होना, उसका नाम तत्त्वशक्ति है। आहाहा! पाठ है न?

तद्रूप भवन... तद्‌रूप। जो स्वरूप भगवान आत्मा चैतन्य और आनन्द जिसका स्वरूप है, रूप है, स्व-रूप है—अपना रूप है। आहाहा! उस चैतन्यरूप का परिणमन (होना), उसमें रागरूप न होना, यह अतत्त्वशक्ति में आयेगा। यहाँ तो चैतन्यरूप का आनन्दरूप परिणमन होना। आहाहा! भगवान सर्वज्ञ परमात्मा जो अपनी तत्त्वशक्ति थी, इसलिए उसरूप पूर्ण परिणम गये। और पूर्ण परिणमन होकर सर्वज्ञ, सर्वदर्शिपना आ गया। उन भगवान के श्रीमुख से जिनेन्द्रवाणी ऐसी निकली कि तुम भी कौन हो? समझ में आया? तू तत्‌रूप शक्तिरूप तेरी वस्तु है। आहाहा! शरीररूप होना, वह तो है ही नहीं, वह तो जड़, मिट्टी-धूल है। और यह शरीर की हलन-चलन की क्रिया होती है, वह भी जड़ की क्रिया है, आत्मा की नहीं। आहाहा! और उसमें दया, दान, व्रत, भक्ति परिणाम आदि होते हैं, वे चैतन्यरूप नहीं, वह तो जड़रूप है। आहाहा! कठिन बात है। समझ में आया?

जिसे सम्यग्दर्शन प्राप्त करना हो तो वह कैसे प्राप्त होगा? आत्मा तत्त्वरूप, तद्‌रूप, जिस स्वरूप से अनन्त आनन्दकन्द प्रभु है, उसमें तद्‌रूपभवन (होना), उस आनन्दरूप परिणमना, ज्ञानरूप होना, शान्ति का वेदन होना, सुख का वेदन होना, ईश्वरशक्ति जो है, उस ईश्वरपने का परिणमन होना, वह तद्‌रूपभवन तत्त्वशक्ति कहने में आती है। ऐसी बात है। कभी सुना न हो, उसे मुश्किल पड़े। रतनलालजी! आहाहा!

एक तो बाह्य क्रियाकाण्ड में अनादि से रुक गया। उसमें से भी निकलकर पुण्य

और पाप के भाव में रुक गया। आहाहा! यह उसका स्वरूप नहीं है। दया, दान, व्रत, भक्ति, तपस्या, अपवास आदि करते हैं न? यह सब विकल्प है, राग है। भगवान! तुझे खबर नहीं। आहाहा! उस रागरूप होना, वह तद्रूप नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग सुनना कठिन पड़े। चले नहीं, बाहर यह बड़ा विवाद चलता है कि यह दया, दान, व्रत, तप को करते हैं, यह शुभयोग शुद्धता का कारण है।

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! एक बार तेरे घर की वस्तु को सुन तो सही। आहाहा! तेरे स्वरूप में नाथ! भगवत्स्वरूप तेरा है। भग अर्थात् ज्ञान और आनन्द की लक्ष्मी से भरपूर तेरी चीज़ है। उसमें एक तत्त्वशक्ति नाम का गुण है कि जो गुण, गुणी की दृष्टि करने से, गुण और गुणी का भेद भी लक्ष्य में से छोड़ने से (तत्त्वशक्ति प्रगट होती है)। धन्नालालजी! यह सब बाहर का करने की आड़ में निवृत्त नहीं होता, इस सत् के लिये निवृत्ति नहीं ली। मार डाला। सवेरे नहीं आया था?

मुमुक्षु : गुजराती में समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं आया? सवेरे नहीं आया था? तुम नहीं थे। २८वाँ श्लोक चला था, बहुत अच्छा चला था। टेप रिकॉर्डिंग (में है)। बहुत अच्छा। हमारे सेठ तो प्रसन्न हो गये। भगवानदास तो कहे, आज तो दिव्यध्वनि निकली। सवेरे बहुत अच्छा रिकॉर्डिंग था। बहुत अच्छा! ओहोहो!

मुमुक्षु : अभी घर पर सुना।

पूज्य गुरुदेवश्री : रिकॉर्डिंग? आहाहा! क्या कहहते हैं? प्रभु! एक बार सुन तो सही, नाथ! तेरी चीज़ अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान से भरी है, नाथ! उसे पुण्य, दया, दान, व्रत आदि जो परिणाम है, उनके प्रेम में तेरी वस्तु को तूने मृत्युतुल्य कर डाला है। डाह्याभाई! अरे रे! यह इसे सुनने को मिलता नहीं, वह कब प्रयोग करे? आहाहा! यह मनुष्यदेह। भवाब्धि में चौरासी के अवतार में चला जायेगा।

कहते हैं, एक बार नाथ! तेरी ऋद्धि, तेरी सम्पत्ति... आहाहा! तेरी चीज़ में इतनी सम्पत्ति पड़ी है... आहाहा! एक तत्त्वशक्ति नाम की सम्पत्ति है और एक शक्ति में भी अनन्त सम्पत्ति—ताकत है। आहाहा! ऐसी-ऐसी अनन्त शक्ति की सम्पत्ति से भरपूर

भगवान तू अन्दर स्थित है। आहाहा! यह कहाँ नजर करे? कभी सुना नहीं, ऐसे का ऐसा धर्म के बहाने भी यह व्रत किये, यह अपवास किये और धर्म हो गया। धूल में भी धर्म नहीं है, सुन तो सही। आहाहा!

परमात्मा जिनेन्द्रदेव ऐसा कहते हैं कि तद्रूपभवन ऐसी तेरी शक्ति है। तेरा सामर्थ्य यह है। तेरे पुरुषार्थ में सामर्थ्य यह है। क्योंकि तत्त्वरूप होना, वह पुरुषार्थशक्ति में भी इस तत्त्वशक्ति का रूप है। यह तत्त्वशक्ति कही, कल एक घण्टे चली थी। एक लाईन में! अपार भाव भरे हैं। आहाहा! भगवान! तेरी तत्त्वशक्ति... अन्दर जो वीर्य नाम का गुण है, उसमें तत्त्वशक्ति का रूप है। आहाहा! अर्थात् अपना पुरुषार्थ शुद्धरूप परिणमना, ऐसा उसमें रूप है। दया, दान, व्रतरूप परिणमना, वह तेरा रूप नहीं, तेरा स्वरूप नहीं। आहाहा! ऐसी बातें।

भगवान! एक बार सुन तो सही! आहाहा! अरे! भगवान कहकर आचार्य तो बुलाते हैं। ७२ गाथा में। भगवान आत्मा...! आहाहा! इसकी माँ झूले में झूलाते समय इसकी प्रशंसा करती है। सुलाने के लिये झुलाती है, इसलिए सो जाये। बेटा! तू ऐसा है और तू ऐसा है। कहते हैं न? गाती है न? पाटले बैठकर नहाया, ऐसा कुछ हमारे गुजराती में है। आहाहा! वह प्रशंसा करती है तो यह सो जाता है। अव्यक्तरूप से भी उसकी प्रशंसा प्रिय है। यदि गाली देगी तो कभी नहीं सोयेगा। एक बार देख लेना। मेरे रोया, सो जा, (ऐसा कहेगी) तो नहीं सोयेगा। समझ में आया? हमारी काठियावाड़ी भाषा में मारा पीट्या, ऐसा कहते हैं। तुम्हारी भी कुछ भाषा होगी। क्योंकि इसे अव्यक्तरूप से भी प्रशंसा प्रिय है, तो यह तेरे गुण प्रिय नहीं होंगे? अरे! भगवान! आहाहा! तू आनन्दस्वरूप है, नाथ! तू चैतन्य की चमत्कारी शक्ति से भरपूर प्रभु है न! आहाहा!

तत्त्वशक्ति के शरण बिना राग और दया, दान और व्रत के परिणाम के प्रेम में पड़ा है तो तूने तेरी चीज को मरणतुल्य कर डाला। आहाहा! मैं हूँ नहीं ऐसा, मैं तो राग दया पालनेवाला और व्रत करनेवाला हूँ (ऐसा मान लिया है)। वह तो सब विकल्प और राग है। आहाहा! राग के प्रेम में... आहाहा! प्रभु! तेरी लक्ष्मी लुट गयी। तेरी चैतन्य तद्रूपशक्ति होना... आहाहा! वह आनन्द और ज्ञानरूप तद्रूपभवन (होना)। स्वरूप जो शुद्ध चैतन्यघन

आनन्दकन्द, उस आनन्दरूपभवन, होना, वह तेरी शक्ति है। अरे! ऐसी बातें। वे कहे, व्रत करो, अपवास करो और सूर्यास्तपूर्व भोजन करो, रात्रि में आहार न करो, छह परबी में कन्दमूल नहीं खाना... हो गया धर्म। धूल भी नहीं, सुन न! समझ में आया? यह राग तेरा स्वरूप नहीं परन्तु इसे राग नहीं माने। धन्धा करना, स्त्री के समागम में आना, इसे राग (मानता है)। परन्तु इस राग की उसे खबर नहीं। समझ में आया? आहाहा! व्रत करना और अपवास करना और भक्ति करना, वह सब रागभाव है, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! प्रभु! तेरे स्वरूप में यह वस्तु नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : यह करना या नहीं करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : करना यह। बीच में वह आ जाये परन्तु हेयबुद्धि से आ जाये। समझ में आया? (उसकी) उपादेयबुद्धि करने से आत्मा हेय हो जाता है। आहाहा! क्या कहा? यह शुभक्रिया जो शुभराग है, उसे उपादेय मानने से, आदरणीय मानने से भगवान चिदानन्दरूप का अनादर हो जाता है, हेय हो जाता है। आहाहा! जो राग हेय है, उसे उपादेय मानने से पूरा चिद्रूप-तद्रूप भगवान आत्मा का तेरी दृष्टि में अभाव हो जाता है। समझ में आया? सवेरे आया था न? मरण को प्राप्त होता है। आहाहा! टीका, अमृतचन्द्राचार्य का कलश और राजमलजी की टीका।

भगवान! तेरा जीवन तो अन्दर ज्ञानमय और आनन्दमय जीवन है। जीवनशक्ति से शुरु किया है न? उस जीवनशक्ति में तत्त्वशक्ति का रूप है और तत्त्वशक्ति में जीवनशक्ति का रूप है। यह एक-एक शक्ति की अपार बात है। आहाहा! यह तत्त्वशक्ति कहते हैं। तद्रूपभवन, उसमें जीवनशक्ति का रूप है। इसलिए तत्त्व जो ज्ञानानन्दस्वभाव,उसरूप परिणमन करना और उसरूप से जीना, वह तेरा जीवन है। शरीर से जीना और राग से जीना, वह तेरा जीवन—वह तेरा रूप ही नहीं है। आहाहा! भाषा तो देखो! ओहोहो! अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त। एक शब्द में तद्रूपभवन, बस! इतना (कहा है)। भवनरूप, तद्रूप भवनरूप। है शक्ति? वहाँ कहीं नजर में पड़े ऐसा नहीं है। तुम्हारी बहियों में कहीं हाथ आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! तू तद्रूप, तेरा रूप क्या? रूप कहो या स्व-रूप कहो। तेरा

स्व—अपना रूप क्या ? क्या राग तेरा रूप है ? क्या दया, दान, व्रत के विकल्प, वह तेरा स्वरूप—रूप है ? शरीर, धूल-मिट्टी, वह तेरा स्वरूप—रूप है ? आहाहा ! तेरा स्वरूप तो भगवान अनाकुल आनन्द और अनाकुल आनन्द की रचना करे, ऐसा वीर्य और अनाकुल की रचना करे, ऐसी तेरी तत्त्वशक्ति, ऐसा तत्‌रूप, उसका भवन होना, वह तेरी शक्ति है। आहाहा ! लोगों को यह समझ में नहीं आता, इसलिए बेचारे विरोध करते हैं। विरोध तो स्वयं का करते हैं। पर का कौन करे ? भाई ! आहाहा ! समझ में आया ? एक इस कमेटी का—बाबूभाई का विरोध आया है। जहाँ हो वहाँ जैनमित्र में डालते हैं। कमेटी ऐसे की है और फिर होली करेंगे, खोटे शास्त्र (छपायेंगे) और एकान्त में पैसा खर्च करेंगे। जैनमित्र में आज आया है। अरे ! भगवान ! हमने तो किसी को कहा नहीं, कमेटी करो और यह तीर्थक्षेत्र करो, हमने तो कभी कहा नहीं। लोग करते हैं, उसमें हमें क्या ? हमने तो कभी मन्दिर बनाओ, ऐसा भी नहीं कहा। बहुत कहा हो तो अभी शास्त्र और पुस्तकें करो, जिससे लोगों के पास जाये तो समझे। इतना (कहा)। समझ में आया ? आहाहा ! अरे ! वे ईसाई लोग एक रुपये की पुस्तक हो, उसे चार पैसे में देते हैं। ईसाई लोग एक आने में देते हैं। एक रुपये की पुस्तक एक आने में। अभी तो यह सत्‌शास्त्र का प्रचार करने का काल है, भगवान ! आहाहा ! ऐ... पाटनीजी ! आहाहा !

भगवान आत्मा... यहाँ तद्‌रूप शब्द पड़ा है न ? तत्‌रूप। इसका तत् अर्थात् उसका रूप। उसका रूप तो आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय श्रद्धा, अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय स्वच्छता, अतीन्द्रिय प्रभुता आदि अनन्त शक्तियाँ जो हैं, उनसे तद्‌रूप आत्मा है। आहाहा ! समझ में आया ? सम्प्रदाय की दृष्टि में तो यह बात कहीं है ही नहीं। इसलिए लोगों को सुनते हुए ऐसा लगे, ऐसा धर्म कहाँ निकाला ? यह तो नया धर्म निकाला होगा ? आहाहा ! अरे ! प्रभु ! नया नहीं, प्रभु ! अनादि के वीतराग जिनेन्द्र प्रभु का यह मार्ग है। वह लुप्तप्रायः हो गया। आहाहा ! मार्ग तो मार्ग है, परन्तु दृष्टि की विपरीतता से मार्ग लुप्त हो गया। आहाहा ! जिसमें अनन्त आनन्द का नाथ दृष्टि में न आवे, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द, ज्ञान का स्वरूप ज्ञान की पर्याय में न आवे, वह क्रिया क्या ? समझ में आया ? बाकी तो यह बाहर की धूल, पाँच-पच्चीस करोड़ या धूल करोड़ वह सब शून्य है। आहाहा !

करोड़पति, लखपति और अरबपति, लो न ! कल कहा था न ? भाई को बताया था।

पोपटभाई बैठे हैं न? देखो न! इनके साले के पास दो अरब चालीस करोड़ रुपये। देखो बैठे, बाबूभाई के पीछे। दो अरब चालीस करोड़ अभी हैं। स्वयं मर गया, अभी डेढ़ वर्ष पहले। पाँच मिनिट में, हों! मुझे दुःखता है। उसकी पत्नी को हेमरेज हुआ था, इसलिए मुम्बई (लाये थे)। गोवा में बड़ा चालीस लाख का तो रहने का मकान है। चालीस लाख का मकान। दस-दस लाख के दो मकान (दूसरे हैं)। यह तो होता है। यह तो अपने आमोदवाले नहीं? हम वहाँ रहे थे न? मुम्बई, आमोदवाले गुजराती। क्या नाम उनका? रमणीकभाई। उसमें रहे हैं, वह सत्तर लाख का तो मकान है। एक मकान सत्तर लाख का। हम उस मकान में उतरे थे। समुद्र के किनारे है। निवेदन करने आये थे न? अभी भी निवेदन करने आये थे। ८८ (वाँ वर्ष) लगेगा। एक मकान सत्तर लाख का है। बड़ा करोड़पति है। वैसे नरम व्यक्ति है। उसका चालीस लाख का मकान और दस-दस लाख के (दो)। पत्नी को हेमरेज हुआ, इसलिए मुम्बई आया था। उसमें दो-चार दिन बाद रात्रि में खड़ा हुआ और दुःखता है। दुःखता है, ऐसा कहते हैं न? दर्द होता है, दुःखता है। हमारी भाषा में दुःखता है कहते हैं। डॉक्टर को बुलाओ। डॉक्टर आने से पहले भाईसाहब जाओ भटकने चौरासी के अवतार में। अर र र! उसके चालीस लाख के बँगले पड़े रहे। और बड़ा गृहस्थ व्यक्ति। दो अरब चालीस करोड़। कितने पैसे? मशीन है, आगबोट है, क्या कहलाता है वह लोहे का? मेंग्नीज। मेंग्नीज का धन्धा है। मेंग्नीज इतना निकले, इतना निकले, बहुत निकले। एक-एक लाख की तो एक आगबोट छोटी, ऐसे तीन सौ बोट हैं। एक लाख की एक, ऐसे तीन सौ, समुद्र में। मेंग्नीज एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के लिये। आहाहा! मर गया परन्तु पाँच मिनिट में, गया। आहाहा! क्या धूल है? तेरी चीज़ क्या है? यह तेरा स्वरूप है? यहाँ तो दया, दान का राग करते हैं, वह तेरा स्वरूप है? आहाहा!

तद्रूप... तद्रूप। आहाहा! चैतन्यप्रकाश का नूर चमत्कारी चैतन्य, जिसकी एक समय की पर्याय में तीन काल-तीन लोक ज्ञात हो, ऐसी पर्याय का पिण्ड ज्ञान चमत्कारी वस्तु, वह उसका रूप है। और आनन्द, अतीन्द्रिय सुख और आनन्द उसका रूप है। और अतीन्द्रिय शान्ति और चारित्र अर्थात् चारित्र की अतीन्द्रिय वीतरागता यह उसका रूप है। धन्नालालजी! आहाहा! प्रभु! तेरा तद्रूपभवन। इतने शब्द में तो कितना भर दिया है! दिगम्बर सन्तों की वाणी, रामबाण वाणी है। कभी प्रेम से सुनी नहीं। यह वाणी मिली नहीं

और मिली तो प्रेम से सुनी नहीं। आहाहा! ऐसा कहे, यह तो सूक्ष्म बात है और सूक्ष्म है और ऐसी है और वैसी है, ऐसा करके निकाल डाली। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, तद्रूपभवन अर्थात् कोष्ठक में अपने पण्डितजी ने लिया है कि चेतन चेतनरूप होना। चेतनरूप से रहता—परिणमित होता है। क्या (कहा)? ज्ञानस्वरूपी भगवान, ज्ञान का समुद्र भरा है। जैसे समुद्र के किनारे ज्वार आता है तो उस समुद्र के पानी की बाढ़ आती है। वैसे भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है, उस पर दृष्टि पड़ने से पर्याय में आनन्द और ज्ञान की बाढ़ आती है। समझ में आया? रतनलालजी! यहाँ तो ऐसी बातें हैं। आहाहा! अरे! दुनिया को ऐसा लगे। 'वाडा बाँधकर बैठे रे अपना पन्थ करने को' यह मार्ग ऐसा नहीं। सम्प्रदाय नाम धराकर कहे, हम ऐसे हैं और वैसे हैं। अरे रे! प्रभु! तेरा रूप तो आनन्दकन्द है न, नाथ! तुझे खबर नहीं। तेरी दृष्टि में यह आनन्दरूप आया नहीं। तेरी ज्ञान की पर्याय में द्रव्यस्वभाव का ज्ञान हुआ नहीं। आहाहा! लौकिक ज्ञान करके अनादि से मर गया। आहाहा! अरे! शास्त्रज्ञान से भी आत्मा ज्ञात नहीं होता। आहाहा!

यह तद्रूप भगवान आत्मा। आत्मा में तद्रूप अर्थात् उसका स्वरूप। ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता अनन्तशक्तियाँ, वह उसका स्वरूप है। उस स्वरूपरूप भवन, भवन अर्थात् होना। आहाहा! चैतन्य का स्वभाव, चैतन्य के स्वभावरूप परिणमन में होना, यह तत्त्वशक्ति का स्वरूप है। आहाहा! कहो, डाह्याभाई! 'डाह्या तारुं डहापण त्यारे कहिये...' आया नहीं था? एक बार कहा नहीं था? आहाहा! बहुत वर्ष पहले की बात है। (संवत्) १९६४ के वर्ष की बात है। हम दुकान पर थे। हमारी दुकान वहाँ प्रसिद्ध थी। दो दुकानें थीं और स्थानकवासी में मुख्य थे। इसलिए स्थानकवासी के कोई साधु-बाधु आवे तो हम उनका ध्यान रखते थे। छोटी उम्र से। तब अठारह वर्ष की (उम्र) थी।

एक साधु को लेने गये। फिर निवृत्ति हो गयी। भरूच का स्टेशन है, सामने धर्मशाला है। भरूच... भरूच। वहाँ साधु उतरे थे। हमें खबर नहीं थी, कहाँ उतरे हैं। हम गाँव में खोजते थे। स्टेशन पर उतरने के बाद समय तो बहुत था, फिर नाटक देखने गये। मीराबाई का नाटक था। वांकानेरवाले 'डाह्याभाई घोळाशा' थे। उनका नाम डाह्याभाई थे।

वे डाह्याभाई नाटक करे तो आठ दिन में दो नाटक (करे)। एक-एक रात के पन्द्रह सौ रुपये, उस समय, १९६४ के वर्ष। अभी तो उसके पच्चीस-तीस गुणे हो गये। क्योंकि दूसरी वस्तु के भाव बढ़ गये और पैसे की कीमत घट गयी। उस समय के एक लाख, अभी के पच्चीस-तीस लाख। वे डाह्याभाई मरते समय ऐसा बोले, बनिया थे, वैष्णव थे। वांकानेर। बड़ा नाटक था। 'डाह्या तेरा चतुरपना तब हम कहें कि अभी शान्ति से देह छोड़े। तो।' सब नाटक बनाये और तूने पैसे लिये। आहाहा! डाह्याभाई धोळाशा', वांकानेर बहुत प्रसिद्धि थी। भरूच में तो बड़ा नाटक (करते थे)। नाटक देखने तो हजारों लोग उछले। आहाहा!

इसी प्रकार यहाँ परमात्मा कहते हैं कि तेरी होशियारी... डहापण कहते हैं? क्या कहते हैं? होशियारी। वह होशियारी तो तब कहें कि निर्विकल्प आनन्द को प्रगट कर तो तेरी होशियारी कही जाती है। आहाहा! समझ में आया? बाकी तेरी होशियारी संसार में रेलमछेल हो जायेगी। क्यों, पद्मचन्दजी! पैसा-बैसा साथ में नहीं आयेगा? पैसे खर्च किये दान में, इसलिए कुछ साथ में आये या नहीं? पुण्य के परिणाम से परमाणु बँधे, वे परमाणु साथ में आते हैं। उसमें आत्मा को क्या? समझ में आया? दो, पाँच, दस लाख खर्च करके दान किया हो, राग मन्द किया हो तो पुण्य-शुभभाव है। शुभभाव तो चला गया। परमाणु वहाँ पड़े हैं, तो साथ में परमाणु आयेंगे। शुभपरिणाम कुछ नहीं आयेगा। आहाहा!

कहते हैं, एक बार भगवन्त! तू सुन तो सही, नाथ! आहाहा! अरे! तेरी लक्ष्मी और तेरे स्वरूप की तुझे खबर नहीं। आहाहा! यहाँ यह कहा, तद्रूपभवन ऐसी तत्त्वशक्ति। **(तत्स्वरूप होनेरूप अथवा तत्स्वरूप परिणमनरूप...)** भवन की व्याख्या की। **(ऐसी तत्त्वशक्ति आत्मा में है। इस शक्ति से चेतन चेतनरूप से रहता है-चेतनरूप से परिणमित होता है।))।** आहाहा! तत्स्वरूप परिणमना अर्थात् चेतन चेतनरूप परिणमे। पर्याय में चेतन, आनन्द और ज्ञान की दशा हो, वह चेतन की दशा है। रागरूप होना, वह चेतन की दशा ही नहीं, वह चेतन का रूप ही नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अब यह शक्ति तो कल भी चली थी और आज आधे घण्टे चली। कल तो एक घण्टे चली थी। अब अतत्त्व।

अतद्रूपभवनरूपा अतत्त्वशक्तिः ।

अतद्रूप भवनरूप ऐसी अतत्त्वशक्ति। (तत्स्वरूप नहीं होनेरूप अथवा तत्स्वरूप नहीं परिणमनेरूप अतत्त्वशक्ति आत्मा में है। इस शक्ति से चेतन जड़रूप नहीं होता।)।३०।

अब क्या कहते हैं ? **अतद्रूप भवनरूप**... अतद्रूप भवनरूप। अर्थात् रागरूप न होना। पुण्य के परिणामरूप न होना, पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप न होना। समझ में आया ? तत्त्वशक्ति में अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव निर्मलरूप से होना। और अतत्त्व में परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं होना, रागरूप भी नहीं होना, वह अतत्त्वशक्ति है। आहाहा ! यह तो कहे, व्यवहार करो तो निश्चय होगा। यहाँ तो कहते हैं कि व्यवहाररूप न होना, वह अतत्त्वशक्ति का स्वरूप है। ज्ञानचन्दजी ! आहाहा !

अनन्त-अनन्त शक्ति का भण्डार प्रभु है। तेरे भण्डार में निधान भरे हैं। वे निधान इतने हैं कि उसमें से केवलज्ञान निकाले तो भी निधान कम नहीं होता। केवलज्ञान हो जाये तो भी निधान में न्यूनता नहीं आती। आहाहा ! और निगोद में अक्षर के अनन्तवें भाग पर्याय रही है, निगोद समझे ? काई... काई, यह लील फूग। वनस्पति अथवा लहसुन, प्याज, प्याज। इन सबकी एक कणी हैं, उसमें असंख्य शरीर हैं। एक शरीर में अनन्त जीव हैं। परन्तु उस जीव का स्वरूप तो तद्रूप भवनस्वरूप है। आहाहा ! कल थोड़ा कहा था। जैसे नारकी में स्वर्ग का सुख नहीं। यह लौकिक सुख। वह सुख तो धूल में कहाँ था ? नारकी में किसी नारकी के जीव को, दस हजार वर्ष की स्थिति से तैंतीस सागर तक किसी को स्वर्ग का सुख बिल्कुल नहीं है। स्वर्ग के देव को नारकी का दुःख बिल्कुल नहीं है। और परमाणु में राग की पीड़ा नहीं। एक परमाणु। ऐसा पूरा स्कन्ध तो विभावरूप परिणमा है, इसलिए दृष्टान्त परमाणु का दिया है। स्कन्ध है न ? वह विभाविक पर्याय है। विभाविक समझे ? कर्मरूप पर्याय है, वह विभाविक पर्याय है। और कोई गुण ऐसा नहीं कि कर्मरूप परिणमे, ऐसा गुण नहीं। यह क्या कहा ? गुण होवे तो उसकी पर्याय होना चाहिए। परन्तु कर्मरूपी विभाविक पर्याय है तो कोई गुण नहीं है कि विभावरूप पर्याय होती है। वह विभाविकपर्याय गुण बिना स्वतन्त्र होती है। क्या कहा, समझ में आया ? कर्म की पर्यायरूप

परमाणु परिणमे, ऐसा परमाणु में कोई गुण नहीं है। वह पर्याय में स्वतन्त्र विभावरूप परिणमता है। आहाहा! यह स्कन्ध आदि, यह शरीर, वाणी, पैसा, लक्ष्मी, धूल, वह तो विभावपर्याय है। परन्तु एक परमाणु लो, एक परमाणु भिन्न, अनन्तशक्ति सम्पन्न। उसे कोई पीड़ा नहीं है। जड़ को पीड़ा है? वैसे ही भगवान आत्मा... आहाहा! आनन्द के कन्द में दुःख नहीं है, राग नहीं, विकार नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कल बहिन के (वचनामृत) का दृष्टान्त दिया था न? अग्नि में दीमक नहीं होती। दीमक समझते हो? छोटी जीवांत होती है, बहुत कोमल, सफेद लकड़ी में (होती है)। धूप लगे तो मर जाये। हमने नजर से देखा है। (संवत्) १९७५ के वर्ष, १९७५ के वर्ष। हम जंगल गये थे। बाहर जाते थे न? तो वहाँ जंगल के लिये बैठे थे। उसमें एक बारीक सफेद दीमक होती है, दीमक। दीमक परन्तु जाति अलग। बहुत पोची और पोली चमड़ी। ऐसे धूल में से निकली, बाहर निकली वहाँ सूर्य की धूप लगी तो तड़पकर मर गयी।... जैसे मरे, वैसे मर गयी। उसे दीमक कहते हैं। लकड़ी में दीमक बहुत होती है। बारीक-बारीक सफेद। आहाहा!

अग्नि को दीमक होगी? दीमक होवे तो दीमक का नाश कर दे, (ऐसा) अग्नि का सवभाव है। उसी प्रकार भगवान आत्मा में आवरण होगा? बहिन ने तीन शब्द प्रयोग किये हैं। जैसे अग्नि को दीमक नहीं, स्वर्ण को जंग नहीं, स्वर्ण को जंग नहीं, उसी प्रकार भगवान को आवरण नहीं, हीनता नहीं और अशुद्धता नहीं। पुस्तक आयी न? कल आयेगी? कल? समाप्त हो गयी है। पुट्ठा बनता है। तुमको मिली है? कहाँ से मिली? ठीक। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ क्या चलता है? अतत्त्वशक्ति। भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसमें अतत्त्वशक्ति पड़ी है तो उसमें रागरूप होना है ही नहीं। रागरूप नहीं होना, ऐसी उसकी शक्ति है। आहाहा! समझ में आया? भाग्यशालियों को कान में पड़े, ऐसी बात है। वे धूल के भाग्यशाली तो सब भांगशाली है। भांग... भांग, तम्बाकू। उसे भांग कहते हैं न? वे सब भाग्यशाली पैसेवाले सब भांगशाली हैं। यह तो ऐसी बात है।

प्रभु ऐसा कहते हैं, 'भवी भागन जोग'। भगवान की वाणी निकलती है। आहाहा!

वीतराग की वाणी, बापू! यह तो प्रभु तीन लोक के नाथ। आहाहा! प्रभु! महावीर तो मोक्ष पधारे। वे तो णमो सिद्धाणं में गये। सीमन्धर भगवान विराजते हैं, वे णमो अरिहंताणं में हैं तो उन्हें वाणी है। सिद्ध को वाणी नहीं, वे तो अशरीरी हैं। समझ में आया? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में वहाँ गये थे, आठ दिन रहे थे। आठ दिन साक्षात् वाणी सुनी है। फिर आकर यह शास्त्र बनाये हैं। समझ में आया?

(यहाँ) कहते हैं, अतद्रूपशक्ति। आहाहा! रागरूप न होना, विकाररूप न होना, ऐसी उसमें अतत्त्वशक्ति है। डाह्याभाई! आहाहा! अभी यह तो कहते हैं न? व्यवहार श्रद्धा, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह तो राग है। शास्त्र पढ़ना विकल्प है, राग है और नव तत्त्व की श्रद्धा और पंच महाव्रत के परिणाम, राग है। यहाँ तो कहते हैं, व्यवहाररत्नत्रयरूप न होना, वह अतत्त्वशक्ति है। आहाहा! तो फिर इस परिवाररूप और स्त्रीरूप और पुत्ररूप होना, और ये हमारे हैं और मकान है, धूल भी नहीं, सुन न! अनादि से हैरान हो गया है। अपने को आप भूलके हैरान हो गया। तेरी चीज़ में क्या है? और तेरा स्वरूप क्या है? आहाहा! प्रभु! तूने कभी सुना नहीं, हों! प्रेम से सुना नहीं। आता है न? 'तत्प्रति प्रीति चितेन् वार्ताऽपि श्रुता:' आहाहा! जिसने इस राग से भिन्न भगवान त्रिलोकनाथ, रागरूप परिणमने की शक्ति उसमें नहीं। अपने आनन्द और चेतनरूप परिणमने की शक्ति है और रागरूप परिणमने की शक्ति नहीं। अतत्त्वशक्ति है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो अभी यह चलता है कि तुम दया, दान, व्रत, भक्ति करो तो उससे कल्याण हो जायेगा। अरे! प्रभु! यह तो कहाँ..? पररूप परिणमना उससे स्व रूप परिणमना (होगा)? आहाहा! ऐसा कहते हैं या नहीं? व्यवहार करो, व्यवहार करते-करते निश्चय होगा, ऐसी प्ररूपणा चलती है। अभी साधु भी यह प्ररूपणा करते हैं। पण्डित भी यही प्ररूपणा करते हैं। यहाँ के अतिरिक्त दूसरे पण्डित। यहाँ के अतिरिक्त। क्यों? रतनलालजी! आहाहा! भगवन्त! अतद्रूप... है?

अतद्रूप... अर्थात् अपने स्वरूप के अतिरिक्त अतद्रूप—रागादिरूपपने न होना। आहाहा! शरीर, मिट्टी और जड़रूप न होना, यह तो साधारण बात है। इस रूप तो तीन काल में कभी होता नहीं। परन्तु रागरूप परिणमन है। पर्याय में राग, मिथ्यात्वरूपी परिणमन है,

परन्तु वह शक्ति का परिणमन नहीं है, स्वरूप का परिणमन नहीं है। आहाहा! समझ में आया? नये लोगों को तो ऐसा लगे कि यह तो क्या कहते हैं? बापू! मार्ग तो यह है, भाई! आहाहा!

अतत्त्वशक्ति। अतद्रूप—रागरूप न होना, यह अतद्रूप है। आहाहा! चैतन्यरूप परिणमना, वह तद्रूप है और रागरूप अतत्त्वरूप न होना, अतत्त्वरूप न होना, यह इसका स्वभाव है। आहाहा! तो फिर यह पैसा करना और स्त्री, पुत्र का पोषण करना और उन्हें प्रसन्न रखना और पूरे दिन पाप और पाप, प्रपंच में पड़ा है। रतनलालजी! अरे! यहाँ तो पुण्य के परिणामरूप (परिणमता नहीं)। अतत्त्वशक्ति है तो तत्त्व से भिन्न शक्ति है। अतत्त्वशक्ति है तो उसरूप नहीं होना, ऐसी तुझमें शक्ति है। आहाहा! समझ में आया?

अतद्रूप भवन... अतद्रूप भवन अर्थात् रागरूप न होना, ऐसी तुझमें एक शक्ति है। आहाहा! यहाँ तो (अज्ञानी) कहते हैं कि रागक्रिया करो तो तुम्हारा कल्याण होगा। गजब है, भाई! तेरी मिथ्यादृष्टि का बहुत जोर है। जो स्वरूप में नहीं, उस दृष्टिरूप तेरा परिणमन हो गया है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, **अतद्रूप भवन...** अतद्—जो उसमें नहीं, उसरूप भवन। पररूप नहीं होना, ऐसी अतत्त्वशक्ति है। आहाहा! एक-एक शक्ति में तो भण्डार भरे हैं।

मुमुक्षु : अपने आप तो दिखते नहीं कि कहाँ भण्डार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चक्रवर्ती होवे तो नव निधान हों, उसमें क्या आया? नव निधान होते हैं न?

मुमुक्षु : नौ निधान आये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : निधान वे जड़ के, धूल के हैं। आहाहा! यह तो चैतन्य के निधान! अनन्त-अनन्त चैतन्यशक्ति के रत्नाकर के रत्न के आकर—समुद्र भरे हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! परन्तु यह माहात्म्य सुना नहीं और सुना तो रुचि में लिया ही नहीं। आहाहा! शास्त्र का ज्ञान हुआ, उसमें प्रसन्न हो गया, प्रसन्न हो गया। परन्तु वह ज्ञान, ज्ञान ही नहीं है। आहाहा! शरीर से ब्रह्मचर्य पाला, सत्य बोलना, वह तो सब राग है, आस्रव है। समझ में आया?

अतद्रूप भवन... पररूप न होना। आहाहा! ऐसी अतत्त्वशक्ति है। **(तत्स्वरूप नहीं होनेरूप अथवा तत्स्वरूप नहीं परिणमनेरूप...)** क्या कहा, समझ में आया? तत्स्वरूप नहीं होनेरूप और पररूप नहीं होनेरूप। **अथवा तत्स्वरूप नहीं परिणमनेरूप...** रागादिरूप नहीं परिणमनेरूप। आहाहा! **अतत्त्वशक्ति आत्मा में है।** है? भगवान में यह शक्ति है कि रागरूप नहीं होना, ऐसी शक्ति है। रागरूप होना, ऐसी कोई शक्ति उसमें नहीं है। यह क्या कहा, समझे? जैसे कर्म की पर्याय होने का परमाणु में कोई गुण नहीं कि वह कर्म की पर्याय होती है। कर्म में अध्धर से बिना गुण के विभावपर्याय होती है। इसी प्रकार आत्मा में ऐसी कोई शक्ति नहीं कि रागरूप, विकाररूप, मिथ्यात्वरूप हो। पर्याय में अध्धर से मिथ्यात्व आदि का परिणमन करता है। समझ में आया?

एक परमाणु में भी पीड़ा का जहाँ अभाव है, आहाहा! तो तीन लोक के नाथ में विकार का त्रिकाल अभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : वैभाविकशक्ति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विभावशक्ति शब्द से विभाव करे, ऐसा अर्थ नहीं है। विभाविकशक्ति का अर्थ चार द्रव्यों में नहीं ऐसी विशेष शक्ति का नाम विभावशक्ति। विशेष शक्ति अर्थात् विभावशक्ति। विभावशक्ति अर्थात् विभावरूप परिणमना, ऐसा अर्थ नहीं है, उसका ऐसा अर्थ ही नहीं है। श्रीमद् ने ऐसा कहा है। श्रीमद् में लिखा है। विभावशक्ति का अर्थ ऐसा नहीं विभावरूप परिणमना। परन्तु चार द्रव्य में नहीं, ऐसी शक्ति को विभावशक्ति विशेषरूप कहने में आया है। खास परमाणु पुद्गल और जीव में यह विभाविकशक्ति है। दूसरे चार में नहीं। चार है न? धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल। वे तो शुद्ध परिणमन त्रिकाल पारिणामिकभाव से है। उनका द्रव्य भी पारिणामिकभाव, गुण पारिणामिकभाव, पर्याय पारिणामिकभाव (स्वरूप है)। यह कहा था न?

आत्मा में एक कारणपर्याय है या नहीं? (संवत्) १९९९-२००० के वर्ष में स्पष्ट किया था। नियमसार की १९वीं गाथा (तक) के व्याख्यान में आ गया है। कारणध्रुव एक कारणपर्याय आत्मा में है। कैसी? जैसे धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल के जैसे द्रव्य-गुण तो पारिणामिक एकरूप है, परन्तु पर्याय भी पारिणामिक एकरूप है। चार द्रव्य

में, समझ में आया ? उत्पाद-व्यय समान एकरूप धारा चलती है। तो आत्मा में एकरूप उत्पाद-व्यय तो है नहीं। संसारदशा में विकारी का उत्पाद है, मोक्ष (मार्ग) दशा में किंचित् शुद्धपर्याय और किंचित् अशुद्धपर्याय का उत्पाद-व्यय है। सिद्ध में पूर्ण शुद्ध का उत्पाद-व्यय है। तो एकरूप नहीं रहा। उत्पाद-व्यय चार द्रव्य में जैसे एकरूप है, वैसे यहाँ एकरूप उत्पाद-व्यय नहीं रहे। थोड़ी सूक्ष्म बात है। यह १९ तथा (१५) गाथा में आ गया है। नियमसार की १९ तथा (१५) गाथा पर व्याख्यान हुए हैं। (संवत्) १९९९ वर्ष। पुस्तक आ गयी है। है न पुस्तक ?* क्या कहना है ?

चार द्रव्य में उत्पाद-व्यय... ध्रुव तो ध्रुव है ही, परन्तु उत्पाद-व्यय धारावाही, हीन, विपरीत, पूर्ण, ऐसे भेद चार द्रव्यों में नहीं हैं। समझ में आया ? अरे.. अरे! इसी तरह भगवान आत्मा में उत्पाद-व्यय है, वह मलिनता और संसारदशा में है। मोक्षमार्ग में उत्पाद-व्यय में थोड़ी शुद्धि है और अशुद्धि है, पूर्ण (शुद्ध) नहीं है। तो एकधारा नहीं रही। उत्पाद-व्यय की धारा एकरूप नहीं रही। एकरूप धारावाही अन्दर कारणध्रुवपर्याय वहाँ है। यह नियमसार में आ गया है। (संवत्) १९९९ के वर्ष, ३३-३४ वर्ष हुए। कारणशुद्धपर्याय।

कारणशुद्धपर्याय आत्मा में है। क्यों ? जैसे चार द्रव्य में एक धारा है। यहाँ एकधारा उत्पाद-व्यय में नहीं है। धारावाही सामान्यस्वरूप जो भगवानआत्मा का है, उसकी एक विशेष ध्रुवपर्याय है। उस ध्रुव में उत्पाद-व्यय नहीं है। जैसे समुद्र की सपाटी है... नक्शा बनाया है। नक्शा बनाया था परन्तु...

मुमुक्षु : गुजराती में आया परन्तु हिन्दी में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हिन्दी में नहीं। परन्तु अब तुम सब हिन्दी आये हो। यह तो तुम्हें करना है। ऐसा कहते हैं, गुजराती में आया है। बात सत्य है। हिन्दीवालों को प्रेम हो तो हिन्दी बनाना।

यहाँ तो क्या कहना है ? आहाहा! आत्मा में उत्पाद-व्यय की पर्याय एक धारावाही

*** गाथा १ से १९ तक के प्रवचन 'नियमसार प्रवचनों' भाग-१ से प्रकाशित हैं, उनमें १५वीं गाथा में यह विषय आया है।**

नहीं है। क्योंकि (बाकी के) चार में तो परमपारिणामिकभाव तो द्रव्य और गुण है, और धर्मास्तिकाय आदि चार द्रव्यों में पारिणामिकभाव की पर्याय है। तो आत्मा में उत्पाद-व्यय में ऐसी पारिणामिकभाव की पर्याय एक सरीखी नहीं है। तो अन्दर सामान्य जो वस्तु है, उसमें विशेष एक दशा ध्रुव है। एकधारी अनादि-अनन्त कारणपर्याय है। उसे भगवान कारणपर्याय कहते हैं। यह नियमसार की १५वीं गाथा में आता है। अभी बाहर की बात बैठती नहीं, उसमें यह... मन्थन नहीं होता, धारणा में स्मरण करके उसका विचार करके मन्थन से निर्णय करना। आहाहा! समझ में आया?

यह कारणपर्याय पवित्र है। समझ में आया? जैसे समुद्र में ऊपर सपाटी है, वह समुद्र की सपाटी है। वैसे भगवान आत्मा अनन्त गुण के ध्रुवरूप जो है, उसमें कारणपर्याय सपाटीरूप एकरूप त्रिकाल अनादि है। एकदम नयी बात है। पहले यह व्याख्यान आ गये हैं। १९९९-२००० के वर्ष में। समझ में आया? गुजराती है, बात सत्य। हिन्दी नहीं। गुजराती मुश्किल से निकला। क्योंकि उस समय बाहर में बात रखी थी तो बंशीधरजी और वर्णीजी दोनों को यह नहीं जँची। वह तो एक पर्याय है, पर्याय है (ऐसा कहा)। परन्तु पर्याय कैसी? कारणपर्याय ध्रुव है। नक्शा बनाया था। नियमसार की १९वीं (तक की) गाथा के व्याख्यान में नक्शा डालना था। परन्तु बड़े पण्डितों को बात नहीं जँची तो साधारण लोगों को नहीं जँचेगी। फिर नक्शा नहीं डाला। नियमसार १५ (१९) गाथा में डाला नहीं। कारणशक्ति का नक्शा है।

प्रत्येक गुण की कारणपर्याय है। गुण त्रिकाली है। वैसे पर्याय ध्रुव भी कायम अनादि-अनन्त पर्याय अन्दर है। उत्पाद-व्यय बिना की। आहाहा! बाहर में समुद्र की जो सपाटी है, वैसे बाह्य में यह कारणपर्याय है। उत्पाद-व्यय सिवाय की कारणपर्याय आत्मा में अनादि-अनन्त है। पद्मचन्दजी! कभी सुना नहीं। इस पर्याय का स्वभाव भी अतत्त्वशक्ति उसमें पड़ी है तो विकाररूप नहीं होना, ऐसा उसका स्वभाव है। समझ में आया? आहाहा! द्रव्य-गुण का तो स्वभाव ऐसा है कि विकाररूप नहीं होना, परन्तु यह कारणपर्याय है, उसकी भी विकाररूप न होना, ऐसी उसकी शक्ति है। क्यों? कि अतत्त्वशक्ति नाम की जो शक्ति है, वह द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों में व्यापती है। यहाँ तो कारणपर्याय में तो है, परन्तु

अतत्त्वशक्ति का धारक भगवान पर दृष्टि पड़ने से पर्याय में भी रागरूप नहीं होता, ऐसा अतत्त्व का परिणमन हो जाता है। सूक्ष्म बातें, बापू! आहाहा!

यह तो तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव... अभी तो बाहर में दया पालो, सामायिक करो और प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो... हो गया। जाओ! मरो! करने का मरने का है वहाँ तो। आहाहा! भाई ने—निहालभाई ने डाला है न? करन सो मरना है। विकल्प है, यह करूँ, यह करूँ, यह करूँ... वहाँ चैतन्य जीवत्व की मृत्यु है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं कि चैतन्य चैतन्यरूप परिणमन करता है। है? परन्तु इस शक्ति से चैतन्य जड़रूप नहीं होता। है अन्दर कोष्ठक में? **(अतत्त्वशक्ति आत्मा में है। इस शक्ति से चेतन जड़रूप नहीं होता।)** इसका अर्थ क्या? कि भगवान आत्मा अतत्त्वशक्ति के कारण विकाररूप नहीं होता। आहाहा! जड़रूप नहीं होता, ऐसा अर्थ लिया है। धन्नालालजी! कहीं आया है? छठी गाथा में आया है। ज्ञायक, ज्ञायक भगवान आत्मा त्रिकाल ज्ञायक है। वह शुभाशुभभावरूप हुआ ही नहीं क्योंकि शुभाशुभभाव, वे जड़ हैं। ऐसा लिया है। छठी गाथा के पाठ में है। पण्डित जयचन्दजी ने कोष्ठक में डाला है। शुभाशुभभाव जड़ हैं। ज्ञायक उन जड़रूप कभी हुआ ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? और शुभाशुभरूप हो जाये तो जड़ हो जाये। आहाहा! क्योंकि शुभ और अशुभराग अचेतन है। आत्मा की शक्ति से खाली है। चैतन्य के नूर के तेज के पूर का पुण्य और पाप के भाव में अभाव है। आहाहा! छोटूभाई पहले बहुत आते थे, हों! अब जरा अटक गये हैं। अब स्पष्टीकरण अधिक आता है। आहाहा! लोग विरोध करते हैं न? जैसे लोग विरोध करते जाते हैं, वैसे स्पष्टीकरण बढ़ता जाता है। बापू! मार्ग यह है, भाई! तेरे हित की बात है। आहाहा!

तेरी शक्ति में द्रव्य में, गुण में, कारणपर्याय में भी ऐसी शक्ति है—अतत्। रागरूप न होना, व्यवहाररत्नत्रयरूप न होना, ऐसी तेरी एक शक्ति है। ज्ञानचन्दजी! आहाहा! जैसे कहा न? कर्मरूपी पर्याय होती है तो परमाणु में ऐसा कोई गुण नहीं कि गुण के कारण पर्याय होती है। वह पर्याय अद्धर से नयी होती है। ऐसे आत्मा में कोई शक्ति नहीं कि विकाररूप हो। पर्याय में से विकार उत्पन्न होता है। पर्यायदृष्टि में स्वभावदृष्टि को छोड़कर पर्यायदृष्टिवाले को विकार होता है। आहाहा! भारी सूक्ष्म। बापू! आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग के अतिरिक्त कहीं

नहीं है। और वह भी दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त ऐसी बात किसी ने नहीं की है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो दिगम्बर है न! आहाहा!

(इस शक्ति से चेतन जड़रूप नहीं होता।) इसका अर्थ क्या? रागरूप होना, वह जड़रूप होना है। आहाहा! क्योंकि राग जो दया, दान, व्रत, भक्ति का जो राग है, उसे तो जीव अधिकार में अजीव कहा है। और कर्ता-कर्म अधिकार में उसे संयोगीभाव कहा है, स्वरूपभाव नहीं। संयोगीभाव—संयोग के कारण उत्पन्न हुआ संयोगी चीज़ है। उसका स्वभाव नहीं है। कर्ता-कर्म अधिकार ६९-७० गाथा में। समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म पड़े परन्तु बापू! यह समझने योग्य है, भाई! अनादि काल से दुःखी होकर मर गया है। आहाहा!

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती सात सौ वर्ष जीवन जीया। सात सौ (वर्ष)। उसके एक श्वासोच्छवास का फल इतना मिला कि सातवें नरक में तैंतीस सागर में अभी है। चक्रवर्ती! ऐसे हीरा के पलंग... ढोलिया को क्या कहते हैं? पलंग। हीरा के पलंग में सोता था। सोलह हजार देव सेवा करते थे। परन्तु आत्मा को भूलकर मिथ्यादृष्टिरूप से इतने पाप किये... आहाहा! जिसके एक श्वास के फल में... कितने हैं रामजीभाई? ग्यारह लाख छप्पन हजार नौ सौ पिचहत्तर पल्योपम। एक श्वास का फल इतना। क्या कहा? सात सौ वर्ष के जो श्वास होते हैं, श्वास, उस एक श्वास के फल में... क्या कहा? ग्यारह लाख छप्पन हजार नौ सौ पिचहत्तर पल्योपम का दुःख (मिला)। उसे याद रहता है। पल्योपम। एक श्वास के फल में... कितने? ग्यारह लाख छप्पन हजार नौ सौ पिचहत्तर पल्योपम। एक पल्य के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष (जाते हैं)। बापू! तू कितना दुःखी हुआ, तुझे खबर नहीं, भाई! समझ में आया? इस एक श्वास का सुख भोगा, उसमें (नरक का इतना दुःख मिला)। सात सौ वर्ष कहीं चक्रवर्ती नहीं था। आयुष्य सात सौ वर्ष का था। चक्रवर्ती तो बड़ी उम्र में हुआ। समझ में आया? परन्तु पूरे सात सौ वर्ष के श्वास गिने तो भी उसके फल में इतना... आहाहा! पल्योपम के इतने दुःख, बापू! और यहाँ आत्मज्ञान हो तो अनन्त काल में अनन्त आनन्द रहे, इतना उसका फल है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २७, शक्ति- ३० से ३३ मंगलवार, (द्वितीय) श्रावण कृष्ण ९, दिनांक ०६-०९-१९७७

समयसार, शक्ति का अधिकार। ३०वीं शक्ति चली। अतत्त्वशक्ति आयी न ? कल इसका अर्थ आ गया। पर जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव है, वे आत्मा में अतत्त्व हैं। यह शक्ति पर के अभावस्वरूप है। तत्त्वशक्ति अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से अस्ति है, यह तत्त्वशक्ति और परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की नास्ति है, यह अतत्त्वशक्ति। रात्रि में प्रश्न हुआ था। समझ में आया ? परन्तु बात यह है कि अतत्त्वशक्ति और तत्त्वशक्ति ये दोनों परस्पर विरुद्ध शक्ति है। यह तो पहले आ गया है, विरुद्धधर्मत्वशक्ति है। पहले आ गया है। एक विरुद्धधर्मत्वशक्ति है। स्वपने है और परपने नहीं, ऐसी विरुद्धधर्मत्वशक्ति है। परन्तु वह शक्ति गुण है। यह विरुद्धशक्ति, वह गुण है। यह गुण और गुणी की दृष्टि करने से, गुण-गुणी का भेद छोड़कर, आहाहा ! गुण और गुणी के भेद का लक्ष्य छोड़कर गुणी की अभेददृष्टि से तत्त्व-अतत्त्व विरुद्धशक्ति का परिणमन पर्याय में आता है। अपने से है और पर से नहीं, ऐसी पर्याय में परिणति आती है। आहाहा ! समझ में आया ?

अनुभव में ऐसा कहते हैं कि अनुभव में ध्याता, ध्यान और ध्येय का कोई विकल्प नहीं है। आहाहा ! वहाँ शास्त्रज्ञान भी नहीं। वहाँ तो भगवान आत्मा अपने स्वरूप से है और परस्वरूप से नहीं, ऐसी विरुद्धशक्ति का परिणमन, अस्तिरूप है और पर से नास्ति, ऐसी पर्याय में परिणति है। समझ में आया ? ऐसे तत्त्वशक्ति के परिणमन में अपनापना, अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव है, यहाँ यह है, ऐसा विकल्प नहीं; परिणमन है। समझ में आया ? और अतत्त्वशक्ति का परिणमन, पर्याय में वीतरागता का वेदन होना, पर रागादि के अभावरूप परिणमन और वीतरागभाव के सद्भावरूप परिणमन (होना)। आहाहा ! यह समझे बिना महाव्रत और पंच महाव्रत और व्रत, तप सब (बिना अंक के शून्य है)।

अध्यात्मपंचसंग्रह में तो भाई ने ऐसा लिया है कि भेड़ भी मुण्डन कराती है। घेटा समझते हो ? भेड़। उसमें है—अध्यात्मपंचसंग्रह। और नग्न तो पशु भी रहते हैं और परीषह सहन करते हैं तो पशु भी परीषह सहन तो करते हैं, उसमें क्या आया ? समझ में आया ? अपना भगवान पूर्णानन्द की अस्ति / मौजूदगी चीज़ और पर के अभावस्वभावरूप... भाव, अभाव बाद में आयेगी, यहाँ तो अभी पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के तत्त्व का

अतत्त्व, यह अतत्त्व का अतत्त्व अर्थात् पररूप नहीं होना, इतनी बात है। भाव, अभावशक्ति तो आगे आयेगी। समझ में आया?

इसके अनुभव में... जब विकल्प आया, यह तो नयपक्ष में सवेरे आया था, समझ में आया? परन्तु उस नयपक्ष को भी छोड़कर चैतन्य निर्विकल्प आनन्द का वेदन होना, वह चीज़ है। पद्मचन्दजी! ऐसी बातें हैं। बाहर के दान, दया और शरीर का ब्रह्मचर्य, अपवास आदि की तपस्या, यह सब व्यर्थ क्लेश है। आहाहा! भगवान चिदानन्द प्रभु, वर्तमान में पर्याय का अन्तर में झुकना और उसमें एकाग्र होने से आनन्द का स्वाद आना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। समझ में आया? और इसके बिना भव का छेद नहीं होगा। समझ में आया? लाख दान करे और तपस्या करे और अपवास करे, परन्तु भवछेद नहीं होगा। आहाहा! भवछेद हुए बिना, सम्यग्दर्शन बिना भवछेद नहीं होगा। आहाहा! यह आया?

अनेकपर्यायव्यापकैकद्रव्यमयत्वरूपा एकत्वशक्तिः।

अनेक पर्यायों में व्यापक ऐसी एकद्रव्यमयतारूप एकत्व।३१।

अब आज अपने एक शक्ति, एक शक्ति (लेते हैं)। एक नहीं, एकत्व, ऐसा शब्द पड़ा है। आत्मा में एकत्व नाम का एक गुण है। है? **अनेक पर्यायों में व्यापक**... गुण और पर्याय के भेद में द्रव्य का व्यापकपना—ऐसा एकपना, वह उसका गुण है। समझ में आया? कलश-टीका में आया था कि एक हूँ, अनेक हूँ, यह भी आया था। आया था? कलश-टीका।

मुमुक्षु : एक-अनेक आया था...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह और बाद में। यह तो एक, अनेक अलग है। मैं एक हूँ। सर्वव्यापक द्रव्य मैं एक हूँ, यह बराबर है। परन्तु वहाँ एक हूँ, ऐसे विकल्प का भी पक्ष छुड़ाया है। समझ में आया?

यहाँ तो एकत्वगुण, गुणी का आश्रय लेने को एकत्वशक्ति कही गयी है। आहाहा! समझ में आया? ४७ नय में भी आया है—एक, अनेक। तीन प्रकार से एक-अनेक हैं।

यहाँ एक-अनेक; कलश-टीका में एक-अनेक और ४७ नय में एक-अनेक। यह दूसरी वस्तु है। वह धर्म अपेक्षा है। क्या? जैसे अग्नि का बड़ा ढ़ेर हो तो उसमें सब अग्निपना ही अकेला है। उसी प्रकार अद्वैत। आत्मा के ज्ञान में लोकालोक का ज्ञान वह एकरूप ज्ञान है। अद्वैतपना। अद्वैतनय लिया है। अद्वैत अर्थात् एक। अद्वैत अर्थात् दो नहीं। आहाहा! दो नहीं अर्थात् एक। वेदान्त अद्वैत कहता है न? वेदान्त अद्वैत, ऐसा कहता है। उसका अर्थ द्वैत नहीं, ऐसा। एक है। एक है, ऐसा कहते हैं, वह बात मिथ्या है।

यहाँ तो अद्वैत का अर्थ, जैसे अग्नि का... समझ में आया? क्या कहा? प्रवचनसार में है न? पूरी अग्नि ईंधन से एकरूप हो जाती है। है न? **आत्मद्रव्य ज्ञान-ज्ञेय अद्वैतनय से...** २४वाँ नय है। ४७ नय है न? **ज्ञान-ज्ञेय अद्वैतनय से...** ज्ञान, ज्ञेय के अद्वैतरूप नय से। दोनों का एकपना हो जाना। ज्ञेय का ज्ञान और ज्ञान का ज्ञान। ज्ञेय तो ज्ञेय में रह गये। ज्ञेय का ज्ञान और आत्मा का ज्ञान, यह अद्वैत हुआ। अब ऐसी बातें। है? **विशाल ईंधनसमूहरूप परिणत अग्नि की भाँति...** विशाल अग्नि का ढ़ेर हो, वह सबको जलाकर अग्निमय कर देती है। ऐसे एक है। यह एक अलग वस्तु है। यह एक है, वह अपेक्षित धर्म है। पूरी अग्नि एकरूप हो जाती है, वैसे ज्ञान और ज्ञेय का ज्ञान एकरूप हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? यह अद्वैतनय।

द्वैतनय। **आत्मद्रव्य ज्ञानज्ञेयद्वैतनय से, पर के प्रतिबिम्बों से संपृक्त दर्पण...** दर्पण। शीशा कहते हैं न? परवस्तु जो है, उसके संग से **दर्पण की भाँति अनेक है (अर्थात् आत्मा ज्ञान और ज्ञेय के द्वैतरूप नय से अनेक है। जैसे पर - प्रतिबिम्बों के संगवाला...)'** दर्पण पर के प्रतिबिम्ब के संगवाला अन्दर में। आहाहा! वैसे **अनेकरूप है।** इस प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान में ज्ञेय के संग से, ज्ञान तो अपना हुआ है परन्तु ज्ञेय का निमित्त है तो संग हुआ परन्तु हुआ एकरूप। ईंधन की भाँति। और यह हुआ अनेकरूप। ज्ञान और ज्ञेय, दर्पण में जैसे प्रतिबिम्ब पड़ते हैं, प्रतिबिम्ब और दर्पण दोनों द्वैत हो गये। वैसे भगवान आत्मा... सर्वगत कहा न? सर्वगत। आत्मा सर्वगत है। यह नय भी उसमें आ जाता है।

पंचाध्यायी में सर्वगत को नयाभास कहा है। समझ में आया? यहाँ एक अपेक्षा से

सर्वगत कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा। सर्वगत—सर्व वस्तुओं का ज्ञान पूर्ण हो जाता है, इस अपेक्षा से सर्वगत है। समझ में आया? सर्वगत अर्थात् पर में व्यापक हो जाता है, ऐसा सर्वगत नहीं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **आत्मद्रव्य ज्ञानज्ञेयद्वैतनय से, पर के प्रतिबिम्बों से संपृक्त...** दर्पण में बाहर में अग्नि और जल है, वह दिखता है, बर्फ और अग्नि बाहर है, उसका प्रतिबिम्ब यहाँ दिखता है। वह कोई अग्नि और बर्फ अन्दर नहीं है। वह तो दर्पण की अवस्था है। समझ में आया? इसी प्रकार ज्ञानज्ञेयद्वैतनय से। दो रूप से, ज्ञेय का ज्ञान और अपना ज्ञान, ऐसे दोरूप हो गये, इस अपेक्षा से अनेक है। आहाहा! कलश-टीका में एक-अनेक आया। नय में एक-अनेक आया। चलते अधिकार में एक-अनेक आया। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **अनेक पर्यायों में व्यापक...** भगवान आत्मा अनेकगुण और पर्याय में व्यापकरूप से **एकद्रव्यमयतारूप...** है? **व्यापक ऐसी एकद्रव्यमयतारूप...** एकद्रव्यस्वरूप। आहाहा! ऐसी एकत्वशक्ति है। यह गुण है। यह एकत्वशक्ति गुण है, इसकी पर्याय होती है। और द्वैत और अद्वैत कहे, वे गुण नहीं, वे धर्म हैं। उनकी पर्याय होती है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! चारों ओर से वस्तु की स्थिति सिद्ध करते हैं और सम्यक् वेदन बिना जितने कायक्लेश करे, व्रत करे, शास्त्र पढ़े, सब संसार है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान, अपनी एकत्वशक्ति। सर्व पर्यायों में व्यापकता, पसरना, फैलना, इसरूप एकद्रव्यमय, एकद्रव्यमय। एकद्रव्यवाला, ऐसा नहीं। एकद्रव्यमय। आहाहा! सर्व व्यापक अपने गुण-पर्याय में एकद्रव्यमय एकत्वशक्ति है। वह एकत्वशक्ति अनन्त गुण में व्यापक है। क्या कहा, समझ में आया? ज्ञानगुण में भी एकत्व का रूप है। ज्ञान अपने में एकरूप होता है। समझ में आया? आहाहा! यह एकत्वशक्ति का स्वरूप कहा। अब दूसरा बोल। यह ३१वीं शक्ति। एकपना, वेदान्त एकपना कहता है, वह नहीं। यहाँ तो अपने गुण, पर्याय में व्यापकपना, ऐसा एकमय। समझ में आया? आहाहा! आचार्यों ने तो गजब काम किया है!

मुमुक्षु : अनेकपना रखकर एकत्व है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनेकपना रखकर एकत्व है। अनेकपना भी आयेगा। समझ में आया? पहले लिया न? अनेक पर्यायों में व्यापक, ऐसा लिया। सर्व द्रव्यों में व्यापक होकर एक, ऐसा नहीं लिया। आहाहा! अपनी अनेक पर्यायें, अपने भेद। गुण की अनन्त पर्यायें। यहाँ निर्मल की बात है, हों! यहाँ मलिनता की बात है ही नहीं। अपनी अनन्त पर्यायों में व्यापक—पसरना, ऐसी एक द्रव्यमयता, एकत्व ऐसी एकपने की शक्ति उसमें है। समझ में आया? आहाहा! वह शक्ति और शक्तिवान... शक्ति का ज्ञान करना परन्तु फिर अनुभव में तो शक्ति और शक्तिवान का भेद भी नहीं है। आहाहा! अभेद की दृष्टि होने से पर्याय में आनन्द का स्वाद आना, इसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान है। आहाहा! शास्त्रज्ञान चाहे जितना हो। अभव्य को भी नौ पूर्व की लब्धि हो जाती है। समझ में आया?

एक बार यह कहा था कि अभव्य को त्रिकाली ज्ञान है, परन्तु ज्ञानपरिणति नहीं। ग्यारह अंग पढ़े, नौ पूर्व पढ़े, परन्तु वह ज्ञानपरिणति नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानपरिणति तो उसे कहते हैं, जो ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि से अभेदरूप से ज्ञान की पर्याय ज्ञान को स्पर्श करके प्रगट होती है, उसका नाम ज्ञानपरिणति, सम्यग्ज्ञानदशा, धर्मज्ञान, धर्मी का ज्ञान उसे कहते हैं। अरे! ऐसा सब कहाँ सीखने जाये? अरे..! भाई!

मुमुक्षु : समझे बिना धर्म नहीं होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होगा। यह समझे बिना धर्म (नहीं होगा)।

मुमुक्षु : पशु को होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पशु को होता है परन्तु उसके भान में सब है। मैं आनन्द हूँ, राग उत्पन्न होता है, वह दुःख है, दुःख और आनन्द का भेदज्ञान वहाँ है। तिर्यंच को नाम न आते हो। यह तो मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है। तिर्यंच को नाम नहीं आते। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, ऐसे नाम (नहीं आते)। परन्तु यह आत्मा आनन्दस्वरूप स्वभावरूप से आनन्द है, उस पर्याय में आनन्द प्रगट हुआ, तो वह संवर और निर्जरा हुई। संवर, निर्जरा के नाम न आते हो। भावभासन है। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान के सन्मुख होकर, निमित्त, राग और पर्याय का भी आश्रय छोड़कर त्रिकाली ज्ञायकभाव का आश्रय करने से आनन्द का स्वाद आता है। आहाहा! इसका नाम सम्यग्दर्शन और धर्म है। ऐसी बात है।

'आतम अनुभव रस कथा प्याला पीया न जाये, आतम अनुभवरस कथा प्याला पीया न जाये, मतवाला तो जाई पड़े, हीनता पड़े पचाय।' आहाहा! धन्नालालजी! यह आनन्दघनजी कहते हैं। 'आतम अनुभव रस कथा...' राग से भिन्न निर्विकल्प वेदन की बात। 'आत्म अनुभवरस कथा, प्याला पीया न जाये...' यह अतीन्द्रिय आनन्द का प्याला साधारण से नहीं पीया जाता। शास्त्रज्ञान के अभिमान, दया, दान और व्रत के अभिमान करे, वह मेरी क्रिया है... आहाहा! उसे अनुभव नहीं होता। 'मतवाला तो जई पड़े' अभिमानी—हम राग करते हैं, व्रत पालते हैं और अपवास करते हैं, ऐसे मतवाला तो जई पड़े, अनुभव से बाहर निकल जाये। 'हीनता पड़े पचाय।' पर की ममतारहित अपने स्वरूप का आश्रय करे। जिनेश्वरदासजी! ऐसी बात है। समझ में आया?

पशु होता है न? पशु, उसे खूँटे से बाँधते हैं। खूँटा होता है न? खूँटा। तो घूम नहीं सकता। खूँटा छोड़ दे तो घूमता है। यहाँ आत्मा में आनन्द का खूँटा अन्दर लगा दिया। आहाहा! वह अब परिभ्रमण नहीं करेगा। खूँटे से बाँध दिया। समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द का खूँटा अन्दर भगवान आत्मा ध्रुव... ध्रुव है। आहाहा! ध्रुव को ध्येय बनाकर... आहाहा! इसका अर्थ क्या है? मैं यह ध्रुव हूँ, ऐसा भेद करना—ऐसा भी नहीं। मात्र वर्तमान पर्याय परसन्मुख है, उसे छोड़कर नयी पर्याय स्वसन्मुख होती है, इसका अर्थ सामान्य ध्रुव पर पर्याय का लक्ष्य गया, ऐसा कहा जाता है। बाकी यह ध्रुव है, इसलिए मैं ध्यान करता हूँ, ऐसा विकल्प करना, वह तो भेद है। समझ में आया? आहाहा! ढ़ोर खुल्ले हुए घूमते हैं और बाँधे हुए एकरूप रहते हैं, घूमते नहीं। यहाँ कहते हैं कि आत्मा से भिन्न राग की एकत्वबुद्धिवाला चार गति में घूमता है। आहाहा! राग से भिन्न अपना निज आनन्दकन्द प्रभु, उसमें जहाँ दृष्टि लगायी तो आत्मा को खूँटे से बाँध दिया। खूँटे का अर्थ... खूँटा कहते हैं न? यहाँ खीले को खूँटा कहते हैं। और दूसरी वस्तु, अन्दर कम नहीं हो, ऐसी चीज़ प्रभु आत्मा भगवान है। आहाहा! पद्मचन्दजी! यहाँ तो ऐसी बातें हैं। आहाहा!

कहते हैं कि अनेक पर्याय में व्यापक। पर्याय सिद्ध तो की। अनित्यपना है तो सही। समझ में आया? द्रव्य एक, गुण अनन्त, पर्याय अनन्त ऐसा है। है नहीं, ऐसा नहीं। आहाहा! अनेक पर्यायों में पसरना, व्यापना, विस्तार होना, ऐसी एकद्रव्यमयपनेरूप एकत्वशक्ति। परन्तु है वस्तु एकद्रव्यमय एक वस्तु है। आहाहा! शक्ति का वर्णन बहुत

सूक्ष्म। चन्दुभाई का पत्र आया है, भाई! चन्दुभाई डॉक्टर। बहुत प्रमोद बताया है। ओहो! शक्ति का वर्णन..! वहाँ से निकलना सुहाता नहीं था, परन्तु अब... चन्दुभाई नहीं? उनका वाँचन बहुत है। और उन डॉक्टर का आया है। डॉक्टर है न टाटा के? वहाँ रक्त की रिपोर्ट गयी है न? उनने कहा, यह कोई चिन्ताजनक चीज़ नहीं। यह चीज़ दूसरी है।

मुमुक्षु : आपको किसकी चिन्ता?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुझे नहीं परन्तु लोग चिल्लाहट मचाते हैं। यहाँ तो हमें कुछ खबर भी नहीं पड़ती, है या नहीं। रक्त में कैंसर! आहाहा! चिल्लाहट मचा गये। कहा, कैंसर नहीं, भाई! वह कैंसर की जाति नहीं है। वह कोई रक्त के बिगाड़ की जाति है। समझे? वह कोई चिन्ता करने की वस्तु नहीं है। लोग चिल्लाहट मचाते हैं, अरे रे! उनने-चन्दुभाई ने लिखा है। एक टाटा के बड़े डॉक्टर हैं, वहाँ से स्पष्टीकरण आया है कि यह चीज़ चिन्ताजनक है ही नहीं। यह तो साधारण बात है। समझ में आया? पाँच वर्ष, दस वर्ष, बीस वर्ष कुछ नहीं होगा। फिर भाई-चन्दुभाई ने दृष्टान्त दिया है। उपशम... उपशम। उपशम समकित है न? दबाकर रहा हुआ है। चन्दुभाई ने ऐसा कहा है। दबाकर रहा हुआ है। बाहर प्रगट हो, ऐसी वह वस्तु नहीं है। अरे! परन्तु वह तो देह की स्थिति हो, ऐसा रहे, उसमें चिन्ता क्या? समझ में आया? यहाँ तो मैं एक हूँ, ऐसे विकल्प की चिन्ता भी काम नहीं करती।

मुमुक्षु : आपको तो (चिन्ता) नहीं परन्तु सबको है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए तो थोड़ा कहा। आहाहा! यह डॉक्टर, बड़ा डॉक्टर टाटा का है। उसे अपने नवरंगभाई के पुत्र का सम्बन्ध है। नवरंगभाई का बड़ा पुत्र है न? उसने पत्र लिखा था। पत्र का जवाब आया है। लाये थे, पत्र आया है। उसमें बिल्कुल ऐसा कि यह तो दबी हुई चीज़ है। कोई बाहर आवे, ऐसी वह चीज़ नहीं है। समझ में आया? महीने-महीने रक्त जाँचना, इतना।

मुमुक्षु : सम्हाल रखना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सम्हाल रखे? आहाहा! यहाँ तो खबर पड़ती नहीं। हमको क्या है, खबर पड़ती है? क्या है और कहाँ है? आहाहा!

यहाँ तो आत्मा निर्विकल्प आनन्दकन्द प्रभु है। आहाहा! ऐसा वेदन करना, वह जगत में चीज़ है। बाकी तो सब व्यर्थ है। यह पंच महाव्रत पाले... समझे? इसमें लिखा है, हों! '...आदि शुभभाव, ऐहु...' वह पर है, ऐसा नहीं मानता और उसमें उल्लसित होता है कि हम कुछ करते हैं। 'शुभाशुभ रीति त्यागी जगे हैं... ते ज्ञानवान चिदानन्द है' फिर कहीं है अवश्य दूसरी जगह। 'वाणी...' पुण्य-पाप से रहित भगवान है, उन भगवान की वाणी का सार है। क्रियाकाण्ड के व्रत और उन सब पुण्य-पाप से भिन्न मेरा भगवान है। समझ में आया? फिर कहीं है। '...' भगवान तो आनन्द का नाथ है और यह भिखारी की भाँति मुझे पैसा चाहिए और स्त्री चाहिए और परिवार चाहिए, यह चाहिए और धूल चाहिए... भिखारी है। धन्नालालजी!

मुमुक्षु : होय उसका क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ हो? वह तो उसमें है, जड़ में है। 'शक्ति संभारी...' आहाहा!

मुमुक्षु : रुपये रखना या डाल देना?

पूज्य गुरुदेवश्री : रखे कौन और डाले कौन? इसमें है। हाथ नहीं आता। अध्यात्म पंचसंग्रह में दृष्टान्त दिया है कि नग्न तो पशु भी होते हैं और बाल तो भेड़ भी... समझ में आया? तो उससे आत्मा को क्या लाभ है? आहाहा! उसमें कहीं है। एक लाईन है। इस ओर है। ज्ञानदर्पण में कहीं है। बड़ा समुद्र है, सब कहीं (याद रहता है)? इस ओर लाईन है, इस पृष्ठ पर इस ओर लाईन है, नीचे से दूसरी लाईन है। तुम्हारे नामा का सब याद रहता है न? पद्मचन्दजी! यह भगवान आत्मा का नामा।

मुमुक्षु : आपका यही नामा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही नामा है। आहाहा!

एक शक्ति। यह एकत्वशक्ति एक गुण है और वहाँ जो अद्वैतपना कहा, वह अपेक्षित धर्म है। नय में ईंधन का दृष्टान्त देकर ज्ञानज्ञेयअद्वैत (कहा), वह तो एक अपेक्षित धर्म है। समझ में आया? और एक-अनेक कलश-टीका में २०वें कलश में आया। २०वाँ चलता है न अपने? वह एक-अनेक इसका स्वभाव है। अनेकपना भी

पर्याय अपेक्षा से स्वभाव है और एकपना भी द्रव्य की अपेक्षा से स्वभाव है परन्तु यह विकल्प का पक्ष है, उसे छुड़ाते हैं। समझ में आया? यहाँ एकत्व के विकल्प की अपेक्षा नहीं है। यह तो एकत्व नाम का गुण भगवान में है तो द्रव्यदृष्टि करने से एकत्वधर्म में एकत्व का परिणमन होता है। सब अनन्त गुण और अनन्त पर्याय परिणमन में आती हैं। शुद्ध... शुद्ध। आहाहा!

यह शक्ति प्रत्येक में व्यापक है और इस शक्ति में ध्रुव उपादान और क्षणिक उपादान दोनों हैं। एकत्वशक्ति है, वह कायम है, इसका नाम ध्रुव उपादान है परन्तु क्षणिक में उसका परिणमन होता है, इसका नाम क्षणिक उपादान है। परिणमन बिना ध्रुव शक्ति की प्रतीति यथार्थ नहीं होती। समझ में आया? एकत्वशक्ति के परिणमन बिना, यह एकत्वशक्ति है और एकत्वशक्ति का धारक भगवान आत्मा है, ऐसे परिणमन बिना उसका ख्याल नहीं आता। सत्ता का स्वीकार जब परिणमन में आता है, तब सत्ता है, ऐसी स्वीकृति आती है। आहाहा! मार्ग ऐसा सूक्ष्म, इसलिए लोगों को (कठिन लगता है)। अब अनेक।

एकद्रव्यव्याप्यानेकपर्यायमयत्वरूपा अनेकत्वशक्तिः।

एक द्रव्य से व्याप्य जो अनेक पर्यायें उसमयपनेरूप अनेकत्वशक्ति।३२।

एक द्रव्य से व्याप्य जो अनेक पर्यायें... क्या कहते हैं? भगवान आत्मा एक द्रव्य, उसमें व्याप्य। एक द्रव्य से व्याप्य अनेक पर्यायें। भाषा देखो! अपने एक द्रव्य में व्याप्य अनेक पर्यायें। है अनेकशक्ति? अनेकशक्ति है, वह इसका गुण है। आहाहा! क्योंकि अनेकपना गुण और पर्यायरूप से परिणमन है तो वह उसकी शक्ति-गुण है। अनेकपना उसका गुण है। वेदान्त तो यहाँ तक कहता है कि आत्मा अनुभव करे? दो चीज़ हो गयी। आत्मा और अनुभव। इसका भी वे लोग निषेध करते हैं। समझ में आया? वेदान्त के बाबा मिले हों और बहुत बार चर्चा हुई है।

यहाँ हमारे एक भाई थे। भाईलालभाई थे, बरवाळा। उन्हें जरा वेदान्त की लाईन हो गयी। एक प्रश्न उन्होंने बहुत वर्ष पहले किया। भक्तामर में आता है न? अव्यय, विभु। भक्तामर में एक श्लोक आता है—अव्यय है, अक्षय है, विभु है। विभु का अर्थ समझे?

यह भक्तामर है। २४वाँ श्लोक है, भक्तामर का २४वाँ (श्लोक)। 'तुं आद्य अव्यय अचिंत्य असंख्य विभु', गुजराती में है। हे नाथ! तू आद्य, अव्यय—व्यय / नाशरहित, अचिन्त्य—चिन्तवन न हो ऐसा, असंख्य विभु। 'हे ब्रह्मा ईश्वर अनन्त अनंगकेतु' आप ब्रह्मा हो, आप विष्णु हो, परमात्मा की स्तुति करते हैं। वे लोग जो ब्रह्मा, विष्णु कहते हैं, वह नहीं परन्तु यह जो केवलज्ञान प्राप्त करके जलहल ज्योति प्रगट की, प्रभु! आप ही ब्रह्मा, आप ही विष्णु, आप ही शंकर हो। समझ में आया? अनंगकेतु। आहाहा! संसार में कण्ठस्थ किया था। गृहस्थाश्रम में कण्ठस्थ किया था। मूल श्लोक, हों! आहाहा!

'योगीश्वर विदित योग अनेक एक' लो, यहाँ आया। 'योगीश्वर विदित योग अनेक एक' प्रभु! आप अनेक भी हो और एक भी हो। लो, इसमें आ गया। 'कहते तुझे विमल ज्ञानस्वरूप सन्त' आप विमल ज्ञानस्वरूप हो, ऐसा सन्त कहते हैं। अकेले ज्ञान के पुंज प्रभु। चिद्रूपो अहं। आता है? आया? चिद्रूपो अहं। समझे? क्या कहलाता है यह? 'तत्त्वज्ञान तरंगिणी' में आता है। तत्त्वज्ञान तरंगिणी में... क्या कहा? चिद्रूपो अहं। वहाँ यह एक ही शब्द बारम्बार प्रयोग करते हैं। चिद्रूपो अहं। मैं तो ज्ञानस्वरूपी हूँ। राग, पुण्य और संसार स्वरूप मुझमें है ही नहीं। चिद्रूपो अहं—ऐसा पाठ है।

यहाँ आया, देखो! (अध्यात्म पंचसंग्रह—ज्ञानदर्पण, सवैया-१८२) **'आग तै पतंग यह जल सेती जलचर, जटा के बढ़ाये सिद्धि है तो बट धरे हैं'** जटा को बढ़ाने से सिद्धि होती हो तो वड़ को बहुत जटा होती है। वड... वड। **'आग तै पतंग यह जल सेती जलचर, मुंडन तैं उरणिये नगन रहे तैं पशु'** कष्ट तो वृक्ष भी सहन करता है। धूप, सर्दी। आहाहा! इससे क्या हुआ? है? **'कष्ट को सहे ते तरु, कहुं नहीं तरें हैं,'** इससे कोई तिरता नहीं। **'बक ध्यान'** शास्त्र पढ़ा तो शुक—तोता भी पढ़ता है। आहाहा! बगध्यान—बगुले का ध्यान। बगुला ध्यान करता है न? ऐसे विकल्प का ध्यान करने से तेरा कल्याण होता हो तो बगुला (भी ध्यान करता है)। यह दीपचन्दजी ने खुल्ला रखा है इसमें अध्यात्म पंचसंग्रह में लिखा है। यह तो शान्ति का मार्ग तुझे बताते हैं। भाई! शान्ति तो यह है। तेरे भवभ्रमण के नाश का उपाय तो यह है। उसकी शान्ति की बात है।

अभी तो अब यह बहिन की पुस्तक निकली है। मुझे तो ऐसा विकल्प आया कि

बहुत वस्तु होनी चाहिए। अपने वस्तुविज्ञानसार नहीं? दस हजार। यह चीज़ तो हिन्दुस्तान में, गुजरात में सर्वत्र प्रचार करना चाहिए। यह एक ही चीज़ ऐसी बाहर आयी है कि अभी आवश्यकता की वस्तु बाहर आयी है। अब आ गयी है, बिक्री में आ गयी है। तुम्हारा चिरंजीवी आया था। परमात्मप्रकाश। कहा, तुम्हारे पिताजी को दिया है। आहाहा!

अब यहाँ से (अध्यात्म पंचसंग्रह, ज्ञानदर्पण, सवैया-१८२ में) **'पठनते शुक, बक ध्यान के लिये कहुं, सिझे नाहिं सुने यातैं भवदु:ख भरे हैं'** इससे कोई मुक्ति-बुक्ति नहीं, बापू! आहाहा! 'अचलित अबाधित अनुप अखण्ड महा आत्मज्ञान के लखैया **'अचल, अबाधित, अनुपम, अखंड महा, आतमीक ज्ञान के सवैया सुख करे हैं।'** अचल—चलित नहीं। अबाधित—बाधारहित, अनुपम अखण्ड महाप्रभु आत्मज्ञान के लखैया। आत्मज्ञान के जाननेवाले शुक हैं। उसे अनुभव का सुख होता है। बाकी तो सब क्लेश है। समझ में आया? आहाहा! पृष्ठ कितना है? ६१ नहीं?

यहाँ अनेकत्वशक्ति। **एक द्रव्य से व्याप्य जो अनेक पर्यायें...** भाषा देखो! एक पर्यायें सिद्ध कीं। **उसमयपनेरूप...** अनेकपनेरूप, अनेक पर्यायपनेरूप **अनेकत्वशक्ति।** है। जैसे एक शक्ति है, वैसे साथ में अनेकत्वशक्ति भी है। एकसाथ है। ४७ नय में आता है न? भाई! क्रियानय से मोक्ष, ज्ञाननय से मोक्ष। ४७ नय में ऐसा पाठ आता है। प्रवचनसार। वहाँ कहा, क्रियानय से मोक्ष होता है। क्या अपेक्षा है? वहाँ तो पहले कहा है, श्रुतज्ञानप्रमाण में... पहला शब्द है न? भाई! नय तो एक-एक लिया परन्तु श्रुतज्ञानप्रमाण में एकसाथ धर्म दिखते हैं। तो क्रियानय का धर्म, ज्ञाननय का धर्म भिन्न-भिन्न काल है, ऐसा नहीं है। वह तो एक अपेक्षित वहाँ राग का अभाव गिनकर क्रियानय लिया है। उसी समय ज्ञाननय साथ में है और ऐसे अनन्त-अनन्तगुना श्रुतप्रमाण से ज्ञात होता है, ऐसा वहाँ पाठ है। श्रुतप्रमाण (कहा)। श्रुतप्रमाण तो एकसाथ सभी धर्मों को देखता है। पहले क्रियानय है, फिर ज्ञाननय है, ऐसा कुछ नहीं। समझ में आया? थोड़ी सूक्ष्म बात है। आहाहा! वहाँ क्रियानय कहा है न? परन्तु किस अपेक्षा से? है तो ज्ञाननय से मुक्ति परन्तु राग का अभावरूप गिनकर वहाँ एक धर्म ऐसा गिनने में आया है। परन्तु उसी समय में। दूसरे समय में, ऐसा नहीं। जिस समय में ज्ञान से मोक्ष है, जिस समय में निश्चय से मोक्ष है, उसी समय में व्यवहार क्रियानय से (मोक्ष है), ऐसी कथनशैली से एक प्रकार का धर्म

बताया है। जो कि श्रुतप्रमाण में एकसाथ सबका ज्ञान करता है। श्रुतप्रमाण पहला शब्द आया है। भाई! फिर नय का लिया है, पहले श्रुतप्रमाण आया है। आहाहा! अरे! अर्थ करने का विवाद।

मुमुक्षु : दोनों आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आया न। कहा न, परन्तु कब? एक ही समय में। समझ में आया?

मुमुक्षु : दोनों आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्रिया दूसरी। यह तो वीतरागी क्रिया। वह वीतरागी क्रिया की बात है। यह तो राग की क्रिया से, क्रियानय से मुक्ति, ऐसा एक धर्म गिनने में आया है। समझ में आया? (प्रवचनसार परिशिष्ट)।

यह आत्मा कौन है (कैसा है) और कैसे प्राप्त किया जाता है, ऐसा प्रश्न किया जाये तो इसका उत्तर (पहले ही) कहा जा चुका है और (यहाँ) पुनः कहते हैं :-

प्रथम तो आत्मा वास्तव में चैतन्यसामान्य से व्याप्त अनन्त धर्मों का अधिष्ठाता (स्वामी) एक द्रव्य है... एक साथ सब धर्म हैं। किसी को क्रियानय, ऐसा नहीं। वह तो एक अपेक्षित धर्म एक साथ गिनने में आये हैं। **आत्मा वास्तव में चैतन्यसामान्य से व्याप्त अनन्त धर्मों का अधिष्ठाता....** आधार। अधिष्ठाता है। **एक द्रव्य है, क्योंकि अनन्त धर्मों में व्याप्त होनेवाले जो अनन्त नय हैं, उनमें व्याप्त होनेवाला जो एक श्रुतज्ञानस्वरूप प्रमाण है...** भाई! यहाँ कहना है। प्रमाणज्ञान तो एक समय में बस धर्मों को जानता है। एक समय में है, उन्हें जानता है। किसी को क्रियानय और किसी को ज्ञानय है, ऐसा है ही नहीं। बात समझ में आती है? आहाहा! इसलिए तो पहला शब्द यह लिया।

एक श्रुतज्ञानस्वरूप प्रमाण है, उस प्रमाणपूर्वक स्वानुभव से (वह आत्मद्रव्य) प्रमेय होता है (ज्ञात होता है)... आहाहा! अनन्त धर्म एक समय में गिनने में आये हैं। किसी को क्रियानय से, किसी को ज्ञाननय से, किसी को व्यवहारनय से, किसी को निश्चयनय से, ऐसा उसमें आया है। परन्तु किसी का अर्थ? एक समय में ही सब धर्म हैं।

उसमें बहुत गड़बड़ करते हैं। देखो! क्रियानय से मुक्ति कही है। परन्तु क्या? बापू! एक समय में क्रियानय का एक अपेक्षित धर्म गिनने में आया है। पर्याय में। और श्रुतप्रमाण है, उन अनन्त धर्मों को एकसाथ जानता है। अनन्त धर्म एक समय में हैं, ऐसा श्रुतप्रमाण साथ में जानता है। नय से कहो तो भेद हो गया। परन्तु यह श्रुतप्रमाण तो एक समय में अनन्त धर्मों को जानता है। उसमें पहला धर्म क्रियानय और पश्चात् ज्ञाननय का धर्म है—ऐसा नहीं है। बात समझ में आयी?

प्रमाण जानता है। अनन्त धर्म की योग्यता इस समय में ऐसी है, ऐसा जानता है। जिस समय मुक्ति होती है... कहा था न? कालनय से और अकालनय से मुक्ति, उसमें है। इसका अर्थ किसी को कालनय से होती है और किसी को अकालनय से होती है, ऐसा है? कालनय और अकालनय, एक समय में दो धर्म गिनने में आये हैं। और श्रुतज्ञानप्रमाण एक समय में अनन्त धर्मों को एकसाथ जानता है। किसी को कालनय से और किसी को अकालनय से (मुक्ति), ऐसा है ही नहीं। आहाहा! गड़बड़ बहुत बड़ी। वजन यहाँ है। वजन को क्या कहते हैं? वजन कहते हैं?

एक श्रुतज्ञानस्वरूप प्रमाण है, उस प्रमाणपूर्वक स्वानुभव से प्रमेय होता है... आत्मा। यह क्रियानय का धर्म, ज्ञाननय का, निश्चयनय का, व्यवहारनय का भी आया है। व्यवहारनय का एक धर्म है, निश्चयनय का एक धर्म है, परन्तु सभी एक समय में साथ में अपेक्षित गिनने में आये हैं। एक समय में श्रुतज्ञानप्रमाण सबको एकसाथ जानता है। किसी को व्यवहारनय से मुक्ति होती है और किसी को निश्चयनय से होती है, ऐसा है ही नहीं। न्याय समझ में आता है? इन नयों में से बहुत गड़बड़ करते हैं। श्रुतज्ञानप्रमाण लिया न, उसमें बहुत वजन है। श्रुतज्ञानप्रमाण एक समय में अनन्त धर्मों को एकसाथ जानता है। इसका अर्थ एक साथ अनन्त धर्म हैं। किसी को क्रियानय और किसी को ज्ञाननय, ऐसे भिन्न धर्म नहीं हैं। आहाहा! एकसाथ गिनने में आये हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **अनेक पर्यायें उसमयपनेरूप...** अनेक पर्यायोंमय। पहले में—एक में द्रव्यमयपना लिया था। एक में द्रव्यमयपना लिया था। अनेक में **उसमयपनेरूप...** अनेक पर्याय उसमयपने। है न? अनन्त भेद है उसमयपने अनेकत्वशक्ति है। आहाहा!

समझ में आया? बात थोड़ी सूक्ष्म है। एक शक्ति अनन्त पर्यायों में व्यापक एक द्रव्यमयपने की एकशक्ति गिनने में आयी। और अनेक—एक ही द्रव्य अनन्त पर्यायों में व्यापता है, इस अपेक्षा से अनेकत्वशक्ति गिनने में आयी है। आहाहा! शास्त्र के अर्थ करने में भी बड़ी गड़बड़ हो गयी। शास्त्र को किस अपेक्षा से कहना है, वह अपेक्षा न समझे और अपनी धारणा से अर्थ करे तो दु:खी हो जाता है। दो शक्तियाँ हुईं।

भूतावस्थत्वरूपा भावशक्तिः

विद्यमान–अवस्थायुक्ततारूप भावशक्ति। (अमुक अवस्था जिसमें विद्यमान हो उसरूप भावशक्ति।३३।

अब यह तीसरी शक्ति बहुत गम्भीर अलौकिक है। **विद्यमान–अवस्थायुक्ततारूप भावशक्ति।** क्या कहते हैं? आत्मा में एक भावशक्ति ऐसी है कि कोई भी वर्तमान पर्याय निर्मल होती ही है, करनी नहीं पड़ती। यहाँ निर्मल की बात है। भावशक्ति का स्वरूप... आया? विद्यमान अवस्थायुक्त। वर्तमान निर्मल पर्याययुक्त विद्यमान है, ऐसी भावशक्ति। वर्तमान भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है। भावशक्ति के कारण निर्मल अवस्था की विद्यमानता पर्याय में होती ही है। समझ में आया?

जिस समय भावशक्ति का परिणमन होता है तो उसी समय निर्मल पर्याय होती है। वह भावशक्ति का कार्य है। आहाहा! भाव अर्थात् उस समय विद्यमान एक अवस्था होती ही है। इस भावशक्ति के कारण वर्तमान में निर्मल पर्याय विद्यमान होती ही है। आहाहा! निर्मल पर्याय मैं करूँ तो होती है, ऐसी बात नहीं है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म भाव है। भावशक्ति का अर्थ ऐसा है कि आत्मा में एक ऐसा गुण है कि वर्तमान में विद्यमान निर्मल अवस्था होती ही है। आहाहा! गम्भीर है।

मुमुक्षु : अभी थोड़ा स्पष्टीकरण करिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : अधिक करते हैं। आत्मा में अनन्त शक्तियाँ हैं, उनमें एक भावशक्ति ऐसी है कि जिसके कारण से वर्तमान में अस्तिवाली विद्यमान निर्मल अवस्था होती ही है। उस भावशक्ति के कारण निर्मल अवस्था विद्यमान होती ही है। आहाहा! यहाँ

निर्मल की बात है, मलिन की बात नहीं। भावशक्ति के कारण भाव—भवन निर्मलरूपी परिणमन का भवन भावशक्ति के कारण विद्यमान परिणमन होता ही है।

मुमुक्षु : ज्ञान तो करना पड़ता है न उसका?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान करना, यह दूसरी बात है, परन्तु विद्यमान पर्याय भावशक्ति के कारण होती ही है। मैं करूँ तो भावशक्ति की प्रगट निर्मलता हो, ऐसी यहाँ बात नहीं है, ऐसा कहते हैं। फिर से, ऐसे जाने नहीं देंगे। यह तो बड़ी शक्ति है।

भगवान आत्मा, जैसे ज्ञानशक्ति है, आनन्दशक्ति है, श्रद्धाशक्ति है, अस्तित्वशक्ति है, ऐसी एक भावशक्ति है। तो भावशक्ति की स्थिति क्या? कि शक्ति तो त्रिकाल है परन्तु उस शक्ति का कार्य क्या? कि वर्तमान में अनन्त गुण की निर्मलता की पर्याय विद्यमान हो ही हो। वर्तमान विद्यमान निर्मल पर्याय होती ही है। यहाँ तो सम्यग्दृष्टि की बात है न! अज्ञानी की बात नहीं। यह तो भावशक्ति और शक्तिवान का जिसे अनुभव है, उसे निर्मल पर्याय विद्यमान होती ही है। यहाँ मिथ्यादृष्टि की बात नहीं है। भाई ने ठीक प्रश्न किया। समझ में आया?

यहाँ तो भावशक्ति और शक्ति का धारक भगवान, उसकी जिसे प्रतीति (हुई है), पर्याय में—ज्ञान की पर्याय में गुण और द्रव्य ज्ञेयरूप से आये हैं। ज्ञेयरूप से निर्मलरूप से आनन्द की पर्याय के साथ ज्ञानरूप से आया है, उसे भावशक्ति के कारण निर्मल पर्याय विद्यमान होती ही है। समझ में आया? आहाहा!

दूसरे प्रकार से कहें तो जो भावशक्ति है, तो पूर्व की निर्मल पर्याय थी, उसके कारण से बाद की निर्मल पर्याय हुई, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। धीरे से समझने की चीज़ है। यह भाव बहुत बार व्याख्यान में लिया था। भावशक्ति का स्वरूप—इस शक्ति के कारण से वर्तमान निर्मल पर्याय की अस्ति विद्यमान होती ही है। आहाहा! जैसे केवलज्ञान की पर्याय भावशक्ति के कारण विद्यमान पर्याय होती ही है। तो कहते हैं कि पूर्व में मोक्षमार्ग था तो यह पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। इस भावशक्ति के कारण वर्तमान केवलज्ञान की पर्याया विद्यमान है। आहाहा!

जिस समय में जो पर्याय होती है, वह काललब्धि। एक बात। कार्तिकेयानुप्रेक्षा में

कहा। प्रत्येक द्रव्य की काललब्धि होती है। अर्थात् उस समय में वह पर्याय होती है, उसकी वह काललब्धि है। और प्रवचनसार १०२ गाथा में कहा कि जन्मक्षण होता है। पर्याय की उत्पत्ति का काल होता है। यहाँ निर्मल की बात है, हों! परन्तु यह काल है, अवसर में होती है, काललब्धि है परन्तु उसका कारण कौन? भावशक्ति है तो निर्मल पर्याय उसमें होती ही है। समझ में आया?

मुमुक्षु : इस शक्ति का विकल्प नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। विकल्प नहीं। विकल्प करे तो उससे हो, ऐसा भी नहीं। कल विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २८, शक्ति- ३३ बुधवार, (द्वितीय) श्रावण कृष्ण १०, दिनांक ०७-०९-१९७७

समयसार, परिशिष्ट अधिकार। शक्ति का वर्णन है। आत्मा जो वस्तु है, उसमें अनन्त शक्तियाँ हैं। प्रत्येक शक्ति का लक्षण भिन्न-भिन्न है। कोई शक्ति का लक्षण दूसरी शक्ति के लक्षण में आता है, ऐसा नहीं है। ऐसा आत्मा, जिसे निर्विकल्प अनुभव में आया हो, उसकी बात है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय के राग से भी भिन्न चीज़ है। इस राग की क्रिया से आत्मा का आत्मज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। यह राग बन्ध का कारण है। इसमें अबन्धपरिणाम जो मोक्षमार्ग, वे इससे नहीं होते। मोक्षमार्ग तो अबन्धस्वरूपी भगवान आत्मा, सुखामृत अमृत का सागर प्रभु, उसके साथ (एकत्व करने से होता है)। यहाँ तो पहला अधिकार यह आया न कि ज्ञान की एक समय की पर्याय जब उत्पन्न होती है तो उसके साथ अनन्त गुण की पर्याय साथ में उछलती है। उछलती है अर्थात् उत्पन्न होती है।

यहाँ सम्यग्दृष्टि की बात है। जिसने भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द सुखरूप सागर, सुख स्वभाव की ओर का पता लिया, अन्तर अनुभव हुआ। वह विकल्प से और निमित्त से अनुभव नहीं होता। अनुभव तो अपने द्रव्यस्वभाव सन्मुख शुद्धता के परिणाम त्रिकाली द्रव्य सन्मुख करने से (अनुभव होता है)।

कल कहा था न? पण्डितजी! पर्याय। रात्रि (चर्चा) में। असंख्य प्रदेश हैं तो प्रत्येक प्रदेश में पर्याय, भिन्न ऊपर है। समझ में आया? यह आत्मा जो है, वह तो शरीरप्रमाण है परन्तु अपनी वस्तु भिन्न है। उसमें ऊपर-ऊपर जो असंख्य प्रदेश बाह्य हैं, उसमें ही पर्याय है, ऐसा नहीं। समझ में आया? यहाँ अन्दर शरीर में पेट में असंख्य प्रदेश हैं तो प्रदेश-प्रदेश में पर्याय भिन्न ऊपर है। रात्रि में आया था। एक पॉईन्ट में पर्याय का क्षेत्र भिन्न है, ध्रुव का क्षेत्र भिन्न है। आहाहा! यह तो अलौकिक बातें हैं, भगवान!

असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण से विराजमान बादशाह आत्मा है। आहाहा! और असंख्य प्रदेशी उसका देश है और अनन्त गुण उसका गाँव है। गाँव को क्या कहते हैं? गाँव है। और एक-एक गाँव में अनन्त प्रजा है। आहाहा! जिनेश्वरदासजी! यह तो हिन्दी भाषा है। किसी को न समझ में आये तो रात्रि में पूछ लेते हैं... आहाहा!

यहाँ तो प्रभु, अन्तर्मुख दृष्टि करने का अर्थ यह है कि सभी असंख्य प्रदेश में पर्याय ऊपर है। यह बाह्य पर्याय है, शरीर और आत्मा भिन्न है, बाह्य पर्याय है, वह ऊपर है—ऐसा नहीं। बाह्य के प्रदेशों में भी पर्याय ऊपर है और अन्तर के प्रदेशों में भी पर्याय ऊपर है। समझ में आया? अनन्त गुण की असंख्य प्रदेश में प्रत्येक की पर्याय भिन्न-भिन्न है। उस पर्याय का लक्ष्य छोड़कर... आहाहा! सब ऊपर का लक्ष्य छोड़ना, ऐसा नहीं। अन्दर प्रदेश में पर्याय है, उस सबका लक्ष्य छोड़कर, अन्दर ध्रुव भगवान ध्रुव का तारा है, (उसकी दृष्टि करना)। आहाहा!

इस समुद्र में ध्रुव तारे से जहाज चलते हैं न? उसके लक्ष्य से (चलते हैं)। ध्रुव तारा होता है न? समुद्र में जहाज चलते हैं न? ध्रुव तारा होता है। वह तारा जिस स्थान में है, वहाँ ही है। वह घूमता नहीं। उसके ऊपर से आगबोट... आगबोट समझते हो? जहाज नहीं, बड़ी आगबोट। जहाज तो जहाज हुआ। स्टीमर कहो या बड़ी आगबोट कहो। आहाहा! वह सब ध्रुव तारे के लक्ष्य से चलते हैं। वैसे भगवान आत्मा, ध्रुवरूप जो अन्दर वस्तु है, असंख्य प्रदेश में एक समय की पर्याय ऊपर है, उससे भिन्न अन्दर ध्रुवपना है। आहाहा! उस ध्रुव की ओर पर्याय को वर्तमान में अन्दर में गहरे ले जाना। आहाहा! तब उस ध्रुव और पर्याय में एकता (होती है)। पर से एकता थी, स्व से एकता हुई। राग के साथ एकता थी, उस पर्याय की ध्रुव के साथ एकता हुई। एकता का अर्थ ध्रुव और पर्याय एक हो जाते हैं, ऐसा एकता का अर्थ नहीं है। पर्याय उस ओर झुकी तो एकता कही जाती है। ऐसा बहुत सूक्ष्म मार्ग, बापू! आहाहा! अब ऐसा सत्य है, वह अन्तर में न बैठे, अनुभव न हो और व्रत, तप करने से कल्याण होगा, यह मिथ्यात्वभाव पाखण्डभाव है। समझ में आया?

ध्रुव चिदानन्द आनन्दरस, ज्ञानरस, शान्तरस, वीतरागरस, जीवत्वशक्ति का रस, चिति, दृशि, ज्ञान का रस अन्दर ध्रुव में भरा पड़ा है। आहाहा! उस ओर पर्याय को अन्तर में झुकाना, तब निर्विकल्प दृष्टि में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना। तो वह पर्याय हुई, वह भावशक्ति के कारण हुई, ऐसा यहाँ कहा जाता है।

मुमुक्षु : इस शक्ति में बहुत भरा पड़ा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी बाकी है, बात बहुत है। क्या है ? शब्द तो बहुत थोड़े हैं।

विद्यमान-अवस्थायुक्ततारूप... आत्मा अन्तर्मुख दृष्टि करने से अनन्तशक्ति में एक भाव नाम की शक्ति है कि जो भावशक्ति वर्तमान विद्यमान अवस्था को प्रगट करती है। उस भावशक्ति के कारण वर्तमान में पर्याय की अस्ति हो, विद्यमान हो, वह भावशक्ति के कारण है। क्या कहा ?

मुमुक्षु : पर्याय पर्याय के कारण से नहीं हुई ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अपेक्षा से कहा यहाँ। अभी आगे ले जाना है न! उत्पाद उत्पाद के कारण से, यह बाद में लेना है। यहाँ तो भावशक्ति, ऐसा लिया न ? **विद्यमान-अवस्थायुक्ततारूप...** भगवान आत्मा में जितनी अनन्त शक्तियाँ है, उन प्रत्येक शक्ति में भाव का रूप है। भावशक्ति भिन्न है और जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शि, सर्वज्ञ, स्वच्छत्व, प्रकाश, असंकोचविकास, अकार्यकारणत्व, परिणम्यपरिणामकत्व, त्योगोपादानशून्यत्व, अगुरुलघु आदि सभी शक्तियों में (भावशक्ति का रूप है)।

मुमुक्षु : आपको सब याद है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ४७ शक्तियाँ तो कण्ठस्थ हैं। हमेशा पहला स्वाध्याय ही यह होता है। सवेरे उठकर इनका स्वाध्याय होता है और सोने से पहले भी इनका स्वाध्याय होता है। समझ में आया ? कहा न ? जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शि, सर्वज्ञ, स्वच्छत्व, प्रकाश, असंकोचविकासत्व, अकार्यकारणत्व, परिणम्यपरिणामकत्व, त्यागोपादानशून्यत्व, अगुरुलघुत्व, उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्व, परिणाम, अमूर्तत्व, अकर्तृत्व, अभोक्तृत्व, निष्क्रियत्व, नियतप्रदेशत्व, स्वधर्मव्यापकत्व, साधारण-असाधारण-साधारणासाधारणधर्मत्वशक्ति, अनन्त धर्मत्व, विरुद्धत्व, तत्त्व, अतत्त्व, एकत्व, अनेकत्व, भाव, अभाव। अभी भाव शक्ति आयी है। भाव, अभाव, भावअभाव, अभावभाव, भावभाव, अभावअभाव, भाव, क्रिया, कर्म, कर्तृत्व, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, स्वस्वामीसम्बन्धशक्ति। यह ४७ हो गयी। ४७ शक्तियों से भी अनन्त शक्तियाँ अन्दर है। कथन में कितनी आवे ? आहाहा!

भगवान अनन्त चैतन्य रत्नाकर से भरपूर है। अमृत का सागर अन्दर में उछलता है। आहाहा! परन्तु किसको? उछलता है, ऐसा कहा न? पहले आया था। ज्ञानपर्याय उछलती है, उसमें अनन्त शक्तियाँ उछलती हैं, परन्तु किसे? कि जिसकी दृष्टि द्रव्य पर गयी है और पर्याय में आनन्द का वेदन आया है, उसे भावशक्ति की विद्यमान आनन्द की पर्याय प्रगट होती है। भावशक्ति की भी पर्याय (होती है)। भवन, भावशक्ति का भवन। यहाँ विद्यमान कहा न? भावशक्ति है, उसका भवन। विद्यमान अवस्थायुक्तपना। किसी भी समय इस भावशक्ति के कारण विद्यमान अवस्था होती ही है। करनी नहीं पड़ती। मैं यह करूँ, ऐसा है नहीं।

जो अनन्त शक्ति का पिण्ड प्रभु है, उसकी अन्तर में वर्तमान ज्ञान की पर्याय में पूरे द्रव्य को ज्ञेय बनाकर प्रतीति हुई, निर्विकल्प वेदन हुआ, उस समय ज्ञान की पर्याय भी (परिणमती है)। ज्ञानगुण में भी भावशक्ति का रूप है, तो ज्ञानगुण में भी वर्तमान अवस्थायुक्तपना होता है। सूक्ष्म बात है। समझ में आया?

जीवत्वशक्ति है, पहली जीवत्वशक्ति लेते हैं। जीवत्वशक्ति में ज्ञान, दर्शन, आनन्द और सत्ता प्राण है। इस जीवत्वशक्ति का जो भाव है, उसकी वर्तमान अवस्था विद्यमान होती ही है। भावशक्ति के कारण से तो अपनी पर्याय होती है। परन्तु जीवत्वशक्ति के कारण भावरूप उसमें शक्ति है, इस कारण से उसकी विद्यमान अवस्था (होती ही है)। दर्शन, ज्ञान, चारित्र और सत्ता की पर्याय विद्यमान अवस्थायुक्त होती है। आहाहा!

दूसरे प्रकार से कहें तो वर्तमान भावशक्ति अवस्थायुक्त है तो उस समय में जो अवस्था होनी है, वह भावशक्ति का भवन—परिणमन (होता है)। ऐसा लेना है न? परिणमन तो स्वतन्त्र है परन्तु यहाँ भावशक्ति के कारण परिणमन है, ऐसा लेना है। समझ में आया? ऐसे अनन्त गुण जो है, उसमें जीवत्वशक्ति में भावशक्ति का रूप है। भावशक्ति नहीं। एक गुण में दूसरे गुण का अभाव है। निराश्रया गुणाः। आता है न? गुण के आश्रित गुण नहीं है, द्रव्य के आश्रित गुण हैं। अरे! आहाहा! भगवान आत्मा के आश्रित अनन्त गुण हैं परन्तु एक गुण के आश्रित दूसरा गुण है, ऐसा नहीं है। जीवत्वशक्ति है, उसके आश्रय भावशक्ति है या भावशक्ति के आश्रय से जीवत्वशक्ति है, ऐसा नहीं है। तथापि जीवत्वशक्ति

में भावशक्ति का रूप है, तो जीवत्वशक्ति का वर्तमान अवस्थायुक्तपना होना, वह उसका स्वभाव है। आहाहा!

यहाँ तो जिसने आत्मा को सम्यग्दर्शन में प्राप्त किया, पूर्णानन्द का नाथ चैतन्यरत्नाकर अमृत का सागर अनन्त शक्ति का सागर भगवान अपनी पर्याय में जब उत्पन्न होता है, तो विद्यमान अवस्था होती ही है, उसे करनी नहीं पड़ती, ऐसा कहते हैं। अरे! ऐसी सूक्ष्म बातें हैं। शक्ति का अधिकार बहुत सूक्ष्म है। क्योंकि द्रव्यदृष्टि का अधिकार है न यह? आहाहा!

अरे! कभी किया नहीं। बाहर की क्रिया की सिरपच्ची करके मर गया। संसार की क्रिया से एक तो निवृत्ति नहीं, फुरसत ले तो व्रत, तपस्या, भक्ति और पूजा करे। यह क्रिया है, यह भी रागक्रिया है, बन्ध है, संसार है। यह संसार है और संसार का कारण है। समझ में आया? और यह शक्तियाँ जो हैं, उनमें भावशक्ति का रूप प्रत्येक में है तो जीवत्वशक्ति की पर्याय विद्यमान अवस्थायुक्त ही होती है। आहाहा! वह अबन्ध परिणाम है। जीवत्वशक्ति का वर्तमान अवस्था सहितपना, वह अबन्ध परिणाम है। वह मोक्ष का मार्ग है अथवा वह मोक्ष ही है। आहाहा! बण्डीजी! ऐसी सूक्ष्म बातें। क्या हो?

अरूपी भगवान में रूप तो नहीं परन्तु पुण्य, पाप के विकल्प की जड़ता उसमें नहीं। उसके मूल में वह है ही नहीं। आहाहा! उसके मूल में तो अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, ऐसी अनन्त शक्तियों का संग्रहालय है। संग्रह-आलय। संग्रह का घर। एकबार कहा था न? गत वर्ष मुम्बई गये थे न? गत वर्ष न? भोजन करने गये थे। वहाँ एक टाटा का मकान है। उसमें एक गुना का विजय नाम का लड़का था। बहुत प्रेमवाला। विवाह करने के बाद भी यहाँ प्रेम से आता था और विवाह किया बहुत छोटी उम्र में। उसकी यह... क्या कहलाती है? किडनी। किडनी का दर्द हो गया। बहुत नरम लड़का था। उसके पास हम दर्शन देने गये। बेचारा बहुत नरम। फिर तो दादर में दर्शन करने आया परन्तु अन्दर शक्ति नहीं थी। उसकी माता ने किडनी दी। किडनी दी, तो भी देह छूट गयी। एक वर्ष का विवाह। वहाँ आगे गये थे। उससे पहले शाम को भोजन करना था। आहाहा!

ज्ञान में भी जो पर्याय विद्यमान अवस्थायुक्तपना है, उस भावरूप के कारण से है।

ऐसे श्रद्धागुण जो त्रिकाली है, उसमें भी भावरूपता है तो सम्यग्दर्शन की पर्याय में पर्यायसहित विद्यमानता, उसमें होती है। आहाहा! आनन्दगुण है तो आनन्दगुण में भी भावशक्ति का रूप है तो आनन्दगुण भी वर्तमान आनन्द की पर्याय विद्यमान सहित है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को अनन्त गुण की पर्याय की, उस उस गुण की पर्याय, वह वह वर्तमान विद्यमान अवस्थासहित है। आहाहा! करना नहीं पड़ती।

यह तो कर्तागुण से कहा जाये तो ऐसा कहे कि अनन्त गुण की पर्याय कर्ता है। समझे? कर्ता, कर्म आगे आयेगा। कर्ता नाम की एक शक्ति है, तो उस शक्ति में भी भावशक्ति का रूप है। तो वह कर्ताशक्ति भी वर्तमान अवस्था विद्यमान सहित है। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा गम्भीर है, यह तो बहुत सूक्ष्म बात है। दीपचन्दजी ने इसका बहुत विस्तार किया है। अध्यात्म पंचसंग्रह में, हों! थोड़ा-थोड़ा किया है परन्तु ऐसे संक्षिप्त में समेटा है। परन्तु शक्ति का वर्णन तो एक दीपचन्दजी के अतिरिक्त कहीं इतना विस्तार नहीं आया। थोड़ा साधारण समयसार नाटक में आता है। बाकी विस्तार चिद्विलास में और (अध्यात्म) पंचसंग्रह में है।

यहाँ कहते हैं कि विद्यमान अवस्था। वर्तमान होनेवाली अवस्था, विद्यमान अवस्था। द्रव्य जो है, उसमें अनन्त शक्ति है। प्रत्येक शक्ति की वर्तमान विद्यमान अवस्था ही होती है। वह अवस्था—परिणमन वह शक्ति जो है, वह द्रव्य में है, गुण में है और पर्याय में व्याप्त होती है तो वर्तमान विद्यमान अवस्थासहित है। आहाहा! धर्मी को आनन्द की अवस्थासहित आनन्दगुण है। ज्ञानगुण की अवस्थासहित ज्ञानगुण है। स्वच्छताशक्ति की पर्यायसहित स्वच्छताशक्ति है। प्रभुत्वशक्ति, प्रभुत्व की पर्यायसहित प्रभुत्वशक्ति है। आहाहा!

यह दहेज नहीं बिछाते? करियावर, क्या कहते हैं तुम्हारे? दहेज.. दहेज। गृहस्थ हो तो दो, चार, पाँच लाख का दे। फिर पूरा परिवार देखने आवे। देखो! इतना पंखा, यह पाँच हजार की एक साड़ी, साडलो कहते हैं न? साड़ी। कितने ही पच्चीस देते हैं, पाँच हजार तोला सोना देते हैं। उसे बिछाते हैं, सब देखने आते हैं। पाँच-पाँच हजार की साड़ी आती है न? कोर होती है न? कोर। छेडा... छेडा (पल्लू)। पल्लू में सोना होता है। एक हाथ में पल्लू ऐसे दिखाव के लिये रखे। यह सब ढोंग देखे हैं न! समझ में आया?

आहाहा! यह साड़ी ने बहू ने पहनी हो और बाहर निकले तब लोग नजर करे, लोगों की नजर तो दूसरी होती है, यह रूपवान और बहुत ऐसी है, यह साड़ी इसकी बहू ने ली है, इसका ससुर ऐसा देखता है कि मैंने साड़ी दी है, उसकी बात बाहर प्रसिद्ध होती है, इसलिए यह लोग देखते हैं। समझ में आया? साड़ी देखकर उसके ससुर को ऐसा होता है कि मैंने बहू को साड़ी दी है, वह साड़ी लोग देखते हैं तो मैं गृहस्थ हूँ, ऐसा साड़ी द्वारा बाहर आता हूँ। दूसरे देखनेवाले दूसरी दृष्टि से देखते होते हैं। यह सब जगत के ढोंग। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि की अन्दर से पार होने की बात निकलती है। भावशक्ति के कारण से निर्मल पर्याय की विद्यमानता सहित वह शक्ति होती है। उसे ज्ञानी जानते हैं और अनुभव करते हैं। आहाहा! समझ में आया? पोपटभाई! इस जगत से अलग प्रकार पूरा उलटा है। आहाहा! यह तो अब अभी यह तूफान (है कि) शुभयोग की क्रिया व्रत, तप और उपवास, वह धर्म है और धर्म का कारण है। अरे! प्रभु! मक्खनलालजी ने यही कहा न अभी? अखबार में आया है। शुभयोग धर्म का कारण है। धर्म है, कारण नहीं लिखा है। और शुभयोग को हेय माने, वह मिथ्यादृष्टि है। ऐसा लिखा है। अर र! प्रभु! यह क्या करता है? भाई!

यहाँ तो शुभयोग का अभाव बताते हैं। शुद्धशक्ति जो है, उस प्रत्येक शक्ति की वर्तमान निर्मल विद्यमान अवस्था है। उस अवस्था में विकार का अभाव है, यह स्याद्वाद है, यह अनेकान्त है। आहाहा! विकार से होता है, ऐसा नहीं। निर्मल शक्ति की शक्ति में भाव नाम का गुण है तो प्रत्येक शक्ति निर्मलरूप से विद्यमान प्रगट होती है। ऐसी बात। समझ में आया? अनन्त शक्तियाँ जितनी हैं, उतनी शक्तियों में प्रत्येक में भावशक्ति का रूप है तो अनन्त ज्ञानगुण जो है, उसकी वर्तमान ज्ञान अवस्था विद्यमान सहित ही होती है। उसे पठन करे और शास्त्र पढ़े तो वह अवस्था प्रगट होती है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

इसी तरह श्रद्धागुण त्रिकाल है। समकित पर्याय है, श्रद्धागुण त्रिकाल है। उसमें भावशक्ति का रूप है। वह श्रद्धागुण वर्तमान विद्यमान समकित की पर्याय सहित ही श्रद्धागुण है। आहाहा! ऐसा है। यह शक्ति द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों में व्याप्त है। समझ

में आया ? और वह शक्ति वर्तमान पर्याय विद्यमान अवस्था सहित है तो वह शक्ति कोई राग का कार्य है, ऐसा नहीं है। तथा वह अवस्था राग का कारण है, व्यवहार का कारण यह अवस्था है, ऐसा नहीं है। जिनेश्वरदासजी ! ऐसी बातें हैं, बापू ! आहाहा ! अरे ! दुनिया कहाँ पड़ी है और कहाँ जाती है। उल्टे रास्ते (जाती है), बापू ! संसार का रास्ता तो उल्टा है ही... आहाहा ! बीस-बाईस घण्टे अकेले पाप के पोटले। आहाहा ! छह-सात घण्टे सोवे, नींद... नींद... छह-सात घण्टे स्त्री और पुत्रों को प्रसन्न रखने और हँसी-मजाक और प्रसन्न करने में रहे। अर र र ! बापू ! तूने यह क्या किया ? आहाहा ! बाकी पाप के धन्धे में छह-आठ घण्टे रहे। हीरा का धन्धा या जिसे जो धन्धा हो वह। आहाहा ! यह तो सब पाप के परिणाम हैं। इनका तो यहाँ अभाव बताना है। धर्मी को इन परिणाम का अभाव है। समझ में आया ? धर्मी ऐसा जो आत्मा, उसमें अनन्तशक्तिरूपी धर्म है। वत्थुसहावो धम्मो। वस्तु का जो त्रिकाली स्वभाव है, वह धर्म है। उसकी वर्तमान पर्याय होती है, वह प्रगट धर्म है। ऐसा समझना करना, इसकी अपेक्षा व्रत करें और अपवास करें (यह सरल था)। बेचारा एक व्यक्ति कहता था। हम व्रत पालें, ब्रह्मचर्य पाले, महाव्रत पालें, दया पालें, झूठ न बोलें, सत्य बोलें, परिवार आदि छोड़कर अत्यन्त निवृत्ति लें तो भी धर्म नहीं ? धूल भी धर्म नहीं, सुन न अब। आहाहा !

मुमुक्षु : करना क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : करना यह। कहते हैं न, यह क्या कहते हैं ? बीड़ियों का और यह करना, सेठ ऐसा कहते हैं। सेठ ! अरे ! भगवान ! पर का करना, ऐसा मानना, वह मरण है। करना, सो मरना है, आता है ? सेठ ! सोगानी में आता है। न्यालचन्द सोगानी। पुस्तक नहीं थी ? तीसरा भाग दिया है न ? द्रव्यदृष्टि प्रकाश में है। करना, सो मरना है। अरे ! मैं राग करूँ, यह राग का करना, वह मरना है। आहाहा ! वह चैतन्य की शक्ति का अनादर करता है। अर्थात् चैतन्यशक्ति जो अनन्त है, वह है ही नहीं। मैं राग का कर्ता हूँ, ऐसा आत्मा त्रिकाली भगवान की हिंसा करता है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

भावशक्ति में तो... एक तो उसमें विद्यमान अवस्थासहित क्रमबद्ध का निर्णय होता है। भावशक्ति के कारण अपनी पर्याय विद्यमान कोई भी होती ही है, वह करनी पड़े, ऐसा

नहीं है। वह होती ही है। और अनन्तगुण में भावशक्ति का रूप है। इस कारण से अनन्त गुण की वर्तमान पर्याय विद्यमान सहित ही है। आहाहा! ऐसी विकाररहित निर्मल पर्यायसहित होना, उसे यहाँ भावशक्ति की विद्यमान अवस्था कहा जाता है। उसमें राग का अभाव है, व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प का अभाव है, यह अनेकान्त है। उससे होता है, ऐसा नहीं। अपने कारण से—भावशक्ति के कारण से अवस्था निर्मल होती है। राग से अवस्था निर्मल होती है, ऐसा नहीं है। वह राग से नहीं होती, इसका नाम अनेकान्त है। समझ में आया? ऐसी बातें हैं। आहाहा!

अरे रे! इसने जीव की दरकार नहीं की। पाँच-पचास वर्ष, साठ, सत्तर वर्ष मनुष्यपना खोकर चला जाता है। और जिसकी त्रस में रहने की स्थिति दो हजार (सागर) रहने की है, वह पूरी होगी। यदि जो आत्मा का कार्य नहीं करे तो निगोद में जायेगा। आहाहा! समझ में आया? त्रस की स्थिति दो हजार सागर की है। पंचेन्द्रिय, मनुष्य (आदि) की स्थिति एक हजार सागर की है। पंचेन्द्रिय के भव करे तो एक हजार सागर (करे) और वह स्थिति यदि पूरी हुई और आत्मा का कार्य नहीं किया... प्रभु! अरे! आहाहा! तो इस भव में भटकना है। चौरासी के अवतार में जाकर निगोद में जायेगा। पंचेन्द्रिय की स्थिति पूरी हो गयी तो एकेन्द्रिय में जायेगा। धन्नालालजी! आहाहा! यह तेरे पाँच, पचास लाख, करोड़, दो करोड़, पाँच-दास करोड़ पैसा और धूल, स्त्री, पुत्र कोई साथ नहीं आयेंगे। आहाहा! साथ आयेंगे पाप के भाव। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि वह भी छोड़कर कदाचित पुण्यभाव किये तो वे साथ आयेंगे। पुण्य के भाव संसार है और उसका फल भी संसार है। पुण्यभाव संसार और उसका फल भी संसार। आहाहा!

यहाँ तो भगवान ऐसा कहते हैं कि प्रभु! तेरी शक्ति में संसार नहीं है। संसार नहीं परन्तु उस शक्ति की अवस्था विद्यमान अवस्था सहित है, उस अवस्था में संसार नहीं। संसार का विकल्प जो है, शक्ति की विद्यमान अवस्था में उस अवस्था का अभाव है। आहाहा! ऐसी स्पष्ट बात है परन्तु शोर मचाते हैं। अरे! हम व्यवहार करते हैं, वह कारण है, साधन है। व्रत, तप और अपवास वे साधन हैं। भाई! वह साधन नहीं, भाई! यह कहा है, वह निमित्त का ज्ञान कराने को कहा है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, विद्यमान अवस्था। ओहोहो! अस्ति। जैसे विद्यमान तत्त्वशक्ति है, वैसे शक्ति की अवस्था भी विद्यमान ही होती है। अस्तिवाली अवस्था प्रगट है ही। अवस्था विद्यमान, प्रत्येक गुण की अवस्था वर्तमान विद्यमान होती ही है, करनी पड़ती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, अरे! आत्मा में एक उत्पादव्ययध्रुवशक्ति है। यह चल गयी है। आत्मा में एक उत्पादव्ययध्रुव नाम की शक्ति है। जैसे यह भावशक्ति है, वैसे उत्पादव्यय नाम की शक्ति है। इस कारण से समय-समय में उत्पाद वर्तमान विद्यमान होता ही है। आहाहा! क्या कहते हैं?

उत्पादव्ययध्रुव नाम की शक्ति गुण आत्मा में है। उस गुण के कारण वर्तमान उत्पाद और पूर्व की पर्याय का व्यय, इस अवस्था का विद्यमानपना और पूर्व की अवस्था का अविद्यमानपना होना, वह शक्ति का कार्य ही ऐसा है। आहाहा! वह पर के कारण निर्मल शक्ति होती है, इसका यहाँ निषेध करते हैं। वर्तमान अवस्थायुक्त कहते हैं, निर्मल अवस्थायुक्त है।

धर्मीजीव, जिसकी दृष्टि द्रव्य पर है, उसकी अनन्त शक्ति की निर्मल वर्तमान अवस्थायुक्तपना है। बाबूभाई! आहाहा! ऐसा है, प्रभु! लोगों को ऐसा लगता है कि यह सब निश्चय... निश्चय... निश्चय। परन्तु निश्चय अर्थात् सत्य और व्यवहार अर्थात् उपचारिक आरोपित कथन। आहाहा! अरे! भाई! अनन्त भव का छेद करके भवभ्रमण रहित होने की बात यहाँ है, भाई! आहाहा! जिसमें भव मिले तो भव के फिर कदाचित् स्वर्ग मिले, कहते हैं न कि 'एक बार वंदे जो कोई (सम्मेदशिखर) नरक पशु न होई' नरक, पशु न होवे, इसमें क्या हुआ? बाद में नरक, पशु होगा। वर्तमान कोई ऐसे शुभभाव बहुत हों तो स्वर्ग में जायेगा, आठवें स्वर्ग में जानेवाला तिर्यंच आठवें स्वर्ग में जाता है, मरकर वापस कोई तिर्यंच में अवतरित होता है। आहाहा! समझ में आया? आठवें स्वर्ग में जाये, वहाँ से स्वर्ग की स्थिति पूरी करके मरकर कोई तिर्यंच में चले जाते हैं। आहाहा! नरक, पशु न होई, इसमें क्या हुआ? एक भव नरक या पशु में न जाये। परन्तु सम्मेदशिखर की भक्ति और यात्रा से भव का अभाव हो, ऐसा तीन काल में नहीं है। समझ में आया?

यहाँ ये महावीरकीर्ति आये थे न? महावीरकीर्ति थे न? गुजर गये। यहाँ आये थे।

वहाँ प्रवचन मण्डप में उतरे थे। हम आहार करके घूमते थे। आहार करने के बाद थोड़ा घूमते हैं न? वहाँ बैठे, हम तो चरण छूते नहीं। बैठे, उन्होंने कहा कि सम्मेदशिखर की यात्रा करे तो ४९ भव में मोक्ष हो। ऐसी सम्मेदशिखर के माहात्म्य में आया है। कहा, श्वेताम्बर में शत्रुंजय के माहात्म्य में ऐसा आया है। श्वेताम्बर में शत्रुंजय का माहात्म्य है। पालीताणा। ऐसा माहात्म्य आया है कि एक बार चाहे जिस साधु को एक बार आहार-पानी दे तो उसका संसार नाश होता है, परित होता है। ऐसा ही तुम्हारे सम्मेदशिखर की यात्रा में संसार परित होता है। यह सब बात मिथ्या है। उनके पास सम्मेदशिखर के माहात्म्य की पुस्तक थी। उसमें यह लिखा है? हाँ। सम्मेदशिखर की यात्रा करे तो ४९ भव में मोक्ष जाये। कहा, यह भगवान की वाणी नहीं, यह भगवान की वाणी नहीं।

मुमुक्षु : उन्होंने क्या कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्होंने पहले तो कहा, ४९ भव में मोक्ष जाये। ऐसा कहा। मैंने कहा, ऐसा नहीं है। तब कहे, हाँ..हाँ... क्या करे फिर? लाख, करोड़, अरब करे नहीं सम्मेदशिखर की यात्रा, वह तो शुभभाव है। वह तो संसार है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो मिथ्यात्वसहित का शुभभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व है। राग से मुझे लाभ होगा, सम्मेदशिखर की यात्रा से मेरा भवछेद होगा, यह मिथ्यात्व है। महासंसार महापाप है। समझ में आया? आहाहा! वे लोग शत्रुंजय का माहात्म्य कहते हैं। चैत्र शुक्ल पूर्णिमा, कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को यात्रा करो तो कल्याण होगा। धूल भी नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, कल्याण का कारण अपनी जो निर्मल भावशक्ति है, उसकी वर्तमान पर्याय है, वह कल्याण का कारण है। समझ में आया? वह कल्याण का कारण कहो या कल्याणरूप कहो। यहाँ तो वह शक्ति अनन्त गुण में व्याप्त है। भाव नाम की शक्ति अनन्त गुण में व्याप्त है और अनन्त गुण में वह भावशक्ति निमित्त है। भावशक्ति है, वह पारिणामिकभाव से है। भावशक्ति है या अनन्त शक्तियाँ हैं, वे पारिणामिकभाव से हैं, और उनका परिणमन है वह उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव से है। क्या कहा? भावशक्ति जो कही, वह तो पारिणामिकभाव से है परन्तु जो विद्यमान अवस्थायुक्त है, वह अवस्थायुक्त है, वह अवस्था उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकरूप है, उदयभाव नहीं। समझ में आया?

आहाहा! रतनचन्दजी! क्या है ? इसमें लिखा है ?

विद्यमान अवस्था। अवस्था अर्थात् पर्याय। वर्तमान पर्याययुक्तरूप भावशक्ति है। **(अमुक अवस्था जिसमें विद्यमान हो...)** आहाहा! निर्मल पर्याय की अस्ति हो, वह भावशक्ति का स्वरूप है। आहाहा! समझ में आया ? उसमें तो ऐसा भी कहा कि जिसने द्रव्यस्वभाव की दृष्टि की और शक्ति की प्रतीति की, उसकी वर्तमान अवस्था निर्मल अवस्था शक्ति के कारण से है। राग के कारण से निर्मल अवस्था विद्यमान है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो कहीं पाँच, पच्चीस लाख खर्च करे, मन्दिर-बन्दिर बनावे तो जाओ... तुम्हारा कल्याण होगा। धूल में भी कल्याण नहीं। समझ में आया ?

कहा था न ? हम बेंगलोर गये थे। दो दिन पहले भभूतमल नहीं आये थे ? दो करोड़ रुपये हैं। उन्होंने आठ लाख डाले हैं। है श्वेताम्बर परन्तु बनाया अपने दिगम्बर मन्दिर। आठ लाख। और एक स्थानकवासी है, जुगराजजी, मुम्बई। उनके घर का महावीर मार्केट है। एक करोड़ रुपये। चार लाख उन्होंने डाले हैं। बारह लाख का मन्दिर बनाया। परन्तु ऐसा मन्दिर बनाया है कि देखने लायक है। हमने कहा, भाई! तुम्हारे आठ लाख और चार लाख खर्च करने से धर्म होगा, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : बन जाने के बाद कहा, पहले से कहा होता तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हमारे रामजीभाई कहते हैं। मन्दिर-बन्दिर बन गया है, अब दिक्कत नहीं। परन्तु यहाँ तो पहले से हम कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ४३ वर्ष से...

पूज्य गुरुदेवश्री : ४३ वर्ष नहीं, हम तो सम्प्रदाय में भी कहते थे। आहाहा!

मुमुक्षु : राजकोट में कहा था।...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सत्य बात। नानालाल कालीदास करोड़पति। श्वेताम्बर करोड़पति नानालाल कालीदास। उन्होंने मन्दिर बनाया। बड़ा मन्दिर है। राजकोट में बड़ा मन्दिर है। मुन्नालालजी पण्डित थे। किस गाँव के ? इन्दौर के। वे सेठ को कहे, यह मन्दिर बनाया, इसलिए तुम्हारी तो अल्प काल में अल्प भव में मुक्ति होगी। तो सेठ कहे, हम तो ऐसा मानते नहीं। हमारे महाराज तो ऐसा कहते नहीं और हम भी मानते नहीं। पैसा खर्च

किया, इसलिए हमारा कल्याण होगा, ऐसा हम तो मानते नहीं। समझ में आया? नानालाल कालीदास गुजर गये, अब तो लड़के हैं। मुन्नालालजी ने कहा, कल्याण होगा। ओहोहो! ऊपर सोने के कलश, मन्दिर के ऊपर सोने के कलश चढ़ाये। ओहोहो! तुम्हारा तो कल्याण होगा। (सेठ ने कहा)—हम तो मानते नहीं। हम मानते नहीं, शुभभाव है। हमारा शुभभाव है, पुण्य है परन्तु उससे धर्म है और धर्म का कारण है, ऐस हम मानते नहीं। यह तो कौन सा वर्ष? (संवत्) २००६ का वर्ष। कितने वर्ष हुए? २७ वर्ष हुए। २७ वर्ष पहले की यह बात है। गृहस्थ ने कहा, नानालालभाई करोड़पति बहुत शान्त थे। श्वेताम्बर थे। फिर श्वेताम्बर पक्ष छोड़ दिया था। मार्ग यह है। उन्हें कहा गया था, तुम दिगम्बर मन्दिर बनाओगे तो... यह कहे, हमें तो महाराज कहते हैं, वह धर्म मान्य है। मैं श्वेताम्बर मन्दिर नहीं बनाऊँगा। और बनाता हूँ तो मेरा कल्याण होगा, ऐसा हम नहीं मानते। धन्नालालजी! करोड़पति ने उन मुन्नालाल पण्डित को ऐसा जवाब दिया। मुन्नालाल पण्डित कहे तुम्हारा कल्याण होगा। धूल में भी है नहीं। ऐ... हीरालालजी। कुचामण, हीरालालजी को जानते हो न? अभी अस्सी हजार निकाले हैं। सत्साहित्य।

एक दिन वहाँ गये थे, तब बहुत बुखार आया। नहीं तो ... तीस हजार निकाले थे। सत्साहित्य में दिये। अभी फाल्गुन महीने में। परन्तु वह सब राग की मन्दता है तो पुण्य है, उससे जन्म-मरण का अन्त आ जाये, ऐसा नहीं है। यहाँ तो निर्मल शक्ति की निर्मल अवस्थासहित होना, यह मोक्ष का कारण है। समझ में आया? आहाहा!

विद्यमान-अवस्थायुक्ततारूप... सहितपनेरूप। सहितपनेरूप **भावशक्ति।** है। आहाहा! **(अमुक अवस्था जिसमें विद्यमान..)** विद्यमान समझे? अस्ति, मौजूदगी। प्रत्येक गुण की वर्तमान निर्मल पर्याय मौजूद ही होती है, होती ही है। करनी पड़ती नहीं। क्रमबद्ध में यह पर्याय ऐसी ही आती है। आहाहा!

मुमुक्षु : अमुक शब्द का अर्थ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अमुक अवस्था। अमुक अर्थात् जो अवस्था होनी है वह। अमुक अर्थात् जो अवस्था होनी है, वह अमुक अवस्था, ऐसा। सभी अवस्था नहीं। सब अवस्था नहीं। अमुक अवस्था जिसमें विद्यमान हो। जो वर्तमान अवस्था है, वह अमुक।

जो वर्तमान (अवस्था) जिसमें विद्यमान अस्ति धारण करे, मौजूदगी हो, उसरूप भावशक्ति। इसका नाम भावशक्ति कहने में आता है। आहाहा! भाव में भवन होना। भावशक्ति का भवन (होना), पर्यायसहित होना, वह भावशक्ति का कार्य है। वह अवस्था निर्मल हुई, वह व्यवहाररत्नत्रय का कारण है या कार्य है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह भारी कठिन पड़े। पंच महाव्रत लिये और ऐसा लिया, इसलिए यह विद्यमान निर्मल अवस्था की अस्ति हुई, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

अध्यात्म पंचसंग्रह में तो ऐसा लिया है, अग्नि के ताप से... अग्नितापस होते हैं न? ऐसा यदि उससे लाभ होता हो तो अग्नि में तो पतंगें भी गिरते हैं तो उन्हें भी लाभ होना चाहिए और जल में स्नान करने से, जल में डुबकी लगाने से (कल्याण होता हो) तो जल में डुबकी मारो। जल में तो जलचर भी रहते हैं तो उनका भी कल्याण होना चाहिए। स्नान करने से कल्याण होगा। धूल भी नहीं होगा, सुन न! समझ में आया? बताया था न? नग्न रहने से मुक्ति होगी तो नग्न तो पशु भी रहते हैं। उसमें तूने क्या किया? भेड़ भी बारह महीने में बाल (निकलवाती है)। अभी तो केशलोंच के बहुत बड़े महोत्सव होते हैं और सब महिमा करते हैं।

मुमुक्षु : केश हाथ से खींचे...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाथ से खींचते नहीं, वह तो खींचने की शक्ति के कारण से निकलते हैं। हाथ से भी नहीं निकलते।

मुमुक्षु : हाथ लगाये बिना निकल जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाथ लगाये बिना निकलते हैं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को निकले कहाँ से? आहाहा! यहाँ तो अनन्त गुण लेना। जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य।

वीर्यशक्ति में भी भावशक्ति का रूप है। वीर्य जो है, वह निर्मल अवस्थायुक्त ही वीर्य है। वीर्य में निर्मल अवस्थासहित ही वीर्य है। वह वीर्यशक्ति का कार्य है। समझ में आया? दूसरा लें तो वीर्यशक्ति स्वरूप की रचना करती है। वीर्यशक्ति ४७ में पहले आ गयी है। आत्मस्वरूप की रचना करती है, उस वीर्यशक्ति का धारक द्रव्यस्वभाव पर एकाग्र होने से जो अनुभव होता है, वह वीर्यशक्ति निर्मल पर्याय की रचना करती है। राग की रचना

करे, वह वीर्य नहीं। यहाँ कहा न? वीर्य अपनी अवस्थासहित है। निर्मल शक्ति वीर्य है तो उसकी अवस्था में निर्मल अवस्था सहित है। राग को रचे, वह वीर्य की विद्यमान अवस्था नहीं। वह अवस्था ही आत्मा की नहीं।

मुमुक्षु : तो फिर राग को कौन रचता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नपुंसक वीर्य रचता है। नपुंसक को वीर्य नहीं होता तो प्रजा नहीं होती। वैसे शुभभाव नपुंसक है, उससे धर्मप्रजा नहीं होती। आहाहा! बहुत बार कहा है।

यहाँ तो प्रभुत्वशक्ति आदि में भावरूपता है तो प्रभुत्वशक्ति भी विद्यमान वर्तमान अवस्थासहित है। वह शक्ति यहाँ तो पर्याय के परिणमन सहित लेना है। क्योंकि यहाँ सम्यग्दृष्टि की बात है न! अथवा जिसने आत्मा का अनुभव किया, उसे शक्ति की प्रतीति आयी, वह शक्ति वर्तमान अवस्था सहित ही होती है। क्योंकि परिणमन में वह द्रव्य और शक्ति का भान हुआ, तब पर्याय में प्रतीति आयी। लक्ष्य में शक्ति और शक्तिवान पर्याय में ख्याल में न आया तो ख्याल में आये बिना प्रतीति किसकी? इसलिए अवस्था सहित दशा त्रिकाली द्रव्य और गुण की प्रतीति करती है। समझ में आया? ऐसी बातें हैं। कहीं-कहीं नजर पड़ी नहीं, कभी किया नहीं। आहाहा! करने का किया नहीं और माथे खांडी नाख्यो आत्मा को। आहाहा! राग में.. राग में...

अभी प्रश्न किया था। एक बार नहीं किया था? झबेरी का। भाई ने प्रश्न किया था। झबेरी की दुकान में जवाहरात लेने चोर गया। मूल तो चोर था। दस हजार रुपये उसके पास थे। जवाहरात लाओ। पाँच-पचास हीरा निकाले। वह साथ में मोम लेकर गया। मीण कहते हैं न? मोम... मोम। जेब में मोम लेकर गया था। गुंजा को क्या कहते है? जेब में। पच्चीस-पचास हीरा बाहर निकाले। उसे कुछ खबर नहीं कि यह चोर है। एक पचास हजार, लाख का हीरा ले लिया। लेकर मकान की पाट थी, उसमें चिपका दिया। इसलिए कोई खोजे तो मेरे पास नहीं है। ऐसे देखा तो हीरा गया कहाँ? हीरा गया कहाँ? झबेरी देखता है, हीरा गया कहाँ? भाई! तुम्हारे पास है? देखो! भाई मेरे पास कुछ नहीं। चिपका दिया था। फिर जब दूसरी बार दस हजार रुपये लेकर आया। लाओ हीरा। तुम्हारे पास उस दिन देखा था। वहाँ वह हीरा चिपका था, वह ले लिया। दूसरी बार ले लिया। उस दिन

तो कहाँ से ले सके?

इसी प्रकार भगवान आत्मा ने राग के साथ आत्मा को चिपका दिया है और चोर हुआ है। मुझे राग से लाभ होगा। आहाहा! क्या है? क्या था? आहाहा! उसमें ध्यान नहीं और वहाँ ध्यान गया... इसका सब बिना ठिकाने का है। आहाहा! क्या कहा? एक शक्ति में तो घण्टा भर हो गया, पाँच मिनिट बाकी है।

प्रत्येक शक्ति अनन्त संख्या में है, उस शक्ति में भावशक्ति का रूप है तो प्रत्येक शक्ति वर्तमान विद्यमान अवस्था बिना रहती नहीं। प्रत्येक शक्ति की वर्तमान विद्यमान अवस्था होमती है। क्यों? कि वह शक्ति पर्याय में व्यापती है। द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्यापती है। द्रव्य, गुण में तो अनादि से है ही परन्तु जब अनुभव हुआ, तब शक्ति का पर्याय में निर्मल परिणमन हुआ। नहीं तो उसके ऊपर दृष्टि नहीं थी, तब तक तो मलिन पर्याय पर रुचि थी। मलिन पर्याय की रुचि वह कहीं आत्मा की रुचि नहीं। इससे उसे निर्मल पर्याय विद्यमान है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ज्ञानचन्दजी! थोड़ा सूक्ष्म है।

मुमुक्षु : अपूर्व है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपूर्व है, बात तो ऐसी है। आहाहा!

जिसे राग की, पुण्य परिणाम की मिठास है, उसे स्वभाव के प्रति द्वेष है। 'द्वेष अरोचक भाव'। और जिसे भगवान आत्मा और अनन्त शक्ति के प्रति प्रेम है, उसे राग के प्रति प्रेम नहीं होता, ज्ञाता-दृष्टा रहता है। समझ में आया? इस भावशक्ति में अनन्त शक्ति निर्मल जो है, वह प्रत्येक शक्ति वर्तमान अवस्थासहित होती है। निर्मल, हों! उस अवस्था में व्यवहार का अभाव है, इसका नाम अनेकान्त है। यह राग आता है, उसका यहाँ ज्ञान है, वह अपनी पर्याय में है। वह अपनी पर्याय विद्यमान है, बस! राग विद्यमान है, वह यहाँ नहीं। क्या कहा, समझ में आया? आहाहा!

भावशक्ति में तो प्रत्येक शक्ति की निर्मल पर्याय विद्यमान होती है। तो विद्यमान पर्याय में ज्ञाता की निर्मल पर्याय प्रगट है। राग है, उसका ज्ञान हुआ, वह पर्याय में विद्यमान है, राग उसमें विद्यमान है—ऐसा नहीं। समझ में आया? कठिन पड़े। बात ऐसी है। आहाहा! वीतरागस्वरूपी भगवान, प्रत्येक शक्ति वीतरागरूप है। और जब शक्ति और

शक्तिवान का अनुभव हुआ... आहाहा! तो उस वीतराग की पर्यायरूप, विद्यमान वीतराग पर्यायरूप वह शक्ति होती है। आहाहा! राग का विद्यमानपना उसमें है ही नहीं। आहाहा! धर्मी की अवस्था विद्यमान निर्मल है। मलिन अवस्था विद्यमान है, ऐसा है नहीं। आहाहा! हाँ, जो रागादि अवस्था हुई, वह राग है तो नहीं, परन्तु स्वयं से स्व-परप्रकाशक ज्ञानपर्याय प्रगट होती है, उसमें राग को जानता है, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। वह तो अपनी पर्याय, राग है तो राग को जानने की पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। अपनी पर्याय में स्व-परप्रकाशक की ताकत उस समय में राग और अपने को जाने, ऐसी पर्याय स्वयं से प्रगट होती है। उसमें व्यवहार का (राग का) अभाव है। आहाहा! समझ में आया? उसे यहाँ भावशक्ति का स्वरूप कहते हैं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २९, शक्ति- ३४, ३५ गुरुवार, (द्वितीय) श्रावण कृष्ण १०, दिनांक ०८-०९-१९७७

समयसार, शक्ति का अधिकार। शक्ति अर्थात् आत्मा का गुण। आत्मा गुणी है—शक्तिवान है। उसकी शक्ति को गुण कहो या शक्ति कहो, उसका सामर्थ्य है। गुण, वह द्रव्य का सामर्थ्य है। गुण, वह सत् का सत्त्व है। सत् जो आत्मा भगवान सत् अविनाशी, उसका सत्त्व, गुण, शक्ति, स्वभाव को यहाँ शक्ति कहा जाता है। समझ में आया? धन्नालालजी! आहाहा! कल भावशक्ति आ गयी, एक घण्टे चली थी। यह तो कहीं पार आवे नहीं, इतनी शक्ति है। आज तो अभावशक्ति लेते हैं। बहुत अलौकिक बात है, भगवान!

शून्यावस्थत्वरूपा अभावशक्तिः

शून्य (–अविद्यमान) अवस्थायुक्ततारूप अभावशक्ति। (अमुक अवस्था जिसमें अविद्यमान हो, उसरूप अभावशक्ति।)।३४।

शून्य (–अविद्यमान) अवस्थायुक्ततारूप... आहाहा! आत्मा में, उसकी पर्याय में। आत्मा द्रव्य है, उसकी शक्ति त्रिकाल ध्रुव है तो उसकी पर्याय में आठ कर्म से वह शून्य है। आहाहा! समझ में आया? यह पण्डितजी रहे बड़े। शून्य है। भगवान आत्मा वस्तु की जिसे दृष्टि हुई, मैं निर्विकल्प चैतन्यस्वरूप हूँ—ऐसी भावशक्ति में अनन्त गुण की वर्तमान निर्मल पर्याय विद्यमान है। समझ में आया? भावशक्ति में तो ज्ञान की पर्याय निर्मल विद्यमान है, दर्शन की है, चारित्र की है, आनन्द की है, अस्तित्व की है, वस्तुत्व की है, प्रभुत्व की है, विभुत्व की है—आदि जितनी अनन्त शक्तियाँ संख्या से है, उन सबकी भावशक्ति के कारण, दूसरी शक्ति में भावशक्ति का रूप है, भावशक्ति अपने में है और दूसरे में भावशक्ति का रूप है तो प्रत्येक शक्ति वर्तमान निर्मलरूप से विद्यमान है, उसका नाम भावशक्ति कहते हैं। आहाहा! यहाँ मलिनता की बात है ही नहीं। वह तो बाद में लेंगे। आहाहा!

अभावशक्ति का अर्थ—आत्मा में एक अभाव नाम का गुण, शक्ति, सत्त्व है। तो उसका कार्य क्या? आठ कर्म की अवस्था का अविद्यमानपना। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा आनन्द की पर्याय में और अनन्त गुण की पर्याय में निर्मल विद्यमान अवस्था है, परन्तु आठ कर्म की अवस्था से शून्य है। आहाहा! समझ में आया? आठ कर्म

हैं, वे तो जड़ है परन्तु उनका जो उदय है, उसमें जो विकार होता है, आठ कर्म से शून्य है तो भावकर्म से भी शून्य है। समझ में आया? आहाहा!

शून्य (-अविद्यमान) अवस्थायुक्ततारूप... भावकर्म की अवस्था का भी अविद्यमानपना। आहाहा! दया, दान, भक्ति, व्रत, तप के विकल्प जो हैं, उनसे तो आत्मा की अवस्था शून्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : भावकर्म कहो यह तो बराबर है, परन्तु दया, दान कहते हो...

पूज्य गुरुदेवश्री : दया, दान, वह भावकर्म है। स्पष्टीकरण कराते हैं। शुभयोग, शुभयोग। ऐसा आता है, कहाँ होगा खबर नहीं। अध्यात्म पंचसंग्रह में आता है। दान, शील, तप, सब शुभयोग बन्ध का कारण है, यह समयसार का निचोड़—ऐसा उसमें आता है कि पुण्य पाप से भिन्न है। भाव पुण्य-पाप, हों! जड़ पुण्य-पाप वे कर्म में गये। आहाहा! यहाँ अभी लोगों को विवाद। मूल शक्ति की और शक्तिवान की खबर नहीं। तो कहते हैं कि राग दया, दान, व्रतादि हैं, उन्हें नहीं मानों तो तुम नरक में जाओगे। ऐसा कहते हैं। अरे! प्रभु! सुन तो सही, नाथ! बापू! आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं, प्रभु! तू वस्तु है या नहीं? तो वस्तु में बसी हुई, रही हुई शक्तियाँ है या नहीं? वस्तु उसे कहते हैं कि जिसमें शक्ति की बसावट है। गाँव उसे कहते हैं कि उसमें प्रजा की बसावट हो। प्रजा रहती है। तुम बसावट नहीं कहते? क्या शब्द है? कहाँ गये भाई? गये? बाहर गाँव गये। हिन्दी है, वह तो हिन्दी बोलते हैं न! शुकनलाल उन्हें अभ्यास बहुत है। छोटी उम्र में ब्रह्मचर्य ले लिया है। एक ही लड़का है, दूसरा कुछ नहीं। बहुत अभ्यास करते हैं। यहाँ नहीं बैठते? शुकनलाल। उन्हें बहुत याद रहता है।

यहाँ कहते हैं कि यह दान, शील, तप, भाव आदि तो विकारी पर्याय हैं, भावकर्म है। भगवान आत्मा में अभाव नाम का गुण-शक्ति है, इस कारण से विकारी पर्याय से आत्मा शून्य है, पर्याय में शून्य है। अभाव नाम की शक्ति है तो द्रव्य-गुण में तो है ही, परन्तु पर्याय में अभावपने का परिणमन होने में विकारी परिणाम—भावकर्म से वह अवस्था शून्य है। आहाहा! रतनचन्दजी! ऐसी बातें हैं। क्या करे? उसे खबर नहीं इसलिए... जैनदर्शन

(पत्रिका में) आता है न? करुणादीप (पत्रिका) बहुत विरोध करते हैं। प्रभु! विरोध न कर, नाथ! तेरे घर की बात है, प्रभु! तुझे खबर नहीं, भाई!

मुमुक्षु : उसके ऊपर करुणा करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह तो ऐसा ही कहते हैं। यह तो श्रीमद् में आता है। 'कोई क्रिया जड़ हो रहे और शुष्कज्ञान में कोई, मार्ग माने मोक्ष का करुणा उपजे जोई' जिनेश्वरदासजी! यह करुणा निकाली। कोई क्रियाजड़—शुभ और अशुभभाव... मूल तो शुभभाव में (धर्म मना लिया गया), वे क्रियाजड़ हैं। राग की क्रिया में रुककर मुझे धर्म होगा, वे क्रियाजड़ हैं। और 'शुष्कज्ञान में कोई...' चैतन्य की बातें क्षयोपशम से करें परन्तु अन्दर में राग से रहित परिणमन होना, वह नहीं तो वह शुष्कज्ञानी है। आहाहा! 'कोई क्रियाजड़ हो रहे...' गुजराती भाषा सरल है। 'शुष्कज्ञान में कोई...' ज्ञान की बात करे परन्तु राग की रुचि का प्रेम हटता नहीं। आहाहा! शुभराग का और अशुभराग का अन्दर से प्रेम दूर नहीं होता, उसे शुष्कज्ञानी कहा जाता है। आहाहा! क्योंकि आत्मा में विकारी परिणाम के अभावस्वभावरूप भाव है। विकारी परिणाम की अवस्था का भाव आत्मा की पर्याय में है, उसे यहाँ आत्मा ही कहते नहीं। समझ में आया? यह तो आत्मदर्शन की बात चलती है न?

आत्मा और आत्मा की शक्तियाँ और उन शक्ति का वर्तमान में द्रव्य, गुण, पर्याय में व्यापना। जो अभावशक्ति है, उसका पर्याय में अभावरूप परिणमन होता है। किसका अभाव? कि आठ कर्म के भाव से अवस्था शून्य है। आहाहा! ज्ञानावरणीयकर्म से आत्मा में अवस्था शून्य है। दर्शनावरणीयकर्म से आत्मा में अवस्था शून्य है। ऐसे वेदनीयकर्म से आत्मा शून्य है। मोहकर्म से आत्मा शून्य है, दर्शनमोह से शून्य है, चारित्रमोह से शून्य है। आहाहा! नामकर्म से... नामकर्म की ९३ प्रकृतियाँ हैं, उनसे शून्य है। आहाहा! गोत्रकर्म है, परन्तु उससे आत्मा शून्य है। आहाहा! अब यहाँ कहते हैं, कर्म हमें हैरान करते हैं। नड़ते को क्या कहते हैं? हैरान करता है, हैरान करता है। कर्म हैरान करता है। अरे! भगवान! 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई' आता है या नहीं? स्तुति में आता है। चन्द्रप्रभ भगवान की स्तुति में। 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई'। कर्म बेचारे जड़ हैं, उनकी अवस्था से तो आत्मा शून्य है। यह तो पर की अवस्था से शून्य है परन्तु उसके निमित्त से

हुई विकारी दशा... आहाहा! उससे भी अभावशक्ति के कारण शून्य है। आहाहा! अपने आनन्दस्वभाव से अशून्य है और रागस्वभाव से शून्य है। आहाहा! यह भावअभाव। ओहोहो! आचार्य ने काम किया है! गजब! अमृतचन्द्राचार्य। आहाहा! घर में भाई का विवाह हो, भाई का विवाह, और छोटे भाई का लड़का वर्ष-डेढ़ वर्ष का हो, उसे सँभाले नहीं तो रोवे। उसे खबर नहीं कि भाई के विवाह में नहीं रोया जाता। उसे कुछ खबर है? उसी प्रकार यहाँ आत्मा के अन्तर में विवाह चलता है। भाई! तेरे भाई का विवाह चलता है। आत्मा आनन्द का नाथ, उसका विवाह अन्दर में एकाग्र होकर चलता है। परन्तु नहीं समझे तो रोवे। आहाहा! क्या कहा?

आठ कर्म जो १४८ प्रकृति... आहाहा! नामकर्म में जो तीर्थंकरप्रकृति है, उसकी अवस्था से आत्मा शून्य है। आहाहा! क्योंकि अपनी अनन्त पवित्र शक्तियों से विद्यमान भावशक्ति के कारण से पवित्र शक्ति की मौजूदगी है, वहाँ अपवित्र कर्म प्रकृति नामकर्म की अवस्था से भी शून्य है। आहाहा! दूसरी बात। षोडशकारण भावना आती है न? क्या कहते हैं? पण्डितजी! सोलह... तीर्थंकर पद पाय। तो कहते हैं कि तीर्थंकर के कारणरूप जो सोलहकारण भावना है, उस भावना से भगवान शून्य है। आहाहा! समझ में आया? यह बात कठिन पड़े। लोगों के कान में आयी नहीं न, इसलिए परम्परा टूट गयी। गुरुगम रहा नहीं। भाई ने लिखा नहीं? पण्डित जयचन्दजी ने पीछे (लिखा है), समयसार की सत्य बात का गुरुगम छूट गया। आहाहा! समयसार में पीछे है। समझ में आया? यह समयसार है न? पीछे है न? **इस ग्रन्थ की गुरुसम्प्रदाय का (-गुरु परम्परागत उपदेश का) विच्छेद हो गया है।** हिन्दी में ६०४ पृष्ठ है। उसकी अन्तिम लाईन। छेल्ले को क्या कहते हैं? आखिरी। **इस ग्रन्थ की गुरुसम्प्रदाय का (-गुरु परम्परागत उपदेश का) विच्छेद हो गया है।** आहाहा! गुरु नहीं थे। आहाहा! समझ में आया? ६०४ (पृष्ठ है)। एकदम अन्त में।

समयसार अविकार का, वर्णन कर्ण सुनन्त
द्रव्य-भाव-नोकर्म तजि, आतमतत्त्व लखन्त॥

इसके नीचे है। इस लाईन के नीचे अन्त में है। पण्डितजी को मिला? समझ में आया? यह तो अलौकिक बातें हैं, बापू! आहाहा! लोगों को खटकता है। दया, दान, व्रत,

और भक्ति, पूजा वह धर्म नहीं? अरे! भगवान! सुन तो सही, नाथ! तुझमें पवित्रता भरी है तो उसकी पर्याय पवित्र होती है। समझ में आया? अपवित्रता से तो वह शून्य है। आहाहा! समझ में आया?

द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म, इन तीनों से शून्य है। आठ कर्म से अभावरूप शून्य है और भावकर्म से अभावरूप शून्य है और नोकर्म, पाँच शरीर है—औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण। कार्मण में १४८ प्रकृति उत्कृष्ट किसी ज्ञानी को होती है। समझ में आया? क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति तो ज्ञानी को होती है, अज्ञानी को तो होती ही नहीं। ऐसे आहारक का बन्ध भी समकिती को होता है, अज्ञानी को नहीं होता। इसलिए किसी समकिती को सत्ता में १४८ प्रकृति होती है। मिथ्यादृष्टि को १४८ नहीं होती। थोड़ी कम होती है। समझ में आया? यहाँ तो इतना कहना है कि जिस प्रकृति से बन्धन पड़े, वह भाव आत्मा में अभावशक्ति के कारण से उस भाव की शून्यता है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म मार्ग, बापू! इसे नहीं जँचता, हों!

महाप्रभु पवित्रता का सागर अन्दर उछलता है। आहाहा! चैतन्य रत्नाकर पवित्रता के पिण्ड का नाथ प्रभु, पवित्रता का रक्षक है—नाथ। नाथ किसे कहते हैं? जो कोई वस्तु है, उसकी रक्षा करे और नहीं प्राप्त वस्तु को प्राप्त करा दे। योगक्षेम के करनेवाले को नाथ कहते हैं। योगक्षेम वर्तमान जो दशा है, उसकी रक्षा करे। निर्मल की, हों! आहाहा! और पूर्ण केवलज्ञान नहीं, उसे प्राप्त करा दे, लावे। आहाहा! ऐसा भगवान अपना नाथ है। समझ में आया? आहाहा! कितनी स्पष्ट बात है! ४७ शक्तियों में तो इतना भर दिया है... आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य ने तो गजब काम किया है। कुन्दकुन्दाचार्य पंचम काल के तीर्थंकर जैसा काम किया, इन्होंने गणधर जैसा काम किया। आहाहा!

कहते हैं कि, इस शक्ति में शब्द तो इतने हैं। पाठ में तो इतना है। शून्य। है न? **'शून्यावस्थत्वरूपा अभावशक्तिः'** लो, इतने अक्षर, अक्षर तो इतने हैं। कितने? एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ... तेरह-चौदह-पन्द्रह अक्षर हैं। परन्तु इसके अर्थ में तो बहुत गम्भीरता है। उसमें है—भाई ने—दीपचन्दजी ने शक्ति का वर्णन किया है। परमात्मपुराण (में किया है)। समझ में आया? दूसरे किसी ने किया नहीं। एक अमृतचन्द्राचार्य ने शक्ति का वर्णन किया और इस शक्ति का स्पष्टीकरण दीपचन्दजी ने

किया। ऐसा दूसरी किसी जगह नहीं आता। समयसार नाटक में थोड़े नाम आते हैं। नट, थट ऐसा। बात तो ऐसी होनी चाहिए न!

भगवान आत्मा महाप्रभु है, वह चैतन्य भगवान है। आहाहा! तो उसका जिसे अन्तर में भान हुआ, निर्विकल्प दृष्टि होकर सम्यग्दर्शन हुआ और सम्यग्दर्शन की शक्ति जो अन्दर श्रद्धा है, उसके परिणमन में सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई, उस पवित्रता की भावशक्ति की विद्यमानता है। और कर्म के निमित्त से रागादि और मिथ्यात्व आदि की शून्यता। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! समझ में आया? क्या कहा?

शून्य (–अविद्यमान) अवस्थायुक्ततारूप... अवस्थायुक्त नहीं, ऐसा। किसकी? कर्म की, शरीर की, यह औदारिक आदि। यह औदारिकशरीर है, यह अवस्था है। इस अवस्था से भगवान शून्य है। समझ में आया? यह अवस्था ऐसे करता है, उसे आत्मा नहीं करता। समझ में आया? क्योंकि वह अवस्था आत्मा में शून्य है। शरीर की अवस्था से आत्मा शून्य है, अभावशक्ति है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे आहारकशरीर। मुनि को आहारकशरीर होता है न? उस आहारकशरीर की अवस्था से चैतन्य तो शून्य है। आहाहा! गजब बात है। विकल्प आता है कि आहारकशरीर हो तो मैं भगवान के पास जाऊँ और प्रश्न (पूछूँ)। परन्तु कहते हैं कि विकल्प और आहारकशरीर की अवस्था दोनों आत्मा में नहीं है। और भगवान के पास जाते हैं तो पूछे बिना उनका समाधान हो जाता है। ऐसी अन्दर में योग्यता है। आहाहा! आहारकशरीर हुआ तो मेरे पास आया, ऐसा भी नहीं। आहाहा! और मेरे पास आने का विकल्प आया, वह भी तुझमें नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग।

विद्यमान अवस्थायुक्त, यह भावशक्ति और अविद्यमान अवस्थायुक्त यह अभावशक्ति। आहाहा! समझ में आया? **शून्य (–अविद्यमान) अवस्थायुक्ततारूप...** शून्य अवस्थायुक्त। शून्य अवस्थासहित। ऐसा शब्द है न? शून्य अवस्थासहित। अर्थात् कि आठों कर्म की पर्याय की अवस्था से शून्य आत्मा, उस अवस्थायुक्त है। आहाहा! यहाँ पुकार करते हैं कि अरे! हमें कर्म हैरान करते हैं, कर्म से विकार होता है। अरे! प्रभु! तेरा भाव है, कर्म के निमित्त के आधीन होकर तू भाव करता है। वह भी स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से उस भाव का भी तुझमें अभाव है। आहाहा! आहाहा! यहाँ तक चैतन्यतत्त्व को जाना–पहुँचना कि यह भगवान आत्मा है।

भावशक्ति के कारण अनन्त गुण की विद्यमान पर्याय निर्मल है। और अभावशक्ति के कारण कर्म, शरीर, कार्मणशरीर पाँच शरीर में आता है न? कार्मणशरीर। कार्मणशरीर की अवस्था से जीव शून्य है। आहाहा! समझ में आया? अज्ञानी को जो विकार होता है, उस विकारसहित है, वह अज्ञानी कर्ता-कर्म मानता है परन्तु धर्मी जीव, जिसे आत्मा की दृष्टि हुई, वह तो राग की अवस्था से शून्य मेरी दशा है, ऐसा मानता है। आहाहा! समझ में आया? राग से भिन्न होकर भेदज्ञान हुआ, वहाँ आगे राग की अवस्था से भगवान भेदज्ञान में तो शून्य है। आहाहा! रागसहित है, ऐसा पर्यायदृष्टि में है। परन्तु वह तो पर्यायदृष्टि में। जिसे द्रव्य की दृष्टि नहीं और द्रव्य की खबर नहीं। आहाहा! एक समय की पर्याय में—अवस्थासहित जिसने अपना अस्तित्व स्वीकार किया है, उसे विकारसहित अवस्था है। वह परिभ्रमण है, दुःख है। आहाहा! समझ में आया?

जहाँ भगवान आत्मा अनन्त शक्तियों का भण्डार, गोदाम.. आहाहा! उस शक्ति के गोदाम में से, अभावशक्ति भी अन्दर गोदाम में पड़ी है, उस द्रव्य पर, वस्तु पर ध्येय लगाकर जो द्रव्य का भाव हुआ... आहाहा! उस दशा में कार्मण की १४८ प्रकृति की अवस्था से भी वह दशा शून्य है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा गले उतारना.... ? है और नहीं है? किस अपेक्षा से बात है? प्रभु! तेरी चीज़ जो आत्मा प्रभु है, उसकी शक्तियाँ अनन्त हैं। उन अनन्त शक्ति का एकरूप आत्मा, उसका जिसे अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, राग से भिन्न भान हुआ, उसे यहाँ कहते हैं कि अभावशक्ति पर से शून्य है। अज्ञानी तो अपने में है, ऐसा मानता है। विकारी अवस्था और कर्म का मुझे सम्बन्ध है, ऐसा अज्ञानी मानता है। आहाहा! ऐसी बात।

एक ओर गोम्मटसार में ऐसा कहे, ज्ञानावरणीय कर्म... ज्ञानावरणीय कर्म... क्या आया उसमें? ज्ञान को रोके। ज्ञान को आवरण करे, ऐसी भाषा है। समझ में आया? वह तो निमित्त के कथन हैं। अपनी पर्याय में द्रव्यस्वभाव की दृष्टि का अभाव है तो हीन अवस्थारूप अपने कारण से परिणमता है तो ज्ञानावरणीयकर्म उसमें निमित्त कहा जाता है। वह निमित्त कहने में आता है, उसे ऐसा कहा कि उसने आवरण किया। वह तो व्यवहार का कथन है। भावघाति करनेवाले... आहाहा! गजब बात है। ज्ञान की हीन दशा भावघात करनेवाले को ज्ञानावरणीय द्रव्यघाति निमित्त कहा जाता है। परन्तु जहाँ भावघाति पर्याय ही

मुझमें नहीं... आहाहा! द्रव्यघातिकर्म तो मुझमें है ही नहीं। वह द्रव्यकर्म में गये। परन्तु भावघाति जो विकृत अवस्था है... आहाहा! उसका भी मेरी चीज़ में अभाव है, शून्य है। समझ में आया? भाई! ऐसा मार्ग है, प्रभु! मार्ग नहीं, यह तत्त्व ही ऐसा है।

चैतन्यतत्त्व भगवान आत्मा... आहाहा! जिसे आत्मा का आत्मज्ञान हुआ... आत्मज्ञान कहते हैं न? वहाँ ऐसा नहीं कहते कि कर्म का ज्ञान और राग का ज्ञान और पर्याय का ज्ञान। आहाहा! आत्मज्ञान अर्थात् आत्मा में अनन्त शक्ति का एकरूप, उसका जिसे स्वसन्मुख होकर अन्तर ज्ञान हुआ तो कहते हैं कि उस ज्ञानी को तो कर्म के निमित्त से जो अवस्था हुई, उससे शून्य है। आहाहा! ज्ञानचन्दजी! आहाहा! ऐसी बातें सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह कहीं होता नहीं। एक तो कर्म है, ऐसा स्वीकार करते हैं और कर्म के निमित्त से अवस्था है, ऐसा स्वीकार करते हैं परन्तु स्वरूप में नहीं। ऐसा अस्वीकार है। आहाहा!

जिसे स्वरूपदृष्टि हुई, स्वरूपदृष्टि—स्वभावदृष्टि हुई, उसे स्वरूपदृष्टि में तो अनन्त शक्तिरूप उसका स्वरूप पर्याय में परिणमन निर्मल विद्यमान है। आहाहा! आनन्द की अवस्था विद्यमान है, ईश्वर की—प्रभुता की अवस्था विद्यमान है, स्वच्छता की विद्यमान है, कर्ता, कर्म आदि शक्तियों की वर्तमान पर्याय निर्मल है, उसमें कर्म के निमित्त से और शरीर की अवस्था, पाँचों शरीर (का अभाव है)। आहाहा! १४८ कर्म की प्रकृति की अवस्था से प्रभु शून्य है। आहाहा!

प्रवचनसार में यह लिया है, भाई! शून्य-अशून्य। प्रवचनसार में अस्ति-नास्ति लेकर स्वपने अस्ति है, परपने नास्ति है। ऐसा अर्थ करके फिर ऐसा लिया। संस्कृत टीका—अपने से अशून्य है और पर से शून्य है। प्रवचनसार में है। समझ में आया? पहले ऐसा लिया कि अपने से अस्तित्व है और पर से नास्तित्व है। पश्चात् उसे स्पष्ट करते हुए (कहते हैं), अपने से अशून्य है, अशून्य है और पर से शून्य है। प्रवचनसार में आता है न? भाई! सप्तभंगी, यह और याद आग यी। यह तो आता है। यह शून्य शब्द आया न? आहाहा! पहले में भावशक्ति में विद्यमान शब्द था और यह शून्य (शब्द) है। आहाहा!

तेरा स्वभाव, चैतन्य के निधान की नजरें... आहाहा! यह तो कहा था न? उसमें लिया है कि जैसे नरक में स्वर्ग के सुख की गन्ध नहीं, स्वर्ग में नरक के दुःख की अस्ति नहीं। आहाहा! समझ में आया? सूर्य के प्रकाश में अन्धकार का अभाव है—शून्य है। एक

परमाणु में पीड़ा का अभाव है। वैसे भगवान आत्मा में विकार और कर्म का अभाव है। आहाहा! अरे! ऐसा नाथ इसे जँचता नहीं और मैं पराधीन। यह पराधीन भी इसमें एक ईश्वरशक्ति है। इसमें एक ईश्वर नाम की शक्ति है। प्रवचनसार में ४७ नय में (आता है)। पराधीन। जैसे बालक धायमाता के पराधीन होकर... क्या कहलाता है? दूध पिलाते हैं न? धावे छे, उसे क्या कहते हैं? दूध पिलाते हैं। बालक पराधीन तुम्हारी भाषा में क्या है? धायमाता होती है न? धायमाता के पराधीन होकर दूध पीता है।

मुमुक्षु : दूध पिलाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूध पिलावे नहीं... पी लेता है। वैसे भगवान आत्मा... यह दृष्टान्त दिया है। प्रवचनसार में दृष्टान्त दिया है। समझ में आया? ३४वाँ नय है, ४७ नय में ३४वाँ नय है। **आत्मद्रव्य ईश्वरनय से...** संस्कृत टीका है। **परतन्त्रता भोगनेवाला है। धाय की दुकान पर दूध पिलाये जानेवाले राहगीर के बालक की भाँति।** राहगीर का बालक हो और माता को दूध न हो। गाँव में आये हों तो धायमाता के पास दूध पिलाते हैं। वैसे भगवान आत्मा अपनी पर्याय में निमित्त के आधीन होकर विकार होता है, उसका नाम ईश्वरनय। आहाहा! ३४वाँ। यह भी ३४वीं शक्ति है। सत्य बात है। यह भी ३४वीं शक्ति चलती है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, यह नयज्ञान का अधिकार होवे तो ज्ञान से तो ज्ञात होता है कि मेरी पर्याय में विकृतपना है, उससे मैं शून्य नहीं, अस्ति है। वह तो ज्ञान जानता है परन्तु दृष्टि का विषय और दृष्टि का जब कथन चले, तब तो अशुद्धता की विद्यमानता उसमें है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? समयसार तो शक्ति का वर्णन है न! तो शक्ति तो द्रव्य की शक्ति है। द्रव्यदृष्टि का वर्णन है और प्रवचनसार में ज्ञानप्रधान कथन है, तो ४७ नय वहाँ इस प्रकार से लिये हैं। समझ में आया? यहाँ कर्ता आदि में ऐसा आयेगा कि आत्मा रागादि का कर्ता है ही नहीं। यह कर्ता है, वह निर्मल परिणमन है, उसका कर्ता है। समझ में आया? दृष्टिप्रधानता द्रव्य स्वभाव की अपेक्षा के वर्णन में ऐसा आता है परन्तु दृष्टि के साथ जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान अपने में राग के कणरूप, जितने अंशरूप परिणमन है, उसका कर्ता है—ऐसा ज्ञान जानता है। आहाहा! समझ में आया?

मुनि भी ऐसा जानते हैं। अमृतचन्द्राचार्य, ऐसा आया न? 'कल्माषितायाम्' यहाँ

इनकार करते हैं, वह कल्माषित अवस्था आत्मा में है ही नहीं। वहाँ तीसरी गाथा (कलश) में तो ऐसा कहा, मैं वस्तुरूप से—द्रव्यरूप से तो शुद्ध हूँ, परन्तु मेरी पर्याय में अनादि काल से कल्माषित—अशुद्धता चली आती है। आहाहा! वे यह अमृतचन्द्राचार्य शक्ति का वर्णन करनेवाले (कहते हैं)। वे अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि मेरी पर्याय में अनादि से अशुद्धता चली आती है। 'कल्माषितायाम्'। आहाहा! दु:ख का वेदन मेरी पर्याय में है। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि दु:ख के वेदन की अवस्था का अभाव है।

मुमुक्षु : दोनों अपेक्षा बराबर है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों। जिस अपेक्षा से कहा, उस अपेक्षा से जानना चाहिए न! आहाहा! समझ में आया? आहा! भाई! तेरी चीज़ को समझना, जानना कोई अलौकिक चीज है। लौकिक से प्राप्त नहीं होती। आहाहा!

द्रव्यसंग्रह में व्यवहारनय को लौकिक कहा है। द्रव्यसंग्रह में लौकिक—लौकिक (कहा है)। टीका में व्यवहारनय को कथनमात्र, ऐसा कहा है। पाँचवाँ श्लोक। कथनमात्र। आहाहा! उसे ही पकड़ ले। व्यवहार से कहा हो। आहाहा! यह आया न? मोक्षमार्गप्रकाशक में और उसमें भी कि, सिंह को बताना हो, सिंह न हो तो बिल्ली को सिंह कहे। बिल्ली को सिंह कहे। सिंह कहे तो भी वह सिंह नहीं है। मात्र उसे पहिचान कराने के लिये कहते हैं कि ऐसा सिंह होता है। क्रूर और ऐसा... चूहे के ऊपर थपाट मारे न... पकड़-पकड़ में अन्तर है। अपने बच्चे को भी दाँत में पकड़े और चूहे को पकड़े, दोनों में अन्तर है। पकड़, पकड़ में अन्तर है। उंदर... उंदर कहते हैं? चूहा। चूहे को दाँत गड़ा दे और अपने बच्चे को पकड़ती है... सात दिन रखती है न? सात दिन के बाद बच्चे को बिल्ली घुमाती है न? उसे मुँह में लेकर घुमाती है परन्तु वहाँ पोचा-पोचा (पकड़ती है)। समझ में आया? हमने तो सब नजरों से देखा है। भाई! दामनगर में उपाश्रय है न? उसके सामने दुकान थी। बिट्ठल सेठ। यह भाई है न? पैसेवाले हैं न? मुम्बई। उनके पिता थे, बिठ्ठल सेठ। उनकी दुकान थी। अनाज की दुकान में बिल्ली जाये। इतने बड़े चूहे को पकड़कर मारे। थपाट मारकर फिर पीछे के भाग में खाने जाये। ऐसे लटकता निकले। आहाहा! नजर से देखा है। समझ में आया? वह तो दबाब देकर (पकड़े)। वह तो मर ही जाये। और बिल्ली अपने बच्चे को मुँह में लेकर, दो-चार बच्चे हों तो एक को मुँह में लेकर (पकड़े)। समझ में आया?

इसी प्रकार ज्ञानी राग की अवस्था से शून्य है, वे राग को पकड़ते नहीं। (बिल्ली) जैसे चूहे को पकड़ती है, वैसे वे पकड़ते नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं। यह तो सब देखा है न! एक-एक बात का विचार करते-करते देखा हो, वह किस प्रकार चलता है। बड़ा चूहा। पाटिये में बैठा हो, उपाश्रय में निकले। पीछे वाडा में। वाडा समझे? वाडा कहते हैं? खाने के लिये अन्दर जाये। खाली जगह होवे न! आहाहा! यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा, राग की पकड़ नहीं, राग से तो शून्य है। राग होता है, व्यवहार आता है। क्या कहा? धर्मी को भी दया, दान, पूजा भक्ति का भाव आता है परन्तु उस भाव से पर्याय शून्य है। आहाहा! ऐसा द्रव्य का स्वभाव है। यहाँ अभावशक्ति का वर्णन है न! द्रव्य का स्वभाव, वह अभाव स्वभावशक्ति है। आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई! लोगों को यह नया लगा। नया मार्ग निकाला, ऐसा लोगों को लगता है। भाई! नया नहीं, प्रभु! तुझे खबर नहीं, बापू! तेरी शक्ति के स्वभाव का वर्णन ही यह है। समझ में आया? तू ऐसा कहता है कि दया, दान, व्रत नहीं करे तो फिर पाप करेगा। भाई! यह प्रश्न यहाँ कहाँ है। यहाँ तो दया, दान, व्रत का शुभभाव है, उसकी रुचि छोड़। क्योंकि वह अवस्था तेरी द्रव्य, गुण, पर्याय में नहीं है। सम्यक्पर्याय में वह अवस्था नहीं है। आहाहा! पाटनीजी! आहाहा! बापू! यह तो वीतराग तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान विराजते हैं। आहाहा! उनसे आयी हुई यह बात है। समझ में आया?

ऐसा कहते हैं, प्रभु तो ऐसा कहते हैं, भाई! तेरे द्रव्य, गुण में तो अशुद्धता नहीं, परन्तु तेरी पर्याय में अभावशक्ति के कारण अशुद्धता से शून्य है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को ऐसा भासित होता है, ऐसा कहते हैं। मिथ्यादृष्टि को ऐसा भासित नहीं होता। रागसहित भासित होता है। शुद्धता मेरी है और शुद्धता से परिणमन हुआ, उसमें अशुद्धता शून्य है। ऐसी दृष्टि का जिसे विरह है, उसे अशुद्धता भासित होती है। परन्तु सम्यग्दृष्टि का जिसे सद्भाव है... आहाहा! यशपालजी! ऐसा मार्ग है। कल यशपालजी आये थे, प्रसन्नता बतलाते थे। ओहोहो! मार्ग... बापू! आहाहा! यहाँ तो प्रसन्नता का अंकुर फूटा, वह आत्मा की विद्यमानता है। आनन्द की। दुःख के विकल्प से तो शून्य है, प्रभु! आहाहा! समझ में आया?

शून्य (-अविद्यमान) अवस्थायुक्ततारूप अभावशक्ति। (अमुक अवस्था...)

अमुक अर्थात् विकारी अवस्था **(जिसमें अविद्यमान हो...)** जिसमें है नहीं। **(उसरूप अभावशक्ति।)** आहाहा! गजब काम किया है। सन्तों ने जगत को शान्ति का (मार्ग बताया है)। शान्तिमार्ग बतावे, उसे सन्त कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो शान्ति... शान्ति... शान्ति... प्रभु! तुझमें तो शान्तरस पड़ा है न! आहाहा! तो पर्याय में शान्तरस आता है, इसका नाम धर्म है। ये रागादि कषाय तो अशान्त है, दुःख है। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, तप का विकल्प उठता है, वह तो दुःख है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा! उस दुःख की अवस्था से प्रभु की अवस्था शून्य है। प्रभु! भगवान आत्मा प्रभुत्वशक्ति का धारक ईश्वर... आहाहा! वह ईश्वरनय अलग, यह ईश्वरशक्ति अलग। जो इस शक्ति में प्रभुत्वशक्ति है, वह अस्तिशक्ति है। उस दृष्टि के विषय में अस्ति प्रभुताशक्ति है। प्रभुताशक्ति से पर्याय में प्रभुता आती है और उस पर्याय का लक्ष्य है, जो ईश्वरनय अभी कहा, वह नय गुण में नहीं है, द्रव्य में नहीं है। पर्याय में निमित्ताधीन होने की पर्याय में योग्यता है। विकार करे, ऐसी कोई शक्ति नहीं है। अनन्त शक्ति में से कोई शक्ति विकाररूप हो, ऐसी कोई शक्ति नहीं है। विकार होता है न? तो कहते हैं, वह पर्याय की योग्यता से विकार होता है। यह ज्ञान कराने के लिये बात की। आहाहा! परन्तु जहाँ दृष्टि का विषय और द्रव्य के स्वभाव का वर्णन करे, वहाँ उस अशुद्ध अवस्था से प्रभु शून्य है न तू। आहाहा!

अनन्त गुण की पवित्र पर्याय की विद्यमानता में अमुक गुण की अशुद्धता है। सभी गुण अशुद्ध नहीं हुए। अस्तित्वगुण, वस्तुत्वगुण कभी अशुद्ध नहीं होते। समझ में आया? अनन्त गुण की शुद्धता की विद्यमान अवस्थावाली प्रभु तेरी वस्तु है और अशुद्धता से तो तू शून्य है। आहा! अशुद्धता वह सर्व गुण की अशुद्धता नहीं होती। अमुक गुण की ही अशुद्धता होती है। समझ में आया?

एक बार बहुत वर्ष पहले निकाला था। २१ बोल निकाले थे, २१ शक्ति। अशुद्ध होने की २१ योग्यता देखी थी। बहुत वर्ष पहले। यह तो हमारे जीवणलालजी थे, उन्हें खबर है। वहाँ थे, सायला... सायला बाहर। मकान में रात्रि में चर्चा करते थे। अनन्त शक्तियाँ तो शुद्ध ही है। शक्ति नहीं, शक्ति का परिणमन भी शुद्ध है। परन्तु किसी-किसी शक्ति में, जैसे अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व आये न? तो प्रमेयत्व, अस्तित्व, वस्तुत्व की पर्याय निर्मल है। मात्र प्रदेशत्वगुण की पर्याय मलिन है। छह सामान्य गुण में... छह

सामान्य गुण है न? एक प्रदेशत्वगुण की अशुद्ध है। वह अशुद्धता है, उसका ज्ञान कराने के लिये कहा है। परन्तु द्रव्य के स्वभाव की दृष्टि में उस प्रदेश की अशुद्धता का भी अभाव है। आहाहा! ज्ञानचन्दजी! आहाहा! यह ज्ञानचन्द्र है। भगवान शीतलस्वरूप, शीतलस्वरूप, ज्ञानचन्द्र शीतलस्वरूप है। रात्रि में चन्द्रमा में शीतलता होती है न? आहाहा! भगवान शीतलस्वरूप आत्मा है। शान्त... शान्त...

अरे! प्रभु! तुझे तेरी महत्ता और महिमा की खबर नहीं और तुझे अशुद्धता से धर्म हो... अरे! प्रभु! तूने खून कर डाला। तूने तेरी चीज़ की शुद्धता का खून कर डाला। अशुद्धता से शुद्धता होती है (ऐसा माना है)। शुद्ध की ताकत से शुद्ध होता है, ऐसा नहीं मानकर अशुद्धता से शुद्धता होती है, (ऐसा माना)। आहाहा! व्यवहार करते-करते शुद्ध होता है। आहाहा! कहो, सेठ! दरकार भी कहाँ थी? यह सब सेठिया ऐसे के ऐसे जय नारायण (करते थे)। रात्रि में नहीं कहा, जैसा सुनते हैं, वैसा हम मानते हैं। बात तो सत्य परन्तु निर्णय करना चाहिए न! वह तो इसके अवसर आवे तब सेठ कहे न? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही, नाथ! तेरा आत्मा पवित्रता का भण्डार है। उसमें से तो पवित्रता की पर्याय आती है। द्रव्य में, शक्ति में कोई अशुद्धता नहीं है। मात्र पर्याय की योग्यता से एक समयमात्र की विकृत अवस्था होती है। वह यहाँ द्रव्यदृष्टि का विषय बताने में उस अशुद्ध अवस्था से शून्य है, ऐसा बताना है। अनन्त शुद्ध शक्तियों का परिणमन विद्यमान शुद्ध है, उसमें थोड़ी सी अशुद्धता इक्कीस गुण आदि की है... समझ में आया? उससे वह शून्य है। आहाहा! यह उतारा होगा। २१ नाम दिये थे? दिया है कभी? २१ गुण की अशुद्धता। तब एक बार 'सायला' में बाहर किया था। पहले चतुर्मास में राजकोट जाते न? उस समय का याद है। (संवत) १९९५ की बात है। लिखी नहीं होगी। जीवणलालजी के पास था। जीवणलालजी गुजर गये न? हम दो ही थे तब। यहाँ (हमें) तो लिखने की कुछ आदत नहीं। ऊपर से चर्चा करते हैं।

यहाँ कहते हैं कि अनन्त गुण में से कोई गुण, जैसे दर्शनगुण है, उसमें अशुद्धता होती है, चारित्रगुण में अशुद्धता होती है, आनन्दगुण में अशुद्धता होती है परन्तु अस्तित्व, वस्तुत्व आदि गुण में अशुद्धता नहीं होती। अभव्य को भी उसमें अशुद्धता नहीं होती। समझ में आया? समझ में आता है? आहाहा! सभी गुणों में अशुद्धता नहीं होती, अमुक

ही गुण में अशुद्धता होती है। बाकी अनन्त-अनन्त गुण तो शुद्ध है और उनकी पर्याय भी शुद्ध है। आहाहा!

यह अभावशक्ति आत्मा में पड़ी है तो उस अभावशक्ति का जहाँ स्वीकार हुआ अर्थात् अभावशक्ति का धारक भगवान का स्वीकार हुआ तो पर्याय में अभावशक्ति के कारण से अशुद्धता के शून्यपने का परिणमन है। आहाहा! अशुद्धता है, वह ज्ञान में ज्ञेयरूप से, परज्ञेयरूप से ज्ञात होती है। समझ में आया? अपनी पर्याय में स्वज्ञेय में अशुद्धता है, ऐसा नहीं। यह क्या कहा, समझ में आया? फिर से। अपना द्रव्य है। वस्तु शुद्ध है, गुण शुद्ध है और पर्याय में भी शुद्धता है, उसे ही यहाँ पर्याय कहते हैं। अब अशुद्धता जो थोड़े गुण की है, उसका भी यहाँ अभाव है, शून्य है। परन्तु वह है न? है तो उसे परज्ञेयरूप से जानते हैं। आहाहा! निवृत्ति कहाँ? फुरसत कहाँ? यह माणेकचन्दभाई गुजर गये, लो! मूलचन्दभाई ताराचन्द बड़े भाई थे। सुरेन्द्रभाई हैं न यहाँ? माणेकलाल नहीं? गुजर गये। माणेकलाल को बहुत प्रेम था। माणेकलाल। सुरेन्द्रभाई छोटे। सबसे बड़े मूलचन्दभाई थे। गुजर गये। तार आया। ७६ वर्ष की उम्र थी। उन्हें बहुत प्रेम था। आहाहा! ऐसी बात तो कहीं सुनने में आती नहीं, ऐसा कहते थे। आहाहा! बापू! मार्ग तो प्रभु का यह है, भाई! आहाहा!

अशुद्धता के कर्तव्य में लोगों को चढ़ा दिया और शुद्धता का भण्डार पड़ा रहा। क्या कहा? अशुद्ध जो व्यवहार दया, दान के परिणाम में चढ़ा दिया। शुद्धता का भण्डार भगवान है, उसे छोड़ दिया। आहाहा! समझ में आया? यह अभावशक्ति हुई, लो! आज भी लगभग ५५ मिनिट तो हो गये।

भाव में पवित्रता की विद्यमानता (कही)। प्रत्येक शक्ति की पर्याय विद्यमान पवित्रता की ऐसी गिनने में आयी। अभाव में, कोई भी अशुद्धता है, उसकी शून्यता गिनने में आयी है। भाव में अशून्यता अर्थात् पवित्र विद्यमान अवस्था गिनने में आयी है और अभाव में अपवित्रता की शून्यता गिनने में आयी। समझ में आया? इन दो शक्तियों का पिण्ड भगवान अथवा अनन्त शक्ति का पिण्ड द्रव्य है, वह तो शुद्ध है। उसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? इसके बिना सम्यग्दर्शन, शुरुआत धर्म की पहली सीढ़ी... आहाहा! वीतरागमार्ग तो देखो! यह दो बोल हुए। तीसरा शुरु करते हैं, थोड़ा शुरु तो करें।

भवत्पर्याय-व्ययरूपा भावाभावशक्तिः

भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय के व्ययरूप भावाभावशक्ति।३५।

भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय के व्ययरूप भावाभावशक्ति। ३५वीं। क्या कहते हैं? ऐसी एक शक्ति आत्मा में है। भावअभाव। वर्तमान में जो पर्याय भावरूप है, उसे अभाव करे, ऐसी एक शक्ति है। भावअभाव। वर्तमान निर्मल पर्याय की बात है, हों! आहाहा! भगवान आत्मा में ऐसी एक शक्ति / गुण है—भावअभाव। भाव का अर्थ वर्तमान पवित्र विद्यमान अवस्था जो है, वह भावअभावशक्ति के कारण से भाव का अभाव हो जाता है। यह भी अपनी शक्ति के कारण से है। पर्याय का अभाव होना, यह शक्ति के कारण से है। आहाहा! समझ में आया? शान्ति से सुनना, बापू! यह तो मार्ग... तीन लोक के नाथ केवलज्ञानी ने निधान देखे हैं, ऐसा सम्यग्ज्ञान में भासे, ऐसी यह चीज़ है। आहाहा!

कहते हैं **भवते हुए...** प्रवर्तमान पर्याय। पर्याय, हों! वर्तमान। वर्तमान जो अनन्त गुण की निर्मल पर्याय है, वह भवते-होनेवाली है। भवता है न? **भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय के व्ययरूप...** उसके अभावरूप। भावअभाव। वर्तमान भाव है, उसका अभाव हो, ऐसी एक भावअभाव नाम की शक्ति है। उस पर्याय का अभाव मैं करूँ, ऐसा नहीं। वह शक्ति ही ऐसी है कि पर्याय का अभाव हो जाए। विद्यमान अवस्था का अभाव हो जाए, भाव का अभाव हो जाए, ऐसी यह शक्ति है। विशेष आयेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ३०, शक्ति- ३५, ३६ शुक्रवार, (द्वितीय) श्रावण कृष्ण ११, दिनांक ०९-०९-१९७७

यह अधिकार अनेकान्त को विशेष चर्चित करता है, वह अधिकार है। यह अधिकार अनेकान्त को विशेष चर्चित करता है, इस अधिकार में आया। क्यों ?—कि ऐसा कहा था कि ज्ञानमात्र पर्याय वह आत्मा और ज्ञानमात्र पर्याय वह उसका धर्म। तो शिष्य ने प्रश्न किया कि उसमें एक ही धर्म आता है, इसलिए एकान्त हो जाता है। (तो कहते हैं), एकान्त नहीं। ज्ञानमात्र चैतन्यस्वरूप की परिणति में ज्ञानपर्याय आती है, उसके साथ अनन्त गुण की पर्याय साथ में उत्पन्न होती ही है। ज्ञानमात्र कहने से राग और पुण्य आदि नहीं, परन्तु अनन्त शक्ति नहीं – ऐसा नहीं है। समझ में आया ? पहले चर्चा आयी है। दो पृष्ठ पहले हैं। **आचार्यदेव अनेकान्त के सम्बन्ध में विशेष चर्चा करते हैं:–** दो पृष्ठ पहले है।

अपनी पर्याय में ज्ञान की दशा उत्पन्न होती है, यह भावशक्ति में आया परन्तु उसमें राग का अभाव है, व्यवहार का अभाव है, यह अनेकान्त है। ऐसा कहते हैं कि व्यवहार से भी होता है और निश्चय से भी होता है, इसका नाम अनेकान्त, इसका निषेध करने के लिये यह चर्चा ली है। समझ में आया ? उपादान से भी होता है और निमित्त से भी होता है, इसका निषेध करने के लिये यह अनेकान्त लिया है। आहाहा ! पहले भावशक्ति आ गयी न ? अपनी जितनी शक्तियाँ हैं, उनमें भावशक्ति का रूप है। उस भावशक्ति के कारण वर्तमान शुद्ध निर्मल पर्याय विद्यमान रहती है। समझ में आया ? यहाँ तो जिसे दृष्टि हुई है, उसकी बात है। जिसे शक्ति और शक्तिवान का भान नहीं, उसके लिये यह अनेकान्त की चर्चा नहीं है। समझ में आया ? व्यवहार दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, तपस्या, मुनिपना, बाह्य क्रियाकाण्ड यह करते-करते होगा, वह तो एकान्त मिथ्यादृष्टि है।

यहाँ तो अनेकान्त अर्थात् अपनी जो पवित्र अनन्त शक्तियाँ हैं, उनमें भावशक्ति के कारण और शक्ति का रूप भी भावशक्ति में है, इस कारण वर्तमान निर्मल पर्याय उत्पन्न होती है, वह विद्यमान रहती है, उसका कभी अभाव नहीं होता। वर्तमान विद्यमान है वह। उसमें रागादि व्यवहार का अभाव है, इसका नाम अनेकान्त और स्याद्वाद है। आहाहा ! समझ में आया ? अभी यह बड़ी चर्चा चलती है न ? बाबूभाई गये ? अभी यह बड़ी चर्चा आती है। नयी कमेटी बनायी। हमने तो कभी कहा नहीं कि कमेटी बनाओ।

मुमुक्षु : लोग घबराते हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : घबराते हैं ? यह तो बाबूभाई ने खड़ा किया। हमने तो कभी किसी को कहा नहीं कि यह कमेटी बनाओ या यह करो। आहाहा! यहाँ तो तत्त्व की बात चलती है। उसे सुनो, समझो, इसका बहुत विरोध आता है, एक-एक पत्र में। चलती कमेटी से इसका मेल नहीं करना, सहयोग नहीं देना। अरे! प्रभु! क्या हो ? अब यह ... हाथ में आया।

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! सुन तो सही! पर का कौन करे ? कमेटी बनाकर रक्षा करने के परिणाम हों परन्तु वे परिणाम शुभ हैं। शुभ से कहीं तीर्थ की रक्षा होती है, ऐसा तीन काल में नहीं होता। अब इसे एकान्त कहते हैं, कर सकता है, कर सकता है। समझ में आया ? वह तीर्थ की रक्षा तो उसकी होनेवाली वस्तु है तो उसकी पर्याय से होती है। दूसरा कोई उसकी रक्षा कर सके (ऐसा तीन काल में नहीं है)। कठिन बात, भाई! जैनदर्शन की चीज, वस्तु की स्थिति है। समझ में आया ? अपनी वस्तु पर की पर्याय करे, ऐसा तीन काल-तीन लोक में नहीं है। यह तो पहले आ गया है। अकारणकार्यशक्ति। अकारणकार्यशक्ति आ गयी न ? अपने द्रव्य में जितनी शक्तियाँ हैं, उन सबकी वर्तमान विद्यमान अवस्था रहती है। समझ में आया ? परन्तु वह अवस्था पर का कारण हो या पर का कार्य हो, ऐसा नहीं है। ऐसा काम। बाहर की धमाधम करे, यह किया और यह किया। रथयात्रा-शोभायात्रा को क्या कहते हैं ? गजरथ। गजरथ चलावे। कौन चलावे ? भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : कौन चलाता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जड़ की पर्याय जड़ से होती है। हाथी का चलना और बैठना वह हाथी के शरीर से होता है; उसके आत्मा से नहीं। आहाहा! समझ में आया ? यह सब मन्दिर बनाये तो किसने बनाये ?

मुमुक्षु : आपने।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैंने तो कभी कहा ही नहीं। परन्तु रामजीभाई बनाते थे, ध्यान रखते थे। ध्यान रखते थे। आहाहा! बहुत से कहते हैं कि देखो! यहाँ जंगल था। आपके कारण से यह करोड़ों रुपये खर्च हुए न! अरे! प्रभु! यह बात ही नहीं है। उस समय में वह परमाणु की पर्याय होने का स्वकाल था, उससे हुई है। यह भारी कठिन काम।

मुमुक्षु : आप कैसे व्याख्यान करते हो? पूरी दुनिया कहती है, कैसे न माने?

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी दुनिया तो अज्ञान में पड़ी है। आहाहा! यहाँ तो बात तो वस्तुस्थिति हो, वैसी होगी न! मैं पर का कर दूँ, यह शास्त्र लिख दूँ, अनुवाद करूँ, यह क्रिया आत्मा की नहीं है।

मुमुक्षु : यह तो अपने पण्डितजी ने किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डितजी ने लिखा है, मैंने तो किया नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! सत्य बात ऐसी है। सत्य बात। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, यह टीका मैंने नहीं बनायी।

मुमुक्षु : मैंने बनायी है, ऐसा मानकर मोह में न पड़ो।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोह में न पड़ो कि मैंने बनायी है और तुम्हें इससे ज्ञान होता है— ऐसा न करो, भाई! आहाहा! शास्त्र कान में पड़ता है तो अन्दर ज्ञान होता है, ऐसा न करो, मोह में न नाचो। आहाहा! समझ में आया? यह शास्त्र सामने शब्द पड़े हैं तो शब्द के कारण से यहाँ ज्ञान होता है, ऐसे मोह में न पड़ो। आहाहा! क्योंकि शब्द की पर्याय तो जड़ की पर पर्याय है और ज्ञान की पर्याय तो गुण के कारण से, भावशक्ति के कारण से अपनी विद्यमान निर्मल अवस्था उत्पन्न होती ही है। वह कोई शब्द से नहीं, वाणी से नहीं, भगवान की वाणी से भी नहीं। ऐसी बात है। लोगों को कठिन पड़ता है, क्या हो? भाई! आहाहा! सिद्ध भगवान देखते हैं, शासन को नुकसान होता है, शासन में कुछ (हो), उनको कोई विकल्प आता है? वे तो जानते हैं, कि है, होता है।

मुमुक्षु : पुरुषार्थ से जानते हैं...

पूज्य गुरुदेवश्री : वे तो पहले से जानते हैं, केवलज्ञान पहले से जानते हैं। जब जो होनेवाला है, वह होता है। 'जो जो देखी वीतराग ने सो सो होसी वीतरा, अनहोनी कबहू न होसी काहे होत अधीरा।' आहाहा! अभिमान छूटना भारी कठिन। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि भावशक्ति के कारण अनन्त गुण की वर्तमान विद्यमान अवस्था होती ही है। आहाहा! दूसरा आत्मा है, वह भी सम्यग्दृष्टि है तो वह सम्यग्दृष्टि भी सुनने तो आता है। इन्द्र आदि सुनने को आते हैं। एकावतारी क्षायिक समकिती, भगवान की

वाणी (सुनते हैं), परन्तु उन्हें जो ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, उस ज्ञानगुण में भावशक्ति का गुण है, इसलिए विद्यमान निर्मल पर्याय वहाँ उत्पन्न होती है। आहाहा! ऐसी बात! ऐसा कहते हैं कि बाहर थे, तब यह ज्ञान नहीं था, सुनने से नया ज्ञान हुआ। तो सुनने से हुआ या नहीं? भाई! ऐसा नहीं है। यह तो उस समय ज्ञान की पर्याय उस प्रकार की विद्यमान उत्पन्न होने के योग्य थी तो उत्पन्न हुई है, शब्द से नहीं, पर से नहीं। आहाहा! ऐसा लोगों को कठिन लगे। जैनदर्शन कोई अलौकिक वस्तु है। लौकिक के साथ कुछ मिलान नहीं है।

भाव में यह कहा, पश्चात् अभाव(शक्ति)। आत्मा में अभाव नाम की शक्ति है, तो राग के अभावरूप परिणमना, वह अभावशक्ति का कार्य है। व्यवहाररत्नत्रय का जो विकल्प है, उससे अभावरूप परिणमन होना, वह अभावशक्ति का कार्य है। आहाहा! समझ में आया? फिर भावअभाव आता है, जो चलता है।

भावअभाव का अर्थ—**भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय**... अनन्त गुण की वर्तमान प्रवर्तमान पर्याय। ज्ञान की, दर्शन की, चारित्र की, जीवत्व, चिति, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, प्रभुत्व आदि की जो वर्तमान पर्याय भवति—होती है, उसके व्ययरूप। उसका दूसरे समय में व्यय होता है। परन्तु वह व्यय भावअभावशक्ति के कारण से होता है। आहाहा! ज्ञान, दर्शन, आनन्द यह शक्तियाँ हैं। उसकी शक्ति में वर्तमान पर्याय विद्यमान है, विद्यमान है। अब उस पर्याय का अभाव कैसे होता है? लोग कहते हैं न कि परिणमन में काल निमित्त है तो काल से ऐसा परिणमन होता है। वह तो काल की सिद्धि करने के लिये है। परिणमन तो अपने से पूर्व की पर्याय विद्यमान है, उसका अभाव करने की भावअभाव नाम की आत्मा में शक्ति है। आहाहा! समझ में आया? निश्चय में तो केवलज्ञान की जो वर्तमान पर्याय है, उसका अभाव होना, है उसका अभाव होना, वह भावअभावशक्ति के कारण से केवलज्ञान की पर्याय पलट जाती है। आहाहा!

मुमुक्षु : अद्भुत बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी है। आहाहा! मूल तत्त्व की स्थिति—मर्यादा क्या है, यह दृष्टि में न आवे, तब तक विपरीतता टलती नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : भाव की पर्याय का अभाव होता है? परन्तु वह तो निर्मल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभाव। भावअभाव। भाव जो है, उसका अभाव। यह आया न? **(प्रवर्तमान) पर्याय के व्ययरूप भावाभावशक्ति।** यह भावअभावशक्ति का कार्य, जो पर्याय उत्पन्न है, उसका अभाव होना, यह भावअभावशक्ति है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : दूसरे समय में अभाव होता है, वह इस शक्ति के कारण से।

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान पर्याय का अभाव होता है, वह भावअभावशक्ति के कारण से है। निर्मल की (बात) चलती है, हों! यहाँ विकार की बात नहीं है। आहाहा!

दूसरे प्रकार से कहें तो वह निर्मल पर्याय भविष्य की पर्याय का कारण है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! और भूतकाल की पर्याय का वर्तमान पर्याय कार्य है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! ऐसी बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! कहते हैं, भवते हुए प्रवर्तमान पर्याय। अभी पर्याय सुनी न हो। द्रव्य, गुण और पर्याय क्या? आहाहा! समझ में आया?

द्रव्य जो त्रिकाली शक्तियों का पिण्ड, वह द्रव्य और उसमें शक्ति जो गुण है, वह शक्ति और उसकी अवस्था बदलती है, वह पर्याय। परन्तु यहाँ तो कहते हैं, जो पर्याय का व्यय होना, वह किसके कारण से? वह भावअभावशक्ति के कारण से। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! कर्म का उदय आया और निर्मल पर्याय थी, वह मलिन हुई, ऐसा यहाँ है ही नहीं। यह बात तो यहाँ है ही नहीं। परन्तु अपनी जो निर्मल पर्याय है, उसका दूसरे समय में व्यय होता है, वह व्यय होने का कारण क्या? यह भावअभावशक्ति। आहाहा! समझ में आया?

भावअभावशक्ति का प्रत्येक गुण में रूप है। अनन्त गुण में भावअभावशक्ति का रूप है। समझ में आया? आहाहा! व्यवहारनय... यह आया है न? सातवें अध्याय में आ गया है। व्यवहारनय एक का कारण भिन्न में कार्य बताता है। दूसरे के कारण से दूसरा कार्य है और एक द्रव्य का कार्य दूसरे द्रव्य से होता है, ऐसा बताता है, ऐसे व्यवहार की श्रद्धा करना, वह मिथ्यात्व है – ऐसा कहा है। आया है? धन्नालालजी! आया है? कहाँ आया है? मोक्षमार्गप्रकाशक निश्चयाभास और व्यवहाराभास। यह कक्षा में चला था। आहाहा! क्या कहते हैं वहाँ?

वर्तमान जो पर्याय है, वह कोई विकार के कारण से निर्मल पर्याय हुई, ऐसा नहीं

है। समझ में आया? और व्यवहारनय के जितने कथन हैं, उन सब अनुसार माने तो मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। आया है वहाँ? व्यवहार एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य में, एक गुण को दूसरे गुण में, एक पर्याय को दूसरी पर्याय में, एक कारण को दूसरे कार्य में व्यवहारनय मिलाता है। यह मिथ्यात्व है। निश्चयनय यथास्थित जो पर्याय हुई, वह स्वयं से हुई, यह निर्णय करता है, वह सत्य है, सत्यार्थ है। आहाहा! सूक्ष्म बात है। वस्तु तो ऐसी है। आहाहा! ऐसा इसके ज्ञान में निर्धार करना चाहिए, निर्णय करना चाहिए। यहाँ तो निर्णय है, उसकी पर्याय की बात चलती है। समझ में आया? आहाहा!

सुखशक्ति में भी वर्तमान जो आनन्द की पर्याय विद्यमान है, उसका व्यय करती है, उस सुखशक्ति में भावअभाव का रूप है, इस कारण से होता है। आहाहा! क्योंकि पर्याय की स्थिति एक समय की है। समझ में आया? वह पर्याय की स्थिति एक समय की है तो व्यय होता है। व्यय होकर जाती कहाँ है? जल की तरंग जल में समाती है। जल... जल की तरंग। एक तरंग गयी और दूसरी तरंग आयी। वह गयी कहाँ? जल में। जल की तरंग जल में समाती है। यह समयसार नाटक में आता है। यहाँ भी आया है, पंच संग्रह में भी आया है। यह भावअभावशक्ति का वर्णन आया है न वहाँ। वर्तमान जो जल की तरंग है, उसके भाव का अभाव होता है। समझ में आया? तो वह पर्याय व्यय हुई, वह गयी कहाँ? पर्याय विद्यमान थी, उसका अभाव हुआ। वह पर्याय गयी कहाँ? कहाँ गयी समझते हो? कहा गयी। वह जल की तरंग जल में अन्दर समाती है। यहाँ तो निर्मल पर्याय की बात चलती है, हों! और अशुद्ध पर्याय भी जो है, वह दूसरे समय में अशुद्ध होती है तो पहले समय की अशुद्धता का व्यय हुआ, तो वह व्यय हुई, वह गयी कहाँ? वह सत् था। अन्दर में गयी परन्तु अन्दर में अशुद्धता नहीं रही। क्या कहते हैं?

राग की पर्याय है, दूसरे समय में वह राग की पर्याय व्यय हुई। व्यय हुई तो गयी कहाँ? द्रव्य में गयी, अन्दर में गयी। अन्दर में गयी तो वहाँ (अन्दर में) अशुद्धता रही है? नहीं। वह अशुद्धता तो उदयभाव की पर्याय है। और उसमें गयी, तब पारिणामिकभाव हो गया। समझ में आया? जो रागादि दया, दान, विकल्प आदि है, वह तो उदयभाव है और दूसरे समय तो उसका व्यय होता है। व्यय होता है तो कहाँ गयी? अन्दर द्रव्य में। तो क्या द्रव्य में अशुद्धता गयी? उसकी योग्यता अन्दर रही। आहाहा! वर्तमान अशुद्धता

जो है, वह तो उदयभाव है और उदयभाव अन्दर में गया तो पारिणामिकभाव में तो उदयभाव है नहीं।

मुमुक्षु : शुद्धाशुद्ध पर्याय का पिण्ड कहते हैं, वह...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो जो अशुद्धता मानता नहीं, उसके लिये (कहा है)। मोक्षमार्गप्रकाशक में दो जगह आया है। शुद्धाशुद्धपर्याय का पिण्ड। वह तो अशुद्धता भूतकाल में गयी, उसे मानता ही नहीं, उसे बताने के लिये कहा है। शुद्धअशुद्ध पर्याय अर्थात् अन्दर में अशुद्धता है, ऐसा नहीं है। उसकी बात तो यहाँ है ही नहीं। यहाँ तो निर्मल पर्याय जो विद्यमान भवति—प्रवर्तमान है, सम्यग्दर्शन की पर्याय, आनन्द की पर्याय, शान्ति की पर्याय, शान्ति अर्थात् चारित्र, वह पर्याय विद्यमान है, उसका व्यय होता है, तो व्यय होता है, वह भावअभावशक्ति के कारण से व्यय होता है। और गयी कहाँ? अन्दर में डूबी। यहाँ पर्याय बाहर थी तो वह क्षयोपशम या क्षायिकभाव आदि की थी। निर्मल की बात चलती है न? कि उपशमभाव। सम्यग्दर्शन की पर्याय बाहर आयी, वह उपशमभाव, क्षयोपशमभाव और क्षायिकभाव की थी परन्तु उसका व्यय हुआ और गयी कहाँ? अन्दर में क्षयोपशम, क्षायिकभाव रहा नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। पारिणामिकभाव हो गया। आहाहा! सत् का स्वरूप तो देखो प्रभु का! प्रभु अर्थात् तू, हों! आहाहा!

यहाँ तो भवते-परिणमते। भवते अर्थात् प्रवर्तमान वर्तमान। उसका व्यय—अभाव। वह भावपर्याय वर्तमान थी, उसका व्यय, वह अभाव। यह भावअभावशक्ति के कारण से है। आहाहा! इतने शब्दों में तो कितना भरा है! एक-एक शान्ति... अरे! प्रभुता। प्रभुता नाम की जो शक्ति है, उसमें भी भावअभाव पड़ा है। तो उस प्रभुता की शक्ति की वर्तमान विद्यमान निर्मल पर्याय जो है, उसका व्यय होकर अन्दर में जाती है, और व्यय होकर भाव का अभाव होता है। भाव है, उसका अभाव होता है। आहाहा! ऐसा तत्त्व का स्वरूप है, वैसी दृष्टि न हो और विपरीत दृष्टि हो तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

एक भाई कहते थे, हों! कोई जवान है। क्या कहलाता है? दमोह। दमोह के पास अभाना, भाई! है या नहीं? अभाना। आज दोपहर में आये थे, बहुत प्रसन्नता बताते थे। पिताजी गये परन्तु मैं तो टीका सुनने समवसरण में बैठा होऊँ, ऐसा लगता है। लो, जवान

व्यक्ति को भी प्रेम हो जाता है। यह जवान अवस्था तो जड़ की है। आत्मा की जवान अवस्था तो सम्यग्दर्शन हुआ, वह जवान अवस्था है। राग को अपना मानना, वह बाल अवस्था है, अज्ञान अवस्था है। शरीर की बाल, युवा, वृद्ध अवस्था वह तो जड़ में है, आत्मा में तो है ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : १३ तारीख तक में यह ४७ शक्तियाँ पूरी हो जायेगी न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हो, न हो, उसे कौन करता है ? यह भाई तो कहते हैं, मुझे पर्यूषण तक रहना है। समझ में आया ? तुम्हारे तो चार दिन कल से रहे। बारह, तेरह, चौदह और पन्द्रह। दस दिन हुए। बीस दिन यह हो गये। कक्षा को एक महीना हुआ। तुम्हारे चार दिन बाकी हैं।

यहाँ कहते हैं, भवते प्रवर्तमान वर्तमान अनन्त गुण की जो निर्मल पर्याय है, उसका अभाव—व्यय किसके कारण होता है ? काल का निमित्त है तो होता है, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? यहाँ व्यय होकर दूसरी मलिन पर्याय होती है, उसकी यहाँ (बात) नहीं है। यहाँ तो व्यय होकर दूसरी पर्याय निर्मल ही होती है। वह फिर अभावभाव में आयेगा। यहाँ तो भावअभाव की बात चलती है। भाई! यह तो मन्त्र हैं। यह तो थोड़े शब्दों में मन्त्र हैं। आहाहा! भगवान की दिव्यध्वनि के यह मन्त्र हैं। आहाहा! भगवान! तुझमें तो पवित्र अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं, उसकी दृष्टि होने से प्रत्येक गुण की पवित्र पर्याय प्रगट होती है। अकेली ज्ञान की ही होती है और अनन्त आनन्द की नहीं होती, ऐसा नहीं है। क्यों ? कि आनन्द नाम की जो सुखशक्ति है, उसमें भी भावअभाव नाम का रूप है। तो आनन्द की वर्तमान पर्याय है, उसका व्यय हो जाता है। भावअभाव के कारण से आनन्द की वर्तमान पर्याय है, उसका अभाव हो जाता है। आहाहा! किस कारण से ? भावअभावशक्ति के कारण से। यहाँ शक्ति का वर्णन लिया। रामजीभाई ने कहा, कक्षा (शिविर) में शक्ति का वर्णन चले। कक्षा के बीस दिन तो हो गये। तुम्हारे दस दिन तो यह हो गये। महीना हुआ, तीस दिन हुए। आहाहा! यह ३५वीं शक्ति आयी। तीसवें दिन ३५वीं आयी। आहाहा! वस्तु जो मक्खन है, वह ख्याल में आ जाये तो सभी शक्तियाँ उसमें आ गयी। समझ में आया ? आहाहा! भारी गजब किया है!

यह शक्ति का वर्णन थोड़ा पढ़कर श्वेताम्बर में एक देवचन्दजी हुए हैं। उनका

वाँचन बहुत था। उनके सम्प्रदाय का भी (था) और थोड़ा यह भी पढ़ा था। तो वह कल्पित नयी शक्ति बनाते थे। लगभग आठ बनायी परन्तु... वह यह नहीं। इस स्थिति की नहीं। हमने वह भी देखी है। पत्रिका में आयी थी। पत्रिका में आठ शक्ति आयी थी। आहा! यह तो अलौकिक बातें, बापू! आहाहा! दिगम्बर धर्म अर्थात् सनातन जैन वस्तु की स्थिति। सनातन वस्तु की स्थिति। ऐसी स्थिति कहीं नहीं। समझ में आया? परन्तु सम्प्रदायवालों को भी खबर नहीं। दिगम्बर सम्प्रदाय में जन्मे (और मान लिया), हम दिगम्बर हैं। जिनेश्वरदासजी! यह देवदर्शन करना और व्रत करना और अपवास करना, ब्रह्मचर्य पालना, यह हमारा धर्म है। वस्तुस्थिति भगवान ने स्पष्ट की है, आचार्यों ने स्पष्ट कर दी है। कितनी की है! देखो! टीका तो देखो! पाठ है, पाठ है न? देखो! क्या है? आहाहा!

'शून्यावस्थत्वरूपा अभावशक्तिः३४' 'भवत्पर्यायव्ययरूपा भावाभाव-शक्तिः३५' यह संस्कृत है। **'भवत्पर्यायव्ययरूपा भावाभावशक्तिः'** आहाहा! इसमें तो अनन्त पर्याय का स्पष्टीकरण कर दिया। जो कोई अनन्त शक्ति है, उसकी वर्तमान निर्मल पर्याय सम्यग्दृष्टि को होती है। उस पर्याय का व्यय होना, भाव है, उसका अभाव होना, वह भावअभावशक्ति का कार्य है। उसे करना नहीं पड़ता कि मैं पर्याय व्यय करूँ। उस शक्ति का कार्य ही ऐसा है। समझ में आया? शक्तिवान को जहाँ दृष्टि में लिया तो शक्ति का कार्य जो वर्तमान पर्याय है, उसका अभाव करूँ, ऐसा विकल्प भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा समझ में आये, उतना समझना, बापू! यह तो गम्भीर चीज़ है। पूरी-पूरी तो सन्त कर सकते हैं।

एक-एक शक्ति में अनन्त शक्ति का रूप भरा है। अनन्त शक्ति में एक शक्ति का रूप पड़ा है। आहाहा! भावअभावशक्ति ज्ञान की पर्याय में, प्रभुत्व की पर्याय में वर्तमान विद्यमान है, भवती—प्रवर्तमान का व्यय होना, यह (भावअभावशक्ति का कार्य है)। ऐसे तो पहले कह गये, उत्पादव्ययध्रुव नाम की १८वीं शक्ति पहले कह गये हैं। उत्पादव्ययध्रुवत्वशक्ति के कारण पर्याय उत्पन्न होती है, पूर्व की व्यय होती है और ध्रुव रहता है। यह तो पहले आ गया है। यहाँ तो वर्तमान पर्याय विद्यमान है, उसका अभाव (होता है)। आहाहा!

स्वरूपभाव सम्पन्न प्रभु, उसमें भावअभाव की शक्ति भी द्रव्य में है और गुण में भी

एक-एक गुण में भावअभाव का रूप है। आहाहा! और भावशक्ति तो भावशक्ति में है। इस भाव की भावअभावशक्ति तो भावअभावशक्ति में है। इस शक्ति के कारण से... आहाहा! वर्तमान वीतरागी निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई है, उसका व्यय होता है, वह भावअभाव का कार्य है। मैं व्यय करूँ, ऐसा भी वहाँ नहीं है। आहाहा! तथा मैं वर्तमान निर्मल विद्यमान पर्याय को प्रगट करूँ, (ऐसा भी नहीं है)। विद्यमान है, उसे प्रगट क्या करना? भावशक्ति के कारण से विद्यमान तो होती ही है। आहाहा! समझ में आया?

यह मार्ग तो बापू! पुरुषार्थी का है। आहाहा! और वह भी समझने में जिसका उल्लसित वीर्य है, उसके लिये यह बात है। आहाहा! उल्लसित वीर्य का अर्थ—अपने स्वरूप की रचना में वीर्य उल्लसित है। वीर्यगुण का यह कार्य आया न? आत्मस्वरूप की रचना करे, वह वीर्य। आहाहा! यहाँ पुण्य-पाप की रचना की तो बात ही नहीं है। अर र र! प्रभु! इसका नाम अनेकान्त की चर्चा में यह बात आती है। क्या करे? यह मिला नहीं, सुनने को मिला नहीं। सत् की स्थिति की मर्यादा सुनने को मिले नहीं तो मर्यादा में कहाँ से आवे? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, सर्वदर्शिशक्ति में भी भावअभाव पड़ा है। आहाहा! सर्वदर्शिपना प्रगट हुआ, उसमें भी भावअभाव के कारण से सर्वदर्शिशक्ति की विद्यमान पर्याय का अभाव होता है। आहाहा! ऐसे सर्वज्ञपर्याय जो उत्पन्न हुई... आहाहा! उसकी पर्याय में एक तो अगुरुलघुगुण के कारण से षट्गुणहानिवृद्धि होती है, वह दूसरी वस्तु। केवलज्ञान की पर्याय में भी अगुरुलघु (के कारण) एक समय में षट्गुण हानि, षट्गुण वृद्धि (होती है)। आहाहा! यह तो कोई गजब बात है! यह तो केवली (जाने)। केवलज्ञान की एक समय की पर्याय में अनन्त गुण हानि, असंख्य गुण हानि, संख्य गुण हानि। अनन्त भाग हानि, असंख्य भाग हानि, संख्य भाग हानि। यह हीन के छह बोल। अनन्त गुण वृद्धि, असंख्य गुण वृद्धि, संख्य गुण वृद्धि। अनन्त भाग वृद्धि, असंख्य भाग वृद्धि, संख्य भाग वृद्धि। यह छह बोल वृद्धि के। आहाहा! एक ही समय में छह प्रकार की वृद्धि है, वह तो वीतरागगम्य है। यह तो गम्य आत्मा के ज्ञान में आ सके, ऐसी चीज़ है। समझ में आया? आया न?

प्रवर्तमान वर्तमान विद्यमान वस्तु, उसका व्यय। आहाहा! सम्यक् क्षायिक समकित की जो पर्याय है, उसका भी दूसरे समय तो व्यय होता है। आहाहा! समझ में आया? तो

यह कहते हैं कि किस कारण से ऐसा होता है ? भावअभावशक्ति के कारण से। आहाहा! इसे नजर द्रव्य के ऊपर करनी पड़ेगी। इसे गुण और पर्याय के भेद पर भी दृष्टि नहीं करनी है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! यह तो अपना कार्य करना हो, उसके लिये बात है। दुनिया को समझाना आवे, न आवे, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! इसका अर्थ विशेष करना आवे, न आवे, अनुवाद करना (आवे, न आवे) इसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! यह तो शक्तिरूप जो वस्तु है, उसे पर्याय में प्रसिद्ध करना, यहाँ तो यह कार्य है और प्रसिद्ध हुई पर्याय दूसरे समय में व्यय होती है, वह भी उसकी शक्ति के कारण से है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! यह निर्मल की बात चलती है, हों! मलिन पर्याय है और व्यय होता है, उसकी यहाँ बात नहीं है। क्योंकि मलिन पर्याय तो ज्ञाता की पर्याय का परज्ञेय है। परज्ञेय की पर्याय का व्यय होता है और वह भावअभाव है, यह बात यहाँ नहीं है। आहाहा! समझ में आया ?

अनन्तधर्मत्वशक्ति आयी न ? अनन्तधर्मत्वशक्ति आयी। एक-एक धर्म विलक्षण है। कोई दूसरे धर्म के साथ लक्षण मिलता नहीं। आहाहा! अनन्तधर्मत्वशक्ति में अनन्त धर्म अर्थात् गुण, प्रत्येक धर्म की विलक्षणता है। एक धर्म का लक्षण दूसरे में आता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा अनन्तधर्मत्वशक्ति में भी एक समय में अनन्तधर्म की पर्याय विद्यमान है, उसका व्यय होता है, यह भावअभावशक्ति के कारण से। आहाहा! शक्ति का व्यय नहीं होता, हों! प्रवर्तमान पर्याय की बात है। शक्ति का व्यय नहीं होता, उत्पाद नहीं होता। आहाहा! ऐसा अब मस्तिष्क न मिले और धन्धे के कारण, पाप के कारण निवृत्ति नहीं मिलती। आहाहा! उसमें और दो, पाँच करोड़ रुपये हो जायें तो हो गया। उसे मैं चौड़ा और गली सकड़ी हो जाती है। लड़के के लिये मकान बनाऊँ और उसके लिये यह धूल करो और यह करो... अरे रे! प्रभु! तुझे कहाँ जाना है ? सुनने की भी निवृत्ति न मिले, उसे पुण्य भी नहीं होता, धर्म तो कहाँ से आया ? पुण्य के लिये दो-चार घण्टे व्यतीत करे, वाँचन में, पुण्य-शुभभाव तो होता है। परन्तु उसकी यहाँ बात नहीं है।

यहाँ तो सम्यग्दृष्टि के आत्मा ने त्रिकाली का आश्रय किया है, तो जितनी शक्ति का पिण्ड है, उस प्रत्येक शक्ति की वर्तमान निर्मल पर्याय की अस्ति है। उस अस्ति का व्यय होता है, उसकी बात है। ऋषभचन्दजी! ऐसी बात है, भाई! आहाहा! यह उसका गुण है,

ऐसा कहते हैं। भावअभाव नाम की शक्ति का अर्थ (यह कि) उसका गुण है। आहाहा! आत्मा में भावअभाव नाम का एक गुण है। शक्ति कहो या गुण कहो, एक ही है। उस गुण के कारण वर्तमान पर्याय का अभाव होता है। आहाहा! निर्मल, हों! एकरूप नहीं रहता। क्योंकि पर्याय की स्थिति एक समय की है। पर्याय की स्थिति एक समय की है। द्रव्य-गुण की स्थिति त्रिकाल है। आहाहा! समझ में आया?

दर्शन, ज्ञान, चारित्र, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शि, कर्ता, कर्म, करण, अकर्ता, अभोक्ता नाम की शक्ति है तो पर्याय में अकर्तापने की निर्मल पर्याय विद्यमान है परन्तु उस अकर्तापने की शक्ति में भावअभावशक्ति का रूप है, इसलिए उसकी भी वर्तमान पर्याय का व्यय होकर भावअभाव होता है। है, उसका अभाव होता है। आहाहा! अब अभावभावशक्ति। थोड़ा-थोड़ा चलाते हैं।

मुमुक्षु : विस्तार से पूरा घण्टा होवे तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा तो कहाँ होगा इसमें? आवे तो आवे। वह कहीं तैयार कर रखते हैं? आहाहा!

जीवत्वशक्ति आयी न? जीवत्व। जीवत्वशक्ति का लक्षण चिति है। दूसरी शक्ति। वह उसका लक्षण है। वह चितिशक्ति और जीवत्वशक्ति दोनों की सम्यग्दृष्टि को वर्तमान पर्याय में निर्मलता शुद्धता की विद्यमानता है। उस शुद्धता की विद्यमानता का व्यय होता है, यह भावअभाव के कारण से (होता है)। आहाहा! समझ में आया? शक्ति पर्याय में नहीं आती। शक्ति का रूप है, वह ज्ञानपर्याय में ज्ञात होता है। यह क्या कहा? ज्ञान की पर्याय वर्तमान विद्यमान है, वह शक्ति और द्रव्य का जानपना पर्याय में होता है परन्तु उस पर्याय में द्रव्य और शक्ति नहीं आते। और उस वर्तमान विद्यमान पर्याय का अभाव होता है, उस अभाव में ज्ञान की पर्याय में भी अभाव हुआ, उस पर्याय में अभाव हुआ, शक्ति में अभाव नहीं हुआ। समझ में आया? शक्ति तो है, वह है। आहाहा! ऐसा है। ऐसा लोगों ने सुना न हो, उन्हें एकान्त लगता है। इसमें तो निश्चय की ही बातें करते हैं। परन्तु निश्चय अर्थात् सत्य। व्यवहार अर्थात् उपचार और आरोपित बात। आहाहा! वह तो कथनमात्र कहा नहीं था? व्यवहार कथनमात्र। पाँचवाँ श्लोक। लौकिक कथन। आहाहा! यह ३५वीं शक्ति (हुई)।

भवत्पर्याय-व्ययरूपा भावाभावशक्तिः ३६।

नहीं भवते हुए (अप्रवर्तमान) पर्याय के उदयरूप अभावभावशक्ति।३६।

३६। **नहीं भवते हुए (अप्रवर्तमान)**... नहीं होनेवाली पर्याय। मलिनता की नहीं होनेवाली पर्याय। आहाहा! **(अप्रवर्तमान) पर्याय के उदयरूप**... आहाहा! पहले भावअभाव में आया। अब यह अभावभाव। जो वर्तमान पर्याय में अभाव है, उसका भाव होना। है? **नहीं भवते हुए पर्याय के उदयरूप**... उदय है न? प्रगटरूप। आहाहा! यह तो बहुत शान्ति और धीरज से समझने की बात है, बापू! यह कोई कथा नहीं, वार्ता नहीं; यह तो भागवत कथा—भगवान की कथा है, भाई! आहाहा! अरे! इसने उल्लसित वीर्य से कभी सुनी नहीं। समझ में आया? आहाहा! और वहाँ कहा था न? **'तत्प्रतिप्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता'** जिसने प्रीतिचित्त से अध्यात्म की बात सुनी है... आहाहा! वह अवश्य मोक्ष का भाजन है। आहाहा! क्या कहलाता है वह? पद्मनन्दि पंचविंशति, पद्मनन्दि पंचविंशति है तो २६ अधिकार परन्तु (नाम पच्चीसी दिया है)। आहाहा!

उसमें तो एक २६वाँ ब्रह्मचर्य का अधिकार लिया है। ब्रह्मचर्य की बहुत बात की। आनन्दस्वरूप में रमणता, वह ब्रह्मचर्य है। शरीर से शील पालना, वह कहीं ब्रह्मचर्य नहीं; वह तो विकल्प राग है। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप में ब्रह्म अर्थात् आनन्द में लीन होना, वह ब्रह्मचर्य है। फिर आचार्य कहते हैं, अरे! युवको! अरे! जवानों! मेरी यह ब्रह्मचर्य की बात सुनकर तुम्हें ठीक न लगे तो क्षमा करना, मैं तो मुनि हूँ, क्षमा करना। आहाहा! पद्मनन्दि पंचविंशति। क्योंकि यह स्त्री के विषय और भोग में लवलीन पड़े हैं, उन्हें ब्रह्मचर्य अर्थात् यह (कहना)... आहाहा! अरे! भाई! तुझे खबर नहीं, बापू! ब्रह्म अर्थात् आनन्दस्वरूप भगवान में लीन होना, वह ब्रह्मचर्य है। काया द्वारा, मन द्वारा, करना, यह नहीं। अन्दर में विकल्प से नहीं करना। निर्विकल्प ब्रह्मचर्य में लीन होना, इसका नाम ब्रह्मचर्य है। तो आचार्य महाराज ने फरमाया, हे युवकों! यह गाथा में है, हों! यह गाथा है। हे युवकों! तुम्हारी पच्चीस, तीस, चालीस वर्ष की जवान अवस्था प्रस्फुटित हो रही है, खा-पीकर लठ्ठ जैसे लगे और मकान-बकान पाँच-दस लाख का मकान हो और उसमें पलंग में स्त्री... अरे! प्रभु! तुझे न रचे तो कंटाला करना नहीं, क्षमा करना। क्योंकि हम मुनि हैं, हम क्या कहें? दूसरा क्या कहेंगे?

उसी प्रकार यहाँ आचार्य कहते हैं, हम तो समकिती हैं, हम क्या कहें ? तुम्हें न समझ में आये और कंटाला आवे तो माफ करना। आहाहा! ऐसा उपदेश मिलना भी मुश्किल। आहाहा! ऐसी बात है, इसलिए लोगों को बेचारों को ऐसा लगता है। अरे रे! यह यहाँ की दया खाते हैं, हों! कि तुम यह...

मुमुक्षु : इसीलिए तो लोग महीना-महीना आकर रहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आते हैं। बात सत्य। आहाहा! अरे रे! बापू! भाई! वे कहें, व्यवहार से नहीं मानते तो नरक और निगोद में (जाओगे)। प्रभु! सुन तो सही। आहाहा! उसके सामने लो कि स्वर्ग और मुक्ति है। यह नरक और निगोद तो तत्त्वदृष्टि से विरुद्ध कहनेवाले के लिये लागू पड़ता है। समझ में आया ? कहा न यह ? चौदह बोल नहीं आये ? समयसार। तत्-अतत्, एक-अनेक। वहाँ पशु ही कहा है। आहाहा! जो एकान्त मानता है कि राग से लाभ होता है, वह तो एकान्त है। आहाहा! उसे वहाँ पशु कहा है। पशु है। वर्तमान में भी तू 'पश्यति इति पशु, बध्यते इति पशु'। आहाहा! चौदह बोल में संस्कृत में है—पशु। उसका अर्थ क्या ? पश्यते इति पशु। पशु का अर्थ यह—मिथ्याव से बन्ध होता है, इसलिए पशु। और पशु का एक अर्थ—वर्तमान में भी मिथ्यात्वरूपी पशु से बँधता है और उसके फल में भी निगोदगति है, प्रभु! आहाहा! वह पशु है। निगोद पशु है। समझ में आया ? आहाहा!

आचार्य महाराज तो यहाँ तक कहते हैं, वस्त्र का एक टुकड़ा रखकर हम मुनि हैं, ऐसा माने, मनावे, मानते हों, उन्हें अनुमोदन करे, वह निगोद गच्छई। आहाहा! ककड़ी के चोर को फाँसी (की सजा) नहीं ? नहीं, प्रभु! उसने बहुत बड़ा गुनाह किया है। वस्त्र का एक टुकड़ा रखकर मुनिपना तीन काल में होता ही नहीं। वस्त्र के कारण से नहीं परन्तु ममता के कारण से। समझ में आया ? आहाहा! जहाँ वस्त्र रखने का, ओढ़ने का भाव है, वहाँ ममत्व है और ममत्व है, वहाँ चारित्र है ही नहीं। और उसे मानना, वह मिथ्यात्वभाव है और मिथ्यात्व का फल निगोद है। कोई शुभ परिणाम हो और स्वर्ग मिल जाये, अशुभ परिणाम हो तो नरक मिल जाये परन्तु वास्तव में तत्त्वदृष्टि से विरुद्ध दृष्टि का फल यथार्थरूप से तो निगोद है और तत्त्वदृष्टि के आराधन का फल मुक्ति है, बस! समझ में आया ? आहाहा! यह तो बीच में जरा शुभभाव होवे तो स्वर्ग में जाये, अशुभ होवे तो नरक

में जाये, वह कोई चीज़ नहीं है। मूल चीज़ तो मिथ्यात्व का फल निगोद है और सम्यग्दर्शन का फल मुक्ति है। आहाहा! क्या कहा?

नहीं भवते हुए पर्याय के उदयरूप... वर्तमान में भविष्य की जो पर्याय होनेवाली है वर्तमान में नहीं। दूसरे समय में जो पर्याय होनेवाली है, वह वर्तमान में नहीं। निर्मल की बात चलती है, हों! आहाहा! **नहीं भवते हुए पर्याय के उदयरूप...** वर्तमान प्रवर्तमान है नहीं। भविष्य की है, वह वर्तमान हो जाएगी। अभाव है, उसका भाव हो जाएगा। अभाव है, उसका भाव हो जायेगा। आहाहा! समझ में आया? भविष्य की केवलज्ञान आदि की पर्याय वर्तमान में नहीं तो अभावभाव है। समझ में आया? आहाहा! परन्तु नहीं प्रवर्तमान वर्तमान पर्याय में वह भविष्य की पर्याय प्रगट होगी। आहाहा! यह क्या कहा?

वर्तमान में भविष्य की पर्याय का अभाव है। समझ में आया? परन्तु उस अभाव का भाव हो जायेगा। ऐसी अभावभावशक्ति है। पहले भावअभावशक्ति कही थी। है, उसका भय होगा। अब यहाँ तो कहते हैं, नहीं है, उसका उदय होगा। आहाहा! इस शक्ति के कारण से ऐसा होगा ही। आहाहा! क्षयोपशम समकित में क्षायिक समकित का अभाव है। समझ में आया? तो कहते हैं, भले अभाव हो परन्तु अभाव, भाव हो जायेगा। अभाव—नहीं, उसका भाव हो जायेगा। भगवान के समीप में क्षायिक समकित है, यह तो निमित्त का कथन है। भगवान तीर्थंकर या श्रुतकेवली के समीप में क्षायिक समकित होता है, ऐसा आता है न? तो यहाँ तो दूसरे प्रकार से कहते हैं कि क्षयोपशम समकित है, उसमें क्षायिक का अभाव है। तो जो क्षायिक का अभाव है, वह क्षायिक हो जायेगा। आहाहा! अभाव का भाव हो जायेगा। आहाहा! ऐसी अभावभाव नाम की शक्ति है। समझ में आया?

शास्त्र में ऐसा आता है कि क्षायिक समकित तो भगवान के समीप ही होता है। समीप में होता है, यह तो निमित्त का कथन है। उस समय क्षायिक समकित पर्याय में नहीं है, अभाव है, उसका भाव हो जायेगा। आहाहा! यह अपनी अभावभावशक्ति के कारण से ऐसा होता है। भगवान के समीप में आया तो क्षायिक समकित हुआ, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अरे! ऐसी बातें, लो! फिर लोग कहे, व्यवहार उत्थापित करते हैं। बात तो उनकी सत्य है। आहाहा!

अब यहाँ कहते हैं, श्रुतकेवली और तीर्थंकर के समीप में क्षायिक समकित होता

है। यहाँ कहते हैं, क्षयोपशम समकित में क्षायिक समकित का अभाव है, परन्तु अभाव है, वह भाव हो जायेगा। अभाव का भाव हो जायेगा। आहाहा! अपनी शक्ति के कारण से हो जायेगा। भगवान के समीप है तो क्षायिक समकित हो जायेगा, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! समझ में आया? यह तो क्षायिक समकित एक लक्ष्य में आ गया। ऐसे वर्तमान में स्वरूपाचरणचारित्र की पर्याय है, उसमें विशेष स्थिरता की पर्याय का अभाव है परन्तु वह अभाव है, उसका भाव हो जायेगा। आहाहा! अभाव का भाव हो जायेगा। अभाव है, उसका भाव होगा। उदय शब्द प्रयोग किया है न? उदय। श्रीमद् भी ऐसा प्रयोग करते हैं। 'उदय होय चारित्र का' आत्मसिद्धि में ऐसा पाठ है। उदय अर्थात् प्रगट। प्रगट होगा। वर्तमान में क्षयोपशम समकित है, उसमें क्षायिक का अभाव है तो भावअभाव है तो अभाव का भाव हो जायेगा। यह सब सुनने बैठे हैं न! विशेष कहेंगे, लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ३१, शक्ति- ३६ शनिवार, (द्वितीय) श्रावण कृष्ण १२, दिनांक १०-०९-१९७७

समयसार, शक्ति का अधिकार चलता है। शक्ति का अर्थ—द्रव्य में जो सामर्थ्य है, गुण है, उसे यहाँ शक्ति कहते हैं। द्रव्य एक है, शक्तियाँ अनन्त हैं। अनन्त शक्ति का एकरूप, वह द्रव्य है। शक्ति कहो या गुण कहो। अनन्त गुण का एकरूप, वह द्रव्य है। उसमें यहाँ अपने ३६वीं (शक्ति) चलती है न? देखो! इस शक्ति में गम्भीरता है। क्या (कहते हैं)?

नहीं भवते हुए पर्याय के उदयरूप... क्या कहते हैं? कि वर्तमान भाव में ज्ञान की कमी है और बाद की पर्याय में वृद्धि होती है, वह वर्तमान में अभाव है, उसका भाव होता है, वह अभावभावशक्ति के कारण से। क्या कहा, समझ में आया? चार कर्म नाश हुए तो केवलज्ञान, केवलदर्शन हुआ, ऐसा तत्त्वार्थसूत्र में है। चार घाति का नाश होता है, यह तो निमित्त का कथन है। आत्मा में ऐसा गुण है, वर्तमान पर्याय नहीं-अभाव है, वह बाद की पर्याय में उत्पन्न होनेवाली है, इस भाव का अभाव करके, भाव का तो अभाव होता है परन्तु भाव में वह अभाव नहीं, परन्तु अभाव का भाव होगा। यह भाव के अभाव में दूसरा भाव हुआ। अभावभावशक्ति। है?

वर्तमान पर्याय में केवलज्ञान नहीं है, उसका अभाव है। बाद में केवलज्ञान होता है, इसका क्या कारण? ज्ञानावरणीय का नाश हुआ, इस कारण से? अभावभाव नाम की शक्ति है तो वर्तमान में जिसका भाव नहीं, उसका भाव होगा ही। बाद की पर्याय में (होगा ही)। वर्तमान में अभाव है, वर्तमान में वह भाव नहीं होने पर भी, बाद की पर्याय जो अभी अभावरूप है, वह आयेगी। वह यहाँ प्रगट होगी। यह अभावभावशक्ति के कारण से। समझ में आया? उसमें निमित्त-नैमित्तिक का भी निषेध है।

यह विवाद चला है। सामनेवालों ने खानिया चर्चा में लिखा है। ऐसा कि तत्त्वार्थसूत्र में तो ऐसा चला है कि चार घाति का नाश होता है तो केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य प्रगट होता है। फूलचन्दजी ने जवाब दिया है, चार कर्म का नाश—व्यय होता है तो इसका अर्थ यह है कि अकर्मरूप पर्याय होती है। कर्मरूप पर्याय का व्यय होता है। व्यय हुआ तो क्या हुआ? वह अकर्मरूप पर्याय हुई। उससे केवलज्ञान हुआ, ऐसा है

नहीं। समझ में आया ? ऐ... सेठ! यह निर्णय करना पड़ेगा। ऐसी की ऐसी गाड़ियाँ चली है। हमारे पोपटभाई ऐसा कहते हैं, इसके लिये तो यहाँ आये हैं। आहाहा!

अभावभावशक्ति का कार्य क्या ? वर्तमान पर्याय में जिसका अभाव है, तत्पश्चात् की पर्याय वहाँ होगी। वह अपनी अभावभावशक्ति के कारण से होगी। कर्म के अभाव के कारण से होगी, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? आहाहा! कल एक दृष्टान्त दिया था। वह तो लक्ष्य में आ गया था। क्षयोपशम समकित का। गोम्मटसार शास्त्र में तो ऐसा लेख है कि तीर्थंकर और श्रुतकेवली के समीप में क्षायिक समकित होता है। यह तो निमित्त का कथन है। यहाँ तो कहते हैं कि इसमें अभावभावशक्ति है तो क्षयोपशम में क्षायिक का अभाव है, उस क्षयोपशम का अभाव (करके) क्षायिक करेगा। वह अभावभावशक्ति के कारण से क्षायिक होगा। ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! समझ में आया ? और चार ज्ञान की पर्याय में जो चार ज्ञान है और उनका अभाव होकर केवलज्ञान होता है, तो कहते हैं कि वह अभाव होता है तो केवलज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। उन चार ज्ञान में केवलज्ञान का अभाव है तो अभावभावशक्ति के कारण से पश्चात् केवलज्ञान होगा। उस शक्ति से होगा। समझ में आया ? इसमें निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध उड़ा देते हैं। निमित्त हो परन्तु उससे होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया ?

यह प्रश्न चला था। अभी कहा न ? हम जब जमशेदपुर चले गये तो वहाँ ईसरी में रतनचन्दजी ने वर्णीजी से प्रश्न चलाया और रेकॉर्डिंग उतर गया। अभी बताया न रेकार्डिंग ? रतनचन्दजी ने कहा—कानजीस्वामी ऐसा कहते हैं,... तुम्हारे गाँव के... सहारनपुर के। रतनचन्दजी मुख्त्यार सहारनपुर। वर्णीजी को प्रश्न किया।—कानजीस्वामी ऐसा कहते हैं, महाराज! ज्ञानावरणीयादि कर्म कुछ नहीं करते। कर्म आत्मा में कुछ नहीं करते। अपनी योग्यता से ज्ञान में घट-बढ़ होती है। ज्ञान की पर्याय में घट-बढ़।... बाबूलाल ने निकाल डाला है। दूसरी पुस्तक में (नहीं)। यहाँ के विरोध के लिये। उसने लेख ही प्रकाशित कर डाला है। समझ में आया ? यहाँ तो दोनों प्रश्न यही थे कि अपनी ज्ञान की पर्याय में हीनता होती है तो अपनी योग्यता से। ज्ञानावरणीय निमित्त हो परन्तु निमित्त आत्मा में हीनता करता है, ऐसा नहीं है। और वृद्धि का प्रश्न तो यहाँ है। समझ में आया ?

ज्ञानगुण में अभावभाव नाम का रूप है। अभावभावशक्ति है, उसका रूप ज्ञानगुण

में भी है। ज्ञानगुण के परिणमन में वर्तमान जो अल्प ज्ञान है, उसके स्थान में केवलज्ञान नहीं है कि पश्चात् जो वृद्धि होनेवाली है, वह वर्तमान में नहीं है, यह अभावभावशक्ति के कारण से जो भाव नहीं है, वह भाव आयेगा। कर्म के अभाव से आयेगा, यह प्रश्न यहाँ नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। इसकी शक्ति-ताकत है। 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई।' समझ में आया? यहाँ तो यह भी लेना नहीं है। यहाँ तो आत्मा में एक अभावभाव नाम का गुण है। भगवान आत्मा गुणी है। गुणी तो यहाँ चावल की, बाजरे की बोरियाँ होती हैं, उन्हें (गुजराती भाषा में) गुणी कहते हैं। अन्दर भरे होते हैं न? तुम्हारे बोरी कहते हैं। हमारे यहाँ काठियावाड़ में गुणी कहते हैं। गुणी लाओ। ऐसा यहाँ नहीं। यहाँ तो गुणी का अर्थ उसमें अनन्त गुण भरे हैं, ऐसा गुणी। अनन्त गुण में एक ऐसा गुण है कि वर्तमान पर्याय में विशेष ज्ञान का अभाव है, विशेष ज्ञान का, पश्चात् विशेष ज्ञान होने का भाव होगा, वह अभावभावशक्ति के कारण से विशेष ज्ञान होगा।

अभावभाव—वर्तमान में विशेष ज्ञान का—केवलज्ञान का, अवधिज्ञान इत्यादि का अभाव है। ज्ञानगुण में अभावभाव नाम का रूप है, इस कारण से अभावभावशक्ति का रूप है, इस कारण से वर्तमान में ज्ञान की अल्पता है, उसमें विशेषज्ञान का अभाव है, तो अभावभावशक्ति से वर्तमान जो अल्पज्ञान है, उसके स्थान में विशेष ज्ञान होगा, यह अभावभावशक्ति के कारण से होगा। अब पण्डितजी हुकमचन्दजी आये हैं न! ज्ञानचन्दजी, पाटनीजी सब व्याख्यान करनेवाले हैं, रतनचन्दजी। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : हम तो सब आपके पीछे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसमें है न! देखो! यह तो सिद्धान्त है। आगम से, युक्ति से और अनुभव से तीनों से यह बात सिद्ध होती है। युक्ति से भी अपनी पर्याय पर से होती है, ऐसा भी नहीं है। क्योंकि निमित्त है, वह अपनी पर्याय करता है तो पर की पर्याय कहाँ से करे?

मुमुक्षु : अत्यन्त अभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अत्यन्त अभाव है। यहाँ तो दूसरी बात कहनी है कि वर्तमान में आनन्द, ज्ञान... यहाँ पहले ज्ञान लेना है कि ज्ञान की अल्पता में विशेष ज्ञान का अभाव है

तो विशेष ज्ञान का अभाव है तो वह अभावभाव नाम की शक्ति में अभाव के स्थान पर विशेष ज्ञान होगा। विशेष ज्ञान होगा, इस शक्ति के कारण होगा। किसी निमित्त को सुना या गुरु मिले हैं, इसलिए विशेष ज्ञान होगा, ऐसा नहीं है। भाई! रतनचन्दजी! बराबर है? वह तुम्हारे रतनचन्दजी और यह हमारे रतनचन्दजी हैं। समझ में आया? ऐसा कहते हैं कि हुकमचन्दजी सोनगढ़ के पण्डित हैं, ऐसा लोग कहते हैं। अरे! भगवान! यह तो सत्य है। पश्चात् कहा कि, यह हमारे हैं। आहाहा! भगवान! हमारा-तुम्हारा इसमें है कहाँ?

भगवान आत्मा में अनन्त गुण में से एक गुण ऐसा है कि वर्तमान में गुण की विशेष वृद्धि नहीं, अभाव है, वह अभावभावशक्ति की पर्याय के कारण से बाद की जो वृद्धि है, वह अभाव में आयेगी। स्वयं के कारण से आयेगी। आहाहा! समझ में आया? यह अभावभावशक्ति के कारण से विशेष गुण वर्तमान में नहीं है, अल्प है, पश्चात् विशेष आयेगा, वह अभावभावशक्ति के कारण से उस भाव में आयेगा, वह अभावभावशक्ति के कारण से आयेगा। आहाहा! इसे करना तो क्या है? कि चिद्रूप जो भगवान आत्मा है, उसका स्वीकार करना। उसमें गुण इस अभावभावशक्ति का स्वीकार भी आ गया। गुणी का स्वीकार हुआ तो उसमें गुण का भी स्वीकार हुआ। स्वीकार हुआ तो पर्याय में जो अल्पज्ञान वर्तमान में है, तो ज्ञानगुण में अभावभाव का रूप है तो विशेष शक्ति का भाव, वह अभावभावशक्ति के कारण से विशेष ज्ञान होगा। निमित्त से होगा, ज्ञानावरणीय के अभाव से होगा, यह बात नहीं है। बराबर है? आहाहा!

इसी प्रकार समकित में। क्षयोपशम समकित के स्थान में क्षायिक समकित का अभाव है। क्षयोपशम समकित में क्षायिक का अभाव है। तो यहाँ अभावभावशक्ति के कारण से अन्दर श्रद्धागुण में भी अभावभाव नाम का रूप है। श्रद्धागुण में। श्रद्धागुण है, समकित, वह पर्याय है परन्तु श्रद्धागुण में अभावभाव नाम का रूप पड़ा है, इस कारण उस श्रद्धा गुण में अभावभावशक्ति के कारण से क्षयोपशम के स्थान में क्षायिक आयेगा। वह इस कारण से आयेगा। भगवान के समीप गया तो आयेगा, ऐसी बात नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। बात जँचती है? कहो, सुरेन्द्रजी! आचार्य का है। आहाहा! यहाँ तो इनकार किया था। फिर जमादार ने लेख निकाल डाला है। छापने की कोई भूल भी हो गयी हो। परन्तु इतना कमी डाला है।

यहाँ तो ज्ञानगुण में अभावभाव नाम का गुण अन्दर नहीं परन्तु उसका रूप है। इस कारण से ज्ञान की पर्याय में वर्तमान में विशेष का अभाव है, तो विशेष के अभाव में भाव हो जायेगा, इस अभावभावशक्ति के कारण से। आहाहा! यह बड़ा निमित्त का घोटाला इसमें उड़ जाता है। कहो, चन्दुभाई! निमित्त से होता है, यह बात उड़ जाती है। आहाहा! गुरु से ज्ञान मिलता है, भगवान की वाणी सुनने से ज्ञान की वृद्धि होती है, यह सब (बात) उड़ जाती है। आत्मा में गुण ही ऐसा है। अभावभाव नाम की शक्ति और गुण ऐसा है कि इस कारण से वर्तमान में विशेष न हो तो विशेष आयेगा। ऐसा अभावभावशक्ति के कारण से आयेगा। समझ में आया? यह एक बोल भी यथार्थ समझे तो सब उड़ जाता है। उपादान से होता है, निमित्त से नहीं। समझ में आया? बड़ी गड़बड़ है।

यह तो पहले बेचारे देवकीनन्दन कहते थे, हों! इन्दौरवाले देवकीनन्दन थे न? पंचाध्यायी में उनकी भूल थी। जब आये थे, तब मैंने बताया था। वे कहे, हम पण्डित लोग लिख डालते हैं। उन्होंने ऐसा बोल लिया था कि छठवें गुणस्थान में बुद्धिपूर्वक का राग है और अबुद्धिपूर्वक का सातवें गुणस्थान में है। उन्होंने पंचाध्यायी का बनाया है न, उसमें लिखा। कहा, ऐसा नहीं है। तो फिर क्या है? कि छठवें गुणस्थान में बुद्धिपूर्वक और अबुद्धिपूर्वक दोनों प्रकार का राग है और सातवें में अबुद्धिपूर्वक एक है। बुद्धिपूर्वक छठवें में है और सातवें में अबुद्धिपूर्वक है, ऐसा नहीं है। क्या कहा, समझ में आया?

मुमुक्षु : छठवें में अबुद्धिपूर्वक भी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अबुद्धिपूर्वक है।

मुमुक्षु : चौथे गुणस्थान में?

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे में भी है, उसकी यहाँ बात नहीं है। चौथे में भी उपयोग में जो राग बुद्धिपूर्वक का ख्याल में आता है, वह है और उपयोग काम नहीं करता, ऐसा अबुद्धिपूर्वक का चौथे में भी है। यहाँ तो मुनि की बात है। चारित्रवन्त है, तीन कषाय का अभाव है। आहाहा! ख्याल में नहीं आनेवाले राग को अबुद्धिपूर्वक कहते हैं और नय से कहो तो असद्भूत अनुपचार से कहने में आता है। ऐसी सूक्ष्म बातें।

फिर से कहते हैं, हों! एकदम जाने नहीं देते हैं। बात व्यवस्थित सिद्ध होगी (तो

समझ में आयेगी)। क्या कहा ? कि इस आत्मा में चिद्घन का ज्ञान, भान हुआ, उसे भी राग तो है। परन्तु राग जितना ख्याल में आता है, उसे असद्भूत उपचार कहा जाता है। क्योंकि राग अपने में नहीं है, इसलिए असद्भूत। और उपचार तो ख्याल में आता है, वह राग कहना, यह उपचार। और उस समय उपयोग सूक्ष्म नहीं तो वहाँ अबुद्धिपूर्वक राग है, ख्याल में राग आने के बाद अबुद्धिपूर्वक है, अबुद्धिपूर्वक राग को असद्भूत अनुपचारनय का विषय कहा गया है। इतना सब (समझना)... समझ में आया ? यह बुद्धिपूर्वक और अबुद्धिपूर्वक चौथे, पाँचवें और छठवें तक होता है। सातवें में अकेला अबुद्धिपूर्वक का होता है। उन्होंने कहा, हमें भूल बताओ, हम पण्डित लोग निमित्ताधीन दृष्टि से पढ़े हैं। स्पष्ट कहा, सब पण्डित... सब पण्डित निमित्ताधीन से पढ़े हैं, हमारी सब वृत्ति निमित्ताधीन से है। यह पढ़ाई ही हमारे पास नहीं थी, हम लाये कहाँ से, ऐसा बेचारे कहते थे। वे गुजर गये। हमने और रामजीभाई ने विचार किया था कि वह यहाँ आवे, छह महीने रहे देवकीनन्दन और छह महीने कैलाशचन्दजी रहे। जितना वेतन वहाँ मिलता है, उतना वेतन संस्था यहाँ से देगी। छह महीने हमारी बात सुने, फिर उसका प्रचार करना हो तो करे। पहले छह महीने सुने कि क्या है, परन्तु फिर तो गुजर गये। देवकीनन्दनजी गुजर गये थे, कैलाशचन्दजी अकेले तो आ सकते नहीं। उनकी दृष्टि में जरा अन्तर है। वे अभी तक कहते थे। हमारे में और उनमें मतभेद है। क्रमबद्ध का निर्णय किया तो भी अभी कहते हैं कि मतभेद है। जो क्रमबद्ध उनके पास पहले नहीं था। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि चौथे गुणस्थान में आत्मज्ञान हुआ तो भी कषायभाव है। कषाय राग हो, द्वेष हो, क्रोध हो, मान हो... क्रोध-मान को द्वेष कहते हैं, माया-लोभ को राग कहते हैं। उसमें से कोई अंश राग हो परन्तु वह अंश ख्याल में आता है, उतने राग को बुद्धिपूर्वक का कहते हैं और ख्याल में नहीं आता, उसे अबुद्धिपूर्वक का कहते हैं। दोनों राग का आत्मा में अभाव है। असद्भूत कहने से। यहाँ यह बात लेनी ही नहीं। उसे क्रोध है और क्रोध का अभाव होगा, यह प्रश्न ही यहाँ नहीं है। यहाँ तो उसमें क्रोध है ही नहीं। शक्ति का वर्णन है तो शक्ति गुणरूप है। गुणरूप है तो उसका परिणमन निर्मल ही है। निर्मल क्रमवर्ती पर्याय और निर्मल अक्रमवर्ती गुण, उसका समुदाय वह आत्मा है। विकार की यहाँ बात नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? कितना याद रखना ? बनियों को धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं मिलती। सेठ! आहाहा!

अरे! भाई! अनन्त काल में कभी यथार्थ निर्णय, अनुभव नहीं किया। इस अनुभव बिना जन्म-मरण नहीं मिटेंगे, भाई! यह तेरे व्रत, तप, भक्ति और पूजा लाख, करोड़ अनन्त कर, वह तो राग है, विकार है, क्लेश है, दुःख है। समझ में आया? करोड़ की पूँजी लो और पाँच-पच्चीस लाख खर्च कर डाले तो धर्म है, ऐसा तीन काल में नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

दृष्टान्त नहीं दिया था? रात्रि में दिया था। कोई गृहस्थ मनुष्य करोड़पति हो। उसे सुनकर ऐसा हुआ कि मैं जाता हूँ। मेरे पास करोड़ है तो दस लाख देना चाहता हूँ। भाषा में हीनता हो गयी (बोल सके नहीं)। दस लाख... (बोलने जाये) तो वह लड़का समझा कि दस लाख का कहना चाहते हैं। ऐ! सेठ! इसलिए लड़का कहे, बापूजी! अभी पैसे को याद नहीं करते। लड़के भी सब ऐसे, हों! लुटेरे हैं। नियमसार में पाठ है, आजीविका के लिये तुझे लुटेरों की टोली मिली है। नियमसार में है। स्त्री, पुत्र, पुत्री, और पुत्र की बहू, सब लुटेरों की टोली है। तुझे लूट खायेंगे, मार डालेंगे। वह परद्रव्य है, उसे मेरा मानना, मैं उनका रक्षण करूँ... मर जायेगा तू। नियमसार में है। आजीविका टोली है। हमें रखो, हमें दो, साड़ियाँ लाओं, लड़के का विवाह करो, लड़की बड़ी हो गयी है, विवाह कर दो। सब लूटेरे हैं। ऐ! सेठ!

यहाँ कहते हैं कि आत्मा में जो कषाय होती है, उसकी बात तो यहाँ ली ही नहीं। क्योंकि यहाँ तो आत्मा और आत्मा की शक्ति दोनों निर्मल है। निर्मल की दृष्टि करने से पर्याय में निर्मलता ही उत्पन्न होती है। वह निर्मल क्रमवर्ती पर्याय और निर्मल अक्रमवर्ती शक्ति का समूह, उसे आत्मा कहा है। यहाँ राग की बात नहीं है। समझ में आया? इसलिए यहाँ ऐसा कहते हैं कि ज्ञानगुण में एक अभावभाव नाम की शक्ति है।

इसी प्रकार श्रद्धागुण में अभावभाव नाम की शक्ति है—रूप है। शक्ति नहीं परन्तु उसका रूप। तो श्रद्धा जब क्षयोपशमरूप है तो उसके स्थान में क्षायिक नहीं। क्षयोपशम में क्षायिक का अभाव है परन्तु उस अभावभावशक्ति के कारण से क्षयोपशम का अभाव होकर क्षायिक होगा ही। वह क्षायिक होगा, वह अभावभावशक्ति के कारण से होगा। भगवान के समीप आया, इसलिए होगा—ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

इसी प्रकार चारित्रगुण में भी अभावभावशक्ति का रूप है। तो चारित्रगुण जो थोड़ा

निर्मल हुआ है और अभी विशेष निर्मल हुआ नहीं, विशेष निर्मलता का वर्तमान अल्प निर्मलता में अभाव है।, तो अभावभावशक्ति के कारण से, जो विशेष निर्मलता है, वह अल्प निर्मलता छूटकर विशेष निर्मलता चारित्र की होगी ही। यह अभावभावशक्ति के कारण से है। चारित्रमोह छूट जायेगा तो यहाँ वृद्धि होगी, ऐसी बात नहीं है। आहाहा! मणिभाई! ऐसा स्वरूप है, भाई!

लोग विवाद करते हैं। ऐ... निमित्त को मानते नहीं, व्यवहार को मानते नहीं। बापू! व्यवहार को तो यहाँ गिनने में आया ही नहीं। यहाँ शक्ति के वर्णन में तो व्यवहार और निमित्त को गिनने में आया ही नहीं। क्योंकि व्यवहार का ज्ञान अपने में होता है, उस पर्याय को निर्मलरूप से गिनने में आया है, व्यवहार नहीं। क्या कहा, समझ में आया? रागादि व्यवहार होता है, परन्तु यहाँ शक्ति के वर्णन में, सभी शक्तियाँ निर्मल हैं तो उसकी दृष्टि करने से निर्मल परिणति ही होगी। मलिन परिणति की बात यहाँ है ही नहीं। कोई कहे, थोड़ी मलिनता है न? तो कहते हैं कि उस मलिनता का यहाँ ज्ञान करते हैं, वह ज्ञान की पर्याय उसकी है। वह भी अपनी अभावभाव (शक्ति) के कारण से अपनी ज्ञान की पर्याय हुई है। आहाहा! बहुत कठिन काम, बापू! बड़ा अन्तर, पूर्व-पश्चिम का। उगमणो-आथमणा को क्या कहते हैं? पूर्व-पश्चिम।

इसी तरह आनन्दगुण है, उसमें अभावभावशक्ति का रूप है। शक्ति है, इस कारण से और उसमें रूप है, इस कारण से, जो आनन्द अनुभव में—वेदन में अल्प है, चौथे गुणस्थान में आनन्द के अनुभव का वेदन अल्प है और पाँचवें में विशेष है, छठवें में विशेष है, सातवें में विशेष है। तो कहते हैं कि वर्तमान में विशेष आनन्द का अभाव है, उसके स्थान में अभावभावशक्ति के कारण से विश्योष आनन्द होगा ही। मोहकर्म का नाश होगा तो सुख की वृद्धि होगी, ऐसा नहीं है। आहाहा! एक-एक शक्ति ने काम किया है, गजब काम किया है! ओहोहो! दिगम्बर सन्तों की धारावाही कथनी! आहाहा! वस्तु की स्थिति ऐसी है। यह तो वस्तु की मर्यादा ऐसी है।

चौथे गुणस्थान में चारित्र की निर्मलता यहाँ स्वरूपाचरण में अल्प है और पाँचवें में विशेष चारित्र हुआ। क्योंकि दूसरे कषाय (चौकड़ी) का अभाव हुआ न? अपने मलिन परिणाम का। प्रकृति के अभाव की यहाँ बात नहीं है। दूसरे कषाय की मलिनता का अभाव

होने से पंचम गुणस्थान में शान्ति और आनन्द विशेष है। तो भी कहते हैं कि वह आनन्द विशेष आया, वह कषाय प्रकृति गयी, इसलिए विशेष आनन्द आया, ऐसा नहीं है। आहाहा! उसमें अभावभावशक्ति है तो उस आनन्द में भी अभावभाव का भाव है। अभावभाव का भाव आनन्द में पड़ा है तो आनन्द का वेदन जो अल्प है, विशेष आनन्द का अभाव है तो अभावभाव के कारण से विशेष आनन्द वहाँ आयेगा। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है।

वीर्य अल्प है, पुरुषार्थ—वीर्य चौथे, पाँचवें आदि में अल्प है, उस वीर्य की वृद्धि, स्वरूप रचना की वृद्धि... जो चौथे गुणस्थान में स्वरूप रचना है, उससे पाँचवें, छठवें में विशेष स्वरूप रचना है, तो विशेष स्वरूप रचना का पहले अभाव है, उसमें अभावभावशक्ति के कारण से विशेष स्वरूप की रचना होगी ही। आहाहा! वह वीर्यांतराय का क्षय, क्षयोपशम हुआ, इसलिए वृद्धि हुई, ऐसा नहीं है। वीर्यान्तराय है न? अन्तराय की पाँच प्रकृतियाँ। वीर्यान्तराय का अभाव हुआ तो वीर्य की वृद्धि हुई, ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब बात है। सन्तों की शैली तो... शान्ति प्राप्त कराये, उन्हें सन्त कहते हैं, आहाहा! उनके दासानुदास होकर रहते हैं। समझ में आया? आहाहा! समकित दास है न? सवेरे कहा था न? जिनेश्वरदास है, भगवान का दास आत्मा है। उसमें जिनेश्वरपना आयेगा। दास में जिनेश्वरपना आयेगा, वह अभावभावशक्ति के कारण से आयेगा। आहाहा! समझ में आये ऐसा है। सेठ! बात समझ में आयी ऐसी है। भाषा तो सादी है। यह निमित्त और उपादान के झगड़े हैं न? हमारे सोनगढ़ के नाम से निमित्त, व्यवहार और क्रमबद्ध—इन तीन का विरोध करते हैं। अरे! भगवान! सुन तो सही, नाथ!

तुझमें जो अल्प शान्ति है... यहाँ तो सम्यग्दर्शन से शुरु किया है न? यहाँ अज्ञानी की बात नहीं है। जो अपना चिद्घन, अनन्त गुण सम्पन्न, अनन्त शक्ति सम्पन्न प्रभु...! वह तुम्हारे गायन में आया है। तुमने गायन रखा है न? आत्मधर्म में सामने है। 'जिहीं देख्या हम, अवर न देख्यो' यह शब्द है। यहाँ है, देखो! 'जिहीं देख्या हम, अवर न देख्यो' भजन में कहतेहैं कि मैंने मेरा आत्मा देखा। 'अवर न देख्या' मैंने उस समय पर को नहीं देखा। 'और देख्यो सु श्रद्धायो' जो देखने में आया, वह पूर्णानन्द का नाथ है, ऐसा देखने में आया, उसका श्रद्धान किया। भजन में है न? यह तुम्हारा भजन है। आहाहा! 'जिहीं देख्यो हम

अवर न देख्यो' भगवान आनन्द और अनन्त गुण सम्पन्न प्रभु, अपनी पर्याय में उसे देखा, 'अवर न देख्या' पर को देखना बन्द हो गया और अपने को देखा। आहाहा!

'और देख्यो सु श्रद्धान्यो' भगवान पूर्णानन्द का नाथ जैसा देखा वैसा श्रद्धान हुआ। देखा वैसा श्रद्धा हुआ। दर्शनमोह गया, इसलिए श्रद्धान हुआ, ऐसा नहीं है। समझ में आया? मिथ्यात्व के काल में सम्यग्दर्शन का अभाव है परन्तु जिसने आत्मा को देखा तो उसमें सम्यग्दर्शन की पर्याय नहीं तो अभावभावशक्ति के कारण सम्यग्दर्शन होगा। आहाहा! समझ में आया? यह शब्द जरा ख्याल में रह गया। 'जिहीं देख्यो हम अवर न देख्यो, देख्या सो श्रद्धाना' देखा उसका मैंने श्रद्धान किया। आहाहा! समझ में आया? देखे बिना श्रद्धा (किस प्रकार हो)? जो वस्तु ज्ञान में आयी नहीं, उसकी श्रद्धा कैसी? १७-१८ गाथा में यह दृष्टान्त आया न? गधे के सींग नहीं, उसकी प्रतीति कैसी? होवे उसे देखने में आवे तो उसकी प्रतीति हो। इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान की पर्याय में ज्ञात होता है, श्रद्धा की पर्याय में श्रद्धान में आता है। देखा, उसकी श्रद्धा है। जाना, उसकी श्रद्धा है। आहाहा! इस श्रद्धा की पर्याय में क्षयोपशम की जो कमजोरी है, क्षायिक का अभाव है परन्तु अभावभावशक्ति के कारण से (क्षायिक होगा ही)। आहाहा! यह गजब काम करते हैं!

दूसरी एक बात ऐसी भी है ३८ गाथा, ९२ गाथा, ३८ गाथा समयसार की, ९२ गाथा प्रवचनसार की, उसमें आचार्य ऐसा कहते हैं, हमें आत्मज्ञान से मिथ्यात्व का नाश हुआ है, वह अब फिर से नहीं आयेगा। आहाहा! क्यों कहा? हमारे आत्मा में अभावभाव नाम का गुण है, उस गुण के कारण से अल्पश्रद्धा अथवा मिथ्यात्व का अभाव हुआ, उस समय समकित (आदि) की वृद्धि नहीं थी, वह समकित की वृद्धि अभावभावशक्ति के कारण से आयेगी ही। यह आया, वह अब नहीं बदलेगा। आहाहा! यहाँ तो यह कहा न? जिसने द्रव्य को दृष्टि में लिया, उसमें शक्ति की भी प्रतीति आयी तो उसमें अभावभाव नाम की शक्ति है तो उसकी पर्याय में वर्तमान में अल्पता है और विशेषता नहीं, उस विशेष का अभाव भावरूप होगा ही। विशेष का अभाव है तो अभावभावशक्ति के कारण से विशेष आयेगा ही। गिरेगा और पड़ेगा यह बात यहाँ नहीं है। आहाहा! भाई! क्या कहा, समझ में आया थोड़ा? सम्यग्दर्शन प्राप्त करे और फिर गिर जायेगा, यह बात ही यहाँ नहीं है। आहाहा! क्योंकि जिसे द्रव्य स्वभाव भगवान आत्मा की प्रतीति, अनुभव अनुभूति में

हुआ। आहाहा! फिर अभावभावगुण को भी पकड़ लिया, आहाहा! इस कारण से वर्तमान में जो अभाव है, उसका भाव होगा ही। भाव का अभाव होगा, ऐसा नहीं। अभाव है, उसका भाव होगा। आहाहा! समझ में आया?

जो भाव प्रगट हुआ है, उसका अभाव होगा, यह किस अपेक्षा से? भाव का अभाव कहा तो उस पर्याय का अभाव, इतना। पर्याय के अभाव में समकित का अभाव (होगा), ऐसी बात नहीं है। पहले भावअभाव आया न? भावअभाव तीसरी शक्ति। पहले भावशक्ति। वर्तमान में अनन्त गुण की निर्मल पर्याय विद्यमान होती है और होती है, यह भावशक्ति के कारण से। और पर के अभावरूप परिणमन अपनी सहज अभावशक्ति के कारण से है तो रागरूप और पररूप नहीं परिणमना, वह अभावशक्ति के कारण से है।

अब भावअभाव। वर्तमान पर्याय—भाव है, उसका अभाव होगा। अभाव होगा, इसका अर्थ (यह कि) वह निर्मल पर्याय है, उसका अभाव होकर दूसरी पर्याय होगी। परन्तु अभाव होकर मिथ्यात्व होगा, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! समझ में आया? बहुत गजब काम किया है, प्रभु! आहाहा! शक्ति का वर्णन... पण्डितजी कहते हैं, पूरी होगी या नहीं? यह पूरी कहाँ... ? चलते-चलते कहाँ निकलती है..! आहाहा! समझ में आया?

भाव के अभाव का अर्थ यह नहीं कि निर्मल पर्याय भावरूप है, उसका अभाव होगा और मिथ्यात्व होगा। ऐसा नहीं है। यहाँ तो वर्तमान निर्मल पर्याय है, उस भावअभाव के कारण से उसका व्यय होकर दूसरी पर्याय होगी। दूसरी होगी, वह निर्मल ही होगी। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! खजाना खोल दिया है! आहाहा!

भगवान! तेरे पास एक अभावभाव नाम की शक्ति है न! वह गुण है न! उस गुण में अनन्त ताकत है न! एक गुण की अनन्त पर्याय है न! आहाहा! समझ में आया? तो अभावभाव नाम की शक्ति—गुण है, तो उसकी अनन्त निर्मल पर्याय (होती है)। यहाँ निर्मल की बात है, हों! मलिन की बात नहीं। वह निर्मल पर्याय भी अल्प है और विशेष का अभाव है तो अभावभावशक्ति के कारण से विशेष पर्याय होगी और होगी ही। आहाहा! गिर जायेगा, यह तो बात ही नहीं है। आहाहा! चढ़ने की (बात है)। आहाहा! वस्तु यह है। आहाहा! जिसने भगवान द्रव्य दृष्टि में लिया, वह द्रव्य गिरे, द्रव्य का अभाव हो तो समकित का अभाव हो। आहाहा! यदि द्रव्य का अभाव हो तो समकित का अभाव हो।

ऐसा यहाँ लिया है। द्रव्य और द्रव्य की शक्ति का अभाव तो तीन काल में होता नहीं। आहाहा! उसकी जिसने अनुभव में प्रतीति की तो वह व्यय होगा परन्तु वह व्यय होकर दूसरी निर्मल पर्याय उत्पन्न होगी। वह व्यय होकर मिथ्यात्व आत्मा में उत्पन्न होगा, ऐसा आत्मा में कोई गुण नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

आस्रव-अधिकार में लिया है, 'नयपरिच्युता'। फिर अर्थ किया है शुद्धनय। मूल तो शुद्धनय को ही नय कहा है। 'नयपरिहीणा'। 'नयपरिच्युता' आस्रव-अधिकार में है, वहाँ व्यवहारनय को नय ही नहीं गिना। 'नयपरिहीणा' में शुद्धनय को नय गिनने में आया है। आहाहा! समझ में आया? जिसने अपने द्रव्यस्वभाव की प्रतीति दृष्टि में ली, वह जिसने छोड़ी, वह नय से परिहीण हो गया। यहाँ तो छोड़ने की बात ही नहीं है। आहाहा! ओहोहो! गजब बात है। अप्रतिहतभाव की बात करते हैं। चाहे तो क्षयोपशम समकित हो, परन्तु कहते हैं कि दूसरे समय में क्षायिक होनेवाला है तो उस भाव का अभाव होकर, अभाव का भाव हुआ, जो नहीं, वह हुआ, यह अभावभावशक्ति के कारण से हुआ। द्रव्य की शक्ति ऐसी है। आहाहा! द्रव्य का सामर्थ्य इतना है कि वर्तमान में निर्मल पर्याय अल्प है, विशेष का अभाव है तो विशेष होगा ही। आहाहा! निमित्त की अपेक्षा वहाँ नहीं कि कर्म का अभाव होता है तो वहाँ निर्मलता होती है। आहाहा! समझ में आया? गजब काम किया है।

वीर्य, उसी प्रकार सुख। समझ में आया? आहाहा! इसी तरह कर्ता, कर्म आदि शक्तियाँ हैं न? कर्ता बाद में आयेगा। कर्ताशक्ति में भी अभावभाव नाम की शक्ति का रूप है तो निर्मल परिणति का कर्ता होता है, तो उस कर्ता की निर्मल परिणति अल्प है, उसका विशेष भाव होगा, ऐसा वहाँ अभावभावशक्ति के कारण से कर्तागुण की परिणति की अल्पता है, वह विशेष कर्ता होगा। उस कर्तागुण में अभावभावशक्ति का रूप है। आहाहा! गजब बात है। समझ में आया? जिसे भगवान आत्मा की दृष्टि में भेंट हुई... आहाहा! तो द्रव्य में अभावभाव नाम की शक्ति भी द्रव्य में है, तो द्रव्य की जहाँ प्रतीति हुई तो अभावभाव नाम की शक्ति अन्दर है तो वह प्रतीति वापस गिरेगी, यह बात यहाँ नहीं है। विशेष वृद्धि होगी। सुख की, ज्ञान की, दर्शन की, चारित्र की, वीर्य की... आहाहा! अरे! अनन्त गुण की जो पर्याय अल्प है, उस विशेष का वर्तमान में अभाव है तो भाव होगा ही।

आहाहा! क्या कहा, समझ में आया? आहाहा! भगवान में ऐसा अभावभाव नाम का एक गुण है। एक गुण अभावभाव नाम का गुण है कि वर्तमान में जो भाव नहीं, वह आ जायेगा। आहाहा! यहाँ निर्मल की बात है, हों! आहाहा!

निमित्त की चर्चा में यह विवाद लिया है। चेतनजी! कि ज्ञान वाणी का कर्ता है। ऐसा शब्द आता है। निमित्त से कथन है। वाणी की पर्याय का कर्ता ज्ञान है। आहाहा! यहाँ तो यह बात है ही नहीं। वाणी का कर्ता तो नहीं परन्तु अल्पज्ञान का जो कर्तापना है, उसमें विशेषज्ञान के कर्तापने का वर्तमान में अभाव है, वह भाव आयेगा। आहाहा! अभावभाव। गजब काम किया है न! शब्द तो इतने हैं, **नहीं भवते हुए (अप्रवर्तमान) पर्याय के उदयरूप**... लो! नहीं होनेवाली पर्याय में प्रगट पर्याय होनेरूप अभावभावशक्ति का वह कार्य है। आहाहा! गजब काम किया है! लोग स्वाध्याय करते नहीं। शास्त्र-आगम का क्या अभिप्राय है, उसे अपनी दृष्टि में नहीं लेते और अपनी दृष्टि आगम में लगा देते हैं। इसमें यह कहा है, इसमें यह कहा है, ज्ञानावरणीयकर्म से ज्ञान रुकता है, अमुक से होता है... आहाहा! यह तो निमित्त के कथन हैं। ज्ञानावरणीयकर्म ज्ञान को आवृत्त करता है, यह तो निमित्त का कथन है। और आवरण टलता है तो क्षयोपशम होता है, यह तो निमित्त का कथन है।

यहाँ तो अभावभावशक्ति के कारण से क्षयोपशम बढ़ जाता है, वह अल्प में अभाव है, वह विशेष हो जायेगा। कर्म के अभाव के कारण से नहीं। आहाहा! अर्थात् लोग ऐसा कहते हैं कि हमें जो यह सुनने को मिला, यह ज्ञान पहले तो नहीं था। सुनने को मिला तो सुनने से नया ज्ञान हुआ। उसका निषेध करते हैं। आहाहा! तेरे ज्ञान के परिणमन में पहले इस प्रकार का नहीं था और फिर इस प्रकार का हुआ, वह तेरे अभावभावशक्ति के कारण से निर्मलता की वृद्धि हुई। सुनने से वृद्धि हुई, ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब बात है।

मुमुक्षु : तो फिर सुनना किसलिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो विकल्प आता है तो आये बिना रहता नहीं। परन्तु विकल्प और सुनने का दोनों का अन्दर निषेध है। समझ में आया? क्या कहलाये? परमात्मप्रकाश, उसमें तो लिया है कि भगवान की दिव्यध्वनि से भी अपने को ज्ञान नहीं होता। आहाहा! अब उसका विरोध करते हैं। अर र! भगवान! परन्तु भाई! सुन तो सही।

यह परमात्मप्रकाश क्या पुकार करता है ? दिव्यध्वनि और मुनि के कहे हुए शास्त्रों से ज्ञान नहीं होता। आहाहा! तेरी पर्याय में जो ज्ञान नहीं, वह ज्ञान आता है, वह अभावभावशक्ति के कारण से आता है। आहाहा! ऐसी बात! लो, यह शक्ति बहुत चली, पौन घण्टे चली। अनन्त गुण में ऐसा लेना। अभावभावशक्ति ऐसे अनन्त गुण में लेना। जितने गुण हैं, उन सब में अभावभावशक्ति का रूप है। आहाहा!

अपने आत्मा के स्वरूप का लाभ होता है तो लाभान्तराय के क्षयोपशम में स्वरूप का लाभ होता है, ऐसा नहीं। आहाहा! पाँच आवरण है न ? लाभान्तराय, वीर्यान्तराय... आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि उस अन्तराय कर्म का नाश होता है, तो तेरे स्वरूप का लाभ होता है, ऐसा नहीं है। स्वरूप का अल्प लाभ है, उसमें विशेष लाभ होता है, वह अन्तराय में से लाभान्तराय गया, इसलिए नहीं, परन्तु तुझमें एक अभावभाव नाम का गुण है, इस कारण से अल्प अलाभ में विशेष लाभ होता है, वह अभावभाव के कारण से (होता है)। आहाहा! ऐसी बातें कहाँ हैं ?

(संवत्) १९९९ में एक भिण्डवाले आये थे, नहीं ? पण्डित नन्दलालजी। तुमने नहीं देखे। नन्दलालजी थे, आये थे। समयसार का बहुत वाँचन। ऐसा कि सम्यग्दर्शन होने के बाद गिरता ही नहीं। कहा, ऐसा नहीं है। वह अपेक्षा अलग है। गिर जाये तत्पश्चात् भी अन्दर सम्यग्दर्शन का रस रहता है, ऐसा कहते थे। कहा, ऐसा नहीं है। गिर जाये, उसका अर्थ द्रव्य में जो शक्तियाँ हैं, उस द्रव्य की प्रतीति चली जाये तो पड़ता है। द्रव्य की प्रतीति रहे और गिरे, ऐसा तीन काल में नहीं होता। समझ में आया ? आहाहा! लोगों को अपनी कल्पना से शास्त्र के अर्थ करना है और अपनी कल्पना से चलाना है। ऐसा नहीं चलता। यह तो तीन लोक के नाथ वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग है। यह गजब बात है, प्रभु!

तुझमें जितनी शक्तियाँ हैं; गुण कहो, शक्ति कहो, तो एक-एक गुण में इस अभावभावशक्ति का रूप पड़ा है। आहाहा! सामान्यगुण भी अनन्त हैं और विशेषगुण भी अनन्त हैं। आचार्यों ने सामान्यगुण छह लिये हैं, वह तो विशेष कथन नहीं किया जा सकता, इसलिए (लिये हैं)। बाकी ज्ञान, दर्शन, आनन्द, यह विशेषगुण हैं, वे भी अनन्त गुण आत्मा में हैं। और अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रदेशत्व ये भी अनन्त गुण आत्मा में हैं। ऐसे अनन्त गुण की संख्या जो सामान्य-विशेष, उसका वर्तमान में द्रव्य की दृष्टि में

स्वीकार होता है और जो निर्मल पर्याय होती है, उसमें विशेष निर्मलता का अभाव है, उस अभाव का भाव होगा ही। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! कहो, सुजानमलजी! ऐसी बातें हैं। आहाहा! अरे! प्रभु! वाद किसके साथ करना? इसमें वाद-विवाद किस प्रकार करना? आहाहा!

चिति, दर्शि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व। प्रभुत्व नाम की शक्ति है, उसमें भी अभावभाव नाम का रूप है। पर्याय में जो अल्प ईश्वरता प्रगट हुई है, उस प्रभुत्वशक्ति में अभावभाव के रूप के कारण अल्प प्रभुता में विशेष प्रभुता आयेगी ही। आहाहा! अल्प ईश्वर दशा जो सम्यग्दर्शन में प्रगट हुई और विशेष ईश्वरता का पर्याय में वर्तमान में अभाव है, तो विशेष में अभावभाव के कारण से अल्पता में विशेष प्रभुता की शक्ति की आयेगी ही। तेरी शक्ति के कारण से शक्ति आयेगी। ईश्वर अर्थात् सामर्थ्यपना। प्रभुता की पर्याय में जो अल्प प्रभुता है, उसमें विशेष प्रभुता का अभाव है, परन्तु अन्दर अभावभावशक्ति के कारण से विशेष प्रभुता भाव में आयेगी ही। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया?

स्वच्छत्वशक्ति, लो! स्वच्छत्व की अपेक्षा भी स्वसंवेदन लेते हैं। आत्मा में अपने में जो वेदन का अनुभव होता है, वह प्रकाशशक्ति के कारण से, उस गुण के कारण से (होता है)। स्वसंवेदन। स्व—अपना, सं—प्रत्यक्ष वेदन। तो चौथे गुणस्थान में जो स्वसंवेदन है, उसकी अपेक्षा मुनि को अथवा पाँचवें में स्वसंवेदन वृद्धि पाता है, वह कषाय के भाव का अभाव हुआ, इस कारण से नहीं। प्रकृति का अभाव हुआ, इस कारण से तो नहीं,... आहाहा! परन्तु अपने में मलिनता का अभाव हुआ, इसलिए शान्ति बढ़ गयी, स्वसंवेदन बढ़ा - ऐसा नहीं है। आहाहा! उस स्वसंवेदनशक्ति—प्रकाशशक्ति में भी अभावभाव का रूप पड़ा है तो स्वसंवेदन अल्प है, उसमें विशेष का अभाव है, वह विशेष स्वसंवेदन आयेगा ही। आहाहा! गजब बात करते हैं! पाटनीजी! यह तो मुख्य-मुख्य गुण की बात चलती है। बाकी तो (अनन्त गुण हैं)।

स्वसंवेदन। आहाहा! अपना—स्व, उसका वेदन। आनन्द का, शान्ति का, अनन्त गुण की व्यक्त पर्याय का वेदन। और चौथे गुणस्थान में भी सर्वगुणांश, वह समकित। जितनी संख्या में गुण हैं, उन प्रत्येक का व्यक्त अंश प्रगट होता है। परन्तु वह प्रगट होता है, उसमें विशेष व्यक्त पर्याय का अभाव है। तो अभाव होने पर भी अभावभावशक्ति के

कारण से विशेष भाव होगा ही, स्वसंवेदन विशेष होगा ही। आहाहा! कहो, बाबूभाई! ऐसी बातें, इतना सब स्पष्टीकरण पहला-पहला चलता है, हों! रामजीभाई कहे, पहले जो शक्ति का वर्णन किया है, उसे नहीं छपाना, अब नया यह होता है, इसे छपाना है। ऐसा कहा। अधिक स्पष्टीकरण हुआ न, इसलिए। आहाहा!

भगवान! तेरा निधान तो देख! तेरे निधान में एक अभावभाव नाम का गुण पड़ा है। इस कारण से पर्याय में अल्पता में विशेषता का अभाव है, वह विशेष होगा ही। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सब गुणों में ले लेना।

अकारणकार्यशक्ति में भी अभावभाव का रूप है। अकारणकार्यशक्ति है न? वह भी शक्ति—गुण है। उसमें भी अभावभाव नाम का रूप है। विशेष कारण अपना और कार्य अपना, इसमें (वर्तमान में) अपना अल्प कारण और कार्य है, वह विशेष अकारणकार्य होगा, वह अपनी अभावभावशक्ति के कारण से होगा। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ४७ में घटाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : ४७ में क्या, अनन्त में लगाना। समझ में आया? कहा उसमें लगाना, नहीं कहा, उसमें लगाना। धन्नालालजी! आहाहा! अहमदाबाद में माणेकचौक में जवाहरात का धन्धा है। उसी प्रकार इस माणेकचौक में—आत्मा के चौक में जवाहरात का धन्धा है। आहाहा! क्या कहा?

नहीं भवते हुए... हमारे पण्डितजी कहते हैं, यह शक्तियाँ कब पूरी होंगी? क्या खबर पड़े इसमें। क्योंकि अब इन्हें तीन दिन रहना है। यह ज्ञानचन्दजी एक-दो दिन रहनेवाले हैं। आज आये थे। जानेवाले हैं न? छिन्दवाड़ा जाते हैं। आहाहा! **नहीं भवते हुए...** उसका होना, उदय होना। आहाहा! जिसने द्रव्य का पता लिया... आहाहा! दृष्टि में द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई, उसकी पर्याय में कमी है, और विशेष का अभाव है तो भाव होगा ही। वह अपनी अभावभावशक्ति के कारण से। समझ में आया? आहाहा! गजब बात है! थोड़े शब्दों में बहुत गम्भीर भर दिया है। सन्तों की बलिहारी है। आहाहा! उन्हें सन्त कहा जाता है। आहाहा! जिसमें यथार्थ धारा निकले। आहाहा! विशेष कहेंगे, लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ३२, शक्ति- ३७ रविवार, (द्वितीय) श्रावण कृष्ण १३, दिनांक ११-०९-१९७७

समयसार, शक्ति का अधिकार है। प्रथम तो इसमें यह लिया है कि जिसे सम्यग्दर्शन होवे तो कैसे होता है? तो कहते हैं कि व्यवहार का जो विकल्प है, परन्तु उस ओर की रुचि छोड़कर, रुचि छोड़कर, वह शुभभाव चला नहीं जाता, शुभभाव तो जब शुद्धोपयोग पूर्ण होगा, तब शुभ जायेगा। समझ में आया? परन्तु शुभराग है, उसकी रुचि छोड़कर, यह भूल है, ऐसी रुचि छोड़कर। उसकी रुचि छोड़कर, इसका अर्थ वह भूल है। इसलिए उसकी रुचि छोड़कर। ज्ञायकभाव चिदानन्द अखण्ड आनन्दकन्द प्रभु की दृष्टि करना, रुचि करना और अनुभूति करना, वह जीव की प्रथम कार्यसिद्धि है। समझ में आया? आहाहा! व्यवहार है, इसलिए मिथ्यात्व है—ऐसा नहीं है। परन्तु व्यवहार में धर्म मानना, वह मिथ्यात्व है। तुम्हारे पुत्र ने प्रवचनसार का थोड़ा लिखा है, वह कल शाम को परमात्मप्रकाश लाया था। ठीक लिखा है। आज दोपहर में पढ़ा था। अच्छा लिखा है। शुभभाव छूट जाता है और एकदम शुद्ध हो जाता है, ऐसा नहीं, परन्तु शुभभाव की रुचि छूटकर स्वभाव का शुद्धोपयोग होता है, वह सम्यग्दर्शन है। शुभभाव तब छूटेगा कि जब पूर्ण वीतरागी शुद्धोपयोग होगा तब, परन्तु पहले रुचि में से छूटता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अशुभभाव तो हेय है ही। शुभ को छोड़कर अशुभ में जाना, यह बात कहीं नहीं है। यह पण्डितजी ने इसमें लिखा है। बारम्बार हम कहते हैं। शुभ छोड़कर अशुभ में जाना, यह प्रश्न नहीं। शुभभाव की रुचि छोड़कर शुद्ध आनन्दकन्द की दृष्टि करना, उसका अनुभव करना, इसके लिये शुभ को रुचि में से छोड़ना। समझ में आया? आश्रय करना छोड़ना। शुभभाव का आश्रय करना, यह छोड़ना। परन्तु त्रिकाली स्वरूप आश्रय करनेयोग्य है, उस ओर झुकने से शुभ का आश्रय छूट जाता है। आहाहा! ऐसी बात।

यह विचार क्यों विशेष आया? कि इन छहों बोलों में पर्याय ली है, भाई! पर्याय ली है। क्या कहा? देखो! पहला बोल है न? भाव। भावशक्ति है न? पहले इसे अन्तर में आत्मा का (आश्रय करना)। आहाहा! राग की रुचि छोड़कर भगवान आनन्दस्वरूप शुद्ध ज्ञानघन द्रव्य की दृष्टि करना, उसमें निर्विकल्प अनुभव होता है। समझ में आया? पश्चात् शुभराग तो आता है, परन्तु वह हेयबुद्धि से आता है। उसे छोड़कर अशुभ (भाव) करना,

ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! जब तक वीतरागता पूर्ण दशा न हो, तब तक पर्याय में शुद्ध की दृष्टि और अनुभव होने पर भी शुभभाव आता है। क्षायिक समकिती मुनि को भी शुभभाव आता है। क्षायिक समकिती मुनि होते हैं या नहीं? आहाहा!

श्रेणिक राजा क्षायिक समकित। आहाहा! तथापि शुभराग आया तो तीर्थंकरगोत्र बँध गया। भाव बन्ध का कारण है। भाव, शुभभाव पापबन्ध का कारण है, ऐसा भी नहीं है तथा अबन्ध का कारण है, ऐसा भी नहीं है। वह पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया? यहाँ तो प्रथम जिसकी दृष्टि राग और पर्याय के ऊपर है, उसे छुड़ाकर, प्रभु! तेरा निधान अन्तर्मुख देख, तेरा आत्मा पूर्णानन्द अन्दर स्थित है। बहिर्मुख देखने से तो तेरी पर्याय और राग लक्ष्य में आयेगा। अन्तर्मुख देखने से निधान चिदानन्द सच्चिदानन्द प्रभु, वह तेरी दृष्टि में दिखायी देगा। ऐसी दृष्टि हुई, सम्यग्दर्शन हुआ, पश्चात् इन छह शक्तियों का वर्णन लागू पड़ता है। समझ में आया? क्योंकि... देखो! पहली भावशक्ति ली है।

विद्यमान-अवस्थायुक्ततारूप भावशक्ति। पर्याय से बात ली है। है भावशक्ति? पहली शक्ति। **विद्यमान-अवस्थायुक्ततारूप भावशक्ति।** इसका अर्थ कि जहाँ अन्तर शुद्ध चैतन्यमूर्ति की दृष्टि, अनुभव हुआ तो उसकी भाव अर्थात् शुद्धपर्याय की ही विद्यमानता होती है। भावशक्ति के कारण से उस समय शुद्धपर्याय की ही विद्यमानता होती है। अशुद्धता तो है नहीं, रुचि में से छूट गयी इसलिए। है तो भी उसका जाननेवाला रहा। जानने की पर्याय अपने में है, परन्तु अशुद्धता अपने में है, यह बात तो छूट गयी। समझ में आया? क्या शब्द है? यह तो पर्याय के ऊपर लक्ष्य (गया)। भाई! पण्डितजी! छहों बोल में पर्याय भाषा ली है। है शक्ति, परन्तु पर्याय की प्रधानता से शक्ति का वर्णन किया है। अर्थात्...

मुमुक्षु : अवस्थायी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अवस्था होती है, अवस्था होती है। भावशक्ति के कारण से निर्मल अवस्था होती ही है। शक्ति तो ध्रुव है परन्तु उस शक्ति का कार्य विद्यमान एक निर्मल अवस्था होती ही है। समझ में आया? एक बोल।

दूसरा। **शून्य अवस्थायुक्ततारूप...** यह अभावशक्ति आयी। अभावशक्ति में भी अभावरूपी अवस्था सहित लेना है। राग का, पुण्य आदि के अभावस्वभावरूप, उसमें राग

की शून्यता है। ऐसे अभाव की पर्याय प्रगट होती है। अकेला अभाव, हों! उसकी रागरहित निर्मल पर्याय अभावरूप (प्रगट होती है)। अस्तिरूप से विद्यमान भावशक्ति में (आया)। और अभावशक्ति में राग के अभावरूपी परिणमन। यह राग का मलिनपनेरूप का परिणमन नहीं, ऐसी अवस्था होती है। ऐसी बातें। बापू!

पहले तो मार्ग की सूक्ष्मता बहुत है। आहाहा! पश्चात् यह रास्ता खुल जाता है। खजाना खुला, फिर अन्दर से किबाड़ खुल गये। राग की एकताबुद्धि छोड़कर त्रिकाली स्वभाव की एकताबुद्धि हुई तो खजाना खुल गया। राग की एकताबुद्धि में खजाने को ताला था। ताला कहते हैं? ताला लगा दिया। आहाहा! समझ में आया? राग की एकताबुद्धि छूट गयी, स्वभाव की एकताबुद्धि हुई तो चाबी से खजाना खुल गया। सम्यग्दर्शन की चाबी से खजाना खुल गया। आहाहा! उसमें भावशक्ति के कारण से निर्मल पर्याय विद्यमान है और मलिन पर्याय का शून्यपना है। समझ में आया? आहाहा! मलिन पर्याय वहाँ है, उसे यहाँ गिनने में आया नहीं। उसका अभाव गिनने में आया है। समझ में आया? अभाव में पर्याय ली है। भाव में पर्याय है, अभाव में पर्याय है। है?

तीसरी। **भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय के व्ययरूप भावाभावशक्ति।** है? वर्तमान निर्मल पर्याय जो विद्यमान है, भाव के कारण से, उसमें भावअभावशक्ति (अर्थात्) विद्यमान (पर्याय है), उसका अभाव हो जायेगा। क्योंकि एक समय की उसकी अवधि है। पर्याय की शुद्धता की विद्यमानता की एक समय की मर्यादा है। उस भाव का व्यय होकर अभाव हो जायेगा। पर्याय का भाव है, उसका अभाव हो जायेगा। यह भावअभावशक्ति के कारण से पर्याय ऐसी हुई। आहाहा! समझ में आया? फिर अभावभाव, यह आयी न?

नहीं भवते हुए (अप्रवर्तमान) पर्याय के उदयरूप अभावभावशक्ति। आहाहा! है? **पर्याय के व्ययरूप भावाभावशक्ति।** है? पश्चात् **नहीं भवते हुए पर्याय के उदयरूप...** वर्तमान में नहीं है परन्तु भविष्य की पर्याय प्रगट होगी ही, ऐसा अभावभावशक्ति का कार्य है। समझ में आया? वर्तमान में अभाव है परन्तु अभावभावशक्ति के कारण से भाव है, उसका अभाव हो जायेगा और जो अभावरूप है, उसका भाव हो जायेगा। बाद की निर्मल पर्याय का वर्तमान में अभाव है, उसका भाव होगा। और निर्मल पर्याय है, उसका अभाव हो जायेगा। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! है? उदयरूप कहा न?

भवत्पर्यायभवनरूपा भावभावशक्तिः।३७।

भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय के भवनरूप भावभावशक्ति।३७।

भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय के भवनरूप... अब आज भावभावशक्ति। किस प्रकार ली? **भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय के भवनरूप भावभावशक्ति।** वर्तमान ज्ञान की पर्याय भवनरूप है, ऐसी की ऐसी ज्ञानरूप पर्याय भवनरूप होगी, वह भाव है, वैसा ही भाव रहेगा। पर्याय में जो ज्ञानभाव, द्रव्य और गुण में जो ज्ञानभाव है, इस कारण से भी भावभावशक्ति गिनने में आती है और वर्तमान पर्याय जो भाव है, ऐसी की ऐसी उस जाति की ज्ञान की पर्याय ज्ञान की रहेगी, दर्शन की दर्शन की रहेगी, चारित्र की चारित्र की रहेगी। पश्चात् भविष्य में, हों! यह भावभावशक्ति। समझ में आया? आहाहा!

फिर से, क्या कहा? देखो! **भवते हुए...** है? यह तो अकेले मन्त्र हैं, भाई! यह कहीं कथा वार्ता नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा में एक शक्ति ऐसी है कि भावभाव। अभावभाव की बात तो चल गयी। भावभाव नाम की एक शक्ति है, तो उस शक्ति में कार्य क्या हुआ? कि जो ज्ञान विशेषरूप से सभी पदार्थ को जानता था, ऐसी ही पर्याय फिर होगी। भले वह नहीं परन्तु ऐसी की ऐसी ज्ञानपर्याय होगी, यह भावभाव है। आहाहा!

फिर से, पक्का होना चाहिए न! जो आत्मा ज्ञानभावरूप द्रव्य में और गुण में है, तो वह भावरूप है, वह द्रव्य में भाव है, गुण में भाव है। इस कारण से भावभावशक्ति कही गयी है। दूसरी बात, जो ज्ञान की पर्याय वर्तमान में है, वैसी की वैसी दूसरे समय में भी ज्ञान की भी जाति रहेगी। ज्ञान की जाति।

मुमुक्षु : पर्याय बदल जायेगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु रहेगी ज्ञान की जाति। समझ में आया? आहाहा! गजब काम किया है न! आहाहा!

भवते हुए पर्याय के... पर्याय की भाषा है, हों! वर्तमान ज्ञान की पर्याय, सम्यग्ज्ञान की, हों! यह बात चलती है। मति-श्रुत आदि की जो ज्ञान पर्याय है, तो भावभावशक्ति के कारण से ऐसा का ऐसा भाव... भाव... भाव... निर्मल ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान

रहेगा। द्रव्य–गुण में तो रहेगा ही; ज्ञान द्रव्य और गुण में तो भाव... भाव... भाव... भाव... वह ज्ञान... वह ज्ञान... वह ज्ञान... वह ज्ञान... गुण में ज्ञान। ज्ञान, द्रव्य में ज्ञान... ज्ञान तो रहेगा परन्तु पर्याय में भी जो ज्ञान की सम्यक् पर्याय हुई है, उसी जाति की फिर ज्ञान की पर्याय रहेगी। वह भावभावशक्ति का कार्य है। आहाहा! सूक्ष्म है। तुम बहुत वर्ष में आये हो न! आहाहा! धीमे से कहते हैं, बापू! यह तो विचार करके ख्याल में लेने की वस्तु है। समझे? इसके भाव का भासन होना चाहिए कि यह क्या है? भाषा भाषा में रही।

भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय के... ज्ञान की प्रवर्तमान पर्याय के **भवनरूप...** ऐसी की ऐसी दूसरे समय, तीसरे समय ज्ञान की पर्याय होगी। द्रव्य–गुण में तो भावभाव, भावभाव ध्रुवरूप से है ही परन्तु पर्याय में जो ज्ञान की जाति है, वह जाति ही दूसरे समय में रहेगी। ऐसे दर्शन की पर्याय समकित की है, वह वर्तमान पर्याय है, ऐसी समकित पर्याय समकित पर्यायरूप रहेगी। चारित्र की पर्याय है, वह द्रव्य–गुण में तो चारित्र त्रिकाल है, वह है, द्रव्य–गुण में तो ध्रुवरूप है। भावभाव। द्रव्य में भाव और गुण में भाव। इस प्रकार से भी भावभावशक्ति है परन्तु पर्याय में भी उस जाति की पर्याय बाद में भी रहेगी। समझ में आया? आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात। तत्त्व को समझे नहीं और पहिचाने नहीं और उसे धर्म हो जाये...! समझ में आया? तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेन्द्र... आहाहा!

मुमुक्षु : तिर्यंच को कहाँ यह सब समझ में आता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : तिर्यंच को भाव में भासन हो जाता है। नाम नहीं आते। समझ में आया? कि मेरी जो ज्ञान की जाति की वर्तमान पर्याय वर्तती है, ऐसी की ऐसी ज्ञान की पर्याय होगी, ऐसा भावभासन है। शब्द याद न हो। आहाहा! भाई! आता है, नहीं? कैसा? शिवभूति। शिवभूति मुनि को गुरु ने कहा—मारुष, मातुष। किसी के प्रति द्वेष नहीं और किसी के प्रति राग नहीं। तुष का अर्थ वीतरागभावरूप रहे, ऐसा कहा। परन्तु वह मारुष और मातुष भी याद नहीं रहा। परन्तु एक महिला ने उड़द की दाल उफानती थी तो छिलके और दाल अलग करती थी। दूसरी बहिन कहती है, क्या करती हो? बहिन! क्या करती हो? तुष–माष भिन्न करती हूँ। यह तुष–माष शब्द सुना तो राग तुष है और स्वभाव अन्दर से भिन्न दाल है। हमारे यहाँ धुली दाल कहते हैं, तुम्हारे में क्या कहते हैं? उड़द की सफेद दाल होती है न? हमारे छड़ी (धुली) दाल कहते हैं। आहाहा! यह शब्द सुना वहाँ, अन्दर

से रागादि विकल्प तो तुष है और मेरी ज्ञानशक्ति जो अखण्ड आनन्दकन्द प्रभु है, उसकी अन्दर दृष्टि हुई और स्थिर हुए तो केवलज्ञान हो गया। आहाहा! सच्चे मुनि तो थे, हों!

मुमुक्षु : बहुत सस्ता हो जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : सस्ता ही है सौदा। अपने घर की वस्तु है, उसमें जाना है। परघर को अपना करना हो, परमाणु को अपना करना हो तो तीन काल में नहीं बन सकता। भगवान आत्मा को एक परमाणु को अपना करना हो तो तीन काल में नहीं बनता। समझ में आया? अरे! राग को भी अपने स्वभाव में एक करना हो तो वह भी तीन काल में नहीं बनता। क्योंकि राग और स्वभाव यह तो भिन्न वस्तु है। दोनों के बीच में सांध है। परन्तु अपने में और अपने में करना, वह तो अन्तर की चीज़ है। आहाहा! समझ में आया?

श्रीमद् भी एक जगह एक पत्र में कहते हैं—सत् सरल है, सत् सर्वत्र है। समझ में आया? सत् सरल है, सत् सर्वत्र है, ऐसा लिखा है। एक पत्र में लिखा है। सरल अर्थात् वस्तु तो सत् है। आहाहा! उसकी स्वीकृति में लेना कि मैं सत् हूँ, ऐसी स्वीकृति आयी नहीं। उसके ज्ञान में वह वस्तु आये बिना, यह स्वीकृति आयी नहीं। समझ में आया? आहाहा! ज्ञान की वर्तमान पर्याय में सत् त्रिकाली भगवान ज्ञेयरूप होकर जहाँ ज्ञान हुआ तो उस ज्ञान की पर्याय में सत् त्रिकाली आता नहीं परन्तु त्रिकाली सम्बन्धी की ताकत जितनी है, उस सम्बन्धी का ज्ञान पर्याय में आता है।

यहाँ कहते हैं कि वह ज्ञानपर्याय भावरूप है, वही भावरूप ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान बाद में भी रहेगा। उस ज्ञान का कभी अज्ञान हो जाये या ज्ञान की पर्याय श्रद्धारूप हो जाये या श्रद्धा की पर्याय ज्ञानरूप हो जाये, (ऐसा नहीं बनेगा)। ऐसी बात है। ओहोहो! आचार्य ने तो संक्षित इतने शब्द... आहाहा! कितने? **भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय के भवनरूप**... वर्तती पर्याय के। पश्चात् भी होनेरूप। आहाहा! उसमें करना नहीं पड़ता। वस्तु की दृष्टि हुई तो उसमें भावभाव नाम की शक्ति है तो जो ज्ञान की जाति है, वह ज्ञान की जाति ही ज्ञान... ज्ञान... भाव... भाव... भाव... ज्ञानभाव... ज्ञानभाव... ज्ञानभाव रहेगा। समकित की पर्याय, श्रद्धा की पर्याय... श्रद्धा की पर्याय... श्रद्धा की पर्याय... श्रद्धा की पर्याय... भावभाव रहेगी। चारित्र की पर्याय है, वह चारित्र की पर्याय भी चारित्ररूप शान्तिरूप से, स्थिरतारूप (रहेगी)। शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... वह भावभाव रहेगी।

आनन्दरूपी पर्याय है, वह द्रव्य-गुण में तो त्रिकाल रहती है। परन्तु यह आनन्द की पर्याय है वह दूसरे समय भी आनन्द रहेगा। वह आनन्द की जाति प्रगट होकर दुःखरूप हो जाये, ऐसा नहीं है। आनन्द की पर्याय पलटकर श्रद्धारूप हो जाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब किया है न! आहाहा! क्या कहते हैं?

भगवन्त! तेरी वस्तु का यदि तुझे पता लग गया, अनुभव-सम्यग्दर्शन हुआ तो फिर सम्यग्दर्शन की जो श्रद्धारूप पर्याय है तो वह भविष्य में श्रद्धारूप... श्रद्धारूप... श्रद्धारूप... भावभावरूप रहेगी। वह श्रद्धा की पर्याय बदलकर आनन्दरूप हो जाये या श्रद्धारूप पर्याय बदलकर ज्ञानरूप हो जाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? समझ में आया, ऐसा कहते हैं न? ख्याल में, ख्याल में—ज्ञान में भाव इस प्रकार से है, ऐसा अन्दर आना चाहिए न! ऐसा का ऐसा रट ले... गोखे को क्या कहते हैं? रट लेता है। उसमें क्या है? आहाहा!

जैसे अनन्त गुण में भाव पड़ा है और एक गुण में अनन्त गुण का भाव आया है। आहाहा! भावशक्ति के कारण से भावशक्ति का रूप अनन्त गुण में और अनन्त पर्याय में है। समझ में आया? एक गुण में अनन्त गुण का भाव है और अनन्त गुण में एक भाव का भाव है। आहाहा! समझ में आया? और जो अस्तित्वगुण है, उसकी वर्तमान पर्याय अस्तिरूप है, वह भविष्य में भी अस्तिरूप... अस्तिरूप... अस्तिरूप... रहेगी। यह भावभाव है। और वस्तुत्वगुण है, वह सामान्य-विशेष जानने की वस्तु है, वह उस सामान्य-विशेषरूप से पर्याय जानती है, वही सामान्य-विशेषरूप से पर्याय रहेगी। भविष्य में भी वह भाव... भाव... भाव... भाव रहेगा। समझ में आया? आहाहा! और प्रमेयत्वगुण है, उसमें भी भावभावशक्ति है। प्रमेयत्व। तो प्रमेयत्व की पर्याय वर्तमान जो प्रमेयत्व की पर्याय विद्यमान है, ऐसी ही भविष्य में प्रमेयत्व की पर्याय प्रमेयत्वरूप से रहेगी। यह भावभावशक्ति का कार्य है। ऐसा है, ज्ञानचन्दजी! अरे! भगवान! तेरी चीज़ तो बड़ी है। उसे पहले जानना तो चाहिए न! विशेष बुद्धि न हो तो भी संक्षेप में उसका भान तो होना चाहिए न? आहाहा!

भवते हुए पर्याय के... भाषा पर्याय ली है, हों! वर्णन करना है शक्ति। शक्ति अर्थात् त्रिकाली गुण परन्तु उस गुण का भाव वर्तमान में जो वर्तता है, वही भाव भविष्य में ऐसा का ऐसा रहेगा। ऐसा का ऐसा भाव रहेगा। ज्ञान का ज्ञानरूप भाव, दर्शन का

दर्शनरूप भाव, चारित्र का चारित्ररूप भाव, आनन्द का आनन्दरूप, ऐसे अनन्त गुण की पर्याय, जो-जो गुण की है, उसी गुणरूप भविष्य में भी रहेगी। आहाहा! कितने भेद कर डाले हैं! समझ में आया?

भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय के भवनरूप... उस पर्याय के भवनरूप। ऐसी की ऐसी पर्याय भवनरूप। भविष्य में भी ऐसी की ऐसी पर्याय भवनरूप। होनेरूप, है— ऐसी पर्याय भवनरूप। ऐसी होनेयोग्य है, इसका नाम भावभावशक्ति कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? वेदान्त में तो पर्याय को माना ही नहीं। ऐई! यहाँ तो छहों शब्द में पर्याय आयी है। यह वस्तु का स्वरूप स्पष्ट करते हैं। वेदान्त ने पर्याय को माना ही नहीं। यह तो आत्मा आनन्दस्वरूप अखण्ड अभेद एकरूप सर्व व्यापक, बस! उसकी तो पर्याय की भी उसे खबर नहीं। खबर करनेवाली तो पर्याय है। मैं अखण्ड अभेद सर्व व्यापक हूँ, ऐसा निर्णय तो पर्याय में है। द्रव्य-गुण में कुछ निर्णय नहीं है। पर्याय मानी नहीं, उसका निर्णय भी खोटा है, और उसका विषय भी ऐसा व्यापक द्रव्य है, वह भी खोटा है। समझ में आया? आहाहा! कितनों को ऐसा लगता है कि यह समयसार की शैली वेदान्त की होती है, ऐसा कहते हैं।

मुम्बई में एक नाथूराम थे। नाथूराम प्रेमी.... वे ऐसा कहते थे कि समयसार को कुन्दकुन्दाचार्य ने वेदान्त के ढाले में ढाला है। अरे! भगवान! नाथूराम थे। 'प्रेमी' थे, वे तो गुजर गये। वे कहे, समयसार वेदान्त के ढाले में ढाला है। अरे! प्रभु! वेदान्त के ढाले में ढाला (कहते हो तो) वेदान्त में पर्याय है? आहाहा! तुझे खबर नहीं, भगवान! समयसार तो आत्मा का स्वरूप है, ऐसे ढाले में ढाला है। समझ में आया? निश्चय की बात, शुद्ध की बात आवे, अखण्ड अभेद आनन्दकन्द (आवे, इसलिए) वे मानो वेदान्त के साथ मिलती है। परन्तु कहा था न?

यहाँ एक आये थे। दीक्षा ली थी। मोतीलाल नाम से एक थे। पहले हमारे व्याख्यान में आते थे। (संवत्) १९८९-९० के वर्ष। राजकोट में। वैष्णव थे और रेल के ऊपरी (अधिकारी) थे। ६००-७०० का वेतन था। उस समय की बात है, हों! फिर दीक्षा ले ली। परमहंस हो गये। फिर हमारे पास आये। वेदान्त की श्रद्धा थी। कहा, देखो! तुम ऐसा कहते हो कि आत्मा सर्वव्यापक एक ही है तो सर्वव्यापक एक है, इसका निर्णय किसने

किया ? एक बात। दूसरी बात यह कि यदि अन्दर भूल न हो तो उपदेश किसलिए दिया ? सर्व दु:ख से मुक्त होना। भूल है, वह तो पर्याय है। समझ में आया ? भूल पर्याय है, उसका नाश करना, वह भी पर्याय है। द्रव्य-गुण का नाश तो होता नहीं। समझ में आया ? रतनचन्दजी ! आहाहा ! हमारे प्रति प्रेम था परन्तु वैष्णव थे... व्याख्यान सुनते थे। राजकोट में संवत् १९८९ के वर्ष में तीन-तीन हजार लोग ! बहुत लोग आते थे। १९८९। कितने वर्ष हुए ? ४४। तुम्हारे जन्म से पहले। ४१ चलता है ? तीन-तीन हजार लोग। ... पहले तो मोटर जम जाये। बड़े गृहस्थ की, डॉक्टरों की... व्याख्यान सुनने। उसमें कोई वेदान्तवाले भी आते होंगे। वहाँ बात तो ऐसी हुई कि इस आत्मा में पर्याय है या नहीं ? यदि पर्याय न हो तो निर्णय करना है कि यह ऐसा नहीं है, अनेक नहीं और एकरूप है। यह निर्णय किसने किया ? द्रव्य-गुण ने किया ? द्रव्य-गुण तो ध्रुव है। समझ में आया ? और द्रव्य-गुण का स्वीकार भी पर्याय में होता है या द्रव्य-गुण में होता है ? आहाहा ! ऐई ! यह रहे वैष्णव। शशीभाई वैष्णव थे न ? भावनगर।

भाई ! पर्याय... पर्याय... श्रीमद् ने कहा, वेदान्त ने पर्याय मानी नहीं, वह निश्चयाभासी मिथ्यादृष्टि है। श्रीमद् में आता है। यह शब्द है, हों ! यहाँ तो छहों बोल में पर्याय उठायी है। आहाहा ! क्योंकि कार्य तो पर्याय में होता है। द्रव्य-गुण में तो कार्य (है नहीं), वह तो त्रिकाली शक्ति है। कार्य है और कार्य का पलटा होता है, भूल थी और भूल का नाश किया, यह सब पर्याय में होता है। व्यय का अभाव होकर उत्पाद होता है, यह तो पर्याय में है। भाव की पर्याय विद्यमान परन्तु पर्याय में है। भाव का अभाव, वर्तमान पर्याय का व्यय होकर अभाव हो जायेगा, यह भी पर्याय में है। अभाव का भाव है, समझ में आया ? वर्तमान में अभाव है, वह भाव होगा, यह भी पर्याय में है। भाव, अभाव, भावअभाव, अभावभाव, ये चार बोल तो चल गये हैं। आज तो पाँचवाँ बोल चलता है।

भावभाव तो शब्द लिया है, पर्याय। देखो ! **भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय के भवनरूप...** आहाहा ! अनन्त गुण जो भगवान आत्मा में हैं, जिस जाति के गुण हैं, उस जाति की पर्याय उस समय और बाद में भी वह भावभाव वही जाति रहेगी। वह जाति पलट जायेगी, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? भावभाव का एक अर्थ तो यह है कि द्रव्य में भाव है, वही गुण में भाव है, गुण में भाव है, वही द्रव्य में भाव है। तो

वह भावभाव हुआ। यहाँ भावभाव अर्थात् वर्तमान पर्याय है, उसका व्यय होकर ऐसी की ऐसी पर्याय होगी। भवनरूप ऐसी की ऐसी। ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... समकित... समकित... समकित... समकित... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... स्वच्छता... स्वच्छता... स्वच्छता... स्वच्छता... स्वच्छता... (रहेगी)। समझ में आया? धन्नालालजी! यह सर्राफा यह बाजार है। आहाहा! यह तो परमात्मा त्रिलोकनाथ का बाजार है, बापू! यह तो कॉलेज है। परमात्मा ने कही हुई कॉलेज है, तो कितनी ही तैयारी तो इसकी होनी चाहिए, पश्चात् इसे यह समझ में आये। आहाहा!

भवते हुए पर्याय के... जिस गुण की जो पर्याय जिस जाति की है, ऐसी की ऐसी जाति की भविष्य में जो अनन्त गुण हैं, उन-उन गुण की उसीरूप से गुण की पर्याय रहेगी। आहाहा! जिस जाति की पर्याय है, वह दूसरी जाति की पर्याय हो जाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! ज्ञान की पर्याय है, वह श्रद्धारूपी पर्याय हो जाये और श्रद्धा की पर्याय है, वह ज्ञानरूपी पर्याय भविष्य में हो जाये, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

उसमें यह लिया है न? उपादान-निमित्त... नहीं? मोक्षमार्गप्रकाशक। शुभभाव में शुद्ध का अंश है। लिया है? शुभभाव में शुद्ध का अंश है। सुनो! क्या कहना है? शुभभाव में शुद्ध का अंश न हो तो ज्ञान की पर्याय ज्ञान से निर्मल होगी परन्तु यह अशुद्ध ही पर्याय है तो अशुद्धता में से शुद्धता की पर्याय कहाँ से आयेगी? क्या कहा? यदि अंश न हो तो, ज्ञान निर्मल हुआ वह तो ज्ञान के कारण से हुआ। ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान, परन्तु अब चारित्र की पर्याय निर्मल हुई तो ज्ञान की पर्याय निर्मल हुई तो चारित्र की पर्याय निर्मल हुई? शुभभाव में भी शुद्धता का अंश है, परन्तु वह अंश कार्य कब करे? ग्रन्थिभेद हो तब। है इसमें? समझ में आया? उसका कारण है। जो ज्ञान की पर्याय ज्ञानरूप रहेगी, आनन्द की पर्याय आनन्दरूप रहेगी। ऐसे यथाख्यातचारित्र की पर्याय भी वर्तमान जो अंश शुद्ध है, वह शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध स्थिरता की पर्याय चारित्र में ऐसी की ऐसी रहेगी। समझ में आया? अशुद्ध है, वह शुद्ध होगी, ऐसा नहीं है। क्या कहा, समझ में आया?

एक गुण की अपनी पर्याय में पूर्णता हुई तो दूसरे गुण की पूर्णता का कारण कौन? ज्ञान पूर्ण हुआ इसलिए? समझ में आया? उसमें बहुत सरस दृष्टान्त दिया है। आहाहा! अन्दर में शुभभाव के अंश में भी शुद्धता का अंश है। वह शुद्धता बढ़ती... शुद्ध है... शुद्ध

है... शुद्ध है... ग्रन्थिभेद होने के पश्चात्, पश्चात् शुद्ध है, शुद्ध है, शुद्ध है, तो भविष्य में शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... होकर चारित्र की शुद्धता हो जायेगी। वह चारित्र की शुद्धता बढ़कर शुद्धता हुई। उस जाति की शुद्धता है तो उस जाति का परिणमन होगा। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञान पूर्ण हुआ और शुद्धता बिल्कुल न हो और भविष्य में पूर्ण हो, वह जाति कहाँ से रहेगी? समझ में आया? आहाहा! शुभ में शुद्धता का अंश है तो वह अंश यथाख्यात का अंकुर है। यथाख्यातचारित्र का अंकुर है। परन्तु वह अंकुर कब कार्य करे? जब पूर्णानन्द के नाथ का अनुभवदशा प्रतीति में आया, तब वह कार्य करे। और वह ज्ञान जैसे अपनी पर्याय से निर्मल... निर्मल... निर्मल... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान (रहता है)। वैसे शुद्धता का चारित्र अंश भी शुद्धता... शुद्धता... शुद्धता... शुद्धता... भावभाव रहेगा। आहाहा! बनारसीदास ने ऐसा निकाला है। आहाहा! उस समय के पण्डितों ने भी कहाँ से निकाला है, देखो न! शुभ में शुद्धता का अंश कहाँ से निकाला? पाठ में कहीं नहीं है, परन्तु न्याय से निकाला है कि यदि शुभ में शुद्धता का अंश न हो तो अशुद्धता बढ़कर यथाख्यातचारित्र की पर्याय होगी? समझ में आया? उसकी जाति जो निर्मल पर्याय न हो तो वह जाति... वह जाति... वह जाति... वह जाति कहाँ से रहेगी? पाटनीजी! आहाहा! बनारसीदास। उनको कहते हैं कि भाँग पीकर अध्यात्म कहा है, (ऐसा लोग कहते हैं)। अरे! प्रभु! क्या करता है? भाई! सत्य की शरण में जाना चाहिए। भगवान! तू परमात्मा और तू ऐसी आड़ में कैसे पड़ा है? आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं, जो भाव चारित्र की शुद्धता का अंश है, वह शुद्ध... शुद... शुद्ध वह भाव... भाव... भाव रहेगा। वह शुद्ध भावभाव रहेगा। समझ में आया? आहाहा! बहुत समेटा का है। आचार्यों ने तो इतना समेटा है कि पार नहीं।

मुमुक्षु : आपने कहाँ से निकाला?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो इसमें है। है या नहीं? देखो न! न्याय से है। यदि चारित्र का शुद्धता का अंश न हो तो शुद्धता वह जाति... वह जाति... वह जाति... भावभाव कहाँ से रहेगा? आहाहा! पण्डितजी! हमारे पण्डितजी हैं। गजब काम किया है तुमने भी, हों! भले समकिती गृहस्थाश्रम में हो। सम्यग्दर्शन में सिद्ध का सम्यग्दर्शन और तिर्यंच के

सम्यग्दर्शन में कोई अन्तर नहीं है।

यहाँ कहते हैं कि जो निर्मल पर्याय हुई, चारित्र की पर्याय निर्मल है। स्वरूपाचरण। वह स्वरूपाचरणचारित्र का भाव है, वही भाव बाद में भी वह भाव रहेगा। स्थिरता... स्थिरता... स्थिरता... यह भावभाव है। आहाहा! शशीभाई! जरा कठिन पड़े परन्तु मार्ग तो ऐसा है। अन्दर से आवे, उसका करना क्या? यह कहीं रटकर तैयार रखा है? आहाहा! गजब बात की है, हों! यदि चरित्र की पर्याय का अंश निर्मल वर्तमान में चौथे में न हो तो वह भाव... भाव... भाव... भाव... भाव... भाव उसमें लागू नहीं पड़ता। समझ में आया? आहाहा! जो शुद्धता चारित्र का अंश है, भवति पर्याय वर्तमान है, उसका भवन। बाद में भी वह जाति ऐसी ही रहेगी। वह जाति कहीं ज्ञान में मिल जाये, (ऐसा नहीं है)। चारित्र की पर्याय ज्ञान में मिल जाये, आनन्द में मिल जाये—ऐसा नहीं है। आहाहा!

सम्प्रदाय में हमारे गुरुभाई थे, वे ऐसा कहते थे, कुछ खबर नहीं, इसलिए ऐसा कहते थे कि अपने यह व्रत और चारित्र जो पालन करते हैं, वह व्रत और चारित्र बाहर के, उनका फल अकेला ज्ञान और दर्शन सिद्ध में रह जायेगा। सम्यग्दर्शन बिना का भी... वे तो कहते थे कि अपने को सम्यग्दर्शन तो है ही। गौतम की श्रद्धा अपने को मिली है, स्थानकवासी में ऐसा कहते हैं। अहिंसा की... परन्तु अहिंसा किसे कहे? भाई! राग की अनुत्पत्ति—उत्पत्ति न होना, इसका नाम अहिंसा है। पर की दया का रागभाव, वह तो हिंसा है। आहाहा! पर की दया अहिंसा और वह अहिंसा अपने को मिली है तो अपनी श्रद्धा बराबर यथार्थ है। आहाहा! ऐसा कहते थे। और हम यह व्रत और नियम पालते हैं, इसका फल फिर क्या रहेगा? ज्ञान और दर्शन दो रहेंगे। फिर उसमें चारित्र नहीं रहेगा।

अभी कैलाशचन्दजी का यह भी प्रश्न आया था। जैनसन्देश में तीन-चार वर्ष पहले आया था। सिद्ध में चारित्र नहीं है। संयम नहीं, वह अलग बात है। चारित्र नहीं (ऐसा कहते हैं)। चारित्र तो यहाँ हुआ वह चारित्र... चारित्र... चारित्र... भावभाव तो कायम सिद्ध में रहेगा। समझ में आया? खबर है? याद है कुछ? जैनसन्देश में आया था, बहुत वर्ष पहले आया था। सामने चर्चा हुई थी। बहुत वर्ष हो गये। हमें तो कल जैसा लगता है। वे कहे, चारित्र सिद्ध में नहीं। यहाँ कहते हैं कि यदि चारित्र सिद्ध में नहीं तो यहाँ भी चारित्र नहीं। यहाँ चारित्र नहीं तो सिद्ध में चारित्र कहाँ से आया? चारित्र यहाँ है, वीतरागी, वीतराग

पर्याय है, चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण का अंश है, छठवें में चारित्र का अंश निर्मल वीतरागदशा है, वह वीतरागदशा चारित्र है, वह भावभाव, भावभाव। वह वीतराग... वीतराग... वीतराग पर्यायरूप रहेगी। समझ में आया? यह तो अन्दर से आवे तत्प्रमाण हो, उसमें दूसरा क्या हो? यह कहीं रटा नहीं था। आहाहा! सूक्ष्म पड़े परन्तु इसे जानना चाहिए। आहाहा!

भवते हुए पर्याय के... आपने यहाँ चारित्र की पर्याय ली, हों! चारित्र की पर्याय भवती वर्तमान है तो वह चारित्र चारित्ररूप भाव... भाव... भाव... उस जाति का भावभाव कायम रहेगा। सिद्ध में भी वह चारित्र पर्याय रहेगी। समझ में आया? संयम करना या इन्द्रियों से दमन करना, अव्रत का त्याग, यह आता है न? बारह प्रकार से संयम, वह दूसरी वस्तु है। चारित्र नाम का तो अपना अन्दर में गुण है। आत्मा में जैसे ज्ञानगुण है, दर्शनगुण है, आनन्दगुण है, वैसे चारित्रगुण है। अकषायभाव चारित्रगुण है। उसकी परिणति में भी पर्याय में स्थिरतारूप वीतराग पर्याय आती है। और वह वीतराग पर्याय भी भाव... भाव... भाव... भाव... भाव... भाव... वह वीतराग पर्यायरूप भाव... भाव... भाव... कायम रहेगा। ऐसा है। सेठ! यह कभी सुना नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग यह है न, भगवान! तुम्हारा तो नाम भी 'भगवान' है। भाव से भगवान हो जाना। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान की पर्याय, पर्याय में न हो तो भाव... भाव... भाव... भाव... कहाँ से रहेगा? समझ में आया? चौथे गुणस्थान में भी प्रभुता की पर्याय है, वह भगवान की पर्याय है। वह प्रभुता की पर्याय है, वह प्रभुता... प्रभुता... प्रभुता... प्रभुता की जाति ही रहेगी। आहाहा! गजब बात है। अरे! ऐसी बात कहाँ है? बापू! दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त यह बात कहीं नहीं है। दूसरों को दु:ख लगे परन्तु क्या करे? भाई! समझ में आया? यह सन्त भी दिगम्बर सन्त अर्थात् नग्नपना, यह नहीं। अन्दर सम्यग्दर्शन, ज्ञान और वीतरागी पर्याय, वह साधुपना है। और वह वीतरागी पर्याय छठवें में प्रगट हुई... आहाहा! पहले स्वरूप की स्थिरता भाव था, वह भाव... भाव... होकर वृद्धिगत हुआ। वह वृद्धि हुआ, वह भाव छठवें गुणस्थान में भी चारित्रपर्याय है ही, पश्चात् चारित्र... चारित्र...

चारित्र... चारित्र... वीतरागभाव... वीतरागभाव रहेगा, वह भावभाव का कार्य है। शशीभाई! आहाहा! देखो तो सही! सत्य के खजाने में जिस जाति की जाति है, वह जाति ही भविष्य में रहेगी, ऐसा कहते हैं। गुण में तो रहेगी, वह अलग बात, गुण में तो चारित्र है, वह चारित्र रहेगा, श्रद्धा वह श्रद्धा रहेगी, त्रिकाली, हों! आनन्द आनन्द रहेगा। वह तो द्रव्य और गुण में रहता है, वह भी भावभावशक्ति का एक कार्य है। परन्तु यहाँ तो पर्याय में भी जो भाव वर्तमान है, वही जाति भविष्य में रहेगी, इसका नाम भावभावशक्ति कहा जाता है। ज्ञानचन्दजी! आहाहा! पहले इतना स्पष्टीकरण नहीं किया था। इतना स्पष्टीकरण आज हुआ है। रामजीभाई कहे, कक्षा में तो शक्ति पढ़ना। लोग अलग-अलग (गाँव से) आते हैं। यह शक्ति आयी। आज तो शक्ति चालू होने को बत्तीस दिन हुए। तुम्हारे दो दिन बाकी रहे। कल और परसों का दिन। बीस दिन वे और बारह दिन यह। बत्तीस हुए और बत्तीस में अभी ३७ शक्तियाँ हुईं। अभी दस शक्तियाँ बाकी हैं, ऐई! पण्डितजी!

मुमुक्षु : पाँच अधिक हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँच अधिक हुई परन्तु किसी भी में विशेष (स्पष्टीकरण) न आया हो। यहाँ तो एक-एक भाव और एक-एक भाव में घण्टे के घण्टे जाये तो भी कम हो, ऐसा नहीं है। ऐसी वस्तु है। आहाहा! पूरा भण्डार भरा है। कहते हैं कि, चाँदी की पर्याय है, वह तो चाँदी की पर्याय चाँदीरूप ही रहेगी। वह लोहेरूप हो, ऐसा नहीं होगा। आहाहा! यह दृष्टान्त कहा। उसमें तो लोहारूप हो जायेगा। चाँदी के परमाणु लोहे रूप... लोहा समझे? लोहा। वह पर्याय होगी। यह नहीं होगा। आहाहा! यहाँ तो भगवान आत्मा चिदानन्दस्वरूप की दृष्टि हुई, सम्यग्दर्शन हुआ तो जो सम्यग्दर्शन की पर्याय है, भले क्षयोपशम में क्षायिक हो परन्तु जाति तो वह है। वह भावभाव है। समझ में आया? क्षयोपशम में से क्षायिक हो, पहले कहा था कि अभावभाव कि क्षयोपशम में क्षायिकभाव का अभाव है तो अभावभाव हो जायेगा, अभाव है, उसमें भाव आ जायेगा। अब यहाँ तो कहते हैं कि क्षयोपशम समकित है, वह पर्याय भाव है, और वही पर्याय भाव... भाव... भाव (रहकर) क्षायिक के समय भी भाव तो समकित का ही भाव है। समझ में आया? वह अपने भावभाव के कारण से वह भावभाव रही है। वीतराग मिले और श्रुतकेवली मिले, इसलिए भावभाव की क्षायिक समकित पर्याय हुई, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दर्शन की पर्याय है, वह भाव है। फिर भले क्षयोपशम हो, वह कुछ प्रश्न नहीं। अब वह भाव... भाव... भाव... रहेगा। सम्यग्दर्शन की पर्याय दर्शन... दर्शन... दर्शन... दर्शन... दर्शन रहेगा। क्षायिक में दर्शन प्रतीति है या नहीं? उस जाति की है या नहीं? आहाहा! ऐसी बात। कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य ने जगत को निहाल कर दिया है। आहाहा! न्यालकरण। स्वामीनारायण के समय में अन्यमतियों को माँस और शराब से छुड़ाते थे तो उन्हें स्वामीनारायण को न्यालकरण कहते थे। न्यालकरण तो यह है। आहाहा! न्याल कर दिया है। तेरी जाति तो जाति रहेगी ही। वह जाति कभी कुजाति हो या पर के भाव की जाति हो जाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! यहाँ तो यह कहा, भावभाव में कभी भाव का अभाव होकर मिथ्यात्व हो जाये या चारित्र की पर्याय है, वह अचारित्र हो जाये, ऐसा वस्तु में नहीं है। आहाहा! धन्नालालजी! समझ में आये उतना समझो, यह तो भगवान की वाणी है, प्रभु! आहाहा!

चौथे में अल्प स्वसंवेदन है। स्वसंवेदन है, वह स्वसंवेदन-स्वसंवेदन उस जाति का ही रहेगा। स्वसंवेदन मिटकर अव्रत हो जायेगा या दूसरा कुछ हो जाये, ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! आचार्यों ने गजब काम किया, प्रभु! खजाना खोल दिया है। आहाहा! संख्या से जितने गुण हैं, उतनी समय की पर्याय है और जो पर्याय की जाति है, वह भाव है, वह भाव भविष्य में भी उसी जाति का रहेगा। आहाहा! दूसरी पर्याय में मिल जाये, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

जैसे पर्याय ने द्रव्य का आश्रय लिया तो द्रव्य में तन्मय हुई, ऐसा कहने में आता है। परन्तु पर्याय द्रव्य में तन्मय होती ही नहीं। वह तो परसन्मुख थी, वह स्वसन्मुख हुई तो द्रव्य में तन्मय हुई, ऐसा कहने में आता है। पर्याय तो पर्याय में रहकर द्रव्य का ज्ञान करती है। समझ में आया? श्रद्धा की पर्याय श्रद्धा में रहकर द्रव्य की श्रद्धा करती है। द्रव्यपना श्रद्धा में आ जाता है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

चैतन्य जाति है तो चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य जाति रहेगी। कभी चैतन्य जाति की अचेतन हो जाये, ऐसा नहीं होता। आहाहा! इसी प्रकार निर्मल पर्याय जिस गुण की है, वह निर्मल पर्याय वह भाव... वह भाव... वह भाव... रहेगा। उसमें कभी मलिनता आ जाये, ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

'नयपरिहीणा' पण्डितजी! आस्रव अधिकार में आया न? यहाँ वह बात नहीं है। शक्ति का पिण्ड प्रभु, जिसे ज्ञान में ज्ञेय बनाकर प्रतीति किया, तो वह प्रतीति की पर्याय प्रतीति... प्रतीति... प्रतीति... प्रतीति... प्रतीतिरूप रहेगी। मिथ्यारूप हो जाये, ऐसा तीन काल में बनता नहीं। आहाहा! बाबूभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! अरे! बापू! किसका विरोध करता है? भाई! तुझे खबर नहीं। जिनेश्वर परमात्मा की यह वाणी है, उसका भाव यह है। समझ में आया? वीतराग का मार्ग यह है। उसे तुम राग के मार्ग में ठहरा दो, प्रभु! राग से–व्यवहार से लाभ होगा, भाई! यह वीतरागमार्ग नहीं है। आहाहा! तेरी श्रद्धा में तो पहले ऐसा पक्का आना चाहिए कि वीतरागभाव से ही आत्मा का कल्याण होगा। राग से कल्याण होगा नहीं। और वह वीतरागभाव कायम रहेगा। करते... करते... करते... करते... पूर्ण वीतरागता हो जायेगी परन्तु वह जाति है, वहाँ वह जाति ही रहेगी। सर्वज्ञ परमात्मा... आहाहा! अल्प मति–श्रुतज्ञान है, वह ज्ञान की जाति है परन्तु वह ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... रहकर सर्वज्ञ हो जायेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : ...ज्ञान, चारित्र सब पूर्ण हो जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब पूर्ण हो जायेगा। वह जाति स्वयं पूर्ण हो जायेगी। दूसरी पर्याय के कारण नहीं, दूसरे गुण के कारण से नहीं। आहाहा! इसका नाम भावभावशक्ति है। लो, घण्टा तो हो गया। हमारे ज्ञानचन्दजी जाते हैं तो थोड़ा भाव का आ गया। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ३३, शक्ति-३८ सोमवार, (द्वितीय) श्रावण कृष्ण १४, दिनांक १२-०९-१९७७

समयसार, शक्ति का अधिकार। ३७ हुई। यह आत्मा जो वस्तु है, उसमें संख्या से अनन्त शक्तियाँ हैं। अनन्त काल रहेगी, यह काल से, परन्तु संख्या से अनन्त शक्तियाँ है। एक साथ व्यापक अनन्त शक्तियाँ एक समय में है। कथन क्रम से होता है। समझ में आया? ऐसा चैतन्य भगवान गुणी जो स्वभाववान उसकी अनन्त शक्ति जिसका स्व-भाव—अपना भाव है, उसकी जिसे दृष्टि हुई, मैं चैतन्य ज्ञायकभाव हूँ, ऐसी दृष्टि में अनन्त शक्ति का अन्दर संग्रह है, उसका भी आदर हो गया। समझ में आया? उसमें यहाँ अन्तिम शक्ति, भाव-अभाव में से अन्तिम, वैसे तो अभी (बाकी है)। आहाहा!

पहले तो यह कहा था कि भावशक्ति के कारण से वर्तमान पर्याय में निर्मलता विद्यमान होती ही है। अभावशक्ति के कारण से राग के अभावरूप परिणमन होता ही है। आहाहा! भावअभावशक्ति के कारण से वर्तमान निर्मल पर्याय का उत्पाद है, उसका व्यय होकर भाव का अभाव हो जायेगा। अभावभाव के कारण से वर्तमान पर्याय में जो विशेष निर्मल पर्याय नहीं थी, उसका अभाव है, उसका भाव हो जायेगा। आहाहा! शक्ति तो लगभग एक-एक घण्टे चली। आहाहा! अरे! भावभावशक्ति के कारण से प्रत्येक गुण की वर्तमान पर्याय जो भावरूप है, वह भावरूप ही रहेगी। जो निर्मल सम्यग्दर्शन आदि पर्याय उत्पन्न हुई, ऐसी भावभाव, ऐसी सम्यक् पर्याय, सम्यग्ज्ञान, आनन्द की पर्याय भावरूप भाव है, वही भाव रहेगा। समझ में आया? यह पाँच तो चली है। अब आज छठवीं है न? अभावअभाव। आहाहा!

> **अभवत्पर्यायाभवनरूपा अभावाभावशक्तिः।**
>
> **नहीं भवते हुए (अप्रवर्तमान) पर्याय के अभवनरूप अभावाभाव शक्ति।३८।**

भगवान! तुझमें एक अभावअभाव नाम की शक्ति है। गुण है, गुण कि जिस गुण के कारण वर्तमान विकार के अभावस्वभावरूप जो तेरा परिणमन है। व्यवहाररत्नत्रय विकार है, उसके अभावरूप तेरा परिणमन है। आहाहा! इस व्यवहार का विवाद बड़ा। व्यवहार से होता है, शुभभाव से होता है। अरे! प्रभु! सुन तो सही। इस शुभभाव के

अभावरूप परिणमन वर्तमान में है, ऐसा शुभ के अभावरूप परिणमन अभावअभाव (शक्ति के) कारण से अभावरूप ही रहेगा। आहाहा! क्या कहा?

वर्तमान भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन है, उसमें अनन्त शक्तियों में से एक अभावअभाव (नाम) की शक्ति ऐसी है कि जिसमें द्रव्यस्वभाव को दृष्टि में लिया तो उसे वर्तमान में जो विकार के अभावरूप परिणमन है... आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय, वह शुभराग है, तो यहाँ शक्ति का ऐसा गुण है कि उस राग के अभावरूप परिणमन अभावभाव के कारण से है। यह तो पहले अभाव के कारण से था। व्यवहाररत्नत्रय का अभावरूप परिणमन, वह अभावशक्ति। अब वर्तमान में व्यवहाररत्नत्रय के राग के अभावरूप परिणमन है, ऐसा ही अभावरूप रहेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : यह वर्तमान में था, वह भविष्य में रहेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : भविष्य में ऐसा ही रहेगा। पुरुषार्थ तो यह है कि जिसमें भगवान चैतन्यघन का अवलम्बन आश्रय लिया, उसमें अभावअभाव नाम की शक्ति का आश्रय भी आ गया। तो वह अभावअभावशक्ति का परिणमन, राग के अभावरूप है, वह राग के अभावरूप ही अब रहेगा। कभी राग का सद्भाव हो जाये, यह अभावअभावशक्ति के कारण से कभी नहीं होगा। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! दूसरी भाषा में कहें तो उदयभाव का वर्तमान पर्याय में अभाव है।

मुमुक्षु : होते हुए भी अभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है ही नहीं, पर्याय में अभाव के कारण से नहीं है। उसमें होवे तो परज्ञेयरूप से हुआ। समझ में आया?

मुमुक्षु : अभी तक द्रव्य-गुण में नहीं, ऐसा कहते थे, अब पर्याय में नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में नहीं। द्रव्य-गुण में तो है ही नहीं, परन्तु यहाँ तो अभावअभावशक्ति का वर्णन (चलता है) तो वह अभावअभावशक्ति है, उस प्रत्येक गुण में अभावअभाव का रूप है। कोई भी गुण रागरूप परिणमे या मिथ्याश्रद्धारूप परिणमे, ऐसी शक्ति नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह तो भगवान का दरबार है। इसमें अनन्त-अनन्त प्रजा—शक्ति पड़ी है। आहाहा!

मुमुक्षु : चारित्र का परिणमन तो है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र का परिणमन भी निर्मल परिणति ही है। अचारित्र के परिणमन का तो अभाव है। शान्ति से समझने की चीज़ है, भाई! आहाहा! यह तो तीन लोक के नाथ को जगाने की बात है। अभावअभावशक्ति से भगवान भरपूर है। आहाहा! तीनों काल। पूर्व में थी तो पर्यायबुद्धि के कारण राग था, पर्यायबुद्धि के कारण राग था, ऐसा माना था। परन्तु जहाँ द्रव्यबुद्धि हुई तो राग के अभावरूप परिणमन वर्तमान में है, ऐसे विकार के अभावरूप परिणमन कायम रहेगा। आहाहा! समझ में आया? मार्ग, बापू! सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो तीन लोक का नाथ भगवान आत्मा..! आहाहा!

'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आता है न? 'चेतनरूप अनूप अमूरत,' 'चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्ध समान सदा पद मेरो, मोह महातम आतम अंग कियो परसंग महातम घेरो।' वस्तु में नहीं परन्तु मैंने राग का संग किया। महातम घेरो किया, ऐसा कहा। महातम को घेरा इसने बनाया है, वस्तु में नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा, परमात्मा की शक्तियाँ जो हैं, उसका वर्णन करते हैं। आहाहा! प्रभु! तेरी शक्ति में अनन्त शक्ति संख्या से है। उसमें एक अभावअभाव नाम की शक्ति है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो ४७ शक्ति का वर्णन है। विशेष शक्ति का वर्णन लिया है। यह पृष्ठ है न? पृष्ठ किसमें है? कल देखा नहीं था? गुजराती। जरा ले आओ न। दूसरी ३७ शक्ति उतारी है।

मुमुक्षु : रात्रि में सुनायी थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह कही थी। आहा! दूसरे शास्त्र में से। अनुभव प्रकाश, तत्त्वार्थ राजवार्तिक, पद्मनन्दि पंचविंशति, सब देखा है न! सब देखा है तो उसमें से निकाली है। परमात्म पुराण, अध्यात्म पंचसग्रह है न? उसमें परमात्म पुराण है न? उसमें बहुत शक्तियाँ हैं। उसमें से निकाल लगभग ३७ बनायी। बाकी तो अनन्त है, हमको बहुत खबर नहीं। समझ में आया? जितनी ख्याल में आयी, उतनी का तो पत्र बनाया था। आहाहा!

मुमुक्षु : केवलज्ञान हो जाएगा, तब ख्याल में आ जाएगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान आत्मा, जिसे सम्यग्दर्शन है अर्थात् जिसे द्रव्यस्वभाव की दृष्टि है... आहाहा! जिसे पर्यायबुद्धि छूट गयी है। आहाहा! उसके द्रव्य में एक अभावअभाव नाम का गुण है। शक्ति कहो, गुण कहो, द्रव्य का स्वभाव कहो, सत् का सत्त्व कहो, माल—कस, सत् द्रव्य है, उसका वह कस है, माल है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा अन्दर में माल पड़ा है। एक अभावअभाव नाम का गुण है। आहाहा!

रात्रि में थोड़ा बताया था। यह तो बहुत समय पहले लिखा है। इसमें सुखशक्ति आयी है। समकित और चारित्र नहीं आयी तो पहले कह दिया है। समकित, चारित्र, स्वयंसिद्धत्व, अज—जन्मना नहीं, अखण्डता, विमल, भेद, अभेद, नास्ति, साकार-निराकार—ज्ञानदर्शन में आ गयी है। वस्तुत्व, अचल, ऊर्ध्वगमनत्व, सत्, असत्, सूक्ष्म, स्थूल, अप्रमेयत्व, अन्यत्व, अनन्त गुरुलघुत्व, एक शक्ति, हों! अगुरुलघुशक्ति आ गयी है परन्तु उसके अविभाग प्रतिच्छेद अनन्त हैं। अगुरुलघु अनन्त क्यों? कि प्रत्येक गुण में अगुरुलघुपना है। आहाहा! भव्य, अभव्य यह नहीं लिया। क्योंकि पर्याय है न। बाकी भव्य, अभव्य एक शक्ति पर्याय में, हों! अन्दर गुण में नहीं। भव्य, अभव्य पर्याय। क्योंकि गुण होवे तो भव्यपना सिद्ध में भी रहना चाहिए। परन्तु भव्यपना सिद्ध में तो है नहीं। क्योंकि भव्य की योग्यता से पर्याय थी, उस पर्याय का अभाव हो गया, पूर्ण भव्यता प्रगट हो गयी।

सर्वगतत्व, द्रव्यत्व, अवगाहन, अव्याबाध। ये प्रतिजीवी गुण। विभाव, योग, अवगाहन, क्रियावर्ती, भोक्तृत्व, असर्वगत, अनादिसन्तति, 'प्रवचनसार' पृष्ठ १५०, अनुभव प्रकाश पृष्ठ ६, राजवार्तिक पृष्ठ ५५९, पद्मनन्दि पंचविंशति पृष्ठ १११ के आधार से, इन शास्त्र के आधार से बनायी है। आहाहा! परमात्म पुराण (पृष्ठ ३५) है, उसमें से है। नित्य, परप्रभाव, निजधर्मत्वभाव, ध्रुवभाव, केवलभाव, शाश्वतभाव, अतुलभाव, अछेदभाव, अनित्यभाव, प्रकाशभाव, अपारमहिमाभाव, अक्रमभाव, अकलंकभाव, अघटभाव, अखेदभाव, नि:संसारभाव, कल्याणभाव (इत्यादि)। इसमें ५४ हो गयी। पहले ३७ कही थी। परमात्म पुराण में से ली।

मुमुक्षु : सौ पूरी हो जायेगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : १०१ हो गयी। ५४ और ४७ हुई न? १०१। १०१ नम्बर। आहाहा!

यहाँ तो अभावअभावशक्ति का वर्णन तो सन्तों ने कहा। दूसरे सन्तों ने भिन्न-भिन्न शास्त्र में था, उसे मिलाकर लिख लिया है। आहाहा!

जिसे द्रव्यदृष्टि हुई... सवेरे नहीं आया था? सूक्ष्म द्रव्यदृष्टि। आहाहा! सवेरे आया था। पुण्य और पाप, वह स्थूल है और स्थूल का वर्तमान परिणमन में अभाव है। द्रव्यशक्ति की सम्हाल करने से, जो शुभभाव है, उसका भी वर्तमान में तो अभाव है। आहाहा! और बाद में भी अभाव रहेगा, इसका नाम अभावअभावशक्ति कहा जाता है। आहाहा!

जैसे कि समकित की पर्याय है, उसमें मिथ्यात्वपर्याय का अभाव है, अभावरूप परिणमन है। पश्चात् भी समकित की पर्याय में अभावरूप परिणमन रहेगा। मिथ्यात्व का परिणमन कभी आयेगा नहीं। आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार चारित्र के जो निर्मल परिणाम हुए, उसमें अचारित्र के परिणाम का वर्तमान में अभाव है। ऐसे अचारित्र के अभावरूप परिणमन कायम रहेगा। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। भण्डार खुला है। खजाना खोल दिया। ओहो! ऐसी वस्तु है। पर से उदास है, पर के अभावस्वभाव से है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पर शब्द से शरीर, वाणी तो कहीं दूर रहे गयी। यह तो अभावशक्ति में आया था। पाँच शरीर, आठ कर्म और भावकर्म, तीनों का अभाव है। अभावशक्ति में तीनों के अभावरूप परिणमन है। आहाहा! अभाव में आया था। यहाँ इन तीनों का अभावरूप परिणमन है, वही पर्याय अपनी है। और तीनों के अभावरूप परिणमन है, वैसा भविष्य में भी समय-समय में (रहेगा)। तीन शरीर, आठ कर्म, शरीर अर्थात् नोकर्म और भावकर्म—दया, दान, व्रतादि, पुण्य-पाप, शुभाशुभभाव का अभावशक्ति के कारण से वर्तमान में अभाव है। ऐसा अभावअभाव रहेगा, यह अभावअभावशक्ति के कारण से। आहाहा! अरे! ऐसा बड़ा खजाना प्रभु का पड़ा है। आहाहा! उसका विश्वास नहीं, उसकी प्रतीति नहीं और राग की प्रतीति। मैं राग करता हूँ। शुभभाव का विश्वास है। जो विकार है, जो स्वभाव में नहीं, उसका विश्वास है कि इस शुभभाव से मेरा कल्याण होगा। आहाहा! समझ में आया? दृष्टि में बड़ी विपरीतता है।

यहाँ तो कहते हैं, स्वभाव के आश्रय से दृष्टि खिली तो उसमें वर्तमान में भी मिथ्याश्रद्धा के अभावरूप परिणमन है तो कायम ऐसा ही अभावरूप परिणमन सादि-अनन्त रहेगा। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा? **नहीं भवते हुए...** वर्तमान में नहीं, अप्रवर्तमान।

वर्तमान में रागादि के परिणाम नहीं। राग का प्रवर्तन नहीं। आहाहा! धर्मी जीव को द्रव्यदृष्टि होने से वर्तमान में राग का प्रवर्तन नहीं है। आहाहा! यहाँ तो (अज्ञानी कहते हैं) व्यवहाररत्नत्रय का प्रवर्तन करे तो निश्चयरत्नत्रय होता है। यहाँ तो प्रभु इनकार करते हैं। समकिती को, धर्मी को, द्रव्यदृष्टिवान को राग का अप्रवर्तन है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात बाहर में आयी, तब लोगों को (सुहायी नहीं)। भाई! तेरे घर की बात है न, प्रभु! आहाहा! भजन में नहीं आता? 'अब हम कबहु न निजघर आये, परघर भ्रमत अनेक नाम धराये।' यह वस्तु का स्वरूप नहीं। आहाहा! मैं रागी हूँ और मैं क्रोधी हूँ और मैं मानी हूँ, मैं व्यवहार करनेवाला हूँ, यह वस्तु का स्वरूप नहीं है। निजघर में आया तो उसमें विकार का अभाव दिखता है। आहाहा!

विकार का अभाव, यह इसका स्वभाव ही है। द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्यापक है। आहा! अभाव द्रव्य-गुण में तो है ही, पर्याय में राग का अभाव है। विकार दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम ज्ञानी को होते हैं, तथापि उसकी पर्याय में उसके अभावरूप परिणमन है। आहाहा! है, उसे जाननेवाली ज्ञान की पर्याय उसमें है। राग है, उसे जानने की पर्याय उसमें है परन्तु राग के स्वभाव के अभावरूप परिणमन है। आहाहा! समझ में आया? क्या कहते हैं? आहाहा! गजब बात! अमृतचन्द्राचार्य ने ९६ गाथा में कहा है न? अरे! यह मृतक कलेवर, यह मुर्दा... अमृत का सागर मुर्दे में मूर्छित हो गया है। तीनों म... म। समयसार ९६ गाथा में है। यह मुर्दा, मृतक कलेवर, परमाणु है। जिसमें चैतन्य का तो अभाव है। जड़ शरीर में तो चैतन्य का अभाव है। वह तो मृतक कलेवर है। आहाहा!

मुमुक्षु : मुर्दे के साथ सगाई की।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूढ़ ने सगाई मानी है। माना है कि मैंने सगाई की है, अब विवाह करूँगा। अरे! प्रभु! मुर्दे के साथ सगाई। मोक्षमार्गप्रकाशक में यह दृष्टान्त दिया है। मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है। आहाहा! राग के साथ सगाई की और राग के साथ एकाकार हो जायेगा। आहाहा! प्रभु! वह तेरी चीज़ नहीं है। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उस भाव के भी अभावस्वभावरूप परिणमन है। आहाहा! उसमें तो प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये कि, आहाहा! 'सोलह कारणभावना भाय' क्या कहते हैं? 'दर्शनविशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकर पद पाय।' आहाहा! यहाँ तो प्रभु

ऐसा कहते हैं और ऐसा है कि जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उस भाव का तो धर्मी को अभावस्वभावरूप परिणमन है। आहाहा! समझ में आया?

उसी प्रकार वीर्य में भी अभावअभावशक्ति का रूप है। तो वीर्य जो स्वरूप की निर्मल रचना करता है, उसमें मलिनता की रचना का तो वीर्य में अभाव है। आहाहा! यह जीव पुरुषार्थ करता है तो जीव का पुरुषार्थ तो निर्मल परिणति होती है, वह पुरुषार्थ है। मलिन पर्याय का तो उसमें अभाव है। पुरुषार्थ से मलिन पर्याय की रचना आत्मा के वीर्य से और बल से नहीं होती। आहाहा! गजब काम किया है न! रतनचन्दजी! दुनिया तो कहे, प्रभु! आत्मा तो ऐसा है, तेरी वस्तु, प्रभु! आहाहा!

उसमें कहा न कि एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में अभाव है, अत्यन्त अभाव है तो दूसरा द्रव्य क्या करे? इसी प्रकार राग का तो स्वभाव में अत्यन्त अभाव है। यह अध्यात्म का अत्यन्त अभाव है। वे जो चार (अभाव) हैं, प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव, उसमें यह नहीं आता। यहाँ तो ७३ गाथा में कहा है कि जितने दया, दान, व्रतादि का विकल्प जो हैं... आहाहा! समझ में आया? उनका आत्मा की पर्याय में अत्यन्त अभाव है। कर्ता-कर्म अधिकार ७३ गाथा। समझ में आया? आहाहा!

यह तो कहा परन्तु पर्याय में भी षट्कारकरूप निर्मल परिणमन है, यह तो यहाँ लेना है, यहाँ लेना है। निर्मल परिणमन षट्कारक से होता है, वह तो पर्याय में है परन्तु मलिन परिणाम के षट्कारक का तो इसमें अभाव है। आहाहा! ओहोहो! गजब काम किया है न! यहाँ तो पर्याय में पर्यायबुद्धिवाले को षट्कारकरूप से विकृत परिणमन पर्याय में होता है। समझ में आया? विकृत पर्याय द्रव्य-गुण में तो है नहीं क्योंकि कोई शक्ति विकाररूप परिणमे, ऐसी कोई शक्ति नहीं है। यहाँ तो पर्यायबुद्धि में पर्याय में राग कर्ता, राग कर्म, राग करण, राग अपादान, राग सम्प्रदान, राग आधार है। आहाहा! वह भी पर्याय में है। यहाँ जहाँ द्रव्यबुद्धि हुई तो उस षट्कारक के परिणमन का अभाव है। समझ में आया? यह अभी लेंगे। आहाहा! यहाँ तो अभावअभाव सिद्ध करना है न!

धर्मी को और द्रव्यदृष्टिवान को षट्कारक का विकृत परिणमन जो है, वह तो पर्याय में अभावरूप है। आहाहा! यह तो दृष्टि पर्याय पर थी, तब तक पर्याय में भाव है। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि को। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को—धर्म की पहली सीढ़ीवाले को—

पर्याय में जो षट्कारकरूप विकृत अवस्था जो है, वह कर्म से नहीं, अपनी पर्याय से विकृत अवस्था है, वह कोई शक्ति का कार्य नहीं। पर्याय में अध्धर से उठाईगीर... उठाईगीर समझते हो? विकृत अवस्था उठायी है उठाईगीर ने, वस्तु में नहीं है। आहाहा! इन छह कारक का परिणमन द्रव्यदृष्टिवन्त को, धर्मी को इन विकार के परिणमन से अभावरूप ही परिणमन है। आहाहा!

परिणमन है न? नय में तो ऐसा कहा है। यह तो एक ज्ञान कराया है। समझ में आया? परन्तु यहाँ तो द्रव्यदृष्टि की प्रधानता से शक्ति का कथन है। इसमें तो इन षट्कारक से विकृत पर्याय है, उसका तो पर्याय में अभाव है। द्रव्य-गुण में तो अभाव है ही। आहाहा! समझ में आया? ऐसे अभावरूप परिणमन है। आहाहा! धर्मी को व्यवहाररत्नत्रय के अभावरूप परिणमन है। आहाहा! और व्यवहाररत्नत्रय के अभावरूप परिणमन कायम रहेगा, वह अभावअभावशक्ति का कार्य है। आहाहा! ऐसी गजब बात है! समझ में आया? शक्ति का वर्णन तुम्हारी कक्षा था और यह शिक्षण शिविर में चला। आहाहा!

मुमुक्षु : अपूर्व आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी है। आहाहा! भाई! तेरी चीज़ ऐसी है, तेरा स्वरूप ऐसा है कि विकाररूप न परिणमना, वह तेरी चीज़ है। विकाररूप परिणमना, वह कहीं तेरी शक्ति या गुण नहीं है। आहाहा! तेरी शक्ति में तो अभावअभाव नाम का गुण पड़ा है, उस गुण के कारण से वर्तमान में भी ज्ञान की पर्याय में विपरीतता का तो अभाव है, और ऐसा विपरीतता का अभाव शाश्वत् विपरीतता के अभावरूप ही रहेगा। आहाहा! और ज्ञान की पर्याय भावरूप जो निर्मल है, वह ऐसा का ऐसा ही भाव रहेगा और विकार से अभावरूप है, तो कायम अभावरूप ही रहेगा। आहाहा!

यहाँ तो ऐसा लिया है कि जिसे द्रव्यदृष्टि हुई, उसे पड़ना या वापस गिर जाना, यह बात ही नहीं है। वह द्रव्यदृष्टि छोड़ दे तो गिरे। समझ में आया? वस्तु जो भगवान ज्ञायकभाव अनन्त शक्ति का पिण्ड प्रभु, ऐसे द्रव्य की प्रतीति और पर्याय में द्रव्य का ज्ञान हुआ, वह ज्ञान वापस गिर जाये, ऐसी द्रव्य-गुण में कोई शक्ति नहीं है। उस द्रव्यदृष्टि की प्रतीति छोड़ दे तो गिर जाये। वह कहीं द्रव्य में ऐसा कोई कारण नहीं है। समझ में आया? आहाहा! यह तो चाबी है, चाबी। ताला खोलने की चाबी यह है।

मैं तो भगवान आत्मा, अभावअभावशक्ति के गुण से भरपूर हूँ। उस मेरे गुण का कार्य, आहाहा! अनन्त-अनन्त गुण की विकृत अवस्था होती है, यद्यपि गुण २१ गुण निकाले हैं, विपरीत हों ऐसे। शास्त्र में से बहुत निकाले नहीं। विचार करते-करते २१ निकाले थे। एक बार बाहर गाँव थे तब। विपरीत तो बहुत गुण का (परिणमन) होगा परन्तु २१ ख्याल में आते हैं। विपरीत का परिणमन धर्मी को—द्रव्यदृष्टिवन्त को उसका अभाव है। आहाहा! समझ में आया? निर्मल परिणति का सद्भाव है, मलिन परिणति का अभाव है। यह अस्ति-नास्ति हुई। निर्मल परिणति का भावभाव रहेगा, यह भावभावशक्ति के कारण से। और मलिन परिणति का अभाव है, वह अभावअभाव रहेगा, वह अभावअभावशक्ति के कारण से। आहाहा! तेरी सम्पत्ति तो देख! आहाहा! भाई! तूने तेरी चीज़ को देखा नहीं। आहाहा!

ज्ञायकस्वभाव में अभावअभाव नाम की शक्ति है तो अनन्त गुण में अभावअभावपना है। अनन्त गुण में अभावअभाव का रूप है। कोई गुण विपरीतरूप परिणमता नहीं और कोई गुण विपरीतरूप परिणमेगा, ऐसा वस्तु में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह तो अन्तर की चीज़ है, भगवान! यह कोई बाहर से मिले, (ऐसा नहीं है)। पवित्रता अन्दर पड़ी है और उस पवित्रता के परिणमन में अपवित्रता का अभावरूप परिणमन है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि हुआ तब से, हों! द्रव्य में तो (पवित्रता थी), गुण में तो थी परन्तु दृष्टि हुए बिना (किस काम का)? पर्याय में दृष्टि है, तब तो रागरूप, विकाररूप, संसाररूप परिणमता है। वह कोई द्रव्य-गुण में नहीं और पर्याय में परिणमता है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो अभी विवाद यह उठाते हैं कि कर्म से विकार होता है। अरे! भगवान! यह बाद में कहेंगे कि विकार भी पर्याय में षट्कारकरूप से परिणमता है, वह अपने से है परन्तु उसका रहितपना आत्मा में है। षट्कारक का बाद में आयेगा। समझ में आया? ३९ में यह है। ३८ के बाद यह है। है? **(कर्ता, कर्म आदि) ६ कारकों के अनुसार...** परन्तु कर्म के अनुसार नहीं। पर्याय में भी विकृत अवस्था होती है, वह कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान आदि छह कारक से विकृत अवस्था होती है। कर्म से नहीं। यह भी कर्ता आदि षट्कारक का जो परिणमन है, उसका स्वभाव में अभाव है। धर्मी को उसका अभाव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बातें। आहाहा! यह बात कहीं है। आहाहा!

भाई! तू कौन है? क्या है? प्रभु! तुझमें ऐसी एक शक्ति पड़ी है न, नाथ! तेरी चीज़ को सम्हालने से तेरी चीज़ में एक अभावअभाव नाम का गुण पड़ा है, गुण है, उस गुण का कार्य (क्या)? विकाररूप नहीं परिणमना और ऐसे नहीं परिणमनेरूप कायम रहना। आहाहा! ऐसी बात है। रूखी लगे, बापू! यह तो वीतरागी वार्ता है, वीतरागी कथा है। आहाहा! धर्मी को उपदेश का विकल्प आता है तो भी यह तो कहते हैं कि विकल्प के अभावरूप उसका परिणमन है। आहाहा!

मुमुक्षु : विकल्प के काल में?

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प के काल में। समझ में आया? आहाहा!

नहीं भवते हुए (अप्रवर्तमान)... वर्तमान में पर्याय में विकार का प्रवर्तन नहीं है। यह पहले अभाव में लिया है। है? **नहीं भवते हुए (अप्रवर्तमान) पर्याय के अभवनरूप**... वर्तमान में विकार अप्रवर्तमान है। (छोटे लड़के को) समझ में नहीं आवे, वह क्या करे? आहाहा! इसी प्रकार आत्मा समझ में नहीं आवे, वहाँ अनादि से राग में क्रीड़ा करता है। आहाहा! (पूरा जगत) बालक है। अपनी चीज़ क्या है, उसके भान बिना इसने राग में क्रीड़ा की है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! एक बार तेरी दृष्टि द्रव्य के ऊपर हो और द्रव्य का स्वीकार हो तो रागरूप परिणमना, वह तेरी कोई शक्ति में, द्रव्य में और पर्याय में भी नहीं है। क्योंकि अभावअभावशक्ति द्रव्य में, गुण में और पर्याय में व्याप्त है। द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्याप्त है। आहाहा! पर्याय में भी अभावअभावपना (व्याप्य है)। आहाहा! प्रभु ने गजब काम किया है! आहाहा!

अमृतचन्द्राचार्य हजार वर्ष पहले दिगम्बर सन्त (हुए), उनकी वाणी तो देखो! केवलज्ञान के किबाड़ खोल दिये हैं। आहाहा! केवलज्ञानी ने जो कहा, उसके किबाड़ खोल दिये, भाई! भगवान ऐसा कहते हैं। तेरे भगवान में भी ऐसा है। आहाहा! तेरे भगवान की तुझे खबर नहीं, प्रभु! तू राग की प्रभुता में खेल रहा है, वह तेरा खेल नहीं। वह तेरे ख्याल की रमत नहीं। आहाहा! तेरे ख्याल की क्रीड़ा तो रागरूप नहीं परिणमना, वह तेरा खेल है। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसा कहाँ रुपयों में सूझ भी नहीं पड़ती। मधु आया नहीं? गया? कमाने हांगकांग। इनका भाई है न? वह हांगकांग रहता है। क्या कहलाता है? हांगकांग में रहता है। अभी लाख रुपये दिये न? भावनगर। सत्साहित्य में लाख रुपये

दिये। इनके छोटे भाई ने। अभी बीस हजार आये न? अपने ३२० गाथा चलती थी, उसमें बीस हजार अभी दिये। ३२० गाथा, जयसेनाचार्य की टीका है न? पश्चात् यह तुम आये तब चलायी। ३२० गाथा चली थी। उसमें इनके भाई ने बीस हजार रुपये दिये है। यह छपाओ। बाहर आयेगी, ३२० गाथा, शक्ति का वर्णन बाहर आयेगी। हिन्दी में है, फिर गुजराती में, दोनों में आयेगी। आहाहा!

क्या कहते हैं? **नहीं भवते हुए**... ऐसे विकार का अभाव। वर्तमान में भी धर्मी को विकार के अभावरूप प्रवर्तन है। अप्रवर्तन—विकार में प्रवर्तन है ही नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन और उसका विषय द्रव्य, उसकी शक्ति का वर्णन अलौकिक है। आहाहा!

मुमुक्षु : आपने उद्घाटन किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें भरा है न! आहाहा! और जगत के भाग्य हो, तत्प्रमाण भाषा आवे न! कौन बोले? कौन करे? आहाहा! बोले वह दूसरा, आत्मा नहीं। आहाहा! भाषा में भी स्व-पर कहने की ताकत है। आत्मा में स्व-पर जानने की ताकत है। स्व-पर करने की ताकत पर की नहीं। स्व को करना क्या? स्व तो है। भाषा में स्व-पर कहने की ताकत है। आहाहा! अपने उपादान से स्वतन्त्र, हों! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि भाषा ऐसे कहते हैं कि तेरे भाव में... आहाहा! निश्चय से तो संसार उदयभाव जो है, उसका तो तेरी पर्याय में अभाव है, भगवान! तेरी चीज़ पर्याय ऐसी है। द्रव्य ऐसा है, गुण ऐसे हैं और पर्याय ऐसी है। ऐसे द्रव्य, गुण, पर्याय की प्रतीति यथार्थ हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? यह ज्ञानप्रधान कथन (प्रवचनसार, गाथा २४२ में) आया है। ज्ञेय और ज्ञायक की यथार्थ प्रतीति, ऐसा आया है। दर्शनप्रधान (कथन में) अकेले भूतार्थ की श्रद्धा। समझ में आया? त्रिकाल ज्ञायक की श्रद्धा। ज्ञानप्रधान में ज्ञेय और ज्ञायक, दोनों की यथार्थ प्रतीति। आहाहा! अपनी पर्याय में द्रव्य की दृष्टिवन्त को विकार के अभावरूप परिणमन है तो वहाँ विकार है, उसका परज्ञेयरूप से ज्ञान करता है और ज्ञान करता है, उस ज्ञान की पर्याय में विद्यमानता है, परन्तु विकार की पर्याय की तो ज्ञान की पर्याय में अभाव है। आहाहा! ऐसा प्रत्येक गुण में लेना। समझ में आया?

वीर्यगुण पहले कहा न? वीर्यान्तराय का नाश हुआ तो वीर्य प्रगट हुआ, ऐसा यहाँ नहीं है। उसमें वीर्यशक्ति है, उसका स्वीकार हुआ, द्रव्य का (स्वीकार हुआ) तो वीर्यशक्ति

का परिणमन निर्मल होता है। अन्तराय गया तो निर्मल होता है, ऐसा नहीं है। अपने गुण के कारण से निर्मल होता है, ऐसा स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! क्या कहते हैं यह? वीर्य नाम का गुण है, उसमें अभावअभाव नाम का रूप है तो वीर्य स्वरूप की रचना करता है। अपनी पर्याय में भी शक्ति तो है न? वीर्य जो गुण है, वह तो गुण में है परन्तु वीर्य का रूप अनन्त गुण में है। वीर्य का रूप शक्ति अनन्त गुण में है। आहाहा! उस अनन्त शक्ति का वीर्य जो है, तो उस वीर्य के परिणमन में विकार के अभावरूप परिणमन है। आहाहा! और वह अभावरूप परिणमन है, स्वरूप की रचना का भावभाव है और पर की रचना का अभावअभाव है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, परद्रव्य की क्रिया करे। एक बार ऐसी बात चली। इन्दौर में पचास पण्डित एकत्रित हुए, फिर बोले थे। परद्रव्य का कर्ता न माने, वह दिगम्बर जैन नहीं। अरे! प्रभु! क्या करता है? भाई! भगवान! तू ज्ञानस्वरूप है न! तुझमें तो राग का अभावस्वभाव है न! तो राग का कर्तापना तेरे स्वभाव में नहीं है न! तेरी पर्याय में राग का कर्ता स्वभाव नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य-गुण की बात ही कहाँ है? यह तो परद्रव्य की पर्याय न करे, ऐसा माने तो दिगम्बर नहीं है। यहाँ का दिगम्बर उड़ाना है न? सुना था? पचास पण्डित। अरे! प्रभु! क्या करता है? भाई! आहाहा! परद्रव्य की पर्याय तो करता नहीं...

मुमुक्षु : अपने को दिगम्बरपना...

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! प्रभु! दिगम्बर किसे कहें! अरे! बापू! आहाहा! भगवान! आत्मा का विकल्परहित स्वरूप है, वह दिगम्बर है। दृष्टि में दिगम्बरपना कब हुआ? कि विकल्प के अभावरूप परिणमन हुआ और स्वभाव का शुद्धरूप परिणमन हुआ, तब दिगम्बर—समकिती हुआ। और मुनि, वे तो दिगम्बर—तीन कषाय का अभाव और बाहर में वस्त्र का अभाव। आहाहा!

मुमुक्षु : वस्त्र तो परद्रव्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परद्रव्य का कौन इनकार करता है? परद्रव्य का स्वभाव में

अभाव है। परद्रव्य नुकसान नहीं करते परन्तु उनकी ममता कि यह परद्रव्य मैं रखूँ, यह ममता नुकसान करनेवाली है। आहाहा! क्या कहा? यह प्रश्न बहुत उठा था। यहाँ एक मन्दिरमार्गी साधु रहे थे। एक चातुर्मास रहे थे। तिथि का विवाद है न उसमें? श्वेताम्बर में दो पन्थ है। रामविजय एक चौका माने और दूसरा (दूसरा माने)। ऐसा है। यह पर्यूषण में भी एक ने शुक्रवार से शुरु किये और एक ने शनिवार से शुरु किये। अभी श्वेताम्बर के पर्यूषण चलते हैं, तो तिथि का विवाद था। उसमें एक ब्राह्मण थे। क्या नाम उनका? अपने यहाँ थे न? ब्राह्मण थे। उस साधु को माने। यहाँ चातुर्मास किया था। हमेशा सुनने आते थे। सवेरे, दोपहर हमेशा। कुमुदविजय। किसने कहा? यह सत्य बात है। कुमुदविजय। कुमुदविजय चार, साढ़े चार महीने रहे थे। हमेशा सवेरे, दोपहर सुना, फिर अन्दर आकर कहा, स्वामीजी! मार्ग तो तुम कहते हो, वह सत्य है। हमें क्या करना? हम तो किसी को कहते नहीं कि तुम सम्प्रदाय को छोड़ो, वाड़ा छोड़ो, हम तो कहते नहीं। तुम कहो तो हम सम्प्रदाय छोड़ दें। फिर हमारे पोषण की जवाबदारी तुम्हारी। समझ में आया? यहाँ कुछ है नहीं, बापू! अपने कारण से स्वयं रहते हैं, किसी के कारण से कोई नहीं। उसने कहा, बात तो सत्य है। कहा, देखा! वस्त्र बाधक नहीं है। वस्त्र का राग है, वह नुकसान करता है। वस्त्र का राग है, तब तक मुनिपना नहीं होता। समझ में आया? यहाँ थे, तब तो स्वीकार किया। हमसे पूछा, क्या करना? मैंने कहा, हम तो किसी को कहते नहीं कि क्या करना, नहीं करना। हम तो मार्ग कहते हैं। हमारे ऊपर कोई जवाबदारी नहीं है। समझ में आया?

श्वेताम्बर के दूसरे चार साधु आये थे। ... परद्रव्य नुकसान करता है। हमने तो कभी कहा नहीं कि वस्त्र नुकसान करता है। बाहर निकलकर फिर ऐसा कहा। यहाँ रखे नहीं न। हम किसी को रखते नहीं। जिसकी जवाबदारी हो, वह रहो, न रहो। आओ, न आओ, हम किसी को कुछ नहीं कहते। हम तो तत्त्व की बात करते हैं। जिसे ठीक पड़े, उसे पड़े। लो, एक ओर निर्विकल्प की बात करे और एक ओर कहे कि वस्त्र हो तो मुनिपना नहीं। वस्त्र के कारण मुनिपने का कहाँ प्रश्न है? वस्त्र का विकल्प जब है, तब वस्त्र का संयोग होता है और वस्त्र के संयोग में धर्म मानना, चारित्र मानना, वह नव तत्त्व की भूल है। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि वस्त्र का राग है तो जीव का उतना आश्रय

नहीं हुआ कि राग का अभाव—तीन कषाय के अभाव में जीव का तीव्र आश्रय लेना चाहिए, वह आश्रय हुआ नहीं और राग का अभाव है, वहाँ उस मुनिपने में राग होता नहीं तो इतना आस्रव होता नहीं। मुनिपने की दशा में वस्त्र के राग का आस्रव नहीं होता। अत: आस्रव की भूल हुई। जीव के आश्रव की भूल हुई। जीव के आश्रय की भूल, राग की भूल और संवर-निर्जरा की भूल। जहाँ वस्त्र आदि का राग है, वहाँ संवर, निर्जरा मुनिपना होता नहीं। कहते हैं न? कुन्दकुन्दाचार्य ने इतना क्यों लिया? वस्त्र का एक टुकड़ा रखे और मुनिपना माने, वह निगोद गच्छई। सूत्रपाहुड़ में आता है, निगोद गच्छई। इतना क्यों कहा? बापू! यह नव तत्त्व में भूल है, इसलिए कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो छठवें गुणस्थान में विकल्प तो है नहीं, राग के अभावरूप परिणमन है, पंच महाव्रत का विकल्प है, उसके भी अभावरूप परिणमन है। आहाहा! समझ में आया? और ऐसे अभावअभावरूप परिणमन कायम रहेगा। आहाहा! वह अभावअभावशक्ति के कारण से। वह गुण अपना है, उस गुण के कारण से। आहाहा! वह गुण ऐसा कार्य करता है कि विकार के अभावरूप परिणमन वर्तमान में रहे और ऐसा का ऐसा भविष्य में रहेगा, वह गुण का कार्य है। आहाहा! डालचन्दजी! ऐसी बात है। क्या करे? प्रभु! आहाहा! लगभग पचास मिनिट तो हुए। एक-एक गुण में उतारने जायें तो बहुत देरी लगे।

दूसरे प्रकार से कहें तो अभावअभावशक्ति जो है, उसमें दो उपादान है। एक ध्रुव उपादान और एक क्षणिक उपादान। कायम शक्ति पड़ी है, वह ध्रुव उपादान है और वर्तमान में क्षणिक रागरहित परिणमन है, वह क्षणिक उपादान है। पर्याय में क्षणिक उपादान, ध्रुव में नित्य उपादान। इस शक्ति के दो रूप हैं। आहाहा! समझ में आया? और यह शक्ति अनन्त गुण में व्याप्त है। एक-एक शक्ति अनन्त गुण में निमित्त है। आहाहा! यह त्रिकाली शक्ति जो है, वह पारिणामिकभाव से है, परन्तु रागरूप नहीं परिणमना, ऐसी जो निर्मल पर्याय है, वह उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव से है। उदयभाव तो यहाँ लिया ही नहीं। उदयभाव के तो अभावरूप उसका परिणमन है। इसका नाम अभावअभावशक्ति कही जाती है, इसका नाम द्रव्य कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अरे! वस्तु की खबर नहीं, वस्तु की शक्ति—गुण की ताकत कितनी है? उसमें अभावअभाव गुण की इतनी ताकत है कि राग—व्यवहाररत्नत्रयरूप नहीं परिणमना, ऐसी ताकत है। आहाहा!

समझ में आया? कहो, बाबूभाई! यह सब कहाँ सुना है? शत्रुंजय की यात्रा कर आयें तो हो गया कल्याण।

मुमुक्षु : दूसरे काम में...

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे काम में रुक गये। पाप में। फिर थोड़ा कुछ करने जाये तो (कहे), धर्म हो गया, जाओ! चैत्र शुक्ल पूर्णिमा और कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा। यह तो दृष्टान्त, ऐसा सबको है न! बहुत है। अरे! भाई! इस पर की यात्रा में तो राग है। स्वरूप में... आया न? क्या कहा? अभावअभाव। यात्रा के राग का तो स्वरूप में पर्याय में अभावअभावरूप परिणमन है। आहाहा! समझ में आया? क्या कहते हैं यह? बाईस बोल लिखे हैं न!

पर्याय में जो परिणति हुई, राग के अभावअभावरूप परिणति (हुई), वह परिणति उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव से है। उपशम तो अल्प काल रहता है, बाकी तो वास्तव में तो क्षयोपशम और क्षायिकभाव से परिणति है, और पर्याय जब अन्दर जाती है, तब पारिणामिकभाव हो जाती है। आहाहा! क्योंकि वर्तमान तो एक समय की अवस्था है। एक समय की अवस्था का तो व्यय हो जाता है। यह तो आ गया। भावअभाव। भावअभाव, भाव है, उसका अभाव होता है। अभाव होता है परन्तु पर्याय जाती है तो अन्दर में न? जल की तरंग जल में डूबती है। वैसे अपनी पर्याय व्यय होकर अन्दर जाती है। अन्दर में गयी तो पारिणामिकभाव हो गया। बाहर में थी, तब क्षयोपशम और क्षायिकभाव की मुख्यता थी। उपशम तो अन्तर्मुहूर्त है। कहो, समझ में आया? बहुत लिया है।

जन्मक्षण, वही नाशक्षण है। अभावअभावशक्ति की जो पर्याय उत्पन्न हुई, वह जन्मक्षण थी, वह उत्पत्ति का काल था। समझ में आया? अपना स्वकाल ऐसा था कि वह अभावअभावशक्ति का परिणमन रागरहित होना, वह जन्मक्षण है और जो जन्मक्षण है, वही व्यय का क्षण है और उसी समय निर्मल पर्याय की काललब्धि थी तो हुई है और वह अवसर जो है, वह अपने अवसर में रागरूप परिणमन हुआ, वह अपने अवसर में हुआ है। यह क्रमबद्ध में आया है। आहाहा! है?

फिर तो कहा है कि क्रमवर्ती और शक्ति का भेद भी दृष्टि का विषय नहीं है। शक्ति

और शक्तिवान ऐसा भेद दृष्टि का विषय नहीं है। अभावअभावशक्ति और अभावअभावशक्ति का धारक द्रव्य, ऐसा दृष्टि का विषय नहीं है। दृष्टि का विषय तो अभेद है। आहाहा! अभेद दृष्टि होने से पर्याय में अभावअभाव नाम की निर्मल परिणति विकाररहित होती है। आहाहा!

यह अकार्यकारण में है। आहाहा! वह परिणति राग का कार्य नहीं और अभावअभाव की परिणति वह राग का कारण नहीं। आहाहा! यहाँ तो विशेष लिया था, क्रमवर्ती ज्ञानपर्याय अभावअभावरूप क्रम से हुई, वह पर को जाने, उसे भी व्यवहार कहा। वह राग को जानती है, ऐसा कहना भी व्यवहार है। अभावअभाव के कारण व्यवहार राग उसमें तो है नहीं परन्तु राग को जानता है, ऐसा कहना वह व्यवहार है। वास्तव में तो अपनी पर्याय को जानता है। राग सम्बन्धी ज्ञान और ज्ञान की पर्याय ज्ञान अपने को जानता है। रतनचन्दजी! थोड़ा लिख लेना। यह तो पण्डितों के काम का है। भाई ने लिख लिया है। इनके गाँव के हैं न! आहाहा!

जाननेवाला जाननेवाले का है, इस (स्व) स्वामी अंश से भी क्या साध्य है ? क्या कहते हैं ? मैं जाननेवाला जाननेवाले का हूँ। राग का जाननेवाला, जाननेवाला मैं हूँ, ऐसे भेद से भी तुझे क्या साध्य है ? आहाहा! राग का जानना तो है नहीं परन्तु मैं जाननेवाला जाननेवाले का हूँ, जाननेवाले का मैं जाननेवाला हूँ, ऐसे भेद का तुझे क्या काम है ? उसमें क्या साध्य है ? आहाहा! यह तो शक्ति के पिण्ड के ऊपर दृष्टि देने से यह सब कार्य हो जाता है। भेद के ऊपर दृष्टि देने से तो दृष्टि सम्यक् नहीं होती। आहाहा! विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ३४, शक्ति- ३९, ४० मंगलवार, (द्वितीय) श्रावण कृष्ण अमावस्या, दिनांक १३-०९-१९७७

कारकानुगतक्रियानिष्क्रान्तभवनमात्रमयी भावशक्तिः।३९।

(कर्ता, कर्म आदि) कारकों के अनुसार जो क्रिया उससे रहित भवनमात्रमयी (-होनेमात्रमयी) भाव शक्ति।३९।

समयसार, शक्ति का अधिकार। ३८ हो गयी न? अभावअभाव। आहाहा! जिसकी दृष्टि द्रव्य के ऊपर है... आहाहा! उसके द्रव्य में अभावअभाव नाम का एक गुण है। आहाहा! इस कारण वर्तमान में विकार का अभाव है, अभावरूप परिणमन है, वैसा अभावरूप भविष्य में भी रहेगा। ऐसा अभावअभावगुण का यह कार्य है। कल एक घण्टे चला न? समझ में आया? अब आज तो ३९वीं लेनी है। यहाँ तो बात ऐसी है कि जिसे द्रव्य-वस्तु, जो ज्ञायकभाव के सन्मुख की दृष्टि है, उसमें अनन्त शक्ति है, उसकी भी प्रतीति है। ऐसे धर्मीजीव को अथवा सम्यग्दृष्टि को अर्थात् द्रव्यस्वभाव की प्रतीतिवाले को... आहाहा!

(कर्ता, कर्म आदि)... क्या कहते हैं? देखो! धर्मी को पर्याय में, एक समय की पर्याय में रागादि विकल्प आदि का कर्तापना होता है, वह कर्म-कार्य भी पर्याय में होता है। कर्ता, कर्म षट्कारक पर्याय में (होते हैं)। आहाहा! एक समय की पर्याय में शुभ-अशुभराग पर्याय में कर्ता है, पर्याय कर्म है, पर्याय करण-साधन है, पर्याय विकार करके स्वयं रखा, पर्याय से पर्याय हुई और पर्याय के आधार से पर्याय हुई। समझने में जरा सूक्ष्म बात है। एक समय की पर्याय में विकृत अवस्था का षट्कारकरूप परिणमन है, तो यहाँ कहते हैं, **कारकों के अनुसार जो क्रिया**... आहाहा! षट्कारक के अनुसार। पर्याय में षट्कारक के अनुसार। विकार पुण्य, पाप, दया, दान, व्रतादि के विकल्प की षट्कारकरूप से परिणमनरूपी क्रिया होती है। आहाहा! है?

उससे रहित... द्रव्यदृष्टिवन्त को—समकिती को—ज्ञानी को—धर्मी को—पर्याय में षट्कारकरूपी विकृत अवस्था है। उसमें तो इतना भी सिद्ध किया कि पर्याय में विकृति षट्कारक से है, वह कर्म से नहीं और अपने गुण से नहीं। जो शक्ति है, उससे नहीं। शक्ति

तो भावशक्ति ऐसी है कि जो षट्कारकरूप विकृत अवस्था पर्याय में स्वतन्त्र स्वयं होती है, उससे रहित, भावशक्ति का कार्य उससे रहित परिणमना, यह उसका स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! शक्ति का वर्णन गजब किया है। निधान खोले हैं, निधान। सन्तों ने जगत को (निधान खोलकर दिये हैं)।

प्रभु! तेरी चीज़ तो अन्दर वस्तु है न? अखण्ड... आहाहा! उस अखण्ड पर दृष्टि देने से, तेरी पर्याय में षट्कारक की विकृत अवस्था हो, परन्तु उससे रहितपना तेरा स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के विकल्प तो ज्ञानी को भी होते हैं। पर्याय में षट्कारक अर्थात् कारक—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण से पर्याय में होता है, परन्तु उसके भावस्वभाव की शक्ति—गुण ऐसा है कि उससे रहित परिणमना, वह भावशक्ति का कार्य है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

द्रव्य जो ज्ञायक चैतन्य भगवान अनन्त आनन्दकन्द प्रभु है, उसकी पर्याय में षट्कारक से विकृत अवस्था होती है, तथापि ज्ञानी को—धर्मी को वह षट्कारक की क्रिया जो विकृत अवस्था है, उससे रहित अपनी दिशा है, ऐसा वह जानता है। जिनेश्वरदासजी! सूक्ष्म बातें, बापू! आहाहा!

इसमें दो बातें सिद्ध हुई। एक तो पर्याय में पर्यायदृष्टिवन्त को षट्कारक से विकृत (अवस्था) होती है। और द्रव्यदृष्टिवन्त को भी पर्याय में विकृत स्वभाव की षट्कारक से पर्याय होती है, तथापि भावशक्ति के कारण उसका गुण ऐसा है, भाव का गुण ऐसा है कि विकार से रहित परिणमना, यह इसका स्वभाव है। आहाहा! ऐसा है।

मुमुक्षु : होने पर भी रहित परिणमता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्यायदृष्टि छूट गयी है न! आहाहा! द्रव्यदृष्टि हुई, ज्ञायकभाव का भान हुआ तो ज्ञायकभाव में तो भावशक्ति नाम की एक शक्ति—गुण भी है। सभी शक्तियाँ एक साथ हैं तो क्रम से वर्णन चलता है। आहाहा! ऐसा जैनदर्शन। आहाहा!

कहते हैं, पर्याय में, एक समय की अवस्था में राग, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा की पर्याय कर्ता, पर्याय कार्य (आदि कारक) पर्याय में है, द्रव्य-गुण में नहीं। पर में नहीं, पर के कारण नहीं। समझ में आया? यह विकृत अवस्था जो है, उसमें आत्मा का गुण ऐसा

है, कि विकृत अवस्थारहित परिणमन करना, ऐसा गुण है। विकृतरूप परिणमना, ऐसा इसका गुण नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

चैतन्य ज्ञायकस्वरूप भगवान पूर्ण अनन्त शक्ति का संग्रहालय है। तो उसमें संग्रह का स्थान भगवान में भाव नाम का एक गुण है। जिसने गुणी की दृष्टि की, उसे उस गुण के कारण से विकृत के भाव से अभावरूप परिणमन होता है, वह कार्य है। आहाहा! वह विकृत अवस्था परज्ञेय में जाती है। समझ में आया? यह अधिकार तो सूक्ष्म है, भाई! ज्ञानचन्दजी रह गये। बड़ी बात है, भगवान! सुनो तो सही! प्रभु! आहाहा!

तेरी प्रभुता में भाव नाम की एक प्रभुता पड़ी है। प्रभुत्वशक्ति आ गयी न? तो प्रभुत्वशक्ति में भी भाव नाम की एक प्रभुता पड़ी है। प्रभुत्वशक्ति आ गयी न? तो प्रभुत्वशक्ति में भाव नाम का रूप है। भावशक्ति है, वह भिन्न है। प्रभुत्व में उस भाव का रूप है। पर्याय में पामरतारूप षट्कारक से परिणमती है, उससे रहित होना, वह तेरा स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? जिसकी पर्यायदृष्टि है, उसे तो षट्कारक का परिणमन उसके अस्तित्व में है, और वह विकृत है, ऐसा उसने माना है। शशीभाई! परन्तु जिसकी द्रव्यदृष्टि है... धर्मी की—सम्यग्दृष्टि की द्रव्य सामान्य स्वरूप जो त्रिकाल है, (उसके ऊपर दृष्टि है)। उसका अर्थ कि वर्तमान पर्याय में विकृत अवस्था होने पर भी निर्विकल्प अवस्था उस समय है, वह द्रव्य-सन्मुख झुकी हुई है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। लोगों को धर्म कैसे होता है, उसकी बात यहाँ तो है।

धर्मी को धर्म किस प्रकार होता है? धर्मी द्रव्य और उसका धर्म वर्तमान में पर्याय है। वह वर्तमान धर्म की पर्याय, वीतरागी पर्याय कैसे होती है? बाबूभाई! सूक्ष्म बात है, भगवान! अरे रे! यहाँ तो अभी शुभभाव से धर्म—मोक्षमार्ग मानते हैं। अरे! प्रभु! यहाँ तो शुभभाव की विकृत अवस्था पर्याय में षट्कारक से होती है, उसकी भी स्वीकृति नहीं। पर से होती है, ऐसी स्वीकृति है। वह भी पर्याय में विकृत अपने से होती है, उसमें भी भूल। और वह विकृत अवस्था है तो उसका—द्रव्य का भाव—गुण ऐसा है कि विकृतरहित परिणमना, वह उसका गुण है। आहा! समझ में आया? यह तो बहुत ध्यान रखे तो पकड़ में आवे ऐसी बात है, बापू! आहाहा!

चैतन्य रत्नाकर भगवान परमात्मस्वरूप, ऐसे परमात्मस्वरूप पर जिसकी दृष्टि हुई,

उसे पर्याय में विकृत अवस्था होने पर भी उससे रहित परिणमना, उसका स्वभाव है। यह तो ऐसा कहा कि, व्यवहार पर्याय में हो, रागादि व्यवहाररत्नत्रय, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प (हो)... आहाहा! नव तत्त्व के भेद की श्रद्धा का विकल्प, शास्त्र का पढ़ना, परसन्मुख के लक्ष्यवाला विकल्प, आहा! और पंच महाव्रत का विकल्प... आहाहा! यह तीनों एक समय में पर्याय में विकृत अवस्थारूप होने पर भी आत्मा में गुण ऐसा है कि जिसने गुणी की दृष्टि की तो उसका गुण ऐसा है कि विकाररूप (परिणमन से रहित भावशक्ति) आया? क्या आया? देखो!

कारकों के अनुसार जो क्रिया... वर्तमान विकृत अवस्था। उससे रहित जो क्रिया। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि पर्याय की विकृत अवस्था—क्रिया। उससे रहित। आहाहा! **भवनमात्रमयी...** उससे रहित होनेरूप। रागसहित होनेरूप नहीं। समझ में आया? ऐसी बातें हैं। ओहोहो! सन्तों ने संक्षिप्त शब्दों में रामबाण मारे हैं। आतमराम अपने स्वरूप में रमे, तो कहते हैं कि विकृत अवस्था से रहित रमता है। विकृत अवस्था में रमता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पर का तो इसमें अभाव है, पर में तो अपनी पर्याय प्रविष्ट नहीं होती परन्तु उस पर्याय में जो विकृत अवस्था है, वह द्रव्य-गुण में प्रविष्ट नहीं होती, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? बाबूभाई! ऐसा सब है। दूसरा सब सरल मानकर बैठे और जिन्दगी चली जाती है। यह यात्रा की, इसलिए मानो हो गया धर्म।

शत्रुंजय शाश्वत् तीर्थ है? ऐसा कल कोई पूछता था न? रिखवदास के आस-पास के। अरे! भगवान! शत्रुंजय तो यह भगवान आत्मा है। विपरीत राग वह शत्रु है, अनिष्ट है, उसकी परिणति से रहित होना, वह आत्मा का गुण है। आहाहा! समझ में आया? इतनी बात समझने की वस्तु थी। शिखरचन्दजी गये? गये? अच्छा।

तुम्हारे जयपुर के पढ़नेवाले तेरह व्यक्ति हैं? सब हैं? व्याख्यान के बाद वहाँ आना है। प्रवचन पूरा होने के बाद स्वाध्यायमन्दिर में आना। आज फोटो आये हैं। किसी ने फोटो दिये हैं। एक-एक भेंट देना है। छोटा फोटो आया है। यह प्रवचन पूरा होने के बाद सवा चार बजे (आना)। ज्ञानचन्दजी भी साथ में आना। जयचन्दभाई न आवे तो उनके लिये ले जाना। कोई भाई दे गये हैं। हिम्मतभाई। १८ हैं, १८ फोटो दे गये हैं। वे अठारह एक-एक को दे देना, ऐसा कहा। मैंने तो कुछ देखा भी नहीं। यहाँ ऑफिस में मिलते हैं। वे

गोंडलवाले हैं न ? फोटोवाले। बनाया होगा। हमको तो खबर भी नहीं, क्या है, कौन है ? देखा तब कहा, यह लाये कहाँ से ? ऑफिस में मिलता है, ऐसा चन्दुभाई कहते थे। अपने को तो कुछ खबर नहीं। एक फोटो मेरा है और एक भगवान का है। साथ में एक-एक है। ऐसे अठारह फोटो हैं। ज्ञानचन्दजी को एक, रतनचन्दजी को एक, भाई हुकमचन्दजी को और तेरह विद्यार्थियों को (देना है)। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा अन्दर चिदानन्द का फोटो खींचना है। पर्याय में द्रव्यदृष्टि होने से परमात्मा का फोटो पर्याय में आता है। वह परमात्मा की पर्याय में विकृत अवस्था के अभावरूप परिणमना, वह भाव नाम के गुण का कार्य, वह द्रव्य का स्वभाव है। आहाहा! बहुत कठिन काम। यहाँ तो अभी व्यवहार से निश्चय होता है, (ऐसा लोग कहते हैं)। व्रत, तप, भक्ति, पूजा और शुभभाव बहुत करें तो निश्चय होता है। अरे! भगवान! यहाँ तो व्यवहार की क्रिया पर्याय में होती है परन्तु ज्ञानी का परिणमन तो उससे रहित परिणमन है। वह विकार परिणाम तो परज्ञेय में जाते हैं। भाई! आहाहा! है अवश्य, परन्तु उस विकृत अवस्था का ज्ञान होता है और विकृत से रहित भवन होना, वह उसका गुण है। उसमें विकृतसहित होना, ऐसा कोई आत्मा में गुण नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! पण्डितजी ने तो कहा था कि यह शक्ति (पूरी होगी) ? शक्तियाँ चले, इस प्रकार से चले। यह कहीं एकदम... आहाहा!

वहाँ कहा कि आत्मा में एक गुण ऐसा है, गुण ऐसा है। गुण कहो या शक्ति कहो, कि जिसने आत्मद्रव्य की दृष्टि की तो आत्मा में एक ऐसा गुण है कि विकृत अवस्था पर्याय में होने पर भी उससे रहित परिणमना, वह भावगुण का कार्य है। विकारसहित परिणमना, वह आत्मा का गुण नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! क्या कहा ?

कारकों के अनुसार... कारक छह आये। (संवत्) २०१३ के वर्ष में वर्णीजी के साथ पर्याय की चर्चा हुई थी। पंचास्तिकाय ६२ गाथा। बीस वर्ष हुए। फाल्गुन महीना था। चैत्र, वैशाख, जेठ, अषाढ़ और दो श्रावण गये। साढ़े बीस वर्ष हो गये, वहाँ कहा था कि पर्याय में विकृत अवस्था स्वतन्त्र पर कारक की अपेक्षा रखे बिना विकृत होती है। दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के भाव पर्याय में षट्कारक से पर निमित्त के कारक की अपेक्षा बिना अपने में होते हैं। यह बात तो सिद्ध रखी। अब यहाँ तो द्रव्यदृष्टि जहाँ हुई...

पर्याय में तो सिद्ध रखी, भाई! पर्याय में षट्कारकरूपी विकृत अवस्था तो सिद्ध रखी, परन्तु वह ज्ञेय में गया। जहाँ द्रव्यस्वभाव का भान हुआ तो भावशक्ति का ऐसा गुण है कि वह विकृत अवस्था से रहित परिणमना। है ?

क्रिया उससे रहित भवनमात्रमयी... भवन—पर्याय में परिणमन होना, ऐसा कहते हैं। यह राग जो व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, उससे रहित होना, वह उसका गुण है। यह रागसहित होना, ऐसा कोई गुण आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! अरे रे! प्रभु का जैनधर्म अलौकिक पन्थ है, बापू! आहाहा! भगवान आत्मा में, गुणी जो भगवान इस गुण का धरनेवाला, गुण का आश्रय द्रव्य है, गुण का आश्रय गुण नहीं। भावशक्ति का आश्रय तो द्रव्य है। आहाहा! भाव का आश्रय दूसरा कोई गुण है, ऐसा नहीं है। यह भाव जो गुण है, उसका आश्रय तो द्रव्य है। अत: जिसने द्रव्य का आश्रय लिया, गुण और द्रव्य के भेद का भी नहीं... आहाहा! जिसे द्रव्य का, त्रिकाली ज्ञायकभाव का लक्ष्य हो गया; लक्ष्य कहो या आश्रय कहो या सन्मुखता कहो... आहाहा! ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव को पर्याय में विकृत अवस्था होती है, तथापि उसकी पर्याय पर दृष्टि नहीं है। उसकी दृष्टि द्रव्यस्वभाव पर है। इस कारण से धर्मी को विकृत अवस्था से रहित भवनमात्र, विकृत अवस्था से रहित भवन, विकृत अवस्था से रहित होना, विकृत अवस्था से रहित होना, ऐसा उसका गुण है। आहाहा! सेठ! समझ में आया ? भाषा जरा... आहाहा!

सुनो! भगवान! आहाहा! यहाँ तो पर्याय में षट्कारक से विकृत अवस्था स्वयंसिद्ध स्वतन्त्र, निमित्त की अपेक्षा बिना स्वयं से होती है। होओ, परन्तु आत्मा का एक गुण ऐसा है कि उससे रहित होना, वह उसका गुण है। आहाहा! ऐसी बात कहाँ (मिलती है) ? यह सब सेठिया और सब पैसे और यह धूलधाणी... जिनेश्वरदासजी! पैसे में फँस गये हैं। उसमें पाँच-पच्चीस लाख रुपये हों और धूल मिले... आहाहा! उसमें कोई दो-पाँच लाख खर्च करे... तो धर्म हो गया। धूल में भी धर्म नहीं, सुन तो सही।

यहाँ तो पुण्य परिणाम का जो विकल्प है, दान आदि का विकल्प है, उस विकल्प की पर्याय भले हो परन्तु उसका—भगवान का स्वभाव विकृत अवस्था से रहित होना, विकृत अवस्था से रहित भवन होना, यह उसका गुण है। आहाहा! गजब बात की है न! व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है, यह बात भी इस प्रकार मिल जाती है। आहाहा! शैली

वह शैली है ! ग्यारहवीं गाथा में कहा था न कि भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। त्रिकाल ज्ञायकभाव... आहाहा ! उस सत्यार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। यह तो निश्चय हुआ। पश्चात् उसे व्यवहार है या नहीं ? तो बारहवीं गाथा में कहा कि रागादि होते हैं, उन्हें जानना, वह व्यवहारनय का विषय है। जानना। राग मेरा है—ऐसा करना, वह कहीं स्वरूप में नहीं है। आहाहा ! गजब बात है, प्रभु ! समयसार... आहाहा ! केवलज्ञानी के विरह भुलावे ऐसा है। अरे रे ! आहाहा ! क्या कहते हैं ? देखो ! इतने शब्द में सब भरा है, हों !

कारकों के अनुसार... कर्म के अनुसार, ऐसा नहीं लिया, भाई ! क्या कहा ? कर्म अनुसार, ऐसा नहीं लिया। एक बात तो यह। हिम्मतभाई ! आहाहा ! प्रभु ! तेरी पर्याय में षट्कारक अनुसार विकृत अवस्था होती है, परन्तु प्रभु ! तेरा गुण ऐसा है कि विकृत अवस्थारहित भवन होना, वह तेरा गुण है। आहाहा ! समझ में आया ? थोड़ा लिखा बहुत जानना, वह यह बात है। आहाहा ! थोड़ा कहा बहुत जानना। अरे रे ! इसने आत्मा की दरकार कभी नहीं की।

यहाँ तो प्रभु कहते हैं, प्रभु ! तेरे स्वभाव में गुण ऐसा है कि विकृत अवस्था से रहित होना, भवन होना, वह तेरा गुण है। विकृत सहित होना, ऐसा कोई गुण तुझमें है ही नहीं। वह तो पर्याय में खड़ा किया है। पर्याय में षट्कारक के परिणमन से विकृत अवस्था खड़ी हुई है। व्यवहाररत्नत्रय भी पर्याय में खड़ा किया है। आहाहा ! वह भी कारक के अनुसार है, पर के अनुसार नहीं। भाई ! समझ में आये उतना समझना, प्रभु ! यह तो भगवान अन्दर विराजमान है, वह कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! प्रभु ! तू एक बार सुन तो सही, नाथ !

तेरी शक्ति में एक ऐसी प्रभुता है और प्रभुता में भाव नाम का एक रूप ऐसा है कि तेरी पर्याय में विकृत अवस्था होने पर भी उससे रहित भवन होना, यह तेरा स्वभाव है। आहाहा ! मणिभाई ! क्या कहते हैं ?

मुमुक्षु : प्रतिज्ञा को किस प्रकार निभाना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने प्रतिज्ञा की है ? राग करना, वह प्रतिज्ञा है ? राग से रहित होना, वह प्रतिज्ञा है। आहाहा ! ऐसा कि यह पंच महाव्रत की प्रतिज्ञा की हो न ? वह तो

समझने के लिये पूछते हैं, हों! आहाहा! निश्चय प्रत्याख्यान तो यह है कि ज्ञान-आनन्द, आनन्द में रहे और रागरूप न हो, इसका नाम प्रत्याख्यान है। यह तो समयसार ३४ गाथा में आ गया है। आहाहा! चारों ओर देखो तो एक धारा बहती है।

तेरी चीज़ प्रभु! वीतराग स्वभाव से भरी है न, नाथ! और उस स्वभाववान की यदि तुझे दृष्टि हुई तो विकाररूप परिणमना, वह तेरा स्वभाव नहीं। पर्याय का स्वभाव है, तेरे गुण और द्रव्य का नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानचन्दजी!

मुमुक्षु : बहुत पर्याय में राग होने पर भी परिणमता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभावरूप परिणमता नहीं। उससे रहित परिणमना, सहित परिणमना नहीं। आहाहा! इसका एक गुण ऐसा है, शक्ति ऐसी है, द्रव्य की एक शक्ति ऐसी है कि प्रत्येक गुण में उस शक्ति का रूप है। चारित्रगुण की विपरीत पर्याय परिणमती हो परन्तु चारित्रगुण में भाव नाम का रूप है, इस कारण से विकार से रहित होना, वह तेरा गुण है। आहाहा! कभी सुना न हो, क्या करे? जैन नाम धरावे, हम दिगम्बर हैं, वह कहे-हम श्वेताम्बर हैं। ऐई! शन्तिभाई! आहाहा! भाई! तेरी चीज़ क्या है, वह ले न। दिगम्बर, श्वेताम्बर का तुझे कहाँ नाम है?

वस्तु भगवान आत्मा, एक समय में पूर्णानन्द का नाथ प्रभु। त्रिकाल कहना, वह तो अभी व्यवहार है, यहाँ तो वर्तमान में त्रिकाली चीज़ ही पड़ी है। समझ में आया? और उस त्रिकाली वस्तु में त्रिकाली शक्तियाँ पड़ी है। उसमें यह भाव नाम का गुण कहो, शक्ति कहो, उसके कारण से प्रत्येक गुण में वर्तमान में कोई विकृत अवस्था हो, तथापि प्रत्येक गुण का गुण ऐसा है कि विकृतरहित भवन होना, वह तेरा गुण है। आहाहा! शशीभाई! कितनों को तो कान में पहला पड़ा हो, ऐसा लगे। नहीं? ज्ञानचन्दजी! आहाहा! मुझे ख्याल में था कि ज्ञानचन्दजी रहेंगे तो अन्तिम सुन ले। ऐसा विकल्प अन्दर आया था। आहाहा!

प्रभु! तू कहाँ है? क्या तू शरीर में है? पर में है? क्या तू राग में है? आहाहा! राग में भी तू नहीं। आहाहा! तू तो पवित्र शक्ति का पिण्ड है, उसमें तू है। उसमें रहनेवाला पर्याय में रागरूपी षट्कारक से परिणमन होने पर भी, इस गुण के कारण उससे रहित होना, वह इसका गुण है। रागसहित होना, ऐसा कोई गुण नहीं। आहाहा!

दूसरी बात, कि व्यवहाररत्नत्रय से सहित होना, ऐसा कोई गुण नहीं। भाई!

आहाहा! चेतनजी! उसमें है न? पर्याय में षट्कारक से विकृत पर्याय कर्ता, पर्याय विकृत कर्ता, हों! गुण-द्रव्य कर्ता नहीं तथा पर कर्ता नहीं। आहाहा! एक समय की दशा में कितने गुण की विपरीत अवस्थारूप से पर्याय में होना, वह इसका स्वरूप नहीं। उनसे रहित भवन होना, वह तेरा स्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो अभी (ऐसा कहते हैं कि) व्यवहार है तो उससे निश्चय होगा और व्यवहार भी मोक्ष का मार्ग है। प्रभु! बहुत अन्तर है, हों! नाथ! तेरी चीज़ में अन्दर डुबकी लगाना चाहिए, उसके बदले तूने राग में डुबकी लगायी। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! शशीभाई! ठीक मौके से आये हो। आहाहा! बात ऐसी है, भगवान!

प्रभु! तू पवित्र है न! तेरा द्रव्य पवित्र है, तेरे गुण पवित्र हैं, प्रभु! आहाहा! तो परिणमन में पवित्रता आती है या अपवित्रता आती है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह अपवित्रता पर्याय में हो परन्तु उससे रहित पवित्रता का परिणमन होना, वह तेरा गुण है। आहाहा! आहाहा! अरे! एक भाव भी यथार्थ समझे तो सर्व भाव समझ में आ जाये। एक भाव भी, कोई भी एक भाव यथार्थ समझ में आये तो पूरी वस्तु की स्थिति यथार्थ समझ में आ जाये। आहाहा! अरे रे! जगत अनादि से विकल्प के जाल में अपनापन मानकर चार गति में भटकता है। जहाँ द्रव्य और गुण पवित्र हैं, वहाँ अपनापन माना नहीं और शरीर, वाणी, मन, स्त्री, पुत्र, परिवार वे तो पर रहे, उनकी तो बात यहाँ है ही नहीं। उनका द्रव्य उनके कारण से परिणम रहा है, तेरे कारण से नहीं। उनकी पर्याय उनके कारण से होती है, तेरे कारण से नहीं। आहाहा! उनके कारण से रहे हैं, उनके कारण से आये हैं, और उनके कारण से वे चले जायेंगे। तेरे कारण से आये हैं और तेरे कारण से चले जायेंगे, ऐसा नहीं है। आहाहा! यहाँ तो तेरे कारण से पर्यायबुद्धि में विकृत अवस्था होती है... आहाहा!

(कर्ता, कर्म आदि)... छह बोल लेना। **कारकों**... यहाँ यह पर्याय की बात है। छह कारक पर्याय में होते हैं, द्रव्य-गुण में षट्कारक तो ध्रुवरूप है। गुण और द्रव्य में जो षट्कारक हैं, वे तो ध्रुवरूप हैं। पर्याय में षट्कारकों के अनुसार। आहाहा! गजब बात करते हैं। अरे! अमृतचन्द्राचार्य प्रभु! आपने तो केवलज्ञान का काम किया है!! आहाहा! हजार वर्ष पहले मुनि हुए, यह उनकी बात है। पंचम काल के मुनि। आहाहा! परमेश्वर के पद में थे। आचार्य णमो लोए सव्व आइरियाणं पंच परमेष्ठी में पद है न? आहाहा! टीका

(करने का) ऐसा विकल्प आया। यह शब्दों की रचना तो जड़ से हुई। परन्तु कहते हैं कि यह जो विकल्प आया, उससे रहित मेरा परिणमन है। आहाहा! वह मैं हूँ। रागसहित हूँ, वह मैं नहीं। आहाहा! बाबूभाई! कहीं अहमदाबाद में मिले, ऐसा नहीं और कहीं मिले, ऐसा नहीं।

अभी तो वे कहते हैं, चर्चा करो। प्रभु! क्या करना है? कि कर्म से विकार होता है, कर्म से विकार होता है। अरे! प्रभु! तेरी पर्याय में परलक्ष्य से षट्कारक अनुसार तुझमें होता है, वह भी तेरा कोई गुण ऐसा नहीं कि विकारसहित परिणमन करना। आहाहा! पर्याय की स्वतन्त्रता विकृत अवस्थारूप हुई, तथापि तुझमें ऐसी ताकत है, गुण की ताकत है, भाव नामक गुण की ताकत है, अरे! अनन्त गुण में भाव नाम का रूप है तो अनन्त गुण की ताकत है कि विकाररूप नहीं परिणमना, ऐसी तेरी ताकत है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर है न! देखो! आहाहा! बाहर की बात हमें बहुत याद नहीं रहती। अन्तर की ज्ञायक की विशेष याद रहती है। बाहर में किसी समय भूल भी हो जाये। समझ में आया? तुमने कहा था न? यह मुझे ख्याल में आया था। पत्र में कुछ समाचार आये हैं। ऐसा ख्याल में रह गया। समाचार आये, यह तो बराबर है या नहीं? आहाहा!

आहाहा! पार नहीं। एक शक्ति में इतनी गम्भीरता है। और उस भावशक्ति का परिणमन क्रमवर्ती जो रागरहित परिणमन होता है, वह क्रमवर्ती पर्याय और अक्रमवर्ती गुण और द्रव्य, यह तीन मिलकर आत्मा है। राग का परिणमन होना, उस सहित आत्मा नहीं। आहाहा! क्या कहा? विमलचन्दजी! तुम्हारे छोटे भाई बोले थे। कहा, ठीक, इसके घर में थोड़ा-थोड़ा रस लड़कों को भी है। आहाहा!

आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु पवित्रता का पिण्ड प्रभु वह तो है। आहाहा! वह तो वीतरागस्वभाव से भरपूर भगवान आत्मा है। तो कहते हैं कि वीतरागस्वभाव में भाव नाम का एक वीतरागी गुण ऐसा है... आहाहा! वीतरागभावरूप ही परिणमना, रागरूप नहीं परिणमना, वह तेरा गुण है, प्रभु! आहाहा! समझ में आया? अरे! प्रभु! तू विवाद किसका करता है? भाई! अरे! प्रभु! इसमें तेरे हित की बात है न! आहाहा! विकारसहित परिणमना, ऐसी दृष्टि तो मिथ्यादृष्टि की है, ऐसा कहते हैं। रतनचन्दजी! आहाहा!

व्यवहाररत्नत्रय का राग पर्याय में स्वतन्त्र षट्कारक से होता है। आहाहा! तो भी उसका गुण ऐसा है, और प्रत्येक गुण में उस भाव नाम का रूप अर्थात् स्वरूप भी ऐसा है कि विकृत अवस्थारूप नहीं होना, उससे रहित होना; सहित नहीं होना परन्तु रहित होना—(ऐसा गुण है)। है? **कारकों के अनुसार...** भाषा ऐसी है—कारकों के अनुसार। कर्म के अनुसार, ऐसा नहीं लिया। आहाहा! पर्याय में राग की विकृत अवस्था... आहाहा! पर में सुखबुद्धि, ऐसी मिथ्यात्व की बुद्धि, उसकी तो यहाँ बात है नहीं। यहाँ तो आसक्ति के परिणाम जो ज्ञानी की पर्याय मे होते हैं... समझ में आया? विकृत अवस्था मिथ्यात्व की पर्याय में होती है, तब तो उसके अभावरूप परिणमन उसे होता ही नहीं। क्योंकि वहाँ द्रव्यदृष्टि नहीं है। समझ में आया? आहाहा! मुनियों ने तो गजब काम किया है! इसमें से अर्थ करते-करते बाहर निकलना (बनता नहीं)। इतनी गम्भीरता... इतनी गम्भीरता। आहाहा! अमृत का बाण मारा है।

प्रभु! तुझमें ऐसा गुण है कि अमृतरूप परिणमना, वह तेरा गुण है। रागरूप—जहररूप परिणमना, वह कोई तेरा गुण नहीं है। आहाहा! यह तो अभी पर का मैं कर दूँ और पर से मुझमें कुछ होता है, यह तो बड़ी भूल है। यह तो पर्याय में स्वयं से होता है, उसरूप नहीं परिणमना, वह तेरा गुण है। आहाहा! समझ में आया? इसमें पुनरुक्ति (दोष) नहीं लगता, हों! आहाहा!

क्योंकि तुझमें एक चारित्र नाम का—वीतरागभाव स्वभाव गुण है और उसके साथ यह भाव नाम का गुण है। सैंतालीस शक्ति में सुखशक्ति आयी थी न? तो सुखशक्ति में समकित और चारित्र समाहित कर दिये हैं। मैंने फिर पृथक् किया है। कल ३७ शक्ति आयी थी न? ५४ बतायी थी। उसमें समकित, चारित्र को भिन्न किया था, उसमें नाम नहीं आये थे, इसलिए भिन्न किया।

यहाँ कहते हैं, समकिती जीव को द्रव्य और गुण की प्रतीति हुई है। द्रव्य और गुण के भेद में भी नहीं। आहाहा! द्रव्य की प्रतीति ज्ञायकभाव, यह चैतन्यस्वभाव पवित्रता का पिण्ड प्रभु है, ऐसा ज्ञान करके प्रतीति हुई है, उस धर्मी को पर्याय में विकृत अवस्था होने पर भी... पर के सम्बन्ध की बात यहाँ छोड़ दी है। अपनी पर्याय में विकृत कारक अनुसार, कर्ता, कर्म अनुसार पर्याय में होने पर भी उसरूप नहीं भवन—नहीं होना, वह तेरा गुण है।

आहाहा! इसका अर्थ कि राग होता है, उसका जाननेवाला रहना, वह तेरा गुण है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। समझ में आया?

कारकों के अनुसार जो क्रिया... वर्तमान पर्याय में विकृत क्रिया। लो, यह क्रिया कहते हैं या नहीं? कि हमारा क्रियाकाण्ड ये उत्थापते हैं। परन्तु वह क्रिया कारक अनुसार पर्याय में होती है, वह विकृत है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! परमात्मस्वरूप प्रभु तू है न! बाह्य परमात्मा की उपस्थिति नहीं। तेरा प्रभु तो तेरे पास है न! अरे! तेरा प्रभु तू ही है। पास क्या? ऐसी प्रभुत्वशक्ति एक-एक शक्ति में पड़ी है और एक-एक शक्ति में भावशक्ति नाम का रूप पड़ा है। आहाहा! प्रभुता की शक्ति के कारण से पर्याय में प्रभुतारूप परिणमन होता है, और यहाँ भावशक्ति के कारण से विकार से रहित भवनरूप परिणमन होता है। इतनी बात। समझ में आया? भाई! इसमें व्यवहार से निश्चय होता है, व्यवहार निमित्त है तो निश्चय में होता है, यह बात कहाँ रही? भाई! निमित्त हो, परन्तु उसरूप नहीं होना, वह तेरा गुण है। आहाहा! निश्चय में व्यवहाररत्नत्रय का निमित्त हो परन्तु निमित्त से परिणमना, ऐसा निश्चय में नहीं है, उससे रहित परिणमना, वह तेरा गुण है। आहाहा! निमित्त से नहीं परिणमना, निमित्तरूप भाव से नहीं परिणमना, ऐसा तेरा गुण है। आहाहा! समझ में आया? यह तो भगवान की वाणी है, प्रभु! यह तो महान गम्भीर है। इसका पार तो सन्त कर सके, केवली कर सके। आहाहा! आहाहा!

चैतन्य भगवान परमात्मस्वरूप तू है न नाथ! तेरे नाथ का अर्थ क्या? जो परिणति शुद्ध हुई है, उसकी तो रक्षा करता है, विशेष नहीं हुई, उसे प्राप्त करता है। राग को प्राप्त करता है और राग करता है, यह बात तो तुझमें है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? नाथ किसे कहते हैं? यह पत्नी के पति को नाथ कहते हैं न? तो पत्नी के पास जो चीज़ हो, उसकी रक्षा करे और न प्राप्त हो, उसे प्राप्त करा दे। घर में पाँच हजार की ऊँची साड़ी नहीं और अपने पास पच्चीस लाख, पचास लाख हो गये हैं। तो अपने पाँच हजार की साड़ी तीन लड़के हैं, उनके लिये चाहिए। पहले तो जो है उसकी रक्षा करता है और नहीं है, उसकी प्राप्ति करता है। पाप। यहाँ परमात्मा कहते हैं, अपनी पर्याय में जितनी निर्मलता है, उसकी तो भावशक्ति के कारण से रक्षा करता है। आहाहा! परन्तु भावभावशक्ति के कारण से, इस भावशक्ति में भावभावशक्ति का रूप है कि जो निर्मल परिणति, रागरहित परिणमन होना,

वह तेरा गुण है और ऐसा भावभाव सदा निरन्तर रहे, वह तेरा गुण है। और राग के अभावरूप परिणमन है, वह वैसा ही अभावअभाव रहेगा, यह तेरा गुण है। यह शक्ति तो पहले आ गयी। समझ में आया ? आहाहा ! एक भी बात यथार्थरूप से भाव में भासन हो तो सब भाव का भासन यथार्थ हो जाता है। समझ में आया ? उसे कोई विशेष ज्ञान करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। आहाहा ! समझ में आया ?

टीकाकार कहते हैं कि पर्याय में विकार का षट्कारक का परिणमन हो, परन्तु उससे मेरा परिणमन रहित है। आहाहा ! टीका के विकल्प के परिणमन सहित मैं हूँ, ऐसा नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? और पंच महाव्रत का विकल्प उठता है, वह पर्याय में पर्याय के षट्कारक अनुसार। तथापि मेरा गुण ऐसा है कि षट्कारकरूप नहीं भवन, नहीं भवन... है ? **उससे रहित भवनमात्रमयी...** भवनमात्रमयी। आहाहा ! अभेद। समझ में आया ? यह तो एक-एक अक्षर में बहुत (गम्भीरता है)।

भवनमात्रमयी... यह राग और व्यवहार के विकल्प की पर्याय हो, परन्तु उससे रहितरूप होना, ऐसा गुण है। आहाहा ! व्यवहाररूप होना, वह इसका गुण नहीं है। आहाहा ! यहाँ तो अभी व्यवहार का ठिकाना नहीं होता और कहे, व्यवहार करते (करते) आगे निश्चय होगा, समकित होगा, धर्म होगा। अरे ! प्रभु ! बड़ा शल्य है। तुझमें गुण और द्रव्य की शक्ति की तुझे प्रतीति नहीं है। तेरे द्रव्य और गुण में ताकत कितनी है, उसकी तुझे प्रतीति नहीं। तो तुझे व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसी प्रतीति तुझे मिथ्या शल्य हो गयी है। बराबर है ? आहाहा ! यह अमृतचन्द्राचार्य।

भावशक्ति, भावशक्ति। भाव तो द्रव्य को भी भाव कहते हैं, गुण को भी भाव कहते हैं, पर्याय को—निर्मल पर्याय को भी भाव कहते हैं और राग को भी भाव कहते हैं। परन्तु रागरूप नहीं होना, यह भाव का तेरा स्वभाव है। आहाहा ! मणिभाई ! ऐसी बातें हैं। आहाहा ! 'प्रभु का मारग है शूरों का, कायर का नहीं काम।' आहाहा ! आता है न तुम्हारे ? 'हरि का मारग है, शूरों का, कायर का नहीं काम जोने, प्रथम पहला मस्तक रखकर फिर लेना हरि का नाम जोने।' हरि अर्थात् यह भगवान आत्मा, हों ! विकार को हरे और अज्ञान को हरे, ऐसा भगवान हरि। विकार करे, वह हरि—आत्मा नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? विकार को हरे, यह भी एक निमित्त का कथन है। बाकी विकार का ज्ञान करे, यह

भी व्यवहार का कथन है। अपने में विकाररहित में ज्ञान की, श्रद्धा की, आनन्द की परिणति में उसका ज्ञान आ जाता है। निज स्व-परप्रकाशक ज्ञान के कारण से उसका ज्ञान आ जाता है। उसका ज्ञान, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा धर्म अब, किस प्रकार का? साधारण मनुष्यों को, नये हों उन्हें तो पकड़ में नहीं आता। क्या कहते हैं परन्तु यह? क्या सुन आये? घर से (ऐसा पूछे)। महाराज कुछ कहते थे, ऐसा है और वैसा है, और वैसा है... कुछ समझ में नहीं आता था। अरे! भगवान! न समझ में आये ऐसी चीज़ है? समझवाले को समझाते हैं न? या रागवाले को समझाते हैं? राग को समझाते हैं? शरीर को समझाते हैं? आहाहा!

यहाँ तो क्षयोपशमज्ञान की पर्याय हुई है, उसे कहते हैं, प्रभु! तेरे क्षयोपशमज्ञान में निर्मल परिणति होती है, वह तेरे गुण के कारण से है। आहाहा! ज्ञान की शुद्धि की वृद्धि होती है, वह ज्ञानावरणीय कर्म हटता है तो शुद्धि की वृद्धि होती है, ऐसा नहीं। आहाहा! यह शुद्धि की वृद्धि होती है, वह तेरे भावभाव नाम के गुण के कारण से है। और भाव नाम के गुण के कारण से वर्तमान राग से रहित होना, वह तेरे गुण का कार्य है। समझ में आया? लो, इतना हुआ। आठ (मिनिट) बाकी है। अब दूसरी...

कारकानुगतभवत्तारूपभावमयी क्रिया-शक्तिः।

कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप भावमयी क्रियाशक्ति।४०।

कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप भावमयी क्रियाशक्ति। अब देखो! पहले कारक के अनुसार रहित होने की (शक्ति) थी। अब कारकों के अनुसार, निर्मल कारक अनुसार (कहा)। समझ में आया? पहले (ऐसा कहा था), पर्याय में विकृत कारक से रहित होना (ऐसा था)। यहाँ निर्मल कारकसहित होना, (ऐसा कहा)। आहाहा! निर्मल पर्याय के षट्कारक... अन्दर निर्मल षट्कारक पड़े हैं। उसके अनुसार निर्मल परिणति होना, यह इसका गुण है। उसमें रहितरूप होना, इतना गुण कहा था। अब यहाँ सहितरूप होना, यह गुण है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तुम्हारा काम नहीं। कुछ न कुछ बोला ही करे, इसका ठिकाना नहीं। कुछ नया किया ही करे। ... है यह। समझ में आया ? आसन बिछाकर वहाँ बैठे यह। बिछाया हो किसी के लिये। वे भाई कहते थे, उसके ऊपर बैठे। सब खाता ठिकाने बिना का है। आहाहा! यहाँ तो ठिकानेवाली बात करते हैं। आहाहा!

कारकों के अनुसार... उसमें भी कारकों के अनुसार था, परन्तु वह विकृत अवस्था की क्रिया थी। यह कारकों के अनुसार अविकृत जो कारक अन्दर है (उनकी बात है)। आहाहा! कर्ता, कार्य, जिसका कार्य हो, कर्ता हो, करण हो—साधन हो, सम्प्रदान—रखकर अपने में रहे, अपने से हो और अपने आधार से हो। समझ में आया ? आहाहा! इन **कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप...** आहाहा! भावमयी... है ? भावमयी क्रियाशक्ति। यह क्रियाशक्ति। है ? **कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप भावमयी क्रियाशक्ति।** देखो! क्रियाशक्ति का अर्थ यह। क्रियाशक्ति अन्दर है, वह क्रियाशक्ति उसे कहते हैं कि जो षट्कारक निर्मल हैं, तद्नुसार परिणति करे, उसे क्रियाशक्ति कहते हैं। आहाहा! राग की क्रिया की यहाँ बात नहीं। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा!

कारकों के अनुसार... निर्मल कारक, हों! उससे **परिणमित होनेरूप भावमयी...** ऐसी अवस्थारूप क्रियाशक्ति। उसकी अवस्था भी ऐसी होती है। षट्कारक जो निर्मल पड़े हैं, उसके अनुसार निर्मल परिणति होती है, उसे यहाँ क्रियाशक्ति कहते हैं। आहाहा! राग की क्रिया की यहाँ बात नहीं है। आहाहा! अपने में एक भावमयी क्रियाशक्ति ऐसी है कि जो भगवान आत्मा में निर्मल षट्कारक पड़े हैं, उसके अनुसार निर्मल परिणति हो, उसका नाम क्रियाशक्ति कहा जाता है। आहाहा! वह राग की क्रिया और ज्ञानक्रिया दो होकर मोक्षमार्ग, ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

यह तो प्रश्न हमारे वहाँ सम्प्रदाय में उठा था। रतनचन्दजी शतावधानी थे, उनके गुरु थे। चोटीला में मिले। (संवत्) १९९० के वर्ष। १९९१ से पहले। ९० समझे न ? मिले, तो हम तो साधु के साथ नहीं उतरते थे। हम तो पहले से किसी को साधु नहीं मानते थे। सम्प्रदाय में भी। उतरे तो बहुत प्रसन्न हुए, खुश हुए। फिर प्रश्न चला कि शास्त्र में ज्ञानक्रियाभ्याम मोक्ष कहा है न ? रतनचन्दजी के गुरु थे। श्वेताम्बर स्थानकवासी लींबड़ी

सम्प्रदाय। बहुत पुराने ५५ वर्ष की तो तब दीक्षा थी, तब, हों! फिर तो बहत्तर वर्ष रहे। कहा, ज्ञानक्रियाभ्याम कहा है, वह कौन सा ज्ञान? ज्ञान अपना वेदन, और क्रिया–रागरहित क्रिया, वह क्रिया। यह ज्ञानक्रियाभ्याम मोक्ष है। अपना ज्ञान और राग की क्रिया, दो से मोक्ष होता है, ऐसी बात ही नहीं है। तो कहा, बात तो सत्य लगती है। बात तो सच्ची है। अभी तो विपरीत चलता है। ५५ वर्ष की दीक्षा थी। तब तो गुलाबचन्दजी ७५ वर्ष के होंगे। (संवत्) १९८२ के वर्ष। वढवाण चातुर्मास में आना था, तब मार्ग तो यह है, कहा।

यह भावमयी अर्थात् शुद्ध परिणतिमयी शक्ति, यह मोक्ष का कारण है। समझ में आया? उस परिणति को यहाँ क्रियाशक्ति कहते हैं। विशेष आयेगा, लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ३५, शक्ति- ४०, ४१ बुधवार, भाद्रशुक्ल १, दिनांक १४-०९-१९७७

समयसार, शक्ति का अधिकार। शक्ति का अर्थ आत्मा का गुण ऐसा है। एक-एक गुण ऐसा है कि प्रत्येक गुण द्रव्य के आश्रय से रहा है। उस गुण का स्वरूप क्या? उसका वर्णन है। पश्चात् दृष्टि करना। गुण और गुणी के भेद की दृष्टि नहीं। दृष्टि तो द्रव्यस्वभाव पर करने से (गुण का परिणमन होता है)। गुण का परिणमन सीधा स्वतन्त्र नहीं होता। क्या कहा? चिद्विलास में यह आ गया है। पहले बात की थी। यह शक्ति है, वह गुण है। उस गुण का एक-एक का परिणमन है, ऐसा नहीं। द्रव्य परिणमने से गुण का परिणमन आ जाता है। न्याय समझ में आया? यह कुछ समझ में आये ऐसा नहीं, बाबूभाई! सिर फोड़े बाहर में।

क्योंकि शक्ति का एकरूप जो द्रव्य है, उस द्रव्य के परिणमन से गुण का परिणमन साथ में होता है। यह बात पहले चिद्विलास में कह गये हैं। चिद्विलास में पहले यह बात कह गये हैं। समझ में आया? इसमें रहस्य है। गुण पर दृष्टि देने से गुण का परिणमन नहीं होगा। समझ में आया? परन्तु गुण का आश्रय जो द्रव्य है... आहाहा! उसके आश्रय से द्रव्य का परिणमन होता है। उसमें गुण का परिणमन आ जाता है। न्याय समझ में आता है? चिद्विलास में ऐसा है। एक बार कहा था न? कहीं है अवश्य। चिद्विलास कितना पृष्ठ है, खबर है? पृष्ठ कहीं याद रहते है? गुण का परिणमन सीधे नहीं होता, ऐसा कहा है। उसका कारण है कि वस्तु पूरी जो है, वह परिणमती है, तब गुण का परिणमन साथ में होता है। परन्तु गुण का परिणमन स्वतन्त्र है, द्रव्य नहीं परिणमता और गुण परिणमता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? न्याय समझ में आता है? जिनेश्वरदासजी! और उसका आशय भी यह है कि गुण के भेद की दृष्टि करना नहीं है। क्योंकि गुण का परिणमन गुण के लक्ष्य से नहीं होता। भले प्रवचनसार में एक जगह आया है, असाधारण ज्ञान के कारण से। परन्तु ज्ञान शब्द से पूरा आत्मा। समझ में आया? आहाहा! यह तो शान्ति की बात है। भगवान! अन्दर की बातें हैं।

शक्ति के वर्णन में शक्ति, वह गुण है, तो गुण का सीधा परिणमन ऐसे नहीं आता। द्रव्य परिणमने से अनन्त गुण साथ में हैं तो अनन्त गुण का परिणमन साथ में है। ऐसी सूक्ष्म

बाते हैं। आहाहा! समझ में आया? शक्ति के वर्णन में अपने तो यहाँ ३९-४० फिर से लेनी है। थोड़ी फिर से (लेनी है)। इस ओर के पृष्ठ पर कहीं है अवश्य। तब बताया था न? हीराभाई! भाव याद होते हैं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ अपने ३९वीं (शक्ति) फिर से लेनी है। क्यों? कारण है। **(कर्ता, कर्म आदि) कारकों के अनुसार जो क्रिया...** यहाँ मलिन पर्याय की बात है। पर्याय में मलिनता होती है, उसे यहाँ क्रिया कहते हैं। समझ में आया? **कारकों के अनुसार जो क्रिया...** ऐसा करके यह सिद्ध किया की पर्याय में षट्कारक अनुसार जो मलिन क्रिया होती है, पर्याय में, हों! मिला? परिणमनशक्ति में आया है, लो! यहाँ है, देखो!

द्रव्य की परिणति, गुण की परिणति-ऐसा तो कहते हैं, परन्तु यह परिणमनशक्ति द्रव्य में से उठती है, गुण में से नहीं। चिद्विलास, पृष्ठ ३१। आधार देते हैं न? हमारे रामजीभाई कोर्ट में कानून का आधार देते हैं। यह शास्त्र का आधार है। **यह परिणमनशक्ति द्रव्य में से उठती है,...** इतना काम तो गृहस्थ समकिती करते हैं। यह परिणमनशक्ति द्रव्य में है, ऐसा बताना है। **परिणमनशक्ति द्रव्य में है,...** यह उपोद्घात है। परिणमनशक्ति द्रव्य में है तो परिणमनशक्ति स्वतन्त्र परिणमती है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी तो अनन्त शक्तियाँ हैं। द्रव्य परिणमता है तो गुण परिणमते हैं। आहाहा! इसका अर्थ भी यह है कि द्रव्य पर दृष्टि देने से पूरा द्रव्य शुद्धरूप परिणमता है। आहाहा! यह वस्तु है। आहाहा!

इसकी साक्षी सूत्रजी में (तत्त्वार्थसूत्र में दी है कि - 'द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः' 'द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः') गुण के आश्रय से गुण नहीं, परन्तु द्रव्य के आश्रय से गुण है। समझ में आया? मीठाभाई! थोड़ी ऐसी बातें हैं। आहाहा! गजब बात है। कितना सिद्ध किया है। इन शक्तियों का वर्णन करते हैं परन्तु यह शक्ति—गुण है, वह गुण स्वयं उठता है—परिणमता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! द्रव्य के परिणमन में उस गुण की परिणति उठती है। समझ में आया? ऐसा कहकर गुण और गुणी के भेद की भी दृष्टि छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जिसमें अनन्त शक्ति का भण्डार भगवान परमात्मा अनन्त आनन्द सागर उछलता है, अनन्त ज्ञान, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता, अनन्त ईश्वरता, एक-एक शक्ति में

अनन्त ईश्वरता है। ऐसी अनन्त ईश्वरता स्वयं नहीं परिणमती। उस अनन्त ईश्वरता का धारक द्रव्य, अनन्त ईश्वर का आश्रय द्रव्य है, उस द्रव्य के परिणमन से सभी गुणों का परिणमन होता है, दशा होती है। आहाहा!

ऐसा कहकर यह भी सिद्ध किया कि तुझे गुण पर दृष्टि नहीं करनी है। गुण का ज्ञान करना। आहाहा! जहाँ सब गुण का पिण्ड पड़ा है। आहाहा! अनन्त शक्ति का पिण्ड द्रव्य स्थित है, उसके ऊपर दृष्टि दे। तुझे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि होंगे। आहाहा! समझ में आया?

परिणमनशक्ति द्रव्य में है, यह बात अलग और पीछे परिणमनशक्ति का वर्णन है, वह अलग। शक्ति तो यह। दो बार वर्णन है। यहाँ परिणमनशक्ति द्रव्य में है, ऐसा कहकर विस्तार किया और पीछे आता है न? परिणमनशक्ति का वर्णन। परिणमनशक्ति में आयेगा। प्रभुत्वशक्ति, वीर्यशक्ति। **वस्तु में परिणामशक्ति का वर्णन...** यह दूसरी बात। पहले ऐसा लिया कि परिणमनशक्ति द्रव्य में है, भाई! आहाहा! द्रव्य में है, इसलिए द्रव्य के परिणमन से शक्ति का परिणमन होता है। और पीछे (कहा), **वस्तु में परिणामशक्ति का वर्णन...** पश्चात् तो यह वस्तु की शक्ति है, उसका वर्णन है। चिद्विलास है न?

यहाँ तो आज दो बातें कहनी हैं कि जो ३९ वीं शक्ति है, उसमें क्रिया शब्द प्रयोग किया है। पर्याय में। पर्याय में... द्रव्य-गुण में तो षट्कारक है, परन्तु पर्याय में (षट्कारक है)। पंचास्तिकाय की ६२वीं गाथा में कहा, भाई! वहाँ ईसरी में चर्चा चली थी कि पर्याय में पर्याय के षट्कारक के परिणमन से विकार होता है। पर की अपेक्षा नहीं, द्रव्य-गुण की नहीं। अरे! ऐसा सूक्ष्म, प्रभु! क्या हो?

एक समय की पर्याय में पर्याय राग का कर्ता, पर्याय कार्य, पर्याय करण—साधन, पर्याय अपादान, पर्याय सम्प्रदान, पर्याय अधिकरण। एक ही पर्याय में विकृत अवस्था के षट्कारक हैं। यहाँ यह सिद्ध करना है कि पर्याय में षट्कारक की विकृत अवस्था है, परन्तु वस्तु का गुण ऐसा है कि उससे रहित परिणमन होना, वह उसका स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! क्या कहा, समझ में आया?

कारकों के अनुसार जो क्रिया... पर्याय। पर्याय में पर्याय के षट्कारकरूप से

कर्ता, कर्म आदि पर्याय में, हों! कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान पर्याय में षट्कारक की क्रिया। आहाहा! उससे रहित। आहाहा! यह मलिन पर्याय है, परन्तु उससे रहित। उसे तो ज्ञेय बना दिया है। आहाहा! जैसे परद्रव्य ज्ञेय है, वैसे षट्कारक पर्याय में विकृत अवस्था है, उससे रहित भवनमात्र भावशक्ति है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म, बापू! 'प्रभु का मारग है शूरों का।' आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो क्रिया और भाव ऐसे शब्द क्यों कहे? पहले पर्याय में षट्कारक के परिणमन को क्रिया कहा। मलिन पर्याय में षट्कारकरूपी परिणमन को क्रिया कहा। भावशक्ति का कार्य क्या है? भाव नाम का उसमें गुण है। वह भाव नाम का गुण ऐसा था कि जो विद्यमान निर्मल पर्याय हो, वह भावशक्ति। यह दूसरी भावशक्ति है। इस भावशक्ति का गुण ऐसा है कि पर्याय में षट्कारक विकृत अवस्था हो, उससे रहित होना। समझ में आया? आहाहा! यह तो सूक्ष्म बातें हैं, भाई! यह बहुत विरोध आया, इसलिए अधिक स्पष्टीकरण (आता है)।

यहाँ तो पर्याय में षट्कारकरूपी राग का—व्यवहाररत्नत्रय का परिणमन हो, लो! व्यवहाररत्नत्रय का। समझ में आया? पर्याय में है न राग? तो षट्कारकरूप से स्वतन्त्र परिणमता है। कर्म की अपेक्षा नहीं, द्रव्य-गुण का कारण नहीं। द्रव्य-गुण तो पवित्र है। अपवित्रता हो, ऐसी कोई शक्ति नहीं तथा अपवित्रता में पर कारण है, इसलिए अपवित्रता होती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

उसे यहाँ कहा कि षट्कारक अनुसार क्रिया। पर्याय की, हों! **उससे रहित...** मलिन पर्याय को यहाँ क्रिया कहा। **उससे रहित भवनमात्र...** आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय राग का परिणमन पर्याय में षट्कारकरूप से होता है, परन्तु भावशक्ति के कारण उससे रहित उसका परिणमन है। आहाहा! समझ में आया? (उससे रहित परिणमना) वह उसका गुण है, गुण वह है। आहाहा! कोई गुण ऐसा नहीं कि विकृतरूप परिणमे, ऐसा कोई गुण नहीं। तब (कोई कहे) विकृत तो होता है। विकार है, नहीं है—ऐसा नहीं है। आहाहा! तो कहते हैं कि वह विकृत अवस्था षट्कारकरूप से स्वतन्त्र पर्याय में होने पर भी भाव नाम की शक्ति अर्थात् गुण के कारण से उस मलिन पर्याय से रहित परिणमन है, वह उसका है। आहाहा! यह शक्ति है। आहाहा!

मुमुक्षु : विकार करने की शक्ति नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : शक्ति नहीं, तथापि पर्याय में होता है। आहाहा! समझ में आया? बापू! वीतराग मार्ग बहुत गम्भीर, भाई! एक-एक शक्ति में भी उसका वर्णन इतना।

पर्याय में विकृत अवस्था षट्कारक सिद्ध करना है परन्तु पर्यायदृष्टिवाले को उसका सहितपना है। परन्तु द्रव्यदृष्टिवाले को द्रव्य में भाव नाम का एक गुण है, इस कारण से व्यवहाररत्नत्रय की विकृत अवस्था षट्कारक की है, उससे रहित भावगुण के स्वभाव के कारण से (उससे) रहित परिणमन होता है। आहाहा! समझ में आया? अब दूसरी बात। ३९ तो हो गयी है। पश्चात् ४० चली थी।

कारकों के अनुसार... अब यह कारक निर्मल लेना। पहले पर्याय के कारक थे, अब यह द्रव्य के-गुण के कारक है, भाई! क्या कहते हैं? समझो। पहले पर्याय में विकृत षट्कारक का परिणमन था। अब यह है वह गुण के षट्कारक, जो पवित्र है। आहाहा! पश्चात् एक-एक को भिन्न करेंगे। पहले एक साथ कर्ता, कर्म, करण, अपादान आदि शक्तियाँ हैं, उन शक्ति का धारक भगवान, उसके आश्रय से जो परिणमन होता है... देखो! आहाहा!

कारकों के अनुसार... उसमें भी कारकों के अनुसार क्रिया थी, वह पर्याय की बात थी और यह कारकों के अनुसार, कारक त्रिकाली शुद्ध है, उसके अनुसार। पर्याय के कारक पर्याय में रह गये। आहाहा! समझ में आया? यह कहा। पर के साथ तुझे क्या सम्बन्ध है? पर है, वह तो उसके कारण से है। विकृत अवस्था तेरी पर्याय में तेरी पर्याय के कारण से षट्कारक का विकृत परिणमन हो, परन्तु उसके भाव नाम के गुण के कारण से गुण ऐसा है और अनन्त गुण ऐसे हैं कि कोई गुण विकृतरूप परिणमे, ऐसा गुण ही नहीं है। आहाहा! गजब बात करते हैं। यह भाव नाम का गुण है, तो इस कारण से मलिन पर्याय में जो षट्कारक की क्रिया हुई, उससे रहित परिणमन होना, वह भाव नाम का गुण है। इसमें कहीं बनियों को निवृत्ति नहीं मिलती और यह धर्म ऐसा सूक्ष्म। बापू! मार्ग अलग, भाई! सम्यग्दर्शन की शुद्धि, दर्शनविशुद्धि, दर्शनशुद्धि की बात अलौकिक है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि पहले जो कारक अनुसार कहा, वह पर्याय के, एक समय के कारक अनुसार। अब जो कहे, वे त्रिकाली पवित्र कारक अनुसार। कारक का आश्रय है द्रव्य, परन्तु कारक अनुसार में द्रव्य का आश्रय हुआ। समझ में आया? आहाहा! अब यहाँ लोग चिल्लाहट मचाते हैं। ऐ... व्यवहार मोक्ष का मार्ग, शुभभाव मोक्ष का मार्ग। अरे! प्रभु! सुन तो सही, प्रभु! आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा शुभभाव, वह मोक्ष का मार्ग है अथवा शुभभाव शुद्धता का कारण है, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो इनकार करते हैं। वह अशुद्धता है, उससे अभावरूप होना, इसका नाम भावशक्ति गुण कहा जाता है। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! समझ में आया इसमें? उन पैसों में झट समझ में आता है, यह भारी कठिन। आहाहा!

गजब बात! अमृतचन्द्राचार्य ने बहुत खजाना खोल दिया है। ओहोहो! यह तो मस्तिष्क में आया है, अन्दर में आता है। इन दो कारकों में से बहुत विचार आये थे। एक कारक अनुसार और यह भी कारक अनुसार, दो क्या है? एक समय की पर्याय में कारकों अनुसार, पर्याय के कारक, हों! आहाहा! उनसे रहितपना भाव नाम का गुण है तो उनसे रहितपना होना—विकार से रहितपना होना, वह भाव नाम का गुण है। आहाहा! समझ में आया?

४० में यह कहा कि, **कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप...** यह निर्मल त्रिकाली द्रव्य, गुण में जो कारक है वह। शक्ति। पहले में पर्याय के षट्कारक लिये थे, अकेले स्वतन्त्र, हों! अब यहाँ त्रिकाली द्रव्य में जो षट्कारक है, उन कारक अनुसार। आहाहा! कारक अनुसार उसमें भी था, कारको अनुसार। परन्तु वे कारक अनुसार पर्याय की क्रिया के। यह कारक अनुसार द्रव्य के कारक अनुसार। समझ में आया? चन्दुभाई! यह सब गड़बड़ी बहुत उठती है, इसलिए (अधिक स्पष्टीकरण आता है)। भगवान! मार्ग ऐसा है, भाई!

सर्वज्ञ की आज्ञा यह है। जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ, जिनेन्द्रदेव का यह फरमान है। प्रभु! तेरी पर्याय में द्रव्य-गुण के आश्रय बिना और पर के आश्रय बिना (विकार होता है)। आहाहा! इसका भी विवाद। कर्म के कारण विकार होता है। उसका यहाँ निषेध करते हैं और शुभभाव से धर्म होता है, उसका भी यहाँ तो निषेध है। समझ में आया? कर्म के कारण

विकार, यह नहीं। यहाँ तो पर्याय में पर्याय के षट्कारक का परिणमन है, इस कारण से मलिन पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! कर्म से नहीं और द्रव्य-गुण से नहीं। आहाहा! ऐसा स्वरूप, भगवान! आहाहा!

यह भाव नाम का गुण ऐसा है कि मलिन परिणाम से रहित होना, ऐसा गुण है। मलिन परिणाम से सहित होना, ऐसा कोई गुण नहीं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि जो द्रव्य पर दृष्टि देता है... आहाहा! उसे मलिन परिणाम से रहित परिणमन होता है।

मुमुक्षु : इसका नाम भेदज्ञान।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका नाम भावशक्ति का कार्य। भाव नाम का गुण है, उसका यह कार्य है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा में भाव नाम का गुण—शक्ति—सत्त्व है। उसका पर्याय में कार्य क्या? कि पर्याय के षट्कारक मलिन परिणाम है, उससे रहित परिणमना, वह भावगुण का कार्य है। आहाहा! बाबूभाई! बहुत सूक्ष्म इसमें। कभी बाप-दादाओं ने सुना न हो वहाँ। यह तो हमारे सेठ कहते हैं न? जैसा हमने सुना था, वैसा माना था। क्यों सेठ? सेठ को जब ऐसा कहें कि अभी तक तुमने सच्चा निर्णय ही नहीं किया। तो कहे, जैसा सुना था, वैसा माना था। क्यों सेठ? आहाहा!

मुमुक्षु : पण्डित ने कहा, इसलिए माना था।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पण्डित कहना किसे? आहाहा! पण्ड्या पण्ड्या तुष कूट रहा है। फोतरा समझे? तुष। मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। आहाहा! तू षट्कारक की विकृत अवस्था—परिणमन से धर्म मान ले, वह तूने तुष कूटा है। आहाहा! समझ में आया? यह कहा न? 'विद्वानजन भूतार्थ तज व्यवहार में वर्तन करे, पर निश्चयनयाश्रित निर्वाण को पाते हैं।' आहाहा! विद्वान नाम धराकर इन षट्कारक का परिणमन विकृत अवस्था है, उस व्यवहार में वर्तन करता है परन्तु निश्चय जो द्रव्य, गुण, पर्याय है, उसका तो आश्रय करते नहीं, वर्तन करते नहीं। आहाहा! चारों ओर देखो तो एक सत्य सिद्धान्त खड़ा होता है। समझ में आया?

अभी कोई पूछता था कि इस 'आत्मसिद्धि' में केवलज्ञानी, गुरु का विनय करे, यह

लिखा है न ? कहा, उस समय श्वेताम्बर की शैली रह गयी थी। केवली छद्मस्थ का विनय करे, यह तीन काल में नहीं है। केवली को कहाँ विकल्प है, वे विनय करे ? आत्मसिद्धि में आता है, वह भूल है। उस समय श्वेताम्बर की झलक रह गयी थी, तो ऐसा कहा। क्योंकि दशवैकालिक के नौवें अध्ययन में ऐसा है। '...' अनन्त ज्ञान पाया होने पर भी शिष्य गुरु का विनय नहीं छोड़ता, ऐसा श्वेताम्बर के दशवैकालिक में है। यह सब तो कण्ठस्थ है न ? ऐसी बात नहीं, वह खोटी बात है। समझ में आया ? तीन लोक का नाथ केवलज्ञानी परमात्मा, उनसे बड़ा कौन है कि विनय करे ?

मुमुक्षु : राग ही कहाँ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु विकल्प ही नहीं है। अपने से बड़े हों तो उनका विकल्प आवे। वह छठवें गुणस्थान तक विकल्प आता है। समझ में आया ? इसमें भी लोग विवाद उठाते हैं, ऐ... श्रीमद् का कहा है, और खोटा ? भाई ! श्रीमद् का क्या, किसी का भी कहा हुआ हो, वस्तु जो है वह है। इसका अर्थ (संवत्) १९९५ के वर्ष में अर्थ किया था।

मुमुक्षु : सम्यक्त्व में बाधा आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जरा ज्ञान की भूल थी। परन्तु बाद में निकाल गयी। समझ में आया ? यहाँ तो भाई मार्ग तो सोलह आने कसौटी करके निर्णय करने का है। ऐसे का ऐसा मानना, वह वस्तु नहीं है। आहाहा ! केवली विनय करे, यह तीन काल में नहीं हो सकता तथा 'जाति वेष का भेद नहीं, कहा मार्ग जो होय'—ऐसा वहाँ था। इसका अर्थ भी खोटा है। जाति वेष का भेद है। कहा मार्ग जो होय तो जाति वेष का भेद... ऐसे गुलांट खाकर अर्थ किया था। (संवत्) १९९५ में। 'जाति वेष का भेद नहीं कहा मार्ग जो होय' चाहे जो जाति वेष हो, चाहे जिस जाति वेष में मोक्षमार्ग होता है, ऐसा उसमें है। परन्तु यहाँ ऐसा नहीं। 'कहा मार्ग जो होय तो जाति वेष का भेद नहीं' १९९५ में अर्थ किया था। 'आत्मसिद्धि' में है। आहाहा ! जो जाति ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वही होती है और वेष नग्नपना, वही वेष होता है। आहाहा ! समझ में आया ? बात तो ऐसी है, भाई ! कोई बड़े विद्वान और पण्डित होकर सम्प्रदाय नया निकाला, इसलिए उसमें सत्य है, ऐसा नहीं। समझ में आया ?

यहाँ तो अपने ४०वीं (शक्ति) चलती है। **कारकों**... पहले ३९ (शक्ति में) पर्याय

के कारक थे, और यह कारक अब द्रव्य के, गुण के कारक हैं। आहाहा! समझ में आया? गजब बात की है। एक-एक शक्ति में कितना...! आहाहा! अरे! ऐसे शास्त्र मुश्किल से लेख बाहर आये तो (कहते हैं), निकाल डालो, यह जिनवाणी नहीं। अरे! प्रभु! क्या करता है? बापू! भाई! अभी कोई (कहनेवाले) नहीं मिलते। केवली नहीं, अवधिज्ञानी, मन:पर्ययज्ञानी नहीं मिलते और यह अन्याय करते हैं, भाई! 'करुणा उपजे जोई।' बापू! तुझे—तेरा क्या होगा? भाई! बापू! तुझे दु:ख होगा, प्रभु! सहन नहीं होगा, ऐसा दु:ख होगा, भाई! तू सत्य का अनादर करता है इसलिए। पर दु:खी हो, यह कोई प्रशंसनीय है? आहाहा!

यहाँ ४० में कहते हैं, आहाहा! कल तो ३९ होकर थोड़ा यह ले लेना था। कल तो ज्ञानचन्दजी जानेवाले थे न! इसलिए कारक अनुसार कारण न चले, इसलिए पाँच मिनिट में छोड़ दिया। नहीं तो पाँच मिनिट में इसमें से और इसमें से दूसरा चले। छोड़ा, इसका ख्याल था। क्योंकि ज्ञानचन्दजी थे, दूसरे भी पण्डित थे न! रतनचन्दजी थे। दोनों में कारक अनुसार आया तो यह है क्या? पहले कारक अनुसार में पर्याय में स्वतन्त्र विकार अवस्था होती है, परन्तु उसका भाव नाम का गुण है, उस गुण के कारण विकृत से रहित परिणमन होना, वह गुण का कार्य है। धर्मी को विकार से रहित परिणमन होता है, वह आत्मा का कार्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? मफाभाई रुके हैं। यह रस लो, बापू! सम्प्रदाय में तो अभी बड़ी गड़बड़ है। पण्डित के नाम से... बापू! क्या कहें? भाई! आहाहा!

पहले कारक अनुसार था, वे पर्याय के थे। यह कारक अनुसार है, वह गुण के हैं। भले कारक अनुसार कहा, परन्तु वास्तव में तो यह कारक जिसके आश्रय से पड़े हैं, उस द्रव्य का आश्रय लेने से कारक अनुसार पवित्र (परिणमन) होता है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन, ज्ञान की पर्याय का परिणमन, जो षट्कारक शक्ति पवित्र है, उसे द्रव्य का आश्रय है तो उस द्रव्य की दृष्टि से उस षट्कारक का परिणमन निर्मल होता है। समझ में आया? सीधे गुण का परिणमन नहीं होता, परन्तु द्रव्य के परिणमन से गुण का परिणमन साथ में पवित्र होता है। आहाहा!

अब ऐसी बातें। वह तो दया पालना, व्रत करना, अपवास करना, दो लाख का, पाँच

लाख का मन्दिर स्थापित कर देना। लो, यह बेंगलोर का बारह लाख का मन्दिर। सेठ का कहा था। जिनेश्वरदासजी! दोपहर में कहा था। बेंगलोर का बारह लाख का (मन्दिर)। प्रतिष्ठा की न। उस समय कच्चा था। अब तो कहते हैं ऐसा बनाया है... ऐसे लोग देखने आते हैं। दोनों श्वेताम्बरों ने (बनाया है)। एक स्थानकवासी और एक मन्दिरमार्गी। दोनों ने बारह लाख का मन्दिर बनाया। बेंगलोर, देखा है? बहुत सरस कहते हैं। तब तो प्रतिष्ठा के समय बहुत तैयार नहीं था। अब तो नीचे भोंयरा, ऊपर भगवान, ऊपर समवसरण। बारह लाख का। परन्तु वह मन्दिर बनाने का भाव है, वह भाव शुभ है। और शुभ के परिणमन से धर्मी की दृष्टि रहित है। यह गजब बात। समझ में आया? इस शुभभाव का परिणमन पर्याय में षट्कारक से होता है। मन्दिर, पूजा, भक्ति आदि, विशाल रथयात्रा आदि। शुभभाव होवे तो। अकेले पाप के लिये, बाहर के दिखाव के लिये, दुनिया मुझे मान दे और दुनिया मेरी गिनती करे, तब तो वह अशुभभाव है। आहाहा! परन्तु शुभभाव होवे तो यहाँ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं, वह शुभभाव की जो विकृत क्रिया है, उससे रहित तेरा गुण ऐसा है कि उससे रहित परिणमन होना, वह तेरा गुण है। मलिनरूप से परिणमना, ऐसा तेरा कोई गुण है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

इस ४० में ऐसा आया, कारक अनुसार। उसमें भी कारक अनुसार था, वह पर्याय के कारक। यह कारक अनुसार, वह द्रव्य के कारक। समझ में आया? आहाहा! शक्ति का वर्णन करके अमृतचन्द्राचार्य ने तो गजब काम किया है, गजब काम किया है। आहाहा! पूरा निर्मल मार्ग कैसे होता है, उसकी सिद्धि कर दी है। मलिन परिणाम होने पर भी ज्ञानी की परिणति में मलिनता से रहित परिणति, वह ज्ञानी की परिणति है। आहाहा! धर्मी जीव की परिणति सम्यग्दृष्टि जीव की परिणति अर्थात् पर्याय, वह विकृत अवस्था होती है परन्तु उसका परिणमन तो भावशक्ति के कारण, गुण के कारण (उससे रहित ही होता है)।

भावशक्ति गुण है तो इस प्रत्येक गुण में उस भाव का रूप है, तो प्रत्येक गुण पवित्ररूप से परिणमे, ऐसा उसका गुण है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म पड़े, प्रभु! क्या हो? मार्ग ऐसा है। कभी परिचय किया नहीं, सुनने को मिला नहीं, बाहर में और बाहर में गोते खाये। आहाहा! चीज़ बाहर में नहीं है। यह पुण्य—शुभभाव में चीज़ आयी नहीं है।

मुमुक्षु : बाहर की वस्तु आकर्षक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी आकर्षक नहीं। अज्ञानी मानता है। आहाहा! पर्याय में विकृत होना, वह बाहर के कारण से नहीं, ऐसा पहले यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? बाह्य के कारण से नहीं, भगवान के कारण से शुभभाव हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! उस शुभभाव की पर्याय में परिणति होने पर भी द्रव्य की दृष्टिवन्त गुणी को प्रत्येक गुण में ऐसी शक्ति है कि विकार से रहित होना, वह तेरी शक्ति का कार्य है। आहाहा! समझ में आया? पुनरुक्ति नहीं, हों! बारम्बार आवे, उसमें अधिक स्पष्ट (होता है)।

मुमुक्षु : मीठे मधुर...

पूज्य गुरुदेवश्री : मीठे मधुर, बात ऐसी है, भाई!

षट्कारक अनुसार आनन्द की पर्याय प्रगट हो, शान्ति की पर्याय प्रगट हो, वीतरागता की पर्याय प्रगट हो, प्रभुता की, राग से रहित प्रभुता की पर्याय प्रगट हो... आहाहा! चौथे गुणस्थान में, हों! आहाहा! सर्वगुणांश वह समकित, कहा न? उसका यह अर्थ है कि कारक जो निर्मल द्रव्य में पड़े हैं, तो उस गुण का आश्रय तो द्रव्य है। तो द्रव्य की दृष्टि से द्रव्य के परिणमन में निर्मल परिणाम जो कारक अनुसार होते हैं वे।

कारकों के अनुसार... क्रिया। देखो! समझ में आया? इन कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप भावमयी। पहले में पर्याय की बात में क्रिया थी। अब यहाँ लिया। **कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप भावमयी क्रियाशक्ति।** भावमयी क्रियाशक्ति। आहाहा! समझ में आया? कारकों के अनुसार परिणमनपनेरूप भावमयी क्रियाशक्ति। पहले क्रिया शब्द था, वह मलिन पर्याय की परिणति को क्रिया कहा था। उससे रहित होना, वह इसका गुण है। यहाँ कहते हैं, कारकों के अनुसार परिणमितपनेरूप भावमयी क्रियाशक्ति। आहाहा! उसमें भी भावशक्ति ली और यहा भी भावमयी क्रियाशक्ति ली। दोनों में अन्तर है। उसमें तो क्रियाशक्ति ली थी। पर्याय में विकृत अवस्था से रहित भाव। अब यहाँ तो भावमयी क्रियाशक्ति। आहाहा! अनन्त गुण का भण्डार भगवान, उसके षट्कारक का आश्रय द्रव्य है तो द्रव्य के आश्रय से उसकी शुद्ध परिणति होती है, उस भावमयी... आहाहा! क्रियाशक्ति है। शक्ति का नाम क्रिया है। शक्ति का नाम क्रिया है तो परिणति में जो निर्मल है, उस क्रियाशक्ति का वह कार्य है। आहाहा! क्या कहा?

पहले जो कहा था, वह पर्याय की क्रिया, एक समय की पर्याय में मलिन क्रिया, उससे रहित, ऐसा कहा था। और यह जो कहा कि क्रियाशक्ति त्रिकाली जो है, त्रिकाल गुण में एक क्रिया नाम की शक्ति है। आहाहा! कि जिस शक्ति के कारण से... समझ में आया? क्या कहते हैं? देखो! भावमयी क्रियाशक्ति। कारको के अनुसार होनेरूप भावमयी क्रियाशक्ति। आहाहा! द्रव्य के अनुसार होनेवाली क्रियाशक्ति अर्थात् निर्मल परिणमे वह क्रियाशक्ति का कार्य है। समझ में आया? ऐसा अब। यह ४७ शक्ति हैं (ऐसी कोई साधारण ले लते हैं।)

बापू! शक्ति का अर्थ प्रभु है, प्रभुता है। एक-एक शक्ति प्रभुता से भरपूर है। आहाहा! यह क्रियाशक्ति... पहले जो क्रिया कहा, वह तो मलिनपर्याय को क्रिया कहकर उससे रहितपनेमयी भावमयीशक्ति। और यह कारक अनुसार भावमयी क्रियाशक्ति है। त्रिकाल में गुण है। पहली पर्याय की क्रिया थी, यह क्रिया गुण की है। समझ में आया? आहाहा! इसे कितनी धीरज चाहिए, बापू! आहाहा!

भगवान आत्मा में एक क्रियाशक्ति है। उस क्रियाशक्ति का रूप प्रत्येक गुण में है। आहाहा! तो गुण के अनुसार अथवा द्रव्य के आश्रय से गुण है, उस द्रव्य के अनुसार क्रियाशक्ति का कार्य क्या है? कि निर्मल परिणमन होना। भावमयी निर्मल (परिणमन) होना, वह क्रियाशक्ति का कार्य है। आहाहा! पहली क्रिया मलिन थी, इस क्रियाशक्ति का परिणमन निर्मल है। समझ में आया? भाषा क्रियाशक्ति रखी, भावमयी क्रियाशक्ति, हों! मूल तो क्रियाशक्ति है। अन्दर स्वभावमयी क्रियाशक्ति। भावशक्ति तो पहले ३९ में आ गयी है। यह तो भावमयी क्रियाशक्ति, गुणमयी क्रियाशक्ति। आहाहा! समझ में आया?

कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप... देखो! यहाँ तो कारकों के अनुसार परिणमनपनेरूप। इसलिए तो कहा कि एक-एक गुण परिणमता नहीं। कारक अनुसार में द्रव्य का आश्रय है। समझ में आया? जिसकी खान में षट्कारक पड़े हैं, भगवान द्रव्य की खान में छह कारक पड़े हैं। आहाहा! उस द्रव्य के आश्रय से परिणमन होनेरूप भावमयी क्रियाशक्ति। आहाहा! ऐसी अन्दर में भावमयी क्रियाशक्ति गुण है। उस गुण के कारण से षट्कारक को अनुसर कर पर्याय निर्मल होती है, वह गुण का कार्य है। आहाहा! यह क्रियाशक्ति तो प्रत्येक गुण में है। समझ में आया? यह तो लम्बा-लम्बा (हो जाता है)। बीस बोल को एक-एक में उतारे तो पार नहीं मिलता। आहाहा!

क्रियाशक्ति, भावमयी क्रियाशक्ति द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्याप्त है। क्रियाशक्ति का परिणमन निर्मल है। आहाहा! वह निर्मल परिणमन, वही अपना है, मलिन परिणाम अपने नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया? यह अन्त में लेंगे, स्वस्वामीसम्बन्धशक्ति। इसका अर्थ यह है कि भगवान आत्मा, अन्तर पवित्र शक्तियों का पिण्ड है, उसका आश्रय करने से द्रव्य का जो परिणमन होता है, वह अत्यन्त शुद्ध होता है। तो शुद्ध परिणमन, शुद्ध शक्ति और शुद्ध द्रव्य, वह अपना स्व और उसका आत्मा स्वामी है—ऐसी स्वस्वामी-सम्बन्धशक्ति उसमें है। राग का स्वामी आत्मा नहीं। आहाहा! गजब बात है। व्यवहार-रत्नत्रय का विकल्प उठता है, उस क्रिया से रहित तो कहा परन्तु उसके स्वामीपने से रहित है। आहाहा! यह अन्तिम शक्ति में लेंगे। ४७ में। अन्तिम। समझे?

कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप... देखा? आहाहा! पहले में कारकों के अनुसार क्रिया, उससे रहित—ऐसा कहा था। ३९ में। और यह कारकों के अनुसार परिणमनपनेरूप। निर्मल कारक जो छह गुण पड़े हैं, उन गुण का आश्रय जो द्रव्य, उसके आश्रय से होनेवाला परिणमनपनेरूप भावमयी क्रियाशक्ति। वह भावमयी क्रियाशक्ति। आहाहा! स्वभावमयी क्रियाशक्ति। क्यों भावमयी साथ में लिया? पहली क्रिया पर्याय में तो कही थी। वहाँ भावमयी क्रिया नहीं, वह तो मलिन परिणामरूप क्रिया थी। आहाहा! समझ में आया? सन्तों की वाणी, वह वीतरागी वाणी है। आहाहा! बापू! मुनि किसे कहते हैं? बापू! अभी जिसे प्रचुर स्वसंवेदन हो। अभी जिसे दृष्टि ही प्रगट नहीं, वहाँ... मुनिपना तो प्रचुर स्वसंवेदन है। क्योंकि कारक अनुसार जो भाव—गुण है, उसके अनुसार सम्यग्दर्शन होता है और उसके अनुसार चारित्र होता है। पंच महाव्रत और राग के आश्रय से चारित्र होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! भारी कठिन। इसलिए कहते हैं कि, ऐ... निश्चय... निश्चय... निश्चय। बापू! निश्चय अर्थात् सत्य, सत्य। आहाहा!

सत् का साहेबा भगवान आत्मा, उसका सत्यस्वरूप ऐसा है कि सत्य के आश्रय से जो परिणमन होता है, उस भावमयी क्रिया, वह इसका गुण है। निर्मलरूप से परिणमना, वह इसका गुण है। मलिनरूप से परिणमना, ऐसी कोई शक्ति—गुण नहीं है। आहाहा! अब ऐसी बात। वह तो बेचारे सामायिक करे, प्रौषध करे, सवेरे-शाम प्रतिक्रमण करे... जय नारायण! मिच्छामि दुक्कडम्। हो गया धर्म, लो! ऐ... पहाड़ियाजी! सामायिक, प्रौषध,

प्रतिक्रमण... अरे! बापू! यह क्या है? भाई! यह तो विकल्प, राग है। पर्याय में षट्कारक का परिणमन है उसका, परन्तु धर्मी जीव का परिणमन उससे रहित है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग सुनने को मिलता नहीं, वह कब (निर्णय करे)? यह तो परमसत्य सर्वज्ञ की श्रीवाणी—दिव्यध्वनि से आया हुआ मार्ग यह है। आहाहा! बहुत भरा है!

एक-एक शक्ति में यह भावमयी क्रियाशक्ति है। समझ में आया? और भावमयी शक्ति अनन्त गुण में निमित्त है। यह भावमयी। वह भावमयी जो थी, वह भी अनन्त गुण में निमित्त है। यह भावमयी क्रिया पवित्र है, वह भी अनन्त गुण में निमित्त है। वह भी पवित्र थी। भावमयी शक्ति भी परिणमन से रहित होना, वह भावमयी भी निर्मल थी। उस निर्मल शक्ति की परिणमन दशा अनन्त गुण में निमित्त है, और जो पर्याय निर्मल हुई, उसमें इस शक्ति का परिणमन भी निमित्त है। आहाहा! समझ में आया?

कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूप... देखा? आहाहा! राग से सहित होनेरूप परिणमन, यह बात धर्मी को नहीं है। द्रव्यदृष्टिवन्त को नहीं है, ऐसा कहते हैं। द्रव्यदृष्टिवन्त का अर्थ (यह कि) जिसे सम्यग्दृष्टि हुई, वस्तु अखण्ड अभेद त्रिकाल आनन्दकन्द प्रभु, ऐसी दृष्टि में सम्यग्दर्शन में पूरे द्रव्य का आश्रय आया, तो उस सम्यग्दृष्टि में अन्दर भावमयी क्रियाशक्ति अन्दर गुण है, उसका रूप श्रद्धागुण में भी है। श्रद्धागुण समकितरूप परिणमता है, वह भावमयी क्रियाशक्ति का ही कार्य है। आहाहा! समझ में आया? समकित की पर्याय... कहते हैं न कि? चार कर्म का नाश होने से केवलज्ञान होता है। तत्त्वार्थसूत्र में है। यह चर्चा बहुत चली है। खानिया चर्चा। जिनेश्वरदासजी! खानिया चर्चा है न? दो पुस्तक। उसमें यह है।

चार कर्म का नाश होने से केवलज्ञान पर्याय होती है। तत्त्वार्थसूत्र में है। यहाँ कहा कि, सुन तो सही, नाथ! तुझमें एक भावमयी क्रियाशक्ति है, इसलिए केवलज्ञान की परिणति होती है। समझ में आया? विकृत अवस्था है, उससे भी नहीं और पूर्व में जो मोक्ष का मार्ग जो केवलज्ञान से पहले था, उससे भी यह परिणमन नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? पूर्व में मोक्षमार्ग था तो उससे मोक्ष अर्थात् केवलपर्याय हुई, ऐसा नहीं है। त्रिकाली शुद्ध कारक हैं, उसके अनुसार केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई है। आहाहा! पर से तो नहीं परन्तु अपनी पूर्व पर्याय से नहीं। उससे तो नहीं परन्तु अपने गुण की दूसरी

पर्याय से भी वह पर्याय नहीं हुई। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! प्रत्येक गुण में उसका रूप है। द्रव्य का तो आश्रय करने से प्रत्येक गुण की पर्याय स्वतन्त्र स्वयं से निर्मल परिणमती है। आहाहा! दूसरी पर्याय से नहीं। आहाहा! समझ में आया? और कर्म का अनुभाव हुआ तो हुई, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! मोक्षमार्ग हुआ तो केवलज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! लोगों को ऐसा सुनने को मिलना कठिन पड़ता है। दूसरे रास्ते चढ़ा दिया। उल्टे (रास्ते)।

मुमुक्षु : उल्टे रास्ते चढ़ानेवाले को भी भान नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर सुननेवाले को तो कहाँ से भान होगा? आहाहा! यह चालीस हुई। पाँच मिनिट बाकी रहे। अब ४१, ४१वीं शक्ति। फिर हमारे पाटनीजी जानेवाले हैं न! तो थोड़ा सुन तो ले। ओहोहो! सत् का पुकार है। सत् पुकार करके अन्दर से सत् खड़ा हुआ है। आहा! उसे असत्य विकार के किसी शरण की आवश्यकता नहीं। व्यवहाररत्नत्रय के कारण की जिसे आवश्यकता नहीं। आहाहा! उसे तो अपने में भावमयीशक्ति अथवा भावमयीक्रियाशक्ति है, उसके कारण से केवलज्ञान की निर्मल परिणति, सम्यग्दर्शन की, सम्यग्दर्शन की, सम्यक्चारित्र की (होती है)। आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम द्रव्यचारित्र है तो उससे भावचारित्र होता है, ऐसा यहाँ नहीं है, वस्तु में ऐसा नहीं है। समझ में आया? इसमें भी अन्तर, बड़ा अन्तर। प्रभु! क्या करे? आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वत्र अन्तर। आहाहा! ४१ (वीं शक्ति)

प्राप्यमाणसिद्धरूपभावमयी कर्मशक्तिः।

प्राप्त किया जाता जो सिद्धरूप भाव उसमयी कर्मशक्ति।४१।

प्राप्त किया जाता जो सिद्धरूप भाव... क्या कहते हैं? कर्म लेना है न? कर्म। प्राप्त किया जाता जो सिद्ध। सिद्ध अर्थात् पवित्र पर्याय। सिद्ध पर्याय, ऐसा यहाँ नहीं लेना। यहाँ सिद्ध अर्थात् निर्मल पर्यायरूपी जो भाव प्रगट होता है वह। समझ में आया? प्राप्त, ऐसा कहा न? प्राप्त किया जाता है। सम्यग्दर्शन की पर्याय, सम्यग्ज्ञान की पर्याय,

सम्यक्‌चारित्र की पर्याय, केवलज्ञान की पर्याय, ऐसी प्रत्येक पर्याय लेना। **प्राप्त किया जाता जो सिद्धरूप भाव...** जिस समय उत्पन्न होनेवाली है, वह पर्याय सिद्ध—निश्चित है। उस सिद्धरूप भाव, सिद्धरूप शब्द से सिद्धपर्याय, सिद्ध भगवान की बात नहीं है। उस समय जो पर्याय उत्पन्न होती है, उसे सिद्धरूप भाव कहते हैं। वही पर्याय निश्चितरूप से उत्पन्न होनेवाली है, उसे सिद्धभाव कहते हैं। आहाहा!

वापस भाषा क्या है? **प्राप्त किया जाता...** पुरुषार्थ से। आहाहा! अनन्त गुण-शक्ति का आश्रय द्रव्य और द्रव्य के आश्रय से पुरुषार्थ से। आहाहा! **प्राप्त किया जाता...** जो सम्यग्दर्शनरूपी पर्याय, वह कार्य। इस कर्म का (अर्थ) यह कार्य है। कर्मशक्ति का यह कार्य है। कर्म अर्थात् कार्य। कर्मशक्ति है न? वह कर्म नाम की शक्ति है, कार्यशक्ति, उसका कार्य वर्तमान निर्मल पर्याय की प्राप्ति, वह कर्म का कार्य है। आहाहा! समझ में आया? यह कार्य व्यवहाररत्नत्रय का नहीं, यह कार्य पूर्व की पर्याय का कार्य नहीं। आहाहा! कितना सिद्ध किया है!

प्राप्त किया जाता... प्राप्त अर्थात् वर्तमान पर्याय में कार्यरूप प्राप्त किया जाता है, ऐसा जो निश्चितरूप भाव, **उसमयी कर्मशक्ति।** यह कर्म की नाम की शक्ति अन्दर है, जिसमें कार्य प्राप्त होता है। निर्मल पर्याय की प्राप्ति होती है। उस कार्य का कारण कर्मशक्ति है। विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ३६, शक्ति- ४१ गुरुवार, भाद्रशुक्ल २, दिनांक १५-०९-१९७७

यह समयसार। शक्ति का अधिकार है। ४० तो हो गयी न? ४१। शक्ति का अर्थ क्या है? कि आत्मा जो गुणी—वस्तु है, उसमें यह गुण है। इस गुण का परिणमन होना, वह पर्याय है। पर्याय में यहाँ निर्मल पर्याय की बात है, मलिन पर्याय की बात है नहीं। जो गुण है, वह पवित्र है और द्रव्य पवित्र है। शुद्ध कहो, पवित्र कहो तो उसकी पर्याय भी शुद्ध है। वह शुद्ध पर्याय की क्रमवर्ती पर्याय और गुण का अक्रमरूप होना, इन दो का समुदाय, वह आत्मा है। राग की पर्याय सहित आत्मा को यहाँ आत्मा गिनने में ही नहीं आया। आहाहा! समझ में आया? शरीर सहित तो नहीं, यह तो जड़ मिट्टी-धूल है, परन्तु अन्दर में दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव उस राग सहित आत्मा को यहाँ (आत्मा) गिनने में आया ही नहीं। मात्र राग होता है, विकृत अवस्था पर्याय में षट्कारक से एक समय की दशा में विकृत अवस्था है परन्तु यहाँ तो विकृत अवस्था से रहित... यह तो अपने आ गया न? भावशक्ति, भावशक्ति। ३९।

कारकों के अनुसार जो क्रिया उससे रहित भवनमात्रमयी (-होनेमात्रमयी) भावशक्ति। है। आहाहा! एक भावशक्ति—गुण उसे कहते हैं कि वर्तमान में जिसके कारण से वर्तमान निर्मल पर्याय की विद्यमानता हो, एक भावशक्ति—गुण का वह स्वरूप है और एक भावशक्ति यह है कि मलिन पर्याय एक समय में द्रव्य-गुण में नहीं, द्रव्य-गुण के कारण नहीं और पर के कारण नहीं, एक समय की पर्याय में विकृत अवस्था, चाहे तो शुभभाव हो या अशुभ, ऐसी वर्तमान में षट्कारक से परिणमन होकर उससे रहितपना होना, वह आत्मा की पर्याय है। समझ में आया? अब अपने तो यहाँ ४१वीं चलती है।

प्राप्त किया जाता... वर्तमान पर्याय में प्राप्त किया जाता। प्राप्त किया जाता हुआ। वर्तमान पर्याय में प्राप्त किया जाता हुआ। निर्मल पर्याय। सम्यग्दर्शन की, सम्यग्ज्ञान की, सम्यक्चारित्र की, आनन्द की, वीतरागता की उस पर्याय को प्राप्त किया जाता हुआ। **जो सिद्धरूप...** निश्चितरूप **भाव उसमयी कर्मशक्ति।** आहाहा! यहाँ कर्म तो चार प्रकार से कहे जाते हैं। एक जड़ की कर्म अवस्था भी कर्म कही जाती है, वह तो भिन्न है। एक भावकर्म को कर्म कहा जाता है, उससे भी भिन्न है। एक निर्मल परिणति को भी कर्म कहा

जाता है और यहाँ जो यह कर्मशक्ति है, वह तो गुणरूप कर्मशक्ति है। आहाहा! भारी सूक्ष्म, भाई!

जड़कर्म की अवस्था, कर्म वह चीज़ तो भिन्न रही। दया, दान, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प जो राग, वह भी भिन्न रहा, निर्मल पर्याय में कर्म अर्थात् कार्य होता है, वह निर्मल कर्मशक्ति का कार्य है। कर्मशक्ति का कर्म है। शान्ति से विचारना। समझ में आया? यह कर्म नाम का, कार्य नाम का एक गुण आत्मा में है। कर्म नाम का अर्थात् कार्य नाम का एक गुण है। जिस गुण के कारण से वर्तमान पर्याय में प्राप्त जो पर्याय होती है, वह कर्म का कार्य है। वह कर्मगुण का कार्य है। आहाहा! गजब! समझ में आया?

मुमुक्षु : यह सब समझकर करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समझकर द्रव्य पर दृष्टि देकर जब गुण की पर्याय में गुण के कारण से वर्तमान में सम्यग्दर्शन आदि पर्याय का कार्य होता है, ऐसा निर्णय करना। कोई व्यवहाररत्नत्रय राग से सम्यग्दर्शन की पर्याय का कार्य होता है, ऐसा नहीं है। और देव-गुरु-शास्त्र के निमित्त से यहाँ कार्य होता है, ऐसा नहीं है। यहाँ तो निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र वीतरागी मोक्षमार्ग की पर्याय वह प्राप्त की जाती है। उस कार्य का कारण कर्मशक्ति है। ऐसी बात कभी सुनी नहीं है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव में शक्ति ऐसी है। ध्रुव में कर्म नाम की एक शक्ति है कि जिससे वर्तमान कार्य सुधरता है। धीरे से सुनो। हीरालालजी! यह तो पैसा-बैसा से अलग जाति है। यह सब पैसेवाले बैठे। आहाहा!

सुन तो सही, प्रभु! तुझमें आत्माद्रव्य जो गुणी है, उसमें कर्म नाम का गुण है। कर्म अर्थात् कार्य होने का एक गुण है। उस कर्मगुण के कारण से वीतरागी पर्याय या ज्ञान की पर्याय, दर्शन की पर्याय, चारित्र की पर्याय, स्वच्छता की पर्याय, वीतरागी पर्याय, वह कर्म के कारण से शुद्ध कार्य होता है। सेठ!

मुमुक्षु : कर्म का कार्य आया न!

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म आया। यह कर्म। जड़कर्म नहीं, भावकर्म नहीं; निर्मल

परिणति में कार्य जो होता है, वह कर्म नाम के गुण के कारण से कार्य सुधरता है। आहाहा! बाबूभाई! बाप-दादा ने वहाँ कभी सुना भी नहीं। दूसरा क्या, यह तो भाई कहते हैं। आहाहा! सेठ भी कहते हैं न कि हमने सुना था, वैसा माना था। बात तो सत्य है। आहाहा! ऐसा मार्ग द्रव्य का।

भगवान आत्मा द्रव्य जो वस्तु है, उसमें गुण जो भाव है, वह कर्म नाम का गुण उसमें है। जैसे आत्मद्रव्य में ज्ञान नाम का गुण है, श्रद्धा नाम का गुण है, आनन्द नाम का गुण है, वैसे कर्म नाम का एक गुण है। आहाहा! कर्म अर्थात् कार्य सुधरने के कारणरूप कार्य। अन्दर में कार्य होने की एक शक्ति है। आहाहा! ऐसी बातें।

आत्मा में एक ऐसी शक्ति है, गुण है, जिसका सामर्थ्य है, उस द्रव्य में गुण का इतना सामर्थ्य है कि कर्म नाम के गुण के कारण से निर्मल पर्यायरूपी कार्य होता है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान, गुण है; द्रव्य, गुणी है, ज्ञान गुण है। तो उसमें भी कर्म का रूप है। इस कारण से अन्दर ज्ञान की निर्मल पर्यायरूपी कार्य, ज्ञानरूपी गुण में कर्मरूपी भाव है, उसकी निर्मल पर्याय का कार्य उसका है। आहाहा! ज्ञानावरणीयकर्म हटा तो ज्ञान की पर्याय हुई, ऐसा नहीं है तथा पूर्व की पर्याय निर्मल थी, इसलिए वर्तमान निर्मल हुई, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! ऐसी बात कभी सुनने को मिलती नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप विराजमान है, उसमें जीवत्वशक्ति से लेकर अपने यहाँ कर्मशक्ति तक आये हैं। तो कहते हैं कि पहले एक शक्ति आ गयी—अकार्यकारण। आत्मा में ऐसा एक गुण है—अकार्यकारण। जिसके कारण से वर्तमान निर्मल पर्याय राग का कार्य नहीं और निर्मल पर्याय राग का कारण नहीं। समझ में आया? यहाँ तो अब मात्र कार्य होता है, वह प्राप्त कार्य होता है, वह क्या? वह तो राग का कार्य नहीं और राग का कारण नहीं। समझ में आया? आहाहा! वस्तु जो भगवान आत्मा, उसमें वह अकार्यकारण नाम की एक शक्ति है, गुण है, सत्त्व है, भाव है, स्वभाव है। आहाहा! अरे! भगवान आत्मा में अनन्त-अनन्त शक्तियों का भण्डार है। समझ में आया? कहते हैं कि जो जीवत्वशक्ति में भी ज्ञान, दर्शन, आनन्द और सत्ता की पर्याय प्राप्त होती है, वह अन्दर जीवत्वशक्ति में कर्म नाम का रूप है, इस कारण से पर्याय की प्राप्ति होती है। आहाहा! वह जीव का जीवन

है। शरीर से जीव का जीवन, वह जीवन नहीं। और अन्दर भावेन्द्रिय, मन-वचन-काया, दस भाव प्राण, उससे जीवन, वह जीव का जीवन नहीं है। आहाहा!

जीव का जीवन तो उसे कहते हैं कि जड़कर्म के जीवन से भिन्न अन्दर में भावेन्द्रिय आदि का कार्य, उससे भी भिन्न... आहाहा! गजब है न, प्रभु! तेरे जीव का जीवन यह है कि खण्ड-खण्ड इन्द्रिय से रहित जो भावेन्द्रिय आदि से रहित ऐसा ज्ञान का परिणमन होना, अतीन्द्रिय ज्ञान का परिणमन होना, वह जीव का जीवन है। आहाहा! भारी बातें। शान्तिभाई! वहाँ कहीं पैसे में, जवाहरात में कभी सुना न हो। वहाँ हांगकांग में और... क्या कहा? मधु वहाँ गया है। आज जीतुभाई कहते थे, मधुभाई ने कहा है, साढ़े सोलह, साढ़े सोलह सौ रिकार्डिंग उनके लिये उतारना। भाई! मधुभाई कह गये होंगे। जो रिकार्डिंग उतरती है न? उसमें से साढ़े सोलह सौ मधुभाई के लिये (उतारना)। शान्तिभाई के लिये और मधुभाई के लिये, दोनों भाई ही है न। साढ़े सोलह सौ। जीतुभाई कहते थे। संस्था की ओर से एक रुपया रखा है न? उतारने का एक रुपया। साढ़े सोलह सौ। यह जो उतरती है न? वह उतारकर (रिकार्डिंग करके) देने का। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि तेरे कार्य में उतारना यह क्या है? तेरे कार्य में जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, अतीन्द्रिय आनन्द की पर्यायरूपी कार्य का कारण कौन? तुझमें एक कर्म नाम का गुण है। आहाहा! कहाँ जड़कर्म, कहाँ पुण्य-पाप, दया, दान भावकर्म, कहाँ निर्मल परिणति वर्तमान पर्यायरूपी कर्म और यह कर्म गुणरूपी कर्म। आहाहा! समझ में आया? परन्तु उस गुणरूपी (कर्म का) कार्य का कार्य क्या? कि निर्मल शुद्ध पर्यायरूपी सुधरना, वह कर्म नाम के गुण का यह कार्य है। हीराभाई! कभी सुनने को मिलता नहीं, ऐसा यह सब है। बाप-दादा ने तो सुना भी नहीं था और तुम भाग्यशाली कि यह (सुनने को मिला)। आहाहा!

चैतन्य खजाने में एक कर्म नाम का गुण पड़ा है न! ऐसा कहते हैं। आहाहा! कर्म नाम की शक्ति पड़ी है न! जड़कर्म नहीं, भावकर्म नहीं, पर्यायरूपी कार्य आता है, उसमें कर्म नाम की शक्ति के कारण से। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि व्यवहाररत्नत्रय कारण और निश्चय कार्य, यह बात उड़ जाती है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? भाई! भाषा तो बहुत सादी है। आहाहा! क्या कहा?

सम्यग्दर्शनरूपी पर्यायरूपी कार्य हुआ। पर्याय, वह कार्य है। पर्याय, वह कार्य है। द्रव्य-गुण वह व्यवहार से कारण है। अब वह पर्याय जो सम्यग्दर्शन की पर्याय—निश्चय वीतरागी श्रद्धा... समझ में आया? उस श्रद्धा को प्राप्त करना, इसका कारण कौन? कहते हैं कि कर्म नाम का गुण है। आहाहा! इस कारण से समकितरूपी कार्य सुधरता है। आहाहा! गजब बात है। समझ में आया? एक-एक शक्ति में कितना संग्रह है!

यह कर्मशक्ति ध्रुवरूप उपादान है, और इसका निर्मल परिणतिरूपी कार्य, वह क्षणिक उपादान है। आहाहा! ध्रुव जो कर्मशक्ति त्रिकाल है, वह पारिणामिकभाव से है और उसका सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के परिणाम की प्राप्ति हो, वह उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव से है। आहाहा! कहते हैं कि कर्म का उपशम हुआ तो यहाँ उपशमभाव हुआ, ऐसा नहीं है। यह कर्म नाम का गुण है, इस कारण उपशमभावरूपी कार्य सुधरा। बाबूभाई! कभी सुना नहीं, वहाँ कहीं। यह जैनदर्शन। आहाहा! वीतरागमार्ग।

अभी तो एकदम बस! दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो, पूजा करो। इन सेठिया को निवृत्ति मिलती नहीं और दो घड़ी, चार घड़ी ऐसा कर आवे, इसलिए हो जाए धर्म। अरे! भगवान! ऐसा कहते हैं, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन वह तो सातवें (गुणस्थान की) बात है। यहाँ तो चौथे की वीतरागदशा की बात है। यह चर्चा उन्हें हुई थी, भाई! धर्मसागर है न? शान्तिसागर की परम्परा पर है। उनके साथ चर्चा हुई थी। समकित किसे कहा जाता है? तो कहे, देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा, नवतत्त्व की श्रद्धा, वह समकित। बस! व्यवहार समकित, वह समकित। चौथे गुणस्थान में व्यवहार समकित होता है। आहाहा! प्रभु! सुन तो सही, नाथ!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, (वे लोग कहते हैं) चौथे गुणस्थान में व्यवहार समकित। आगे वीतराग समकित होता है। अर र र!

यहाँ तो कहते हैं, एक बार सुन तो सही, नाथ! तुझमें एक वीतरागभावस्वरूप कर्म नाम का गुण है। वह वीतरागभावस्वरूप है। कर्मगुण वह वीतरागभावस्वरूप है। उसका कार्य सम्यग्दर्शन की पर्याय वीतरागी हुई, वह वीतरागस्वरूप कर्म गुण का कार्य है। चौथे

गुणस्थान से उसका वह कार्य है। आहाहा! समझ में आया? अमृतचन्द्राचार्य ने शक्ति का वर्णन करके... ओहोहो! खजाना खोल दिया है।

भगवान आत्मा में, कर्म शब्द भले हो परन्तु कर्म शब्द से वहाँ कार्य होने की शक्ति है। पर्याय में जो कार्य होता है, सम्यग्दर्शन का, सम्यग्ज्ञान का, सम्यक्चारित्र का, आनन्द की पर्याय का, वीर्य की पर्याय में स्वरूप रचना का कार्य, उस प्रत्येक गुण में कर्म का रूप है, तो इस कारण से उसमें निर्मल कार्य होता है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि भगवान की यात्रा करने से निर्मल कार्य नहीं होता, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : अन्दर के भगवान की यात्रा करने से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर यह भगवान (विराजता है)। कहो, झाँझरीजी! ये तो वहाँ के मन्त्री हैं। नहीं? आहाहा! कहाँ गये भाई! विमलचन्दजी। गये? हाँ, वे तो जयपुर गये। कल कहते थे। जयपुर दो व्यक्ति जानेवाले हैं। अभयकुमार और वे। आहाहा! समझ में आया? यह तो शान्ति से समझने की वस्तु है। इस मार्ग का वर्तमान में तो विच्छेद हो गया है। समझ में आया? सम्प्रदाय में तो यह बात विच्छेद हो गयी है। यह तो बात आयी, बापू! प्रभु! तू भगवान है न! तो भग अर्थात् ज्ञान, आनन्द की लक्ष्मी, इस कर्मशक्ति का भी लक्ष्मीवान तू है। आहाहा! तेरी पर्याय में सम्यग्दर्शन और धर्म की पर्याय कार्य, उसकी लक्ष्मी तुझमें कर्म नाम का गुण है, उससे यह कार्य होता है। आहाहा! यह धूल की लक्ष्मी। कहो! रामजीभाई ने पैंतीस हजार खर्च करके इस पुत्र को पढ़ाया था। पाप करके पैंतीस हजार इकट्ठे किये थे।

मुमुक्षु : तो ठिकाने पड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन ठिकाने पड़ा? ऐसा कहते हैं, अब छह, सात, आठ हजार का वेतन हुआ। इतना अधिक पढ़ाया तो। वह तो पुण्य के कारण बाहर का वेतन होता है। आहाहा! नौतमभाई! ऐसा बहुत सूक्ष्म मार्ग, बापू! आहाहा!

एक-एक शक्ति में यह कर्म नाम का रूप है। जैसे ज्ञानस्वभाव है, ज्ञानगुण है न? तो एक अस्तित्व भी गुण है। वह अस्तित्वगुण ज्ञानगुण में नहीं है। परन्तु गुण जो 'है', गुण जो अपने से 'है', ऐसा अस्तित्व का रूप अपने से है। न्याय समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा में ज्ञानगुण है, अस्तित्वगुण है, कर्मगुण है, श्रद्धागुण है, आनन्दगुण है। अत: यहाँ कहते हैं, ज्ञान में वह अस्तित्वगुण हो परन्तु उस ज्ञान में अस्तित्वगुण आया। परन्तु ज्ञान 'है', ऐसा अस्तित्वगुण का रूप आया। ज्ञान 'है'। वह स्वयं से है। अस्तित्वगुण के कारण से नहीं। आहाहा! ऐसी बातें। समझ में आया?

इसी प्रकार अन्दर में श्रद्धागुण त्रिकाली है तो वह कहीं अस्तित्वगुण के कारण से श्रद्धागुण है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग और बाहर से (कुछ मनवा दिया)। चेतनजी! यह शक्ति का वर्णन।

मुमुक्षु : शक्ति के वर्णन की आवश्यकता थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी ही आवश्यकता (थी)। रामजीभाई ने यही कहा था न? क्या कहा तुम्हारा यह? शिक्षण शिविर। बीस दिन में चौदह दिन महाविद्यालय का आया। मुझे विचार आया अवश्य था, कहा, चलता विषय साधारण है। यह लोग बाहर से आवे, इनके लिये कुछ विशेषता चाहिए। शक्ति आदि का लक्ष्य आया था। भाई ने कहा कि शक्ति का वर्णन (लेना)। उसे छोड़कर यह शक्ति का वर्णन लिया है। वाँचन शैली का सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार का पाठ था, उसे छोड़कर यह लिया है। आहाहा! शक्ति के लिये आज तो ३६ वाँ दिन है। हिन्दुस्तान की भाषा तो बीस दिन पहले दो दिन से हुई थी। बाईस और यह पन्द्रह, इतने दिन हुए। वर्ग चले, उसमें दो दिन पहले से हिन्दी चला था। क्योंकि हिन्दी लोग आये थे। गुजराती समझते नहीं और गुजराती लोग तो हिन्दी समझ सकते है। हिन्दी भाषा सादी है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि प्रभु! तू एक तो यह कर कि मैं तो द्रव्य हूँ और मैं ज्ञायक हूँ। आहाहा! मैं पर्याय भी नहीं, गुणभेद भी नहीं, राग भी नहीं और निमित्त भी नहीं। ऐसे ज्ञायकभाव का जब तुझे निर्णय हो तो उस निर्णय का कार्य ज्ञानगुण में कर्म नाम का रूप है, उसके कारण से ज्ञान की पर्याय निर्मल ज्ञायक की हुई है। आहाहा! यहाँ तो यह कहते हैं कि कर्म का क्षयोपशम होवे तो ज्ञान की निर्मल पर्याय होती है। बड़ी चर्चा हुई थी न? यह बात थी नहीं, हिन्दुस्तान में नहीं थी।

मुमुक्षु : निमित्त से होता है, यह बात थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त से होता है, यह थी। पण्डित ने स्वीकार किया था। देवकीनन्दनजी ने। हम सब पण्डितों की पढ़ाई निमित्ताधीन है। तुम कहते हो कि निमित्त से कुछ होता नहीं, हमारी यह पढ़ाई नहीं है। देवकीनन्दन थे, जानते हो? इन्दौर में। गुजर गये, पहले यहाँ आये थे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, सुन तो नाथ! आहाहा! व्यवहार समकित, वह समकित ही नहीं है। व्यवहार समकित वह तो विकल्प, राग है। यह तो निश्चय सम्यग्दर्शन, अपने कार्य में कर्मशक्ति के कारण से अथवा श्रद्धागुण में भी कर्म का रूप है, इस कारण से जहाँ द्रव्यदृष्टि हुई तो श्रद्धागुण का कार्य समकित पर्याय होती है। कितनी शर्तें इसमें! समझ में आया? यह समकित की पर्याय, जब राग साथ में है तो आरोप से कथन करने में आता है कि यह व्यवहार समकित है। है तो राग; वह समकित की पर्याय है ही नहीं। यहाँ तो वह राग की पर्याय जो है, वह अपना कार्य तो नहीं परन्तु राग से निर्मल पर्याय हुई, वह उसका कार्य नहीं। आहाहा! मीठालालजी! आहाहा!

सम्यग्दर्शन की पर्याय का कार्य श्रद्धा नाम की आत्मा में त्रिकाली शक्ति है, गुण है, उसमें कर्मशक्ति का रूप है, इस कारण से श्रद्धा का कार्य, श्रद्धागुण में कर्म नाम का रूप है तो इस कारण से श्रद्धा की समकित पर्याय सुधरती है, वह श्रद्धागुण में कर्मरूप कार्य उसके कारण सुधरती है। मिथ्यात्व टला तो शुद्ध हुई, व्यय हुआ तो सुधरी—ऐसा भी यहाँ तो नहीं है। आहाहा! गजब बात है। कर्म का अभाव हुआ तो सुधरी, ऐसा तो है नहीं परन्तु मिथ्यात्व का व्यय हुआ तो काम सुधरा, ऐसा भी नहीं है। यहाँ तो सम्यग्दर्शन का उत्पाद जो हुआ... आहाहा! वह जहाँ चैतन्य भगवान पूर्णानन्द की दृष्टि हुई तो उसमें वह गुण है, ज्ञान में, श्रद्धागुण में, चारित्रगुण में, आनन्दगुण में कर्मशक्ति का रूप है तो इस कारण से अन्दर ज्ञान की पर्याय का कार्य, कर्म के कारण से कर्म (शक्ति) के रूप के कारण से सम्यग्ज्ञान सुधरता है। आहाहा! वह वाणी से सुधरता नहीं, ऐसा कहते हैं। शास्त्रवाँचन से वह कार्य सुधरता नहीं, ऐसा कहते हैं। सेठ! यह सब नया है।

मुमुक्षु : स्वाध्याय करना वह।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वाध्याय करे, वह विकल्प है। मार्ग ऐसा है, भाई! चैत्यालय में

सब शास्त्र है न ? जय नारायण। ढोल बजावे, फिर ऐसे। उससे ज्ञान नहीं सुधरता, ऐसा कहते हैं। ज्ञान का सुधरना, सम्यग्ज्ञान का होना, वह ज्ञानगुण में कर्मशक्ति—गुण का रूप है तो सम्यग्ज्ञान सुधरता है। आहाहा! चन्दुभाई! ऐसा स्वरूप है।

अब आत्मा में एक चारित्रगुण है। वीतरागभावरूपी चारित्रगुण अनादि से आत्मा में है तो उस गुण में भी कर्म का रूप है, इस कारण से चारित्रगुण की निर्मल पर्याय का कार्य वह चारित्रगुण के कारण से होता है। आहाहा! वह चारित्रगुण का कार्य पंच महाव्रत का विकल्प है, उससे चारित्रगुण का कार्य होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अभी सत्य की खबर नहीं होती। यहाँ तो कहे, पंच महाव्रत पालन करो, दया पालन करो तो उससे निश्चय हो जायेगा। वह तो ऐसा कहते हैं, चौथे गुणस्थान में निश्चय नहीं होता, व्यवहार ही होता है। आहाहा! व्यवहार समकित।

मुमुक्षु : सातवें और आठवें में निश्चय होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ निश्चय होता है। आहाहा! शान्तिसागर ऐसा लिख गये हैं। वीतराग समकित-निश्चय समकित तो सातवें में निर्विकल्प में होता है। अरे! भगवान! श्रद्धागुण की शक्ति तुझमें त्रिकाल है या नहीं ? तो श्रद्धागुण में यह कर्म गुण है या नहीं ? कर्मशक्ति—गुण का रूप है या नहीं ? तो श्रद्धागुण के कारण से वीतरागी पर्याय प्रगट होती है, वह श्रद्धागुण का कार्य है। आहाहा! निश्चय सम्यग्दर्शन वीतरागी पर्याय का कार्य श्रद्धागुण में कर्म का रूप है, इस कारण से वीतरागी पर्याय का कार्य सुधरता है। आहाहा! व्यवहार समकित में शम, संवेग, निर्वेद और अनुकम्पा, ऐसा कहते हैं न ? आठ कारण से। इन सब विकल्प से रहित कर्मगुण के कारण से अपने में कार्य होता है। आहाहा! इस कार्य की सिद्धि, वह अपना कार्य है। बाकी राग की सिद्धि और पुण्य के शुभभाव और बाह्य की अनुकूलता, पैसा, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार का कार्य हो गया। धूल में भी तेरी कार्यसिद्धि नहीं। आहाहा! समझ में आया ? पाँच-पच्चीस लाख मिले तो अपनी कार्यसिद्धि हो गयी। धूल में भी नही। ऐई! शान्तिभाई!

मुमुक्षु : भगवान की दया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान की दया कहाँ आयी यहाँ ? ऐसा कि प्रभु की कृपा थी

तो पैसे मिले तो हम खर्च करते हैं। धूल भी नहीं, सुन न! कितने ही ऐसा कहते हैं कि महाराज की यह लकड़ी घूमी, (इसलिए पैसे हुए)। एक लकड़ी चोरी हो गयी। एक लकड़ी वापस अभी चोरी हो गयी, दो चोरी हो गयी। एक सनावद या क्या कहलाता है? सोनासण। सोनासण में एक खो गयी। अभी एक प्लास्टिक की सफेद थी, वह कोई ले गया। लकड़ी में धूल भी नहीं। यह तो हाथ में पसीना होता है तो पसीना शास्त्र को स्पर्श करे तो असातना होती है, इसलिए हाथ में लकड़ी रखते हैं। लकड़ी में कुछ नहीं, वह तो जड़ है। क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : लोग कहाँ मानते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! वहाँ भी चला था, बेंगलोर में। बेंगलोर में भभूतमल के पास दो करोड़ रुपये हैं न? इन तखतमल के गाँव के। दो करोड़ रुपये में से आठ लाख खर्च किये। बेंगलोर में बड़ा दिगम्बर मन्दिर बनाया। लोग देखने आवे ऐसा। बारह लाख रुपये का। हम तो प्रतिष्ठा के समय थे, तब काम कच्चा था, अब सुधर गया। उसमें उन्होंने आठ लाख खर्च किये और मैं आठ दिन रहा। आठ दिन तो शिक्षण शिविर था। उसमें उन्हें रुकना पड़ा। उनके पास दो करोड़ की स्टील थी। धन्धा बन्द हो गया। उसमें आठ लाख खर्च किये और चालीस लाख आये। चालीस लाख की आमदनी हुई। लोग ऐसा कहते हैं, देखो! भाई! आहाहा! वह तो पूर्व के पुण्य के कारण धूल मिलती है, उसमें आत्मा को क्या?

मुमुक्षु : लकड़ी का प्रताप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लकड़ी का प्रताप है? आठ लाख खर्च किये, उसका भी प्रताप नहीं। वह तो परमाणु उस प्रकार के पूर्व के पुण्य के हों, उसमें आ जाये। तुझमें कहाँ (आते हैं)? वह तेरा कार्य कहाँ है? यहाँ तो उसमें राग हो, वह भी तेरा कार्य नहीं। आहाहा! भगवान! तेरा कार्य तो निर्मल पर्याय, वीतरागी कार्य होना, वह तेरा कार्य है। आहाहा! अब यहाँ पूजा और भक्ति... दस दिन धमाल करे। वह राग का कार्य तेरा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

ज्ञानगुण में, दर्शनगुण में, चारित्रगुण में, आनन्द में। आनन्दगुण आत्मा में है।

अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का प्रभु आत्मा सागर है तो उसमें भी कर्म नाम के गुण का रूप है, इस कारण से अतीन्द्रिय आनन्द का पर्याय में प्रगट होना, आनन्द की पर्याय सुधरना, उस अतीन्द्रिय आनन्द में कर्म नाम के रूप के कारण सुधरता है। दूसरे गुण के कारण से नहीं। आहाहा! क्या कहा? देखो! क्या आया? ऐसा कहते हैं कि आत्मा में आनन्द की पर्याय प्रगट होती है, उस आनन्दगुण में कर्म नाम का रूप है, इस कारण से आनन्दपर्याय सुधरती है, दूसरे गुण के कारण से नहीं, दूसरी पर्याय के कारण से नहीं, राग से नहीं और निमित्त से नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। रतनलालजी! ऐसा मार्ग है। वीतरागमार्ग। आहाहा! समझ में आया? क्या चलता है? ४१ शक्ति चलती है।

शक्ति का अर्थ गुण। आत्मा में कर्म नाम का एक गुण है। उस गुण को कर्म कहा। परन्तु कर्म का अर्थ अरूपी गुण है। अरूपी कर्म नाम का एक गुण है कि जिस गुण के कारण से वर्तमान में निर्मलपर्याय सुधरना, निर्मल पर्याय का कार्य होना, वह कर्मगुण का कार्य है। क्रमवर्ती निर्मल... निर्मल... निर्मल... निर्मल... निर्मल... निर्मल उस क्रमवर्ती पर्याय का कारण कर्म नाम का गुण है। आहाहा! समझ में आया? पहली पर्याय अल्प थी और फिर शुद्धि हुई। पश्चात् शुद्धि की वृद्धि हुई। संवर में से निर्जरा की विशेष शुद्धि हुई। निर्जरा के तीन प्रकार हैं। एक—कर्म का खिर जाना, वह तो जड़ हुआ। एक अशुद्धि का खिरना, वह तो व्यय हो गया। परन्तु शुद्धि की वृद्धि हुई, उसे भी निर्जरा कहते हैं। तो कहते हैं कि यह शुद्धि की वृद्धि का कार्य वह कर्म नाम की शक्ति है तो (होता है)। राग की निर्जरा, अशुद्धता की निर्जरा, उसमें जो शुद्धि की वृद्धि हुई, वह इस कर्म नाम के गुण के कारण से है। आहाहा! पूर्व पर्याय निर्मल थी, इसलिए दूसरे समय वृद्धि हुई, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

पूर्व में मोक्षमार्ग की पर्याय थी तो वहाँ मोक्ष अर्थात् केवलज्ञान की पर्याय हुई, ऐसा भी नहीं है। मात्र वह केवलज्ञान की पर्याय, ज्ञानगुण में कर्म का रूप है, इस कारण केवलज्ञान की पर्याय, स्वतन्त्र कार्य सुधरने से केवलज्ञान का कार्य सुधरता है। आहाहा! अपनी पर्याय सुधरती है तो वह कारण है। सुजानमलजी! कहीं है ही नहीं, श्वेताम्बर में तो नाम भी नहीं मिलता।

मुमुक्षु : मस्तिष्क काम नहीं करता, कुछ याद नहीं रहता।

पूज्य गुरुदेवश्री : धीरे-धीरे तो कहते हैं, भाई!

मुमुक्षु : आप तो गहरे-गहरे उतरते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मार्ग गहरा है न! गहरे। भगवान! ध्रुवस्वरूप में यह कर्म नाम का गुण है, वह भी ध्रुवस्वरूप है। परन्तु उस कर्म नाम के गुण का कार्य क्या? वह कर्म अर्थात् कार्य का गुण है, उसका कार्य क्या? पर्याय में, हों! आहाहा! निर्मल सम्यग्दर्शन, निर्मल सम्यग्ज्ञान, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन, वह सब निर्मल कर्म नाम की शक्ति के कारण से कार्य है। आहाहा! बात तो इतनी समाहित की है! बहुत।

कर्म नाम की शक्ति अनन्त गुण में व्यापक है। और कर्म नाम की शक्ति अनन्त गुण में निमित्त है। कर्म नाम की शक्ति, उसकी क्रमवर्ती निर्मल पर्याय और उन सर्व शक्तियों का समुदाय दोनों मिलकर आत्मा है। आहाहा! यहाँ तो पर्यायसहित—निर्मल पर्यायसहित को आत्मा गिनने में आया है। नियमसार ३८ गाथा में लिया है, वहाँ तो पर्याय बिना के त्रिकाली आत्मा को आत्मा कहा है। परन्तु त्रिकाली आत्मा को आत्मा कहा, वह त्रिकाली जिसे जानने में आया, उसे त्रिकाली आत्मा है। वह परिणमन साथ में लेना है। आहाहा! यह क्या कहा? वहाँ तो त्रिकाली द्रव्यस्वभाव को त्रिकाली आत्मा कहा। नियमसार, ३८ गाथा। यहाँ तो वह त्रिकाली स्वरूप है, उस स्वरूप की अस्ति का स्वीकार निर्मल पर्याय में हुआ, तो वह निर्मल पर्यायसहित और गुणसहित को आत्म कहते हैं। अकेला है... है (ऐसा नहीं), यह तो पर्याय में उसकी स्वीकृति आयी और पर्याय में निर्मलता हुई, वह निर्मलता की क्रमवर्ती पर्याय और गुण अक्रम एक साथ, दोनों का समुदाय वह आत्मा है। ऐसी बातें अब उपदेश में कहीं (सुनने को मिलती नहीं)। वे कहे, व्रत करो, अपवास करो, तपस्या करो और दया पालन करो। आहाहा! मर गया करके, सुन न अब। वह तो राग की क्रिया है। जो उसके गुण में भी नहीं और उसकी पर्याय में भी नहीं। राग की क्रिया तो उसकी पर्याय में भी नहीं। द्रव्य की पर्याय उसे कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? फिर लोग ऐसा कहे कि, सोनगढ़वालों ने नया धर्म निकाला है। परन्तु यह क्या कहते हैं? यह सोनगढ़ की पुस्तक है? एक-एक शक्ति में कितना भरा है! आहाहा! समझ में आया?

प्राप्त किया जाता... प्राप्त किया जाता, कार्य को प्राप्त किया जाता, **जो सिद्धरूप भाव...** जो निश्चितरूप भाव **उसमयी कर्मशक्ति।** आहाहा! अब अपने आप पढ़े तो कुछ

खबर पड़े, ऐसा नहीं है। नौतमभाई! इतने शब्दों में इतना सब भरा है। कितना भरा है! सब खोलने जायें तो घण्टे के घण्टे व्यतीत हों। आहाहा! समझ में आया? एक-एक शक्ति पारिणामिकभाव से है और उसका कार्य जो है, वह उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव से है। आहाहा! और जो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव से कार्य है, उदयभाव से नहीं। आहाहा! द्रव्य और द्रव्य के गुण, उसका जो कार्य है, वह तो निर्मल है। उदयभाव उसका कार्य है ही नहीं। आहाहा! वह तो पर्याय की योग्यता से उदय है।

यहाँ तो द्रव्यदृष्टि में कर्म नाम के गुण के कारण से अथवा षट्कारक की निर्मल पर्याय के अभावरूप भावमयी शक्ति के कारण से निर्मल पर्याय उसका कार्य है। आहाहा! वह व्यवहाररत्नत्रय का कार्य नहीं, क्योंकि व्यवहाररत्नत्रय में यह कर्म नाम का गुण नहीं है। समझ में आया? और पूर्व की पर्याय में भी यह रत्नत्रयगुण नहीं है। आहाहा! पूर्व पर्याय निर्मल थी तो विशेष शुद्धि की वृद्धि हुई, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अनजाने को तो ऐसा लगे, यह क्या कहते हैं? कहीं धर्म की खबर नहीं होती। संसार की मजदूरी कर-करके मर गये। उसमें दो-पाँच करोड़ रुपये मिले, इसलिए मानो... ओहोहो! धूल में कुछ भी नहीं, सुन न! तेरी बादशाही अन्दर पड़ी है, उस बादशाही की खबर नहीं। भिखारी आनन्द को न देखकर यहाँ से मिलेगा, यहाँ से मिलेगा। चक्रवर्ती भिखारी होकर घूमता है। आहाहा! चैतन्य चक्रवर्ती, जिसमें अनन्त गुण के चक्र पड़े हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : निर्विकारी।

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्विकारी। विकारी पर्याय का भिखारी हुआ। भिक्षा माँगता है, मुझे पैसे में से सुख मिले, धूल में से मिले, स्त्री में से मिले, अच्छा लड़का पैदा करनेवाला होशियार में से मिले। धूल भी नहीं, भिखारी! भिखारी है, रंक, रंक है। आहाहा!

बादशाह तो भगवान अन्दर विराजता है, उसमें बादशाही शक्ति पड़ी है। उस शक्ति का परिणमन हो, वह बादशाही है। समझ में आया? है, उसमें से प्राप्त हो, वह बादशाही है। राग में वह कोई चीज़ है? सुख की पर्याय, ज्ञान की पर्याय, आनन्द की पर्याय राग में है तो वहाँ से प्राप्त हो? आहाहा! आकुलता, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव आकुलता है। भाई! आकुलता में यह कर्म नाम का गुण नहीं है और कर्म नाम की पर्याय भी नहीं है।

आहाहा ! यह तो पर्याय में अध्धर से उत्पन्न हुआ विकृत भाव है। और उससे रहित होना, उस भावमयीशक्ति है। उसका गुण ऐसा है, आत्मा का गुण ऐसा है कि विकार के भाव से रहित होना, वह उसका गुण है। विकार करना, ऐसा कोई गुण आत्मा में त्रिकाल में नहीं है। समझ में आया ? आहाहा ! देखो ! यह बात। आहाहा !

समयसार—आत्मा का सार। समयसार का अर्थ यह—द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से रहित, वह समयसार। आहाहा ! वह समयसार किस प्रकार प्रगटे ? आहाहा ! कि अपने में सार-कस—शक्ति पड़ी है। उस शक्ति का धारक आत्मा, उसकी दृष्टि करने से उस शक्ति का कार्य सुधरता है। अनादि काल से पर्याय में बिगाड़ता आया है। आहाहा ! राग और विकल्प शुभ और... आहाहा ! ये कार्य तेरा नहीं, प्रभु ! यह द्रव्य-गुण का कार्य नहीं। आहाहा ! रागादि शुभभाव, वह कहीं तेरे गुण का या द्रव्य का कार्य नहीं। यह गजब बात है !

जैसे आठ कर्म की पर्याय पुद्‌गल में होती है तो पुद्‌गल में कोई गुण नहीं कि जो आठ कर्म की पर्यायरूप पुद्‌गल परिणमे। कोई गुण नहीं है। समझ में आया ? पुद्‌गल में ऐसा कोई गुण नहीं कि वह पर्याय हुई, इसलिए किसी गुण की पर्याय है। आहाहा ! परमाणु में भी कर्मरूपी पर्याय होने का कोई गुण नहीं है। कर्मरूपी पर्याय अध्धर से विभाव मलिनता उत्पन्न होती है। आहाहा !

इसी प्रकार भगवान में—भगवान आत्मा में विकार होना, विकार करना, ऐसी कोई शक्ति—गुण नहीं है। आहाहा ! उसका गुण तो विभावरूप नहीं परिणमना, ऐसा गुण है। आहाहा ! अरे ! अभी तो तत्त्व क्या है ? तत्त्व की शक्ति क्या है ? और शक्ति की पर्याय—कार्य किस प्रकार होता है, इसकी खबर नहीं और उसे धर्म हो जाये ! पैसा-बैसा से धर्म नहीं होता, हीरालालजी ! इन्होंने लाख रुपये दिये हैं, लो ! सत्साहित्य में। शान्तिभाई के भाई ने लाख रुपये और इन्होंने अस्सी हजार दिये हैं। दोनों साथ में बैठे हैं। भावनगर। सत्साहित्य। सत्साहित्य है न ? तो अस्सी हजार इन भाई ने दिये हैं, इन्होंने एक लाख दिये हैं। उसमें कुछ धर्म है या नहीं ? उसमें श्रद्धा है, उसरूप नहीं परिणमना ऐसा उसका गुण है। आहाहा ! शुभभाव हुआ... आहाहा ! व्रत का, तप का, भक्ति का, पूजा का... यह क्या कहलाता है ? प्रतिमा का। यह जो विकल्प है, वह विकार है, उसरूप नहीं परिणमना, यह उसका गुण है। विकाररूप परिणमना, ऐसा कोई गुण तुझमें नहीं है, प्रभु ! आहाहा ! अरे रे !

घर की खबर नहीं होती और परघर के आचरण में स्वघर के आचरण है, ऐसा मान लेता है। आहाहा!

वीर्य नाम का आत्मा में गुण है। उसमें भी कर्मगुण का रूप है। तो वीर्य की पर्याय निर्मल हो, निर्मल पुरुषार्थ हो, वह वीर्य का कार्य है। दूसरे प्रकार से कहें तो वीर्य का कार्य स्वरूप की रचना करना। मूल में यह आया था। आत्मा में बल है, बल है। वीर्य—बल है। उसका कार्य स्वरूप की रचना करना। वीतरागी आनन्द और ज्ञानादि की रचना करना, वह वीर्य का कार्य है। राग की, व्यवहार की रचना करना, वह वीर्य का कार्य है ही नहीं। आहाहा! बड़ा मार्ग है, भाई! अभी खबर नहीं मिलती कि किस श्रद्धा को श्रद्धा कहना, किस ज्ञान को ज्ञान कहना, इसकी उसे खबर नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? विद्यानन्दजी और धर्मसागरजी के साथ जिनेश्वरदासजी को चर्चा हुई थी। वे कहे, व्यवहार समकित, वह समकित है। बस! आहाहा! धर्मसागर। वे अब शान्तिसागर के उत्तराधिकारी आये हैं। मूल खबर नहीं। अभी यह बात (चलती नहीं)।

भगवान तीन लोक का नाथ आनन्दकन्द प्रभु, उसमें ऐसी शक्ति है कि विकाररूप न होना, परन्तु विकार है उससे रहित होना, ऐसा गुण उसमें है। उसके बदले अकेले व्रत और तप, भक्ति और प्रतिमा लेकर हमें धर्म हो गया (ऐसा माना तो) वह मिथ्याशल्य है, मिथ्यादृष्टि है, झूठी दृष्टि है। आहाहा!

मुमुक्षु : झूठी कहो, वहाँ तक दिक्कत नहीं परन्तु मिथ्या कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्या कहो या झूठी कहो (एक ही है)। सम्यग्दर्शन कहो या सत्य कहो, सत्यदृष्टि कहो। मिथ्यादृष्टि कहो या झूठी दृष्टि कहो। आहाहा! समझ में आया? लो, यह सुमनभाई को मासिक आठ हजार का वेतन है। बुद्धि के कारण से होगा? और वह आठ हजार मिलने से उसके कारण वह सुखी है? धूल के कारण सुखी नहीं। वह आठ हजार मिले, ऐसा विकल्प उठा, वह दुःखरूप है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब आकुलता है। इसका ऐसा करना, इसका ऐसा करना, ऐसा करना। बुजुर्ग कहते हैं तद्नुसार काम करना। आहाहा! आकुलता की पिंजण है। पिंजण

समझते हो ? रुई को पींजते हैं न ? एक पुणी पूरी हो तो दूसरी पुणी सांध देते हैं। पुणी होती है न रुई की ? पूरी हो तो दूसरी पुणी सांध देते हैं। ऐसे एक आकुलता पूरी हो, वहाँ दूसरी आकुलता, दूसरी पूरी हो वहाँ तीसरी आकुलता। आकुलता की पींजण करता है। वह कोई आत्मा का गुण नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? ओहो ! बहुत है, बहुत भरा है।

एक तो यह कि कर्म नाम के गुण के कारण से अपना निर्मल कार्य सुधरता है, वह भी इसकी समय की उत्पत्ति का जन्मकाल है। आहाहा ! यह शुद्ध समकित दर्शन, ज्ञानादि उत्पन्न हुए, वह उनका जन्मक्षण था। उत्पत्ति का काल था। उस गुण के कारण से कहना, यह भी व्यवहार है। आहाहा ! गुण कारण और पर्याय कार्य, यह भी उपचार कथन व्यवहार का है। आहाहा ! ऐसी बात। इसे अभी व्यवहार कहें, वहाँ उस राग को व्यवहार कहकर निश्चय हो, कहाँ प्रभु, बापू ! तेरे भटकने के रास्ते नहीं मिटेंगे। आहाहा ! अरे ! नरक और निगोद जाकर बसा। आहाहा !

मुमुक्षु : यह रहस्य आपके सिवाय कौन खोले ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तुस्थिति ऐसी है। भाई ! निगोद में जाकर एक शरीर में अनन्त आत्मा, आयुष्य इकट्ठा। आहाहा ! वस्तु अलग। उसकी पर्याय अलग। आहाहा ! अरे ! वहाँ रहते तेरा अनन्त काल गया, प्रभु ! आहाहा ! माता के उदर में भी प्रभु तो ऐसा कहते हैं, प्रभु ! माता के उदर में बारह-बारह वर्ष रहा। सवा (नौ) महीने में साधारण जन्म है। परन्तु शास्त्र तो ऐसा कहते हैं, किसी को स्त्री के गर्भ में रह जाये छोड तो बारह वर्ष तक रहे। बारह वर्ष के बाद जन्मे। आहाहा ! यह उल्टे सिर श्वास ले नहीं, चारों ओर कफ... आहाहा ! यहाँ श्वास में जरा हवा बिगड़े तो, खिड़की खुली न हो तो कहे, खिड़की खुली करो, खुली करो। अब वहाँ खुल्ला क्या करे ? आहाहा ! भाई ! तूने बारह-बारह वर्ष माता के गर्भ में एक बार (व्यतीत किये), और दूसरी बात तो प्रभु ऐसा कहते हैं, कदाचित् बारह वर्ष में जन्मा, फिर से बारह वर्ष वहाँ रहे। उसकी माता के गर्भ में या दूसरी माता के गर्भ में। एक साथ चौबीस वर्ष की कायस्थिति है। गर्भ की चौबीस वर्ष की कायस्थिति है। आहाहा ! ऐसी चौबीस वर्ष की कायस्थिति एक साथ व्यतीत की, ऐसी अनन्त बार व्यतीत की है, नाथ ! आहाहा ! इस दुःख से मुक्त होना हो तो तेरे द्रव्यस्वभाव में शक्ति पड़ी है, उसकी सम्हाल

कर। समझ में आया ? दूसरी सम्हाल रखता है, इसकी अपेक्षा शक्ति की सम्हाल कर। यह शक्ति मेरी है, इसकी रक्षा कर। आहाहा! द्रव्य की रक्षा कर। मेरा द्रव्य शुद्ध चिदानन्द ज्ञायक है। आहाहा! मैं तो अतीन्द्रिय आनन्द का सागर हूँ। ऐसा है, ऐसी प्रतीति कर, वह रक्षा की। है, ऐसा नहीं मानना, उसने हिंसा की। आहाहा! समझ में आया ? इसमें तो बहुत भरा है। आहाहा!

प्राप्त किया जाता... आहाहा! निर्मल भाव प्राप्त होता है, वह सिद्धरूप-निश्चितरूप भाव, उसमयी कर्मशक्ति है। अब कहाँ कर्म जड़ और कहाँ कर्मशक्ति गुण!

मुमुक्षु : ऐसा गुण तो छहों द्रव्यों में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : छहों द्रव्यों में है, प्रत्येक में है। आहाहा! इस कारण से निर्मल पर्यायरूपी कार्य (होता है)। तेरा सुधार और सुधार का होना हो तो उस द्रव्य पर दृष्टि देने से द्रव्य में यह कर्म नाम का गुण है, इस कारण से तेरी पर्याय सुधरेगी। तब तू सुधारक हुआ; नहीं तो बिगाड़नेवाला है। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ३७, शक्ति- ४२, ४३ शुक्रवार, भाद्रशुक्ल ४, दिनांक १६-०९-१९७७

है न? **प्राप्त किया जाता...** यह तो गम्भीर मन्त्र है। वर्तमान पर्याय में निर्मल पर्याय प्राप्त होती है, प्राप्त की जाती है, वह सिद्धरूप भाव। वर्तमान जो निर्मल परिणति है, उसरूप भाव। सिद्धरूप भाव अर्थात् उस परिणतिरूप भाव। सूक्ष्म विषय है। सिद्ध अर्थात् सिद्ध (भगवान) नहीं। सिद्ध अर्थात् होनेवाला। उसे यहाँ सिद्ध कहते हैं। होनेवाला जो वर्तमान भाव, उसका नाम सिद्ध। सिद्ध अर्थात् सिद्धपर्याय नहीं। आहाहा! समझ में आया?

प्राप्त किया जाता जो सिद्धरूप... निश्चितरूप भाव। निर्विकारी सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, आनन्द आदि अनेक गुण की निर्मल पर्याय प्राप्त की जाती है, ऐसा जो भाव **उसमयी कर्मशक्ति।** उस कर्मशक्ति के कारण से और कर्मशक्ति का अनन्त गुण में रूप के कारण से। एक-एक गुण अपनी निर्मल पर्याय को प्राप्त करे, वह कर्म के रूप का स्वरूप है। और कर्मशक्ति का स्वरूप भी निर्मल पर्याय प्राप्त करे, वह कर्मशक्ति का स्वयं कार्य है। आहाहा! ऐसी बात है। इसमें पढ़े तो कुछ समझ में आये, ऐसा नहीं है। कल तो एक घण्टे चल गयी। आज तो अब अपने कर्तृत्व लेनी है। समझ में आया?

> **भवत्तारूपसिद्धरूपभावभावकत्वमयी कर्तृत्वशक्तिः।**
>
> **होनेपनरूप और सिद्धरूप भाव के भावकत्वमयी कर्तृत्वशक्ति।४२।**

ज्ञायकरूपभाव में कर्तृत्व नाम का एक गुण—शक्ति है। आहाहा! उस कर्तृत्वगुण के कारण से वर्तमान में भावकपनेमयी भाव—जो भाव... आया? **होनेपनरूप और सिद्धरूप भाव...** सिद्ध अर्थात् वर्तमान निश्चित भाव। उस भाव के **भावकत्वमयी...** भाव के करनेपनेमयी। भाव के कर्त, क अर्थात् करनेपनेमयी कर्तृत्वशक्ति। इतना तो शब्दार्थ हुआ। समझ में आया? यह शक्ति द्रव्यस्वभाव में पड़ी है। तो द्रव्यस्वभाव को जिसने दृष्टि में लिया, उसे इस कर्तृत्वशक्ति के कारण से... सीधी कर्तृत्वशक्ति परिणमती नहीं। परन्तु कर्तृत्वशक्ति जिसके आश्रय से है, ऐसा द्रव्य, उस द्रव्य का परिणमन होता है तो वर्तमान जो सिद्ध—निश्चितरूप निर्मल पर्यायभाव, उस-उस समय की निर्मल पर्याय, वीतरागी सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि। ज्ञान के परिणामरूपी भाव। उस कर्तृत्व में भी कर्तृत्व

का रूप होने से ज्ञान की वर्तमान निर्मल पर्याय के भाव का कर्तृत्व, ऐसी शक्ति ज्ञानगुण में कर्तृत्व अर्थात् रूप है। सवेरे की अपेक्षा सूक्ष्म पड़े। समझ में आया? चाहे जितनी भाषा सादी करे परन्तु जो वस्तु हो, वह आयेगी। आहाहा!

होनेपनेरूप... वर्तमान में वीतरागी पर्याय, गुण की पर्याय निर्मल होनेपनेरूप **और सिद्धरूप**... जो होनेवाली है, वह निश्चित है। वह पर्याय उस समय होनेवाली सिद्धरूप। **भाव के भावकपनेमयी**... ऐसा जो वर्तमान भाव, उसके भावकमयी, उस भाव के कर्तृत्वमयी, उस भाव के कर्तापनेमयी, कर्तृत्वशक्ति है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान पर्यायरूप। होनेपनेरूप में वर्तमान पर्याय निर्मल होनेरूप। उस भाव के भावकमयी, उस भाव की करनेवाली कर्तृत्वशक्ति है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ सिद्ध की बात नहीं है। पहले कहा न? सिद्ध शब्द यहाँ नहीं लेना, सिद्ध पर्याय नहीं लेना। सिद्ध—निश्चित पर्याय, उसका नाम सिद्ध। यह तो पहले कहा था, कल भी कहा था। ध्यान रखे तो (समझ में आये ऐसा है)। कल भी कहा था। प्राप्त किया जाता सिद्धरूप भाव। कर्मशक्ति में। सिद्ध अर्थात् सिद्धपर्याय नहीं। सिद्धपर्याय भी आ जाती है परन्तु अकेली सिद्धपर्याय नहीं। आहाहा! वर्तमान में होनेपनेरूप सिद्धरूप, वर्तमान में जो पर्याय उस काल में निर्मल होनेवाली है, वह निश्चितरूप, उस भाव के भावकपनेमयी, उस भाव के भाव का करनेपनेमयी। आहाहा! ऐसी बात है। कर्तृत्वशक्ति आत्मा में है। समझ में आया? आहाहा!

एक सरल भाषा बहिन की (पुस्तक में) देखते हैं। सौवाँ पृष्ठ है। बहुत सादी देशी भाषा। गुजराती है, तुम हिन्दी समझ लेना। **जागता जीव ध्रुव है।** ऐसा कहा है। अवश्य प्राप्त होगा। क्या कहा? जागता अर्थात् ज्ञायकभाव... ज्ञायकभाव त्रिकाली जागता अर्थात् ज्ञायकभाव, वह जागता जीव ध्रुव है न! ध्रुव है न! यह भाषा। आहाहा! क्या कहा? समझ में आया? ऐसे ज्ञायकभाव है, ऐसा कहना। ज्ञायक... ज्ञायक जागृतस्वभावभाव। त्रिकाली ज्ञायक जागृतस्वभावभाव। ऐसे जागृतस्वभावमयी जीव खड़ा है न! खड़ा अर्थात् है न!

त्रिकाल है या नहीं ? समझ में आया ? बहुत सादी भाषा। इस पुस्तक के तो बहुत प्रकार की पुस्तकें होंगी, ऐसा लगता है। मराठी होगी, कन्नड़ होगी, हिन्दी होती है। वे भाई थे न ? गुणभाई थे, वे आज गयी। वे कहते थे, इसका कन्नड़ में करना पड़ेगा। अरे ! सुने तो सही। क्या कहा ? है ? सौवें पृष्ठ पर है। तुम्हारी हिन्दी भाषा बाद में, पहले गुजराती।

जागृत जीव ध्रुव है न... अर्थात् ज्ञायकभाव टिकता है न ! आहाहा ! समझ में आया ? जाननस्वभावभाव खड़ा है न ! खड़ा अर्थात् ध्रुव है न ! आहाहा ! उस ओर नजर करने से अवश्य प्राप्त होगा। समझ में आया ? भाषा समझ में आयी या नहीं ? जागृतस्वभाव ज्ञायकभाव। हिन्दी तो साथ में आती है। जागृतभाव अर्थात् ज्ञानभाव, ज्ञायकभाव, स्वभावभाव, त्रिकाली ज्ञायकभाव वह जागृत भाव। वह जीव, जागृतभावरूपी जीव ध्रुव है न ! त्रिकाली टिकता तत्त्व है न ! समझ में आया ?

जागृत स्वभावमयी अर्थात् ज्ञायकस्वभावमयी। आहाहा ! जिसे छठवीं गाथा में ज्ञायक कहा। **'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।'** ज्ञायकभाव प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप भगवान, जागृतस्वभाव का शक्तिवान। है, खड़ा अर्थात् है। आहाहा ! है, जागृतस्वभावरूपी भाव शाश्वत् है। उस पर दृष्टि देने से अवश्य प्राप्त होगा। वह यह सिद्धरूप भाव। जो वस्तु में शक्तियाँ हैं। कर्तृत्वशक्ति जागृतभावरूपी ज्ञायकभाव। उसमें कर्तृत्वशक्ति है, वह भी ध्रुव है। ज्ञायकभाव जागृतस्वभाव ऐसा जीव जो ध्रुव है, उसमें कर्तृत्वशक्ति भी ध्रुव पड़ी है। समझ में आया ? उस ज्ञायकभाव की दृष्टि करने से कर्तृत्वशक्ति का भी प्रत्येक गुण में रूप है तो वर्तमान में निर्मल पर्याय भाव को करनेवाली कर्तृत्वशक्ति के कारण से वर्तमान निर्मल भाव होगा। ज्ञान के निर्मल भाव में ज्ञान कर्ता है।

कर्तृत्वशक्ति है तो ज्ञानगुण में भी (उसका रूप है)। ज्ञायक तो त्रिकाल, परन्तु उसमें जो ज्ञानगुण है, उसमें एक कर्तृत्व का रूप है। ज्ञानगुण के कारण से कर्तृत्व गुण सहित होने से कर्तृत्वगुण का सीधा परिणमन नहीं, परन्तु उस कर्तृत्व को धरनेवाला ज्ञायकभाव है, ऐसे ज्ञायकभाव का परिणमन होने से कर्तृत्वशक्ति का भी परिणमन साथ में होता है। तो क्या होता है ? कि निर्मल आत्मधर्म की शान्ति, वीतरागता, स्वच्छता, ज्ञान में ज्ञान के निर्मल परिणाम का कर्तृत्वशक्ति के कारण से निर्मल परिणाम का कार्य होता है। आहाहा ! शान्तिभाई ! बहुत ध्यान रखनेयोग्य है, बापू ! गम्भीर शक्ति। ओहोहो ! गजब काम किया है।

ज्ञायकभाव जागृतस्वभावभाव, ऐसा जीव प्रभु, उसमें कर्तृत्व नाम की शक्ति अर्थात् गुण है। वह भी ज्ञायकभाव में कर्तृत्वगुण ध्रुव है परन्तु उस कर्तृत्वगुण और ज्ञायकभाव की जहाँ प्रतीति हुई तो पर्याय में ज्ञानगुण की निर्मलता के भाव की कर्ता कर्तृत्वशक्ति है। इस कारण से निर्मल पर्याय प्रगट होती है। कोई कर्म का अभाव हुआ, इसलिए निर्मल पर्याय होती है, या पूर्व पर्याय थी तो निर्मल पर्याय वर्तमान में सिद्ध हुई, (ऐसा नहीं है), इसलिए सिद्ध कहा। वर्तमान में निर्मल पर्यायरूपी प्राप्ति हुई, वह अन्दर कर्तृत्वशक्ति के कारण से ज्ञान के वर्तमान निर्मल परिणाम की प्राप्ति (होती है)। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल। इस प्राप्ति का कारण कर्तृत्वशक्ति है। अब ऐसी बातें कभी सुनी न हो, ध्यान दे नहीं। बीड़ी के लिये तो बहुत जाते थे। साईकिल फिरे गाँव-गाँव में। तो यह भी जहाँ हो वहाँ जाना चाहिए न! होवे वहाँ जाना अर्थात् क्या? यह आत्मा जो है...

ज्ञायकभाव से भरपूर जागती ज्योति जो भगवान आत्मा, आहाहा! पुण्य और पाप आदि तो अन्धकार है। वह अन्धेरा स्वभाव में नहीं है। उस स्वभाव में कर्तृत्व नाम की एक शक्ति अर्थात् कर्तृत्व गुण है। जिस गुण के कारण से ज्ञान की वर्तमान निर्मल पर्याय जो सिद्ध अर्थात् जो होनेवाली है, उसका कर्ता यह कर्तृत्वशक्ति है। समझ में आया? निश्चय से तो कर्तृत्वशक्ति न लो तो यह द्रव्य उस निर्मल पर्याय का कर्ता है। आहाहा! यह सब झगड़े हैं न! व्यवहार से होता है और निमित्त से होता है... आहाहा! और पूर्व में निर्मल पर्याय थी तो फिर निर्मल पर्याय होगी, वह यहाँ निकाल डालते हैं।

यहाँ तो वर्तमान ज्ञान की, जो सम्यग्ज्ञान की पर्याय, मति-श्रुत की पर्याय या केवलज्ञान की पर्याय, उस-उस काल में होनेवाली जो पर्याय है... आहाहा! उस-उस पर्यायरूपी भाव, उसके भावकपनेमयी, उस भाव का भावकर्तापनेमयी आत्मा में कर्तृत्वशक्ति है। थोड़े शब्द में इतना भरा है। आहाहा! प्रभु! तेरी ऋद्धि तो देख! तेरी समृद्धि की सम्पदा तो देख! आहाहा! तुझमें एक कर्तृत्व नाम की शक्ति सम्पदा पड़ी है। आहाहा! इस कारण से ज्ञानगुण की निर्मल पर्याय वर्तमान श्रुतज्ञान है तो उसकी प्राप्ति भी इस भाव की भावकमयी कर्तृत्वशक्ति के कारण से है। फिर केवलज्ञान होता है... आहाहा! वह भी कर्तृत्वशक्ति के कारण से वर्तमान केवलज्ञान की पर्याय सिद्धरूप—निश्चित होनेवाली है, उसका कारण कर्तृत्वशक्ति है। आहाहा! ऐसी बातें। बनियों को बहुत शिक्षा न हो, वह के

वह शब्द पूरे दिन सीखने के। बहुत तर्क नहीं होते। वकीलों को तर्क विशेष होते हैं। यह तो पूरे दिन इतने भाव में यह लिया और ढाई रुपये में लिया और पौने तीन में दिया। वह का वह। इन्दुभाई!

यह तो तीन लोक का नाथ अन्दर जागृतस्वभाव से भरपूर... आहाहा! ध्रुवरूप परमात्मा विराजता है। आहाहा! उसमें कर्तृत्व नाम का एक गुण है। उस गुणी में गुण है। परन्तु दृष्टि में गुणी और गुण का भेद भी नहीं। आहाहा! दृष्टि में तो गुणी त्रिकाली ज्ञायक जागती ज्योति चैतन्यप्रकाश की मूर्ति है। समझ में आया? उस पर दृष्टि करने से कर्तृत्वशक्ति के कारण से, उस द्रव्य के गुण के कारण से वर्तमान ज्ञान की निर्मल पर्याय का कर्ता वह गुण है अथवा वह द्रव्य है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

ऐसे दर्शनगुण। दर्शनगुण जो वर्तमान में है। चक्षु, अचक्षु, अवधिदर्शन। निर्मल पर्याय जो सिद्धरूप वर्तमान वही होनेवाली है, ऐसे भाव के भावकमयी, उस भाव का कर्तामयी कर्तृत्वशक्ति है। आहाहा! समझ में आया? इसमें इतना समाहित कर दिया है कि कोई कर्म का क्षयोपशम हुआ तो यहाँ ज्ञान की पर्याय प्राप्त हुई, ऐसा नहीं। दर्शन की पर्याय प्राप्त हुई, चक्षुदर्शन या अवधिदर्शनावरणीय के अभाव से (प्राप्त हुई), ऐसा भी नहीं। केवलदर्शनावरणीय के अभाव के कारण केवलदर्शन प्राप्त हुआ, ऐसा भी नहीं है। आहाहा!

यह बड़ा विवाद था न? खानिया चर्चा में। तत्त्वार्थसूत्र में लिखा है, चार कर्म के नाश से केवलज्ञान होता है। परन्तु इसका अर्थ क्या? उस समय कर्म का क्षय उसके कारण से होता है परन्तु उसके कारण से यहाँ केवलज्ञान की प्राप्ति होती है, ऐसा नहीं है। केवलज्ञान की पर्याय सिद्धरूप उस समय होनेवाली पर्याय के, भाव के, उस केवलज्ञानरूपी भाव के भावकमयी, उस भाव के कर्तामयी कर्तृत्वशक्ति है। आहाहा! अब ऐसी बातें। ऐ... शान्तिभाई!

भगवान! तुझमें... यह तो आ गया न? दृशिशक्ति है। पहली ज्ञानशक्ति थी। चितिशक्ति में दर्शन और ज्ञानशक्ति दोनों है। उस दृशिशक्ति में भी कर्तृव नाम का रूप है, तो दृशिशक्ति में जो वर्तमान दर्शनपर्याय की प्राप्ति है, वह कर्तृत्व का रूप है। वह उसका कर्ता है। और कर्मशक्ति भी... निर्मल पर्याय जो कर्मशक्ति की होती है, उस भावक के भावमयी में कर्तृत्वशक्ति कारण है। आहाहा! प्रत्येक गुण की वर्तमान पर्याय प्राप्त होती है,

उस गुण में कर्तृत्व नाम का रूप है, इस कारण से वह कर्तारूप से उत्पन्न होती है। आहाहा! सत्य की स्थिति ही ऐसी है। समझ में आया?

ऐसे चारित्रगुण। आत्मा में एक अकषायभाव नाम का—चारित्र नाम का गुण है। उस गुण में भी कर्तापने का एक रूप है। कर्तृत्वगुण भिन्न है परन्तु उसमें कर्तृत्व का रूप है। इस कारण से वर्तमान में निर्मल वीतरागी पर्याय सिद्धरूप—निश्चितरूप जो प्राप्त होनी है, उसका कर्ता वह कर्तृत्व का रूप है। चारित्र में कर्तृत्व का रूप है, वह उसका कर्ता है। आहाहा! चारित्रगुण की वीतरागी पर्याय प्राप्त होती है, उसमें गुणरूप कर्तृत्व है, वह काम नहीं करता, ऐसा कहते हैं। वह तो चारित्र में कर्तृत्व नाम का रूप है, इस कारण से चारित्र की पर्याय प्राप्त होती है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है, बापू! इस बार शक्ति का वर्णन जरा...

आत्मा में आनन्द नाम की शक्ति है। सुख... भगवान आत्मा में स्वभावसिद्ध एक स्वभाव है। उस स्वभाव को धरनेवाला द्रव्य है। उस सुखशक्ति में कर्तृत्वशक्ति का रूप है, इस कारण वर्तमान में सुख की, आनन्द की प्राप्ति होती है और सुखगुण में कर्तृत्व का रूप है, इस कारण से होती है। इसमें कितना याद रखना? संसार की सब बातें याद रखना। जिसमें रुपये हों, वह याद रहे। आहाहा! वीतरागमार्ग अलौकिक है, बापू! इसे समझना वह कहीं साधारण बात नहीं है। आहाहा! वहाँ अनन्त-अनन्त पुरुषार्थ है।

अन्दर पुरुषार्थ—वीर्य नाम की एक शक्ति है। वीर्य नाम के गुण में भी कर्तृत्व का रूप है। आहाहा! अनन्त वीर्य जो भगवान को प्रगट होता है, वह पर्याय—भाव को करनेवाला कर्तृत्व का रूप है, वह कर्ता है। आहाहा!

मुमुक्षु : वीर्यशक्ति में कर्तृत्व का रूप है, वह कर्ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : रूप है, वह कर्तृत्वशक्ति है। समझ में आये उतना समझो, प्रभु! कहीं नहीं जा सकती इतनी सब बातें हैं इसमें। आहाहा! एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप और अनन्त गुण में एक-एक गुण का रूप। समझ में आया?

यहाँ तो द्रव्य, गुण और पर्याय तीन (लिये हैं)। यह भी यहाँ तो निर्मल पर्याय की बात है। मलिनता की बात यहाँ नहीं है। मलिनता का अभाव और निर्मल वीतरागी धर्मरूपी पर्याय का सद्भाव, उसका कर्ता कौन? पूर्व पर्याय भी नहीं... समझ में आया? कर्म का अभाव भी कारण नहीं... आहाहा! चारित्र में सम्यग्दर्शन की पर्यायरूपी भाव का भावक,

उस भाव का भाव करनेवाला अन्दर जो भावरूपी रूप है, श्रद्धा और चारित्र में, इस कारण से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र प्राप्त होते हैं। आहाहा!

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः। यह तो सूत्र है। तत्त्वार्थसूत्र। तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शन की पर्याय जिस समय में प्राप्त होने का काल है। वह सिद्धरूप—निश्चित वही भाव है। उस भाव का कर्ता कौन? श्रद्धागुण में कर्तृत्व का रूप है, इस कारण से उस भाव में कर्तृत्व उत्पन्न होता है। आहाहा! बहुत गम्भीरता। ओहोहो! सन्तों की वाणी, दिगम्बर सन्तों की वाणी... एक-एक शक्ति में बारह अंग का सार भर दिया है। आहाहा!

तू जागृतस्वरूप प्रभु नित्य है। उसमें कर्तृत्वशक्ति भी नित्य है। एक-एक गुण में कर्तृत्व का रूप भी उसका नित्य है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की जो निर्मल पर्याय जिस समय में वह भाव होना है, उस भाव के भावकपनेमयी, उस भाव के कर्तापनेमयी... भावक शब्द पड़ा है न? भाव के भावकपनेमयी, उस भाव की भावना कर्तापनेमयी। उस-उस गुण में उसका रूप है, वह कर्ता है। आहाहा! दूसरे गुण का कर्तृत्व दूसरे गुण में कारण है, ऐसा भी यहाँ नहीं। समझ में आया? अरे! अब ऐसा मार्ग। लोगों को बाहर से मनवा दिया। यह व्रत करो और अपवास करो, तपस्या करो और इस दशलक्षणी पर्व में दस अपवास करे तो मानो... ओहोहो! परन्तु क्या किया? वह तो अपवास है—बुरा वास है। उपवास तो उसे कहते हैं जो ज्ञायकभाव के उप अर्थात् समीप जाकर उसकी परिणति वर्तमान में हो, उसका नाम उपवास है। समझ में आया? बात-बात में अन्तर। इसमें मेल कहाँ करना? आहाहा!

ऐसे अन्दर में स्वच्छत्व नाम की शक्ति है। आहाहा! उसकी वर्तमान पर्याय में स्वच्छता प्रगट होती है, उस भाव में भावकपनेमयी कर्तृत्व रूप उसका है। यहाँ कर्तृत्वशक्ति ली है तो उस कर्तृत्वशक्ति का रूप प्रत्येक गुण में है। आहाहा! समझ में आया? अलग प्रकार की बात है, चन्दुभाई! आहाहा!

ऐसे प्रभुत्व नाम की शक्ति आत्मा में है। भगवान आत्मा के आश्रय से प्रभुत्वशक्ति है। प्रभुत्वशक्ति का आश्रय द्रव्य है परन्तु उस प्रभुत्वशक्ति में वर्तमान में प्रभुता की पर्याय प्रगट कार्य होनेवाली उस भाव की कर्ता उस प्रभुत्वशक्ति में कर्तृत्व नाम का रूप है, इस कारण से प्रभुता की पर्याय वर्तमान में भाव के भावकपनेमयी होती है। आहाहा! सुजानमलजी!

ऐसी बात है। आहाहा! उसके द्रव्य, गुण और पर्याय तीन की बात है। आहाहा!

आत्मा में एक अकार्यकारण नाम का गुण है कि जिस कारण से वर्तमान निर्मल पर्याय होती है, वह निर्मल पर्याय राग का कार्य नहीं तथा निर्मल पर्याय राग का कारण नहीं। यह तो ठीक। परन्तु अब अकार्यकारण की जो परिणति होती है, उस समय होनेवाली पर्याय राग का कारण नहीं और राग का कार्य नहीं। ऐसी निर्मल पर्याय भावरूप उस भावकपनेमयी उसके कर्तापनेमयी शक्ति से वह पर्याय उत्पन्न हुई है। आहाहा! समझ में आया? सर्व गुण असहाय। किसी गुण को किसी गुण की सहाय नहीं है। एक गुण में दूसरे गुण का निमित्तपना है। अथवा एक गुण व्यापक है, वहाँ व्यापक है परन्तु उस गुण में दूसरे गुण की सहायता से वह गुण रहता है और उस गुण की पर्याय में दूसरे गुण के पर्याय की सहायता से पर्याय होती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! एक भाव भी यथार्थ समझे तो सब स्पष्टीकरण हो जाये। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

ऐसे प्रमाणप्रमेयत्व नाम का एक गुण आत्मा में है। अपने गुण का प्रमाण करना और दूसरे के प्रमाण में स्वयं प्रमेय होना। आहाहा! वह परिणम्यपरिणामकत्व आ गया है। अपने ज्ञान में प्रमाणरूप होना और दूसरे के ज्ञान में प्रमेयरूप होना। आहाहा! इस गुण की वर्तमान पर्याय जो सिद्ध अर्थात् जो होनेवाली है, उसमें उस भाव के भावकपनेमयी, वह परिणम्यपरिणामकत्वशक्ति में कर्तृत्व का रूप है, इस कारण से होता है। आहाहा! भाषा नयी। यह तो गम्भीर भाव भरे हैं।

एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप और एक गुण में अनन्त का रूप। और एक गुण में अनन्त शक्ति और एक-एक गुण की अनन्त पर्याय। निर्मल, हों! यहाँ मलिन की बात नहीं है। आहाहा! उस प्रत्येक गुण की निर्मल पर्याय भावरूप, उस रूप, उस समय होनेवाली है, वह सिद्धरूप अर्थात् निश्चित भाव... आहाहा! क्रमबद्ध भी सिद्ध किया। उस समय होनेवाली है इसलिए वह। और उसका कर्तापना भी सिद्ध किया। समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म है परन्तु उसे समझना तो पड़ेगा या नहीं? भाई! आहाहा! अरे! बापू! ऐसा कब आवे? भाई! आहाहा! कल देखा, भाई! उसमें तो इतना हुआ मस्तिष्क में... ओहोहो!

यह तो बहिन की अपनी भाषा है। सादी, सादी। आहाहा! 'जागता जीव ध्रुव है,

न प्रभु! ऐसा है न! समझ में आया? ऐसी यह शक्ति की गम्भीरता है, भगवान! आहाहा! सादी भाषा। जीवन में निवृत्ति बहुत। बहुत संक्षिप्त भाषा में पुस्तक में सार आया है। और यह पुस्तक मेरे हिसाब से तो सर्वत्र वाँचन में चलेगी। समझ में आया? यह तो भाई गये न वे? मणिभाई वांकानेरवाले। बोटाद गये। वे कहे, यह पुस्तक मैं दशलक्षणी पर्व में वाँचन करूँगा। वाँचन करनेयोग्य है। बहुत लम्बा-लम्बा न समझ में आये तो संक्षिप्त में समझ में आये, (ऐसा है)। मणिभाई नहीं? वांकानेरवाले, बेंगलोर रहते हैं। और शान्तिभाई जाते हैं। इस बार शान्तिभाई लींबडी जायेंगे, ऐसा कहा। काल शाम को तो कहा, बोटाद जाते हैं। कोई कहे, लींबडी जायेंगे। आहाहा! यहाँ तो भाषा चाहे जिस प्रकार की हो, परन्तु वस्तु की स्थिति सिद्ध करती है तो भाषा चाहे जो हो। समझ में आया? हिन्दी में सिद्ध होता है और गुजराती में नहीं, ऐसा नहीं है। आहाहा!

प्रभु! तू जागती ज्योति खड़ा है न! उभो अर्थात् खड़ा। जागती चैतन्यज्योतिमय ध्रुव तू है। ज्ञान जागती ज्योति का कन्द है। ध्रुव कन्द है। उसके ऊपर नजर करना, वह तेरा कार्य है। बड़ा व्यक्ति आवे, तब उसके साथ बातचीत करे या नहीं? बातचीत बालक के साथ करे और उसके साथ न करे तो वह यहाँ आये, न आये सब व्यर्थ गया। कोई करोड़पति, अरबपति व्यक्ति आया हो, वह पन्द्रह मिनिट बैठनेवाला हो, उसमें बालक के साथ क्रीड़ा करने लगे तो वह उठकर चला जाता है। इसी प्रकार भगवान महाप्रभु ध्रुव खड़ा है न तेरे पास। आहाहा! उस पर नजर न करके, राग और पुण्य बालक है, उस पर तेरी नजर है। तेरे लिये वह नहीं, ऐसा हो गया। समझ में आया? आहाहा! पुण्य-पाप के विकल्प में रुकना, वह तो बालबुद्धि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान अन्दर पूरा स्थित है न! चैतन्यज्योति। उसमें एक कर्तृत्व नाम का उसका गुण है न! कहो, यहाँ तो क्या कहा?

जीव का कोई ईश्वर कर्ता नहीं, जीव के गुण का कोई ईश्वर कर्ता नहीं, जीव की पर्याय का कोई ईश्वर कर्ता नहीं, जीव के जिस गुण की पर्याय होती है, वह दूसरे गुण और दूसरी पर्याय कर्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कर्तृत्व और कर्मशक्ति का वर्णन वीतरागी सन्त के अतिरिक्त कहीं नहीं है। कठिन लगे, बापू! तूने मार्ग देखा नहीं न! आहाहा! भगवान के पास से यह तो आया है न! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि तू यह शरीर, वाणी, मन और पुण्य-पाप के भाव का लक्ष्य छोड़

दे। उसमें आत्मा नहीं। और एक समय की पर्याय का लक्ष्य छोड़ दे, उसमें पूरा आत्मा नहीं है। भगवान पूरा आत्मा तो ध्रुवस्वरूप पूरा जागृतभाव खड़ा है। उसमें अकर्तृत्व नाम की शक्ति पड़ी है, तो उस ध्रुव पर ध्येय करने से, उस ध्रुव का ध्यान करने से, ध्रुव का आश्रय लेने से जो पर्याय प्रगट होती है, उस समय वही होनेवाली है, उसका गुण है, वह उसका कर्ता है। एक-एक गुण में षट्कारक का परिणमन अपने से है, ऐसा कहते हैं। यह तो कर्मशक्ति है। बाकी ज्ञानगुण की पर्याय कर्ता स्वयं ज्ञान, कर्म ज्ञान की पर्याय, करण ज्ञान की पर्याय, सम्प्रदान वह पर्याय स्वयं रखी, अपनी ज्ञान की पर्याय से ज्ञान पर्याय हुई, ज्ञान की पर्याय का आधार ज्ञानपर्याय है। अब ऐसी बातें। निवृत्ति नहीं मिलती, फुरसत नहीं मिलती। आहाहा! अपनी सम्पत्ति कितनी है!

ज्ञानगुण की एक पर्याय में षट्कारक का परिणमन, निर्मल, हों! आहाहा! उसका कर्ता... वास्तव में तो वह पर्याय ही पर्याय की कर्ता है। परन्तु यहाँ गुण है, उसे लेना है तो वह गुण कर्तृत्वशक्ति में द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्याप्त होता है। कर्तृत्वशक्ति है, वह द्रव्य में है और गुण में है परन्तु जहाँ उसका स्वीकार हुआ, धर्मी की दृष्टि हुई, तो उस कर्तृत्वशक्ति का परिणमन उस निर्मल पर्याय का कर्ता उस पर्याय में आ गया। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें। मार्ग तो ऐसा है, भाई! गम्भीर मार्ग, वीतराग मार्ग। आहाहा! अब यहाँ तो कहते हैं, चौथे गुणस्थान में व्यवहार समकित होता है। अरे! प्रभु! क्या करता है तू? सम्यग्दर्शन में तो पूरा प्रतीति में आया। सम्यक् सत्य दर्शन, सत्य का दर्शन हुआ। आहाहा! देखनेवाले को देखा, जाननेवाले को जाना। आहाहा! ऐसी प्रतीति है, वह तो वीतरागी प्रतीति है। वह सराग-फराग वहाँ नहीं है। आहाहा! सरागपने का उसमें अभाव है, यह अनेकान्त है। सराग समकित का वीतरागी पर्याय के कार्य में सराग कर्ता का अभाव है। इसका नाम अनेकान्त और स्याद्वाद है। आहाहा! समझ में आया?

यह कर्तृत्वशक्ति जो है, कर्मशक्ति में भी कर्तृत्व का रूप है। क्या कहा? बहुत गम्भीर। इन शब्दों में इतना संग्रह है, भाव का इतना संग्रह है... अनन्त-अनन्त भाव समाहित कर दिये हैं। एक-एक वाक्य में अनन्त-अनन्त भाव का समावेश कर दिया है। आहाहा! जो कर्म नाम की शक्ति है, उसमें भी कर्ता नाम का रूप है। आहाहा! और कर्ता नाम की शक्ति है, उसमें कर्म नाम का रूप है। आहाहा! सुमनभाई! अपने आप कुछ हाथ

आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! कॉलेज में पढ़ने जाना पड़े न! तुम गये थे न अमेरिका? ऐसा जहाँ हो, वहाँ उसे जाना पड़े।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे अपने अन्दर में। क्या कहा? आहाहा! यह तो जीव के जीवन की बातें है, भाई! जीव का जीवन। ज्ञान, दर्शन, आनन्द की पर्याय से जीवे, वह जीव का जीवन है। शरीर से जीवे, वह जीव का जीवन है ही नहीं और दया, दान के विकल्प से जीवे, वह जीव का जीवन नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा जीव, उसमें जो अनन्त शक्तियाँ हैं और वह जीवपना है तथा उसकी पर्याय है, वह भी जीवपना है। निर्मल पर्याय वह जीवपना है। आहाहा! दया, दान, व्रत वह जीवपना है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहो, मफाभाई! सुनाई देता है न? इस बार रुके हैं। फिर जहाँ भावनगर में सेठिया सामने हो तो जी... हाँ... करे। क्या करे परन्तु समझ में नहीं आये तो? आहाहा! यह तो भगवान की पेढ़ी है। आहाहा!

भगवान परमात्मा अपने स्वरूप में अनन्त शक्ति अर्थात् अनन्त गुण बसे हैं। उन गुण का कार्य क्या? आहाहा! ज्ञानगुण का कार्य निर्मल पर्याय होना वह। श्रद्धागुण की पर्याय समकित पर्याय होना वह। चारित्रगुण की पर्याय में वीतरागदशा उतपन्न हो वह। आहाहा! सुखगुण में आनन्द का वेदन आना वह। आहाहा! और कर्मगुण का... वर्तमान में जो कार्य है, वह कर्म का कार्य है। और कर्तापना कर्तागुण वह उसका कर्ता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन की धर्मपर्याय में भी कर्म का रूप है। इस कारण से सम्यग्दर्शन की सिद्ध पर्याय उस समय में होनेवाली हुई। उस भाव का कर्ता वह कर्म है। और उसमें कर्तृत्व का रूप भी है तो इस कारण से सम्यग्दर्शन की पर्याय, वह भाव है, उसके भावकपनेमयी कर्तृत्वशक्ति है, उसमें कर्तृत्व का रूप है। आहाहा! बहुत समाहित किया है। दीपचन्दजी ने सवैया में अध्यात्मपंचसंग्रह में समाहित किया है। अन्त में सवैया है। इतना लेख है कि शीघ्र कुछ पकड़ में नहीं आता। इतना सत् का विस्तार किया है। समझ में आया? आहाहा! यह वस्तु की स्थिति का उसमें वर्णन किया है, हों!

होनेपनेरूप... होनेपनेरूप अर्थात् वर्तमान अवस्था। **और सिद्धरूप...** अर्थात् जो होनेवाली है वह। उसके भाव का भावक, उस भाव के भावकपनेमयी। आहाहा!

कितना समाहित किया है! सन्तों ने गजब काम किया है। आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने जैनधर्म के केवलज्ञान के क, का घोंटे हैं। कक्का केवलज्ञान ले। खखा... तेरी खबर ले। आहाहा! गग्गा तेरे गम्य में जा। आहाहा! तू तेरी गम्यता कर, प्रभु! आहाहा! ऐसे सब आते हैं। बारहखड़ी आती है। क, ख, ग, घ, च, छ, ज प्रत्येक का अर्थ आता है। कहीं पढ़ा है। समझ में आया? आहाहा! थोड़ा परन्तु सत्य समझना चाहिए। सत्य हो, वहाँ सत्य का स्वरूप कैसा है, यह थोड़ा भी इसे समझना चाहिए। दूसरे का विशेष ज्ञान न हो परन्तु सत्य का जिस प्रकार से है, उस प्रकार से ज्ञान होना चाहिए। और भाव के भासन में वह चीज़ होना चाहिए। आहाहा! समझ में आया?

होनेपनेरूप और सिद्धरूप... ओहोहो! गजब काम किया है। सिद्ध अर्थात् उस समय की अवस्था प्राप्त है। उसमें आता है न? प्राप्य, विकार्य, निवर्त्य। प्राप्य, विकार्य, निवर्त्य नहीं आता? ७६, ७७, ७८, ७९ (गाथा)। प्राप्य अर्थात् उस समय में वह पर्याय होनेवाली को प्राप्त करता है, वह प्राप्य। आहाहा! समझ में आया? धीरे-धीरे विचारना। भगवान! तेरी सम्पदा बहुत है। अनन्त गुण में एक-एक गुण में अनन्त रूप, एक-एक गुण में अनन्त रूप तो अनन्त गुण में अनन्तरूप। ऐसी अनन्त पर्याय में अनन्त रूप। अनन्त पर्याय में अनन्त पर्याय जो भिन्न है, उसका रूप। आहाहा!

एक सम्यग्दर्शन पर्याय हुई, उसमें सम्यग्ज्ञान का रूप है। सम्यग्ज्ञान की पर्याय नहीं। आहाहा! पर्याय की प्राप्ति हुई, उसके भावकपनेमयी कर्तृत्वगुण के कारण से है। उस भाव का भावकपना कर्तृत्वगुण के कारण से है। पर के कारण से (नहीं)। यह व्यवहार किया और व्यवहार से समकित हुआ, यह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहाहा! अभी तो यह काम चलते हैं, बापू! भगवान! एक ओर पड़ा रहा। जिसमें विभावभाव है नहीं, उस रास्ते चढ़ा दिया। आहाहा! अरे! प्रभु! वीतराग के विरह में राग के रास्ते चढ़ा दिया।

एक-एक गुण में कर्तृत्व नाम का रूप है। आहाहा! और इस कारण उस गुण की जिस समय में पर्याय होनी है, उसका कर्ता वह गुण है। दूसरा गुण भी कर्ता नहीं और आनन्द की पर्याय में जो कर्तृत्व की पर्याय हुई तो वह कर्तृत्व की पर्याय भी आनन्दगुण की पर्याय नहीं करती। आहाहा! ऐसी बात है। याद रहना मुश्किल है। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! ऐसा मार्ग है। कभी सुना भी नहीं। और ऐसा करके माना कि हम तो स्थानकवासी

हैं और हम श्वेताम्बर हैं और हम दिगम्बर हैं। बापू! जैनपना... आहाहा! एक-एक पर्याय में पर्याय का गुण कर्ता, एक-एक पर्याय में स्वयं पर्याय कर्ता। आहाहा! एक समकित की पर्याय में समकित की कर्ता पर्याय; कर्म पर्याय; साधन—करण—कारण पर्याय, वह पर्याय हुई उसे रखी, वह सम्प्रदान; पर्याय में से पर्याय हुई और पर्याय के आधार से पर्याय हुई। आहाहा! ऐसे एक-एक गुण की एक-एक पर्याय में षट्कारक लगाना। आहाहा! समझ में आया? एक-एक पर्याय में पर की पर्याय नहीं, ऐसी अनन्त पर्याय की सप्तभंगी लगाना। अपनी पर्याय से पर्याय है, दूसरी अनन्त पर्याय से नहीं। ऐसी सप्तभंगी लगाना। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसा मार्ग। विरोध करे। प्रभु! एक बार सुन तो सही, नाथ! तेरी बात तो एक बार सुन। फिर विरोध करने का तुझे रहेगा नहीं, भाई! प्रभु! तेरी घर की बात है न! आहाहा!

यहाँ भावकमयी लिया न? **भाव के भावकपनेमयी...** भाव कौन? कि वर्तमान निर्मल पर्याय। उसके भावकपनेमयी। उस भाव के करनेपनेमयी कर्तृत्वशक्ति। आहाहा! भाव वर्तमान जो-जो गुण की पर्याय है, वह भाव उस समय का सिद्ध, उस भाव के भावकपनेमयी, उस भाव का कर्तापनेमयी। वह वह गुण वह उसका कर्ता है। आहाहा! जीव की पर्याय स्वतन्त्र, गुण स्वतन्त्र और जिसमें विकार का अभाव। आहाहा! अभी तो चिल्लाहट मचाते हैं कि यह... सोनगढ़वाले निश्चय से होता है, ऐसी बात करते हैं, व्यवहार से करते नहीं तो एकान्त है। अरे! प्रभु! सुन तो सही, बापू! भगवान! यह सम्यक् एकान्त है। एकान्त परन्तु सम्यक् एकान्त और मिथ्या एकान्त दो होता है। अनेकान्त भी दो। सम्यक् अनेकान्त, मिथ्या अनेकान्त दो प्रकार के हैं। अपनी पर्याय अपने से होती है और राग से भी होती है, यह मिथ्या अनेकान्त है और अपनी पर्याय अपने से है और पर से नहीं, यह सम्यक् अनेकान्त है। आहाहा! भाई! जिन्दगी चली जाती है, बापू! उसमें जिस समय में कार्य करना हो, वह न करे, करनेयोग्य कर्तृत्व है, वह तो न करे और नहीं करनेयोग्य में रुक जाये। आहाहा! और पूरी दुनिया इस रास्ते है तो उसे देखकर स्वयं भी उस रास्ते चला जाता है। परन्तु दुनिया दुःखी होती है, तब तू दुःख में जाता है अन्दर में? तेरे दुःख में तू और उसके दुःख में वह। आहाहा! अकेला दुःखी होकर वेदन करे। मुझसे सहन नहीं होता।

एक श्वेताम्बर साधु था। (संवत्) १९८८ के वर्ष की बात है। जामनगर। वे लोग बेचारे आते थे। सब साधु हमारे पास आवे। हमारा नाम था। एक बीमार था तो मैं वहाँ गया। वह साधु था रूपवान। ऐसे... ऐसे हुआ करे। सोवे तो भी (ऐसे... ऐसे हो)। फिर कहे, महाराज! मुझसे सहन नहीं होता। ऐसा करके बेचारा (बोला)।५५-६० वर्ष की देह की उम्र होगी। सोवे तो भी पूरा घिसाय। बापू! जड़ की पर्याय है, भाई! बैठे तो ऐसे-ऐसे हो, सोवे तो ऐसे-ऐसे हो। एक व्यक्ति नौकर रखा था। वह बेचारे का काम करे। साधु-बाधु तो कोई थे नहीं। आहार-पानी ले आवे न... फिर मैं वहाँ गया था। दूसरे साधु थे। नरम थे, वे हमारे पास आये थे। वहाँ फिर एक दिन उनके लिये गया था। वहाँ वे बैठे थे। मुझसे सहन नहीं होता। अब यह जिन्दगी कैसे निकालना? कहा, भाई! क्या होगा? बापू! आत्मा को सहन करना पड़े। आहाहा! यह होता है, उसे ज्ञाता-दृष्टारूप से जानना, यह आत्मा का कार्य है। समझ में आया? आहाहा! अपने ऊपर आवे, तब उसे कठिन लगे। दूसरे की बात के लिये तब कुछ नहीं।

यहाँ तो ऐसा कहते हैं, परन्तु सुन तो सही, नाथ! तुझमें एक कर्तृत्व नाम का गुण है कि निर्मल पर्याय करे। मलिन पर्याय को करे नहीं, ऐसा तुझमें गुण है। ... ऐसे विकारभाव को करनेवाला आत्मा नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात और धर्म का रूप ऐसा। परन्तु इसमें करना क्या? यह करना यह कि द्रव्यस्वभाव है, उसमें शक्ति अनन्त है तो उस शक्ति के धारक भगवान की दृष्टि करना और उसका ज्ञान करना। जागृत ज्ञायकभाव है, उसका ज्ञान, उसकी श्रद्धा और उसमें लीनता, यह करना है। लीनता में तो अनन्त गुण की पर्याय उसमें लीन होती है। आहाहा! समझ में आया? लो, यह ४२ (शक्ति पूरी) हुई। चार मिनिट बाकी है। ...अब ४३। थोड़ी शुरु करते हैं, फिर कल।

मुमुक्षु : चार मिनिट में हो जायेगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो होनी होगी तो होगी।

भवद्भावभवनसाधकतममत्वमयी करणशक्तिः।

भवते हुए (प्रवर्तमान) भाव के भवन के (होने के) साधकतमपनेमयी (-उत्कृष्ट साधकत्वमयी, उग्र साधनत्वमयी) करणशक्ति।४३।

४३। ४०+३। **भवते हुए (प्रवर्तमान) भाव के भवन के (होने के)...** गजब। अमृतचन्द्राचार्य ने समयसार की शिरोमणि शक्तियाँ निकाली हैं। आहाहा! करणशक्ति का वर्णन। करण अर्थात् कारणशक्ति अन्दर है। वर्तमान पर्याय में कारणशक्ति के कारण से यह कार्य होता है। आहाहा! क्या कहा? देखो! **भवते...** अर्थात् होनेवाली प्रवर्तमान वर्तमान भाव। उसके **भवन के (होने के)...** उसके होने के, होने के **साधकतमपनेमयी...** साधकतमपनेमयी। साधकतम—उत्कृष्ट साधकपना। आहाहा! जो करण नाम की शक्ति है, वह निर्मल पर्याय की साधकतम कारण है। वह कारण है, रागादि कारण नहीं, निमित्त कारण नहीं—ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ३८, शक्ति- ४३ शनिवार, भाद्रशुक्ल ५, दिनांक १७-०९-१९७७

समयसार शक्ति का अधिकार। शक्ति अर्थात् आत्मा में गुण जो है, आत्मा गुणी है, स्वभाववान है, उसके गुण को यहाँ शक्ति कहते हैं। यह शक्ति कहो या गुण कहो। उसमें अनन्त शक्ति है। वस्तु आत्मा एक, दृष्टि करनेयोग्य एक। आहाहा! परन्तु उसमें अनन्त शक्तियाँ हैं, वे भेदरूप हैं। शक्ति पर लक्ष्य करना, ऐसा नहीं। शक्तिवान जो अभेद एकरूप आत्मा है, उस पर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। धर्म की शुरुआत वहाँ से होती है। आहाहा! कोई दया, दान, व्रत, भक्ति और अपवास तथा दो, पाँच, पच्चीस लाख के मन्दिर बनावे, उससे धर्म नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात है। धर्म की शुरुआत का वह कारण नहीं है। धर्म की शुरुआत का कारण... आज कारणशक्ति आयेगी न? करणशक्ति कहो या कारणशक्ति कहो। आहाहा!

भगवान आत्मा में एक कारण नाम की शक्ति है। यहाँ करण कहेंगे। करण कहो, कारण कहो। आत्मा में साधन, साधक नाम की एक शक्ति है। आहाहा! कहीं सुना न हो, इसलिए लोगों को मुश्किल पड़ता है। यह और कैसा धर्म निकाला? हम तो भाई! यह व्रत पालना, भक्ति करना, पूजा करना, यात्रा करना, यह सब धर्म (माना था)। अरे! भगवान! भाई! तुझे खबर नहीं, बापू! वीतराग धर्म तो उसे कहते हैं कि जिसे राग से रहित अपनी चीज़ है, उसकी शक्तियों का भेद भी लक्ष्य में नहीं लेना। आहाहा! वह शक्तिवान जो भगवान आत्मा है, अखण्ड अभेद एकरूप की दृष्टि करने से धर्म की प्रथम शुरुआत—सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होती है। बाकी सब थोथा है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ आज तो इस शक्ति का वर्णन है। कितनी है यह? ४३। ४७ शक्ति के वर्णन में ४३वीं आज आयी है। चार और तीन। आहाहा! क्या कहते हैं? **भवते**... ४३वीं शक्ति। थोड़ी सूक्ष्म है। बहुत ध्यान रखे तो समझ में आये, ऐसी चीज़ है, यह कोई वार्ता, कथा नहीं है। यह तो भगवान आत्मा की भगवत्स्वरूप कथा है। सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव परमेश्वर वीतराग त्रिलोकनाथ इस आत्मा की कथा करते हैं। दिव्यध्वनि में आया कि, प्रभु! एक बार सुन तो सही। आहाहा! तेरी चीज़ में जो वर्तमान भवते—प्रवर्तमान वर्तमान जो परिणाम, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि के निर्मल प्रवर्तमान वर्तमान परिणाम। प्रत्येक में ध्यान रखे

तो समझ में आये ऐसा है। यदि एक शब्द आड़ा-टेड़ा हो तो कुछ समझ में आये ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि आत्मा जो वस्तु—पदार्थ है, उसमें एक शक्ति ऐसी है कि वर्तमान निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि निर्मल परिणाम के, भवते हुए भाव के, होनेवाले भाव के... आहाहा! है? भवते का अर्थ (किया)। ऐसे **भवते हुए भाव के भवन के (होने के)**... कारण। धर्म की वीतरागी पर्याय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, प्रभुता, स्वच्छता आदि अनन्तगुण की वर्तमान निर्मल प्रवर्तमान पर्याय का भाव, उसके होने में कारण अन्दर करणशक्ति है, वह कारण है। आहाहा! समझ में आया? पूरी दुनिया ऐसा कहती है कि व्रत करो और अपवास करो और भक्ति करो, पूजा करो, यह सब साधन है। भगवान तो इनकार करते हैं। समझ में आया? तब साधन कहा है न? भिन्न साध्य-साधन शास्त्र में आता है। वह भिन्न साध्य-साधन कहा, वह तो निमित्त का ज्ञान कराने को कहा है।

पंचास्तिकाय में है। भिन्न साधन और भिन्न साध्य। राग की क्रिया की मन्दता, वह भिन्न साधन और निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि साध्य। यह तो व्यवहार का ज्ञान कराने को कहा है और यह आरोपित कथन है। आहाहा! निश्चय में, वास्तविकता में, यथार्थ में भगवान आत्मा में एक करण नाम का गुण है। गुणी भगवान आत्मा और उसमें एक करण नाम का गुण है। करण कहो या कारण कहो। आहाहा! जिस करण नाम के गुण के कारण से वर्तमान निर्मल पर्याय के साधनरूपी करण प्राप्त होता है। आहाहा! यह तो वीतरागमार्ग, भाई! अनन्त काल में इसे समझा नहीं। अनन्त बार जैन दर्शन सम्प्रदाय में जन्म हुआ और साक्षात् तीन लोक के नाथ तीर्थंकर महाविदेह में विराजते हैं, वहाँ भी अनन्त बार जन्म हुआ है, और समवसरण में भी अनन्त बार गया है और भगवान की वाणी भी सुनी है। आहाहा! परन्तु उन्होंने जो कहा कि तेरी वस्तु में एक करण नाम का गुण है, उससे तेरी पर्याय में कार्य होता है। मोक्ष का मार्ग—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग:, उस कार्य का कारण तुझमें करण नाम की शक्ति है, उस कारण से वह कार्य होता है। आहाहा! समझ में आया? तथापि उस करणशक्ति पर लक्ष्य नहीं करना है। लक्ष्य तो करण का धारक द्रव्य जो है... आहाहा! उस पर दृष्टि देने से पर्याय में कार्य होता है। पर्याय कहो या कार्य कहो।

भवते हुए कहा न? **भवते हुए (प्रवर्तमान)**... प्रवर्तमान भाव—वर्तमान भाव। आहाहा! यहाँ तो कहे कि दया पालो, व्रत करो, सूर्यास्त पूर्व भोजन करो, कन्दमूल नहीं खाओ, भगवान के दो-पाँच मन्दिर बनाओ, पूजा करो तो धर्म होगा। अरे! प्रभु! सुन तो सही, भाई! यह तो शुभभाव किया हो तो कदाचित् पुण्य है, धर्म नहीं। आहाहा!

धर्म तो वीतरागीस्वरूप भगवान, उसमें धर्म—करण नाम का एक धर्म पड़ा है, गुण पड़ा है, शक्ति पड़ी है; इस कारण धर्मी ऐसे आत्मा पर दृष्टि करने से वह साधक नाम की एक शक्ति है, उसके निर्मल परिणाम का कारण वह साधकपना है। सम्यग्दर्शन की पर्याय का कारण साधक नाम की शक्ति है, उसके कारण से वे परिणाम होते हैं। आहाहा! सुमनभाई! आहाहा! धीरे-धीरे आता है। अन्दर से आवे ऐसा हो न!

कहते हैं कि जो चीज़ पड़ी है, ध्रुव भगवान आत्मा ध्रुव, वर्तमान पर्याय में उत्पाद-व्यय है, परन्तु वह एक समय की अवधिवाली चीज़ है और जो ध्रुव चीज़ है, वह तो त्रिकाली अवधिवाली चीज़ है। आहाहा! त्रिकाली जिसकी अवधि—काल है, ऐसे ध्रुव पर दृष्टि करने से उसकी पर्याय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि के परिणाम हों, उनका कारण द्रव्य है अथवा द्रव्य में रही हुई साधक नाम की गुण—शक्ति है, वह निर्मल पर्याय का कारण है। आहाहा! शान्तिभाई! कभी सुना नहीं, ऐसे के ऐसे सिरपच्ची करके जिन्दगी चली जायेगी। आहाहा! हम जैन हैं और हम धर्म करते हैं, ऐसे करके अभिमान में जिन्दगी चली जाती है, बापू! आहाहा!

भव के अभाव के कारणरूप जो निर्मल पर्याय—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, वह साधक नाम की शक्ति है, उसके कारण से पर्याय में वह कार्य होता है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय बीच में आता है, परन्तु वह कारण नहीं। आहाहा! वह तो हेय है। समझ में आया? उपादेय तो भगवान आत्मा, जिसमें साधक नाम का—करण नाम का गुण पड़ा है, उस गुण का धारक गुणी... आहाहा! पंचम पारिणामिकस्वभावभाव, नित्यानन्द नाथ प्रभु का आश्रय करने से, उसमें साधक नाम की शक्ति—गुण है, इस कारण से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के परिणाम प्रवर्तमान भाव प्रगट होता है। आहाहा! अब ऐसा सुनना मुश्किल पड़ता है।

मुमुक्षु : साधक और करण एक ही है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : करण अर्थात् साधक कहो, करण कहो, कारण कहो। तीन शब्द लिये न? समझ में आया? आहाहा! धीरे से समझना, प्रभु! यहाँ तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव परमेश्वर का हुकम / आज्ञा में यह आया है। आहाहा!

प्रभु! तेरा जो धर्म का कार्य है, वह धर्म का कार्य तो वीतरागी पर्याय है। दया, दान, व्रत, यह कोई धर्म का कार्य है ही नहीं। यह तो बन्ध का कारण है। आहाहा! कठिन बात। चैतन्य भगवान अन्दर महा माहात्म्यवाली वस्तु है, जिसकी महिमा पूर्ण सर्वज्ञ परमेश्वर भी वाणी द्वारा नहीं कह सकते, ऐसी चीज़ अन्दर भगवान सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा है। सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा वह, हों! अज्ञानी आत्मा... आत्मा करता है, वह नहीं। आहाहा! यह सर्वज्ञ परमेश्वर ने अपने आत्मा को ऐसा देखा, 'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता हो लाल...' हे नाथ! आप सर्वज्ञ परमेश्वर तीन काल-तीन लोक के द्रव्य, गुण, पर्याय को एक समय में जानते हो। 'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता हो लाल, निज सत्ता से शुद्ध हमको पेखता हो लाल।' प्रभु! आपके सर्वज्ञपने में हमारी निज सत्ता, निज अस्तित्व पवित्र है, उसे आप आत्मा देखते हो। पुण्य-पाप और शरीर को तो आप पर देखते हो। आहाहा! शरीर, वाणी, मन, कर्म तो अजीवरूप से भगवान देखते हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना तो भगवान पापरूप देखते हैं और दया, दान, व्रत, शील, ब्रह्मचर्य आदि के भाव को भगवान पुण्यरूप देखते हैं। आहाहा!

'निज सत्ता से...' निज अस्तित्व। अपना अस्तित्व। वह तो प्रभु! आप शुद्ध हैं, ऐसा देखते हो। तो शुद्ध अर्थात् तेरे द्रव्य, गुण दोनों शुद्ध हैं, उसे आत्मा कहते हैं। उस आत्मा में करण नाम की एक शक्ति है, एक गुण है, साधकपने का एक गुण है। साधकपना जो अन्दर प्रगट होता है, उसकी साधक नाम की शक्ति है। आहाहा! शान्तिभाई! जवाहरात में कभी सुना भी न हो, वहाँ सिरपच्ची करके जिन्दगी चली गयी। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! मलूकचन्दभाई ने उनके पुत्र का थोड़ा सुनाया था। धूलधाणी और वपाणी। आहाहा! मलूकचन्दभाई हैं न यह? उनके दो पुत्र हैं। एक के पास चार करोड़ हैं और एक के पास पाँच करोड़ हैं। इससे अधिक होंगे। परन्तु अपने को तो किसी ने बात की है। यह उनके पुत्र हैं। यह मलूकचन्दभाई बैठे हैं न? सवेरे बात करते थे कि दोनों भाईयों में विवाद था। वह घड़ियाल-बडियाल स्वीटजरलैण्ड से भेजता है, उसके पास

चार करोड़ रुपये। लड़का एक भी नहीं, एक लड़की है। दोनों भाईयों को विवाद (चलता है)। वह घडियाल यहाँ भेजता होगा न यहाँ? तो वह बराबर पैसा नहीं देता होगा। फिर दोनों का बँटवारा किया कि महीने में सात हजार तुम्हें देना। छोटे भाई ने बड़े भाई को एक महीने में सात हजार रुपये देने हैं। ऐसा समाधान हुआ। क्योंकि व्यापार तो वहाँ करे। यहाँ घडियाल भेजे। कर्ता-हर्ता तो पूनम होगा अथवा उसकी बहू होगी। घड़ी की दुकान में उसकी बहू (थी)। एक बार हम गये थे। अब यह समाधान, धूल में। महीने में साठ हजार। छोटा भाई बड़े भाई को सात हजार भेजे। एक दिन की दो हजार की आमदनी के। तो उसकी आमदनी तो कितनी होगी? पूनमचन्द। दो हजार तो एक दिन के बड़े भाई को भेजे आमदनी के और उसे वहाँ बड़ी आमदनी है। परन्तु धर्म क्या, कुछ खबर नहीं होती। पूरी जिन्दगी पैसा... पैसा... पैसा... धूल... धूल... धूल।

मुमुक्षु : पैसे में आकर्षण बहुत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी आकर्षण नहीं, अज्ञानी मानता है। आहाहा! ऐई! आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा तो कहते हैं, जो कोई पर चीज़ को माँगता है, वह बड़ा रंक-भिखारी है। अपनी चीज़ में आनन्द का नाथ भगवान अनन्त शक्ति सम्पन्न पड़ी है, उसके पास माँग नहीं करता और पर से माँग करता है। इसमें से लाओ, यह लाओ... पैसे में सुख है, स्त्री में सुख है, धूल में सुख है, मकान दो-पाँच-पच्चीस लाख का, करोड़ का बनाकर वास्तु ले कि पाँच-पचास हजार, लाख-दो लाख खर्च करे तो सुखी है। धूल में भी नहीं, सुन न! दुःखी आकुलता के भण्डार में पड़ा है।

सुख तो भगवान आत्मा में पड़ा है। आहाहा! सुखशक्ति आत्मा में है और उसके साथ साधनशक्ति भी साथ में है, तो सुख का साधन करके आत्मा में सुख की प्राप्ति करना, इस सुख की प्राप्ति के कार्य का कारण यह साधक नाम की शक्ति है। आहाहा! यह सुख नाम का गुण है, उसमें इस साधक नाम के गुण का रूप है। रूप अर्थात् स्वरूप।

फिर से। जो आत्मा है, उसमें आनन्द नाम की शक्ति—गुण है। एक साधक नाम की, करण नाम की शक्ति है, वह शक्ति है, वह आनन्द में शक्ति नहीं परन्तु आनन्दगुण में

शक्ति का स्वरूप है। आनन्द में साधकपने की शक्ति का स्वरूप है। क्या कहते हैं यह ? कुछ मिलान नहीं खाता। आहाहा! आनन्द नाम का गुण आत्मा में है। उसमें साधक नाम की शक्ति का स्वरूप है। साधक नाम की शक्ति आनन्दगुण में नहीं है। आहाहा! गजब बातें, बापू! इसे निजघर में क्या है, इसकी खबर नहीं होती और परघर में शोधने जाता है। आहाहा! बड़ा मूर्ख है। अरबोंपति सब पर में खोजते हैं तो मूर्ख हैं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, आत्मा में ज्ञानगुण है तो उसके साथ कारण नाम की, साधक नाम की एक शक्ति है। वह शक्ति ज्ञानगुण में नहीं है। परन्तु ज्ञानगुण में उस शक्ति का स्वरूप है। अरे! यह क्या ? रूप के बदले अभी स्वरूप कहा। समझ में आया ? दूसरे प्रकार से कहें तो ज्ञानगुण में इस साधक नाम की शक्ति का अन्दर भाव है। यह शक्ति वहाँ नहीं। अरे! ऐसी बातें हैं। अरे! इसका घर कभी सुना नहीं। मेरे घर में क्या है और मैं कहाँ भटकता हूँ, रुलता हूँ। आहाहा! चौरासी के अवतार में अनन्त बार तो निगोद में अवतार लिया। अनन्त बार अरबोंपति राजा हुआ, एक दिन की अरब की आमदनी, ऐसा राजा अनन्त बार हुआ। धूल का धनी मरकर नरक में गया। आहाहा! समझ में आया ? परन्तु आत्मा की शक्ति और आत्मा क्या है, कभी शोध ही नहीं की। आहाहा! समझ में आया ? शान्तिभाई! दिल्ली में कहीं सुनने को मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा! अरे! यह बात, बापू! क्या कहें ? अभी तो यह बात बहुत लोप हो गयी है। साधु नाम धरानेवाले भी व्रत करो और अपवास करो और मन्दिर करो और यात्रा करो, इससे तुम्हे धर्म है। यह प्ररूपणा ही मिथ्यादृष्टि की है। समझ में आया ? वह मिथ्यादृष्टि है, वह साधु नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही। तेरी वस्तु में अनन्त शक्तियाँ ऐसे विस्तार से एकसाथ पड़ी हैं। और उनकी पर्याय है, वह क्रमसर आयत ऐसे होती है। एक के बाद एक। यह निर्मल की बात है, हों! यहाँ मलिनता की बात नहीं। शक्तियाँ जो अनन्त हैं, भगवान आत्मा वस्तु है, उसमें शक्ति अर्थात् गुण अनन्त है। एक साथ ऐसे विस्तार प्राप्त है। ऐसे विस्तार प्राप्त है। और उसकी जो निर्मल पर्याय है, वह क्रमसर आयत प्राप्त है। ऐसे। एक के बाद एक, एक के बाद एक। गुण एक के बाद एक ऐसा नहीं है। गुण तो एक साथ

अनन्त हैं। परन्तु पर्याय है, वह एक समय में अनन्त गुण की एक (-एक) ही पर्याय होती है।

अब यहाँ तो कहते हैं कि पर्याय में जो निर्मल कार्य (होता है)... आहाहा! धर्म स्वभाव जो पर्याय में प्रगट होता है, वीतरागी भाव जो प्रगट होता है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग जो पर्याय में प्रगट होता है, उसका कारण कौन? उसका करण कौन? उसका साधन कौन? आहाहा! शान्तिभाई! ऐसा का ऐसा मर गया। बाहर में बड़ी पण्डिताई की, लाखों लोगों में बड़े भाषण दिये और प्रसन्न-प्रसन्न (हो गया)। लोग भी ऐसे होते हैं। आहाहा! व्यवहार करते-करते निश्चय होगा। दया, दान, व्रत के शुभभाव से शुद्धता होगी। ऐसी प्ररूपणा मिथ्यादृष्टि की है। आहाहा! सेठ! क्या कहा?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म का भान भी कब है? भगवानदास नाम धराया परन्तु भगवानदास हुआ कहाँ है? राग का दास हुआ है। नहीं, सेठ?

मुमुक्षु : आपकी मेहरबानी होगी...

पूज्य गुरुदेवश्री : मेहरबानी तो भगवान आत्मा की होगी, तब होगा। तीन लोक का नाथ जागृतस्वभाव से भरपूर है। आहाहा! अरे! भाई! तुझे खबर नहीं। तेरे घर में तुझे वास्तु लेना हो, परघर में वास्तु लेना हो तो बड़ा महोत्सव करता है। पाँच-पच्चीस हजार खर्च करे और ऐसा करे और ऐसा करे। आहाहा! यहाँ तुझे वास्तु लेना हो तो भगवान में इतनी शक्ति है कि साधक नाम का एक गुण पड़ा है और गुण का धारक भगवान आत्मा में तुझे वास्तु लेना हो तो द्रव्य के ऊपर दृष्टि करनी पड़ेगी। आहाहा! पर्याय के ऊपर नहीं, राग के ऊपर नहीं, गुण-गुणी के भेद के ऊपर नहीं। आहाहा! ऐसा कहीं सुनने को मिलता नहीं। बेचारे जिन्दगी कमाने में पूरे दिन पैसा... पैसा... कमाना। स्त्री, पुत्र को प्रसन्न रखने में पाप में जिन्दगी बीस, बाईस घण्टे जाती है। आहाहा! एकाध, दो घण्टे सुनने को मिले तो इसे कुगुरु लूट लेते हैं। तुमको व्रत करने से धर्म होगा, अपवास करने से धर्म होगा। इसे कुगुरु लूट लेते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : बनिया ठगाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : बनिये तो कैसे ठगाये हैं। ऐ... कान्तिभाई! बनिया दूसरे में नहीं ठगाता, यहाँ धर्म में ठगाता है, भारी ठगाता है। अन्यत्र नहीं ठगाता। यहाँ तो कोई कहे, दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, आठ अपवास करो, दो, चार, पाँच, पच्चीस, पचास लाख खर्च करके मन्दिर बनाओ। बनिया माने कि हाँ, धर्म है। ठग गया। उस शुभभाव में धर्म नहीं है।

मुमुक्षु : बनिये को सब वस्तु सस्ती चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : सस्ता चाहिए। यह सस्ता लेने गया, वहाँ महँगा पड़ गया। यह तो दृष्टान्त नहीं दिया था? पहले हमारे यहाँ गुजरात में काठिया होते हैं। वे सब्जी बेचते हैं। काठिया होते हैं। एक जाति होती है। वहाँ पालेज में काठिया है। साथ में माल लेने आते हैं। मण-दो मण सब्जी उठा जाये, फिर बेचने आवे। बेचते-बेचते, सवा-डेढ़ मन बिक गयी हो, दस सेर रही हो, छिद्रवाले, डंकवाले रह गये हों, घिसोड़ा होते हैं, लौकी होती है। पहले तो चार पैसे का सेर था न, अब आठ आने का सेर हो गया। आठ आना सेर सवा मण बेच डाला हो, दस सेर रहा हो। बनिया कंजूस लोभी आवे। भाई! यह दस सेर पड़ा है। मैं उठाकर गाँव में कहाँ ले जाऊँ। अभी तक आठ आना सेर दिया। तुम्हें चार आना सेर दूँगा। थोड़ा डक है। डंक समझे? कीड़े का डंक, छिद्र। थोड़ा डंक है। तुम्हें चार आना सेर दूँगा। अभी तक आठ आना सेर बेचा है। घर में ले जाए वहाँ पूरी लौकी में डंक। एक टुकड़ा भी काम नहीं करता। यह लोभिया बनिया।

इसी प्रकार धर्म के नाम से ठगा गया है। कोई ऐसा बता दे कि तुम्हें धर्म ऐसे होगा। भगवान की शत्रुंजय की यात्रा करो, वर्ष में दो, चार कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा की, चैत्र शुक्ल पूर्णिमा की करो तो जाओ कल्याण हो जायेगा। मर जायेगा ठगाकर और वहाँ कल्याण नहीं। सुन तो सही। समझ में आया? सम्मेदशिखर का नहीं आता? 'एक बार वन्दे जो कोई, नरक पशु न होई।' परन्तु नरक, पशु न होई, इसमें भला क्या हुआ? बाद में पशु होकर फिर नरक में जायेगा। आहाहा! भाई! यह तो एकाध ऐसा शुभभाव हुआ हो तो नरक और तिर्यंच में नहीं जाए। परन्तु मनुष्य होकर फिर तिर्यंच होकर निगोद में जायेगा। जब तक आत्मा का ज्ञान नहीं, आत्मा क्या चीज़ है, उसकी प्रतीति के विश्वास का भान नहीं। जिस चीज़ का विश्वास करना है, उसका तो भान नहीं। आहाहा! ऐसे भान बिना इस क्रियाकाण्ड

से तो पुण्यबन्ध होगा। एक बार स्वर्ग मिले, पश्चात् वहाँ से तिर्यंच होकर नरक और निगोद में जायेगा। उसे भव का अभाव होगा नहीं। समझ में आया ? कड़क पड़े, प्रभु ! क्या करे ? वीतराग का मार्ग तो यह है। आहाहा !

यहाँ यह कहते हैं, **भवते हुए...** वर्तमान होनेवाले पर्याय के कार्यरूप भाव। उसके भाव के भवन के। वह निर्मल वीतरागी पर्याय के भाव के होने के कारणरूप साधकतमपनेमयी। आहाहा ! **उत्कृष्ट साधकतमपनेमयी...** इसमें से कोई निकालता है कि देखो ! कोई जघन्य साधक है या नहीं ? वह तो जघन्य साधन का आरोप है। उत्कृष्ट साधनमयी। वास्तविक साधन तो अन्दर में साधक नाम की शक्ति का गुण है, इस कारण से निर्मल पर्याय का वह साधकपना है। निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान, धर्म का भाव और भव के छेद का भाव। आहाहा !

यहाँ बड़ा अरबोंपति गृहस्थ हो और मरकर नरक में जाए। आहाहा ! उस नरक की पहली स्थिति, पहला नरक है, उसकी दस हजार वर्ष की न्यूनतम स्थिति है। नारकी की न्यूनतम दस हजार वर्ष की स्थिति है। विशेष स्थिति एक सागरोपम। पाप करके दस हजार वर्ष (स्थिति) में जाए... आहाहा ! तो उसकी इतनी वेदना है कि अरबोंपति का पुत्र, विवाह का दिन हो, करोड़ों रुपये विवाह में खर्च किये हों, पच्चीस वर्ष की जवान अवस्था हो और राजा की पुत्री आयी हो और करोड़ों रुपये दहेज में लायी हो और उस लड़के को रात्रि में पहले जमशेदपुर की भट्टी में सीधा डाले और उसे जो वेदन है, उससे अनन्तगुणा वेदन नरक की पहली स्थिति में है। आहाहा ! अरे ! भाई ! तूने सुना नहीं, बापू ! भाई ! तूने अनन्त काल मिथ्यादृष्टिरूप से व्यतीत किया तो किसी समय शुभ से स्वर्गादि मिले या इस धूल का सेठ हुआ। परन्तु मरकर वापस चार गति में जायेगा, भटकेगा। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं, तेरा परिभ्रमण मिटाना हो अर्थात् यह दुःख मिटाना हो तो सुख के साधनरूपी कार्य, उसका साधन क्या ? आहाहा ! भगवान में करण नाम की शक्ति पड़ी है, वह सुख का साधन है। सुख का साधन कोई दया, दान, व्रत, वह सुख का साधन नही है। आहाहा ! ऐसी बातें हैं। पर्यूषण के दिनों में लोगों को हाँक रखेंगे। बस ! अपवास करो, ऐसा करो, वैसा करो, वर्षी तप करो। वर्षी तप करते हैं न ? एक दिन खाना और एक दिन लंघन।

आत्मा का भान नहीं होता, तेरे उपवास कहाँ से आये ? वह अप-वास है। अपवास अर्थात् पूरा वास। राग की मन्दता में तेरा वास, उसे अपवास कहते हैं। सच्चा उपवास तो उप अर्थात् आनन्द के नाथ की उप अर्थात् समीप जाकर बसना, इसका नाम उपवास है। यह तो सुना भी नहीं, भान भी नहीं होता। आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, बहुत थोड़े शब्दों में तो कितना डाला है! आत्मा में एक चारित्र नाम का अन्दर गुण है। आत्मा गुणी, स्वभाववान है और चारित्र स्वभाव है। तो चारित्र स्वभाव में भी करण नाम की शक्ति का स्वरूप है। करण नाम की शक्ति चारित्रगुण में नहीं परन्तु करण नाम की शक्ति, साधक नाम की शक्ति, उसका चारित्रगुण में स्वरूप है। और उस स्वरूप के कारण से वीतरागी पर्याय का कारण वह चारित्रगुण होता है। वर्तमान चारित्र वीतरागी पर्याय जो मुनि को होती है, आहाहा! जिन्हें सच्चे सन्त-मुनि कहते हैं, आहाहा! उनकी दशा में तो प्रचुर आनन्द का वेदन होता है। प्रचुर क्यों कहा ? सम्यग्दर्शन में आनन्द का वेदन है परन्तु प्रचुर नहीं है। और मुनि जो सच्चे हैं, सच्चे मुनि, हों! नग्न होकर घूमे, वस्त्र छोड़कर घूमे, इसलिए साधु हो गये, वह कोई साधु-फाधु है नहीं। समझ में आया ? क्योंकि साधक नाम की शक्ति का साधन नहीं किया तो वह साधु नहीं है। आहाहा! वह तो राग की शक्ति, दया, दान और व्रत का साधन किया। वह तो बन्ध का कारण है। वह साधन नहीं। वह साधु नहीं। समझ में आया ? आहाहा! ऐसी बातें कठिन पड़े। क्या हो ?

तीन लोक के नाथ यहाँ वर्णन करते हैं। सन्त केवली परमात्मा ने कही हुई बात आढ़तियारूप से प्रसिद्ध करते हैं। शान्तिभाई! यह शान्तिभाई जैसे भाषण करें। उसका ऐसा नहीं होता, इसका ऐसा होता है। उल्टे-सीधे गप्प मारते हैं। इन्हें भाषण करना आता है। ऐसे भगवान की भक्ति करे और व्रत पाले तो धर्म होता है। ऐई! शान्तिभाई! यह तो दृष्टान्त। बहुत सब ऐसा ही करते हैं न ?

मुमुक्षु : उसे छोड़कर आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे छोड़कर आये हैं। बहिन के कारण अधिक आते हैं। आहाहा! प्रभु! बात कठिन, भाई! बापू! जन्म-मरण मिटने की सम्यग्दर्शन चीज़, उसकी महिमा अपार है। और सम्यग्दर्शन का आश्रय जो है, उस चीज़ की तो अपार महिमा है। आहाहा! ऐसी चीज़ में...

चारित्र की पर्याय जिसे होती है, उसे बाहर में नग्नदशा हो जाती है और उसे अन्तर में कोई पंच महाव्रत का विकल्प आता है, वह चारित्र नहीं है। चारित्र तो अन्दर में वीतरागी आनन्द की रमणता (होना), इसका नाम चारित्र है। आहाहा! इस चारित्र का कारण कौन? पंच महाव्रत आदि कारण है? नहीं। कारण कौन? चारित्रगुण में कारणशक्ति का रूप स्वरूप पड़ा है, इस कारण से चारित्र की वीतरागी पर्याय का भवन, होना, उसका साधकतम कारणशक्ति है। आहाहा! समझ में आया? बात में बहुत अन्तर है।

आत्मा के भोग का, आनन्द का भोक्ता प्रभु... आहाहा! शरीर और स्त्री का शरीर / माँस और चूरमे का भोक्ता आत्मा नहीं है। उस समय इसे राग होता है कि मैं स्त्री का भोग लेता हूँ और यह प्रसन्न होता है और मैं भी प्रसन्न होता हूँ, वह राग का भोग है, दुःख का भोग है, आकुलता का भोग है। आहाहा! परन्तु जिसे अनाकुलता का भोग लेना हो तो साधक कारण कौन? अन्तराय पर दृष्टि गयी। समझ में आया? अनाकुल आनन्द का भोग लेना हो, धर्म का अनुभव करना हो तो उसका कारण कौन? उसका कारण खोजने से वह कार्य होगा। आहाहा!

भगवान आत्मा में एक साधक नाम की शक्ति पड़ी है। उस शक्तिवान को शोधने से उस शक्ति के कारण से अनाकुल आनन्द का भोग होता है। समझ में आया? उस अनाकुल आनन्द का वेदन, वह धर्म है। ऐसी बातें भारी कठिन। समझ में आया? यह एक-एक गुण अनन्त शक्ति में व्यापक है। आत्मा में अपरिमित अनन्त शक्तियाँ हैं। अनन्त शक्ति कहो या गुण कहो; प्रत्येक गुण में यह साधक नाम की शक्ति व्याप्त है। अथवा साधक नाम की शक्ति का प्रत्येक गुण में उसका स्वरूप है। अथवा साधक नाम की शक्ति, अपने द्रव्य स्वभाव का आश्रय किया तो जो निर्मल कार्य हुआ, उसका वह कारण है। समझ में आया? उस साधकतम कारण से वह निर्मल कार्य होता है। आहाहा!

दूसरे प्रकार से (कहें तो), सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, आनन्द का भोग, बारम्बार उसका भोग, आनन्द का, हों! वह धर्म। उसका कारण कौन? आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान में करण नाम की शक्ति का रूप है। इस कारण से पर्याय में आनन्द का भोग होता है। आहाहा! समझ में आया? अरे! यह क्या? शब्द भी सुने न हों और कहे, हम जैन हैं। णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आईरियाणं... बोले। उसमें धूल में ऐसे

णमो अरिहन्ताणं अनन्त बार किये। पंच परमेष्ठी की भक्ति और नमस्कार अनन्त बार किये। वह तो शुभराग है। वहाँ कहाँ धर्म आया? समझ में आया?

अपनी धर्मदशा में कारणरूप कारण नाम की शक्ति है, वह कारणरूप कार्य में आती है। आहाहा! अरे! ऐसी भाषा कभी सुना भी न हो। कहो, फूलचन्दभाई! बनिया के पास सुना हो और यह भी सुना न हो। धन्धा करो, यह करो पूरे दिन। आहाहा! धन्धे में तो जो रुकता है, वह तो अकेला पाप है। परन्तु अब यहाँ तो कहते हैं, धर्मश्रवण में आया और दो-चार घण्टे श्रवण किया तो वह भी विकल्प और शुभराग है। वह भी धर्म नहीं। धर्म तो रागरहित भगवान आत्मा में साधक नाम का गुण पड़ा है तो गुणी के अवलम्बन से उस गुण के कारण से... गुण (अकेला) परिणमता नहीं, द्रव्य साथ में परिणमता है। पूरा द्रव्य एक साथ परिणमता है। साधक नाम की शक्ति अकेली भिन्न होकर परिणमती है, ऐसा नहीं है। क्या कहते हैं इसमें? एक-एक बात में अन्तर। आहाहा!

पहले यह कह गये थे। चिद्विलास की बात। गुण परिणमते नहीं। द्रव्य परिणमता है, उसमें गुण साथ में परिणम जाते हैं। एक बार यह कहा था। समझ में आया? गुण परिणमन और द्रव्य परिणमन क्या भाषा दी है? बनिया की बहियों में आती नहीं। मन्दिर और उपाश्रय में सुनने में आती नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, एक बार सुन तो सही! आहाहा! तेरे स्वभाव में, तेरा स्वभाव ही ऐसा है; अर्थात् तेरा गुण ऐसा है कि धर्म की पर्याय का कार्य जब हुआ, पर्याय कहो या कार्य कहो, उस कार्य के प्रवर्तन में कारणरूप तो अन्दर साधक नाम का गुण है। तो प्रत्येक गुण में साधक नाम का रूप है। तो प्रत्येक गुण अपनी पर्याय का कार्य है। प्रत्येक गुण के कार्य का कारण प्रत्येक गुण है। दूसरे गुण के कार्य का कारण दूसरा गुण है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? एक की एक बात कितनी याद रखना? पहले से दूसरा प्रकार। आहाहा! भाई! बात तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : न्याय याद रहते हैं, गाथा कहीं याद रहे? भाव अन्दर। आहाहा! अनन्त गुण हैं, उस प्रत्येक गुण में साधक नाम की शक्ति का स्वरूप है तो प्रत्येक

गुण में कार्यरूप में, वह साधक नाम का स्वरूप है, वह कारण होता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में, अन्दर श्रद्धा नाम का गुण है, उसमें करण नाम का स्वरूप है, इस कारण से सम्यग्दर्शन की पर्याय—कार्य होता है। सम्यग्दर्शन की पर्याय का कारण अन्दर श्रद्धा में करण का रूप है। ऐसे सम्यग्ज्ञान में और सम्यग्दर्शन का रूप है, वह कार्य नहीं करता। सम्यग्ज्ञान में ज्ञानगुण जो है, उसमें करण नाम का स्वरूप है, इस कारण से वहाँ सम्यग्ज्ञान की पर्याय के कार्य का कारण वह होता है। आहाहा! भारी सूक्ष्म, बापू! आहाहा!

यह तो वीतराग जिनेन्द्रदेव तीन लोक के नाथ, एक समय में जिन्होंने तीन काल-तीन लोक देखे, उस पर्याय को देखा, उसमें तीन लोक को देखा—ऐसा कहने में आता है। वह भगवान की वाणी ऐसा कहती है। भाई! तूने सुना नहीं। तेरे घर में क्या पूँजी है, क्या लक्ष्मी है, यह तूने सुना नहीं, नाथ! तेरी लक्ष्मी में, तेरी पूँजी में एक करण नाम का गुण है तो अनन्त गुण में उस करणगुण का स्वरूप है। आहाहा! प्रत्येक गुण का जो निर्मल कार्य है, उसका कारण उसका स्वरूप है, वह कारण है। आहाहा! दूसरे गुण का स्वरूप, उस गुण के कार्य का कारण नहीं है। आहाहा! तो फिर दया, दान और व्रत उसका कारण है, (ऐसा तो कहाँ से होगा)? यहाँ तो उसका अभाव है, यह स्याद्वाद है। व्यवहार का अभाव कारण है, व्यवहार का सद्भाव कारण नहीं। अपना सद्भाव कारण है और उसका अभाव कारण है। आहाहा! इसका नाम अनेकान्त अर्थात् स्याद्वाद कहते हैं।

यह तो अनेकान्त क्या कहे? अपने से भी होता है और व्यवहार से भी होता है, यह अनेकान्त करो। यह अनेकान्त नहीं, यह तो फूदड़ीवाद है। फूदड़ीवाद आड़ा-टेढ़ा घूमा करे, वह फूदड़ीवाद है। भगवान का अनेकान्त मार्ग तो यह है, अपने गुण की शक्ति में करण नाम की शक्ति है तो प्रत्येक गुण का भवन अर्थात् प्रवर्तमान जो कार्य, उसका कारण वह स्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! एक-एक शब्द में प्रत्येक में अन्तर है। वह के वह शब्द नहीं हैं। शब्द वाच्य है, वह भिन्न-भिन्न है। प्रत्येक शब्द में वाच्य भिन्न है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहा, भिन्न साध्य-साधन कहा है न? उसे चिपटते हैं सब। आहाहा! यह तो आरोपित कथन है। निमित्त का ज्ञान कराने के लिये व्यवहार से यह बात की है।

मोक्षमार्गप्रकाशक में यह बात आती है। सातवें अध्याय में निश्चयाभास और व्यवहाराभास में (आती है)। व्यवहार हेय है। ग्रहण करनेयोग्य है, ऐसा कहा है न? ग्रहण करनेयोग्य का अर्थ कि है, उसे जानना, इसका नाम ग्रहण है। है, व्यवहार है, उसे जानना और निश्चय है, उसे उपादेय करना। आहाहा! इसका नाम निश्चय-व्यवहार का सच्चा ज्ञान है। भारी विवाद। कितने ही ऐसा कहते हैं, सोनगढ़ ने यह नया निकाला है। यह सोनगढ़ का है? अभी तक तो सम्प्रदाय में बात थी नहीं। यह नया निकाला। हम अभी तक भक्ति करते थे, शत्रुंजय की यात्रा करते थे, कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को जायें। दस-दस हजार, पन्द्रह-पन्द्रह हजार लोग।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करावे? यह शुभभाव आता है तो होगा परन्तु वह धर्म नहीं। वह तो अशुभ से बचने को बीच में शुभभाव आता है, परन्तु धर्मी उसे हेय जानता है, अज्ञानी उसे उपादेय मानता है, इतना अन्तर है। ऐसी बातें। बहुत भरा है। ओहोहो!

अनन्त गुण में यह कारण नाम का रूप है तो वह निर्मल कार्य का कारण है। और जो सम्यग्दर्शन आदि की पर्याय उत्पन्न होती है, तो उस सम्यग्दर्शन की पर्याय में भी षट्कारक की पर्याय का अंश है। आहाहा! कारक का अंश वह सम्यग्दर्शन में भी है। षट्कारक है न? तो सम्यग्दर्शन की पर्याय का कर्ता सम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शन की पर्याय का कर्म सम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शन का साधन वह पर्याय साधन, पर्याय साधन, हों! गुण साधन तो पहले कहा। सम्यग्दर्शन की पर्याय का आधार वह पर्याय, सम्यग्दर्शन का अपादान क्षणिक उपादान वह अपना अपने से हुआ वह और जो समकित हुआ वह होकर रखा, यह सम्प्रदान। वह अपनी पर्याय से सम्प्रदान है। गुण के कारण से भी नहीं। आहाहा! अरे रे! भाई! तूने भगवान का मार्ग सुना नहीं। भाई! मर गया अनन्त काल से। आहाहा! साधु अनन्त बार हुआ। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' इसका क्या अर्थ हुआ? पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति वह राग और दुःख है, आकुलता है। आहाहा! 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो' इसका अर्थ क्या हुआ? पंच महाव्रत लिये, वह सुख नहीं, वह तो दुःख है। यह गजब बात है। दुःख को चारित्र

का साधन बनाना? चारित्र तो अन्दर आनन्द की लहर है। आनन्द की लहर उठती है, उसका नाम चारित्र है। उस चारित्र का कारण इस दुःख को बनाना? महाव्रत कारण है और चारित्र कार्य है? आहाहा!

यहाँ तो यह चारित्र जो वीतरागी पर्याय... आहाहा! उसके चारित्रगुण में करण नाम का स्वरूप है, रूप है, भाव है। वह भाव कारण होता है। वीतरागी पर्याय का कारण चारित्रगुण में करण नाम का भाव है, वह कारण होता है। शान्तिभाई! कभी बाप-दादा ने सुना न हो।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सुना नहीं, ऐसी बात है, वस्तु ऐसी है। आहाहा! क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : कोई बतानेवाला नहीं मिला।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पात्र होवे तो बतानेवाले मिले बिना रहे नहीं। पात्र की कमी है। अपनी योग्यता से कमी के कारण से नहीं मिले, ऐसा लो। मिला तो अनन्त बार, प्रभु के पास सुना है। क्यों नहीं पाया? अपनी पात्रता नहीं है। समझ में आया? यह पात्रता अपने से प्रगट होती है, पर के कारण से नहीं। आहाहा! श्रीमद् ने तो सम्यग्दर्शन को ही पात्रता कहा है। उसमें सिद्धपद रहता है। सिद्धपद प्राप्त होता है। सम्यग्दर्शन ही पात्रता है। आहाहा! कि जिस सम्यग्दर्शन के कारण से केवलज्ञान प्राप्त होगा ही। दूज उगी, वह पूर्णिमा होगी ही। वैसे सम्यग्दर्शन आत्मा के आनन्द का अनुभव हुआ, उसे केवलज्ञान प्राप्त होगा ही। वह केवलज्ञान लेने के लिये पात्र हुआ। आहाहा! समझ में आया?

यह तो भिन्न कारण और भिन्न कार्य, शास्त्र में आता है तो वहाँ लगाता है। देखो! यहाँ साधन-साध्य भिन्न कहे हैं। बापू! वह साधन भिन्न कहा है, वह साधन का आरोप देकर कहा है। बाकी वास्तव में साधन तो अन्तर निर्मल वीतरागी दशा हो, वह साधन है। परन्तु उसका कारण यह साधक नाम की शक्ति है। समझ में आया? और उसका मूल कारण तो द्रव्य है। शक्ति के धारक भगवान आत्मा का आश्रय करने से धर्म की वीतरागी पर्याय उत्पन्न होती है। ऐसा है, भाई! अभी जिसे सत्य ज्ञान भी नहीं, समझने की सच्ची ज्ञान बुद्धि नहीं, उसे तो अन्दर सम्यग्दर्शन का प्रयोग किस प्रकार होगा? आहाहा! अरे! दुःखी

है, भाई! आहाहा! आज का सेठिया करोड़पति, अरबपति हो। देह छूटकर नरक में जाये। आहाहा! बापू! ऐसे भव तूने अनन्त बार किये हैं। भाई! तेरे दुःख को देखनेवाले को रुदन आया है। आहाहा! तूने इतने दुःख भोगे हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : आँसू के पानी के समुद्र भर जायें।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! समुद्र भर जाये। पुत्र मर जाये... आहाहा! और माता को आँसू आवे, उन आँसू के मेरु जितने, ... जितने समुद्र भरे, इतने तो आँसू। इतनी बार तेरे मरण से तेरी माता को दुःख हुआ है। आहाहा! यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि माता! जब सम्यग्दर्शन होता है, अपने स्वरूप के अनुभव में सम्यग्दर्शन हुआ, आहाहा! फिर जब स्वरूप की रमणता (करने) जंगल में जाने का चारित्र प्रगट करता है... आहाहा! अकेला जंगल में जाये। कोई साथ नहीं, कोई आहार देनेवाला नहीं, शरीर की रक्षा करनेवाला नहीं। आहाहा! कोई वैद्य नहीं। अपने आनन्द की लहर करने मुनि जंगल में चले जाते हैं। आहाहा! माता के निकट आज्ञा ले, माता आज्ञा न दे, रोवे। माता! एक बार रुदन करना हो तो कर ले, परन्तु मेरे आत्मा का साधन करने मैं जंगल में चला जाता हूँ। आहाहा! और माता! मैं कोलकरार करता हूँ (कि) दूसरी माता नहीं बनाऊँगा, माँ! मैं तो मेरे चारित्र का साधन करने जाता हूँ। आहाहा! दूसरी माता मैं नहीं बनाऊँगा। आहाहा!

चौदहवें अध्ययन में है। उत्तराध्ययन का चौदहवाँ अध्ययन है न? 'अजैव धम्मम पडि वज्जयामो' माता! मैं आज ही चारित्र को, आनन्द की दशा को अंगीकार करना चाहता हूँ। 'अजैव धम्मम् पडि वज्जयामो, जहिं पवनाम पुनम भवामो' माता! जिस चारित्र को अंगीकार करने, आनन्द में रमणता करने मैं जाता हूँ। जिससे फिर से दूसरा भव नहीं करूँ। मैं इस भव में शरीररहित सिद्ध होऊँगा। ऐसी चारित्र की दशा...! आहाहा! अरे! इसे अभी सुनने को मिले नहीं। वह वस्तु तो है नहीं। समझ में आया?

'...' माता! जगत में अप्राप्त कोई चीज़ रह गयी है? सब प्राप्त किया है। अनन्त बार लक्ष्मी मिली, स्त्री, कुटुम्ब मिले, धूल मिली, बँगले मिले... माता! अप्राप्त चीज़ तो आनन्द का नाथ रह गया है। समझ में आया? कहो, सेठ! सेठ को छह लाख का रहने का मकान है। फिर वहाँ दबाना पड़े और यह करे न... ऐसा कहते हैं, दवा कराने को यहाँ आये हैं।

इनका एक मकान छह लाख का है। सेठ का और दूसरा मकान है। वह पाँच, दस लाख का है। छोटे भाई का, छोटे सेठ का। एक बार हम आहार करके घूमते थे। वहाँ बहुत सब दवायें पड़ी थी। कहा, यहाँ सेठ सोते लगते हैं। भगवानदास। आहाहा! अरे! रोग मिटाने की दवा यह। यह जन्म-मरण का रोग मिटाने की दवा आत्मा के आनन्द का आश्रय लेना है।

'आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं।' आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं। यह रोग नहीं, नाथ! इस राग से मुझे धर्म होगा, यह राग मेरी चीज़ है, यह भ्रान्ति है। इसके जैसा कोई रोग नहीं है। 'आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजान, गुरु आज्ञा सम पथ्य नहीं', पथ्य पालते हैं न? 'औषध विचार ध्यान।' भ्रान्ति सम रोग नहीं। नाथ! पुण्य में धर्म है, राग की क्रिया करते-करते धर्म होगा, भ्रान्ति है, प्रभु! तुझे बड़ा रोग हो गया है। मिथ्यात्व का बड़ा रोग हो गया। तुझे क्षय रोग लागू पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? 'सद्गुरु वैद्य सुजान' धर्मात्मा सत्य को जाननेवाले वे सद्गुरु। उनकी आज्ञा है कि इस आत्मा का आश्रय करने से तुझे धर्म होगा। यह आज्ञा है। आहाहा! 'औषध विचार ध्यान।' विचार करना और ध्यान लगाना, वह औषध है। स्वरूप का ध्यान लगाना और स्वरूप सन्मुख झुकना, वह औषध है। यह औषध तो धूलधाणी अनन्त बार की। कहो, यह ४३ हुई। ४३ शक्ति। ४७ शक्तियों में से ४३ हुई। ४४ विशेष आयेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ३९, शक्ति- ४४ रविवार, भाद्रशुक्ल ६, दिनांक १८-०९-१९७७

स्वयं दीयमानभावोपेयत्वमयी सम्प्रदानशक्तिः।

अपने द्वारा दिया जाता जो भाव उसके उपेयत्वमय (–उसे प्राप्त करने के योग्यपनामय, उसे लेने के पात्रपनामय) सम्प्रदानशक्ति।४४।

शक्तियों के रत्न का भण्डार भरा है। यह बाहर शुभ में जाता है, वहाँ आत्मा नहीं है। दया में, दान में, भक्ति में, काम में, काम विषयवासना में शोधने जाता है तो वहाँ तो आत्मा है नहीं। आहाहा! वहाँ तो दु:ख है। शुभभाव में भी खोजने जाये तो शुभभाव भी दु:ख है। वहाँ कहाँ आत्मा है उसमें? आहाहा! यहाँ तो आत्मा ज्ञायकस्वभाव, यह सामान्य स्थिति से वर्णन किया। इस ज्ञायकभाव में अनन्त गुणरूपी शक्ति पड़ी है। ४३ चली न? क्या कहते हैं?

आत्मा में एक सम्प्रदान नाम का गुण है। उस गुण का कार्य क्या? राग और पुण्य, दया–दान के विकल्प से रहित भगवान निर्विकल्प चैतन्यमूर्ति प्रभु का दृष्टि में स्वीकार करने से जो अनुभव होता है, उस अनुभव में प्रतीति और ज्ञान दोनों आते हैं। आहाहा! इस अनुभव में जो आत्मा ज्ञात हुआ, वह राग से या दया, दान या व्यवहार से ज्ञात नहीं होता क्योंकि विकल्प राग है। स्वरूप में राग नहीं है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात। इसलिए लोगों को कठिन पड़ता है न! भगवान अनन्त आनन्द और अनन्त सम्प्रदान नाम का गुण है। जैसे ज्ञानगुण है। तो ज्ञानगुण तो अनन्त शक्ति का पिटारा है। क्योंकि केवलज्ञानादि पर्याय प्रगट होती है। एक... एक... एक... ऐसी अनन्त, तथापि ज्ञानगुण में कमी नहीं। आहाहा!

कहते हैं, अनन्त शक्ति में एक सम्प्रदान नाम की शक्ति है। उसका कार्य क्या? जिसने द्रव्यस्वभाव की दृष्टि की हो... निमित्त से दृष्टि उठाकर, शुभराग के विकल्प हैं, उनसे भी दृष्टि उठाकर, एक समय की वर्तमान प्रगट पर्याय है, उससे भी दृष्टि हटाकर, अखण्डानन्द प्रभु आत्मा पर दृष्टि लगाना। आहाहा! जहाँ प्रभु विराजते हैं, वहाँ भेंट करना। आहाहा! इसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! धर्म की पहली सीढ़ी यह है। आहाहा!

अब यहाँ तो सम्प्रदान में क्या है? जब स्वरूप चिदानन्द आनन्दकन्द का अनुभव

हुआ तो राग से व्यवहाररत्नत्रय से भी भिन्न, आहाहा! यह तो कहा, साधकतम में। व्यवहाररत्नत्रय साधक नहीं। लोगों को यह कठिन पड़ता है। अन्तर में साधक नाम की शक्ति है, करण नाम की शक्ति है, कारक नाम की शक्ति कहो, करण कहो, साधक कहो। ऐसा आत्मा में गुण है। वह गुण और गुणी के भेद का लक्ष्य छोड़कर, एक गुणी पर दृष्टि देने से ज्ञान की पर्याय जो प्रगट होती है, वह धर्म सम्यग्ज्ञान है। उस ज्ञान की पर्याय में सम्प्रदान का स्वरूप है। यह सम्प्रदान जो शक्ति है, उसका ज्ञानगुण में स्वरूप है। इस कारण से वर्तमान निर्मल पर्याय की पात्रता अपनी और निर्मल पर्याय को लेनेवाला भी स्वयं। आत्मा दाता और आत्मा पात्र। लक्ष्मी देनेवाला दाता और लेनेवाला गरीब,... यह चीज़ आत्मा की नहीं। आहाहा!

आत्मा की चीज़ में तो अपना ज्ञानस्वरूप... प्रथम तो ज्ञायकभाव गिनने में आया न? तो उस ज्ञायकभाव में सम्प्रदान नाम का रूप है। सम्प्रदान शक्ति उससे भिन्न है परन्तु उस ज्ञायकभाव में—ज्ञानभाव में सम्प्रदान का स्वरूप है। उस स्वरूप के कारण से... यह तो अजायब घर की बातें हैं, बापू!

मुमुक्षु : अजायब घर में तो अजायब की बातें हों।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात है, भाई! आहाहा! समझ में आया?

धर्मी को धर्म करने में क्या होता है? कहते हैं। स्वरूप की दृष्टि होने से ज्ञान की एक समय की पर्याय जो निर्मल है, वह सम्प्रदान स्वरूप के कारण से निर्मल आत्मा अपना दाता और अपनी पर्याय दे, इसलिए पात्रता एक समय में है। सम्यग्ज्ञान का दाता अपनी पर्याय है। आहाहा! वीतराग और वाणी सम्यग्ज्ञान की दाता नहीं है। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसी बातें बहुत कठिन, बापू! आहाहा!

सम्यग्ज्ञान की पर्याय की दाता कौन? और लेने की पात्रता किसकी? इस सम्यग्ज्ञानमयी भगवान में एक सम्प्रदान का स्वरूप है, इस कारण से जो निर्मल पर्याय हुई, वह निर्मल (पर्याय) दाता और उसी समय में लेने की योग्यता, वह पात्रता। समझ में आया? यह दान। तीर्थंकर तीन लोक के नाथ छद्मस्थ हों और आहार लेने का भाव (आवे), वह स्वभाव नहीं है। वह तो शुभभाव है। उस शुभभाव की कोई शक्ति अन्दर गुण

नहीं कि वह शुभभाव ले और दे। पैसा लेना-देना, ऐसी तो आत्मा में कोई शक्ति है नहीं, परन्तु शुभभाव हो और शुभभाव ले और शुभभाव रखे, ऐसी कोई आत्मा में शक्ति नहीं है। आहाहा! परन्तु जिस ज्ञान की पर्याय में जो निर्मल ज्ञान की पर्याय, शान्ति के साथ उत्पन्न होती है, वह दान देनेवाली पर्याय और लेनेवाली भी वही पर्याय। आहाहा! पात्र भी वह, दाता भी वह और दे भी वह। आहाहा! समझ में आया? अपना भगवान आत्मा... सम्प्रदान है न? क्या कहते हैं? देखो!

अपने द्वारा दिया जाता... सूक्ष्म है, भाई! यह नामा सूक्ष्म बहुत। नामा के लिये जाते हैं न? सेठ। कानपुर जाये पैसा लेने के लिये। यह नामा सूक्ष्म, सेठ! आहाहा! कहते हैं, **अपने द्वारा दिया जाता...** कौन? वर्तमान ज्ञान की पर्याय, आनन्द की पर्याय, शान्ति की पर्याय, वीर्य-सम्यक् वीर्य की पर्याय,... आहाहा! वह निर्मल पर्याय स्वयं से दी जाती है। है? स्वयं से दी जाती है। आहाहा! जगत को यह बात पकड़ना कठिन (पड़ता है)। **अपने द्वारा दिया जाता जो भाव...** वर्तमान निर्मल भाव, वर्तमान वीतरागी पर्याय, आनन्द की पर्याय, ज्ञान की पर्याय, समकित की पर्याय, अकार्यकारण नामक गुण की पर्याय। आहाहा! वह स्वयं से दी जाती है। वह आत्मा अपने को अपनी पर्याय देता है। आहाहा! और अपनी पर्याय उस समय लेता है। एक ही समय में दाता और दान दोनों एक है। आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि और सम्यग्दर्शन का विषय अनन्त शक्ति का भण्डार भगवान, तो वह विषय जहाँ दृष्टि में आया... आहाहा! ध्येय जो आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, जब ज्ञान में आया तो कहते हैं कि निर्मल सम्यग्ज्ञान की जो पर्याय प्रगट हुई, वह किसने दी? वह स्वयं से दी। आहाहा! और सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट हुई तो श्रद्धागुण त्रिकाली है, उसमें सम्प्रदान का स्वरूप है। सम्प्रदानशक्ति भिन्न है। आहाहा! सम्प्रदान का स्वरूप है, इस कारण से श्रद्धाशक्ति वर्तमान सम्यग्दर्शनरूपी पर्याय का परिणमन करके दाता ने पर्याय दी और वह पर्याय स्वयं ने ली। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि गुरु समकित को देता है। यहाँ इनकार करते हैं। आहाहा!

भाई! तेरी चीज़ में क्या कमी है कि तुझे दूसरे से लेना है। आहाहा! तुझमें कहाँ अपूर्णता है कि पर से पूर्णता लेनी है। आहाहा! यह केवलज्ञान की पर्याय भी... सम्प्रदान

का ज्ञान में रूप होने से केवलज्ञान की पर्याय देनेवाले आत्मा ने अपने द्वारा दी है। राग द्वारा नहीं, निमित्त द्वारा नहीं, श्रवण द्वारा नहीं। आहाहा! अब ऐसा पहुँचना और इस जगह निवृत्ति-फुरसत नहीं मिलती। भटकने की फुरसत है। अरे रे!

अनन्त काल में शुभभाव और अशुभभाव अनन्त बार किये। वह विभाव है। वह विभाव होने की कोई शक्ति नहीं है। आहाहा! कोई गुण नहीं कि विभाव हुआ। आहाहा! उस विभाव की पर्याय पर्यायदृष्टि करने से अपने से षट्कारक से विकार की परिणति उत्पन्न होती है। परन्तु उस पर्याय में षट्कारक से विकृत अवस्था उठती है। गुण के बिना, द्रव्य के बिना, पर के संयोग बिना। आहाहा! पर के कारक और कारण बिना। यहाँ तो कहते हैं इस षट्कारकरूपी विभाव का परिणमन लेना और देना ऐसा कोई तेरा गुण ही नहीं है। आहाहा! गजब बात करते हैं। समझ में आया? शुभभाव होना और शुभभाव रखना, ऐसा कोई तुझमें गुण नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। तेरे खजाने में खोट नहीं, नाथ! तेरे खजाने में तो अनन्त शक्तियाँ पड़ी है न, नाथ! तू कहाँ खोजने जाता है? जहाँ बाहर में भटकना है, वहाँ तो संसार है। चाहे तो शुभ हो या अशुभ हो। आहाहा! यहाँ भाई आये थे न? काकूभाई आये थे। गये? है? रमेशभाई आये थे, भावनगर से। गये होंगे। पाँच मिनिट वहाँ खड़े थे। मफाभाई! भावनगर से तुम्हारे काकूभाई और रमेश और पाँच-छह व्यक्ति अभी आये थे। चले गये होंगे। आहाहा! अरे! यह चीज़ क्या है? भाई! आहाहा!

यह स्फटिकमणि चैतन्यरत्न भगवान ने सम्प्रदान नाम का एक गुण है। वह गुण भी भण्डार है। आहाहा! उस गुण का स्वरूप तो अपने में है और आनन्दगुण में भी उसका स्वरूप है। वह शक्ति उसमें नहीं परन्तु आनन्द नाम के गुण में सम्प्रदान का स्वरूप है। इस कारण से आनन्द की पर्याय प्रगट होती है, वह अपने द्वारा आनन्द की पर्याय प्रगट हुई है और आनन्द की पर्याय अपनी पात्रता से ले ली है। आहाहा! अपनी योग्यता से ले ली है। आहाहा! पोपटभाई! यह तुम्हारे पैसे के दान-फान की बातें तो यहाँ सब उड़ गयी। पैसा तो ठीक, परन्तु शुभभाव की बात भी उड़ गयी यहाँ तो। यह तुझमें कोई गुण नहीं। तुझमें गुण तो पवित्रता आनन्द की पर्याय प्रगट हो और आनन्द की पर्याय लेने की पात्रता तुझमें एक समय में है। आहाहा! दाता तू और पात्र भी तू। आहाहा! माँगीलालजी! ऐसी बातें हैं, भाई! लोगों को कठिन पड़ता है, क्या हो?

अरे! अन्दर चीज पड़ी है न! महाप्रभु! समझ में आया? भगवान होकर भीख माँगता है। ऐ... भगवानदासजी! भगवान होकर भीख माँगे पैसे के लिये। आहाहा! नाथ! तू भगवान है न, प्रभु! तू भगवान होकर राग की भीख माँगता है कि मुझे पुण्य हो तो ठीक। मेरी इज्जत, मुझे सुख दे तो ठीक, स्त्री से सुख मिले, पैसे से मिले, भिखारी! भिखारी... बादशाही की भूल में तूने भिखारीपना लिया है। आहाहा! हीराभाई!

बात यह है कि सम्प्रदान के कारण से अपने में अपने द्वारा ली जाती और अपने द्वारा दी जाती है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग सूक्ष्म, भगवान! अरूपी आनन्द का नाथ परमात्मा स्वयं। आहाहा! अरे! मुझे कहीं से सुख मिले, कहीं से सुख मिले। रंक भिखारी होकर (घूमता है)। चक्रवर्ती के घर में वाघरण (हीन जाति की स्त्री) हो, वाघरण समझते हो? वाघरी। दाँतुन बेचती है न? दाँतुन। क्या कहते हैं? वाघरण। वाघरण चक्रवर्ती के घर में रही हो तो यह टेव नहीं छोड़ती। दो-चार थोड़ी रोटियाँ लेकर, गोखला हो... गोखला समझे? गोखला को क्या कहते हैं? उसमें रखे। फिर दाँतुन। ऐ... महाराज! दाँतुन लो और रोटी दो। परन्तु... फिर दाँतुन वहाँ रखे और फिर रोटी ले। तब उसे चैन आवे। यह चक्रवर्ती के घर की वाघरण। उसी प्रकार तेरा नाथ चक्रवर्ती—चैतन्य चक्रवर्ती तू है। उसमें यह शुभ-अशुभभाव करके वाघरण की भाँति मुझे सुख मिले, आहाहा! शुभ करने से, अशुभ करने से मुझे लाभ मिले, भिखारी, रंक, तेरी बादशाही को तूने गुलाम बना दिया। समझ में आया? आहाहा! अपनी महत्ता की महिमा इसे नहीं आयी और शुभभाव की महत्ता और महिमा आयी, वह भिखारी है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ ऐसा फरमाते हैं, उसे सन्त आढ़तिया होकर बात करते हैं। माल तो सर्वज्ञ के घर का है। जिनेन्द्रदेव का पूर्ण माल तो वहाँ है न! मुनि आदि भी साधक है। पर्याय में पूर्णता प्रगट नहीं हुई। आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ को निहारा परन्तु निधान में से पर्याय में पूर्णता अभी नहीं आयी। आहाहा! ऐसे मुनिराज यह कहते हैं कि सर्वज्ञ तो ऐसा कहते हैं न, प्रभु! तू मतिज्ञान में सर्वज्ञ की पर्याय बाहर से आयेगी, वाँचन करने से आयेगी, राग करने से आयेगी, ऐसा मानता है... आहाहा! यह मिथ्याभ्रम है। इस मतिज्ञान के काल में भी निर्मल मतिज्ञान की जो पर्याय प्रगट होती है, वह स्वयं के द्वारा प्रगट होती है। है?

अपने द्वारा दिया जाता... अपने द्वारा दिया जाता है। कौन? **जो भाव**... है न? **अपने द्वारा दिया जाता जो भाव**... अपनी वीतरागी निर्मल पर्याय अपने द्वारा दी जाती है। वह निर्मल पर्याय भाव। आहाहा! बहुत मुनिराज ने अमृतचन्द्राचार्य ने तो गजब काम किया है। आहाहा! श्वेताम्बर के ४५ पढ़-पढ़कर पढ़ो तो एक लाईन ऐसी नहीं निकलती। कुछ हाथ नहीं आता। आहाहा! दूसरे को दुःख लगे, क्या हो? भाई! तू भगवान है। तुझे दुःख हो, (ऐसा कौन चाहेगा)? तुम परमात्मा हो, प्रभु! तुझे दुःख नहीं (पहुँचाना) परन्तु चीज़ की विपरीत दृष्टि... आहाहा! उसमें से आत्मा को लाभ होगा, ऐसा नहीं है।

जिसने अपने स्वभाव की सम्यग्दृष्टि की, तो कहते हैं कि उसे सुख का गुण है, उसमें अपने द्वारा दी जाती, वह सुख की पर्याय अपने द्वारा आयी। अन्तर में से सुखरूपी भण्डार में से... आहाहा! सम्प्रदान के स्वरूप के कारण से यह आनन्द की झलक जो आत्मा में उठी है... आहाहा! वह दाता अपने द्वारा दी और अपने द्वारा ली। शान्तिभाई! कभी सुना नहीं। और बहिन के कारण धीरे-धीरे आये। सभी बहुत गड़बड़ है, बापू! क्या कहें? आहाहा! भगवान की पेढ़ी की दुकान कोई अलग प्रकार की है। आहाहा!

तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव सर्वज्ञ परमात्मा की पेढ़ी में मुनीम होकर कहना वह बहुत अलौकिक बातें हैं। सन्त मुनीम होकर पेढ़ी चलाते हैं। आहाहा! भगवान! भगवान रूप से ही बुलाते हैं। ७२ गाथा में आ गया न? भगवान आत्मा...! आहाहा! अरे! सन्त तुम कहाँ हो? तुम्हारी आनन्द की दशा में लीन होनेवाले, अरे! पामर को तुम भगवानरूप से सम्बोधन करते हो। नाथ! पामर पर्याय में है। वस्तु में पामरता नहीं, वस्तु में प्रभुता से भरपूर सब शक्ति है। एक-एक शक्ति प्रभुता से पूर्ण भरपूर शक्ति है।

ज्ञानशक्ति में पूर्ण प्रभुता पड़ी है, वह अपने द्वारा ज्ञानपर्याय अपने से उत्पन्न होती है, वह स्वयं द्वारा दी और स्वयं के द्वारा ली। आहाहा! समझ में आया? समय एक, पात्र स्वयं, लेनेवाला स्वयं और देनेवाला स्वयं। पोते है न? स्वयं। स्वयं कहते हैं न? समझ में आया? आहाहा! यह कहा न? देखो न!

अपने द्वारा दिया जाता... आहाहा! गजब बात है। **जो भाव**... निर्मल पर्यायरूपी भाव, वह अपने द्वारा दिया जाता है। आहाहा! समझ में आया? गुरु, शास्त्र, भगवान तो निमित्त है। आहाहा! उन्होंने कहा कि प्रभु! तेरी शक्ति में तो भण्डार पड़ा है न! वहाँ नजर

कर। तेरी निर्मल पर्याय का दाता तू है। अपने द्वारा प्रगट होता है। गुरु द्वारा, शास्त्र द्वारा, वह निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? **अपने द्वारा दिया जाता जो भाव**... निर्मल वीतरागी पर्याय, धर्मपर्याय। दर्शन-ज्ञान-चारित्र-आनन्द की पर्याय। आहाहा! पर्याय अर्थात् अवस्था, वह भाव। वह भाव अपने द्वारा दिया जाता है। आहाहा! वह व्यवहार द्वारा दिया जाता है, ऐसा नहीं। अरे रे! एक-एक शक्ति के वर्णन में व्यवहार से दिया नहीं जाता, ऐसा अनेकान्त सिद्ध किया है। अपने से दी जाती है वीतरागी दशा... आहाहा! समझ में आया?

शक्ति के भण्डार को राग की एकताबुद्धि में ताला लगा दिया है। दया, दान विकल्प जो शुभराग है, वह मेरी चीज़ है—ऐसी एकताबुद्धि में पूरे खजाने को ताला लगाया है। यह राग की एकता तोड़कर भेदज्ञान हुआ, वह चाबी लग गयी, खुल गया, खजाना खुल गया। समझ में आया? उस खजाने में एक सम्प्रदान नाम का गुण है, रत्न है। आहाहा! समझ में आया? सम्प्रदान नाम का गुणरूपी रत्न, अन्दर कमरा है। समझ में आया? आहाहा! इस कारण से वर्तमान ज्ञान की, दर्शन की, आनन्द की, वीर्य की, प्रभुता की, स्वच्छता की जो पर्याय निर्मल भाव, वह स्वयं द्वारा दी जाती है। आहाहा! पूर्व की पर्याय द्वारा भी नहीं, निमित्त द्वारा भी नहीं, पूर्व की पर्याय द्वारा नहीं। आहाहा! गजब बातें हैं। अन्दर गहरा विचार करे तो खबर पड़े कि यह क्या है? पूर्व की पर्याय थी, निर्मल पर्याय थी तो बाद की निर्मल पर्याय आयी। वह पूर्व की पर्याय दाता और लेनेवाली (उत्तर पर्याय), ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

अपने द्वारा दिया जाता... गुजराती शब्द है न? 'पोताथी देवामां आवतो', अपनी गुजराती भाषा है। 'पोताथी देवामा आवतो।' **अपने द्वारा दिया जाता**... अपने द्वारा देने में आयी। आहाहा! आत्म द्वारा, आत्मा की शक्ति द्वारा निर्मल पर्याय देने में आयी, ऐसा जो निर्मल भाव, धर्मभाव, वह धर्मभाव स्वयं से दिया जाता धर्मभाव है। आहाहा! कितनी बात करते हैं! व्यवहाररत्नत्रय से धर्मपर्याय होती है, उसका तो नकार किया है। यह बहुत विवाद, भगवान! आहाहा!

तेरी चीज़ की तुझे खबर नहीं, प्रभु! अनन्त शक्तियों का भण्डार पड़ा है न! एक-एक शक्ति में प्रभुता की अनन्त ताकत है। उस प्रभुता की शक्ति के कारण से अपनी पर्याय

में जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की प्रभुता प्रगटी, वह स्वयं से हुई है। गुरु द्वारा नहीं, शास्त्र द्वारा नहीं, व्यवहार द्वारा नहीं, अरे..! पूर्व की पर्याय द्वारा नहीं। और एक-एक गुण की पर्याय दूसरे गुण द्वारा नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। सत्य तो ऐसा है।

अपने द्वारा दिया जाता जो भाव... वर्तमान निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय। अथवा अनन्त गुण की निर्मल प्रगट-व्यक्त पर्याय। अनन्त गुण की व्यक्त निर्मल पर्याय। उसे यहाँ भाव कहा। अपने द्वारा दिया जाता जो भाव। **उसके उपेयत्वमय...** है? **(-उसे प्राप्त करने के योग्यपनामय,...)** पर्याय में प्राप्त करने की अपनी योग्यता है। आहाहा! समझ में आया? योग्यतामय, दूसरा अर्थ क्या किया? **(उसे लेने के पात्रपनामय)...** आहाहा! जो अपने में अपने से निर्मल पर्याय दी, दी वह दाता, और अपनी योग्यता से—पात्रता से ली, वह उसे उसी समय में दो भाव है। आहाहा! कहते हैं न, दाता, देय और दान। दान निर्दोष होना चाहिए, दाता भी निर्दोष भाव से शुभभाव से देता है और लेनेवाला पात्र हो, तीर्थंकर जैसे, मुनि जैसे पात्र (हों)। समकिती भी है... परन्तु यह तो बाहर के पात्र शुभभाव की बात है। आहाहा! जो आत्मा में कोई गुण नहीं, ऐसी विकृत अवस्था का यह कार्य है। यहाँ तो गुण का कार्य यह है कि निर्मल अवस्था अपने से अपने में दी और अपने में ली। एक समय में यह स्थिति। है न शान्तिभाई?

संस्कृत है, देखो! आहाहा! **'स्वयं दीयमानभावोपेयत्वमयी सम्प्रदानशक्तिः।'** यह संस्कृत है। ऐ... पण्डितजी! यह तुम्हारी संस्कृत। है संस्कृत? **'स्वयं दीयमानभाव'** अपने से दिया जाता भाव—निर्मल पर्याय। आहाहा! यह विवाद करते हैं, व्यवहार से होता है, यह बात उड़ जाती है। आहाहा! व्रत, तप, भक्ति और पूजा बहुत करो, मन्दिर बनाओ और रथयात्रा निकालो... क्या कहलाता है? गजरथ। गजरथ निकालो। पाँच-दस लाख खर्च करो, तुम्हें धर्म होगा। तीन काल में नहीं होगा, यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! वह भाव शुभ है, अपने गुण की विपरीत अवस्था है। गुण की अविपरीत अवस्था तो निर्मल अपने में लेता है और देता है, वह इसकी अवस्था है। आहाहा! समझ में आया? शुभभाव देना और लेना, वह कुपात्र है। अररर र! हीराभाई! आहाहा! शुभभाव करना और लेना, रखना, वह तो कुपात्र की बात है। आहाहा! प्रभु! तेरी शक्ति के भण्डार में से मोक्ष के मार्गरूपी धर्म की पर्याय, उस पर्याय का भाव, उस पर्याय को यहाँ भाव कहा है, स्वयं से दी है,

किसी से नहीं। पर्याय से नहीं, निमित्त से नहीं, राग से नहीं। आहाहा! अरे! विचारे तो सही कि यह चीज़ क्या है?

अरे! सुनने में आवे नहीं। गुरु की भक्ति करते-करते कल्याण हो जायेगा। गुरु की कृपा से समकित हो जायेगा। परन्तु गुरु की कृपा किसकी हो? सुन न! तेरी शक्ति की कृपा हो जाये, उससे निर्मल पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! मार्ग ऐसा। सवेरे की बात जरा समझ में आये ऐसी स्थूल है। यह सूक्ष्म है। यह तो एक शक्ति में अनन्त-अनन्त शक्ति का रूप पड़ा है। अथवा अनन्त शक्ति का एक शक्ति में स्वरूप और एक शक्ति में अनन्त शक्ति का स्वरूप पड़ा है। आहाहा! समझ में आया?

अकारणकार्य नाम की शक्ति है तो उस गुण की पर्याय राग का कारण नहीं और राग का कार्य नहीं। व्यवहार है तो सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ, ऐसा कोई कार्य नहीं। आहाहा! वह पर का कारण और कार्य नहीं, ऐसी अकार्यकारणशक्ति में सम्प्रदान का रूप है। तो वह अपने वीतरागी पर्याय, पर का कारण नहीं और पर का कार्य नहीं, ऐसी (पर्याय की) उत्पत्ति, उसे देनेवाला आत्मा है और लेनेवाला आत्मा है। एक समय में यह दो। आहाहा! अरे! एक समय में छह। सम्प्रदान की पर्याय का कर्ता आत्मा, कार्य उसका, सम्प्रदान अपना पर्याय का साधकपना (वह), आहाहा! अपादान—ध्रुव उपादान से हो, यह भी व्यवहार है। क्षणिक उपादान से उत्पन्न हुई निर्मल पर्याय। आहाहा! और अपने में अपनी पर्याय का पर्याय आधार। आहाहा! ऐसे अनन्त गुण में लगाना। एक-एक गुण में षट्कारक, पर्याय के, हों! बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! यहाँ तो अभी अपने से दिया जाता है, ऐसी भेद से बात करते हैं। परन्तु पर्याय जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान की निर्मल पर्याय होती है, वह षट्कारक से स्वयं से उत्पन्न होती है। आहाहा! क्योंकि गुण के षट्कारक तो ध्रुव है। और यह तो परिणति के षट्कारक हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें अब।

भगवान! तेरा प्रभु पड़ा है अन्दर। भग अर्थात् अनन्त ज्ञानादि लक्ष्मी। उसका वान उसमें है। उसका स्वरूप यह है। भगवान तेरा स्वरूप है न, नाथ! आहाहा! यह स्त्री, पुरुष और नपुंसक के शरीर तेरी चीज़ नहीं। वह तो परचीज़ जड़ की चीज़ है। शरीर के आकार इन्द्रिय के और स्त्री के और पुरुष के... प्रभु! यह तो जड़ मिट्टी-धूल के आकार हैं। यह तेरी पर्याय नहीं, तुझमें है नहीं, तुझसे हुई नहीं। आहाहा!

यहाँ तो तुझे शुभभाव भी तुझे नहीं हुए। वह तो पर्यायबुद्धि से विकार होता है। कमजोरी से उत्पन्न होता है। यह तो गुण का जो कार्य है, वह विकार उसके गुण का कार्य नहीं होता। जिसकी गुण और गुणी की अभेद दृष्टि हुई, उसमें विकार का कार्य होता ही नहीं। आहाहा! शुद्ध परिणति का कार्य उसका है, वह स्वयं से परिणति उत्पन्न हुई है। आहाहा! अब इसमें विवाद करते हैं। ऐ... एकान्त है, एकान्त है। प्रभु! सुन तो सही, नाथ! तेरे घर की स्वतन्त्रता की बात है, प्रभु! इसको एकान्त कहकर (कहाँ जाना है) ? किसका विरोध करना ? आहाहा!

जिसकी शक्ति में एक-एक में अनन्त स्वरूप, एक-एक शक्ति में अनन्त शक्ति। आहाहा! वह शक्ति प्रभुत्वशक्ति से भरपूर है। अपनी प्रभुत्वशक्ति में भी सम्प्रदान का रूप है और सम्प्रदानशक्ति में प्रभुता का रूप है। समझ में आया ? प्रभुत्व नाम की ईश्वर होने की एक शक्ति है। उसमें सम्प्रदान का स्वरूप है और सम्प्रदान में प्रभुत्वशक्ति का स्वरूप है। आहाहा! प्रभुत्वशक्ति सम्प्रदानशक्ति में भले न हो, परन्तु सम्प्रदानशक्ति में प्रभुत्वशक्ति भरी है। उसका स्वरूप। आहाहा! कितना विस्तार! गजब बात, भाई! अरे! निवृत्ति बिना... निभृतपुरुषों चिन्ता छोड़े बिना यह प्राप्त नहीं होगा। आहाहा! समझ में आया ? अरे! आलोचना वर्तमान में करना वह कुछ नहीं परन्तु मार्ग ऐसा है। शुभभाव से मोक्षमार्ग है, प्रभु! गजब बात, नाथ! जैनदर्शन में यह चीज़ है नहीं। जैनदर्शन वीतराग दर्शन है। उसमें राग से लाभ हो, यह जैनदर्शन ही नहीं है। यह जैनधर्म नहीं। आहाहा! जैनदर्शन और जैनधर्म जो वीतरागी पर्याय, वह अपने से प्रगट होती है, अपने से दी है। आहाहा!

राग की बहुत मन्दता, शुक्ललेश्या जैसी मन्दता (की), नौवें ग्रैवेयक गया शुक्ललेश्या से गया। शुभभाव, शुक्ललेश्या। लेश्या, हों! शुक्लध्यान नहीं। शुक्लध्यान दूसरी चीज़ है, शुक्ललेश्या दूसरी चीज़ है। शुक्ललेश्या अभव्य को भी होती है और शुक्लध्यान तो आठवें गुणस्थान से चढ़े तब शुक्लध्यान होता है। शुक्ललेश्या तो अभव्य को भी होती है। आहाहा! और ऐसी शुक्ललेश्या अनन्त बार हो गयी। आहाहा! क्योंकि शास्त्र में, भगवान के आगम में ऐसा लिखा है कि तूने मनुष्य के जो अनन्त भव किये, उनसे असंख्यगुने अनन्त तो नरक के भव किये। एक मनुष्यभव और असंख्य नरक (भव)। एक मनुष्य

और असंख्य नरकभव। अनन्त-अनन्त असंख्यगुने अनन्त। और एक नारकी और असंख्य देव। असंख्यगुने अनन्त भव स्वर्ग के किये। तो स्वर्ग के भव शुभभाव से होते हैं या पाप से होते हैं? समझ में आया? नरक के अनन्त भव मनुष्य की अपेक्षा और स्वर्ग के भव नरक के भव की अपेक्षा अनन्तगुने, असंख्यगुने अनन्त। आहाहा! यह सब तिर्यंच में से जाते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच की संख्या बहुत है। क्योंकि मनुष्य अल्प है। उनसे असंख्यगुने नरक और असंख्यगुने देव। तो असंख्यगुने में कहाँ गये? कैसे गये? समझ में आया? पशु—तिर्यंच की संख्या बहुत है। आहाहा! उसमें भी ऐसी कोई शुक्ललेश्या आ जाए तो आठवें स्वर्ग में चले जाए। समझ में आया? ऐसे स्वर्ग के, नरक के भव की अपेक्षा असंख्यगुने अनन्त भव किये। तो अनन्त भव किये तो शुभभाव कितनी बार किये? आहाहा! अशुभभाव की अपेक्षा शुभभाव असंख्यगुने अनन्त किये। आहाहा! अरे रे! समझ में आया? यह कुछ तेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! और जो शुभभाव हुए हो तो शुभभाव तो चला जाता है। जड़ परमाणु बँधते हैं। उसमें तुझे ... कहाँ आया? परमाणु बँधते हैं, तेरी पर्याय में कहाँ आया? तेरी पर्याय में मलिनता छूटकर निर्मलता कहाँ आयी? आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि निर्मलता की धर्म की पर्याय का दाता अपने द्वारा दाता देता है। आहाहा! अपने गुण में गुणी द्वारा निर्मल पर्याय का वह दाता है। निश्चय से तो वह पर्याय दाता और पर्याय पात्र। समझ में आया? परन्तु व्यवहार से उसमें सम्प्रदान नाम का गुण है तो गुण के परिणमन द्वारा (दी)। परिणमन तो पर्याय में हुआ। गुण परिणमता नहीं। आहाहा! समझ में आया? सम्प्रदान गुण तो ध्रुव है। उसकी परिणति-पर्याय हुई, उसमें—परिणति में पर्याय आती है। तो वास्तव में तो निश्चय से तो वह परिणति अपनी दाता, निर्मल, हों! और देने-लेनेवाली परिणति एक ही समय में है। आहाहा! जिसे द्रव्यदृष्टि हुई उसे। जिसे पर्यायदृष्टि हो, उसे तो इस सम्प्रदानशक्ति की प्रतीति नहीं। आहाहा! अरे! इसमें वादविवाद करने से कहाँ पार आवे?

समयसार ग्यारहवीं गाथा में भावार्थ में कहा है, भगवान ने हस्तावलम्ब तुल्य जानकर निमित्त का बहुत कथन किया है। व्यवहार का कथन। वह व्यवहार निमित्त है न?

एक तो अनादि का तुझे व्यवहार का पक्ष है और परस्पर में तू व्यवहार की चर्चा करता है, और व्यवहार के कथन भी जैनदर्शन में बहुत आये हैं परन्तु तीनों का फल संसार है। ग्यारह। (गाथा का भावार्थ)

प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि काल से ही है... हिन्दी में पृष्ठ २४ (तृतीय संस्करण) हिन्दी में पृष्ठ २४, पहली लाईन। है? **प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि काल से ही है...** एक बात। **उसका उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं।** यहाँ यही कहते हैं, व्यवहार से होता है, व्यवहार से होता है, व्यवहार से होता है—ऐसा परस्पर प्राणी करते हैं तो सुननेवाले प्रसन्न होते हैं। समझ में आया? दो बात। **जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलम्ब (सहायक) जानकर बहुत किया है..** लिखा तो है। यह तो निमित्त को देखकर कहा है। **जिनवाणी में व्यवहार का...** है? जिनेश्वरदासजी! **जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलम्ब जानकर...** आहाहा! और भेद का, निमित्त का लक्ष्य हस्तावलम्ब जानकर जिनवाणी में कथन बहुत आये हैं। **परन्तु उसका फल संसार ही है।** आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो यह निकाल डालना है। यह व्यवहारभाव लेना और देना ऐसा स्वरूप में कोई गुण ही नहीं है। आहाहा! तेरे गुण में यह गुण नहीं है। तेरे गुण में तो ऐसा है कि निर्मल पर्याय देना और लेना। दाता भी तू और पात्र भी तू। योग्यता तेरी और लेनेवाला भी तू। आहाहा!

यहाँ तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान की पर्यायवाले को पात्र कहा। वह पात्रता सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने का पात्र कौन? यह बात यहाँ ली ही नहीं। समझ में आया? क्या कहा? कि अपने में जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय उत्पन्न होती है, वह अपने द्वारा दी जाती है और अपनी योग्यता से ली जाती है। उसका नाम योग्यता, इसका नाम पात्रता। आहाहा! श्रीमद् एकबार कहते हैं, सम्यग्दृष्टि धर्म का पात्र है। ऐसा लिखा है। पात्र में आगे बढ़ा, केवलज्ञान होगा, वह पात्र में होगा। आहाहा! समझ में आया? 'पात्र बिना वस्तु न रहे' यह दूसरी बात। यह वस्तु दूसरी है। वह नहीं, यह बात नहीं। यह तो दूसरी जगह उन्होंने समकिती को पात्र कहा है। देखो! उसमें आया न? भाई! आहाहा!

जिसमें भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ अनन्तशक्ति का सागर, उसकी जिसने

दृष्टि की, वह सम्यग्दृष्टि योग्य—पात्र है और लेने की अवस्था दाता भी वह है। आहाहा! अरे रे! ऐसी बात सुनने को नहीं मिलती। बाहर में भटक-भटककर मर गया। प्रभु! तेरी महत्ता तुझे खबर नहीं। आहाहा! कितना भरा है! इसका कुछ पार नहीं।

एक सम्प्रदानशक्ति अनन्त गुण में व्याप्त है और वह सम्प्रदानशक्ति अनन्त गुण में निमित्त है और वह सम्प्रदानशक्ति ध्रुव और क्षणिक उपादान से पड़ी है। सम्प्रदानशक्ति, वह ध्रुव है और निर्मल पर्याय अपने में दी—ली, वह क्षणिक उपादान है। आहाहा! अरे रे! ऐसी बात सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव के श्रीमुख से दिव्यध्वनि में तो यह आया है। समझ में आया? आहाहा! कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान अथवा अकर्तागुण है। आत्मा में अकर्तागुण है। आ गया न? अकर्तागुण है। इस अकर्तागुण में भी सम्प्रदान का स्वरूप है। इस कारण से अकर्तागुण की जो पर्याय है, वह अकर्तागुण दाता और अकर्तागुण की जो पर्याय है, वह लेनेवाला पात्र है। आहाहा! पात्र समय की पर्याय और पात्र देने का दान। आहाहा! एक समय में है। आहाहा! ऐसा मार्ग। उज्ज्वल वीतरागी मार्ग। आहाहा!

मुमुक्षु : भाग्य हो, उसे सुनने को मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाग्य हो, उसे कान में पड़े, भाई! लोगों को ऐसा लगता है कि... आहाहा! एकान्त है, एकान्त है। सोनगढ़वाले एकान्त कहते हैं। अरे! प्रभु! ऐसी आलोचना न कर, नाथ! तुझे यह शोभा नहीं देता। तेरे गुण में कोई ऐसा गुण नहीं कि व्यवहार से लाभ हो, ऐसा कोई गुण नहीं। वह तो पर्यायदृष्टि माननेवाले को है। दो शब्द लिये।

अपने द्वारा दिया जाता... पर्याय। **उसके उपेयत्वमय**... उसे लेनेवाला। उसे प्राप्त करने के योग्य, लेने के योग्य अथवा लेने के पात्रपनेमयी। आहाहा! योग्यता कहो या पात्रता कहो। यहाँ तो दोनों लेना है। निर्मल पर्याय की योग्यता लेनीवाली सम्यग्दर्शन की पर्याय। आहाहा! धर्म की पर्याय, वही योग्यता से लेनेवाली है और वही पर्याय देनेवाली पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? दूसरे गुण की पर्याय योग्यता और यह लेनेवाली, यह यहाँ नहीं है। यह तो एक-एक गुण की पर्याय जो अपने में निर्मल होती है, वह दाता और वही पर्याय योग्यतावाली पात्रता है। आहाहा! समझ में आया? उसमें आता है न? श्रीमद् में पीछे। अपात्र योग। जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट तीन आते हैं। 'इच्छे छे जे जोगीजन'

में (आते हैं)। यहाँ पात्रता इस जाति की ली है। समझ में आया? उसमें है, अन्दर है। सब कहीं याद रहता है? 'मध्यपात्र महाभाग्य' और फिर उत्कृष्ट पात्र... वह यह नहीं।

यह तो निर्मल सम्यग्दर्शन की पर्याय के योग्य और वही सम्यग्दर्शन की पर्याय लेनीवाला दाता। आहाहा! सम्यग्दर्शन होने के योग्य कौन, वह यहाँ बात नहीं है। समझ में आया? जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट तीन बोल लिये हैं। है न? उसमें कहीं है? 'इच्छे छे जे जोगीजन' में है। अन्तिम है। कहीं है अवश्य। जड़ और चैतन्य दोनों, यह दूसरा है। इसमें कहाँ है? हाथ आना चाहिए न! यह दूसरा है। यह रहा, लो!

'जिन प्रवचन दुर्गम्यता, थाके अति मतिमान,
अवलम्बन श्री सद्‌गुरु, सुगम और सुखखान
परिणाम की विषमता, उसको योग अयोग,
मन्द विषय अरु सरलता, सह आज्ञा सुविचार,
करुणा कोमलतादि गुण, प्रथम भूमिका धार,
रोके शब्दादिक विषय, संयम साधन राग,
जगत इष्ट नहीं आत्म से, मध्यपात्र महाभाग्य,
नहीं तृष्णा जीतव्य की, मरण योग नहीं क्षोभ,
महापात्र वे मार्ग के, परम योग जितलोभ।'

यहाँ तो कहते हैं, सम्यग्दृष्टि जीव अपने द्रव्यस्वभाव का आश्रय लिया है, वह सम्यग्दर्शन की पर्याय है, वह लेनेयोग्य है और वही देनेयोग्य है। पात्रता ही वह है। आहाहा! समझ में आया? विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ४०, शक्ति-४५ सोमवार, भाद्रशुक्ल ७, दिनांक १९-०९-१९७७

उत्पादव्ययालिङ्गितभावापायनिरपायध्रुवत्वमयी अपादानशक्तिः।

उत्पाद-व्यय से आलिंगित भाव का अपाय (हानि, नाश) होने से हानि को प्राप्त न होनेवाले ध्रुवत्वमयी अपादानशक्ति।४५।

समयसार, शक्ति का अधिकार चलता है। शक्ति अर्थात् गुण। गुणी ऐसा जो आत्मा, उसमें गुण की संख्या अनन्त है। द्रव्य एक परन्तु उसकी शक्तियाँ—गुण अनन्त हैं। यहाँ तो ४७ का वर्णन किया है। इस शक्ति का गुण जो है, उसका कार्य क्या? तो कहते हैं कि व्यवहार जो राग की उत्पत्ति होती है, वह व्यवहार, निश्चय शक्ति का कार्य ही नहीं है। आहाहा! इतने सम्यग्दर्शन सहित अपनी शक्ति में से निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय उत्पन्न होती है, उससे व्यवहार उत्पन्न नहीं होता; उसमें तो व्यवहार का अभाव उत्पन्न होता है। आहाहा! तुम्हारे दिल्ली है न? ज्ञानमति, जिसने जम्बुद्वीप बनाया है।

मुमुक्षु : हस्तिनापुर।

पूज्य गुरुदेवश्री : हस्तिनापुर तो मेरुपर्वत बनता है। जम्बुद्वीप यहाँ दिल्ली। अखबार में आया है, खबर है। बनता है या बना, यह खबर नहीं। अरे! उसमें क्या था? पहले ऐसा कहते थे कि वर्तमान साधु हैं, वे सब भावलिंगी हैं। भावलिंगी का अभी अर्थ किया कि वर्तमान हैं, वे सब सराग चारित्री हैं, यह भाव। आहाहा! अरे! बापू! भावलिंग किसे कहना, भाई! आहाहा! यहाँ आज ४५ शक्ति चलती है। ४४ हो गयी।

उत्पाद-व्यय से आलिंगित भाव... यह शक्ति प्रधान है। दीपचन्दजी ने इस शक्ति की बहुत महिमा की है। (अध्यात्म) पंचसंग्रह में ज्ञानदर्पण में। यह अपादानशक्ति मुख्य है, प्रधान है—ऐसा कहा है। क्योंकि उसमें ध्रुव उपादान और क्षणिक उपादान दोनों इसमें से उत्पन्न होते हैं, इससे सिद्धि होती है। क्या (कहा)? ध्रुव उपादान जो त्रिकाली गुण है, वह ध्रुव उपादान है और वर्तमान जो यह कहा, **उत्पाद-व्यय से आलिंगित...** वर्तमान पर्याय, वह क्षणिक उपादान है। आहाहा! अरे! क्षणिक उपादान और ध्रुव उपादान, कभी तुम्हारे बहियों में भी नहीं मिलते।

चिद्‌विलास में तो कहा है, अष्टसहस्त्री का दृष्टान्त दिया है न? भाई! चिद्‌विलास में त्यक्त, अत्यक्तं। जो वर्तमान निर्मल परिणाम है, उसे त्यक्त (कहते हैं)। वह परिणाम छूट जायेगा और नये परिणाम होंगे। यह क्षणिक उपादान है। वह स्वयं से निर्मल परिणाम आलिंगित स्पर्श करनेवाली पर्याय, वह क्षणिक रहती है और दूसरे परिणाम भिन्न होते हैं। इस क्षणिक उपादान में त्यक्त, वर्तमान परिणाम निर्मल, हों! मलिनता की यहाँ बात नहीं है। मलिनता कोई चारित्र नहीं, मलिनता कोई सुखशक्ति का कार्य नहीं। आहाहा! वह हेय है।

मुमुक्षु : मलिनता कार्य किसका है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मलिनता है, वह हेय में जाती है। क्षणिक उपादान में भी नहीं आती। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! दिगम्बर सन्तों की शैली अन्तर में जाने की अलौकिक है। आहाहा! जहाँ भगवान आनन्द का नाथ विराजता है, वहाँ समीप में जा। समीप में जाने की पर्याय वर्तमान है। समझ में आया? वह त्यक्त है, वे परिणाम छूट जाते हैं, नये परिणाम आते हैं और ध्रुव है, वह अत्यक्त है। ध्रुव उपादान है, वह छूटता नहीं। बदलता नहीं, वह तो जो है वह है। आहाहा! उपादान-निमित्त के भी अभी बड़े झगड़े हैं न? निमित्त से होता है, निमित्त से होता है। परन्तु यहाँ तो इनकार करते हैं। सुन तो सही।

तेरे **उत्पाद-व्यय से आलिंगित**... कौन? वर्तमान पर्याय। वर्तमान सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि अनन्त गुण की वर्तमान परिणतिरूप भाव। उस उत्पाद-व्यय से स्पर्शित भाव। यह तो बड़े मन्त्र हैं। सम्यग्दृष्टि के जो वर्तमान निर्मल परिणाम उत्पाद-व्यय होते हैं, ऐसा जो भाव। उससे आलिंगित पर्याय है। उत्पाद-व्यय की पर्याय आलिंगित है, पर्याय आलिंगित है। उत्पाद-व्यय से आलिंगित भाव। आहाहा! बहुत संक्षिप्त में (समाहित कर दिया है)।

जो वर्तमान सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि वीतरागी पर्याय जो उत्पाद-व्ययरूप होती है, उससे स्पर्शित भाव वर्तमान पर्याय, उत्पाद-व्यय को स्पर्शित वर्तमान पर्याय। ध्रुव नहीं। आहाहा! उत्पाद-व्यय से आलिंगित—स्पर्शित भाव। भाव अर्थात् वर्तमान पर्याय। अपाय। आहाहा! उस पर्याय का नाश होने पर भी क्षणिक निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि अनन्त गुण की (पर्याय नाश होने पर भी)। सम्यग्दर्शन अर्थात् सर्व गुणांश, वह समकित।

सर्व गुणांश, वह समकित। जितनी संख्या में गुण है, उतनी अनन्त गुण की निर्मल व्यक्त पर्याय सम्यग्दर्शन में होती है। सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पाद-व्ययवाली है और अनन्त गुण की व्यक्त पर्याय होती है, वह भी उत्पाद-व्ययवाली है। समझ में आया? थोड़ा ध्यान रखे तो पकड़ में आये, ऐसा है, बापू! यह कोई वार्ता नहीं। यह तो वीतराग के पेट (अभिप्राय) खोलकर सन्तों ने बात की है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि उत्पाद-व्यय से स्पर्शित। अनन्त गुण जो है, उसमें यह एक शक्ति ऐसी है कि अनन्त गुण में इस शक्ति का स्वरूप है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अनन्त धर्मत्व... समझ में आया? अभी सुनने का हो। लिखने का हो तो गड़बड़ नहीं। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि आत्मा में जितनी संख्या में अनन्त गुण—शक्ति है, उस प्रत्येक गुण में इस अपादान नाम की शक्ति का स्वरूप है। आहाहा! कि जिस कारण से जो ज्ञानगुण है, वह ध्रुव है और उसकी पर्याय उत्पाद-व्यय से आलिंगित क्षणिक है। वह ध्रुव उपादान और क्षणिक उपादान, यह यहाँ अपादान के दो भेद हैं। त्रिकाली ध्रुव उपादान और क्षणिक पर्याय, अपादान में से दो उपादान निकलते हैं। सम्यग्ज्ञान की पर्याय, ज्ञान त्रिकाल है, वह ध्रुव उपादान है और उसमें अपाय नाम की शक्ति के कारण यह ध्रुव उपादान कायम रहकर वर्तमान सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि ज्ञान की सम्यक् पर्याय उत्पन्न होती है, वह पर्याय उत्पाद-व्यय से स्पर्शित है। ध्रुव को स्पर्शित नहीं। ऐसी बातें हैं। भाई! यह तो बहुत भरा है। शक्ति में तो इतना भण्डार, इतना भरा है..! ओहोहो! पूरा समयसार करके फिर ऊपर क्या कहा जाता है वह? कलश... कलश। कलश चढ़ाया है, कलश चढ़ाया है। मन्दिर में जैसे ऊपर कलश होते हैं न? आहाहा! ओहोहो! ऐसी बात, अन्दर इसका वाच्य। यह शब्द वाचक है।

उत्पाद-व्यय से स्पर्शित। ज्ञान की वर्तमान निर्मल पर्याय उत्पाद-व्यय से स्पर्शित है, तथापि उस उत्पाद-व्यय का नाश होने पर भी ध्रुव उपादान कायम रहता है। ऐसी बातें हैं। अरे! उपादान-निमित्त के झगड़े, व्यवहार-निश्चय के झगड़े और क्रमबद्ध के झगड़े। यह पाँच झगड़े सोनगढ़ के सामने आते हैं। अरे! भगवान! बापू! सुन तो सही, नाथ! आहाहा! तेरी पर्याय में ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, उसमें अपादान नाम की शक्ति का रूप है, इस कारण से ज्ञान की पर्याय निर्मल उत्पन्न हो, वह उत्पाद-व्यय से आलिंगित है।

और उस पर्याय का अभाव होने पर भी ध्रुव उपादान कायम रहता है। समझ में आया? यह एक गुण के ऊपर लगाया।

उत्पाद-व्यय से आलिंगित—स्पर्शित ज्ञानगुण की पर्याय। उत्पाद-व्यय से परिणत पर्याय है, ऐसे भाव की हानि—अपाय होने पर भी, उस पर्याय का अभाव होने पर भी, पर्याय का नाश होने पर भी, **हानि को प्राप्त न होनेवाले... अपाय होने से हानि को प्राप्त न होनेवाले...** आहाहा! क्योंकि **ध्रुवत्वमयी अपादानशक्ति।** अन्दर पर्याय की हानि हुई, तथापि ध्रुव में हानि नहीं हुई। आहाहा! समझ में आया? यह पर्याय जो है वर्तमान निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई, वह व्यवहार से नहीं, निमित्त से नहीं; यह ध्रुव उपादान से उत्पन्न हुई है। और वह उत्पन्न हुई, तथापि उसका नाश होने पर भी ध्रुव उपादान कायम है। ऐसी बातें अब। समझ में आया? यह तत्त्व की स्थिति ऐसी है। वस्तु की शक्ति और परिणति वस्तु की मर्यादा है। आहाहा! जिसे तत्त्वज्ञान की खबर नहीं, उसे धर्म किस प्रकार होगा? आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि ज्ञानगुण में भी अपादान नाम का रूप होने से ज्ञानगुण की वर्तमान पर्याय उत्पाद-व्यय से आलिंगित है और उस पर्याय का अभाव होता है, नाश होता है। नाश होने पर भी... है? **हानि को प्राप्त न होनेवाले...** पर्याय नाश हुई परन्तु हानि को प्राप्त नहीं हुई। अन्दर त्रिकाल ध्रुवत्मयी है। दूसरे प्रकार से कहें तो, उस पर्याय का अभाव होने से और पर्याय का उत्पाद हुआ, परन्तु ध्रुव में कुछ फेरफार नहीं, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि की पर्याय, यहाँ पहले ज्ञान की पर्याय ली, उसका अभाव होने पर भी ध्रुव तो ध्रुव एक सरीखा पड़ा है। पर्याय उत्पन्न हुई तो भी ध्रुव तो जो है, वह है। उत्पन्न का अभाव हुआ तो भी ध्रुव तो ध्रुव ही है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी सूक्ष्म बातें पकड़ना कठिन। तत्त्वज्ञानी को तो यह वस्तु जाननी चाहिए। समझ में आया? इस दृष्टि के बिना, इस ज्ञान के बिना की दृष्टि निर्मल नहीं होगी। आहाहा! समझ में आया?

दूसरे प्रकार से कहें तो वर्तमान ज्ञान की पर्याय की हानि होने पर भी दृष्टि तो ध्रुव के ऊपर है। ध्रुव में हानि नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? दृष्टि तो शाश्वत् उपादान जो ध्रुव है, उसके ऊपर है। आहाहा! समझ में आया? अधिकार सूक्ष्म है। पर्यूषण में मौके से शक्ति का वर्णन आ गया है। आहाहा! भगवान! तेरी सम्यग्ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हो,

वह क्षणिक उपादानकारण से स्वयं से है। ज्ञानावरणीय का अभाव हुआ या शुभ विकल्प से शास्त्र पढ़ा तो उस विकल्प के कारण यहाँ निर्मल पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! शास्त्र पढ़ा हो, ग्यारह अंग नौ पूर्व, तो वह पर्याय तो परसत्तावलम्बी है। आहाहा! यह तो अपनी सत्ता का अवलम्बन होकर उत्पाद-व्यय पर्याय जो आलिंगित होती है, उसका भाव शास्त्रज्ञान की पर्याय से नहीं होता। आहाहा! उसकी अपादान नाम की शक्ति से उससे उत्पन्न होता है। अरे! यह बात। निमित्त से होता है, निमित्त से होता है, व्यवहार से निश्चय होता है—सब मिथ्या भ्रम है। समझ में आया?

जिसने भगवान आत्मा अनन्त शक्ति—गुण का भण्डार, ऐसे स्वभाव का धारक स्वभावी चीज़ पर जिसकी दृष्टि गयी और उसका स्वीकार अनुभव में आया, पर्याय में आनन्द की वेदनदशा हुई तो यहाँ कहते हैं, वह आनन्द की दशा एक समय रहती है। वह उत्पाद-व्यय से आलिंगित, वह दशा है। उसका अभाव होने पर भी आनन्द नाम का गुण ध्रुव तो कायम एकसरीखा रहता है। समझ में आया? पर्याय नाश हुई तो ध्रुव में कुछ फेरफार हुआ है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! समझ में आया? ऐसा निवृत्त लोगों को कहाँ समझना? फुरसत नहीं होती। धन्धा... धन्धा पूरे दिन पाप। चौबीस घण्टे पाप। अकेला पाप। धर्म तो नहीं, परन्तु पुण्य भी नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : धन्धे में...

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन धन्धा करे? कौन कर सके? भाव करे। पाप के राग के भाव करे। धन्धा कौन कर सकता है? पर की क्रिया कौन कर सकता है?

यहाँ तो अपनी पर्याय में विकृत अवस्था उत्पन्न होती है, उसका भी यहाँ निषेध किया है। है विकृत, उसका ज्ञान करता है, वह ज्ञान की पर्याय जो उत्पन्न हुई, वह उत्पाद-व्यय से आलिंगित पर्याय है, उसका अभाव होने पर ध्रुव में कोई अभाव नहीं होता। ध्रुव में कोई हानि नहीं होती। आहाहा! अरे! ऐसी बातें अब।

इसी प्रकार सम्यग्दर्शन। श्रद्धागुण जो अन्दर में त्रिकाल है, उसमें अपादानशक्ति का स्वरूप, रूप है, स्वरूप है। इस कारण से सम्यग्दर्शन की जो पर्याय उत्पन्न हुई, वह उत्पाद-व्ययवाली पर्याय, पर्याय को स्पर्शती है, ध्रुव को नहीं। और उस पर्याय को स्पर्शित

ऐसी निर्मल पर्याय का दूसरे समय में अभाव होता है, हानि होती है। हानि होने पर भी वस्तु में हानि नहीं होती। परिणाम त्यक्त हुए, ध्रुव अत्यक्त कायम रहता है। क्षणिक उपादान समय-समय में पलटता है। यहाँ निर्मल की बात है, हों! तथापि ध्रुव उपादान शाश्वत् उपादान कायम है। आहाहा! समझ में आया? ऐ... शान्तिभाई! शान्तिभाई तो कहते हैं, क्या कहते हैं? अभूतपूर्व। बात सत्य है। बात तो ऐसी है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा!

तेरी चीज़ जो ध्रुव और क्षणिक। उस क्षणिक पर्याय में निर्मलता होती है, वह भी अपने उपादान से। अपादानशक्ति का दूसरा अर्थ उपादान है। भाई दीपचन्दजी ने अध्यात्म पंचसंग्रह में बहुत वर्णन किया है। यह प्रधान शक्ति है, सबमें मुख्य—प्रधान शक्ति है। क्योंकि ध्रुव और क्षणिक उपादान की सर्व गुण की पूरी चीज़ उसमें है। समझ में आया? है यहाँ? पंचसंग्रह। ज्ञानदर्पण, ५६ पृष्ठ है। जिनेश्वरदासजी ने पढ़ा है।

'अपनो अखण्ड पद सहज सुथिर महा' यह अपादानशक्ति का वर्णन है। आहाहा! अपादान क्या? व्याकरण में यह छह बोल आते हैं। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। **'अपनो अखण्ड पद सहज सुथिर महा, करै आप आप ही तैं यहै अपादान है।'** शाश्वत उपादान है, उसमें क्षणिक उपादान। **'करै आप आप ही तैं यहै अपादान है।'** निर्मल सम्यग्दर्शन आदि की पर्याय, निर्मल आनन्द की पर्याय स्वयं से होती है। आहाहा! **'सासतो क्षिणक उपादान करे आप ही तैं।'** शाश्वत् और क्षणिक उपादान आप ही तै। पर से नहीं, व्यवहार से नहीं, निमित्त से नहीं। आहाहा! यह शक्ति के गुण का स्वरूप है। **'सासतो क्षिणक उपादान करे आप ही तैं, आप है अनन्त अविनासी सुखथान है।'** आहाहा! **'याही तैं अनूप चिद्रूप रूप पाईयतु है,'** आहाहा! अपादानशक्ति के कारण से चिद्रूप की प्राप्ति अन्दर पर्याय में होती है, कहते हैं। निर्मल धर्म की पर्याय अपादानशक्ति के कारण से वर्तमान में प्राप्त होती है। किसी व्यवहार के कारण से या निमित्त के कारण से अथवा कर्म के अभाव के कारण से प्राप्ति नहीं होती। आहाहा!

फिर कहते हैं, **'याही तैं अनूप चिद्रूप रूप पाईयतु है,'** इससे चिद्रूप ज्ञानस्वरूप की पर्याय में प्राप्ति होती है। **'याही तैं अनूप चिद्रूप रूप पाईयतु है, यातैं सब सकति में परम प्रधान है।'** परम प्रधान है। अपादानशक्ति। क्योंकि उसमें उपादान

आया न? ध्रुव उपादान और क्षणिक निर्मल उपादान, हों! आहाहा! और प्रत्येक गुण में उसका स्वरूप है। सभी शक्तियों में परम प्रधान है। आहाहा! लोगों को अन्दर...

चिद्विलास में तो ऐसा लिखा है कि जो जैसे-जैसे गुण के भेद और पर्याय के भेद निर्मल समझ में आते हैं, वैसे-वैसे शिष्य को आनन्द आता है। भाई! ऐसा आया है। आहाहा! चिद्विलास में है। जैसे-जैसे एक-एक गुण और उसकी पर्याय का वर्णन जैसे भेद करके समझाते हैं, तब-तब शिष्य को सुनने से आनन्द आता है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह चिद्विलास में है। दीपचन्दजी का है। देखा है? इस ओर है। यही निकला तुम्हारा। अष्टसहस्री। **द्रव्य का त्यक्त स्वभाव तो परिणाम (रूप) व्यतिरेक स्वभाव है।** चिद्विलास, पृष्ठ ३६। यह अष्टसहस्री का दृष्टान्त दिया है। अष्टसहस्री है न? अष्टसहस्री का हिन्दी किया है परन्तु बिना ठिकाने की दृष्टि। दृष्टि खोटी-मिथ्या। व्यवहार सराग क्रिया से निश्चय चारित्र होता है। अरे रे! मिथ्यात्व का महाशल्य है। समझ में आया? तेरे गुण और तेरी पर्याय की शक्ति की ताकत पर के कारण से उत्पन्न नहीं होती, ऐसी है। उसके बदले पर के कारण से उत्पन्न होती है, यह बड़ी शल्य है। इस कारण यहाँ कहा, **अव्यक्त स्वभाव गुणरूप-अन्वय-स्वभाव है।** देखा? अत्यक्त भाव गुणरूप है। त्यक्तरूप भाव पर्याय है। अन्वय स्वभाव है। गुण अन्वय स्वभाव है और पर्याय व्यतिरेक अभावस्वभाव है। क्षण-क्षण में अभाव होता है। **वे गुण तो पूर्व में थे, वे ही रहते हैं। परिणाम अपूर्व अपूर्व होते हैं। यह द्रव्य का उपादान है। वह परिणाम को तजे परन्तु गुण को सर्वथा नहीं तजता।** आहाहा! दीपचन्दजी ने काम किया है...! वे कहे कि, नहीं आचार्यों का लाओ। पण्डितों का नहीं। पण्डितों ने स्पष्ट किया है। समझ में आया? **इसलिए परिणाम क्षणिक उपादान है और गुण शाश्वत उपादान है। वस्तु उपादान से सिद्ध है।** निर्मल पर्याय अपने उपादान से प्रगट होती है। यह राग, दया, दान, व्रत और व्यवहाररत्नत्रय किया तो उपादान हो, ऐसी तीन काल में शक्ति नहीं है। समझ में आया? बहुत अधिकार है। परन्तु वह है, वह इसमें कहीं है। जैसे-जैसे धर्मात्मा द्रव्य, गुण और पर्याय के भेद, एक-एक शक्ति का भिन्न-भिन्न वर्णन करते हैं, वैसे-वैसे शिष्य को आनन्द की पर्याय प्राप्त होती है। ऐसा वहाँ कहते हैं। इस ओर कहीं है। समझ में आया? आहाहा!

दीपचन्दजी ने शक्ति का वर्णन किया है, ऐसा किसी ने नहीं किया। आचार्य ने

शक्ति के नाम दिए। काम किया इन्होंने। शक्ति की विशेषता दीपचन्दजी के अतिरिक्त किसी ने नहीं की। एक समयसार नाटक में थोड़े बोल हैं, परन्तु इस दीपचन्दजी में यहाँ पंचसंग्रह में और चिद्विलास में जो स्पष्टीकरण है, ऐसा स्पष्टीकरण कोई आचार्य ने किया नहीं, कोई गृहस्थ ने किया नहीं। इन्होंने तो स्वतन्त्र स्वयं किया है। निवृत्ति बहुत। पण्डित ने की है। वहाँ चर्चा हुई न? खानिया। सामनेवाले रतनचन्दजी कहे, पण्डित का नहीं लेना। आचार्य का लेना। फूलचन्दजी कहे—पण्डित, आचार्य, मुनि सबका (उद्धरण) लेना। समझ में आया?

यहाँ तो मुझे ऐसा कहना है, **यातैं सब सकति में परम प्रधान है।** यह परम प्रधान अपादानशक्ति। आहाहा! भगवान ध्रुव में दृष्टि देने से शक्ति का स्वीकार करने से अपादान के कारण क्षणिक पर्याय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की, आनन्द की निर्मलता उत्पन्न होती है। आहाहा! व्यवहार से और निमित्त से और बहुत शास्त्र पढ़ा और बहुत जानपना आया, और लोगों को बहुत समझाता है, इसलिए गुण की परिणति उसे विशेष प्रगट होती है, ऐसा नहीं है। सेठ!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दिखाया न? पहले के पण्डित और तुम्हारे वर्तमान के पण्डित। सेठ! सेठ कहते थे न, जैसा सुनने को मिला, वैसा माना। बात तो सत्य, बात तो सत्य। आहाहा! यहाँ तो पण्डित दीपचन्दजी ऐसा कहते हैं कि यह अपादानशक्ति सर्व शक्ति में प्रधान है। क्योंकि परिणति में उत्पाद-व्यय की पर्याय होती है, वह ध्रुव उपादान से उत्पन्न होती है। ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। वह परिणति स्वयं के कारण से उत्पाद-व्यय उत्पन्न होती है। आहाहा! निर्मल, हों! सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि। वह परिणति उत्पन्न होती है, वह अपने स्वतन्त्र (उपादान से होती है)। व्यवहार का कारण नहीं और द्रव्य-गुण का भी कारण नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह चिद्विलास में है। चिद्विलास में ८९ पृष्ठ में हैं। पर्याय का कारण पर्याय है, पर्याय का वीर्य पर्याय है, पर्याय का क्षेत्र पर्याय है। द्रव्य-गुण बिना पर्याय अपने से होती है। समझ में आया? यह ८९ पृष्ठ पर। यह इस ओर है। नाम कहीं सब आते हैं? भाव ख्याल में होता है। आहाहा! इस ओर है। गुरु जैसे-जैसे द्रव्य, गुण, पर्याय की भेदता समझाते हैं, वैसे-वैसे श्रोता को आनन्द

आता है, ऐसा लिया है। ऐसा नहीं कि इस भेद को समझाते हैं इसलिए उसे दु:ख होता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, ऐसे चारित्रगुण आत्मा में है। सुनो! आत्मा में ध्रुवरूप से चारित्रगुण है। वह ध्रुवरूप जो है, उसकी वर्तमान चारित्र की वीतरागी पर्याय उत्पन्न हुई, वह उत्पाद-व्यय से आलिंगित है। वह उत्पाद-व्यय से आलिंगित है, राग से आलिंगित नहीं, निमित्त से आलिंगित नहीं। आहाहा! यहाँ कहते हैं न? देखो! पृष्ठ ३४, चिद्विलास में पृष्ठ ३४। देखो! **सामान्य से निर्विकल्प है, विशेषता से शिष्य को प्रतिबोध किया जाए, तब-तब जैसे-जैसे शिष्य, गुरु के प्रतिबोधने से गुण का स्वरूप जान-जानकर विशेष भेदी होता जाए...** विशेष भेदज्ञान होता है। **वैसे-वैसे उस शिष्य को आनन्द की तरंग उठती है...** पृष्ठ ३४। समझ में आया? ऐसा नहीं कि इतना सब भेद समझाते हैं, इसलिए (दु:ख होता है)।

मुमुक्षु : खजाना खुलता जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : खजाना खुलता है। कानपुर में जाते हैं न! वहाँ पैसा बहुत आता है। उगाही के लिये यह सेठ जाते हैं। वैसे यह कानपुर भगवान आत्मा है। समझ में आया? इसे बराबर कान देकर गुणभेद को सुने तो वहाँ पर्याय में धन के ढ़ेर होते हैं। वह लिया? ८९ पृष्ठ है न? देखो! **पर्याय की सत्ता गुण बिना ही (अर्थात् गुण की अपेक्षा बिना ही) पर्याय की सत्ता पर्याय का कारण है।** क्या कहते हैं? पर्याय की सत्ता... यह कहा न? **उत्पाद-व्यय से आलिंगित भाव...** भाव अर्थात् पर्याय। वह स्वतन्त्र पर्याय गुण बिना पर्याय, पर्याय का कारण है। ध्रुव गुण बिना पर्याय, पर्याय का कारण है। आहाहा! देखो! **गुण बिना ही पर्याय की सत्ता पर्याय का कारण है।** गुण बिना ही पर्याय को पर्याय कारण है। पर्याय की सत्ता, वर्तमान सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि निर्मल पर्याय की सत्ता, गुण बिना ही अपने से सत्ता सिद्ध होती है। आहाहा! समझ में आया? यह तो बहुत बार व्याख्यान में बताया है। पश्चात देखो!

पर्याय का सूक्ष्मत्व पर्याय को कारण है... गुण-द्रव्य नहीं। पर्याय का सूक्ष्मत्व पर्याय का कारण है। आहाहा! **पर्याय का वीर्य पर्याय को कारण है,...** पर्याय में जो वीर्य—शक्ति पड़ी है, वह पर्याय को कारण है। द्रव्य-गुण नहीं और व्यवहार कारण नहीं।

आहाहा! अरे! ऐसी चीज़, भगवान! दिगम्बर सन्त... यह तो गृहस्थ, समकिती गृहस्थ हैं उन्होंने इतना स्पष्ट कर दिया है। पढ़ना नहीं और अपना कक्का छोड़ना नहीं। वे और ऐसा कहे, सोनगढ़ की बात तो सत्य है परन्तु यदि हम स्वीकार करने जायें तो सोनगढ़ की प्रसिद्धि हो जाए और लोग वहाँ जाए और हमें कोई माने नहीं। अरे! भगवान! मानने, नहीं मानने की बात यहाँ नहीं है। जैसी भगवान ने फरमाई है, (वैसी वस्तु है)। सवेरे आया नहीं था? अनादि परम्परा का उपदेश है। आया था न? आहाहा!

निर्मल पर्याय अपने से उत्पन्न होती है। राग और पर से नहीं। यह अनादि व्यवहार, राग से निश्चय चारित्र या निश्चय समकित होता है, ऐसा कभी नहीं है। ऐसा अनादि परम्परा यह उपदेश चला आया है। समझ में आया? आहाहा! यह सोनगढ़ का नया नहीं है। आहाहा! लिखा है, अभी तो किसी की आगम प्रमाण श्रद्धा दिखाई नहीं देती और यथार्थ श्रद्धावाले वक्ता भी दिखाई नहीं देते। यह तो दो सौ वर्ष पहले लिखा है। और हम मुँह से कहते हैं तो सुनते नहीं। ऐई! अभी तो सुननेवाले निकले हैं। मुँह से कहें तो सुनते नहीं तो हम लिख जाते हैं कि मार्ग ऐसा है। दूसरे कहते हैं, वैसा मार्ग नहीं है। भावदीपिका में है। आहाहा!

पर्याय का प्रदेशत्व पर्याय का कारण है। आहाहा! निर्मल पर्याय सम्यग्दर्शन आदि धर्म की पर्याय उत्पन्न हुई, उसके प्रदेश है न? प्रदेश भिन्न हैं। असंख्य प्रदेश में ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं, पर्याय के प्रदेश भिन्न हैं। आहाहा! जितने क्षेत्र में से निर्मल पर्याय उत्पन्न होती है, उतने प्रदेश भिन्न गिनने में आये हैं। पर्याय का कारण वे प्रदेश हैं, ऐसा कहते हैं। ध्रुव प्रदेश नहीं। आहाहा! समझ में आया? ध्रुव के प्रदेश हैं, वह पर्याय की उत्पत्ति में ध्रुव का क्षेत्र कारण नहीं है, पर्याय का क्षेत्र पर्याय का कारण है। आहाहा! गजब बात करते हैं न! यह गृहस्थ का पण्डित का लेखन है। आहाहा!

अथवा **उत्पाद-व्यय कारण है (और पर्याय कार्य है)। क्योंकि उत्पाद-व्यय द्वारा पर्याय जानने में आती है...** उत्पाद-व्यय से पर्याय जानने में आती है, इसलिए उत्पाद-व्यय कारण है। ध्रुव कारण नहीं। आहाहा! समझ में आया? बहुत गम्भीरता, बहुत गम्भीरता। आहाहा! तुझे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो मोक्षमार्ग है, वह पर्याय का उत्पाद-व्यय होता है। वह उत्पाद-व्यय भी अपने स्वतन्त्र कारण से उत्पन्न होता है। क्षणिक

उपादान में। ध्रुव उपादान है, तो उससे उत्पन्न हुआ, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! क्योंकि ध्रुव उपादान तो एकरूप त्रिकाल रहता है। पर्याय में केवलज्ञान होता है तो भी ज्ञान की ध्रुवता में कोई कमी हो गयी, (ऐसा नहीं है)। समझ में आया? बहुत पर्याय बाहर आयी, इसलिए न्यूनता हो गयी, ऐसा नहीं है। और निगोद के शरीर में एक जीव को पर्याय में अक्षर के अनन्तवें भाग विकास है तो अन्दर गुण में पुष्टि हुई है, बाहर थोड़ा विकास है तो अन्दर बहुत गुण है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं, ध्रुव उपादान तो कायम जैसा है वैसा है। समझ में आया? चाहे तो सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न हो, चाहे तो केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न हो, ध्रुव तो ध्रुव है, वह है, है वैसा है। आहाहा! अकबन्ध है। बहुत लिखा है, हों!

इसलिए वह पर्याय का कारण है और पर्याय (उसका) कार्य है। वह पर्याय कारण और पर्याय कार्य है। निमित्त से तो नहीं परन्तु द्रव्य-गुण से भी नहीं। आहाहा! दो सौ वर्ष पहले दिगम्बर पण्डित भी बहुत काम कर गये हैं। भागचन्दजी, बनारसीदास, टोडरमलजी। लोगों को ऐसा कि हम बहुत पण्डित हैं तो वे भी पण्डित थे। परन्तु बापू! हम भी पण्डित हैं। हम सब पण्डितों को जानते हैं। और पण्डित तो इस अकेले को जानते थे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, आनन्द, वस्तुत्व, अस्तित्व, प्रभुता। आत्मा में प्रभुत्व नाम की शक्ति है। उसमें इस उपादान की शक्ति का स्वरूप है। इस कारण से प्रभुता की उत्पाद-व्यय पर्याय उत्पन्न होती है, वह उत्पाद-व्यय को स्पर्शित होती है और उसका अभाव होने पर भी ध्रुव में हानि नहीं होती। ध्रुव तो ऐसा का ऐसा रहता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो यह बतलाना है कि पर्याय क्षणिक पलटती है, तथापि ध्रुव तो ऐसा का ऐसा रहता है। ऐसा कहना है कि जिसने द्रव्यशक्ति दृष्टि में ली और अनन्त शक्ति का भेद भी लक्ष्य में लिया, उसकी पर्याय फिर गिरती है और गिर जाती है, वह पर्याय से गिर जाए और मिथ्यात्व हो जाता है, ऐसी बात है नहीं। आहाहा! क्यों? कि वह निर्मल पर्याय स्वतन्त्र उत्पन्न हुई है परन्तु उसका व्यवहार कारण जो ध्रुव है, उस ध्रुव पर जिसकी दृष्टि है, उसकी पर्याय निर्मल उत्पन्न हुआ ही करती है। उसे निर्मल पर्याय से हटकर मिथ्यात्व हो जाए, ऐसा कोई गुण है नहीं। आहाहा! समझ में आया? आवे उतना आवे। आवे उतना समझना।

बाकी क्या हो ? बहुत भरा है। एक-एक शक्ति में तो इतना (भरा है)। यह तो परम प्रधान शक्ति है, ऐसा दीपचन्दजी ने कहा है। क्योंकि प्रत्येक शक्ति में उपादान क्षणिक और ध्रुव। क्षणिक उपादान पलटने पर भी ध्रुव उपादान तो ऐसा का ऐसा रहता है, हानि को प्राप्त नहीं होता। आहाहा!

दूसरी बात, वह निर्मल पर्याय जो है, वह अल्प हो, सम्यग्दर्शन आदि की, उसकी हानि-नाश होने पर भी वह पर्याय गयी है द्रव्य में। गयी है द्रव्य में-ध्रुव में। तो वहाँ आगे अल्पज्ञता रहती है, ऐसा नहीं, वह तो पारिणामिकभाव हो गया। आहाहा! यह ध्रुव कहते हैं न, ऐसा का ऐसा रहा। पर्याय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र है, उस पर्याय का अभाव हुआ। अभाव हुआ परन्तु गयी कहाँ ? जल की तरंग जल में समा जाती है। जल की तरंग जल में जाती है। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन आदि की निर्मल पर्याय का अभाव हुआ, गयी कहाँ ? और वर्तमान पर्याय में क्षायिक, क्षयोपशमभाव था, वह गई, ध्रुव में गई, पारिणामिकभाव हो गया। आहाहा! घर में गई तो पारिणामिकभाव हो गया। आहाहा! शान्तिभाई! अभी तक जिन्दगी व्यर्थ गई। यह तो तुम कहते थे। आहाहा! बापू! मार्ग ऐसा है, भाई!

जिसे अभी राग से भिन्न मेरी वस्तु शक्ति ध्रुव उपादान, क्षणिक स्वतन्त्र है, ऐसी एकताबुद्धि तोड़कर भान न हुआ तो प्रभु! मरण के समय दब जाएगा। प्रभु! आहाहा! राग से निश्चय होता है, ऐसी एकताबुद्धिवाला मृत्यु काल में एक तो मृत्यु का काल, एक ओर वेदन... आहाहा! और शरीर मेरा है, ऐसी बुद्धि पूरी जिन्दगी रखी हो। मेरा भगवान मेरा है, ऐसा तो भान हुआ नहीं। आहाहा! वह मरण के समय घाणी में पिले; वैसे पिलकर देह छूटेगी। आहाहा! और देह छोड़कर कहीं चार गति में चला जाएगा। आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ तो पवित्रता की पर्याय और पवित्रता गुण की ही बात है। आहाहा! यह अपादान नाम की शक्ति है, इसमें जो निर्मल पर्याय हुई, वह क्रमसर होती है। क्रमवर्ती, पर्याय क्रमवर्ती होती है। और गुण अक्रम—एकसाथ है। तो वह क्रमवर्ती पर्याय और अक्रम गुण का समुदाय, वह आत्मा है। राग इकट्ठा है तो रागसहित आत्मा है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? मोक्षमार्गप्रकाशक में तो दो जगह ऐसा कहा है, शुद्धाशुद्ध पर्याय का पिण्ड, वह द्रव्य हैऐसा कहा है। वह दूसरी बात है। वहाँ तो पूर्व में अशुद्धता थी,

उसे नहीं मानता, उसको यह कहा है। समझ में आया? परन्तु अशुद्धता थी, उसे मानता है तो वह पर्याय गयी कहाँ? वह अन्दर में गयी तो अन्दर में अशुद्धता नहीं गयी। आहाहा! अन्दर में तो योग्यता रह गयी है और वह पारिणामिकभाव से हो गयी है। आहाहा! भगवान में मिली, वह भगवानरूप हो गयी। परमपारिणामिकभाव है न? आहाहा! ऐसा मार्ग। ऐसा धर्म का उपदेश। हमारे इसमें करना क्या? परन्तु यह करना नहीं?

वस्तु का स्वभाव है, उस ओर तेरा झुकाव कर, प्रभु! आहाहा! ध्रुव को ध्यान में ले। ध्रुव को ध्येय-श्रेष्ठ बना। पर्याय का सेठ ध्रुव को बना। प्रजा है न? प्रजा। उसका पिता ध्रुव है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

उत्पादव्यय से... ऐसे अनन्त गुण में लेना। यह अपादानशक्ति का अनन्त शक्ति में स्वरूप है। और एक शक्ति में अनन्त गुण का स्वरूप इस ओर है। आहाहा! अपादानशक्ति में भी... आहाहा! ज्ञान, आनन्दशक्ति का रूप अपादान में भी है। बहुत सूक्ष्म, बहुत सूक्ष्म। ओहोहो! समझ में आया? व्यवहार और निमित्त को उड़ाकर बात करते हैं। अपना नित्य ध्रुव उपादान और पर्याय का क्षणिक उपादान, वह स्वतन्त्र है। आहाहा! यह सरागचारित्र पालते हैं तो फिर निश्चयचारित्र होता है, यह वस्तु की शक्ति में—गुण में नहीं है। यह तो अज्ञानी ने अध्धर से उत्पन्न किया है। समझ में आया? आहाहा! चन्दुभाई! ऐसी बात है। भगवान का दरबार खुलता है। आहाहा!

प्रभु! तेरी शक्ति में इतनी सम्पत्ति है कि अनन्त शक्ति में अपनी ध्रुवता और पर्याय जो है, वह क्षणिक उपादान अपने से उत्पन्न होती है। आहाहा! नाश भी स्वयं के कारण से और उत्पाद भी स्वयं के कारण से। आहाहा! दूसरे प्रकार से लें तो इस उत्पाद-व्यय में उत्पादवाली जो पर्याय है, वह उत्पाद का क्षण है, उस क्षण में उस समय की स्थिति है, इसलिए उत्पन्न होती है। आहाहा! और वह उत्पाद-व्यय की पर्याय निर्मल है, ध्रुव कायम है, उसमें भाव नाम की शक्ति है, भाव... भाव नाम की एक शक्ति है। पहले आ गयी है। भाव, अभाव, भावअभाव, अभावभाव, भावभाव, अभावअभाव।

भावशक्ति का वह रूप है कि वर्तमान निर्मल पर्याय विद्यमान होती ही है। आहाहा! वह गुण का कारण है। ऐसी बात है। भाव आ गया न? छठवाँ बोल। भाव, अभाव। भाव नाम की शक्ति है, जिसके कारण से प्रत्येक गुण की पर्याय में निर्मलरूप से उत्पन्न रहना,

यह भाव की शक्ति का कार्य है। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार का अभाव होता है, इसलिए भावशक्ति निर्मल होती है—ऐसा भी नहीं है। समझ में आया? इस भावशक्ति के कारण से वर्तमान निर्मल अवस्था की अस्ति होती है। प्रत्येक गुण की, भावशक्ति के कारण से और इस गुण में भावशक्ति का रूप होने के कारण वर्तमान निर्मल अवस्था की अस्ति होती है, वह उत्पाद-व्ययवाली क्षणिक पर्याय है। आहाहा! अब, इसमें क्या समझना? वह कुछ करने का हो, व्रत करो, अपवास करो, यात्रा करो, भक्ति करो, दो-पाँच लाख के दान करो... दस लाख क्या, पूरे करोड़ दे दे न, वहाँ धर्म कहाँ था? यह तो पहले सम्प्रदान आ गया। सम्प्रदान कल आ गया न? अपने में अपनी पर्याय को दाता देता है और लेनेवाला भी आत्मा और दाता भी आत्मा। आहाहा! यह सम्प्रदान नाम की शक्ति में ऐसा कार्य है।

निर्मल पर्याय दाता और निर्मल पर्याय पात्र। एक समय में पात्र और दाता, यह पर्याय है। आहाहा! पर को दान-फान देना, वह क्रिया आत्मा में है ही नहीं। और दान में शुभराग होता है, वह भी आत्मा में नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! शुभभाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे। कहते हैं कि वह शुभभाव और बन्धन तेरी वस्तु में है ही नहीं न। आहाहा! ऐसी तेरी शक्ति नहीं कि तीर्थंकरगोत्र का कारण ऐसा भाव उत्पन्न करे। यह गजब बात है! तेरी कोई शक्ति और गुण और तेरी निर्मल उत्पाद-व्ययवाली पर्याय ऐसी कोई है नहीं कि जो शुभ को उत्पन्न करे। आहाहा! तो तीर्थंकरगोत्र बँधे, उसमें प्रसन्न होना, (यह तो कहीं रह गया)। आहाहा! समझ में आया?

पाण्डव। शत्रुंजय, पाँच पाण्डव भावलिंगी वीतरागी सन्त थे। उन्होंने ध्यान लगा दिया था और तीन तो अन्तर के ध्यान के कारण से केवलज्ञान पाकर मुक्ति को प्राप्त हुए। यह शत्रुंजय। तथा दो—सहदेव और नकुल, है भावलिंगी मुनि सन्त है। सहोदर बड़े भाई और सन्त साधर्मी, उनका विकल्प आया। आहा! लोहे के मुकुट, लोहे के कड़े। ओहोहो! यह सुकोमल शरीर, सन्त को कैसे होगा? ऐसा विकल्प आया। वह विकल्प तो शुभ है। समझ में आया? उस शुभ में केवलज्ञान अटक गया।

सर्वार्थसिद्धि में तैतीस सागर में जाना पड़ा। वहाँ से मनुष्य होकर तुरन्त मोक्ष नहीं जायेंगे। अभी आठ वर्ष बाद केवलज्ञान होगा। आहाहा! उस समय कहाँ होंगे, इसकी

खबर नहीं परन्तु आठ वर्ष पहले तो होगा ही नहीं। ऐसे विकल्प में यह बन्ध पड़ गया। समझ में आया ? यह शुभ विकल्प। सन्तों को कैसे होगा ? शरीर सुन्दर, राजकुमार, भीम जैसे राजकुमार, आहाहा! ... खड़े हैं। है न यहाँ ? प्रवचन मण्डप में है। ... भाई को कैसे होगा ? आहाहा! ऐसा विकल्प आया, वह कोई शक्ति का कार्य नहीं। समझ में आया ? वह तो अध्धर से उत्पन्न हुआ। आहाहा! ज्ञानी उस राग को अपने में खतौनी नहीं करते। परन्तु फल ऐसा आ गया, बन्धन हो गया। उस बन्धन और राग को ज्ञानी अपने में खतौनी नहीं करते। वह तो निर्मल पर्याय और निर्मल गुण को अपने में खतौनी करते हैं। समझ में आया ? कहो, सेठ! सागर में यह कभी सुना नहीं। तुम तो बड़े सेठ हो। ऐसी बात भाग्यशाली को कान में पड़ती है। आहाहा! भगवान का प्रवाह है। भगवान के श्रीमुख से निकला हुआ यह प्रवाह है। आहाहा!

उत्पाद-व्यय से आलिंगित... पर्याय, पर्याय से स्पर्शित, ऐसा। गुण को स्पर्शित नहीं। आहाहा! **उत्पाद-व्यय से आलिंगित भाव**... अर्थात् वर्तमान पर्याय। **अपाय (हानि, नाश) होने से हानि को प्राप्त न होनेवाले**... ध्रुव है तो अन्दर दूसरी पर्याय तैयार है। आहाहा! समझ में आया ? पर्याय गयी, इसलिए हानि हो गयी, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! ध्रुव उपादान है तो क्षणिक उपादान की दूसरी निर्मल पर्याय होगी, होगी और होगी ही। वह भावशक्ति के कारण से और अपादान—क्षणिक उपादान के कारण से। समझ में आया ? वह निर्मल पर्याय गयी, नष्ट हुई, तो दूसरी निर्मल पर्याय की विद्यमानता प्रगट होगी। अभाव में अभाव रहेगा, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी क्या बात है ? बाबूभाई! आहाहा! निश्चय है, निश्चय है—ऐसा करके निकाल डाला। निश्चय है अर्थात् सच्चा है, ऐस कह। यह सत्य है। व्यवहार से निश्चय में कभी नहीं होता। निमित्त से उपादान में कार्य नहीं होता और क्रमबद्धपर्याय अपने काल में होती है, उसमें फेरफार नहीं होता। समझ में आया ?

हानि को प्राप्त न होनेवाले ध्रुवत्वमयी... कायम रहनेवाली अपादानशक्ति है। आहाहा! दूसरा ऐसा कहना है कि केवलज्ञान की पर्याय है, वह तो एक समय की है तो उस पर्याय को आलिंगित है। एक समय की पर्याय का तो अभाव होगा। अभाव होने पर भी ध्रुवत्व है तो दूसरी केवलज्ञान की पर्याय विद्यमान उत्पन्न होगी, होगी और होगी ही।

अभाव हुआ तो व्यय हो गया और अब उत्पाद नहीं, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

क्षयोपशम समकित में से क्षायिक समकित होता है, क्षयोपशम समकित से क्षायिक, तो वह कहीं भगवान के समीप था, इसलिए हुआ-ऐसा नहीं है। परन्तु उसकी ध्रुव शक्ति में ऐसी ताकत पड़ी है कि क्षयोपशम पर्याय ज्ञान की थी, उसका व्यय हुआ तो क्षायिक का उत्पाद हुआ, ऐसी पर्याय उत्पन्न होती है। भगवान के समीप है, इसलिए क्षायिक समकित उत्पन्न हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? क्षयोपशम का व्यय होता है तो ध्रुव पड़ा है, उसके आश्रय से, उसमें भाव नाम का एक गुण है तो वर्तमान विद्यमान अवस्था बिना वह नहीं रहता। आहाहा! नयी अवस्था विद्यमान निर्मल उत्पन्न होगी, होगी और होगी ही। ऐसा अपादानशक्ति का गुण है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ४१, शक्ति-४६ मंगलवार, भाद्रशुक्ल ८, दिनांक २०-०९-१९७७

भाव्यमानभावाधारत्वमयी अधिकरणशक्तिः।

भाव्यमान (अर्थात् भावने में आते हुए) भाव के–आधारत्वमयी अधिकरणशक्ति।४६।

समयसार, गुण का अधिकार चलता है। गुण कहो या शक्ति कहो। आत्मपदार्थ द्रव्यरूप से एक है परन्तु गुणरूप से उसमें अनन्त गुण है। उस गुण में एक आधार नाम की शक्ति है। आज अब वह लेनी है। ४६। अनन्त शक्तियाँ हैं, उसमें जब द्रव्यस्वभाव का आश्रय लेते हैं तो ज्ञान की पर्याय—सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होता है। उसके साथ अनन्त शक्ति की पर्याय उत्पन्न होती है। उछलती है, ऐसा पाठ है। पाताल में पानी होता है न? पाताल में। ऊपर के पत्थर का पड टूट जाए तो अन्दर से पानी की सीर निकलती है। अन्दर पानी एकदम भरा है तो ऊपर का पड टूटे (तो पानी सीर निकले)। यह बना था। बोटाद के पास। क्या नाम? भूल गये। बोटाद जाते हुए रास्ते में आता है। उस गाँव में कुँआ खोदा परन्तु पानी ही नहीं निकला। बहुत खोदा, पश्चात् पत्थर का एक पड रह गया। किसी ने बड़ा पत्थर अन्दर डाला ऊपर से। पत्थर टूट गया। कौन सा गाँव? नाम भूल गये। बोटाद के पास है। उस रास्ते से निकले हैं। एक शिला रह गयी। उसमें जब बड़ा पत्थर डाला तो एकदम पानी निकला।

इसी प्रकार भगवान आत्मा... आहाहा! राग की एकताबुद्धि है, तब तक पानी नहीं निकलता। पाताल में पानी है। अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति पड़ी है। आहाहा! राग की एकता तोड़कर अपने शुद्ध स्वभाव का अनुभव करे, तब पर्याय में पाताल में अन्दर द्रव्य की शक्ति है, वह बाहर आती है। परिणतिरूप से, हों! शक्ति तो शक्ति है। आहाहा!

संवर अधिकार में तो ऐसा लिया है, संवर अधिकार। यह याद आया। जो आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसमें जो जाननक्रिया होती है, पर्याय में जाननक्रिया (होती है), स्व को जानने की जाननक्रिया, उस जाननक्रिया के आधार से आत्मा है। यह शक्ति का वर्णन

सूक्ष्म है, यह थोड़ा दूसरे प्रकार से है। आत्मा में अनन्त शक्ति का पिण्ड पड़ा है। आहाहा! उसका जो ज्ञान होता है, स्वसन्मुख होकर ज्ञान की पर्याय प्रगट होती है तो उस जाननक्रिया के आधार से आत्मा ज्ञात होता है। संवर अधिकार की बात है। संवर... संवर। संवर कैसे होता है? धर्म की पर्याय संवर कैसे होती है?

उपयोग में उपयोग है। आहाहा! यह संवर की गाथा है। उपयोग में उपयोग है। इसका अर्थ क्या? कि अपना भगवान जो उपयोग जो त्रिकाली शुद्धस्वरूप है, वह उपयोग में उपयोग है। वर्तमान जाननक्रिया का स्वसन्मुख का उपयोग हुआ, उसमें आत्मा ज्ञात हुआ, इसलिए उपयोग में उपयोग है। जाननक्रिया के भाव में आत्मा ज्ञात होता है। आहाहा! संवर अधिकार बहुत चला है। वस्तु तो है, अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं। गुणरूप से स्वभावरूप से, ध्रुवरूप से नित्यरूप से, सत् के सत्त्वरूप से, कसरूप से, सत् का कस, माल है। परन्तु उसका ज्ञान कब होता है? आहाहा! संवर किस प्रकार होता है? धर्म की शुरुआत। राग से भिन्न करके अपनी जाननक्रियारूपी परिणति—पर्याय, उस उपयोग में उपयोग आता है। जाननक्रिया में आत्मा ज्ञात होता है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है।

यहाँ अधिकरणशक्ति लेंगे। उस अधिकरण का आश्रय आत्मा है। इस शक्ति का आश्रय—आधार आत्मा है। आहाहा! और वहाँ ऐसा लेना है, जब राग से भिन्न भेदज्ञान हुआ, अपना शक्तिवन्त परमात्मा का अन्तर में स्वसन्मुख होकर उपयोग में जाननेक्रिया हुई, वर्तमान उपयोग में, हों! उस जाननक्रिया के आधार से उपयोग अर्थात् आत्मा है। क्योंकि जाननक्रिया के आधार से जानने में आया है। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

यह और अभी याद आया। वहाँ दूसरा लिया है। समझ में आया? वहाँ तो अभी वाँचन करते हुए ऐसा विचार आया था। आता है न? कर्ता, करण और अधिकरण। प्रवचनसार। भाई! तीन बोल आते हैं। १२६ गाथा में कर्ता, करण, कर्म का फल, वह अलग चीज़। वहाँ तो ऐसा लिया है, बहुत सूक्ष्म बात है कि जो अपना आत्मा जो शुद्ध चैतन्यघन है, उसके गुण और पर्याय के आधार से द्रव्य सिद्ध होता है। गुण और पर्याय, निर्मल हों! उनके आधार से द्रव्य सिद्ध होता है और द्रव्य के आधार से गुण-पर्याय सिद्ध होते हैं। आहाहा! समझ में आया?

द्रव्य में अधिकरण नाम की शक्ति पड़ी है तो उस द्रव्य के आधार से गुण–पर्याय प्रगट होते हैं। आहाहा! और गुण–पर्याय के आधार से द्रव्य प्रगट होता है। गुण–पर्याय के आधार से द्रव्य ख्याल में आता है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! तत्त्वज्ञान सूक्ष्म है। वर्तमान में सब फेरफार हो गया। आहा! यह तो ऐसा प्रभु है न! कहते हैं कि द्रव्य शक्तिवान है, शक्ति गुण है और पर्याय निर्मल। वहाँ तो साधारण बात ली है। जो गुण त्रिकाली है, वह अधिकरण आदि शक्ति कही न? वह गुण और गुण का परिणमन, उस परिणमन में तो वहाँ निर्मल और अनिर्मल दोनों लिये हैं। भाई! जरा शान्ति से समझने जैसी वस्तु है। क्योंकि वहाँ तो विकारी पर्याय के आधार से द्रव्य है, ऐसा लेना है। क्योंकि उससे सिद्ध होता है। यह विकार अवस्था है, वह किसकी? द्रव्य की। तो विकारी पर्याय के आधार से द्रव्य की सिद्धि होती है, साबित होता है। आहाहा! और द्रव्य के आधार से गुण–पर्याय साबित होते हैं। वहाँ तो विकारी पर्याय द्रव्य के आधार से साबित होती है, ऐसा कहा है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा अनन्त गुण और अनन्त पर्याय वर्तमान एक समय की एक–एक गुण की पर्याय ऐसी अनन्त पर्यायें। उस पर्याय और गुण के आधार से द्रव्य की सिद्धि—साबिती होती है। और द्रव्य के आधार से गुण तथा पर्याय साबित होते हैं। वहाँ तो मलिन पर्याय का लक्षण लिया है। पंचास्तिकाय में लिया न? उत्पाद, व्यय, ध्रुव। मलिन पर्याय है तो भी वह द्रव्य का लक्षण है। ऐसे ज्ञान लक्षण आत्मा कहा, वह तो स्वभाव का भान कराने को, परन्तु पर्याय में विकृत अवस्था है, वह भी उसकी है। उस लक्ष्य से यह आत्मा है—ऐसा सिद्ध होता है। इस कारण से विकृत अवस्था को भी आत्मा का उत्पाद लक्षण बनाकर (द्रव्य उसके आधार से ज्ञात होता है, ऐसा सिद्ध किया है)। अरे! ऐसी बातें। विकारी पर्याय का लक्षण बनाकर यह द्रव्य है, ऐसा सिद्ध करते हैं। और संवर अधिकार में तो जाननक्रिया में निर्मल परिणति है, उसके आधार से आत्मा ज्ञात होता है तो पर्याय के आधार से द्रव्य है। द्रव्य का आधार पर्याय है। आहाहा! इसमें कहाँ.. ? पोपटभाई! इसमें कहीं समझने की निवृत्ति नहीं मिलती। आहाहा! अरे! भाई! तू क्यों भटकता है, इसकी सिद्धि करते हैं। आहाहा!

प्रवचनसार की दसवीं गाथा में तो यह लिया है न? अशुद्ध परिणाम के आश्रय से

भी द्रव्य है। भाई! दसवीं गाथा है। बात बहुत सब हो गयी है। विकारी पर्याय का आश्रय भी द्रव्य है। क्योंकि द्रव्य है तो द्रव्य के आश्रय से हुई है, इसका अर्थ द्रव्य में हुई है तो द्रव्य के आश्रय से हुई, ऐसा कहने में आया है। आहाहा!

यहाँ तीसरी रीति है। संवर, गुण-पर्याय आधार और द्रव्य आधेय। द्रव्य आधेय और गुण-पर्याय आधार। यह तो ज्ञान कराने के लिये बात की। यहाँ जो आधार है, वह आत्मा में एक आधार नाम की शक्ति है। आहाहा! समझ में आया? है?

भाव्यमान... अपने में भाने में आनेवाले। भाने में आनेवाले और भाव जो निर्मल पर्याय होती है, सम्यग्दर्शन की, सम्यग्ज्ञान की, सम्यक्चारित्र की, आनन्द की ऐसे जो भाने में आते हैं भाव, वह निर्मल पर्याय, उस भाव के आधारमयी। निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो भावमयी पर्याय, उसका आधार। आधारत्वमयी... आधारमयी। आधारवाली, ऐसा भी नहीं। आहाहा! **आधारत्वमयी अधिकरणशक्ति।** क्या कहते हैं? सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट हुई, यह भाव लिया। भाव्यमान भाव। भानेलायक भाव। वह भाव सम्यग्दर्शन की पर्याय में... आहाहा! **भाव के आधारत्वमयी...** इस भाव का आधार कौन? अन्दर अधिकरणशक्ति है, उस भाव के आधार से सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न हुई है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, बापू! यह शक्ति का वर्णन।

सम्यग्दर्शन की पर्याय, वह भाव्यमान भाव। भाव्यमान भाव। सम्यक्चारित्र की पर्याय भाव्यमान भाव। वर्तमान अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय भाव्यमान भाव। यह तो तुम्हारा संस्कृत है। इसके **आधारत्वमयी...** इस सम्यग्दर्शन की पर्याय के आधारत्वमयी अधिकरणशक्ति है। उसके आधार से सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न हुई है। यह अभी बड़ा झगड़ा है, व्यवहार से निश्चय होता है। अरे! भाई! प्रभु! सुन तो सही। तूने तत्त्व सुना ही नहीं। व्यवहार की तो बात भी यहाँ नहीं है। यहाँ तो व्यवहार का लक्ष्य छोड़कर द्रव्य का लक्ष्य किया तब जो सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई, उसके आधारमयी शक्ति है, उससे हुई है। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! समझ में आये ऐसा है। भाषा तो सादी है। भाव तो बहुत ऊँचे भरे हुए हैं शक्तियों में। आहाहा! गजब है।

भाव्यमान... वर्तमान सम्यग्ज्ञान की मति-श्रुत आदि की पर्याय, वह भाव्यमान भाव है। वह मति-श्रुतज्ञान की सम्यक् पर्याय, वह भाव्यमान भाव है। उसका आधार

ज्ञानगुण में अधिकरणशक्ति का स्वरूप है, इस कारण से भाव्यमान भाव का आधार ज्ञान में अधिकरण नाम का रूप है, वह उसका आधार है। ऐसी बात। शास्त्र के आधार से ज्ञानपर्याय उत्पन्न हुई है, ऐसा नहीं है। सुनने से उत्पन्न हुआ, वह ज्ञान नहीं। आहाहा! ज्ञान की सम्यक् पर्याय है, उस भाव्यमान भाव का आधार ज्ञानगुण में अधिकरण नाम का स्वरूप है, ज्ञान में अधिकरण नाम का एक भाव है, अधिकरणशक्ति भिन्न है। समझ में आया? परन्तु ज्ञानगुण में अधिकरण नाम का एक स्वरूप है। अधिकरणशक्ति भिन्न है परन्तु अधिकरणशक्ति का ज्ञानगुण में भाव है। उस भाव के कारण से भाव्यमान पर्याय उसके आधार से उत्पन्न होती है। आहाहा!

यहाँ तो यह कहना है कि सम्यग्ज्ञान की पर्याय दर्शन के आधार से उत्पन्न (हुई है, ऐसा नहीं है)। अन्दर सम्यक् श्रद्धा है तो श्रद्धा में भी अधिकरण नाम का स्वरूप है। उस सम्यग्दर्शन की पर्याय में, श्रद्धा में अधिकरण का रूप है, उससे उत्पन्न होती है। परन्तु सम्यग्दर्शन की पर्याय, सम्यग्ज्ञानगुण में अधिकरण का रूप है तो उसके कारण से सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? बहुत भण्डार भरा है। आहाहा! इतने शब्दों में तो... तुम तो संस्कृत के जाननेवाले हो। यह हमारे बड़े प्रोफेसर रहे।

भगवान आत्मा में श्रद्धागुण में श्रद्धाशक्ति त्रिकाल है। इसमें ४७ में नहीं आयी, परन्तु सुखशक्ति में सम्यग्दर्शन और चारित्र समाहित कर दिये हैं। सुखशक्ति पहले आयी न? उस सुखशक्ति में सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र समाहित कर दिये हैं। तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शन की जो पर्याय उत्पन्न हुई, उसका आधार कौन? किसके आधार से उत्पन्न हुई? कि श्रद्धागुण में अधिकरण नाम का स्वरूप है, उसके आधार से सम्यक् पर्याय उत्पन्न हुई। आहाहा! गजब बात है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा से भी सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न नहीं होती, ऐसा कहते हैं। नवतत्त्व की भेदरूप श्रद्धा से निश्चय सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन की पर्याय, श्रद्धागुण में अधिकरण नाम का स्वरूप है, इस कारण से सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! आचार्यों ने गजब काम किया है। दिगम्बर मुनियों ने तो जगत को केवलज्ञान बताया है। आहाहा! समझ में आया? यह अतिशयोक्ति नहीं है, हों! यह तो वस्तु का स्वरूप है।

भगवान! तुझमें तो ज्ञान, आनन्द आदि अनन्त लक्ष्मी पड़ी है। जो सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है, वह किस कारण से? उसका आधार कौन? व्यवहाररत्नत्रय आधार है? देव-गुरु-शास्त्र आधार है? आहाहा! गजब बात प्रभु तेरी! यह अभी बड़ी गड़बड़।

अब चारित्रगुण लेते हैं। आत्मा में वीतरागी पर्याय, आस्रवरहित संवर की वीतरागी पर्याय उत्पन्न होती है, उसमें कारण कौन? व्यवहार पंच महाव्रत के परिणाम सराग, वे कारण हैं? आहाहा! वह वीतरागी चारित्रपर्याय जो मोक्ष का कारण है, वह चारित्र नाम का अन्दर गुण है, उसमें यह अधिकरण नाम का स्वरूप है, इस स्वरूप के आधार से चारित्र की पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! गजब काम किया है न! आहाहा! शक्तियों का वर्णन इस समय अच्छा आया है। एक-एक शब्द में बात में अन्तर है, हों! आहाहा!

वीतरागी दशा के साथ आनन्द है, वह बाद में। परन्तु वीतरागी चारित्रपर्याय, जो मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, उस चारित्र की वीतरागी पर्याय का आधार कौन? अन्दर चारित्रगुण त्रिकाली शक्ति है, उसमें एक अधिकरण नाम का स्वरूप है। अधिकरणशक्ति उसमें नहीं। उस स्वरूप के कारण से चारित्र की पर्याय उसके आधार से उत्पन्न होती है। आहाहा! व्यवहार क्रियाकाण्ड से, सराग से उत्पन्न होती है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! गजब काम किया, प्रभु! चारित्रदशा में निरपेक्षरूप से... आहाहा! अरे! यह पल कैसे गया? इस पल में तो पल्योपम गये। पल्य में अनन्त काल गया। आहाहा! प्रभु! इस दुःख को मिटाने का उपाय तो यह एक है।

जिसे वीतरागी पर्याय—मोक्ष का मार्ग प्रगट करना हो, उसे आधार नाम की अन्दर शक्ति है, उसके आधार से उत्पन्न होगी। आहाहा! इसका अर्थ (यह कि) उसे द्रव्य पर दृष्टि देना चाहिए। यह द्रव्यदृष्टि। आहाहा! समझ में आया? वीतरागमार्ग प्रभु! बहुत अलौकिक है। जिसके फल भी अलौकिक हैं। अनन्त आनन्द और अनन्त केवलज्ञान प्रगट हो और सादि-अनन्त रहे। आहाहा! सिद्धपर्याय उत्पन्न हुई, वह सादि-अनन्त है। अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव और भोग। आहाहा! उसका कारण जो मोक्ष का मार्ग, वह कैसा होगा? भाई! इस कारण का आधार भी अन्दर शक्ति है, उसके आधार से होता है। आहाहा! उस शक्ति का कितना माहात्म्य! और वह शक्ति जिसके आश्रय से है, उस द्रव्य का माहात्म्य तो अलौकिक है!! समझ में आया? आहाहा!

भगवान! तू अनन्त लक्ष्मी का भण्डार है। आहाहा! यह गोदाम नहीं होते? मुम्बई में एकबार गोदाम देखा था। केसर... केसर। केसर होती है न? केसर के डिब्बे। केसर के डिब्बे होते हैं न? केसर लेने गये। पालेज दुकान से मुम्बई माल लेने गये थे। यह तो छोटी उम्र की बात है। १७-१८-१९-२० वर्ष की। पूरा गोदाम केसर के डिब्बों से भरा हुआ। विशाल गोदाम। करोड़पति व्यक्ति। केसर के डिब्बे की थप्पियाँ। और ग्राहक भी ऐसे असल आवे २५-२५, १००-१०० ले जाए। ऐसे केसर के डिब्बे।

इसी प्रकार भगवान वह गोदाम है, अनन्त गुण का गोदाम भगवान है। वह आत्मा भण्डार अलग प्रकार है। जिसमें अधिकरण नाम की शक्ति गुणरूप पड़ी है। आहाहा! वर्तमान वीतरागी धर्मदशा, सम्यग्दर्शन की, सम्यग्ज्ञान की, सम्यक्‌चारित्र की वह अन्तर अधिकरण नाम की शक्ति के आधार से उत्पन्न होती है। आहाहा! और वह अधिकरणशक्ति रहती है द्रव्य के आश्रय से। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश। लोगों को ऐसा लगे। निवृत्ति नहीं और पूरे दिन जिन्दगी ऐसी निकाली। उपदेशक ऐसे मिले। समझ में आया? ऐई! आहाहा! 'जहलो जोगीने मागी मकवाणी' हमारे गुजराती में कहते हैं। 'जहलो जोगी' अर्थात् उसे कोई स्त्री नहीं देता। और मकवाणा की कोई लेता नहीं। ऐसी खोटवाली बाई थी। दोनों का हो गया मिलाप। ऐसे अज्ञानी को राग की रुचि और राग से धर्म होता है, ऐसे उपदेशक मिले। मेल हो गया। आहाहा! दोनों का मेल हो गया। आहाहा! भगवान! यह तो वीतराग मार्ग है, प्रभु! आहाहा! अशुभराग की बात तो क्या करना, वह तो महापाप, यहाँ शुभराग को भी अनुभवी तो पाप कहते हैं। आहाहा! पाप से आत्मा की निर्मल पर्याय— मोक्षमार्ग उत्पन्न हो, प्रभु! यह मिथ्यात्व की बड़ी शल्य है।

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं, **भाव्यमान...** अपने को भाने में आने पर... है? **(भावने में आते हुए) भाव...** वर्तमान में भाने में आता भाव। वीतरागी सम्यग्दर्शन, ज्ञान और आनन्द, वह भाव। उस **भाव के-आधारत्वमयी...** आहाहा! उसका आधार... आहाहा! आधारत्वमयी शक्ति है। आधारत्वमयी कहा। द्रव्य के साथ वह शक्ति तन्मय है। आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार अपनी आनन्द की पर्याय प्रगट होती है, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद, आस्वाद... सवेरे आया था न? सवेरे आया था। धर्मीजीव अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद को करनेवाला है। आस्वादक। आया था न सवेरे? आहाहा!

सम्यग्दृष्टि—धर्मी उसे कहते हैं कि अपने आनन्द के स्वाद को करनेवाला हो। आहाहा! प्रभु! तेरी बलिहारी है नाथ! उस आनन्द के स्वाद को करनेवाला जीव, उस आनन्द के स्वाद का आधार कौन? राग की मन्दता, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति के आधार से उत्पन्न होता है? आहाहा! उसमें अधिकारण नाम की शक्ति है तो अनन्त गुण का आधार अधिकरणशक्ति है। आहाहा! और अन्दर एक-एक गुण में अधिकरण का रूप है, उस गुण का आधार है। और पर्याय निर्मल होती है, वह भी उस गुण के आधार से उत्पन्न होती है। आहाहा!

मुमुक्षु : श्रद्धागुण में भी रूप पड़ा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : रूप पड़ा है। कहा न? रूप पड़ा है तो श्रद्धागुण के रूप से उत्पन्न होता है।

मुमुक्षु : इसी प्रकार से ज्ञानगुण में?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसी प्रकार से ज्ञानगुण में। पहले कह गये, सब कह गये। सब बात आ गयी। ज्ञान में भी ऐसा अधिकरण नाम का स्वरूप पड़ा है, उसके आधार से सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होता है। आहाहा! केवलज्ञान भी उत्पन्न होता है, किस प्रकार? पूर्व में चार ज्ञान थे, उनका व्यय हुआ, इस कारण केवलज्ञान उत्पन्न हुआ? कि, नहीं। इस ज्ञानगुण में तो अधिकरण नाम का स्वरूप है, इस कारण से केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, वह भाव्यमान भाव। भाव्यमान भाव। भाने में आया, ऐसा भाव। आहाहा! वीतरागी कथा तो देखो! आहाहा! अरे! इसकी मजाक करते हैं, हों! अरे! प्रभु! तू रहने दे, नाथ! तू भगवानस्वरूप है न, प्रभु! आहाहा! तेरी विकार की दशा के आधार से गुण उत्पन्न हों, तो तुझे गुण और गुण के स्वरूप की शक्ति की प्रतीति नहीं है। समझ में आया? आहाहा! जिसने व्यवहाररत्नत्रय के राग से निश्चयरत्नत्रय होगा, ऐसा माननेवाले को द्रव्य और गुण की श्रद्धा का विश्वास नहीं। बराबर है? लॉजिक से तो (कहते हैं)। आहाहा! न्याय से-लॉजिक से तो बात है। तीन लोक के नाथ का मार्ग निरावयम-न्याय से सिद्ध है। नि-धातु। नि अर्थात् ज्ञान को अन्तर में ले जाना। आहाहा! इसका नाम न्याय कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! धन्य भाग्य! वीतराग की वाणी आयी। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

आज तो बहिन की पुस्तक पढ़कर शान्तिभाई ऐसे प्रसन्न हो गये। शान्तिभाई कहे, यह जैन की गीता होगी। बात तो ऐसी आयी है। यह 'बहिनश्री के वचनामृत' माल-माल आया है। जैन की गीता। अथवा जैन के गायन, वीतरागपने के गायन, उसे वीतराग कहते हैं। वीतराग के गीत, उसे गीता कहते हैं। गीता का अर्थ यह है। आत्मा के गुण के गायन करना, उसका नाम गीता है। आहाहा! भगवान आत्मा अनन्त गुण का गोदाम, सागर पड़ा है। उसके आधार से पर्याय उत्पन्न हो। वह गुण के गायन हैं। वह पर्याय के नहीं और राग के नहीं। आहाहा! राग के तो नहीं परन्तु पर्याय के भी नहीं। जिसमें निर्विकल्प गुण पड़े हैं, वीतरागी स्वभाव पड़े हैं, आहाहा! उसके आधार से पर्याय प्रगट होती है। प्रभु! तू दूसरे को आधार मानता है, यह वस्तु की स्थिति, तेरे गुण के स्वभाव का अनादर करती है। समझ में आया? व्यवहार करते-करते निश्चय होगा, यह तेरे गुण का, प्रभु! तू गुणी और गुण का अनादर करता है। तुझमें गुण है, निर्मल पर्याय अपने आधार से उत्पन्न हो, उस गुण का तू अनादर करता है। मीठालालभाई! आहाहा!

यहाँ शक्ति में तो कितना भरा है! अधिकरण। अनन्त गुण में अधिकरण का रूप है और अधिकरण के रूप में अनन्त गुण का स्वरूप है, रूप है। आहाहा! अधिकरण नाम की शक्ति है, उसमें अनन्त गुण का स्वरूप-रूप पड़ा है और अधिकरणशक्ति का स्वरूप-रूप अनन्त गुण में पड़ा है। आहाहा! महा समुद्र है। छोटाभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! लोगों को व्यवहार के रसियों को यह बात एकान्त लगती है। क्या करे? प्रभु! यह महासमुद्र पड़ा है न, प्रभु! जल की तरंग जल में से उत्पन्न होती है। शास्त्र में समुद्र का दृष्टान्त है न? ८३वीं गाथा। समुद्र में जो तरंग उठती है, वह वायु के कारण से नहीं। वायु आयी तो तरंग उठी, ऐसा नहीं है, समुद्र की पर्याय का स्वभाव ऐसा है तो अपने कारण से तरंग उठती है। और वह तरंग समाकर समुद्र में घुस जाती है। आहाहा! समझ में आया? कपड़े की जो ध्वजा है, वह हवा के कारण हिलती है, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसमें परिणमन करने की शक्ति है, उस क्रियावतीशक्ति के कारण से उसका परिणमन ऐसे-ऐसे होता है, हवा के कारण से नहीं। ऐसी बातें हैं। प्रत्यक्ष दिखाई दे और तुम इनकार करते हो। ऐसा कहते हैं।

एक पण्डित ऐसा कहते थे। आहा! (संवत्) २००९ के वर्ष। पानी में उष्णता

अग्नि से आती है। और आप कहते हो कि स्वयं से होती है। प्रत्यक्ष दिखता है। क्या प्रत्यक्ष दिखता है ? कहा। यह उष्ण नाम की शक्ति उसमें है, उसकी शीतल पर्याय है, वह बदलकर उष्ण होती है, वह उष्णगुण के कारण से—स्पर्शगुण के कारण से, उसमें उष्णता हुई है। अग्नि के कारण से पानी उष्ण हुआ, ऐसा तीन काल में नहीं है। यह बात। वे आये थे। ...ऐसा बोलते थे। दिखता है और ... है, उसे तुम इनकार करते हो। बापू! तुझे क्या दिखता है ? भाई! आहाहा!

३७२ गाथा में तो कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा, हम तो मिट्टी से घड़ा उत्पन्न होता है, ऐसा देखते हैं। कुम्हार से घड़ा उत्पन्न होता है, ऐसा हम तो देखते नहीं। आहाहा! क्योंकि घड़े की पर्याय की कर्ता तो मिट्टी है। मिट्टी में करण नाम की शक्ति है। आहाहा! मिट्टी में एक अधिकरण नाम की शक्ति है... आहाहा! उसके आधार से वह घड़े की पर्याय उत्पन्न होती है। कुम्हार के हाथ से घड़ा ऐसे टीपता है, इसलिए नहीं। आहाहा! द्रव्य की पर्याय की स्वतन्त्रता तो देखो! आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, अनन्त गुण में अधिकरण नाम का रूप है, प्रभुत्व नाम का रूप—गुण अन्दर में है। आहाहा! प्रभुत्व नाम की शक्ति है, वह आ गयी है। अखण्डरूप से शोभायमान, स्वतन्त्रता से शोभायमान। पहले आ गयी न ? पहले आ गयी। प्रभुत्वशक्ति। सातवीं। सातवीं है न ? सातवीं। जिसका प्रताप अखण्डित है, किसी से खण्डित नहीं किया जा सकता, ऐसी स्वतन्त्रता से शोभायमानपना जिसका लक्षण है, ऐसी प्रभुत्वशक्ति। सातवीं (शक्ति)। आहाहा! प्रभुत्वशक्ति में भी अधिकरणशक्ति का स्वरूप है। उस प्रभुत्वशक्ति के परिणाम अखण्डरूप से स्वतन्त्रपने शोभायमान पर्याय होती है। उस पर्याय को खण्ड करने की जगत में किसी की ताकत नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! कि कर्म का उदय हुआ तो इस प्रभुता की पर्याय में खण्ड पड़ गया, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा! प्रभुत्वशक्ति है, ईश्वर होने की शक्ति है, वह प्रभुता की शक्ति जो पड़ी है, उसकी पर्याय में प्रभुता प्रगट होती है, उसका आधार उस प्रभुत्वशक्ति में अधिकरण का स्वरूप है, उसके आधार से प्रभुता प्रगट होती है। आहाहा!

पामरपने में से प्रभुता नहीं आती, ऐसा कहते हैं। प्रभुत्व में से प्रभुता आती है। इसका अर्थ क्या किया ? कि प्रथम पर्याय हीन है, पामर है तो उसका व्यय होकर हुई, ऐसा

भी नहीं है। आहाहा! प्रभुत्व नाम की शक्ति प्रत्येक गुण में है। ज्ञान में प्रभुत्वशक्ति का रूप, दर्शन में रूप, अनन्त गुण में रूप। श्रद्धागुण में भी प्रभुत्व नाम का, अधिकरण स्वरूप-रूप है। आहाहा! और सम्यक्श्रद्धा में प्रभुत्व नाम की शक्ति का स्वरूप है। इस कारण से सम्यक् की पर्याय प्रभुत्व स्वरूप के कारण से उस प्रभुत्व की पर्याय की प्राप्ति होती है। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसा स्वरूप। आहाहा!

एक बार मोरबी गये थे न? एक दलीचन्दभाई है। नानालालभाई है, उनका मकान वहाँ है। क्या गाँव कहा? 'शनाळा'। मोरबी से शनाळा। व्याख्यान हो गया, पश्चात् सायंकाल आहार लेकर घूमते थे। वहाँ एक शक्ति का देवल था। देवीशक्ति, उसका मन्दिर था। हम घूमते थे, वहाँ गये तो एक बाबा बैठा था। वह कहे, इस शक्ति के बिना ईश्वर नहीं चलता। शक्ति के बिना ईश्वर भी नहीं चल सकता। मैंने कहा, परन्तु वह कौन सी शक्ति? इस शक्ति के बिना ईश्वर आत्मा रह नहीं सकता। यह शक्ति। वह कहे, दैवीशक्ति। दैवीशक्ति। ईश्वर को भी दैवीशक्ति की आवश्ययकता पड़ती है। वहाँ शक्ति का मन्दिर है। शनाळा, मोरबी के पास है। आहाहा!

इस प्रभु को शक्ति के बिना एक क्षण नहीं चलता। गुण बिना गुणी किस प्रकार रहे? शक्ति बिना शक्तिवान किस प्रकार रहे? और उसकी पर्याय भी शक्तिवान बिना कैसे रहे? आहाहा! ... इस स्वभाव से भरपूर भगवान, उसकी शरण में जा, उसका आश्रय ले। तुझे शान्ति होगी, सम्यग्दर्शन होगा, आनन्द होगा, चारित्र की पर्याय भी तेरे द्रव्य के आश्रय से होगी। लाख, करोड़ तेरे व्यवहारचारित्र कर, राग है और उसके कारण से चारित्र होता है। वीतरागचारित्र सराग क्रिया से होता है, ऐसा तीन काल में नहीं है। समझ में आया?

यहाँ तो वीतरागचारित्र जो उत्पन्न होता है... (वे लोग) ऐसा कहते हैं, छठवें गुणस्थान में सरागचारित्र, पश्चात् सातवें में उसके कारण से वीतरागचारित्र होता है। परन्तु अभी छठवें गुणस्थान में सरागचारित्र किसे कहना, इसकी तुझे खबर नहीं। उसे तो स्वरूप का आश्रय होकर अनुभव हुआ हो, अनुभव में विशेष लीनता हुई हो परन्तु वीतराग निर्विकल्पता सातवें हैं, ऐसी न हो, तब तक उस राग को व्यवहार कहते हैं, उसका अभाव होकर स्वरूप का उग्र आश्रय लेने से अन्दर शक्ति के आधार से वीतरागता (प्रगट) उत्पन्न होती है। राग का व्यय हुआ तो वीतरागता उत्पन्न हुई, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! लॉजिक

से—न्याय से तो बात है। प्रभु! तुझे तेरे न्याय की खबर नहीं। आहाहा! लो, प्रभुत्वशक्ति आयी।

इसी प्रकार जीवत्वशक्ति। पहली जीवत्वशक्ति। दूसरी गाथा से उठाया है न? **'जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो'** समयसार की दूसरी गाथा। वहाँ से जीवत्वशक्ति निकाली है। **'जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो'** जीव अपने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र में स्थित है। जीव में दर्शन, ज्ञान, चारित्र स्थित है, ऐसा नहीं लिया। जीव अपने दर्शन, ज्ञान, चारित्र में स्थित है। आहाहा! राग में स्थित था, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान में स्थित हुआ। आहाहा! समझ में आया? यह स्थित होने की शक्ति अन्दर में थी। आहाहा! अधिकरण नाम का, अन्दर आधार नाम का गुण है, स्वरूप है। आहाहा! उसके आधार से भगवान अपने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय में आता है, उसे जीव कहते हैं।

'पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं' और कर्म के निमित्त से उत्पन्न हुआ राग, वह तो कर्म है। वह कर्म नाम के प्रदेश के अंश में स्थित है, वह अनात्मा है। **'पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं'** उसे परसमय जान, अनात्मा जान, वह आत्मा नहीं। आहाहा! आत्मा के सम्यग्दर्शन के आश्रय बिना अथवा स्वभाव के आश्रय बिना अकेले व्यवहाररत्नत्रय के रागादि हैं, वह सब बन्ध के कारण हैं। उस बन्ध के कारण से अबन्ध शक्ति उत्पन्न हो, बन्ध से उत्पन्न हो, ऐसा है नहीं।

यह अधिकरणशक्ति अबन्धस्वरूप है। अधिकरणशक्ति पारिणामिकभाव से है। क्या कहा? अधिकरणशक्ति पारिणामिकभाव से सहज स्वभाव से है। उसके आश्रय से भाव्यमान भाव, वह उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव से है। उदयभाव नहीं। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा अनन्त गुण में अधिकरण का स्वरूप और अधिकरणशक्ति है। आहाहा! चैतन्य रत्नाकर पर्वत, उसमें भाव अर्थात् वर्तमान दशा, मोक्षमार्ग की दशा, जीवत्वशक्ति की दशा... जीवत्वशक्ति है त्रिकाली, परन्तु उसका कार्य क्या? ज्ञान, दर्शन, आनन्द और सत्ता ऐसे भावप्राणरूपी कार्य उसमें होता है। भावप्राण से आत्मा जीता है, वह जीवन है। शरीर से जीना, वह नहीं। लोग कहते हैं न? यहाँ का विरोध करते हैं, जीवो और जीने दो। कौन जिलावे? यह भगवान का वाक्य ही नहीं है। यह तो अंग्रेजी का वाक्य है, बाईबल का वाक्य है। महावीर का सन्देश, जीवो और जीने दो, ऐसा बोले। अरे रे! खबर

नहीं होती, प्रभु! यह जीवो और जीने दो, यह तो **'जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो'** यह जीवो। इस जीव से जीवन जिलाये और दूसरे का भी ऐसा जीवन बना दे। यह बना दे तो यह जीवन जीता है। राग से जीना और शरीर से जीना और भावेन्द्रिय अथवा भावप्राण अशुद्ध, भावप्राण अशुद्ध, उससे जीना, वह जीव का जीवन नहीं है। आहाहा! यह जड़ के दस प्राण, इनसे जीवन वह तो आत्मा का जीवन है ही नहीं। यह जीवो और जीने दो, यह भगवान की वाणी ही नहीं। उसकी भी आलोचना करते हैं। यह तो जीवो और जीने दो को अज्ञान कहते हैं। अरे! लाख बार अज्ञान, सुन न!

जीवत्व प्रभु, जीवत्व नाम की शक्ति अन्दर है, उसमें अधिकरण नाम का स्वरूप है तो वर्तमान में जीवन जो ज्ञान, दर्शन और आनन्द की पर्याय उत्पन्न हुई, उस जीवन से जीना, इसका नाम जीव है। वह जीवन जीवे, इसका नाम जीव है। राग और पुण्य-पाप से जीवे, वह जीव नहीं। आहाहा! अरे... अरे..! ऐसी बातें। बात बात में अन्तर। कहते हैं न ? 'आणंद कहे परमानन्दा, माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो न मिले और एक ताम्बियाना तेर।' लाखों में मिले ऐसे मनुष्य होते हैं न ? और एक ताम्बिया के तेर। ऐसा प्रभु कहते हैं, तुझे और मुझे बात-बात में अन्तर। तेरी उल्टी दृष्टि के कारण मिलान नहीं खाता, नाथ! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, जीवत्वशक्ति में भी अधिकरण का रूप है और चितिशक्ति, दृशिशक्ति, ज्ञानशक्ति में भी (अधिकरण का रूप है)। आहाहा! सर्वज्ञशक्ति में भी इस अधिकरण नाम का स्वरूप है। इसके आधार से केवलज्ञान उत्पन्न होता है, केवलज्ञान, मोक्ष के मार्ग की पर्याय थी, वह व्यय हुई और उससे उत्पन्न हुई है, ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब बात है। मोक्षमार्ग का व्यय हुआ और मोक्ष की पर्याय उत्पन्न हुई, ऐसा नहीं है। मोक्ष की पर्याय अन्दर अधिकरण स्वरूप के कारण से मोक्ष की पर्याय उत्पन्न हुई है। गजब बातें हैं। समझ में आया ? अन्दर में चितिशक्ति, दृशिशक्ति, सर्वज्ञशक्ति। सर्वज्ञशक्ति है, वह गुण है, उसमें अधिकरण नाम का स्वरूप है, उसके कारण से केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, वह भाव्यमान भाव। भानेवाले भाव का आधार सर्वज्ञशक्ति का अधिकरण स्वरूप है।

ऐसे सर्वदर्शि। सर्वज्ञ हुआ, इस कारण से सर्वदर्शि नहीं। आहाहा! सर्वदर्शिशक्ति अन्दर में पड़ी है, उसमें इस अधिकरण का स्वरूप है, इस कारण से सर्वदर्शिपना पर्याय

में प्रगट होता है। यह भाव्यमान भाव। समझ में आया? अभी तो हिन्दी चलता है, यह सेठ आये हैं, इसलिए। नहीं तो हम गुजराती में करते हैं, परन्तु यह जिनेश्वरदास बहुत दूर से आये हैं और पर्यूषण के दिन (चलते हैं)। आहाहा! गुजराती में जितना स्पष्ट आवे, वह हिन्दी में नहीं आता। भाषा खोजनी पड़े न! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि जो सर्वज्ञ, सर्वदर्शिपना प्रगट हुआ, उसका आधार कौन? वे ऐसा कहते हैं, व्रजनाराचसंहनन होवे तो केवलज्ञान उत्पन्न होता है। व्रजनाराचसंहनन का अभाव... अरे! सुन न प्रभु! व्रजनाराचसंहनन तो कहीं दूर रहा परन्तु पहले मोक्ष का मार्ग है, उसका व्यय होकर, उसके कारण से उत्पन्न हुआ, ऐसा भी नहीं है। अन्दर में सर्वज्ञ और सर्वदर्शिशक्ति पड़ी है, उसमें अधिकरण नाम का स्वरूप है, उसके कारण से सर्वज्ञ, सर्वदर्शिशक्ति में पड़ा है, वह वर्तमान प्रगट होता है। आहाहा! समझ में आया?

एक-एक पर्याय में षट्कारक है। यह अधिकरणशक्ति है, वह षट्कारक से उत्पन्न होती है। उसमें लिया है, भाई! याद आ गया। अध्यात्मपंचसंग्रह में। ज्ञानदर्पण १६६ श्लोक है। **किरिया करम सब सम्प्रदान आदिक को, 'किरिया'...** क्रियाशक्ति आयी न? भाई! क्रियाशक्ति पहले आयी थी। उसमें है, देखो! **कारकों के अनुसार होनेपनेरूप जो भाव उसमयी क्रियाशक्ति।** है न? ४०। कारकों के अनुसार, देखो! छह कारक अनुसार परिणमनपनेरूप जो भाव। वह शुद्ध... शुद्ध। इससे पहले (३९ में) **(कर्ता, कर्म आदि) कारकों के अनुसार जो क्रिया...** मलिन पर्याय, **उससे रहित भवनमात्रमयी भावशक्ति।** है। आहाहा! समझ में आया? वह यहाँ कहा, देखो!

किरिया करम सब सम्प्रदान आदिक को,... क्रियाशक्ति, कर्मशक्ति, सम्प्रदानशक्ति आदिक को। **परम आधार अधिकरण कहीजिये।** परम आधार अधिकरण कहते हैं। सबका परम आधार अधिकरणशक्ति है। आहाहा! **दरसन ज्ञान आदि वीरज अनन्त गुण, वाही के आधार यातैं वामें थिर हुजिये।** दर्शन, ज्ञान का आधार यह अधिकरणशक्ति है। आहाहा! यह बात तो श्वेताम्बर और स्थानकवासी में तो है नहीं, अन्यमत में तो है ही नहीं, परन्तु दिगम्बर में है, उसके अर्थ करने में सब गड़बड़ करते हैं। आहाहा! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर का कहा हुआ, सन्तों-वीतरागी मुनियों ने अन्दर रामबाण मारा है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, पहले कहा, क्रिया, कर्म भाव। **सब सम्प्रदान आदिक को, परम आधार अधिकरण कहीजिये, दरसन ज्ञान आदि वीरज अनन्त गुण, वाही के आधार यातैं वामें थिर हूजिये, याही की महतताई गाई सब ग्रंथनि में, 'याही की महताई गाई सब ग्रंथनि में, सदा उपादेय सुद्ध आतम गहीजिये।'** अधिकरणशक्ति का वर्णन है। अधिकरणशक्ति गुण है तो गुणी को उपादेय कर, तो शक्ति का परिणमन तुझे होगा। आहाहा! गुण का परिणमन भिन्न नहीं रहेगा। अनन्त शक्ति का समुदाय ऐसा द्रव्य... आहाहा! राग को हेय करके, स्वभाव को उपादेय करके जो उत्पन्न होता है, तो वीतरागता उत्पन्न होती है। इस अधिकरणशक्ति के कारण से, सबका आधार अधिकरण है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ४२, शक्ति-४७ बुधवार, भाद्रशुक्ल ९, दिनांक २१-०९-१९७७

समयसार शक्तियों का अधिकार है। शक्ति शब्द से (आशय) गुण है। आत्मा में अनन्त गुण है और आत्मा में अनन्त गुण होने पर भी एक-एक गुण का स्वरूप दूसरे गुण में है। जैसे कि स्वसंवेदन आत्मा का होता है, धर्मदशा, स्वसंवेदन नाम की एक शक्ति है न? बारहवीं प्रकाश नाम की शक्ति है। उस प्रकाशशक्ति का कार्य क्या? पर्याय में स्व—अपना, सं—प्रत्यक्ष वेदन होना। आहाहा! सम्यग्दर्शन के काल में अपने स्वभाव का आश्रय होने पर भी अपने में एक प्रकाश नाम का गुण है, इस कारण से स्वसंवेदन... आहाहा! अपने आनन्द का स्व, सं—प्रत्यक्ष वेदन, उसमें इस अधिकरण नाम की शक्ति का रूप है। आहाहा! कि जो स्वसंवेदन प्रत्यक्ष सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में होना, उसमें कोई पर का आधार नहीं है। व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प का उसमें आधार नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

शुद्ध चैतन्यस्वरूप में अनन्त शक्ति है, उसमें एक शक्ति ऐसी है कि स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होना। आहाहा! अपना आनन्द और अपनी ज्ञानपर्याय में प्रत्यक्ष होना। आहाहा! उसमें अधिकरणशक्ति का स्वरूप है। इस कारण से यह शक्ति पर के आधार बिना अपने स्वसंवेदनरूप से वेदन करती है, वह अपनी स्वयंसिद्ध दशा है। व्यवहाररत्नत्रय के कारण से स्वसंवेदन होता है, ऐसा नहीं है।

ऐसी बात है परन्तु लोगों ने गड़बड़ कर डाली। अभी यह जोर देते हैं कि चारित्र चाहिए, चारित्र चाहिए। ऐसा कहते हैं। परन्तु चारित्र किसे कहते हैं? चौथे गुणस्थान में भी सर्वगुणांश, वह समकित। क्या कहते हैं? जितनी शक्ति की संख्या है, उसका एक अंश चौथे में व्यक्त होता है। तो चारित्रगुण का भी एक अंश व्यक्त होता है। समझ में आया? स्वरूपाचरणचारित्र जो है, वह सम्यग्दर्शन में स्वरूपाचरणचारित्र का अंश प्रगट होता है। वह चारित्र का अंश वहाँ से शुरु होता है। वह चारित्र, जो पाँचवें और छठवें में कहते हैं, वह चारित्र नहीं। परन्तु सम्यग्दर्शन में जब ऐसा कहते हैं कि सर्वगुणांश, वह समकित। यह श्रीमद् का वाक्य है। अपने यहाँ रहस्यपूर्ण चिट्ठी में लें तो ज्ञानादि एकदेश सर्व की व्यक्तता प्रगट होना, यह चौथे गुणस्थान में होता है। आहाहा!

जितनी संख्या में गुण हैं, उतनी संख्या में वर्तमान पर्याय में व्यक्तरूप अंश प्रगट होता है। समझ में आया? जैसे श्रद्धा नाम का गुण है तो उसकी सम्यग्दर्शन की पर्याय व्यक्त होती है। सम्यग्ज्ञान का गुण जो है, उसमें सम्यग्ज्ञान की वर्तमान मति-श्रुत आदि की पर्याय व्यक्त होती है। ऐसे चारित्रगुण है तो उसमें स्वरूपाचरण के चारित्र का अंश भी साथ में प्रगट होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी स्थिति है, उसका पहले ज्ञान तो करे। ज्ञान किये बिना प्रयोग किस प्रकार करेगा? अन्तर्मुख होने का प्रयोग तो पहले यथार्थ ज्ञान हो, व्यवहारु (ज्ञान), समझ में आया? आहाहा! तो फिर अन्तर में अनन्त शक्ति से भरपूर भरा हुआ भगवान... आहाहा! अनन्त गुण से भरपूर, गुणी में अनन्त गुण का भरपूरपना भरा है। आहाहा! भरपूर समझते हो? हिन्दी आती है? पूरा। आहाहा! पूरा का पूरा।

भगवान अनन्त गुण से भरपूर भरा हुआ है। उसका जहाँ आश्रय लेते हैं तो उसमें से जितने भरपूर गुण हैं, उनका एक अंश तो व्यक्त चौथे गुणस्थान में प्रगट होता है। आहाहा! अनन्त गुण का एक अंश व्यक्त। अनन्त गुणों में सबका। आहाहा! कहा न? श्रद्धागुण ने जब द्रव्य को पकड़ा, अखण्ड ज्ञायकस्वरूप, जिसमें गुण और गुणी का भेद भी दृष्टि का विषय नहीं। यह शक्ति है और यह शक्तिवान है, ऐसा भेद भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन का ध्येय और विषय अभेद अखण्ड ज्ञायकभाव, वह इसका विषय और ध्येय है। उस ध्येय में एक श्रद्धा नाम की शक्ति पड़ी है तो ध्येय के लक्ष्य से वह श्रद्धा नाम की शक्ति का भी सम्यग्दर्शनरूपी पर्याय की व्यक्तता श्रद्धा में से होती है। आहाहा! अरे! ऐसी बातें। अब यह संयम लो, संयम लो, बस! आज अखबार में बहुत आया है। यह लोग संयम की ना करते हैं। परन्तु किसे संयम, चारित्र कहते हैं? अभी सम्यग्दर्शन क्या है, उसकी खबर बिना चारित्र आया कहाँ से? समझ में आया? और सम्यग्दर्शन में तो सर्व गुणांश प्रगट होता है। तो उसमें आनन्द की पर्याय व्यक्त होती है। वीर्य नाम का गुण है, उसमें भी अनन्त गुण की व्यक्त पर्याय की रचना करनेवाले वीर्य का अंश भी प्रगट होता है। आहाहा! मार्ग बहुत अलग, बापू! आहाहा! समझ में आया? इसमें जवाहरात में से कुछ हाथ आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! अरे! यह चीज़ बाहर आने पर लोगों को विरोध हो गया। बापू! सत्य तो यह है, भाई!

तेरी शक्ति अनन्त और वह शक्तिवान द्रव्य एक, उसके ऊपर दृष्टि देने से अनन्त

शक्ति में से व्यक्तता अंश अनन्त का प्रगट होता है। चौथे गुणस्थान में प्रगट होता है। आहाहा! अरे! अयोगपने की शक्ति है न? निष्क्रिय भी एक शक्ति है। उसका एक अंश भी चौथे गुणस्थान में निष्क्रियपना, अकम्पपने का अंश चौथे गुणस्थान में प्रगट होता है। आहाहा! शान्तिभाई! सूक्ष्म बात है, भाई! एक वस्तु द्रव्य, उसमें अनन्त शक्ति से पूरा भरपूर है। उसकी दृष्टि करने से वह छलकता है। पानी का घड़ा भरा हो, वह छलकता है। छलकता है, कहते हैं? उछलता है। आहाहा! वह यहाँ पहले आ गया है। पहली शक्ति में आ गया है कि ज्ञानमयीशक्ति की पर्याय प्रगट होने पर दूसरी अनन्त शक्तियाँ साथ में उछलती हैं। पहले आ गया है, देखो! पहले आया है।

आत्मद्रव्य को कारणभूत... पहली शक्ति, पहली शक्ति। आहाहा! **आत्मद्रव्य को कारणभूत...** है? **ऐसे चैतन्यमात्र भाव का धारण जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है, ऐसी जीवत्वशक्ति। (आत्मद्रव्य को कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्रभावरूपी भावप्राण का धारण करना जिसका लक्षण है, ऐसी जीवत्व नाम की शक्ति ज्ञानमात्र भाव में — आत्मा में उछलती है)।** समझ में आया? जैसे पानी होता है न? यह नल, नल। नल का पानी। नल खोले तो पानी की धारा होती है। नल का पानी। उसी प्रकार भगवान आत्मा... आहाहा! अनन्त गुण के भण्डार पर दृष्टि देने से, जैसे नल में से पानी झरता है, वैसे आनन्द और ज्ञान और शान्ति की पर्याय झरती है। आहाहा! भारी धर्म, बापू! धर्म बहुत अलौकिक वस्तु है। लोगों ने बाहर से चारित्र लो, चारित्र लो, परन्तु बापू! अभी चारित्र किसे कहना, प्रभु! तुझे (खबर नहीं)। तेरे आत्मा के हित की बात है, प्रभु! सम्यग्दर्शन बिना व्रत आदि अहितकर है, नुकसानकारी है। आहाहा! उसे लाभदायक मानता है, तो वह तो (नुकसानकारक है)।

स्वरूप की दृष्टि हो, तब उसमें चारित्र का अंश भी आता है। वीर्य का अंश आता है। स्वरूप की अनन्त गुण की रचना, वीर्य का कार्य, बल, बल आत्मा में बल नाम की एक शक्ति है, इस कारण से अनन्त गुण की स्वरूप की पर्याय की रचना होना, वह वीर्य का कार्य है और उस वीर्य के कार्य में अधिकरण नाम का रूप है। तो वह वीर्यशक्ति अपने स्वरूप की रचना करती है। उसका कोई आधार नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है परन्तु लोगों को... आहाहा!

उछलती है, आया न? उछलती है। पाठ में ऐसा है, हों! देखो! आहाहा! जीवत्वशक्ति **'अत एवास्य ज्ञानमात्रैकभावान्त:पातिन्योऽनन्ता: शक्तय: उत्प्लवन्ते।'** संस्कृत। संस्कृत में है। है? **'उत्प्लवन्ते'** समझ में आया? भगवान आत्मा... आहाहा! भगवानरूप से ही बुलाया है। उसमें अनन्त शक्ति का—गुण का भण्डार भरपूर भरा है। उसकी दृष्टि करने से सम्यग्ज्ञान की जो पर्याय उत्पन्न होती है,... यह अनेकान्त की चर्चा है। सम्यग्ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, वह शास्त्र से ज्ञान नहीं होता, अन्तर में से उछलकर आती है। उसके साथ अनन्त गुण की शक्ति एक समय में उछलती है अथवा प्रगट होती है। शान्तिभाई! ऐसा कभी कहीं सुना नहीं। आहाहा!

इसमें एक स्वसंवेदन नाम की प्रकाशशक्ति है। आहाहा! उसमें स्वसंवेदन में स्वप्रकाश का वेदन, अपना स्व का प्रत्यक्ष वेदन होना, उसका अंश प्रगट होता है। वह प्रगट होता है, उसमें कोई पर का आधार नहीं है। व्यवहाररत्नत्रय आदि, विकल्प का, निमित्त का आधार नहीं है। आहाहा! क्योंकि उस स्वसंवेदन प्रकाशशक्ति में अधिकरण नाम का, आधार नाम का स्वरूप—रूप है। इस कारण से प्रकाशशक्ति अपने से अपने कारण से वेदन करती है। व्यवहार के कारण से नहीं। आहाहा! समझ में आया?

इस प्रकार सम्यग्दर्शन होने पर, द्रव्य की दृष्टि होने पर अनन्त गुण की पर्याय उछलती है, उसमें चारित्र की पर्याय भी चौथे गुणस्थान में आंशिक प्रगट होती है। इस चारित्र की व्याख्या—स्वरूप में आचरण करना, वह चारित्र है। आहाहा! ऐसी बात। समझ में आया? सवेरे आया था। स्वरूपाचरण, नहीं? यहाँ शक्ति के वर्णन में अन्त में अधिकरणशक्ति अपने आ गयी। ४६वीं। आज थोड़ा अधिकरण लिया। प्रत्येक गुण में अपने आधार से अपनी निर्मल वीतरागी पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा!

चौदहवें गुणस्थान में जो अकम्पना प्रगट होता है, वह तो अकम्पपना अपनी शक्ति है। तो इसमें से अकम्पना पूर्ण उत्पन्न हुआ। परन्तु सम्यग्दर्शन के काल में भी अकम्पशक्ति का एक अंश—कम्पन न होना, ऐसी शक्ति की व्यक्तता होती है। आहाहा! अयोगपने का अंश शुरु होता है। ऐसी बात है। समझ में आया? सूक्ष्म बात। शक्ति का वर्णन। बहुत (सूक्ष्म है)। आहाहा! यह ४६ हुई। अब अन्तिम—४७। पहले दिन कहा था कि ४७ शक्ति का वर्णन है, समयसार; प्रवचनसार में ४७ नय का अधिकार है। यह दृष्टिप्रधान

अधिकार है, इसलिए शक्ति ली है। ज्ञानप्रधान अधिकार में वर्तमान में जो पर्याय होती है, राग का कर्तापना, वह भी एक नय जानना। ज्ञानी को राग की पर्याय का परिणमन है तो ज्ञानी ज्ञान में जानते हैं कि मेरा परिणमन राग का है। वह ज्ञान की प्रधानता से कथन है। ४७ नय है। और उपादान-निमित्त के ४७ दोहे आये हैं। भैया भगवतीदास (कृत) ४७ दोहे आये हैं। और चार (घाति) कर्म की प्रकृति ४७ है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय। चार घातिकर्म की ४७ प्रकृति है। आहाहा! यह ४७ शक्ति से ४७ प्रकृति का नाश होता है। नाश होता है, ऐसा कहना, वह भी उपचार-व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया?

अपनी ४७ शक्ति से अनन्त शक्ति... आहाहा! गजब बात की है! अमृतचन्द्राचार्य ने यह शक्ति का वर्णन (किया है, ऐसा) कहीं नहीं है। एक श्वेताम्बर में देवचन्दजी हो गये हैं, उन्हें शास्त्र का वाँचन (होगा), उन्होंने यह शक्ति का वर्णन पढ़ा अवश्य, पढ़कर शक्ति का वर्णन श्वेताम्बर की शैली से स्वतन्त्र करने लगे। आठ शक्तियाँ बनायीं, परन्तु यह नहीं। समझ में आया? यह जीवत्वशक्ति से शुरु किया है, उन्होंने दूसरे से शुरु किया है। यहाँ तो जीव की जीवत्वशक्ति जो है, वहाँ से शुरु किया है। आहाहा! आठ शक्ति बनायी, फिर बना नहीं सके। अभी अखबार में आया था। यह वाँचन किया। अपने में नहीं, तो अपने थोड़ी बनाओ। बनाने गये परन्तु यह नहीं, दूसरे प्रकार की।

यह सन्त तो वीतराग के पथानुगामी, केवल (ज्ञान) के मार्ग में चलनेवाले, आहाहा! और केवलज्ञान अल्पकाल में लेनेवाले है। चलनेवाले और लेनेवाले। आहाहा! यह सन्तों की वाणी, वह केवलज्ञान की दिव्यध्वनि का यह सार है। समझ में आया?

स्वभावमात्रस्वस्वामित्वमयी सम्बन्धशक्तिः।

स्वभावमात्र स्व-स्वामित्वमयी सम्बन्धशक्ति। (अपना भाव अपना स्व है और स्वयं उसका स्वामी है-ऐसे सम्बन्धमयी सम्बन्धशक्ति।४७।

४७। कहते हैं, **स्वभावमात्र...** स्वभावमात्र। अपना आनन्द, ज्ञान आदि स्वभाव और उस स्वभावमात्र स्व। तो उसका परिणमन भी स्वभावमात्र में आ जाता है। क्योंकि स्वभाव, स्वस्वभाव है, उसका परिणति में भान हुए बिना स्वस्वभाव है, ऐसा आया कहाँ

से ? समझ में आया ? क्या कहना है ? यहाँ तो **स्वभावमात्र स्व...** ऐसा लिया है। और फिर स्वामित्व। स्व का स्वामित्व। भगवान आत्मा अनन्त गुणरूपी स्वभाव, उसका स्व, उसका स्वामित्व, कब होता है ? कि पर्याय में जब परिणमन होता है, पर्याय में परिणमन होता है, तब यह स्वस्वभाव पूर्ण है, ऐसा भान हुआ। तो उस पर्याय में भी स्वस्वामीसम्बन्ध की पर्याय का अंश प्रगट होता है। तो फिर द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों में स्वभावशक्ति का व्यापकपना है। आहाहा!

यहाँ स्वभावमात्र स्व कहा। तो स्वभावमात्र में अकेले त्रिकाली को लेना नहीं। क्योंकि स्वभावमात्र का पर्याय में भान हुआ, तब यह स्वभावमात्र स्व, ऐसा भान हुआ। तो निर्मल पर्याय, निर्मल गुण और निर्मल त्रिकाली द्रव्य, इन तीनों में स्वस्वामीसम्बन्धशक्ति का व्यापकपना है। आहाहा! ऐसा धर्म। कहो, सेठ! क्या कहते हैं ?

मुमुक्षु : समयसार गृहस्थ के लिये है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सत्य। वे इनकार करते हैं। यह मिथ्यादृष्टि के लिये, अप्रतिबुद्ध के लिये तो समयसार कहा है। पहले आया है। अप्रतिबुद्ध के लिये मैं समयसार कहता हूँ। आहाहा! अरे! प्रभु! क्या करता है तू ? अपना बचाव करने के लिये ? भाई! ऐसा बचाव वीतरागमार्ग में नहीं होता। समझ में आया ? चौथे गुणस्थान में सिद्धपद की दशा का अंश प्रगट हो गया। आहाहा!

जितनी सिद्ध की निर्मल पर्याय की संख्या है, वह निर्मल पर्याय पूर्ण है और चौथे गुणस्थान में उसके अंश की शुरुआत हो गयी। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आहाहा! ऐसे सिद्धपद का-वस्तु का स्वरूप, द्रव्य का स्वरूप। सिद्धसमान सदा पद मेरो, यह पर्याय की अपेक्षा से नहीं है, शक्ति की अपेक्षा से है। शक्ति का सिद्धपद स्वभाव है, ऐसा जहाँ भान हुआ, तब स्वभाव है, ऐसी प्रतीति आयी। है तो सही। है, परन्तु जिसे प्रतीति में न आवे, उसे है क्या ? समझ में आया ? जिसकी ज्ञान की पर्याय में वह ज्ञेय न हो तो ज्ञान हुआ, वह (आया कहाँ से) ? उसका ज्ञान कहाँ हुआ ? वह तो पर्याय का हुआ। उसका ज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

भगवान आत्मा चैतन्य लक्षण से लक्षित चैतन्यस्वभाव से चेतन, उसमें वर्तमान में ज्ञान की पर्याय ज्ञेय—स्वज्ञेय को जानकर वर्तमान में प्रगट हुई, उसमें यह ज्ञेय आत्मा है,

ऐसा जानने में आया। उसे वर्तमान पर्याय में स्वस्वामीसम्बन्धशक्ति का अंश आया, उसके द्वारा स्वस्वामीशक्ति की प्रतीति आयी। आहाहा! समझ में आया? कहा था न? एक बार कहा था।

यह प्रश्न हुआ था। राजकोटवाले त्रिभोवनभाई है न? कैसे कहलाते हैं वे? वारिया। वीरजीभाई वारिया थे। ९१-९२ वर्ष में गुजर गये। काठियावाड़ में दिगम्बर का अभ्यास पहला उन्हें था। वीरजीभाई थे, वीरजी वकील। वे तो गुजर गये। उनका पुत्र है। त्रिभोवन। उसने प्रश्न किया, महाराज! यह कारणपरमात्मा, कारणपरमात्मा... त्रिकाली वस्तु को आप कारणपरमात्मा कहते हो, तो कारणपरमात्मा होवे तो कारण का कार्य तो आना ही चाहिए। कारणपरमात्मा त्रिकाली आनन्दकन्द, अनन्त गुण का कन्द कारणजीव कहो या कारणपरमात्मा कहो, आहाहा! कारण हो तो कार्य तो आना ही चाहिए। ऐसा प्रश्न किया। या तो कारणपरमात्मा है नहीं। कारणपरमात्मा अनादि है और सम्यग्दर्शन का कार्य तो है नहीं। तो उसे कारणपरमात्मा कैसे कहा जाता है? कहा, भाई! कारणपरमात्मा जिसकी प्रतीति में आया, उसे कारणपरमात्मा है। जिसकी प्रतीति में आया नहीं, उसे कारणपरमात्मा कहाँ है? समझ में आया? आहाहा!

कारणपरमात्मा त्रिकाली अनन्त गुणस्वरूप भगवान है, वह कारणपरमात्मा तो अनादि है, परन्तु वह अनादि है, ऐसा जिसकी पर्याय में भास नहीं हुआ, पर्याय में भान नहीं हुआ, तब तक कारणपरमात्मा उसे कहाँ है? मिथ्याश्रद्धावाले को कारणपरमात्मा की श्रद्धा है नहीं तो उसे कारणपरमात्मा कहाँ है? आहाहा! मिथ्याश्रद्धावाले को तो राग और पर्याय की श्रद्धा है। उसका हेतु तो उसकी पर्याय और राग है। सम्यग्दृष्टि को कारणपरमात्मा की श्रद्धा है। आहाहा! समझ में आया? यह है, सत्ता का स्वीकार है...

पहले यह कहा था, १७-१८ गाथा में ऐसा आया है, १७-१८ समयसार। प्रत्येक अज्ञानी की ज्ञान की पर्याय में भी, पर्याय का स्वभाव स्व-परप्रकाशक होने से, अज्ञानी की ज्ञान की पर्याय में भी स्वज्ञेय ही जानने में आता है। आहाहा! क्या कहा? १७-१८ गाथा में आया है। जीवराजा ज्ञान की एक समय की पर्याय में, अज्ञानी की पर्याय में भी जीवराजा ही ज्ञान में आता है, जीवराजा ही ज्ञान की पर्याय में ज्ञात होता है। परन्तु अज्ञानी की दृष्टि उस द्रव्य पर नहीं है, इसलिए उसे ज्ञान में ज्ञात होने पर भी उसकी पर्याय में कारणपरमात्मा आया नहीं। द्रव्य ज्ञान में आने पर भी दृष्टि द्रव्य पर नहीं दी तो पर्याय में द्रव्य आया नहीं।

समझ में आया? आहाहा! मार्ग बहुत अलौकिक, बापू! आहाहा! वीतरागमार्ग... यह तो सम्यग्दर्शन की खबर नहीं। सम्यग्दर्शन का विषय अभेद है और अनन्त शक्ति का एक अंश सम्यग्दर्शन में प्रगट होता है, उसकी तो खबर नहीं और व्रत, तप, संयम ले लो। आहाहा! बिना अंक के शून्य हैं। क्या कहते हैं? एक बिना के शून्य हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं... आहाहा! गजब काम किया है। 'ग्रन्थाधिराज तारामां भावो ब्रह्माण्डना भर्या।' यहाँ एक-एक शक्ति में ब्रह्माण्ड के भाव भरे हैं। आहाहा! लोगों को बेचारों को बाहर में लगा दिया। अन्तर आत्मा... अन्तर आत्मा राग को और पर्याय जितना अपने को मानना, वह तो बहिरात्मा है। क्योंकि पर्याय बहिर्तत्त्व है। वस्तु है, वह अन्तर्तत्त्व है और एक समय की पर्याय भी बहिर्तत्त्व है। एक समय की पर्याय पर दृष्टि है और वहाँ रहा है, वह तो बहिरात्मा है। आहाहा! बहिर् तत्त्व को अपना माना, वह बहिरात्मा है। आहाहा! समझ में आया?

अन्तःआत्मा—अन्तर आत्मा, अन्तःतत्त्व जो ज्ञायकमूर्ति प्रभु अनन्त शक्ति का पिण्ड है, उसका जहाँ अन्तर में स्वीकार किया, तब वह अन्तर आत्मा होता है। आहाहा! समझ में आया? बहिरआत्मा और अन्तर आत्मा की यह व्याख्या है। एक समय की पर्याय में अन्तर पूरी वस्तु ज्ञात होती है, वह दृष्टि तो है नहीं और एक समय की पर्याय में रहा और उसकी क्रीड़ा में रमा, वह पर्याय बहिर्तत्त्व है, अन्तरतत्त्व से वह बहिर्तत्त्व है। नियमसार में आता है न? भाई! नियमसार में शुद्धभाव अधिकार की पहली गाथा। **'जीवादिबहित्तच्चं।'** पहली गाथा है, ३८ गाथा है। है? नियमसार है। ३८ गाथा है।

'जीवादिबहित्तच्चं।' जीवादि अर्थात् जीव की पर्याय यहाँ जीव लेना। **'जीवादिबहित्तच्चं हेयम्'** वह हेय है। **'उवादेयमप्पणो अप्पा।'** आत्मा जो त्रिकाली ज्ञायकभाव वह आत्मा, वह उपादेय है। समझ में आया? आहाहा! निर्मल पर्याय हो उसे भी यहाँ बहिरतत्त्व कहा गया है। संवर, निर्जरा की पर्याय है, वह भी बहिरतत्त्व है। पर्याय है न? आहाहा! **'जीवादिबहित्तच्चं हेयम्'** वह हेय है। प्रकाशित हो गया है इसमें। इस ओर नियमसार है, नियमसार। ३८ गाथा उस ओर है। समझ में आया? आहाहा!

जीव की पर्याय को यहाँ जीव कहा और संवर, निर्जरा को भी पर्याय कहा और

पुण्य-पाप को आस्रव को भी पर्याय कहा। यह नव तत्त्व की पर्याय हेय है। आहाहा! **'उवादेयमप्पणो अप्पा।'** लो, **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य...** है। गजब है। संवर, निर्जरा की पर्याय को भी यहाँ परद्रव्य कहा है। अन्तरतत्त्व नहीं। वह तो परद्रव्य है, अन्तरतत्त्व स्वद्रव्य है और पर्याय को परद्रव्य कहा। आहाहा! समझ में आया? इसमें कहाँ सीखने जाए? निवृत्ति नहीं मिलती, पचास-साठ वर्ष में घण्टे-दो घण्टे सुनने के लिये निवृत्त हो। आहाहा! ऐसा स्वरूप भगवान का... अरे! इसे कान में न पड़े, उसे सुनने को न मिले, उसे कब ज्ञान हो और किस प्रकार अन्दर उतरे? आहाहा! इसके बिना सब थोथेथोथा है।

राग तो हेय है, दया, दान के विकल्प हैं, वे तो हेय हैं परन्तु स्वभाव के आश्रय से संवर, निर्जरा प्रगट हुई, वह भी हेय है। यह नियमसार भगवार कुन्दकुन्दाचार्य का ग्रन्थ, यह सब उत्कीर्ण किये हैं। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय और अष्टपाहुड़ पाँच शास्त्र उत्कीर्ण हैं और पाँच शास्त्र की प्रतिष्ठा है। पाँच है न? पाँच। समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़ और नियमसार। आहाहा! यह पाँच के हो गये हैं। क्या कहलाता है वह? पाँच... पाँच... पंच परमागम। यह पुस्तक आयी है? हाँ, यह पुस्तक आयी है। पुस्तक है न? पंच परमागम। है अपने पुस्तक? पंच परमागम पुस्तक है, तुम्हारी ओर से। इनकी ओर से निकली है। थोड़ी होगी अपने। भाई को एक दो। जिनेश्वरदासजी। पाठ है। अर्थ नहीं। पंच परमागम के पाठ हैं, उनकी पुस्तक बनायी है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं... आहाहा! गजब बात है। जहाँ दया, दान, व्रत के विकल्प हैं, वे तो हेय हैं, परन्तु जहाँ द्रव्यदृष्टि करना है, वहाँ संवर, निर्जरा की पर्याय भी हेय है। आहाहा! अरे! चारित्र की पर्याय भी हेय है। संवर कहो या चारित्र कहो। आहाहा! सम्यक्‌चारित्र, हों! जो भगवान आनन्दकन्द में रमणता करता है, वह रमणता करने की चारित्रदशा। पंच महाव्रत वह कोई चारित्र-फारित्र है नहीं। वह चारित्रदशा भी हेय है। क्योंकि पर्याय के लक्ष्य से तो राग उत्पन्न होता है। उसे चारित्र की दशा को भी सत्य सम्यक् चारित्रदशा, सम्यग्दर्शनसहित स्वरूप की रमणता की दशा को यहाँ परद्रव्य कहा है। त्रिकाली स्वद्रव्य की अपेक्षा से पर्याय को परद्रव्य कहा है। आहाहा! अरे! कौन दे?

एक बार श्रीमद् कहते थे। श्रीमद् राजचन्द्र गृहस्थाश्रम में थे और तत्त्वदृष्टि हुई थी तो बात करते थे कि मेरा यह नाद कौन सुनेगा ? कौन हाँ करेगा ? परमात्मा त्रिकाली का यह नाद है। समझ में आया ? आहाहा!

यहाँ तो (कहते हैं), **परद्रव्य होने के कारण वास्तव में उपादेय नहीं है।** संस्कृत है। संस्कृत, देखो! **'हेयोपादेयतत्त्वस्वरूपाख्यानमेतत्। जीवादिसप्ततत्त्वजातं परद्रव्यत्वान्न ह्युपादेयम्।'** हेय है। अरे! तत्त्व की दृष्टि की खबर नहीं। तत्त्वज्ञान क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं और यह व्रत लिये और अमुक किये और यह किया... आहाहा! यह संसार का नाश करने का उपाय नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **स्वभावमात्र...** जैसे यह कारणपरमात्मा है परन्तु इसकी प्रतीति और ज्ञान में आया उसको है। इसी प्रकार स्वभाव त्रिकाली है, त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव चिदानन्द है, वह स्व है। परन्तु किसको ? आहाहा! उसका आश्रय करके जाने उसको। आहाहा! **स्वभावमात्र स्व-स्वामित्वमयी...** यह स्व का सम्यग्दर्शन, ज्ञान में भान हुआ, तब वह स्वभाव है, स्वभावमात्र शक्ति है, उसकी प्रतीति आयी। तो उस स्वभावमात्र शक्ति को धरनेवाले द्रव्य की प्रतीति साथ में आयी। उस प्रतीति की पर्याय में स्वपना आया। जो स्वभावमात्र स्व था, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान की पर्याय में भी वह स्वस्वभाव आया। क्योंकि वह स्वभावमात्र स्व। तो वह स्वभावमात्रशक्ति द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों में व्याप्त हुई। द्रव्य-गुण में तो थी परन्तु पर्याय में उसका आश्रय लिया और पर्याय जब प्रगट हुई तो स्वस्वामी अंश पर्याय में भी आया। समझ में आया ? आहाहा!

जो त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव भगवान आत्मा, वह स्व; परन्तु स्व के परिणमन का भान हुआ, उसमें स्व आया। तो स्वस्वामीसम्बन्धशक्ति... आहाहा! बहुत समाहित किया है। तो कहते हैं कि, अन्दर शुद्ध चैतन्यद्रव्य, शुद्धगुण और उसकी परिणति शुद्ध हुई, वह अपना स्व और उसके साथ स्वामित्व। वह स्व का स्वामी धर्मी है। राग का, पुण्य का, व्यवहाररत्नत्रय का, विकल्प का वह स्व और उसका स्वामी ज्ञानी नहीं है। आहाहा!

दूसरे प्रकार से कहें... यह तो अलौकिक बातें हैं। ऐ... हसमुख! वहाँ दुकान में कहीं मिले ऐसी नहीं है। पूरे दिन पाप में और पाप में। इसे तो अलग हुआ है तो अब क्या करना, अधिक पैदा हो ऐसा करना है। यह मनसुख कमाता है, नटु कमाता है। ऐ...

मनहरभाई! मुझे भी इनके प्रमाण में किस प्रकार रहूँ? दवा का करूँ? इनके साथ दुकान रखना? अमुक करूँ? आहाहा! अरे रे! जिन्दगी चली जाती है। अपना क्या करना है, इसकी खबर नहीं होती। अरे रे! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भगवान! सुन तो सही, प्रभु! तेरी स्वभावमात्र जो चीज़ है, वह तेरा स्व, उसके परिणमन में भी स्वभाव आदि आये, तो वह द्रव्य, गुण और पर्याय... शुद्ध द्रव्य, गुण, पर्याय वह अपना स्व और उसका स्वामी। स्वस्वामित्वसम्बन्ध उसके साथ है। राग स्व नहीं तो स्वामित्वपना भी नहीं। आहाहा! भाषा कैसी है, देखो! **स्वभावमात्र स्व-स्वामित्वमयी सम्बन्धशक्ति।** ऐसा लिया है। स्वस्वामित्वमयी सम्बन्धशक्ति। अपना ज्ञायकभाव जो अनन्त शक्ति से भरपूर भरा है, ऐसा जहाँ अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ तो स्व, वह आत्मा स्वभाव, तो उसके परिणमन में भी स्वभाव आया तो वह स्वभावशक्ति तीनों में व्याप्त हुई। द्रव्य, गुण में तो थी, द्रव्य-गुण में तो स्वभावशक्ति अनादि की थी, परन्तु भान हुआ तो तब पर्याय में उसका अंश आया। आहाहा! ऐसी बातें कहाँ हैं? भाई! दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त ऐसा वस्तु का स्वरूप कहीं नहीं है। आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने करुणा करके जगत के समक्ष पूरे तत्त्व को प्रसिद्ध किया, प्रभु! उत्तराधिकार छोड़ गये हैं परन्तु उत्तराधिकार लेनेवाले रहे नहीं। बाहर का उत्तराधिकार। राग, दया, व्रत पालना और यह उत्तराधिकार भगवान का नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दरकार कब की है कि समझ में आये? वस्तु नहीं थी, बात सत्य है। बात तो सत्य, बापू! क्या हो? भाई! आहाहा! इसे ऐसा लगता है कि तुम्हारी दुकान सच्ची, हमारी दुकान सब खोटी? अरे! प्रभु! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समझ में आया?

क्या कहते हैं? 'स्व-स्वामिसम्बन्ध' शब्द पड़ा है। अपना द्रव्य शुद्ध है, गुण शुद्ध है, गुण में स्वस्वामीशक्ति भी शुद्ध है और जब शक्ति के धारक द्रव्य का पर्याय में अनुभव हुआ तो स्व-स्वामिशक्ति का परिणमन में अंश आया। वह द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों स्वभाव है, और उनका स्व स्वयं है और उनका स्वामी आत्मा है। ऐसा स्व-स्वामी सम्बन्ध उनके साथ है। पत्नी का पति हूँ, ऐसा स्वामी सम्बन्ध आत्मा में नहीं है। कहते हैं न यह?

पत्नी का पति हूँ। धूल में भी नहीं। सुन न! आहाहा! यह नृपति कहते हैं न? राजा। नरपति—राजा। नर—मनुष्य। नर अर्थात् मनुष्य का पति। धूल में भी नर का पति नहीं। आहाहा! ऐ... शान्तिभाई! यह करोड़पति, लाखपति यह सब विराजते हैं न! देखो न यह! यह सेठ, यह सेठ... धूल भी सच्चा नहीं। आहाहा!

स्वस्वामीसम्बन्ध नाम का गुण तुझमें है न, प्रभु! उस गुण का कार्य क्या? जो निर्मल परिणति हुई, वह स्वस्वामीसम्बन्ध में अधिकरणशक्ति का भी रूप है और उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द का भी रूप है। आहाहा! गजब काम किया है, शक्ति ने तो गजब काम किया है। आहाहा!

एक बार कहा था। रावण ने लक्ष्मण को शक्ति मारी। आता है न कथा में? रामचन्द्रजी, लक्ष्मण और सीता वनवास में गये। पिताजी की आज्ञा हुई। पिताजी कहे, तेरी माता ने—सौतेली माता—आज्ञा ऐसी की है कि मेरे इस पुत्र को राज्य मिलना चाहिए। सवेरे तो अभी राज देने का दिन गुरु ने निश्चित किया था। वशिष्ठ गुरु। रामचन्द्रजी को सवेरे गद्दी। वह भी मिथ्या पड़ा। इसलिए राम, लक्ष्मण और सीता तीनों चल निकले। दुनिया की दरकार बिना, हों! उनकी सौतेली माता ने ऐसा कहा। उनके प्रति द्वेष नहीं। आहाहा! 'रघुकुल ऐसी रीति चली आई, प्राण जाये पर वचन न जाये।' 'रघुकुल रीति ऐसी चली आयी, प्राण जाये पर (वचन न जाये)।' आहाहा! यह माता का वचन था। पिताजी ने वचन दिया था। पिताजी ने बराबर किया है। हम तो वनवास में जायेंगे। आहाहा!

ऐसा करते-करते लक्ष्मण रावण के पास लंका में गये। बाहर की विद्या की शक्ति मारी। बड़ा पण्डाल... पण्डाल समझे? तम्बू। तम्बू में दस-दस, बीस-बीस हजार लोग। लक्ष्मण पड़े हैं। आहाहा! पड़े इसलिए कहा... अरे! आये थे तब... हम दुकान पर गाते थे। (संवत्) १९६५-६६ की बात है। दुकान में यह गाते, 'आये थे तब तीन जनें अरु जाऊँगा अकेला एक, माताजी खबर पूछेगी उन्हें क्या-क्या जवाब दूँगा लक्ष्मण, ऐ बाँधव एक बार बोल न' आहाहा! 'बाँधव बोल न एक बार, एक बार भाई बोल न!' तीन जनें आये और मैं अकेला जाऊँगा, माता पूछेगी कि क्या हुआ? सीताजी ले गये, लक्ष्मण यहाँ पड़े। आहाहा!

किसी ने कहा कि... शल्या कैसी कही ? एक विशल्या नाम की कन्या है। वह बालब्रह्मचारी है, अभी अविवाहित है। उसके पास एक शक्ति/लब्धि है, परन्तु वह तुम्हारे भरत के राज में रहनेवाला राजा है। भरत को हुकम करो कि उस राजा की कन्या को यहाँ भेजे। आहाहा! वह विशल्या आती है... आहाहा! विशल्या है न ? विशल्या जहाँ... क्या कहलाता है वह ? तम्बू में आती है, वहाँ घायल अच्छे हो जाते हैं। ऐसे जहाँ अन्दर लक्ष्मण के पास जाती है, वहाँ लक्ष्मण की शक्ति उड़ जाती है। जगते हैं, (और कहते हैं) रावण कहाँ गया ? इस भाव से सो रहे थे न! रावण कहाँ है ? शक्ति उड़ गयी। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, विशल्या—आत्मा की शल्यरहित पर्याय जगती है। आहाहा! शल्य, मिथ्यादर्शन की शल्य बिना की परिणति... आहाहा! उस शल्य से जहाँ जागते हैं, वहाँ आत्मा जागकर उठता है कि मैं तो आत्मा आनन्द का कन्द हूँ। आहाहा! समझ में आया ? बहिन ने लिखा है न ? बहुत सादे शब्दों में। मुझे तो चोट लग गयी। इस शब्द से। जागृत जीव ध्रुव है न, कहाँ जाये ? आहाहा! सादी भाषा, एकदम बालक जैसी। जागृत जीव ध्रुव है न, अन्दर है। अर्थात् ? ज्ञायकभाव तत्त्व ध्रुवरूप से खड़ा है न ? वह ध्रुव कहा जाये ? ध्रुव कहाँ जाये ? पर्याय में आवे ? राग में आवे ? कहाँ जाये ? तेरी दृष्टि कर तो तुझे अवश्य प्राप्त होगा। समझ में आया ? बहुत सादी बालक जैसी भाषा है। संस्कृत और व्याकरण बड़ी (कुछ नहीं)। ऐ... प्रोफेसर! यह संस्कृत प्रोफेसर है। नरम व्यक्ति है। नरम है न! प्रोफेसर का अभिमान छोड़कर यहाँ आये हैं। आहाहा! बापू! यह प्रोफेसर तो अलग वस्तु है।

वह विशल्या नाम की परिणति जहाँ आत्मा में शक्ति जागी... आहाहा! वह जगी तो पूरे आत्मा को जगा दिया। राग की एकता में आत्मा मूर्च्छा खा गया था। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! राग के विकल्प की, दया, दान आदि के विकल्प की एकता में मूर्छित हो गया था। अब उसे शक्ति को जगा देना है। उसका व्यय करके... स्वस्वामीसम्बन्ध शक्ति की पर्याय प्रगट हुई, वह निर्मल पर्याय, निर्मल गुण और निर्मल द्रव्य। वह स्व और उसका स्वामी। स्व के साथ स्वामी का सम्बन्ध है। राग के साथ स्वस्वामी का सम्बन्ध नहीं है। राग के साथ व्यवहाररत्नत्रय के साथ ज्ञेयज्ञायक का सम्बन्ध व्यवहारमात्र है। आहाहा! क्या कहा ?

यह तो सम्बन्ध शब्द आया न ? आत्मा में अन्दर स्वस्वामीसम्बन्ध नाम का गुण है।

उस गुण की परिणति कब होती है ? द्रव्य पर दृष्टि होने से स्वस्वामीसम्बन्ध की परिणति में विकाररहित निर्मल दशा उत्पन्न होती है। उसमें यह आत्मा स्व है, ऐसी परिणति आयी तो गुण भी स्व है और परिणति भी स्व है। उसका स्वामी हुआ। स्वस्वामीसम्बन्ध उसके साथ है। लक्ष्मी के साथ, पैसे के साथ, पुत्र के साथ, मकान के साथ, यह स्व और मेरा है... आहाहा! अरे! यहाँ तो कहते हैं, व्यवहाररत्नत्रय जो देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा और पंच महाव्रत के परिणाम राग के साथ स्वस्वामीसम्बन्ध नहीं है। उसके साथ ज्ञेयज्ञायक सम्बन्ध है। जिनेश्वरदासजी! आहाहा! क्या यह तुम्हारे पैसे-बैसे का सब... हांगकांग में वह कमाता है न बहुत ? वह पैसा प्रभु! तेरा कहाँ है ? वह तो जड़ का है। अरे! अन्दर दया, दान, व्रत का विकल्प उठे, प्रभु! वह तेरी चीज़ में कहाँ है ? वह तो विकृत दशा है, पर है। आहाहा! जहाँ यहाँ निर्मल पर्याय को परद्रव्य कहकर हेय कहा तो मलिन पर्याय है, वह तो हेय... हेय... हेय... लाख बार हेय है। हेय तीन बार कहा। दर्शन में हेय, ज्ञान में हेय और चारित्र में हेय। तीन में हेय है। आहाहा! समझ में आया ? शक्ति वर्णन बहुत गजब है! आहाहा!

अरे रे! सत्य बात सुनने को मिलती नहीं और जिन्दगी मजदूरी करके चली जाती है। आहाहा! राग-द्वेष की मजदूरी, हों! क्रियाकाण्ड की नहीं, बाहर की नहीं। यह पुण्य और पाप के विकल्प करके मजदूरी करता है। आहाहा! भगवान! एक बार सुन तो सही, नाथ! तेरे स्वरूप में अनन्त शक्ति की सम्पत्ति पड़ी है। उसमें स्वस्वामीसम्बन्ध नाम का गुण है, उस गुण का गोदाम भगवान है। आहाहा! अरे रे! यह शक्ति का कार्य, उसके आधार से उसके अन्दर आधार स्वरूप है तो वर्तमान स्वसंवेदन परिणति उत्पन्न होती है, वही स्वस्वामीसम्बन्ध परिणति हुई, वह अपने आधार से हुई है। वह स्वस्वामीसम्बन्ध अपने आधार में है। राग, व्यवहाररत्नत्रय स्व नहीं, वह तो पर है और उसके साथ सम्बन्ध स्वस्वामीपना है नहीं। धर्मी को राग का स्वामीपना कभी नहीं होता। जिसे धर्मी कहते हैं, समकिती कहते हैं, वह दया, दान, व्रत, व्यवहाररत्नत्रय का स्वामी तीन काल में नहीं। समझ में आया ? आहाहा! ऐसी बात।

स्वभावमात्र स्व-स्वामित्वमयी... स्व का स्वामीपना। अपने स्व का स्वामी आत्मा है। अपने शुद्ध द्रव्य, गुण, पर्याय स्व, उसका वह स्वामी है। राग का स्वामी नहीं।

वह राग का स्वामी हो, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! यहाँ तो (कहते हैं), यह व्यवहार की क्रिया करो, यह करते-करते निश्चय होगा। अरे! भगवान! तू क्या करता है? प्रभु! अरे! दुनिया में भगवान का विरह पड़ा। केवलज्ञानी रहे नहीं और केवलज्ञान की उत्पत्ति का भी विरह पड़ गया। आहाहा! समझ में आया? ऐसे काल में तू क्या करता है? प्रभु! यह राग की क्रिया, व्यवहाररत्नत्रय से निश्चय होगा। यह सराग संयम है। इससे वीतराग संयम होगा। अररर! ऐसी प्ररूपणा! आहाहा! स्वरूप का घात करने की बात है। समझ में आया? ऐ... शान्तिभाई! अभूतपूर्व कहते हैं न? आहाहा! भगवान की वाणी तो ऐसी है, प्रभु!

जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ वीतराग..! वीतराग की परिणति से धर्म उत्पन्न होता है, राग से नहीं। आहाहा! वीतराग की परिणति स्वद्रव्य का आश्रय करती है, तो उत्पन्न होती है। यह व्यवहाररत्नत्रय का आश्रय करता है तो वीतराग परिणति उत्पन्न होती है, ऐसा तीन काल-तीन लोक में नहीं है। समझ में आया?

स्व-स्वामीसम्बन्धशक्ति। अपना भाव अपना स्व। द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों लेना। अपना भाव अपना स्व और स्वयं उसका स्वामी। स्वयं अपना स्वामी। अपना स्वयं स्वामी। स्वयं अपना स्वामी है। आहाहा! राग के साथ स्वस्वामीसम्बन्ध तीन काल में नहीं है। सम्यग्दृष्टि को स्वस्वामीसम्बन्ध अपने स्वरूप में है। सम्यग्दृष्टि जीव धर्म की पहली सीढ़ीवाला, मोक्षमहल की पहली सीढ़ी—सम्यग्दर्शन। आहाहा! उस सम्यग्दर्शन में जीव राग का स्वामीपना और राग अपना, ऐसा है नहीं। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प उठता है, आता है, वह ज्ञेयज्ञायक सम्बन्ध में जाता है। वह परज्ञेय। राग परज्ञेय। स्वज्ञेय तो द्रव्य, गुण, पर्याय अपना स्वज्ञेय भिन्न। आहाहा! राग परज्ञेय, भगवान स्वज्ञेय। इसमें परज्ञेय का ज्ञाता और ज्ञेय, इतना व्यवहार सम्बन्ध है। समझ में आया? उसके साथ दूसरा सम्बन्ध है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। व्यवहाररत्नत्रय के साथ धर्मी को दूसरा सम्बन्ध है ही नहीं। आहाहा! ऐसा मीठाभाई! आहाहा! मीठा महेरामण अन्दर झूलता है न! आहाहा! उसमें इस राग का-जहर का अभाव है। उसका स्वामीपना इसे नहीं है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

परिशिष्ट – 1

प्रत्येक शक्ति में लागू होनेवाले 23 बोल

इस समयसार परमागम के परिशिष्ट में समागत 47 शक्तियों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा लिखायी गयी नोंध इस प्रकार है।

1. क्रमरूप और अक्रमरूप अनन्त धर्मसमूह जो कुछ जितना लक्षित होता है, वह सब ही वास्तव में एक आत्मा है।
2. ज्ञानमात्र एक भाव की अन्त:पातिनी अनन्त शक्तियाँ उछलती हैं।
3. क्रमवर्तीरूप और अक्रमवर्तीरूप वर्तन जिनका लक्षण है।
4. एक-एक शक्ति अनन्त में व्यापक है।
5. एक शक्ति अनन्त को निमित्त है।
6. एक शक्ति द्रव्य-गुण-पर्याय में व्यापती है।
7. एक शक्ति में ध्रुव उपादान, क्षणिक उपादान है।
8. एक-एक शक्ति में व्यवहार का अभाव है।
9. यही अनेकान्त है, स्याद्वाद है।
10. शक्ति पारिणामिकभाव से है।
11. कर्ता आदि छह कारक अभिन्न हैं और निरपेक्ष है।
12. प्रत्येक शक्ति में अनन्त का रूप है।
13. जन्मक्षण, वही नाशक्षण।
14. उत्पाद, उत्पाद के कारण से है।
15. काललब्धि है।
16. अपने-अपने अवसर में होता है।
17. निश्चय-व्यवहार है।

18. शक्ति और शक्तिवान का भेद भी दृष्टि का विषय नहीं है।
19. क्रमवर्ती ज्ञानपर्याय, वह पर को जानती है, यह भी व्यवहार है।
20. जाननेवाला, जाननेवाले का है, ऐसे स्वस्वामी अंश से क्या साध्य है।
21. राग को उपादेय माने, वह आत्मा का हेय मानता है;
—आत्मा को उपादेय माने, वह राग को हेय मानता है।
22. प्रत्येक शक्ति में अकार्य–कारण का रूप है।
23. प्रत्येक शक्ति में त्याग–उपादानशून्यत्व है।

(अध्यात्म प्रणेता, गुजराती से साभार)

परिशिष्ट – 2

शक्तियाँ...

परमागम श्री समयसारजी की ४७ शक्तियों के उपरान्त शास्त्र समुद्र का मन्थन करके पूज्य गुरुदेवश्री ने खोज निकाली हुई कितनी ही शक्तियाँ...

1. समकित
2. चारित्र
3. स्वयंसिद्धत्व
4. अज
5. अखण्डता
6. विमल
7. भेद
8. अभेद
9. नास्ति
10. साकार
11. निराकार
12. वस्तुत्व
13. अचल
14. ऊर्ध्वगमनत्व
15. सत्
16. अतत्
17. सूक्ष्म
18. स्थूल
19. अप्रमेयत्व
20. अन्यत्व
21. अनन्त अगुरुलघुत्व
22. भव्य
23. अभव्य
24. सर्वगतत्व
25. द्रव्यत्व
26. अवगाहन
27. अव्याबाध
28. सूक्ष्म
29. अगुरुलघु
30. विभाव
31. योग
32. अवगाहन
33. क्रियावती
34. भोक्तृत्व
35. असर्वगतत्व
36. पूर्ण
37. अनादिसन्तति बन्धनबद्धत्व
38. नित्य
39. परमभाव
40. निजधर्मभाव
41. ध्रुवभाव
42. केवलभाव
43. शाश्वत्भाव
44. अतुलभाव
45. अछेद्यभाव
46. अमितभाव
47. प्रकाशभाव
48. अपार महिमाभाव
49. अकलंकभाव
50. अकर्मभाव
51. अघटभाव
52. अखेदभाव
53. नि:संसारभाव
54. कल्याणभाव

आधार — प्रवचनसार, पृष्ठ–150; अनुभवप्रकाश, पृष्ठ–6; राजवार्तिक, पृष्ठ–59; पद्मनन्दिपंचविंशति, पृष्ठ–181; परमात्मपुराण, पृष्ठ–35

परिशिष्ट - 3

३७ शक्तियाँ

(जीवत्वशक्ति से शुरु किया था और पूर्ण करते हुए आत्मा को स्वयं के साथ सम्बन्ध है, पर के साथ नहीं-ऐसा कहकर 47 शक्तियों का वर्णन किया है। अब इन शक्तियों के अतिरिक्त दूसरे ग्रन्थों — अनुभवप्रकाश, पद्मनन्दिपच्चीसी, राजवार्तिक इत्यादि में से ली हुई 37 शक्तियों का वर्णन करते हैं।)

(1) **सम्यक्त्वशक्ति—** सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, वह तो एक समय की पर्याय है परन्तु यह सम्यक्त्व तो त्रिकाल है। यह द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्याप्त है। यह शक्ति, राग या निमित्त में से नहीं आती। एक समयमात्र यह शक्ति नहीं है। आत्मा शक्तिवान है, उसका दृष्टान्त श्रीमद् राजचन्द्र ने दिया है कि घर में चूहा, कपड़ा काटकर खाता था, उसे देखकर शक्तिशाली को पूजनेवाला मनुष्य उस चूहे को पूजने लगा। एक दिन उस चूहे को बिल्ली ने पकड़ा तो उसे लगा कि बिल्ली में शक्ति अधिक है, इसलिए वह बिल्ली को भजने लगा। एक बार कुत्ता, बिल्ली के पीछे दौड़ा, यह देखकर कुत्ते में अधिक शक्ति लगने से उसे भजने लगा। कुत्ता, रसोई में आया, तब उसकी स्त्री ने कुत्ते को लकड़ी मारकर निकाल दिया तो स्त्री में शक्ति अधिक लगी। एक बार स्त्री, गुनाह में आयी तो उसे स्वयं ने उलाहना दिया तो उस मनुष्य को अपने में शक्ति लगी; इसलिए उसने निश्चित किया कि मुझमें शक्ति है। इस लकड़ी और राग को जाननेवाला मैं हूँ, इसलिए मेरे अतिरिक्त दूसरे को भजनेयोग्य नहीं है - ऐसा आत्मा है, है, और है। ऐसे ज्ञायकस्वभावी आत्मा में अनन्त शक्तियाँ हैं। शक्तिवान में सम्यक्त्व की शक्ति पड़ी है, उसका भरोसा कर। यही कहते हैं।

(2) **चारित्रशक्ति-** स्वरूपरमणतारूप चारित्रशक्ति आत्मा में है। यह शक्ति त्रिकाल है। चारित्र की पर्याय प्रगट होती है, वह तो एक समय की पर्याय है। यह शक्ति पंच महाव्रत के कारण नहीं है और निमित्त में से भी यह नहीं आती।

(3) **स्वयंसिद्धत्वशक्ति**- आत्मा स्वयं अपने से सिद्ध है, उसे किसी ने बनाया नहीं- ऐसी स्वयंसिद्धत्वशक्ति आत्मा में त्रिकाल है।

(4) **अजशक्ति**- इस शक्ति के कारण आत्मा कभी जन्मता नहीं है। पर्याय में जन्म होता है परन्तु आत्मा जन्मता नहीं - ऐसी शक्ति आत्मा में त्रिकाल है।

(5) **अखण्डत्वशक्ति**-आत्मा खण्ड-खण्ड हो-ऐसी शक्ति ही आत्मा में नहीं है। इस शक्ति के कारण आत्मा अखण्डता टिका रखता है। यह शक्ति भी द्रव्य-गुण -पर्याय तीनों में व्याप्त है।

(6) **विमलशक्ति**-आत्मा तो त्रिकाल मलरहित है, क्योंकि उसमें एक विमलशक्ति है। स्वच्छत्वशक्ति में अस्ति से बात थी। यह तो नास्ति से कहते हैं कि आत्मा त्रिकाल मलरहित है।

(7) **भेदशक्ति**-पर्याय में राग के कारण भेद पड़ता है, उसकी बात नहीं परन्तु आत्मा में त्रिकाल भेदरूप एक शक्ति है, एकान्त अभेद नहीं। यह शक्ति भी द्रव्य-गुण -पर्याय तीनों में व्याप्त है।

(8) **अभेदशक्ति**-आत्मा में गुणभेद होने पर भी प्रदेशभेद नहीं है। आत्मा अभेद है; एकान्त भेदवाला नहीं-ऐसी शक्ति आत्मा में त्रिकाल है।

(9) **नास्तित्वशक्ति**-आत्मा का पर-परिणतिरूप से नहीं होने का स्वभाव है—ऐसी नास्तित्वशक्ति आत्मा में त्रिकाल है। अभावशक्ति की बात आ गयी है, उसमें और इसमें अन्तर है।

(10) **साकारशक्ति**-स्व का आकार आत्मा को होता है। आकाररहित कोई पदार्थ नहीं होता। सर्वथा वस्तु निराकार है - ऐसा नहीं है। यह शक्ति, द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्याप्त है। तीनों का आकार होता है।

(11) **निराकारशक्ति**-आत्मा में निराकारशक्ति है, इसलिए उसमें जड़ का आकार नहीं; पर के आकार का प्रवेश नहीं। विभावव्यंजनपर्याय का भी आत्मा में प्रवेश नहीं। यह शक्ति भी त्रिकाल है।

(12) **वस्तुत्वशक्ति**-जिसके कारण प्रयोजनभूत पर्याय की परिणति हो—ऐसी एक वस्तुत्व नाम की शक्ति आत्मा में है।

(13) **अचलशक्ति**-इस शक्ति के कारण आत्मा कभी चलित नहीं होता। स्वयं अपने स्वभाव से चलायमान नहीं होता—ऐसी शक्ति आत्मा में त्रिकाल है। यह द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्याप्त है।

(14) **ऊर्ध्वगमनशक्ति**- आत्मा दूसरे की अपेक्षा मुख्यरूप से-बड़ेरूप से होकर रहे—ऐसी ऊर्ध्वगमनशक्ति आत्मा में त्रिकाल है। अथवा तो आत्मा का ऊर्ध्वगमन करने का स्वभाव है। वह स्वभाव, पर के कारण नहीं है।

(15) **सत्‌शक्ति**-इस शक्ति के कारण आत्मा स्व-रूप से रहता है। शक्ति त्रिकाल होती है; इसलिए आत्मा स्व-रूप से रहे - ऐसा ही है। यह शक्ति भी तीनों में व्याप्त है।

(16) **असत्‌शक्ति**-आत्मा में एक शक्ति ऐसी है कि वह पररूप नहीं होता। आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय - तीनों पररूप नहीं होते, क्योंकि यह शक्ति तीनों में व्याप्त है। यह शक्ति, निमित्त या राग के कारण नहीं आती परन्तु यह शक्ति स्वयं से है; इसलिए यह पररूप नहीं होती।

(17) **सूक्ष्मत्वशक्ति**-आत्मा में एक सूक्ष्मत्वशक्ति है। इसमें सब गुण-पर्यायों को सूक्ष्म रखा है। ज्ञान सूक्ष्म, दर्शन सूक्ष्म, चारित्र सूक्ष्म। ऐसा नहीं होता तो आत्मा इन्द्रियों से ज्ञात होता परन्तु इस शक्ति के कारण आत्मा सूक्ष्म है।

(18) **स्थूलत्वशक्ति**-आत्मा में एक स्थूल नाम का भी गुण है। केवलज्ञान, केवलदर्शन से जानने-देखने में आता है। आत्मा जानने में आता नहीं - ऐसा नहीं है। एकान्त सूक्ष्म नहीं है।

(19) **अप्रमेयत्वशक्ति**-इस शक्ति के कारण जगत के किसी क्षेत्र या काल से आत्मा का माप हो सके, ऐसा नहीं—ऐसा एक अप्रमेयत्वगुण आत्मा में त्रिकाल है। दूसरे के माप में न आ सके ऐसा है। भाव से माप में आवे परन्तु क्षेत्र-काल से माप में नहीं आता।

(20) **अन्यत्वशक्ति**- आत्मा में अन्यत्व नाम की शक्ति है। जिसके कारण अपने से भिन्न ऐसे एक आत्मा से भिन्न है, वैसे अनन्त आत्माओं से भिन्न है और अनन्तानन्त परमाणु इत्यादि से भिन्न रहता है। यह अन्यत्वगुण आत्मा में त्रिकाल है। यह गुण, पर के कारण नहीं, पर में नहीं परन्तु आत्मा का अपना गुण है।

(21) **अनन्त अगुरुलघुत्वशक्ति**- अगुरुलघुत्व अनन्त है। आत्मा में अनन्त गुण हैं, उन्हें अगुरुलघुत्वरूप से रखता है। आत्मा का ज्ञानगुण है, वह हल्का अर्थात् कम हो जाये तो जड़ हो और बढ़ जाये तो केवलज्ञान की मर्यादा छोड़ जाये परन्तु ऐसा नहीं होता क्योंकि आत्मा में अगुरुलघुत्व नाम का गुण है।

(22) **भव्यत्वशक्ति**- आत्मा में भव्यत्व नाम की शक्ति है। आत्मा, भव्यरूप से रहता है, वह स्वयं के कारण रहता है; पर के कारण नहीं, क्योंकि यह शक्ति आत्मा में त्रिकाल है।

(23) **अभव्यत्वशक्ति**- इस शक्ति के कारण आत्मा, अभव्यता छोड़ता नहीं। यह अभव्यता आत्मा के कारण से है। यह शक्ति आत्मा की है, पर से या पर में से यह शक्ति आयी नहीं है।

(24) **सर्वगतत्वशक्ति**- इस शक्ति के कारण आत्मा सर्व पदार्थों को जानता है। यह शक्ति आत्मा में त्रिकाल है। सर्वगत, अर्थात् आत्मा, पर में प्रवेश कर जाता है- ऐसा नहीं परन्तु पर में प्रवेश किये बिना पर को जानने की शक्ति है। स्वयं को जानते हुए सर्व पदार्थों को जान ले - ऐसी शक्ति है।

(25) **द्रव्यत्वशक्ति**- क्षण-क्षण द्रवना, अर्थात् परिणमित होना / बहना, वह आत्मा की शक्ति है। जैसे समुद्र में तरंगें उठती हैं, वैसे आत्मा में परिणमन होता है, वह द्रव्यत्वशक्ति के कारण से है। परिणमन से रहित द्रव्य नहीं होता।

(26) **अवगाहनत्वशक्ति**- आत्मा का स्वभाव अवगाहन देने का है। आकाश सर्व द्रव्यों को अवगाहन देता है; इसलिए आकाश का वह विशेष गुण है। जीव में भी दूसरे पदार्थों को अवगाहन देने का गुण है।

(27) **अव्याबाधशक्ति**- यह शक्ति आत्मा में त्रिकाल है। यह प्रतिजीवी गुण है।

इस शक्ति के कारण से आत्मा को कोई बाधा नहीं पहुँचा सकता। यह शक्ति, द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्याप्त है।

(28) **सूक्ष्मत्वशक्ति**- पहले सूक्ष्मत्व नाम की शक्ति आयी थी, वह तो अपना सूक्ष्म रहने का स्वभाव है, वह बात थी। यह शक्ति, नामकर्म के अभावरूप होने की है। यह भी प्रतिजीवी गुण है।

(29) **अगुरुलघुत्वशक्ति**- गोत्रकर्म के अभावस्वरूप होने की शक्ति है। यह भी प्रतिजीवी गुण है। उच्च-नीच गोत्रकर्म के निमित्त से होनेवाली पर्याय के अभावस्वरूप है। यह शक्ति, द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्याप्त है।

(30) **वैभाविकशक्ति**- यह शक्ति आत्मा में त्रिकाल है। संसार में विकार भी होता है, वह तो पर्याय है परन्तु यह शक्ति तो त्रिकाल है। इस गुण की पर्याय सिद्धदशा में स्वाभाविक होती है। यह शक्ति, द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्याप्त है।

(31) **योगशक्ति**- यह शक्ति आत्मा में त्रिकाल है।

(32) **अवगाहनशक्ति**- आत्मा में अवगाहनशक्ति दो है। पहली शक्ति पर को अवगाहन दे, ऐसी है और यह दूसरी शक्ति है, इसके कारण से आत्मा, शरीर में अवतार नहीं लेता। शरीर में अवतार न लेना—ऐसी अवगाहनशक्ति आत्मा में त्रिकाल है। प्रतिजीवी गुण है।

(33) **क्रियावतीशक्ति**- यह शक्ति त्रिकाल है। संसार अवस्था में इस शक्ति की पर्याय अशुद्ध होती है और सिद्ध में शुद्ध होती है क्योंकि शक्ति अशुद्ध नहीं होती।

(34) **भोक्तृत्वशक्ति**- आत्मा, आत्मा को भोगे—ऐसी शक्ति है। राग को या निमित्त को भोगे—ऐसी शक्ति आत्मा में नहीं है। अपने स्वरूप का अनुभव करे—ऐसी शक्ति, आत्मा में त्रिकाल है। यह द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्याप्त है।

(35) **असर्वगतत्वशक्ति**- आत्मा अपने असंख्य प्रदेश छोड़कर पर में नहीं जाता, लोकालोक में व्याप्त नहीं होता—ऐसी असर्वगतत्वशक्ति आत्मा में त्रिकाल है। यह शक्ति स्वयं की है, यह पर में नहीं तथा पर में से आती नहीं और अकेली पर्याय की भी यह शक्ति नहीं। द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्याप्त है।

(36) अनादि सन्ततिबन्धनबन्धत्वशक्ति–एक के बाद एक क्रमसर पर्याय बहे–ऐसी शक्ति आत्मा में त्रिकाल है। क्रमबद्धपर्याय हो, उल्टी–सीधी न हो, भंग पड़े नहीं—ऐसी अनादि सन्तति चली आती है। जैसे माला में मोती एक के बाद एक होते हैं, पहले का पहले, बाद का बाद में मोती होता है; उसी प्रकार पर्याय क्रमबद्ध होती है–ऐसी शक्ति आत्मा में है।

***(37) पूर्णशक्ति**– आत्मा अनन्त गुण–पर्यायों से पूर्ण भरा हुआ है, कभी कम नहीं होता–ऐसी शक्ति भी त्रिकाल है।

इस प्रकार 46+37=84 शक्तियाँ हुईं। इनके अतिरिक्त आत्मा में अनन्त शक्तियाँ हैं। उनका वर्णन तो श्रुतकेवली या केवली हो तो पूरा हो, वैसा है।

---

* शक्ति क्रमांक 38 से 54 तक के नाम पूर्व परिशिष्ट 2 में दिये हैं, परन्तु उन पर पूज्य गुरुदेवश्री का विवेचन उपलब्ध नहीं है।

मैं परमात्मा हूँ - ऐसा नक्की कर!

मैं परमात्मा हूँ - ऐसा निर्णय कर!

मैं परमात्मा हूँ - ऐसा ऐसा अनुभव कर!

- पूज्य गुरुदेवश्री